रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह

द्वितीय खण्ड

RASTANTRASAAR & SIDDHAPRAYOG SANGRAHA

PART 2

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)

पोस्ट : कालेड़ा– कृष्ण गोपाल–305408 (अजमेर) राजस्थान

KRISHNA GOPAL AYURVED BHAWAN (D.T.)

Post: Kalera-Krishna Gopal-305408 (Ajmer) Rajasthan

ॐ

कृष्ण गोपाल ग्रन्थमाला का द्वितीय रत्न

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

द्वितीय खण्ड

: : प्रकाशक : :

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन [ध. ट्र.]

पो. कालेड़ा-कृष्णगोपाल - 305408

(जिला—अजमेर) राजस्थान

१.	प्रथम संस्करण	१९४७	२५०० प्रतियां
२.	द्वितीय संस्करण	१९५२	३००० प्रतियां
३.	तृतीय संस्करण	१९५७	३००० प्रतियां
४.	चतुर्थ संस्करण	१९६३	३००० प्रतियां
५.	पंचम संस्करण	१९७०	३००० प्रतियां
६.	षष्ठम् संस्करण	१९७६	४००० प्रतियां
७.	सप्तम् संस्करण	१९८४	८००० प्रतियां
८.	अष्टम् संस्करण	१९९०	७००० प्रतियां
९.	नवम् संस्करण	२०००	५००० प्रतियां
१०.	दशम् संस्करण	२००५	३००० प्रतियां
११.	एकादश संस्करण	२००६	५००० प्रतिया
१२.	द्वादश संस्करण	२०१०	२००० प्रतियां
१३.	तेरहवां संस्करण	२०११	१००० प्रतियां
१४.	चौदहवां संस्करण	२०१२	१००० प्रतियां
१५.	पन्द्रहवां संस्करण	२०१३	१००० प्रतियां
१६.	सोलहवां संस्करण	२०१४	१००० प्रतियां
१७.	सतरहवां संस्करण	२०१५	१००० प्रतियां
१८.	अठारवां संस्करण	२०१५	१००० प्रतियां

सतरहवां संस्करण तक ५३,५०० प्रतियां
एवं अठारवां संस्करण (वर्तमान) की १००० प्रतियां
कुल मिलाकर ५४,५०० प्रतियां प्रकाशित

अठारवां संस्करण प्रति १०००

मूल्य-सजिल्द २२२/- रु.

सर्वाधिकार :

सन् २०१५

मुद्रक :
स्कावयर प्रिन्टर्स,
जयपुर

: : प्रकाशक : :

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट)

पो. कालेडा कृष्ण गोपाल-305 408 (जिला अजमेर) राजस्थान

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट)

के

संस्थापक

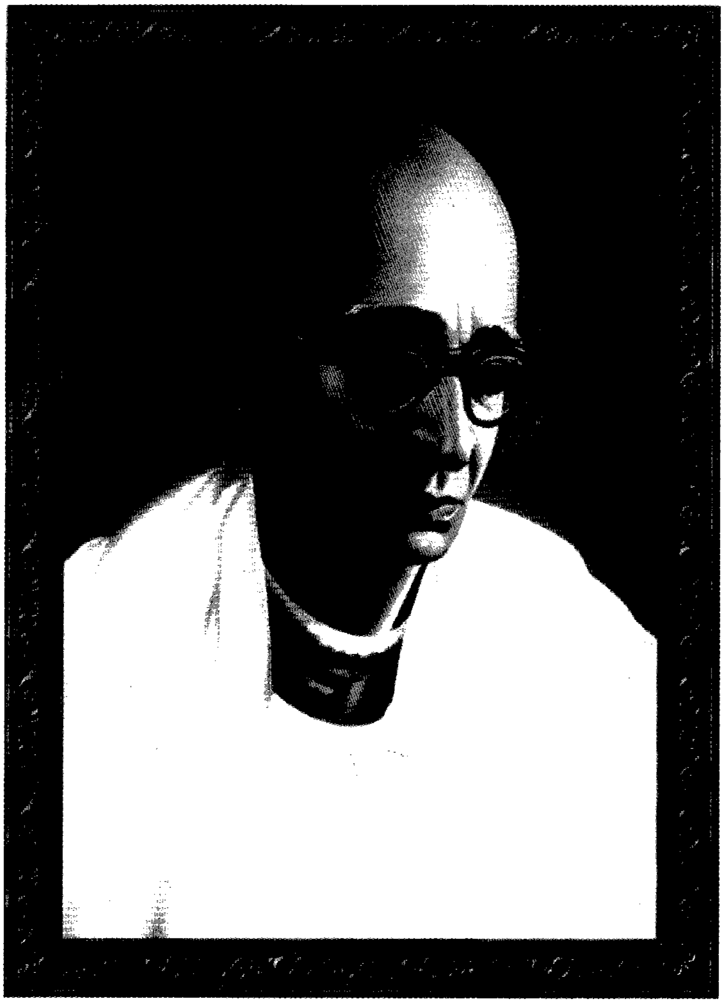

स्वर्गीय स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज

जन्म : 3.7.1889 निर्वाण : 30.12.1974

प्रकाशकीय निवेदन

नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थिति नाश हेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मक धारिणे विरंचिनारायण शंकरात्मने।।

परमात्मा की असीम अनुकम्पा द्वारा **'रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड'** कृष्ण गोपाल ग्रन्थ माला का द्वितीय रत्न के रूप में पाठकों व जनमानस की सेवा में द्वादश संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट) कालेड़ा कृष्ण गोपाल (अजमेर) द्वारा निर्माण होने वाली शास्त्रोक्त एवं प्रामांणिक औषधियों के निर्माण का मुख्य आधार यह ग्रन्थ प्रातः स्मरणीय स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज द्वारा संग्रहित व रचित रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह है।

हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि उच्च कोटि की प्रामाणिक औषधियों का निर्माण कर सर्वसाधारण व जनमानस की सेवा कर सके। वर्तमान में आयुर्वेद विज्ञान सम्पूर्ण विश्व के देशों द्वारा सम्मानित हो रहा है। इसके वर्चस्व को चिरायु करने के लिये कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट) विश्वविख्यात है। आयुर्वेद के 21 ग्रन्थों का प्रकाशन कर आयुर्वेद विद्वानों को उपलब्ध कराये जा रहे है। यह 12वां संस्करण त्रुटि रहित, नया स्वरूप आकर्षक लिपि व कवर पृष्ठ प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करण की उपलब्धता सभी पाठकों को भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में कराई जा सके, यह प्रयास किया गया है एवं इसके लिये ट्रस्ट की वेबसाईट और ई-मेल आईडी भी दी गई है, ताकि पाठक इस लोकप्रिय ग्रन्थ को प्राप्त कर पढ़ने का लाभ ले सके। निवेदन है कि अथक प्रयास उपरान्त ग्रन्थ में त्रुटि मिलने पर जानकारी देने का कष्ट करें।

वरिष्ठ व्यवस्थापक
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)
अजमेर

मई, 2010
द्वादश संस्करण

पंचम संस्करण की—

भूमिका

ईश्वर की विशेष अनुकम्पा से रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह के द्वितीय खण्ड का यह पञ्चम संस्करण गुण ग्राहक एवं प्रेमी पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है। यह प्रसन्नता और सन्तोष का विषय तो है ही, साथ में यह अपनी इस प्रकाशन की प्रवृत्ति के पर्यालोचन का भी विषय है।

आयुर्वेदीय योगों का संग्रह अति विस्तृत है। उसका विस्तार तब और भी अधिक बढ़ जाता है, जब कि उसमें व्यक्तिगत रूप से सफलतापूर्वक प्रयोग में आने वाले योगों का समावेश कर दिया जाता है। प्राचीन और अर्वाचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उपलब्ध होने वाले इन योगों की संख्या दस सहस्र के लगभग है। इतने योगों में से लगभग दो सौ योगों का ही प्रयोग देश में सर्वाधिक रूप से होता है। शेष संग्रह तो व्यक्तिगत रूप से वैद्यों द्वारा चिकित्सा सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकता के समय ही देखा जाता है और उसमें से कोई नवीन योग उपयोग के लिए चुना जाता है।

ऐसी स्थिति में अधिकांश योगों का उपयोग न होने से उनकी कार्यकारिता और निर्माण के विषय में एकरूपता का अभाव ही बना हुआ है। इस अनिश्चितता को देखते हुए आज यह मांग की जा रही है कि आयुर्वेदीय औषधों का स्तर निर्धारण किया जाना चाहिये। परन्तु यह बात कहने में जितनी सरल है, उतनी व्यावहारिक क्रियात्मक रूप में सरल नहीं है।

आयुर्वेदीय औषधों के स्तर निर्धारण में अपनी पृथक् ही कठिनाइयां हैं। वर्तमान पाश्चात्य औषधों का मूल स्रोत अधिकांश में रासायनिक द्रव्य है। इन रासायनिक द्रव्यों का परीक्षण आज की रासायनिक प्रक्रिया से किया जा सकता है और उनकी शुद्धता एवं विज्ञापित का ज्ञान किया जा सकता है इसके विपरीत आयुर्वेदीय औषधों का मूल स्रोत वानस्पतिक, खनिज, रासायनिक, प्राणिज द्रव्य का सम्मिश्रित अथवा संयोजित रूप है। इन्हें ही काष्ठौषध योग और रसौषध योग कहा जाता है। काष्ठौषध योग मुख्यतया वानस्पतिक मूल आधार वाले हैं और रस योग मुख्यतया खनिज, प्राणिज एवं वानस्पतिक सम्मिश्रण के आधार वाले हैं।

आज औषधों के स्तर निर्धारण में सर्व प्रमुख स्थान रासायनिक परीक्षा का है। इसके आधार पर यह निश्चय किया जाता है कि अमुक औषध में किस रासायनिक द्रव्य का क्या स्तर तथा मात्रा आदि होनी चाहिए निर्मित औषधों में उसी आधार पर यह देखा जाता है कि उस औषध के निर्माण के लिए निश्चित विशेषताएं प्रस्तुत औषध योग में है या नहीं? परन्तु आयुर्वेदीय औषधों के इस प्रकार के निश्चय की अभी तक कोई विधि आविष्कृत नहीं हुई है? किसी योग में वानस्पतिक द्रव्यों की मात्रा आदि का रसौषधों में विशेष भावनाओं, पुट आदि का निर्देश होते हुए भी निर्मित योग में तदनुरूप परीक्षा का कोई साधन नहीं है। उदाहरण के लिए जिन योगों में वंशलोचन का प्रयोग है, उनमें निर्माण के बाद यह ज्ञान करना कि यह वंशलोचन प्राकृतिक है या कृत्रिम यह सरल नहीं है। मृगश्रृङ्ग भस्म के निर्माण में उसे कुमारी स्वरस की भावना दी गई या अर्कक्षीर अथवा रस की, अभ्रक को कितने पुट दिये गये हैं और किन वानस्पतिक द्रव्यों के? भस्म किये जाने वाले धातु अथवा खनिज आदि का शोधन किया गया है अथवा नहीं तथा ऐसी ही अगणित बातों को जानने की कोई विधि रसायनशालीय आज तक नहीं है। ऐसी विधि का आविष्कार असम्भव तो कहना अनुचित होगा, फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि बिना विशेष प्रयत्न के और दीर्घकाल तक बिना प्रतीक्षा किये यह सम्भव दृष्टिगोचर नहीं होता।

इतना होने पर भी यह मांग तो है ही, और उचित भी है कि आयुर्वेदीय औषध का अपना एक स्तर होना चाहिये, चाहे उसकी वास्तविकता की परीक्षा की जा सकती हो या न की जा सकती हो। आयुर्वेद के विषय में यह एक प्रमुख एवं जागृत समस्या है। लोग कहते सब हैं कि इसके निमित्त कुछ निश्चित प्रयास किया जाना चाहिये। परन्तु वास्तव में अभी तक हुआ कुछ नहीं है। ऐसा समझा जा रहा है कि प्राचीन ग्रन्थों को देखकर कुछ प्रचलित योगों के विषय में विवरण एकत्र कर देने मात्र से यह कार्य हो जावेगा। परन्तु यह विचार युक्तियुक्त और व्यावहारिक नहीं है। यों तो इस प्रकार के योग उन ग्रन्थों में विवरण सहित लिखे ही हुए हैं। यह संग्रह तो केवल पुनर्लेखन मात्र ही होगा।

इस विषय समस्या की ओर इस संस्था के संस्थापक श्रद्धेय स्व. श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज का ध्यान प्रारम्भ से ही विशेष रूप से रहा है। समस्या के दो पक्ष हैं। प्रथम पक्ष तो यह है कि औषधों के निर्माण की सुनिश्चित, व्यवहार सिद्ध उत्तम से उत्तम विधि हो जिससे कि वे अधिक से अधिक कार्यकारी हों और उनका कार्य एवं परिणाम सुनिश्चित किया जा सके। दूसरा पक्ष यह है कि प्रस्तुत औषधों की परीक्षा-विधि क्या हो, जिससे उत्तम, उपयोग योग्य और अशुद्ध अनुपयोगी विभेद किया जा सके। औषध में तथा उसके द्रव्यों की शुद्धता एवं उपस्थिति का निर्णय किया जा सके।

प्रथम पक्ष का कार्य स्वतन्त्र संस्थायें और व्यक्ति भी अपनी शक्ति के अनुसार कर सकते हैं। परन्तु द्वितीय पक्ष सम्बन्धी कार्य बिना किसी सुविशाल प्रयत्न के, बिना सरकारी अथवा स्थिर एवं बड़ी सहायता के नहीं किया जा सकता। अतः कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन के माध्यम से औषध निर्माण की सर्वोत्तम एवं व्यवहार्य विधि के निर्णय का प्रयत्न किया गया।

इसी के परिणाम स्वरूप रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह ग्रन्थ की रचना हुई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त उक्त ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में औषध निर्माण के विषय में जितना प्रायोगिक भाग है, उसका क्रियात्मक अनुभव संग्रह करके अति विस्पष्ट, रहस्य रहित प्रकट रूप में विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो कि अभी भी निर्माण के समय अनुगमन करने पर जैसा का तैसा सत्य सिद्ध होता है और नव शिक्षित निर्माताओं को भी उसके अनुसार निर्माण करते हुए सफलता प्राप्त होती है।

रस आदि औषधों के निर्माण में आधारभूत प्रारम्भिक साधारण ज्ञेय बातें, रस धातु आदि का शोधन, मारण, कूपीपक्व निर्माण आदि समस्त विषय देकर रस योग, आसव, घृत, तैल, अवलेह, पाक, चूर्ण, गुग्गुलु आदि सभी प्रकार के औषध रूपों का निर्माण वर्णित किया गया है। इतना ही नहीं व्यवहार के अनन्तर उनके जो गुणावगुण ज्ञात हुए और जो वर्त्तमान तथा प्राचीन तद्विद्य विद्वानों ने अनुभव के आधार पर प्रकाशित किए उनका भी उसमें संग्रह किया गया है।

प्रस्तुत द्वितीय खण्ड में उसी प्रकार के अवशिष्ट योगों का संग्रह दिया गया है। दोनों संग्रहों का वैद्यों तथा आयुर्वेद प्रेमियों ने स्वागत किया है। इनके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सहस्रों प्रतियां विक्रय की जा चुकी हैं। इस प्रकार इन ग्रन्थों का प्रचार एवं प्रसार होने से भारत के विभिन्न भागों में स्थित वैद्यों और निर्माताओं द्वारा प्रयुक्त होने वाली औषध-निर्माण प्रक्रिया में एकरूपता आई है और एक सुनिश्चित निभ्रान्त एवं व्यावहारिक निर्माण स्तर के विकसित होने में मूल्यवान् योग प्राप्त हुआ है।

योगों की कार्य कार्यकारिता, उनकी चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिता का क्षेत्र, उनके कार्य का ढंग, विविध रोगों में निर्दिष्ट उनकी सफलता का रोगों की विविध अवस्थाओं में प्रयोग द्वारा मूल्यांकन आदि के विषय में अभी बहुत कार्य करना शेष है। भवन के अतिरिक्त अन्य संस्थानों, महाविद्यालयों से सम्बद्ध आतुरालयों आदि में और अनुसन्धान संस्थानों में इस दिशा में योजना पूर्वक सम्मिलित प्रयास जब तक नहीं किया जावेगा तब तक कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकना सम्भव नहीं है।

आयुर्वेदीय योगों की व्यावहारिक सर्वोत्तम निर्माण-विधि और उनकी कार्यकारिता का पुन: प्रयोग के आधार पर निर्णय किये बिना आयुर्वेदीय फार्मोकोपिया का निर्माण करना अच्छे प्रतीत होने वाले और निरन्तर प्रयोग में आने वाले योगों का नवीन संग्रह मात्र होगा।

भवन का लक्ष्य इस उद्देश्य की प्राप्ति अवश्य है। फिर भी रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह के द्वारा प्रथम सोपान का ही कार्य किन्हीं अंशों में पूरा किया जा सका है। फिर भी हमें सन्तोष है कि संस्थान ने अत्यावश्यक कार्य को उचित दिशा में आगे बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयास किया है। यदि सभी क्षेत्रों से आवश्यक सहयोग मिला तो भगवान् की दया से भविष्य में अधिक अच्छा कार्य किया जा सकेगा।

स्व. श्री स्वामी जी महाराज की मान्यता रही है कि ब्रह्मार्य ही ओज है और चेतना स्थान हृदय, मस्तिष्क है। ओज आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार जीवन का आधार है। उसके यथा स्थिति में रहने पर जीवन रहता है और उसके नाश होने पर मनुष्य का भी विनाश हो जाता है। आयुर्वेद में इस प्रकार के बहुसंख्यक योग उपलब्ध है जो कि विशेष रूप से ओजोवर्धक और रक्षक है, जिनकी प्रक्रिया ओज के ऊपर विशेष रूप से होती है। ऐसे कुछ योगों का विवरण इन दोनों खण्डों में प्रसङ्गत: आ भी चुका है परन्तु इस दृष्टि से जैसा होना चाहिये था उनका विवेचन सम्भवत: नहीं हो पाया है। ऐसा विचार है कि भविष्य में इस प्रकार के योगों का भी अनुभव एवं सम्भव परीक्षणों के आधार पर संग्रह किया जावे।

द्वितीय खण्ड के इस संस्करण में पहिले खण्ड में रही हुई त्रुटियों के सुधार की ओर पूरा ध्यान दिया गया है, फिर भी अनेक कारणों से जितने परिष्कार का विचार किया गया था उतना नहीं किया जा सका है। उसके लिए हम पाठकों से क्षमा की याचना करते हुए आशा करते हैं कि जैसा भी जो कुछ भी बन पड़ा है, उसे वे सप्रेम स्वीकार करें। यदि विद्वज्जन हमारी त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करेंगे तो हम उनके विशेष आभारी होंगे और भविष्य में उनका मार्जन करने का यथाशक्ति प्रयास करेंगे।

विदुषां वंशवद:

सन् - १९७० **वैद्य ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

छठे संस्करण की—

भूमिका

आपका चिर-प्रतीक्षित "रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड" का छठा संस्करण आपकी सेवा में समर्पित करते हुए अति हर्ष का अनुभव होता है। इस संस्करण को प्रकाशित करने में कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं--कागज की दुर्लभता, प्रिटिंग में बाधाएँ तथा श्रमिक समस्याएं इत्यादि।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था। उस समय की अपेक्षा आज ३० वर्ष बाद वस्तुओं के मूल्य में किस सीमा तक वृद्धि हुई है, इसे स्वयं पाठक जानते हैं, उनकी तुलना में इस संस्करण का जो मूल्य रखा गया है, वह अत्यल्प है। जिसका कारण यह है कि यह संस्था धर्मार्थ तथा आयुर्वेद की सेवा का उद्देश्य रखने वाली है। यह जन कल्याणकारी संस्था है।

इस ग्रन्थ के मूल संग्रहकार लेखक इस संस्था के संस्थापक स्वर्गीय स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज थे, जिनका पवित्र लक्ष्य ही यह था-

'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥'

उपरोक्त गुणों के साथ साथ स्वामीजी त्यागी, आत्म-प्रशंसा से रहित, निर्लिप्त एवं सेवाभावी थे तथा उन्होंने कभी लेखक रूप में भी अपना नाम छपवाना नहीं चाहा।

उन्होंने संस्था की, आयुर्वेद-जगत की तथा रुग्ण लोगों की मूक सेवायें की हैं वे संस्था को जनता के मान्य व चुनिन्दा संरक्षकों के दृढ़ हाथों में न्याय रूप से सौंपकर स्वयं आजीवन जन सेवा करते रहे थे।

इस ग्रन्थ रत्न के पांच संस्करण अभी तक निकले और वे हाथों हाथ बिक गये। यही इस ग्रन्थ की उपादेयता तथा मौलिकता का ज्वलन्त प्रमाण है। आयुर्वेद प्रेमियों तथा हजारों वैद्यवरों के मार्गदर्शन में यह ग्रन्थ सफल रहा है।

वर्तमान छठे संस्करण की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं–

(१) पूर्व प्रकाशित कुछ प्रयोगों के सन्दर्भ में जो योग-अनुपानादि रूप से प्रकाशित हुए हैं, उन योगों की भी पृथक्-प्रथक् सूची दे दी गई है।

(२) प्राय: ८० प्रतिशत योगों के द्रव्य व विधियां इसमें पृथक्-पृथक् दी गई हैं। जबकि पूर्व संस्करणों में विधियों के अन्तर्गत ही द्रव्य लिखे हुए थे।

(३) जो योग पूर्व संस्करणों के परिशिष्ट में दिये जाते रहे हैं, उन्हें तत्संबंधी प्रकरणों में लिया गया है।

यद्यपि इस संस्करण को अधिक उपयोगी, सरल व रुचिकर बनाने के प्रयत्न किये गये हैं, भाषा-शुद्धि व प्रूफ संशोधन में सार्थकता बरती गई है; तथापि इसका सर्वथा त्रुटियों से रहित होने का हमारा दावा नहीं है। अत: विद्वत् समाज एवं चिकित्सकों से साग्रह निवेदन है कि ग्रन्थ के सुधार के लिये हमें अपने बहुमूल्य सुझाव भेजने की कृपा करें। अगले संस्करण में इन सुझावों के अनुसार सुधार करने का प्रयत्न किया जावेगा।

अन्त में उन सभी महानुभावों को धन्यवाद समर्पण करता हूँ जिन्होंने इस विशाल संग्रह में अपने अद्‌भुत योगों को प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर सहयोग दिया तथा इसके प्रकाशन में पूर्ण सहायता की है।

विदुषां विधेय:

सन् - १९७६

बद्रीनारायण शास्त्री
प्रधान वैद्य
कालेड़ा-कृष्णगोपाल

एकादश संस्करण की—

भूमिका

सुधाकलशविभ्रन्तं दयालुं दीनवत्सलम् वन्दे धन्वन्तरिं देवमायुर्वेदप्रवर्त्तकम्।

रसतन्त्रसार एवं सिद्ध प्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड के इस एकादश संस्करण का प्रकाशन कर गुणग्राही पाठकों की सेवा में सादर समर्पित करते हुये हम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

आयुर्वेद के रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना वर्ग के इस संग्रह ग्रन्थ का एक-एक पृष्ठ उपादेय है इसमें उन अनुभूत औषध प्रयोगों को स्थान दिया गया है जो अपने गुणों के कारण अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुये हैं। अत: हम आशा करते हैं कि सुयश की आकांक्षा वाले वैद्यगण तथा गुणग्राही सज्जन वृन्द इस ग्रन्थ को पूर्व की भाँति अपनाकर हमारे प्रयास को सार्थक करेगें।

इस ग्रन्थ के 'रोगानुसार औषध सूची प्रकरण' में आयुर्वेदिक शब्दों के आधुनिक आयुर्विज्ञान के उन उपयुक्त भाव-दर्शक पर्याय शब्दों को भी संशोधन सह जोड़ा गया है जो सम्बन्धित रोग को अधिक स्पष्ट करते हों। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकरण को उत्कृष्ट स्वरूप देने में पूर्व के प्रसिद्ध विद्वानों पं. भास्कर गोविन्द घाणेकर जी, पं. शिव शर्मा जी, पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी आदि ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

ड्रग एवं कास्मेटिक एक्ट 1945 के प्रावधानों के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के नवम् संस्करण में से आयुर्वेदेतर 40 योगों को पृथक् किया गया था उन योगों को अलग से लघु संग्रह स्वरूप में शीघ्र ही पाठकों को उपलब्ध करवाने का प्रयास किया जा रहा है।

पाठक वृन्द आपको यह जानकर हर्ष होगा कि कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन अपनी स्थापना के गौरवशाली 75 वर्ष पूर्ण कर वर्ष 2005-2006 को हीरक जयन्ती वर्ष मना रहा है। इन वर्षों में आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों ने इस संस्थान की औषध निर्माण, ग्रन्थ प्रकाशन व जन-सेवा की इसकी शानदार विकास परम्परा को अक्षुण्ण रखने में जो सहयोग दिया है उसके लिये हम उनके हृदय से आभारी हैं।

आशा करते हैं कि त्रुटि सुधार हेतु आगे भी विद्वानों, गुणग्राही सज्जनों, पाठकों का हमें पूर्ण सहयोग, समर्थन प्राप्त होता रहेगा।

अप्रैल, 2006

व्यवस्थापक
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.)
पो. कालेड़ा-कृष्णगोपाल

प्रकरण सूची

प्रकरण का नाम	पृष्ठांक	प्रकरण का नाम	पृष्ठांक
अग्निमांद्य-अजीर्ण-विसूचिका	६८	बहुमूत्र	१८५
अतिसार प्रवाहिका	५०	बालरोग	२७६
अम्लपित्त	२४१	भगंदर	२१५
अर्श	६६	मसूरिका	२४५
अश्मरी	१७५	मुखरोग	२४८
आमवात	१५७	मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात	१७३
उदररोग	१९०	मेदोरोग	१८९
उन्माद, अपस्मार	१३६	रक्तपित्त	९९
कर्णरोग	२५१	रसायन वाजीकरण	२८४
कास	१०१	राजयक्ष्मा-उर:क्षत	११९
कुष्ठ	२२४	वमन आदि शोधन	१५
कूपीपक्व रसायन और भस्म	१	वातरक्त	१६०
कृमिरोग	८९	वातव्याधि	१४२
गण्डमाला-गलगण्ड	२०१	विष विकार	२८३
गुल्म	१६७	विसर्प	२४४
ग्रहणी	५५	वृद्धिरोग	२००
छर्दि (वमन)	१३४	व्रण-विद्रधि-अर्बुद-कैंसर	२०३
ज्वर	१९	शिरोरोग (শিরোরোগ হতে নিচের পৃষ্ঠায় সাথে ওপরের লিখিত অনুপান দেখা যাচ্ছে)	२५८
ज्वरातिसार	४९	शीतपित्त	२३९
दाह	१३५	शूलरोग	१३४
नासारोग	२५२	शोथरोग	१९७
नेत्ररोग	२५४	श्लीपद	१९९
पाण्डु-कामला	९१	श्वास-हिक्का	१११
पूयमेह	२२२	स्वरभंग	१३३
प्रमेह	१७८	स्त्रीरोग	२६५
प्रमेहपिड़िका	१८९	हृद्रोग	१६९
फिरंग	२१६	क्षुद्ररोग	२४७

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह द्वितीय खण्ड की

प्रयोग सूची

नाम औषध	पृष्ठांक
अकसीर दिमाग तैल	२६५
अग्निप्रदीपक गुटिका	७२
अग्निप्रभावटी	१९५
अग्निमुखरस	६८
अग्निसुत रस	७१
अजीर्णारि रस	७०
अजीर्णान्तक (रसोन) वटी	७८
अतिसार हर योग	२८२
अतिसार हर वटी	५४
अन्तर्विद्रधिहर योग	२०५
अपचीहर मलहम	२०२
अपतन्त्रकारि वटी	१४७
अपस्मारहर योग	१३९
अपस्मारहर रस	१३७
अपस्मारारि रस	१४०
अपूर्वमालिनी वसन्त	४०
अबलासंजीवन अर्क	२७४
अभयादि वटी	१६७
अभयादिकषाय	१८४
अभ्र कल्प	११९
अभ्रक भस्म	४
अभ्रकभस्म का अमृतीकरण	६
अभ्रकसत्व भस्म	५
अम्बर कस्तूर्यादि वटी	३०४
अम्बुशोषण चूर्ण	२७८
अम्लपित्तान्तक चूर्ण	२४३
अमृतप्राश घृत	१२८
अमृतभल्लातक पाक	३०३
अमृतार्णव रस (ज्वर)	१९
अमृतार्णव रस (वातज कास)	१०१
अमृता घृत	१६२
अमृतादि घृत	१६२
अयारिज फैंकरा	२६४
अर्कपत्र योग	२६०
अर्कमूलत्वगादि चूर्ण	१०९
अर्क रेवतचीनी	२१४
अर्क लवंगादि वटी	१०७
अर्क लोकश्वर रस	३५
अर्क लोहबान	२१४
अर्क शबाब आबर (गैसहर अर्क)	८६
अर्कादि वटी	२८४
अर्केश्वर रस	१००
अर्दितहर योग	१५५
अर्दितारि रस	१४६
अधिमन्थ हर योग	२५६
अर्धनारी नटेश्वर रस	३६
अर्धावभेदक हर नस्य	२६३
अर्धावभेदक हर योग	२६३
अर्शोहर गुटिका	६६
अर्शोहर भस्म	६६
अर्शोहर लेप	६६
अर्शोहर योग	६७
अर्शोहर वटी	६७
अश्मरीनाशक योग	१७७
अश्मरीहर कषाय	१७६
अश्वगन्धादि क्वाथ	१५४
अश्वगंधादि गुग्गुल	१५७
अश्वगंधादि चूर्ण	२९४
अश्वगंधादि योग	२६८
अशोकादि कषाय	२७०
अष्टामृत पर्पटी	६३
अष्टामृत भस्म	१३
असृग्दरहर योग	२६८
अहिफेन पाक	२९५
अहिफेनादि चूर्ण	१०८
अहिवध रस	२२६
आगन्तुक क्षतहर योग	२१२
आगन्तुक क्षतान्तक लेप	२०६
आमलकी रसायन	२८६
आमवातारि वटी	१५९
आमवातेश्वर रस	१५७
आमविध्वंसनी वटी	१८
आर्तवप्रद योग	२६९
आर्द्रक खण्ड	२४०
इन्दुकला वटी	२४५
इरिमेदादि तैल	२०७
उदरवातहर लेप	२८३
उदरशूलहर योग	१६५
उदरशूल हरवटी	१९६
उदररोगारि रस	१९२
उदावर्तहर गुटिका (गैसहरवटी)	७३
उदुम्बर पत्रसार	२१०
उन्मादगंजाकुश रस	१३६
उपदंशदावानल रस	२१८
उपदंश कुठार वटी	२१६
उपदंशवन कुठार	२१९
उपदंशहर कषाय	२१९
उपदंशहर चूर्ण	२२०
उपदंशहर धूम	२२०
उपदंशहहर वटिका	२२१
एरण्डपाक (वातारिपाक)	१५१
एलादि चूर्ण (अश्मरी)	१७६
एलादि मन्थ	१२९
एलाद्यरिष्ट	२४६
एलादि वटी	११०
औपसर्गिक मेहहर मिश्रण	२२२
औपसर्गिक मेहहर योग	२२२
कज्जली रस	१३६
कट्फलादि क्वाथ	११०
कण्ठमालाहर मलहम	२०२
कण्ठमालाहर लेह	२०३
कण्ठसुधारक वटी	१३४
कण्डूनाशक तैल	२३८
कण्डूनाशक योग	२३८
कण्डूहर अंजन	२५६
कन्दर्प रस	२२२
कन्दर्प सुन्दर तैल	२९६
कपर्दपोटली रस	१२७
कफकुंज्जर रस	१०४
कफकेतु रस	१०३
कफनाशक क्वाथ	१०९
कफान्तक रस	१०७
कमलादि फाण्ट	४४
कर्णपाकहर योग	२५२
कर्णरोगहर रस	२५१
कर्णशूलहर योग	२५२
करंजतैलादि मलहम	२३७
कर्पूरादि गुटिका	११०
कल्पतरु रस	२७
कस्तूर्यादि स्तंभन वटी	३०६
काकतिन्दुक वटी	१५०
काजल	२५५
कामचार मण्डूर	६४
कामचूडामणि रस	२९२
कामदेव मोदक	२८६
कामलाहर रस	९९
कारस्करादि गुटिका	१४८
कालमेघ नवायस	९२
कालाग्निभैरव रस	३३
काला नेत्रांजन	२५५
काला मलहम	२०८
कासीसादि वटी (विसर्प)	२४४
कासकेसरी रस	१०६
कासमर्दन वटी	११०
कासविजय चूर्ण	१०८
कासान्तक कषाय	२८१
कासान्तक चूर्ण	१०७
कासीसाद्य वटी (उदर)	१९४

नाम औषध	पृष्ठांक
किरातादि कषाय	४५
किंशुकादि तैल	२४८
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म	९
कुक्कुरकासहर मिश्रण	२७९
कुकूणकनाशक बिन्दु	२५४
कुम्भी तैल	२५१
कुमार कल्याण घृत	२८१
कुमारिका वटी	२६७
कुर्स कहरुवा	१३०
कुलिञ्जनाद्य गुटिका	१३३
कुलिञ्जनावलेह	१३३
कुष्ठहर रस	२२४
कूष्मांड अर्क	१४८
कृमिकण्टक चूर्ण (नलबंध)	९०
कृमिकण्टक रस	८९
कृमिघ्न योग	९०
कृमिशत्रु चूर्ण	८९
कृष्णदंत मंजन	२४९
कैंसरगजकेसरी वटी	२१४
केशरादि वटी (ज्वर)	३५
केशरादि वटी (सूतिका)	२७१
कैशोर गुग्गुलु	१६३
खञ्जनिकारि रस	१४६
खदिरादि चूर्ण	५१
खदिरादि तैल	२४९
खदिरादि वटी	२५१
खर्जूरादि चूर्ण	१३६
खर्जूरासव	१३०
गगनसुन्दर रस	४९
गजानन्द वटी	४७
गण्डमालान्तक लेप	२०१
गण्डमालाहर अर्क	२०१
गण्डमालाहर योग	२०१
गन्धककज्जली योग	१२८
गन्धक का मलहम	२३८
गर्भधारक योग	२७०
गर्भपोषक योग	२७४
गर्भाशयशोथघ्न योग	२७५
गर्भाशयशोधन योग	२७५
गर्भिणीरोगहर योग	२७५
गलगण्डहर लेप	२०२
गलत्कुष्ठारि रस	२२५
गलत्कुष्ठहर योग	२३२
गुग्गुलुपंचतिक्तक घृत	२०२
गुड़ादिमोदक	१५
गुडूच्यादि क्वाथ	१३६
गुडूच्यादि रसायन	१२७
गुडूच्यादि लोह	१६१
गुंजागर्भ रस	३००

नाम औषध	पृष्ठांक
गुंजाभद्र रस	१५०
गुल्महर रस	१६७
गुलाबी मलहम	२३७
गृध्रसीहर गुटिका	१४७
गोमूत्रादि क्षार	९५
गौरक्ष वटी	१३३
गोरोचन मिश्रण	२४५
गोक्षुरादि घृत	१७४
ग्रन्थिज्वरहर गुटिका	४३
ग्रहणीगजकेसरी	५६
ग्रहणीवज्रकपाट	५८
ग्रहणीशार्दूल रस	६३
ग्रहणीहंर योग	६४
चण्डासव	१४१
चतुर्भुज रस	१३६
चन्दनादि कषाय	२६१
चन्द्रकला वटी	१७८
चन्द्रप्रभा चूर्ण	१३५
चन्द्रशेखर रस (श्लेष्म पित्तज ज्वर)	२४
चन्द्रहास अर्क	१४०
चन्द्रावलेह	१४१
चन्द्रोदय वटी	२८९
चर्मदलारि तैल	२३६
चव्यादि चूर्ण	१३३
चिन्तामणि रस (ज्वर)	२१
चिन्तामणि रस (हृदय) ✓	१६९
चित्रकादि वटी	१९६
चैतन्योदय रस	२८०
चोटहर योग	२१३
चोपचीनी पाक	१५१
जन्तुघ्न मलहम	२०९
जन्मघूंटी	२८३
जम्बीरलवण वटी	७२
जवाहर मोहरा	१७०
जीर्णकासान्तक वटी	१०७
जीर्णज्वरान्तक चूर्ण	४८
जेपालाञ्जन	२८४
ज्योतिष्मति रसायन	३०१
ज्वरघ्नी गुटिका	४२
ज्वरभैरव चूर्ण	४३
ज्वरहर योग	४२
ज्वरसंहार रस	२७
ज्वरान्तक चूर्ण	२८१
ज्वरान्तक रसायन	२८
ज्वरारि अभ्र	२३
तण्डुलादि कृशरा	८०
तरुणानन्द रस	१२२
तार्पिन मर्दन	१५६
तारकेश्वर रस	१७३

नाम औषध	पृष्ठांक
तालकेश्वर रस	२२७
तालभस्म	११
तालीससोमादि चूर्ण	११५
तालीसादि मोदक	११०
तुगाक्षीर्यादि लेप	२१०
तुत्थ खर्पर भस्म	१०
तुत्थादि वटी	२७७
तुवरकतैल योग	२३२
त्रयोदशांग गुग्गुलु	१४९
त्र्यम्बकाभ्र रस	१३४
त्रिमूर्ति रस	१८९
त्रिवंग भस्म	१३
त्रिविक्रम रस (रक्तातिसार)	५०
त्रैलोक्यसंमोहन रस	३००
दद्रुहर लेप	२३७
दन्तरक्षक मञ्जन	२४८
दन्तशूलहर मञ्जन	२४९
दन्तशूलान्तक योग	२५०
दन्तीमूलादि लेप	२१३
दन्ती हरीतकी	१६८
दन्त्यरिष्ट	६७
दन्त्यादि गुटिका	१६८
दरदसुधा भस्म	१२
दशांग उपनाह (पुल्टिस)	२०५
दाड़िमावलेह	५४
दार्व्यादि क्वाथ	४६
दीपनपाचन चूर्ण	७५
द्राक्षादि क्वाथ	२४७
द्राक्षादि गुटिका (अरुचि)	७४
द्राक्षादि गुटिका (कफ)	१०७
द्राक्षादि चाटण	७८
धनुर्वातहर योग (बालरोग)	२८२
धनुर्वातहर योग (वात)	१५५
धात्रीरसायन (अनोश दारु)	२९७
धात्री लोह	१६५
धान्यकावलेह	२५७
✓न्युमोनिया प्रकाश	३५
नृसार पुष्प	७५
नवग्रह रस	१४३
नवजीवन रस	२८९
नवरत्न कल्पामृत ✓	३०१
नाग भस्म	८
नाग रसायन	१०३
नागरादि गुटिका	१४८
नागवल्लभ रस	१०२
नागाद्यञ्जन	२५६
नागार्जुनवर्ति	२५६
नागेश्वर रस	६८
नामर्दीनाशक तिला	२९९

नाम औषध	पृष्ठांक
नाराच रस (गुल्म)	१६७
नाराच रस (उदर)	१९१
नारायण मण्डूर	९३
नारायण रस	२१५
नारिकेल लवण	१६४
नासाकृमिहर नस्य	२५३
नासारोगहर योग	२५३
नासार्शनाशक लेप	२५३
निम्बादि क्वाथ	२४७
निम्बादि मलहम	२०९
नियमनादि कषाय	९०
निर्गुण्डी तैल (कल्याण तैल)	२०६
निर्वेदन चूर्ण	२८
निर्विष्यादि वटी	२८८
निशा तैल	२५१
नीलकण्ठ रस	२१७
नेत्ररक्षक बिन्दु	२५७
नेत्राभिष्यन्दहर योग	२५७
पञ्चगुण तैल	१५३
पञ्चतिक्त कषाय	४५
पञ्चतिक्तघन वटी	४७
पञ्चसार रस	१७०
पञ्चानन रस (रक्तगुल्म)	१६८
पञ्चानन वटी (पाण्डु)	९२
पञ्चामृत भस्म	१३
पञ्चामृत मण्डूर	९४
पंञ्चामृत लोह गुग्गुलु	१४९
पटोलादि क्वाथ	२४४
पत्रांगासव	२६८
पथ्यादि क्वाथ	२६१
पथ्याभल्लातक मोदक	२३३
पन्ना भस्म	१२
पर्पटी रस	२७
पाण्डेय उद्वर्तन	२३९
पाचन चूर्ण	७६
पाचन सुधा	८७
पाचन सुधा वटी	७४
पानीयभक्त वटी	२४२
पामाहर मलहम	२३७
पारद वटी (नीली वटी)	१६
पारदादि चूर्ण (कुष्ठ)	२३७
पारदादि चूर्ण (छर्दि)	१३४
पारदादि चूर्ण (बालरोग)	२८२
पार्श्वशूलहर मलहम	१५१
पार्श्वशूलहर योग	१६५
पाशुपत रस	१९२
पाषाणभेदादि घृत	१७७
पाषाणभेदी रस	१७५
पित्तशामक योग	१३५

नाम औषध	पृष्ठांक
पित्तान्तक रस	२४२
पित्ताशय शूलहर योग	१६५
पिप्पल्याद्य लोह (उदर रोग)	१९३
पिप्पल्यादि लोह (हिक्का)	११४
पिप्पल्याद्यासव	७७
पीडितार्तवहर लेप	२६९
पीतमूल्यादि कषाय	२७८
पीतमृगाँक रस	१४५
पीत श्वासकुठार	११२
पीयूषवल्ली रस	६०
पुनर्नवादि कल्प	१९८
पुनर्नवाष्टक कषाय	१९७
पूतिहर मलहम	२१०
पूयमेहहर गुटिका	२२३
पोथकीहर अञ्जन	२५४
पोथकीहर लेप	२५८
प्रतिश्यायनाशक अवलेह	२५३
प्रतिश्यायहर कषाय	४३
प्रतिश्यायहर वटिका	२५२
प्रदरान्तक योग	२७०
प्रमदानन्द रस	५०
प्रमेहकुञ्जर केसरी	१७९
प्रमेहपिटिकाहर योग	१८९
प्रमेहमिहिर तैल	१८४
प्रमेहहर योग	१८३
प्रमेहान्तक कषाय	१८३
प्रमेहान्तक चूर्ण	१८१
प्रमेहान्तक रस	१७८
प्रवाल भस्म	१०
प्रवालमाक्षिक मिश्रण	९१
प्रवाहिकाहर गुटिका	५३
प्रवाहिकाहर चूर्ण	५४
प्रवहिकाहर योग	५१
प्राणेश्वर रस	४९
प्लीहारि अर्क	१९६
प्लीहार्णव रस	१९३
प्लीहारि वटिका	१९४
प्लीहोदरारि चूर्ण	१९५
फलासव	३०५
बकुलाद्य तैल	२४९
बनफ्शादि शर्बत	१३२
बबूलाद्यरिष्ट	६५
बलाद्य घृत	१७०
बहुमूत्रघ्न रस	१८७
बहुमूत्रान्तक रस	१८६
बाकुच्यादि चूर्ण	२२८
बाकुची योग	२३३
बालयकृदरि लोह	२७८
बाल रस	२८०

नाम औषध	पृष्ठांक
बालरक्षक बिन्दु	२८०
बालरक्षक शर्बत	२७९
बाल वटी	२७६
बालशोषहर तैल	२८१
बालशोषहर वटी	२७७
बावली बूंटी	६६
बिल्वादि चूर्ण	५२
बीजकनिर्यासादि चूर्ण	५२
बोलादी वटी	२६७
बृहच्छतपुष्पादि चूर्ण	५१
बृहच्छातावर्यादि चूर्ण	१८२
बृहच्छृंगाराभ्र रस	१०५
बृहत्कस्तूरी भैरव रस	२५
बृहत् पिप्पली खण्ड	२४३
बृहद् ब्राह्मी वटी	१४४
बृहत् वरुणादि क्वाथ	१७६
बृहद् वातचिन्तामणि रस	१४३
बृहत्वातरक्तान्तक लोह	१६०
बृहत्सिंहनाद गूगल	१५७
बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त	३७
बृहत् सोमनाथ रस	१८५
बृहत्हरिद्रा खण्ड	२४०
बृहत्हरिशंकर रस	१७८
बृहन्नारिकेल खण्ड	२४२
बृहन्मञ्जिष्ठादि चूर्ण	१६
बृहन्मरिचादि तैल	२३६
ब्राह्मी आंवला केश तैल	२६४
ब्राह्मी तैल	१३९
ब्राह्म रसायन	२८४
भगंदरनाशक योग	२१५
भंगदरहर रस	२१५
भल्लातक मोदक	१९३
भल्लातकावलेह	२२९
भल्लातकादि गुटिका	१४७
भल्लातकादि क्षार	७६
भल्लातकासव	१५४
भार्ग्यादि क्वाथ	१०९
भीम वटी	६९
भुवनेश्वरी वटी	५३
भैरव रस	२१७
मण्डूरवटक	९५
मणिभद्र योग	२३५
मदनकान्ता गुटिका	२८७
मदनमञ्जरी वटी	३०३
मदयन्त्यादि चूर्ण	२३२
मधुकादि कषाय	४७
मधुमेहदमन चूर्ण	१८२
मधुमेहदर्पहारी	१७९
मधुमेहहर योग	१७९

नाम औषध	पृष्ठांक
मधुयष्ट्यादि गुटिका	१०७
मधुरान्तक वटी	४८
मधूकासव	७७
मधूच्छिष्टाद्य घृत	२१०
मन्थरज्वरहरचूर्ण	४८
मन:शिला भस्म	१२
मरिचादि कषाय	११५
मल्ल पुष्प	१४
मल्लशंख भस्म	११
मल्लसिन्दूर	१
मल्लादि पुष्प	२१७
मस्तिष्क बलवर्द्धक चूर्ण	२६२
मसूरिकान्तक रस	२४५
मसूरिकान्तक वटिका	२४६
महा कल्याण रस	२९९
महा खदिरादि घृत	२३१
महा चैतस घृत	१३९
महातिक्तक घृत	२३१
महाभूतराव घृत	२८१
महा माष तैल	१५२
महारसशार्दूल	२७२
महा रुद्र तैल	१६३
महाशक्ति रसायन	३०५
महाशंखवटी	८८
महास्नेह	२०४
महासिंदूराद्य तैल	२३६
माजून एहमदी	१८
माजून कुचिला	१५१
मायाफलादि चूर्ण	२६८
मालती चूर्ण	२७६
मांस्यादि क्वाथ	१४९
मिहिरोदय रस	२५९
मुक्तादि वटी	२७६
मुक्तापञ्चामृत	१३२
मुक्तामिश्रण	२४४
मुखपाकहर योग	२५०
मुस्तादि योग	९०
मूसली पाक	२९४
मूत्रकृच्छ्रान्तक योग	१७५
मूत्रदाहान्तक चूर्ण	१८७
मूत्रल कषाय	१९८
मृगनाभ्यादि चूर्ण	१३३
मृगमदासव	४६
मृगांक रस	१२६
मृतसंजीवनी सुरा	४६
मेदोहर गुग्गुलु	१९०
मेहमुद्गर रस	१७९
मौक्तिक रसायन	२९८
यकृच्छूल विनाशनी वटी	१९४

नाम औषध	पृष्ठांक
यकृत्प्लीहारि लोह	१९०
यकृदरि लोह	१९४
यकृद्विकारहरी वटी	१९४
यशद भस्म	७
याकूती	१७१
योगराज रस	९८
योगराज गुग्गुलु	१५६
योनिकण्डूहर योग	२७१
योनिवातहर योग	२७५
योनिसंकोचक योग	२७०
रक्तपित्तकुलकण्डन रस	९९
रक्तपित्तान्तक रस	९९
रक्त मंजन	२४८
रक्तरोधक वटी	१०१
रक्तशोधक अर्क	२२१
रजतादि लोह	१२४
रजोदोषहरी वटी	२६७
रत्नगर्भपोटली रस	१२५
रत्नविजय पर्पटी	६२
रतिवल्लभ चूर्ण	२९४
रतिवल्लभ पूगपाक	२९५
रम्य तैल	१५६
रसपीपरी	२८०
रसराज रस (यक्ष्मा)	१२१
रसराज रस (वात)	१४२
रसादि वटी	१३५
रसामृत रस	१००
रसायन बिन्दु	१३१
रसेन्द्र चूड़ामणि	२९१
रसेश्वर अर्क	११५
रसोनकर्पूर वटी	७९
रसोन पाक	१५१
रसोनपिण्ड	१४९
रसोन सुरा	१५४
रसोनादि अर्क	८१
रसोनादि गूगल	१४७
राजयक्ष्मकरिमत्तकेसरी	१२०
राजवल्लभ रस	६२
रास्नादि क्वाथ	११८
रुक्मीश रस	१५
रोचक गुटिका	७५
रोहितक लोह	१९२
रौप्य भस्म	४
लघुशतपुष्पादि चूर्ण	५१
लवण द्रावक	८१
लवण रसायन (नमक सुलेमानी)	७५
लवणाद्य चूर्ण	१६६
लवंग द्रावक	६४
लवंगादि वटी	१११

नाम औषध	पृष्ठांक
लक्ष्मणा लोह	२६६
लाजमण्ड	१३५
लाल मलहम	२०८
लाक्षादि गुग्गुलु	२१४
लोकेश्वर पोटली (सुवर्णलोकनाथ)	१२४
लोह गुग्गुलु	१६४
लोह भस्म	४
लोह शिलाजतु वटी	१८१
लोह सिन्दूर	९३
लोहादि मोदक	६६
लोहासव	९७
वंग भस्म	६
वंग योग	२२३
वंगादि चूर्ण	२८९
वंगाष्टक भस्म	१३
वचादि चूर्ण (उदावर्त)	७४
वचादि चूर्ण (गुल्म)	१६७
वचाहरिद्रादि कषाय	२७९
वज्र गुग्गुलु	१६१
वज्र वटी	७९
वडवानल क्षार	१९५
वमनान्तक योग	१३४
वमनेश्वर रस	१५
वसन्त सुन्दर रस	२४५
वसंतोदय पाक	२९५
वह्निभास्कर रस	२६१
वाजीकरण तिला	२९९
वातगजेन्द्रसिंह रस	१५८
वातपन्नगवटी	७३
वातरक्तान्तक रस	१६०
वातूशलान्तक योग	१५५
वातहर गूगल	१४१
वासकासव	११६
वासा कूष्माण्ड खण्ड	१०१
विजयासत्वादि वटी	१४१
विडंगतण्डुल रसायन	२३५
विडंगारिष्ट	२०४
विडलवणादि वटी	७२
विदार्यादि चूर्ण	२९४
विन्ध्यवासी योग	१२९
विपादिकाहर मलहम	२३७
विमर्दित नील धावन	२२०
विमर्दित शोरा लवण द्रावण	८४
विलासिनी वल्लभ रस	१७८
विश्वतापहरण रस (नूतनज्वर)	१९
विश्वविलास तैल	२६४
विशालादि चूर्ण	९६
विशालादि क्षार	९६
विषतिन्दुक तैल	१६३

नाम औषध	पृष्ठांक
विषतिन्दुकादि वटी	१५६
विषमज्वरान्तक लोह (सु.यु.)	३२
विषवज्रपात रस	२८३
विसर्पहर तैल	२४४
विसूचिकान्तक रस	७८
वीरचण्डेश्वर रस	२२६
वृक्कशूलान्तक वटी	१७६
वृद्धिनाशन रस	२००
वृद्धिहर लेप	२००
वृद्धिहरी वटिका	२००
व्रणकुठार तैल	२११
व्रणकुठार मिश्रण	२११
व्रणरोपण रस	२०३
व्रणशोधन तैल	२०६
व्रणान्तक गुग्गुलु	२०३
व्रणान्तक रस	२०४
व्रणापहारी रस	२०३
व्योषादि वटी	२५३
वैक्रान्त योग	२६५
वैक्रान्त वसंतकुसुमाकर	१८६
शक्तिवर्द्धक गुटिका	२९६
शक्तिवर्द्धक योग	३०१
शक्तिसंजीवन लेह	२९६
शंकर वटी	१६९
शंख भस्म	११
शंखकीटादि नस्य	१३९
शंखचूड़ रस	११४
शतपत्र्यादि चूर्ण	७५
शतमूल्यादि लोह	१००
शतावरी मण्डूर	१६४
शतावरी घृत (मूत्रकृच्छ्र)	१७४
शतावरी घृत (रसायन)	२९७
शतावरी घृत (वातरक्त)	१६२
शर्बत जूफा	१०९
श्यामकेश तैल	२६५
श्यामादि वटी	८७
शाही चूर्ण	१३२
शिखर्यादि वर्ति	२७४
शिखरी तैल	२५३
शिर:शूलहर तैल	२६२
शिर: शूलादि वज्र रस	२५८
शिरोर्तिहर नस्य	२६२
शिरोरोगहर योग	२६३
शिरोरोगहर रस	२५८
शिलाजत्वादि वटी	१८०
शीतपित्तभञ्जन रस	२३९
शीतलाशामक वटी	२४५
शीतारि रस	२९
शीतांशु रस	२८

नाम औषध	पृष्ठांक
शुक्ति पिष्टी	१०
शुक्रसंजीवन रस	१२४
शुक्रसंजीवन लोह	२९६
शुष्क गर्भ पातन योग	२७३
शूलगजकेसरी रस	१६४
शूलहर वटी	१६४
शोणितार्गल रस	२६६
शोथहर गुटिका	२१३
शोथहर योग	१९८
शोथारि लोह	१९७
शोराद्रावक	८३
श्रीगोपाल तैल	३०५
श्रीपर्णी तैल	२७४
श्रेष्ठादि वटी	१८४
श्लीपदगजकेसरी	१९९
श्लीपदारि लोह	१९९
श्वासकासचिन्तामणि रस	१११
श्वासकान्तक चूर्ण	११८
श्वासहर योग	११६
श्वासहारी रस	११३
श्वासान्तक चूर्ण	११५
श्वासान्तक योग	२८२
श्वासारि एला	११४
श्वासारि लवण	११७
श्वित्रारि योग	२२९
श्वित्रारि रस	२२९
श्वेत करवीराद्य तैल	२३६
श्वेत नेत्राञ्जन	२५६
श्वेत पर्पटी	१७३
श्वेत मलहम	२०८
श्रृंगाराभ्र रस	१२३
संचलपाक वटी	७४
संजीवन अर्क	८५
संजीवनी वटी	९१
संतापशामक मिश्रण	२८
संधिवातहर योग	१५५
संशोधक रस कर्पूर	२८३
संशोधन वटी	१७
संज्ञाप्रबोधक प्रधमन नस्य	४५
सगर्भा का छर्दिनाशक योग	१३५
सत्वप्रधान अभ्रक भस्म	६
सत्वाभ्र रसायन	६
सप्तपर्णघनादि वटी	४३
सप्तविंशतिको गुग्गुलु	२१५
सप्तामृत लोह	२५४
समशर्कर चूर्ण	१०८
सर्पगन्धा चूर्ण योग	१४१
सर्वज्वरहर लोह	३५
सर्वज्वरहर गुटिका	४१

नाम औषध	पृष्ठांक
सर्वतोभद्र रस	७०
सर्वतोभद्रा वटी	१७५
सवर्णकर योग	२१३
सवीरमल्ल पुष्प	२१८
संवीर वटी (केशरादि वटी)	२१८
सहचरादि तैल	१५२
सान्निपातिक क्वाथ	४५
सामुद्राद्य चूर्ण (उदर रोग)	१९५
सामुद्राद्य चूर्ण (शूल)	१६६
सारिवादि लोह	१८९
सारिवादि हिम	२३२
सिंहनाद गुग्गुलु	१५९
सिंहास्यादि क्वाथ	१६२
सिंहास्यादि वटी	५३
सितामण्डूर	२४१
सिद्ध अश्वकंचुकी रस	२९
सिद्ध गन्धक	१९९
सिद्ध संजीवनी वटी (कर्पूरादि गुटिका)	१२३
सिद्धामृत रस	२६१
सिंह्यादि क्वाथ	११८
सुखविरेचनी वटी	१६
सुदर्शन मलहम	२०९
सुदर्शन मिश्रण	४५
सुदर्शनादि कषाय	१३१
सुधाकर रस	१३५
सुधानिधि रस	२४१
सुधाषट्क योग	२७६
सुवर्ण ग्रहणीगजकेशरी	५५
सुवर्ण चिन्तामणि	२१
सुवर्ण भस्म	२
सुवर्ण रज	३
सुवर्ण बंग	१
सुवर्ण सर्वांगसुन्दर	१२७
सूची मर्दन	१५५
सूतिकाज्वरहर कषाय	२७३
सूतिकारोगान्तक क्वाथ	२७१
सूतिकावल्लभ रस	२७१
सूर्यावर्त क्षार	१७३
सेतुबन्ध रस	४९
सोमनाथ रस	१८५
सौभाग्य प्रवाही	२५०
सौभाग्यादि गुटिका	२६६
स्तन्यशोषक लेप	२७२
स्पर्शवातारि रस	१४६
स्फटिकाशतमल्ल भस्म	११
स्वच्छन्द भैरस रस (ग्रहणी)	६१
स्वछन्द भैरव रस (ज्वर)	३६
स्वर्ण सिन्दूर	२
स्वर्णक्षीरी रस	२२५

नाम औषध	पृष्ठांक
स्वादिष्ट गंगाधर चूर्ण	५२
स्वादिष्ट छुहारे	८७
स्वादिष्ट पाचन वटी	७४
हपुषाद्य चूर्ण	१९६
हब्बे अयारिज	२५८
हरड़पाक	२०४
हरा मलहम	२०८
हरीतक्यादि अवलेह	६५
हरीतक्यादि अवलेह (स्वानुभूत)	१३०
हरिद्रा खण्ड	२४१
हरिद्रादि लेह	११८
हरीतक्यादि कषाय	२१३
हरीतक्यादि चाटण	२६२
हरीतकी रसायन	९७
हरीतकी वटी	१८
हिक्काहर तन्त्र	११७
हिक्काहर योग	११७
हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण	७४
हिंगुकर्पूर वटी	३३
हिंगुलादि गुटिका (डब्बा)	२७७
हिमरत्नाकर चूर्ण	४४
हिमसागर तैल	१५३
हीरक रसायन	२६६
हीराभस्म अनुपान मिश्रणसह	३००
हृद्य चूर्ण	१७२
हृदयपौष्टिक चूर्ण	१७२
हेमाभ्रसिन्दूर	११९
क्षतारि मलहम	२०९
क्षयकुलान्तक रस	१२१
क्षयकेसरी रस	१२१
क्षारादि उपनाह	२०५
क्षारादि मण्डूर	९५
क्षुद्ररोगहर योग	२४७
ज्ञानोदय रस	२८८

प्रयोगान्तर सूची (र. तं. सा. द्वि. ख.)

क्र.	औषध	पृष्ठांक
१	चन्दनादि अर्क	१०
२	पिच्छा बस्ति	५७
३	चतुः समचूर्ण	६३
४	बाह्य परिमार्जन	६५
५	दाहशामक मलहम	६७
६	मसाला (स्वादिष्ट)	८७
७	अर्जुन क्षीर	१७०
८	निम्बपत्रादि सत्व	१८१
९	लाक्षारस	१८४
१०	सारिवादि फांट	१८६
११	विरेचक क्वाथ	२१९
१२	मूत्रशोधक कषाय	२२३
१३	चन्दनादि तैल योग	२२४
१४	मुञ्जिस	२२५
१५	रजोदोषहर क्वाथ	२६७
१६	रक्तामलकी रसायन	२७०

पुस्तक संकेत सूची

अ.हृ.	अष्टांग हृदय
अ.यो.	अनुभूत योगमाला
आ.प्र.	आरोग्यप्रकाश
औ.गु.ध.शा.	औषध गुणधर्म शास्त्र
ग.नि.	गदनिग्रह
च.द.	चक्रदत्त
च.सं.	चरक संहिता
नि.र.	निघण्टु रत्नाकर
वृ.नि.र.	वृहन्निघण्टु रत्नाकर
बं.से.	बंगसेन
बृ.यो.त.	बृहद्योग तरंगिणी
भै.र.	भैषज्य रत्नावली
भा.भै.र.	भारत भैषज्य रत्नाकर
यो.र.	योग रत्नाकर
यो.चि.	योग चिन्तामणि
र.चं.	रस चन्द्रिका
र.र.सं.	रस रत्न समुच्चय
र.सा.सं.	रसेन्द्रसार संग्रह
र.यो.सा.	रसयोग सागर
र.रा.सु.	रसराज सुन्दर
र.त.	रसतत्व
र.र.	रसरत्नाकर
र.सा.	रससागर
र.का.	रसकामधेनु
वै.सा.सं.	वैद्यकसार संग्रह
शा.सं.	शार्ङ्गधर संहिता
सि.भै.म.	सिद्धभैषज्य मणिमाला
सि.यो.सं.	सिद्ध योग संग्रह
सु.सं.	सुश्रुत संहिता

समीरपन्नग (नं. २) में मैनसिल न होने से वह सरलता से बनता है। तल में कुछ भी शेष नहीं रहता। पहले प्रकार में मैनसिल होने से मैनसिलयुक्त पतली तह कुछ पीले रङ्ग की अलग भी हो जाती है जो साधकों को भ्रम में डाल देती है।

३. स्वर्ण सिन्दूर (पूर्णचन्द्रोदय)।

विधि–पारद को सैंधानमक और नींबू के रस में खरल करें। फिर धोकर २० तोले शुद्ध पारद, २० तोले शुद्ध गन्धक और १ तोला सुवर्ण वर्क मिलाकर कज्जली करायें। इसकी शीशी सुबह ६ बजे चढ़ाकर अग्नि मन्द दें। कलमीशोरा नहीं डालें। दूसरे दिन शाम को ७ बजे तक (अर्थात् ३७ घण्टे तक) अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर स्वर्ण सिंदूर व सुवर्ण भस्म निकाल लें व दोनों को मिला लें।

विशेष अनुभव–कुछ रसायनों को कोयलों की भट्टी पर भी बनाकर अनुभव किया। कोयलों की भट्टी पर सत्वर बनते हैं किन्तु उनका गुण कुछ अंशों में अल्प होता है। जिन रसायनों को ३-३ दिन अग्नि देनी पड़ती है, उनके लिये लकड़ी की भट्टी विशेष सुविधा वाली रहती है।

समगुण और द्विगुण गन्धक जारित रससिंदूर सिंगरफ में से बनाकर निर्णय किया। रंग-रूप में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार से सरलता से बन जाता है। पारद की हानि कम होती है, समय बच जाता है। खर्च भी कम आता है। किन्तु गुणों में अन्तर होता है। जिन फार्मेसी वालों को रसायन कम मूल्य में बेचकर ग्राहकों को प्रसन्न रखना हो, उनको ये विधियां अति उपयोगी हैं।

रसायन विधि जो रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड के भीतर लिखी है, उस तरह बनाने में समय अधिक लगता है। लकड़ी भी अधिक जलानी पड़ती है, किन्तु वह अधिक गुणदायी होता है। रसायन का पाक जितना जल्दी कराया जाता है, वह उतना ही न्यून प्रभावशाली रहेगा। जिस तरह हाथ से चलने वाली चक्की और यन्त्र से चलने वाली चक्की से पीसे हुए आटे में अन्तर होता है, उस तरह इन रसायनों में भी अन्तर पड़ता है। दोनों के गुणधर्म में कितना अन्तर रहा है, यह पाश्चात्य परीक्षण विधि अनुसार कदापि अवगत नहीं हो सकेगा। सच्चे निर्णय का साधन मात्र एक ही है कि समान रोग वाले अनेक रोगियों पर प्रयोग करके अनुभव किया जाये।

मात्रा और उपयोग–रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

४. सुवर्ण भस्म।

द्रव्य–शुद्ध स्वर्ण वर्क ४ तोले, श्वेत मल्ल ४ तोले।

प्रथम विधि–दोनों को मिला, तुलसी, वन तुलसी अथवा कुकरौंधे के रस में ७ दिन खरलकर टिकिया बनावें। फिर सूर्य के ताप में सुखा, शराव सम्पुट कर १ सेर कण्डों की अग्नि देवें। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल, १ तोला सोमल मिला पुनः १२ घण्टे उसी के स्वरस में खरल कर टिकिया बना शराव सम्पुट कर कुक्कुट पुट देवें। इस तरह ७ या अधिक समय १-१ तोला सोमल मिला-मिलाकर अग्नि देवें। सुवर्ण की चमक बिल्कुल नष्ट हो जाने पर बिना सोमल मिलाये १२ घण्टे उसी के स्वरस में खरल करके कुक्कुट पुट देवें। पश्चात् गुलाब जल, कमल के फूलों के रस तथा मौलसरी (बकुल) के फूलों के स्वरस का एक-एक पुट देने से मुलायम, लाल-गुलाबी रंग की भस्म बन जाती है। वजन लगभग ६ तोले होता है, इस विधि का मूल आधार हमें गुजराती रसायन संग्रह से मिला है। अतः हम उनके आभारी है।

मात्रा–१/८ से १/४ रत्ती, दिन में दो बार, रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–सुवर्ण भस्म का उपयोग रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड के भस्म प्रकरण में विस्तारपूर्वक दर्शाया है। वनौषधि से मारित सुवर्ण भस्म की अपेक्षा यह भस्म उग्र मानी जायेगी। क्योंकि, इसमें मल्ल भस्म का रासायनिक योग हुआ है। वाताक्षेपजनित विकारों एवं सन्निपातपर कहे हुए प्रयोगों-योगेन्द्र रस, बृहद् वातचिन्तामणि, रसराज रस, हेमगर्भपोटली आदि में वनौषधिमारित भस्म की अपेक्षा मल्लमारित भस्म मिलाने से योग आशुफलप्रद बनता है।

इस तरह कतिपय आचार्यों के मत के अनुसार राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था में उपयोग में लेने के लिये मृगाङ्करस, राजमृगाङ्ग, महामृगाङ्क, रत्नगर्भपोटलीरस, हेमगर्भपोटली आदि में इस भस्म को मिलाना विशेष हितकारक माना जायेगा।

मल्ल मिलाये बिना केवल सुवर्ण के वर्क को वनतुलसी के रस से १०-१२ पुट देकर भी हमने अनेक बार सुवर्ण भस्म बनायी है। वह अच्छी मुलायम बन जाती है। हम विशेषतः वनस्पतिमारित भस्म का ही प्रयोग करते रहते हैं।

सूचना–शुष्क कास, पित्तज ग्रहणी, पैत्तिक ज्वर, पित्तप्रकोप और राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में जिस स्थान पर शीतल और शामक औषधि देनी हो, वहाँ पर इस मल्लमारित भस्म का उपायेग नहीं कराना चाहिये।

इस मल्लमारित भस्म को यथा विधि अमृतीकरण करके व्यवहार में लाना विशेष हितावह माना जायेगा।

दूसरी विधि–शुद्ध सुवर्ण वर्क अथवा बारीक बुरादा १ तोला, कुक्कुटाण्डत्वक् (मुर्गी के अंडों के वे छिल्के जिनमें से स्वाभाविक बच्चे पैदा हुए हों) २ तोले लें। दोनों को खरल में डाल हुल-हुल के स्वरस से १ दिन निरन्तर घोट कर टिकिया बना सुखाकर कुक्कुट पुट दें। स्वांग शीतलहोने परपूर्ववत् हुल-हुल के रस में घोटकर ५ बार कुक्कुट पुट देने से गुलाबी रंग की मुलायम भस्म हो जाती है।

(श्री. पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी, आयुर्वेद भूषण)

मात्रा और गुणधर्म–रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार। यह भस्म श्रेष्ठ रसायन, हृद्य और मस्तिष्क पोषक है। राजयक्ष्मा में तथा वातवाहिनियों की और मांसपेशियों की निर्बलता को नष्टकर पुंसत्व प्रदान करने में उत्तम है।

यह भस्म शुक्रक्षय, अस्थिक्षय, प्रबल ज्वर आदि रोगों की निवृत्ति होने पर रही हुई निर्बलता, पक्षाघात और कम्प आदि वातरोगों से पीड़ित प्रसूता, सगर्भा और वृद्ध। इन सबको शक्ति प्रदान करने के लिए इस विधि से बनी हुई सुवर्ण भस्म विशेष लाभ पहुँचाती है।

५. सुवर्ण राज।

विधि–शुद्ध सुवर्ण के पतरों के छोटे-छोटे टकड़ों को पक्के बीकर या फ्लास्क में डाले हुए अम्लराज (३ भाग नमक का अम्ल और १ भाग शोरे का अम्ल को मिलाने पर अम्लराज बनता है। दोनों प्रकार के तेजाब जल रहित शुद्ध लेना चाहिये) में डालकर ३-४ दिन तक रहने देवें, जिससे सब सोना गल जायेगा और अम्ल की गन्ध दूर हो जायेगी। अम्लराज उतना लें, जितने में सुवर्ण गल जाये। आधिक अम्ल मिलाया जायेगा, तो फिर तपाकर अम्ल को उड़ाने में अधिक समय लगेगा। यदि अम्ल कम मिलाया जायेगा तो सुवर्ण पूरा नहीं घुलेगा। सुवर्ण जो न घुला हो उसे निकाल कर दूसरे पात्र में अम्लराज में मिला लेवें फिर स्पिरिट लेम्प या घासलेट के चूल्हे या कोयले की अंगीठी पर रखी कड़ाही में रेता बिछावें। उस रेत पर कांच के बीकर के भीतर उक्त स्वर्ण मिश्रण रखकर अति मन्द अग्नि देवें। अम्ल का सब अंश उड़ जाने पर चमक रहित पीली राख जैसा सोना देखने में आयेगा, उसे स्वांग शीतल होने देवें।

सामान्यत: १० तोले सुवर्ण को हम ३० औंस अम्लराज में मिलाते हैं। सुवर्ण १॥-२ दिन में गल जाता है, किन्तु हम १ सप्ताह तक उसे रहने देते हैं। फिर बत्ती वाले स्टोव पर उसी बीकर को चढ़ाते हैं। अहोरात्र मन्द अग्नि देकर ३-४ दिन में पचन कराते हैं। अम्ल उड़ जाने पर पहले सुवर्ण का रंग श्याम प्रतीत होता है। फिर ८ से १२ घण्टे अग्नि देने पर रंग पीली मिट्टी समान बन जाता है। उसे स्वांग शीतल होने देते है। फिर उस स्वर्णरज में ऑक्जेलिक एसिड का १०% का (Solution) घोल बहुत धीरे-धीरे डालते रहें। यह जल उतना पिलावें कि वह वर्णहीन (Col-ourless) हो जाये। (ताम्र मिश्रित होगा तो हरा रंग हो जायेगा) वर्णहीन होने पर फिल्टर पेपर से छाने लें। फिर २-३ बार वाष्प जल मिला छानकर ऑक्जेलिक एसिड को बिल्कुल निकाल डालें।

सूचना–(१) सुवर्ण गल जाने पर भी अम्ल में वाष्प (Fumes) उड़ती रहे, तब तक अग्नि पर नहीं चढ़ाना चाहिये। अन्यथा रज मुलायम नहीं बनती।

(२) सुवर्णरज बनाने पर तेज अग्नि देने पर रज जल्दी बन जाती है किन्तु अम्ल के साथ कुछ सुवर्ण भी उड़ जाता है। जिससे वजन कम हो जाता है एवं रज में मोटे कण रह जाते हैं।

(३) अम्ल का क्षार रह जाने पर (रज का श्याम रंग रह जाने पर) अग्नि देना बन्द कर दिया जायेगा तो सुवर्ण रज अम्ल क्षार युक्त हो जायेगी।

(४) कभी-कभी फिल्टर पेपर से वाष्पजल छानने पर कुछ सोना भी नीचे चला जाता है जो जल से पृथक् नहीं होता। ऐसे जल में कुछ फिटकरी डाल कर २-४ घन्टे अग्नि देते हैं। जिससे सुवर्ण वर्क सदृश पृथक् हो जाता है। कभी दूसरी बार फिल्टर पेपर से छानने से ही सुवर्ण ऊपर रह जाता है।

(५) ऑक्जेलिक एसिड डालने के पश्चात् यदि घोल का रंग पीला हो जाये, तो उसमें अम्ल राज रह गया है, ऐसा मानकर पुनः उसे गरमकर उड़ा दें।

(६) ऑक्जेलिक एसिड मिलाने से लोह आदि अंश जो मिश्रित हो, सब नष्ट हो जाता है। किन्तु ऑक्जेलिक विष होने से स्वर्ण चूर्ण **को 2-3 बार वाष्प**जल से अच्छी तरह धोकर निकाल डालना चाहिये।

(७) सुवर्ण चूर्ण में मिश्रित जल दोहरे फिल्टर पेपर से छानने पर जो निकले वह सब इकट्ठा करें। फेंक न देवें। ४-६ दिन पड़ा रहने **पर ऑक्जेलिक** अम्ल के संयोग से पानी में घुला हुआ सोना पृथक् होकर तले में बैठ जाता है। आखिरी दिन हम उसमें थोड़ा फिटकरी का चूर्ण **भी मिलाते हैं**। जिससे कुछ शेष रहा हो तो वह भी तलस्थ हो जाता है।

यह पाउडर **एक** प्रकार की विशुद्ध स्वर्ण भस्म है। इसमें तेजाब का कुछ भी अंश नहीं रहता। इसका प्रयोग वर्क के स्थान पर हम करते **रहते हैं। बाजार** से लाया हुआ वर्क या बनाया हुआ वर्क भी कुछ इतर धातु के मिश्रण वाला होता है।

यदि वर्क बनाने वाले ने गड़बड़ी की हो तो औषधि अति न्यून गुणवाली बन जाती है। वर्क वजन में कुछ कम आ जाता है, तब आर्थिक हानि भी पहुँचती है। इसके अतिरिक्त यह पाउडर वर्क की अपेक्षा रक्त में सत्वर शोषित हो जाता है और पूरा-पूरा लाभ पहुँचाता है। भस्म बनाने में भी हम इस पाउडर को ही उपयोग में लेते हैं।

उपयोग–जो रोगी वर्क का सेवन करते हैं उनको इस पाउडर का सेवन कराना विशेष लाभप्रद है। क्षय रोग की प्रथमावस्था में १ माशा स्वर्ण, २ माशा मुक्ता पिष्टी, ४ माशे प्रवाल पिष्टी, ५ माशे भीमसेनी कपूर, १ तोला गोदन्ती भस्म और ८ तोला सितोपलादि चूर्ण मिलाकर खरल कर लेवें। इसकी १-१ माशे मात्रा देने से १/१५ रत्ती सुवर्ण और १/३ रत्ती कपूर की प्रति मात्रा होती है।

इसकी १ दिन में तीन मात्रा शहद के साथ देते रहने और ऊपर ३-३ माशे सुदर्शन चूर्ण का फाण्ट पिलाते रहने से थोड़े ही दिनों में शुष्क कास और ज्वर सह राजयक्ष्मा दूर हो जाता है। विशेष उपयोग स्वर्णभस्म (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड)में देखें।

६. रौप्य भस्म।

द्रव्य–शुद्ध चांदी के पतरे २० तोले और शुद्ध हरताल ४० तोले।

प्रथम विधि–हरताल को सत्यानाशी के रस में खरलकर चांदी के पतरों पर दोनों ओर लेपकर दें। लेप सूखने पर सम्पुट कर एक सेर कण्डों की अग्नि देवें। फिर निकाल १० तोले हरताल का लेप कर दें। उसे सुखा सम्पुट कर १॥ सेर कण्डों की अग्नि देवें। तीसरी बार ५ तोले हरताल और २ सेर गोबरी लेवें। फिर ४ से १० वें पुट तक मात्र सत्यानाशी के रस में खरल कर टिकिया बनाकर सम्पुट कर अग्नि देवें। चौथे पुट से अग्नि थोड़ी-थोड़ी बढ़ावे। भस्म अच्छी बन जाने पर गुलाब के फूलों के स्वरस में पीस टिकिया बना सुखा, बचे हुये गुलाब के गाढ़े कल्क के भीतर रख, शराव-सम्पुट कर ५ सेर कण्डों की अग्नि दें। ऐसे ३ पुट देने से मुलायम भस्म बन जाती है।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

द्वितीय विधि–शुद्ध चांदी के ५० तोले मोटे कागज जैसे पतरों के २-२ इञ्च के टुकड़े करें। फिर एक परात में कोयलों की अग्नि पर उन टुकड़ों को फैला दें। सब टुकड़े न रख सकें तो थोड़े-थोड़े रखें। अच्छी तरह गरम होने पर चिमटे से एक-एक पतरे को उठा उठा छोटी कटेली के रस में बुझाते जायें। इस तरह सब पतरों को २१ समय गरम करके बुझावें। फिर एक बड़ी हांडी के ऊपर का तीसरा हिस्सा तोड़कर उसे कण्डों (लगभग २॥ सेर) से भर देवें। कण्डों पर कटेली का चूर्ण जो रस निचोड़ने के समय बचा है, उसकी १ इञ्च की तह करें। इस पर चांदी के पतरे फैलावे। ऊपर और कटेली चूर्ण डालें। उस पर और चांदी के टुकड़े रखें। इस तरह सब टुकड़े २-४ तह में रख सबके ऊपर १ इञ्च या अधिक मोटी तह कटेली चूर्ण की रखें। फिर ऊपर लगभग २॥ सेर कण्डे जमाकर अग्नि लगा देवें। स्वांग शीतल होने पर चांदी के पतरों को निकाल लेवें। इस तरह छोटी कटेली के चूर्ण के भीतर रखकर ५ बार अग्नि देने से पतरे सरलता से टूट जाते हैं। पश्चात् पतरों को कूटकर चूर्ण कर लें। उन्हें कटेली के रस में शाम तक खरल कर शराव में भर लेवें। उसका साधारण सम्पुटकर रात्रि को २॥ सेर उपलों की अग्नि में रख देवें। दूसरे दिन पुनः कटेली के रस में घोटें। १० पुट हो जाने पर उपले थोड़े-थोड़े बढ़ाते जायें। २० पुट होने के पश्चात् उपले ५-१० और १५ सेर तक बढ़ावें। इस तरह २८ पुट देवें। अन्तिम पुट के समय छोटी-छोटी टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखा, सम्पुट कर अग्नि देवें। यह भस्म हल्के मैले, लाल रङ्ग की मुलायम बनती है। ५० तोले चांदी की ५६ तोले भस्म बनती है।

(स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)

सूचना–सुवर्ण और रौप्य जब तक कच्चे हों, तब तक ज्यादा तेज अग्नि नहीं देनी चाहिये, अन्यथा पुनः जीवित हो जाते हैं या कठोर बन जाते हैं।

मात्रा और उपयोग–प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

७. लोह भस्म

विधि–शुद्ध लोह चूर्ण आध सेर को एक चीनी मिट्टी के पात्र में भर ऊपर १ सेर तक पक्के तरबूज का रस डालकर किसी एकान्त स्थान में रख दें। पात्र को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जिससे दिन या रात्रि को उठाने की जरूरत न रहे, धूप लगती रहे। लगभग १ मास होने पर पीली मिट्टी के सदृश भस्म बन जायेगी। फिर इसको ३ दिन तक घीकुंवार के रस में खरलकर २-२ तोले की टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखावें, फिर छोटी हांडी में बन्द कर मुखमुद्रा कर गजपुट में फूंक देवे। इस तरह ३ गजपुट देने से लाल रंग की मुलायम भस्म बन जाती है।

वक्तव्य–यदि घीकुंवार के रस में ५-५ तोले सिंगरफ मिलाते रहें तो भस्म विशेष लाभदायक बनती है, किन्तु रंग काला हो जाता है। इसे जामुन की छाल के क्वाथ के ७ पुट देने पर वर्ण नीलाभ हो जाता है। यह भस्म मधुमेही को विशेष लाभ पहुँचाती है।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में दो बार रोगानुसार अनुपान भेद से देवें।

उपयोग–यह भस्म रक्तवर्द्धक और पाण्डुनाशक एवं शोथहर है। कब्ज नहीं करती और क्षुधा को बढ़ाती है। विशेष गुण रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड के भस्म-प्रकरण में लिखे हैं।

लोहभस्म अमृतीकरण–लोहभस्म के समान भाग गोघृत मिला लोहे की कढ़ाही में डाल, चूल्हें पर चढ़ावें। नीचे मन्द अग्नि देवें, फिर कुछ तेज करें। घी जीर्ण हो जाने पर अग्नि देना बंद करें। स्वांग शीतल होने पर कड़ाही को उतार लेवें। इस भस्म की सर्व योगों में योजना करनी चाहिये। इस प्रकार अमृतीकरण करने से गुणों में वृद्धि होती है और यह भस्म वारितर भी होने लगती है।

८. अभ्रक भस्म।

विधि–धान्याभ्रक ४० तोले को पीले फूल वाले भांगरे के रस में रोज १-१ घण्टे घोटकर ७ दिन तक सूर्य-ताप में रखें। फिर गोला

बना सुखाकर, छोटी हांडी में रखें। चारों ओर भांगरे का कल्क डालें। फिर मुँह पर ढक्कन लगा कपड़ मिट्टी कर गजपुट देवें। इस तरह ३ पुट देने से निश्चन्द्र, उत्तम, मुलायम, लाल रंग की भस्म बन जाती है। (यद्यपि भस्म निश्चन्द्र हो जाती है, परन्तु जब तक १०० पुट न दिये जायें तब तक विशेष गुणयुक्त नहीं होती है।)

मात्रा और उपयोग-पहले खण्ड में अभ्रक भस्म प्रकरण में लिखे अनुसार।

अभ्रक सेवन में अपथ्य-अभ्रक भस्म या अभ्रकसत्व भस्म का रसायन रूप से (बल बढ़ाने के लिये) सेवन करने वालों को चाहिये कि सज्जीखार आदि क्षार, अधिक नमक, अम्ल, द्विदल धान्य (चना, मसूर, उड़द, अरहर, मटर, सेम आदि) बेर, ककड़ी, करेला, बैंगन, करीर (कैर) और तैल का त्याग करें। इनके अतिरिक्त अधिक मिर्च, धूम्रपान, शुष्क अन्न, अधिक कब्ज करने वाले पदार्थ, अति परिश्रम, मानसिक चिन्ता और उपवास भी नहीं करने चाहिये। ब्रह्मचर्य का जितना अधिक पालन हो उतना लाभ अधिक पहुँचता है।

९. अभ्रक सत्व भस्म

द्रव्य-धान्याभ्रक ४० तोले, सोहागा, गूगल, घी, शहद, चिरमी ये सब १०-१० तोले लें।

अभ्रक-सत्व-पातन विधि-सबको कूटकर मिला लेवें। फिर मट्ठा, काँजी या इमली का जल १० तोले डालकर छोटी-छोटी टिकिया बनाकर सुखावें। पश्चात् हांडी या वज्रमूषा में डाल कोष्ठिक यन्त्र (भट्टी) में रख कोयले की तेज अग्नि देकर द्रवीभूत करें। उसे तत्काल समीप ही साफ भूमि पर छिटका कर भिन्न-भिन्न फैला दें। उसमें जो सत्व होता है वह ठण्डा होने के बाद छोटे-छोटे गोल कण वाला, चपटे आकार वाला, धातु जैसी कान्तिवाला बन जाता है। शेष काले रंग का कांच जैसा द्रव्य तथा किट्ट भाग अधिक मात्रा में मिलता है, उसे कांच समझकर छोड़ दें।

सत्व संग्रह करने की विधि-एक पक्के लोहे का कड़ा दो मुँह वाला जो बिजली द्वारा चुम्बकत्व प्राप्त किया हुआ हो, उस चुम्बक से किट्ट व काच के भीतर छोटे-छोटे कण, जो पृथक् दीखते हैं अथवा काच को तोड़ने पर भीतर से निकलते हैं, उनको संग्रह कर लेना चाहिये। आवश्यकता हो तो उन संगृहीत छोटे कणों को पुनः मूषा में रख तीव्राग्नि में धमाने और द्रव होने से भूमि पर पूर्ववत् डालने से छोटे कणों की विशेष कान्ति वाली ढाली बन जाती है, यही असली सत्व है। इसमें लोह द्रव्य विशेष प्रकार का होता है, उसे जंग नहीं लगता और हथौड़े की चोट से टूटकर चूर्ण हो जाता है, यही उत्तम सत्व समझा जाता है। इसी का शोधन, मारण करके भस्म बनायी जाती है।

कोष्ठिक यन्त्र-जमीन के ऊपर चबूतरा बना उस पर या बिल्कुल अलग १६ अंगुल ऊँची, एक हाथ लम्बी और एक हाथ चौड़ी कोठी बनवा लें। उसकी दो

दीवारों के भीतर नीचे की ओर धमाने के लिए एक-एक छिद्र रखें। इस यन्त्र के भीतर सत्वपातन योग्य धातुपूर्ण मूषा को रख चारों ओर पत्थर के कोयले से भरकर अग्नि लगा देवें। फिर छिद्र में धोकनी से (मोटर वाले बिजली के २ पंखों से) खूब धमाने से धातु का सत्व काच के साथ द्रव हो जाता है। यद्यपि अनेक ग्रन्थों में नीचे गड्ढा बनाकर सत्व पातन की विधि लिखी है। परन्तु उपरोक्त विधि सुगम और अनुभवसिद्ध है। इसलिये सत्वपातन के लिये यन्त्र के नीचे छिद्र और जमीन में सत्व संग्रह के लिये पात्र रखने की योजना नहीं करनी चाहिये। कारण कि इस क्रिया से बहुत सा सत्व मिट्टी में मिल जाता है।

वज्रमूषा-कुम्हार के घड़े बनाने की चिकनी मिट्टी या बांबी की मिट्टी ३ भाग, सण, गोबरी की राख, घोड़े की लीद, भूसे की राख और सेलखड़ी (या घीया भाटा) १-१ भाग तथा लोहे का कीट आधा भाग लें। सबको मिला खूब कूट पीसकर मूषा (कोष्ठी) तैयार कर लेवें। यह मूषा धातु आदि के सत्व पातन के लिये उपयोगी है। आजकल बाजार में क्रूसीबल (मूषा) हर साइज की तैयार मिलती हैं वे उत्तासह्य (Fireproof) होती है।

४० तोला अभ्रक में से सत्व निकालने में अग्नि और पंखे (या धमन) के अनुरूप १ से ३ घन्टे लग जाते हैं और सत्व २-४ तोले तक निकलता है, शेष काच व किट्ट भाग अलग हो जाते हैं। इन्हें छोड़कर सत्व ग्रहण करें।

भस्म बनाने की विधि-उपर्युक्त सत्व को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर १०वां हिस्सा हिंगुल मिला घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बना, धूप में सुखा, दृढ़ शराव संपुटकर ५ सेर गोबरी की आँच देवे। इस तरह १०० या अधिक पुट देवें। सिंगरफ प्रत्येक पुट में बार-बार मिलाना चाहिये। अन्त में एक या दो पुट अजा-रक्त के दिये जायें, तो क्षय नाशक गुणों की विशेष वृद्धि होती है। जब तक भस्म अच्छी मुलायम न हो, तब तक पुट देना चाहिये। कम पुटवाली भस्म क्वचित् वातनाड़ियों को हानि पहुँचाती है।

उपयोग-अभ्रकसत्व भस्म शीतल, त्रिदोषघ्न और रसायन है। इसमें विशेषतः पुरुषत्व लाने की शक्ति है। इसके सेवन से तरुणावस्था की प्राप्ति होती है और वीर्यस्तम्भन होता है। पुरुषत्व प्राप्ति के लिये इसके समान अन्य औषध नहीं है। इसके सेवन से आयु की भी वृद्धि होती है। इस भस्म में से १-१ रत्ती शहद व पीपल के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा, शोष, कास, प्रमेह, पाण्डु और जीर्ण रोग नष्ट होते हैं।

नोट-यह अभ्रसत्व भस्म, १० सहस्र पुटी अभ्रक के तुल्य प्रभावकारी होती है। (बद्रीनारायण शास्त्री)

१०. सत्वप्रधान अभ्रक भस्म।

द्रव्य–एक सेर धान्याभ्रक और आध सेर चौकिया सोहागा।

विधि–दोनों को मिलाकर वज्रमूषा या ३ कपड़मिट्टी की हुई हाँडी में भर दें। हांडी के तल भाग में सत्व गिरने के लिए एक छिद्र करें। हांडी पर शराव ढक मुद्रा करें। फिर कषायकरी भट्टी में पत्थर के कोयले भर नीचे से लकड़ी की आँच दें। कोयले जलने लगे, तब लोह शलाका से कुछ कोयलों को हटा बीच में हाँडी रखने योग्य स्थान बनाकर हाँडी को रखें एवं हांडी को ऊपर से भी कोयलों से ढक दें। भट्टी के नीचे से सब अग्नि को निकाल, भट्टी के भीतर हांडी के ठीक नीचे एक लोहे का तसला रख देवें। एक घन्टे के बाद हाँडी में से अभ्रक का सत्व बह-बहकर तसले में गिर जायेगा। इस सत्व के भीतर अभ्रक का अंश भी मिला रहता है, किन्तु वह भी चन्द्रिका रहित होता है। इसका वर्ण काले काच के समान काला होता है। इस सत्व को कूट कपड़छान चूर्णकर आक के दूध में ३ दिन तक खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बना, धूप में सुखा संपुट कर गजपुट में फूंक देने से एक ही पुट में उत्तम भस्म बन जाती है। अनेक चिकित्सक १०० पुटी अभ्रक भस्म के स्थान पर इसे देते रहते हैं।

वक्तव्य–इस भस्म को पुनः एक-एक दिन आक के दूध में खरलकर ३ या ७ गजपुट दिये जाये, तो यह अधिक निर्भय और गुणदायक बन जाती है।

अभ्रक भस्म का अमृतीकरण।

विधि–त्रिफला क्वाथ १६ भाग, गोघृत ६ भाग और अभ्रक भस्म १० भाग तीनों को लोहे की कड़ाही में डाल मन्दाग्नि से पचन करें। या इसी तरह केवल गोघृत समान परिमाण में मिला, मन्दाग्नि पर शुष्क कर लेने से भी अमृतीकरण होता है।

वक्तव्य–अमृतीकरण करने पर भस्म की सुन्दरता नष्ट हो जाती है, किन्तु गुणों में वृद्धि हो जाती है और वह जरा, मृत्यु और रोगों के समूहों को शीघ्र दूर करती है तथा बल्य एवं रसायन है।

११. सत्वाभ्र रसायन।

प्रथम विधि–अभ्रक सत्व को कूट बारीक चूर्णकर समान भाग घी मिला कर लोहे की कड़ाही में भूनें। कड़ाही अति लाल हो जाने पर लोहे की खरल में डालकर घोटें। पुनः घी मिलाकर भूनें। लाल हो जाने पर लोह-खरल में घोटें, इस तरह सात बार करें। फिर ८ वां हिस्सा गन्धक मिला बड़ की जटा के क्वाथ में खरलकर टिकिया बना, सुखा, शराव-सम्पुट कर गजपुट दें। इस तरह बड़ की जटा के क्वाथ के ५० गजपुट दें। (वट दुग्ध के पुट देवें तो विशेष बलवान् होता है) फिर त्रिफला क्वाथ के ५० गजपुट दें। प्रत्येक बार गन्धक मिलाकर गजपुट देते रहें। इस तरह १०० पुट देने पर उत्तम सत्वाभ्र रसायन तैयार होता है। (र.र.स.)

द्वितीय विधि–अभ्रक सत्व को मूषा में रखकर कोयलों की तीव्राग्नि पर तपावें और लाल हो जाने पर कांजी में बुझावें। फिर हमामदस्ते में खूब कूट लोहे की खरल में घोटें। जो कण बड़े रह गये हों, उनको मूषा में डालकर तपावें। फिर उन्हें काँजी में बुझाकर कूटें। पश्चात् लोह खरल में घोटकर बारीक चूर्ण करें। इस चूर्ण के साथ समभाग घी मिलाकर लोहे की कड़ाही में भूनें कड़ाही खूब लाल हो जाने पर नीचे उतार लोह खरल में डालकर घोटें। शीतल हो जाने पर पुनः समभाग घी मिलाकर कड़ाही में भूने। पुनः लोह खरल में घोटें। इस तरह तीन बार करने से मुलायम चूर्ण हो जायेगा। पश्चात् आंवलों का स्वरस और आंवलों के पत्तों का स्वरस मिला-मिलाकर ३-३ बार तपावें। बार-बार लाल हो जाने पर लोह-खरल में घोटें। फिर पुनर्नवा का रस, वासापत्र का स्वरस और कांजी, इन तीनों के मिलाये हुए द्रव के साथ खरलकर टिकिया बना सम्पुट कर १० वराह पुट दें। फिर समभाग गन्धक मिला, घीकुंवार के रस में खरलकर, १० वराह पुट देने से दिव्य सत्वाभ्र रसायन बन जाता है। (र.र.स.)

मात्रा–१/४ से १/२ रत्ती तक, दिन में २ बार, त्रिकुट, वायविडंग और घी अथवा शहद, पीपल या अन्य रोगानुसार अनुपात के साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन अति गुणदायक, वात शामक, मस्तिष्क-पोषक, पाचक और अग्निप्रदीपक है। इसके सेवन से क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, आमवात, कुष्ठ, ऊर्ध्वश्वास, प्रमेह, प्रदर, अरुचि, दारूण कास, अग्निमांद्य, उदररोग और अन्य बढ़े हुए रोगों को भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ सेवन करने से वे नष्ट होते है।

रसायन गुण की प्राप्ति के लिये सहस्रपुटी अभ्रकभस्म की अपेक्षा यह सत्वाभ्ररसायन अत्यधिक लाभ पहुँचाता है। यदि लक्ष्मीविलास रस में अभ्रक भस्म के स्थान पर इस रसायन को मिलाया जाये तो वह शुक्रवृद्धि, शुक्रस्तम्भन और रोगनाशक आदि गुण विशेष दर्शाता है। इसी तरह अभ्रक भस्म-प्रधान इतर औषधियाँ भी इस रसायन के मिलाने से अत्यधिक गुणदायक बन जाती है।

१२. वङ्ग भस्म।

प्रथम विधि–पाटकी अशुद्ध कलई (वङ्ग) २॥ सेर को लोहे की कड़ाही में डाल चूल्हें पर चढ़ाकर तीव्र अग्नि देवें। कलई की द्रुति गति होने पर १ इञ्च मोटी बड़ की जटा का डंडा लेकर उससे कलई घोटते रहें तथा कड़वे सुहिंजने के पत्ते डालते जायें। १ सेर पत्ते

डालने पर भस्म बन जाती है। फिर एक सेर आंवलों को १६ सेर जल में मिला चतुर्थांश क्वाथकर उस क्वाथ का इस भस्म में पचन करें। फिर ४ सेर गोमूत्र तथा १ सेर तिल-तैल का पचन करावें जिससे कलई के प्रत्येक परमाणु में स्थित दोष जल जायेगा और भस्म निर्दोष बनेगी। फिर भस्म के वजन के दूने वजन से मेंहदी के ताजे पत्ते कूटें। उसके साथ भस्म मिला, टाट के टुकड़े पर दो अंगुल मोटी तह फलावें। पश्चात दढ़तापूर्वक लपेटकर गोल गट्ठा बनावें और ऊपर नारियल की डोरी कसकर बाँध दें। फिर गट्ठे को निर्वात स्थान में मिट्टी के बरतन के भीतर ३ कंडों के ऊपर रखें। पश्चात् ऊपर ५-७ गोबरी रखकर अग्नि दे देने से सफेद पुष्पवत् वङ्ग भस्म की खील बन जाती है। इस भस्म को पुनः दूसरी बार मेहन्दी के पत्तों के साथ मिलाकरअग्नि देने से अति गुणवान वङ्ग भस्म बनती है। (आ.नि. मा.)

मात्रा और गुणधर्म–रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

द्वितीय विधि–१ सेर शुद्ध कलई (वङ्ग) को मोटे-पैदें की लोहे की कड़ाही में डाल कर द्रव करें। उसमें थोड़ा-थोड़ा पोस्तडोडे का चूर्ण डालते जायें और बबूल के ताजे डंडे से चलाते रहें। ४ सेर पोस्त डोडे का चूर्ण समाप्त होने पर लगभग १२ घन्टों में भस्म बन जाती है। फिर भस्म को कड़ाही में इकट्ठीकर ऊपर तवा ढक दें और ६ घन्टे तक तेज अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को कपड़े से छान, घीकुंवार के रस में २ दिन खरलकर १-१ तोले की टिकिया बनाकर धूप में सुखावें। फिर निर्वात स्थान में एक परात के भीतर २॥ सेर कण्डों के टुकड़े रख ऊपर बिनौले की आध इञ्च मोटी तह जमा, उस पर अलग-अलग टिकिया रखें। पुनः बिनौले की आध इञ्च मोटी तह जमा कर टिकिया रखें आवश्यकता के अनुसार ३ तहें कर सकते हैं। फिर ऊपर १ इञ्च बिनौले की तह जमाकर ऊपर चारों ओर उपलों के टुकड़े ५ सेर रखकर अग्नि लगा देवें। तीसरे दिन स्वांग शीतल होने पर सावधानी से राख को हटा, टिकियाओं को निकाल लेवें पुनः घींकुवांर के रस में १२ घन्टे खरलकर टिकिया बना, सुखा एक हांडी में बन्दकर ५ सेर कण्डों की अग्नि देवें। इस प्रकार से ७ पुट देने पर सफेद, मुलायम और निरुत्थ भस्म हो जाती है। (स्व. वैद्यराज पं. हरिप्रपन्नजी)

मात्रा-गुणधर्म और उपयोग–रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

सूचना–जितनी भस्म कच्ची रह गई हो उसे पुनः पुट लगावें।

१३. यशद भस्म

प्रथम विधि–आध सेर शुद्ध यशद को लोहे की कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ावे। नीचे तीव्र अग्नि देवें द्रव होने पर फलाश की मूल के ताजे डंडे या केतकी के मूल के डंडे से घोटते रहने से भस्म बन जाती है। फिर कड़ाही को नीचे उतार, गरम-गरम भस्म के बीच में गड्ढाकर १० तोले शुद्ध पारद डाल, उस पर जसद भस्म डालकर गड्ढे को ढक दें। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर अति मन्द अग्नि ३ घन्टे तक देवें। जिससे पारद उड़ जायेगा और जसद भस्म हरी-पीली सी बन जायेगी। फिर इस भस्म को खरल में डाल घी कुंवार के रस में खरलकर २-२ तोले की टिकिया बनाशरावसंपुट कर गजपुट में फूंक देवें। यह भस्म फूलती है। इसलिए नीचे के आधे संपुट में ही टिकिया रखनी चाहिये। गजपुट शीतल हो जाने पर सम्पुट को निकाल पुनः भस्म को घीकुंवार कापुट देवें। इस तरह २० गजपुट देने से भस्म अति मुलायम हल्के वजन वाली और कुछ रक्तवर्णयुक्त पीले रंग की बन जाती है। (आ.नि.मा.)

सूचना–यदि भस्म में १०-१० तोले शुद्ध पारद, गन्धक की कज्जली मिला, कुमारी रस में १२ घन्टे खरलकर २-२ तोले की टिकिया बना, सुखाकर सम्पुट करें फिर गजपुट दें, भस्म करें तो अति उत्तम भस्म बनेगी।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में दो बार शहद, मक्खन-मिश्री, सितोपलादि चूर्ण या रोगानुसार अनुपान के साथ देते रहें।

उपयोग–यह भस्म जीर्णज्वर, क्षय, कास, अन्त्रप्रदाह, नेत्ररोग-प्रदाह आदि में हितकारक है। उरःक्षत और श्वासनलिकाप्रदाहज कास रोग में जब अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त कफ निकलता हो, तब जसद भस्म और सुवर्णमाक्षिक भस्म १-१ रत्ती मिलाकर दिन में ३ समय ४ तोले गरम जल में मिलाकर पिलाते रहने से ३-४ मास में रोग का दमन हो जाता है। नेत्र की लाली, अश्रुस्राव, दाह, दृष्टि की निर्बलता आदि रोगों पर धोये घृत में २ प्रतिशत का मलहम बनाकर अंजन कराने तथा मक्खन मिश्री के साथ सेवन कराने पर लाभ हो जाता है।

उरःक्षत में कफ रक्त मिश्रित आता हो तो यह भस्म दिन में ३ बार अमृता सत्व, मिश्री और घृत के साथ देने से दो चार दिन में ही रुधिर निकलना बन्द हो जाता है।

वक्तव्य–विशेष गुण विवेचन रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में किया गया है। यदि स्वर्णमालिनी वसंत में खर्पर के अभाव में अन्य द्रव्य की अपेक्षा यह यशद भस्म डाली जाये तो उक्त रस अधिक प्रभावशाली बनता है।

द्वितीय विधि–शुद्ध यशद १ सेर को लोहे की कड़ाही में डाल अग्नि पर चढ़ाकर द्रव करें। फिर पोस्तडोडों का चूर्ण और भांग (दोनों का मिश्रण) थोड़ी-थोड़ी मात्रा में डालते जायें और नीम के डण्डे से चलाते रहें। ४ सेर चूर्ण डालने पर यशद की भस्म हो जायेगी। उसे तवे से ढककर ६ घन्टे तक तेज अग्नि देवें। फिर स्वांग शीतल होने पर कपड़े से छान घीकुंवार के रस में १२ घन्टे खरलकर टिकिया बना-बनाकर १० गजपुट देने से रक्ताभ पीत-वर्ण की मुलायम भस्म बन जाती है।

गुणधर्म–यह भस्म शीतल, रोपण और कसैली है। इसका विशेष उपयोग पित्त प्रमेह, राजयक्ष्मा और अन्त्र विकार पर होता है।

तृतीय विधि–शुद्ध यशद १ सेर को लोहे की कड़ाही में डालकर अग्नि पर चढ़ाकर द्रव करें तथा कलमीशोरा और पीपल वृक्ष की छाल का जौकूट चूर्ण १-१ सेर लें। द्रव होने पर दोनों को एक-एक मुट्ठी डालते जायें और बड़ के डण्डे से चलाते रहें। जब जसद बिल्कुल धूलि जैसा हो जाये, तब चलाना बन्द करें। फिर भस्म को तवे से ढक कर ६ घन्टे तक तेज अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को जल में मिलाकर रख दें। जब जल साफ नितर जाये, तब ऊपर से निकाल दें। फिर नया जल मिलावें और नितरे हुए जल को निकाल डालें। इस तरह ५-६ समय जल मिलाकर निकाल देवें। पश्चात् नयी हांडी में भर कर धूप में रख देवें। भस्म सूखने पर घी कुंवार के रस में १२ घन्टे खरल कर टिकिया बनाकर गजपुट दें। इस तरह १० पुट देने से पीले रंग की मुलायम भस्म बन जाती है।

सूचना–बड़ का डण्डा ३ हाथ लम्बा रखें। कारण, कलमीशोरा डालने पर आग की लपट उठती है जिससे हाथ जल जाने का भय रहता है। उस समय बराबर चलाते रहने पर भस्म पीली बनती है, नहीं तो काली बन कर फिर सफेद हो जाती है।

गुणधर्म–यह भस्म विशेष शीतल है। मूत्रसंस्थान के रोगों पर विशेष हितावह है। शेष गुणधर्म रसतन्त्रसार (प्रथम खण्ड) में लिखी हुई यशद भस्म के अनुसार। (स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)

१४. नाग भस्म

प्रथम विधि–२ सेर शुद्ध सीसे को कड़ाही में डाल तीक्ष्ण अग्नि पर रख, बड़ या पलाश के डण्डे से घोटकर भस्म करें फिर छान घीकुंवार के रस में खरल कर २-२ तोले की टिकिया बनाकर २-२॥ सेर कण्डों की अग्नि में फूंक देवें। यह सीसा ४० पुट तक सजीव हो जाता है। इसे स्वांग शीतल होने पर खोलकर निकाल लेवें ओर बार-बार पुट देते रहें। ४० पुट हो जाने के पश्चात् कण्डों की मात्रा बढ़ावें। अन्त में १० गजपुट देवें। इस तरह १०० पुट देने पर मुलायम, उत्तम भस्म बन जाती है।

मात्रा–आधा से १ रत्ती, दिन में २ बार, मक्खन के साथ १० दिन तक देवें। फिर १० दिन बन्द करें। पुनः १० दिन देवें।

उपयोग–यह भस्म उत्तम रसायनरूप है। शास्त्रीय फल श्रुति 'नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति' की सार्थकता इस भस्म में प्रतीत होती है। मधुमेह के रोगी के लिए यह भस्म आर्शीवाद के समान है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था, दीर्घकाल पर्यन्त रोग रह जाने से प्राप्त शारीरिक निर्बलता, क्षय, उरःक्षत, शुक्र की निर्बलता, स्मृतिह्रास, अकाल में वलीपलित की प्राप्ति, नपुंसकता आदि को यह भस्म दूर करती है। विशेष गुणविवेचन रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह (प्रथम खण्ड) में है।

द्वितीय विधि–२ सेर शुद्ध सीसे को मिट्टी के पात्र में डाल चूल्हें पर चढ़ा तीव्राग्नि देवें और आक के मूल के डण्डे से चलाते रहें। यह सिन्दूर सदृश्य लाल भस्म होती है। उसे छान घीकुंवार के रस में खरल कर १-१ सेर के पेड़े बना, सुखा मिट्टी के शराव में रख, मुँह पर कपड़ मिट्टी करें। फिर बाटी की तरह सेंके। इस तरह ५६ पुट देने पर मुलागम लाल भस्म बन जाती है। (स्व. पं. सुखरामदासजी)

तृतीय विधि–१ सेर शुद्ध सीसे को लोहे की कड़ाही में डाल अग्निपर द्रव करें। उसमें इमली और पीपल वृक्ष की छाल का जौकूट चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और लोहे की कड़छी से चलाते रहें। लगभग ४ सेर चूर्ण डालने पर सीसे की लाल रंग की भस्म हो जाती है। पश्चात् भस्म को तवे से ढक दे और तीन घन्टे तक अग्नि देते रहें। स्वांग शीतल होने पर कपड़े से छान लेवें फिर १२ वां हिस्सा मैनसिल मिला अड़ूसे के पत्तों के स्वरस में ६ घन्टे तक खरलकर छोटी-छोटी टिकिया बना, सम्पुट में बन्द कर २ सेर कण्डों की अग्नि देवें। इस तरह ३० पुट देवें। दस पुट तक मैनसिल मिलावें। १० पुटों के पश्चात् अग्नि थोड़ी-थोड़ी बढ़ाते जायें। यह हल्के लाल रंग की मुलायम भस्म बनती है।

गुणधर्म–यह भस्म मधुमेह, शुक्रस्राव, श्वेत प्रदर और उरःक्षत में विशेष व्यवहृत होती है।

चतुर्थ विधि–अगस्तिया (अगस्त्य) के २ सेर पत्तों को कल्ककर आध सेर शुद्ध सीसे के पतरे पर लेप करके सुखावें। फिर कड़ाही में डालकर तीव्राग्नि देवें। द्रव होने पर बासा क्षार और अपामार्ग क्षार ५-५ तोले अलग बर्तन में मिला, उसमें थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और अड़ूसे के डन्डे से चलाते रहें। ३-४ घन्टों तक घोटने पर सीसे की भस्म हो जाती है। फिर उस पर तवा ढककर ३ घन्टे और तेज अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल, कपड़छन करें। फिर अड़ूसे के स्वरस में ३ दिन खरलकर टिकिया बना, सूर्य के ताप में सुखा, शराव सम्पुट कर, २ सेर गोबरी का लघुपुट दें। फिर अड़ूसे के स्वरस में १-१ दिन खरल कर टिकिया बना ७ पुट (यथार्थ में २१ पुट) देने से सिन्दूर के समान लाल रंग की भस्म बन जाती हैं। अंतिम समय में पूरा गज पुट देना चाहिये। (र.सा.सं.)

गुधधर्म–यह भस्म शक्रमेह, मधुमेह, श्वेत प्रदर, कास, श्वास, उरःक्षत, शूल और गुल्म आदि रोगों में हितावह है।

वक्तव्य–नाग भस्म का गुणधर्म-विवेचन रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह (प्रथम खण्ड) में आयुर्वेदिक दृष्टि से विस्तार पूर्वक दिया है। इसके अतिरिक्त सीसा धातु के गुणधर्म आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से यहाँ पर दिये गये हैं। जिसे जान लेने पर उसका कभी दुरुपयोग न हो सकेगा।

सीसा अति घातक धातु है। इसकी भस्म अर्ध पक्व होने या योग्य न बनने पर विविध प्रकार के विष लक्षण उत्पन्न करती है। परिपक्व भस्म का भी अति योग होने पर या दुरुपयोग होने पर कुछ अंश में अहितकर सिद्ध हुई है। अतः सीसा, मुर्दासङ्ग (Lead Oxide), नाग-शर्करा (Lead Acitate) अदि के सम्बन्ध में पाश्चात्य मतानुसार गुणधर्म का विवेचन किया जाता है। अधिक पुट देने पर भस्म बिल्कुल

निर्दोष और उत्तम गुणप्रद बन जाती है। अतः कम पुट वाली भस्म में से दोष पूर्णांश में दूर नहीं हो सकेगा।

सीसा धातु उदर में जाने पर प्रारम्भ में कुछ भी क्रिया नहीं दर्शाता, तथापि आमाशय और अन्त्र के विविध रसों के साथ रासायनिक संमिश्रण होने पर द्रुत होकर इसका शोषण हो जाता है फिर ग्राही गुण दर्शाता है।

सीसा धातु की क्रियायें द्विविध हैं। पहलीस्थानिक संकोचन और अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर उग्रता उत्पादन। दूसरी शोषण होने पर व्यापक क्रिया। दोनों कियायें परस्पर विरुद्ध है। कारण स्थानिक उग्रता इतनी उपस्थित होती है कि उस स्थान की शोषण-शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए व्यापक क्रिया प्रकाशनार्थ नागभस्म या नाग घटित औषध का प्रयोग करना हो, तो मात्रा बहुत कम देनी चाहिये जिससे स्थानिक उग्रता उत्पन्न न हो।

सीसाघटित औषध की व्यापक क्रिया संकोचक और अवसादक होती है। यह अवसादक क्रिया रक्त संचालन यन्त्र में और विशेषत: वात संस्थान में प्रकट होती है। एक ही समय में अत्यधिक मात्रा में कच्चा सीसा सेवन करने पर वमन और उग्र विष-क्रिया के लक्षण उपस्थित होते हैं। आमाशय और अन्त्र में इसकी रासायनिक क्रिया प्रकट होती है अर्थात् इसके द्वारा आमाशय और अन्त्र रस के निःसारण का ह्रास होता है। शेष सब रक्तप्रणालियां आकुंचित होती है। अन्त्र की पु:सरण क्रिया प्रतिरुद्ध होती है फिर सीसा और अन्त्र-रस का समिश्रण होने पर इसका परिवर्तन एल्व्युमिन मिश्रण (Albuminate) के रूप में हो जाता है। उसका रक्त में शोषण होकर देह के विविध विभागों में प्रधानत: वात- संस्थान के केन्द्र विभाग में जाकर संग्रहीत होता है। फिर वह देह से शनैः शनैः बाहर निकलता है। यदि कच्चा सीसा अल्प मात्रा में दीर्घकाल तक सेवन कराया जाये, तो भी उसका भीतर संग्रह होने पर विषक्रिया दर्शाता है।

सूचना-सीसा सेवन होने पर वृक्कों द्वारा रक्त में से क्षार (यूरेट्स) का प्रभेद नहीं होता। इस हेतु से सीसे के सेवन से पेशाब में यूरिक एसिड की मात्रा कम होती है और रक्त में बढ़ जाती है। परिणाम में उग्र वातरक्त के लक्षण प्रकट होते हैं। अत: सीसे का सेवन दीर्घकाल पर्यन्त नहीं करना चाहिए एवं वृक्क रोग पीड़ितों को भी नहीं कराना चाहिये। (एलोपैथिक मत के अनुसार वृद्धों को सीसा सेवन कम से कम करना चाहिये)।

स्वस्थावस्था में डॉक्टरी सीसा घटित औषध का सेवन अल्प मात्रा में कुछ दिनों तक करने पर स्रावण क्रिया का ह्रास, धमनी की पुष्टि और गति में लघुता तथा शारीरिक उष्णता का ह्रास होत है। अतियोग होने पर विष क्रिया उपस्थित होती है। जब अवयव शिथिल हुए हों, धमनी की दीवार प्रसारित हो गई हो, विविध अवयवों का प्रकोप होकर स्राव बढ़ गया हो, तब सीसा प्रयुक्त होता है।

विवेचन-सीसा धातु का देह में प्रवेश होने के अनेक मार्ग हैं। टाइप फाउण्डरी के कार्यकर्त्ता, कम्पोजीटर, लाल रंग का काम करने वाले तथा चित्रकार आदि जिनके व्यवहार में सीसा धातु आती हैं, ये सब प्रायः इस धातु के द्वारा विषाक्त होते हैं। सीसे को गलाने पर जो धुवाँ उत्पन्न होता है, वह फुफ्फुसों में जाने पर विषोत्पत्ति करता है। सीसा धातु सूक्ष्म रजरूप से वायु के साथ मिलकर फुफ्फुसों के भीतर पहुँचकर विषप्रभाव दर्शाता है। इस तरह सीसे के पात्र में भोजन या पान करने पर भी वह देह में प्रवेश कर जाता है। सीसे के प्याले में सुरापान करने वाले और सीसे के नलों से प्राप्त पानी का निरन्तर सेवन करने वाले अधिक विषाक्त हुए हैं। अतः सीसा धातु के पात्र में भोजन और पान निषिद्ध है एवं फूटे हुए कांसी आदि के पात्रों को सीसे द्वारा नहीं जोड़ना चाहिये।

उपर्युक्त रास्तों से सीसा देह में प्रवेश करता है, किन्तु त्वचा द्वारा इसका शोषण न होने से उस मार्ग से प्रवेश नहीं करता। तथापि फैले हुए गम्भीर क्षत पर सीसा (मुर्दासङ्ग) घटित औषध प्रयोग करने पर विषाक्त होने की संभावना है। सीसा धातु मूत्र, पित्त, दूध, प्रस्वेद और प्रधानत: मल द्वारा अत्यन्त धीरे-धीरे देह से निर्गत होता है।

एक साथ अधिक मात्रा लेने से और कच्चे सीसे द्वारा विषाक्त होने पर आमाशय और अन्त्र में प्रदाह होकर अति तृषा, कण्ठ में शुष्कता, आमाशय में दाह, वेदना, वमन, उदरशूल, कोष्ठकाठिन्य, यकृद् रोग, मल का रंग काला हो जाना, देह शीतल और स्वेदपूर्ण बन जाना, पैरों में झनझनाहट और शून्यता, आक्षेप, कम्पन और शक्तिपात आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि मात्रा कम किन्तु दीर्घकाल तक सेवन करने पर विष संगृहीत हुआ हो, तो पहले मुँह, तालु और नासारन्ध्र में शुष्कता, मुखपाक, पेशाब का ह्रास, मलावरोध, पित्त और अन्त्र के रस निःसरण में न्यूनता, मल में वर्णवैलक्षण्य, आमाशय और अन्त्र में वेदना, क्षुधामान्द्य, उबाक और वमन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। मसूडों के अग्रभाग, ओष्ठ और मसूढ़ों में गाल के भीतर नीलापन, जिह्वा पर सर्वदा मधुर, कषाय स्वाद, निःश्वास में दुर्गन्ध, मुखमण्डल पर उदासीनता, चक्षुका मलिन वर्ण, धमनियों में रक्ताभिसरण की मन्द गति और संकोच तथा मानसिक व्यथा आदि भासते हैं। रोगवृद्धि होने पर प्रायः नाभि के समीप उदर में तीक्ष्ण शूल, पक्षाघात और विविध उत्कट मस्तिष्क व्याधि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। स्त्री रुग्णा हो, तो गर्भाशय प्रभावित हो जाने से रक्तप्रदर हो जाता है तथा सगर्भा हो, तो गर्भपात हो जाता है।

१५. कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म।

द्रव्य-झिल्ली रहित शुद्ध किये हुए अण्डों के छिलके १ सेर।

विधि-१ घड़े में भर गजपुट की अग्नि देवें। इस तरह दो बार अग्नि देवें। फिर छिलकों की भस्म से आठवां हिस्सा सिंगरफ मिला,

नींबू के रस में १२ घण्टे खरल कर २-२ तोले की टिकिया बनावें। फिर ४ संपुट बना ५-५ सेर गोबरी की अग्नि देवें। इस तरह ३ पुट देने से मुलायम हल्के वजन की सफेद भस्म तैयार होती है।

(स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)

गुणधर्म और उपयोग-रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

१६. तुत्थ खर्पर भस्म।

द्रव्य-जसद का फूला अथवा भस्म ९८ तोले और नीला थोथा २ तोले।

विधि-दोनों को मिला आंवलों के स्वरस में खरलकर गोला बनावें। फिर शराव सम्पुट कर अग्नि में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर पुनः २ तोले नीलाथोथा मिलाकर उपरोक्त विधि से खरलकर दो सेर गोबरी में फूंक देवें। इस तरह ९ पुट देवें। दसवीं बार बिना तूतिया मिलाये आँवलों के स्वरस में ३ दिन तक घोट २-२ तोले की टिकिया बनाकर पूरा गजपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पीस लें।

वक्तव्य-(१) इस भस्म को १ वर्ष से पूर्व व्यवहार करने से वांति, भ्रम, उन्माद आदि उपद्रव होते हैं। अतः भस्म को चीनी या मृत्तिका पात्र में डाल पृथ्वी में १ हाथ गहरे गड्ढे में ऐसे स्थान पर गाड़े, जो सदा सूर्य, चन्द्र की रश्मियों से प्रभावित रहता हो। ४० दिन पीछे निकाल शीशी में भरके रख लें। फिर १ वर्ष पूरा हो जाने पर प्रयोग में लेवें। प्राचीन शास्त्रोक्त खर्पर के अभाव में नेत्रांजन में इसका प्रयोग अत्यन्त गुणकारी है, इस प्रयोग को यशद भस्म के स्थान पर स्वर्णमालिनी वसंत के प्रयोग में मिलाने पर वह चमत्कारी प्रभाव करता है। इसके अतिरिक्त यह भस्म कठिन और दुःसाध्य व्रण रोगों में खाने और लगाने के लिये भी अति हितावह सिद्ध हुई है।

(२) खनिज द्रव्य विशेष, कारवेल्लक और केलेमेना प्रेप्रेटा को भी सच्चे खर्पर के अभाव में सुवर्णमालिनी वसन्त आदि रसों में प्रयुक्त कर सकते हैं। वे भी जीर्ण ज्वर, जीर्ण अतिसार और संग्रहणी के नाशक होने से युक्ति संशोधक हैं।

(१७) शुक्ति पिष्टी।

विधि-मोती की सीपों के भीतर से सरलता से निकल सके उतने तेजस्वी भाग को निकाल मट्ठे या ८ गुने जल मिले हुये नींबू के रस में डाल मंदाग्नि पर १ घण्टा उबालें फिर जल से धोकर सुखा लेवें। उसे हमामदस्ते में कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् चीनी मिट्टी के खरल में चन्दनादि अर्क मिला-मिला कर ७ दिन खरल करने पर जलान्तर पिष्टी बन जाती है।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा-२ से ४ रत्ती, मक्खन मिश्री, शहद या दूध के साथ देवें।

गुणधर्म-शुक्ति पिष्टी, मुक्ता पिष्टी की प्रतिनिधि है। इसमें भी शीतल, शामक, अम्लतानाशक और उदरवातहर गुण हैं। इसका उपयोग मुक्ता पिष्टी के समान होता है। ऐसा आचार्य जी का मत है। विशेषगुणधर्म रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में दिया है।

चन्दनादि अर्क-चन्दन चूर्ण, मौसमी, गुलाब के फूल, केवड़े के फूल और कमल पुष्प का ८ गुने जल में मिलाकर आधा अर्क खींच लें।

१८. प्रवाल भस्म।

प्रथम विधि-प्रवाल शाखा २० तोले को १ सेर गोमूत्र में डालकर मन्दाग्नि पर उबालें। गोमूत्र चतुर्थांश शेष रहने पर हांडी को नीचे उतार लेवें। शीतल होने पर प्रवाल को जल से धो नींबू के रस में ३ दिन तक डुबो देवें। चौथे दिन प्रवाल को जल से धो लेने पर ऊपर से सफेद हो जाती है। पश्चात् उसे शराव सम्पुट में बन्द कर लघु पुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल घी-कुँवार के रस में १२ घण्टे खरलकर २-२ तोले की टिकिया बनाकर सूर्य के तेज ताप में सुखावें। फिर शराव सम्पुट का गजपुट में फूंक देने से मुलायम श्वेत भस्म बन जाती है। इस भस्म को जिह्वा पर डालने से खारापन नहीं जाना जाता, जिह्वा भी नहीं फटती।

(श्री पं. हरिनारायणजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा-१ से ४ रत्ती दिन में २ से ३ बार रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह भस्म ज्वरों में दोष पाचन के लिये अति हितावह है। कब्ज हो, तो उसे भी दूर करती है।

विशेष गुण रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड में प्रवाल भस्म पहली और तीसरी विधि के साथ दिये हैं।

द्वितीय विधि-४० तोले प्रवालशाखा को कूटकर चूर्ण करें फिर बोतल में डाल, ऊपर नींबू का रस भरे। नींबू का रस प्रवाल के ऊपर ३-४ अंगुल रहना चाहिये। बोतल को धूप में रखें और दिन में ३-४ बार चलाते रहें। नींबू का रस कम होने पर और मिलाते रहें। अन्त में रस को सुखाकर प्रवाल को खरल में घोट लें। इस तरह से लगभग २१ दिन में मुलायम सूर्यपुटी प्रवाल भस्म बन जाती है।

गुणधर्म-ऊपर की विधि के अनुसार।

१९. शंख भस्म।

विधि–१ सेर शुद्ध शंख के टुकड़ों को अग्नि में तपा तपाकर नींबू के रस में २१ बार बुझावें। जिससे टुकड़े स्थान-स्थान पर फटे से हो जाते हैं। इस टुकड़ों को १ हँडी में भर मुखमुद्रा कर गजपुट देने से मुलायम सफेद भस्म बन जाती है।

मात्रा, गुण और उपयोग–रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह (प्रथम खण्ड) के अनुसार है। यह भस्म उदर शूल और अपचन जनित दस्तों पर तत्काल गुण दर्शाती है।

२०. स्फटिका शतमल्ल भस्म।

द्रव्य–लाल फिटकरी १६ तोले और सफेद सोमल १॥ तोला।

विधि–समान नाप वाले किनारी घिसे हुए दो बड़े शराव लें। शराव में फिटकरी का आधा चूर्ण डालें। उसमें खड्डा कर सोमल का चूर्ण रख, ऊपर शेष फिटकरी का चूर्ण डालें और अंगुली से इस तरह दबा देवें कि ऊपर से फिटकरी नीचे गिरकर सोमल न दीखे। फिर मुखमुद्रा कर १॥ सेर कण्डों की अग्नि देकर फूला (भस्म) बना लेवें। स्वांग शीतल होने पर सम्पुट को खोल फूले को पीस लेवें। इस भस्म में से संखिये का अल्प अंश उड़ जाता है।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में दो बार शहद, मिश्री या नागरबेल के पान के साथ।

उपयोग–इस भस्म का उपयोग नूतन कफ ज्वर, शीतप्रधान ज्वर, एकाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक आदि विषमज्वर तथा पूयजन्य ज्वरों में होता है। मलेरिया में ज्वर बढ़ने के ४ घण्टे पहले १ बार दें। फिर २ घण्टे पहले दूसरी बार देने से ज्वर रुक जाता है। जीर्ण विषमज्वरों में दिन में दो बार ४-६ दिन तक देते रहने से ज्वर निवृत्त हो जाता है।

सूचना–कभी-कभी पित्तप्रधान प्रकृतिवालों को कण्ठ में शुष्कता, शिर भारी होना, चक्कर आना और व्याकुलता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसा होने पर दूध अथवा नींबू की सिंकजी पिलानी चाहिए।

२१. मल्ल शंख भस्म।

विधि–शुद्ध किये हुए बड़े शंख को तपा तपाकर ३ बार आक के पानों के रस में बुझावें। फिर उस शंख के भीतर सोमल का चूर्ण ५ तोले भरकर ऊपर आक का दूध भर देवें। पश्चात् छोटी हँडी में चारों ओर आक के पत्तों के कल्क के भीतर उस शंख को रखकर दृढ़ मुखमुद्रा करें। सूखने पर गजपुट में रख अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर शंख को निकालकर पीस लेवें। पुनः आक के दूध में ६ घण्टे खरलकर २-२ तोले की टिकिया बना शराव सम्पुट कर गजपुट देने से मुलायम भस्म बन जाती है।

मात्रा–१ से ४ रत्ती, दिन में २ बार गोघृत के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म श्वास, कास, मलेरिया, उदरशूल, निमोनिया, पक्षाघात, अर्दित और बार-बार आक्षेप आना आदि वात प्रकोप को दूर करती है। इस भस्म में से सोमल अधिकांश में उड़ जाता है। फिर भी शंख भस्म कुछ उग्र बन जाती है। श्वास रोग में कफ को सरलता से निकालने और कफ की उत्पत्ति को बन्द करने के लिए यह निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त होती है, रूचि और पाचन शक्ति को भी यह बढ़ाती है।

मलेरिया अथवा शीतपूर्वक ज्वर अनेक दिनों का पुराना हो जाने पर बार-बार आक्रमण करता रहता है। ऐसे रोगियों को यदि मुखपाक, छाती में दाह आदि हों, तो क्विनाइन कभी सहन नहीं होती, उनको कुछ दिन इस भस्म को सेवन करने से ज्वर, शूल और पचन विकार दूर हो जाते हैं। गुड़, शीतल जल से स्नान, नया अन्न, खट्टा दही, भारी भोजन और सूर्य के ताप में भ्रमण बन्द कराना चाहिये।

२२. ताल भस्म।

द्रव्य–उत्तम शुद्ध बर्की हरताल २० तोले।

विधि–घी कुँवार के रस में ४ दिन खरल करें। फिर अंगुली पर रगड़कर सूर्य के ताप में देखें। अगर कुछ भी चमक शेष रही हो, तो २ दिन और खरल करें। फिर बेर वृक्ष की राख को कपड़ छानकर समभाग मिला ३ दिन घीकुंवार के रस में खरल कर एक एक तोले की टिकिया बना लें। पश्चात् एक हांडी में कण्डों की और अपामार्ग (या पीपल वृक्ष) की राख समभाग मिला आधी हांडी तक दबा-दबा कर भरें। उस पर हरताल की टिकिया एक एक करके जमा दें। टिकियाएं परस्पर १/५ इञ्च की दूरी पर रखें। इन टिकियाओं पर १ इंच राख की मोटी तह करें। राख को दबा-दबाकर भरें। पुनः और टिकियाएं उसी प्रकार से रखें और राख से दबा दें। फिर टिकियाओं की तीसरी तह रखकर हांडी में मुँह तक राख भरकर दबा दें। पश्चात् हांडी के मुंह पर ढक्कन लगाकर चूल्हे पर चढ़ावें। पैर के अंगुष्ठ के समान मोटी ३ लकड़ियों की अग्नि १२ घण्टे तक देवें। स्वांग शीतल होने पर टिकियाओं को निकाल लें। यह सफेद, कुछ मैले रंग की मुलायम भस्म बन जाती है। टिकियाओं को तोड़कर परीक्षा करें। पीलापन देखने में आवे, तो फिर से अग्नि देवें कभी थोड़ी टिकियाएं पक जाती है और थोड़ी कच्ची रह जाती हैं। जो कच्ची हों, उनको घीकुँवार के रस में खरल करा, टिकिया बनवा कर ऊपर लिखे अनुसार पका लेवें।

वक्तव्य–इस विधि के अनुसार भस्म बनाने में बेरी की राख मिलायी जाती है तथा हरताल का वजन भी कम हो जाता है, तथापि सरलाता से भस्म बन जाती है। जो अच्छा भाग पहुँचती है। *(स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)*

मात्रा–१/२ से १ रत्ती, दिन में दो बार शहद के साथ दें। ऊपर रोगानुसार रक्तशोधक या ज्वरघ्न कषाय देवें।

उपयोग–यह भस्म कुष्ठ, त्वचारोग, रक्तविकार, सन्निपात आदि पर प्रयुक्त होती है। विशेष गुणधर्म रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

२३. मनःशिला भस्म।

विधि–२ तोले शुद्ध मैनसिल को थूहर के पत्तों के रस में १२ घण्टों तक खरलकर टिकिया बनाकर सुखावें। फिर दो शरावों में कलई चूने के भीतर रख, सम्पुट कर ३ कपड़मिट्टी करके ५ सेर कण्डों के भीतर फूंक देवें। स्वाङ्ग शीतल होने पर सम्पुट निकाल कर खोले, चूने का रंग पीला हो जाता है और मैनसिल भस्म सफेद हो जाती है। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–½ से १ चावल भर तक, मिश्री के साथ देवें।

उपयोग–यह भस्म विषमज्वर और कफप्रधान ज्वर को दूर करती है। मैनसिल के भीतर सोमल होने से इस भस्म को सोमल का सौम्य कल्प कहा जायेगा। जिन-जिन रोगियों को सोमल देने में भीति रहती हो और सोमल देने की आवश्यकता हो, उन रोगियों को यह भस्म अमृत के समान हितकारक होती है। वातविकार, उपदंश, शूल, कास, श्वास, क्षयज्वर तथा कीटाणुजनित विविध व्याधियों में यह निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

२४. पन्ना भस्म।

द्रव्य–शुद्ध पन्ना के छोटे-छोटे कण १२ तोले।

विधि–लोह खरल में शुद्ध पन्ना खरड़ को बारीक पीसकर जंगली तुलसी, (नगद बावची) के रस में ३ दिन खरल करावें, फिर उसे २ सेर उपलों की अग्नि दें। दूसरे दिन पुनः उसी रस में १२ घण्टे खरल करा अग्नि देवें। इस तरह ५ पुट देने से भस्म तैयार हो जाती है। *(स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)*

वक्तव्य–इस विधि से वैक्रान्त, पुखराज, माणिक्य और नीलम की भस्म भी बनवायी थी। वैक्रान्त और नीलम को ५-५ सेर गोबरी की अग्नि के ६ पुट दिये थे।

मात्रा–१/५ से १ रत्ती तक, रोगानुसार अनुपान के साथ।

उपयोग–पन्ना भस्म विषनाशक, शीतल, हृद्य, मधुर, रेचक, अम्ल, पित्तहर्त्ता, रोचक, पुष्टिकर्त्ता, भूतबाधानाशक है। ज्वर, वमन, श्वास, संताप, मन्दाग्नि, अर्श, पाण्डु, मधुमेह और शोथ का नाश करती है।

सूचना–अधिक मात्रा में पुंस्त्व को हानि पहुँचाती है।

२५. दरदसुधा भस्म।

द्रव्य–हिंगुल और कलई का चूना बिना बुझा ३-३ तोले।

विधि–पहले हिंगुल को सेहुंड के दूध में ३ दिन खरल करें। फिर चूना मिला पुनः सेहुंड के दूध में ३ दिन मर्दन कर चक्रिका (पेड़े) के समान एक टिकिया बनावें। इसे सूर्य के ताप में सुखा समान माप वाले, घिसी हुई किनारे वाले, दो शरावों के भीतर रख मुखमुद्रा करें। फिर दृढ़ कपड़मिट्टी कर एक गड्ढे में २॥ सेर कण्डों की अग्नि देवें। स्वाङ्ग शीतल होने पर सम्पुट खोल टिकिया निकालकर, पीस लेवें। यह भस्म मुलायम मैले सफेद रंग की होती है। *(सि.भै.म.)*

सूचना–योग्य सम्पुट या कपड़ मिट्टी न करने और अग्नि तेज लगने पर हिंगुल उड़ जाता है। फिर भस्म का गुण कम हो जाता है एवं कम अग्नि लगने पर हिंगुल की लाली बनी रहती है, जिससे भस्म में उबाक, वमन और विरेचन कराने का दोष रह जाता है। अतः सावधानीपूर्वक भस्म बनानी चाहिये।

मात्रा–१ से २ रत्ती, मसाला लगे हुए नागरबेल के पान में दिन में २ या ३ बार।

उपयोग–यह भस्म सुकुमारी स्त्री, पुरुष और बालकों के ज्वर को दूर करती है। इस भस्म के सेवन से किसी व्यक्ति को जुलाब (दो तीन दस्त) लग जाता है। उदर-शुद्धि न हुई हो, तो मात्रा २ रत्ती देवें और आवश्यकता पर ३-३ घण्टे बाद दिन में ३ बार देवें। अपचनजनित ज्वर और शीतप्रधान ज्वर को दूर करने में यह हितावह है। शीतज्वर में इस भस्म को शीत लगने के पहले दे दी जाये, तो शीत लगना और ज्वर आना, दोनों रुक जाते हैं। अमीरों के जीर्ण विषमज्वर को दूर करने के लिए यह भस्म कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये। यदि क्षयज्वर से मलावरोध हो, तो १-१ रत्ती दिन में २ बार देते रहने से ज्वर शमन हो जाता है। इसका विशेष गुण केलोमल (Calomal) के सदृश पित्त को उत्तेजित कर यकृत् की शक्ति को बढ़ाता है।

सूचना–नूतन ज्वर में रोगी को दूध पर रखें। जल उबाल करके शीतल किया हुआ देवें। औषध सेवन करने पर २ घण्टे तक जल न देवें।

२६. त्रिवङ्ग भस्म।

द्रव्य–कलई (वङ्ग), शीशा और जसद तीनों शुद्ध किये हुए ४०-४० तोले।

विधि–तीनों को मिलाकर भट्टी पर रख कड़ाही में द्रव करें। भस्म बनाने के लिए भांग ६ सेर लेवें या पीपल वृक्ष की छाल, बड़ की जटा, इमली के वृक्ष की छाल और हल्दी, चारों १॥-१॥ सेर लेकर मिला लें। उसमें से १-१ मुट्ठी त्रिवङ्ग की द्रुति में डालते जायें और बड़ के ताजे डण्डे से चलाते रहें। जब त्रिवङ्ग धूल (चूर्ण) सदृश बन जाये, तब कड़ाही को उतार लेवें। शीतल होने पर घीकुंवार के रस में १२ घण्टे घुटवा, टिकिया बनवा, हांडी में रखकर ७-८ सेर उपलों की आग देवें। इस तरह १० पुट देवें। यह भस्म सफेद और मुलायम बनती है। *(स्व. वैद्य नाथूरामजी, देहली वाले)*

गुणधर्म–रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखे अनुसार।

२७. वङ्गाष्टक भस्म।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, रौप्यभस्म, शुद्ध खपरिया (या जसद भस्म), अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म ये ७ औषधियाँ ४-४ तोले और वङ्गभस्म २८ तोले लें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर सब औषधियों को मिला, त्रिफला और गिलोय के क्वाथ में ३ दिन खरल कर २-२ तोले की टिकिया बना ४ शरावों में दृढ संपुट कर पृथक्-पृथक लघु गजपुट द्वारा अग्नि देवें।

वक्तव्य–आचार्यों ने भस्म को १ पुट देने का विधान लिखा है, किन्तु हम ३ पुट देते हैं। ३ पुट देने से भस्म मुलायम और विशेष गुणकारी बनती है।

मात्रा–२-२ रत्ती, दिन में २ बार शहद के साथ दें। ऊपर हल्दी का चूर्ण १ माशा और शहद ६ माशे मिलाया हुआ आंवलों का रस (या फाण्ट) पिलावें।

उपयोग–यह भस्म वातकफप्रधान प्रकृति के लिये विशेष उपकारक है। अनेक प्रमेह, आमदोष, विसूचिका, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, मूत्रातिसार और पित्तवृद्धि को दूर करती है, वीर्य की वृद्धि करती है, प्रदर तथा सोमरोग को नष्ट करती है। स्त्री रोगों के लिये यह उत्तम औषधि है।

वङ्ग भस्म के साथ इतर भस्में मिल जाने से प्रजनन तन्त्र मूत्रतन्त्र पचनेन्द्रिय संस्थान, रससंस्थान, रक्त-मांस-वातसंस्थान, फुफ्फुसों आदि पर लाभ पहुँचता है। इस प्रयोग में ताम्रभस्म होने से मूत्रतन्त्र और पचनेन्द्रिय संस्थान पर उग्रता प्रतीत हो, तो मात्रा कम करनी चाहिये और उस समय दूध नहीं लेना चाहिये। अन्यथा उबाक आती है।

२८. पञ्चामृत भस्म (बाजीभाई मात्रा)।

द्रव्य–शुद्ध पीला सोमल, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनःशिला, कलई चूना, शुद्ध गन्धक और फिटकरी ५-५ तोले।

विधि–उपर्युक्त 6 औषधियों को मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन खरल करके ४ गोले बनावें। सूखने पर ४ सम्पुटकर, ३ कपड़मिट्टी करके सबकी पृथक्-पृथक् २॥-२॥ सेर गोबरी की अग्नि देवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–१/८ से १/४ रत्ती, सोंठ के घासे से सान्निपातज बेहोशी में दिन में ३ बार या २-२ घण्टे पर देवें। श्वासावरोध में अदरक और पोदीने के १-१ तोला स्वरस को गुनगुना कर ३ माशे शहद मिलाकर उसके साथ देवें।

उपयोग–इस भस्म का उपयोग सन्निपात में बेहोशी, कफप्रकोप, शरीर की शीतलता, हृदय और नाडी की मन्द गति, अनियमित नाड़ी आदि लक्षण होने पर किया जताा है। इसके सेवन से हृदय उत्तेजित होता है, शीतलता दूर होती है। कण्ठ में कफ बोलता हो, वह निकल जाता है और रोगी होश में आ जाता है।

यह भस्म पार्श्वशूल, श्वासावरोध और श्वास का दौरा होने पर तत्काल लाभ पहुँचाती है। एक घण्टे में घबराहट दूर हो जाती है। कफ प्रकृति वालों को यह भस्म दी जाती है।

२९. अष्टामृत भस्म।

द्रव्य–शुद्ध कासीस, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध गोन्दती, शुद्ध प्रवाल मूल, शुद्ध मोती की सीप, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक, शुद्ध रौप्यमाक्षिक और धान्याभ्रक ५-५ तोले।

विधि–८ औषधियों को मिलाकर अर्क दुग्ध में ३ दिन खरल करें। फिर २-२ तोले की टिकिया बना सूर्य के ताप में सुखा, शराव सम्पुट कर गजपुट द्वारा अग्नि देवें। स्वाङ्ग शीतल होने पर निकाल पुनः ३ दिन अर्क दुग्ध में मर्दन कर गजपुट देवें। इस तरह ३ पुट देवें।

फिर घीकुंवार के स्वरस में १-१ दिन घोटकर ७ पुट देने से श्वेत धूसर वर्ण की मुलायम भस्म बन जाती है।

(राजवैद्य भ्रमरदत्तजी मिश्र)

मात्रा–१/२ से ४ रत्ती, दिन में २ बाद शहद, घृत, मिश्री शर्बत वनप्सा से अथवा रोगानुसार निम्न अनुपात के साथ देवें।

(१) **यकृत्प्लीहावृद्धि**–हरड़मिश्रित कुमार्यासव।

(२) **जीर्ण प्रतिश्याय**–(श्लेष्मा के निस्सरणार्थ) मिश्री।

(३) **शुष्क कास**–शर्बत बनप्सा, शहद-घृत अथवा चन्द्रामृत रस के साथ।

(४) **शिरदर्द**–त्रिफला या हरड़ के साथ देकर ऊपर दूध पिलावें।

(५) **आघातज शूल**–मिश्री के साथ देवें और ऊपर गुनगुना जल पिलावें।

(६) **मंथर ज्वर**–कास प्रकोप हो, तो शहद के साथ।

(७) **बच्चों की काली खाँसी**–आधा रत्ती, शहद या माता के दूध के साथ।

उपयोग–अष्टामृत भस्म, शामक, प्रदाहहर और कफघ्न है। नूतन प्रतिश्यायज कास, प्रतिश्यायसह गलौघ, श्वासनलिका प्रदाह, उरस्तोय (प्ल्युरिसी), अपचन और प्रतिश्याय से होने वाली जलन, फुफ्फुसों में प्रदाह जनित पतला श्लेष्मा भर जाना, फुफ्फुसों का जकड़ जाना, तेजवायु, शीत या सूर्य के ताप के आघात से सांधों-सांधों में अकड़ाहट और शरीर अकड़ जाना, शुष्क कास, शिरदर्द तथा यकृत्प्लीहावृद्धि होकर शुष्क कास चलना आदि विकारों को नष्ट करती है।

३०. मल्ल पुष्प।

विधि–पुरानी ईंट के बीच में खड्डा करें। फिर उस खड्डे के चारों ओर ताम्बे की कटोरी को बैठाने के लिये गोल काप करें, जिससे कटोरी का किनारा ठीक काप में बैठ जाए। पश्चात् ५ या १० तोले सोमल का टुकड़ा खड्डे में रख कटोरी को ईंट के काप में बैठाकर संधिपर दृढ़ मुद्रा लेप करें। सूखने पर ईंट को चूल्हे पर चढ़ाकर बेर की लकड़ी की मन्दाग्नि देवें। कटोरी के ऊपर गीला कपड़ा रखें। कपड़े बार-बार बदलते रहें। जिससे कटोरी के भीतर पुष्प लगते रहेंगे। १२ घण्टे अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर पुष्प निकाल देवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–१/८ रत्ती, सोंठ के घासे के साथ। आवश्यकता पर दो घण्टे बाद पुनः देवें या दिन में दो बार देवें।

उपयोग–सन्निपात में कफाधिक्य, नाड़ी की शिथिलता, कम्प, बेहोशी आदि लक्षण होने पर इस पुष्प का उपयोग होता है एवं यह कफाधिक्य श्वास रोगी को मलाई व मिश्री के साथ दिया जाता है। कुछ दिनों तक श्वास रोगी को सेवन कराने पर संगृहीत कफ निकल जाता है, नयी उत्पत्ति रुक जाती है श्वास-प्रणालियाँ सुदृढ़ बन जाती है। जिससे श्वास रोग निवृत्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनुपान विशेष से जीर्ण मन्दाग्नि, संग्रहणी, जीर्णज्वर, त्वचा के जीर्ण रोग, कण्डू आदि जो वृद्धावस्था में होने वाले हैं, उनका यह नाश करती है।

[२] वमन आदि शोधन।

१. वमनेश्वर रस।

द्रव्य–अंकोल की गिरी १० तोले, शुद्ध नीला थोथा, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और ताम्र भस्म ५-५ तोले।

प्रथम विधि–पारद गन्धक की कज्जली करके नीलाथोथा और ताम्र भस्म मिलावें। फिर अंकोल की गिरी का चूर्ण मिला, नमक का जल, देवदाली स्वरस, मैनफल का क्वाथ, वासा स्वरस, बचका क्वाथ, नीम के पानों का स्वरस, परवल के पानों का स्वरस और मुलहठी का क्वाथ इन ८ द्रव्यों की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से ३ गोली, २० से ४० तोले गुनगुने जल के साथ प्रात: दें।

उपयोग–अम्लपित्त, अपचन, कफ पित्तप्रकोप, वान्ति, कुष्ठ आदि रोगों में जहाँ वमन करनी हो, वहां पर यह रस दिया जाता है। अतियोग होने पर आंवलों का चूर्ण शक्कर मिलाकर खिलावें।

इस रस में अंकोल मिलाया है। यह स्वेदजनक, शोधक, सारक और विषहर है। यह कफ को शिथिल करके बाहर निकालता है। पूरी मात्रा देने पर वमन, विरेचन होते हैं तथा प्रस्वेद भी आता है। चूहे के विष पर अंकोल विशेष हितावह है। अंकोल देकर वमन कराने पर हृदय और धमनी में शिथिलता आ जाती है। इस हेतु से वमन हो जाने पर लक्ष्मी विलास, रससिंदूर, प्रवाल या सुवर्णवसंत का सेवन कराया जाये तो अच्छा है।

द्वितीय विधि–देवदाली के बीज १६ भाग, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ भाग लेवें। पहले कज्जली करके देवदाली का चूर्ण मिलावें। फिर देवदाली के रस की ७ भावनायें देकर सुखा लें। पश्चात् उसके समान वजन में शुद्ध नीलाथोथा मिलाकर खरलकर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–२ से ६ रत्ती, गुनगुने जल के साथ।

उपयोग–ऊर्ध्व जत्रुगत रोगों में जब मल, कफ या पित्तप्रकोप हो गया हो, तब इस रस का उपयोग करने से यथेष्ट वमन होकर शुद्धि हो जाती है।

यकृत्–प्लीहावृद्धि और उससे उत्पन्न जलोदर, सर्पविष, कामला, कफ प्रकोप, शोथ, गण्डमाला, चूहे का विष आदि रोगों पर वमन कराकर दोष को निकालने में इस रस का उपयोग किया जाता है। यदि अतियोग हो जाये, तो चावल की लाही को जल में पीस नींबू का रस मिलाकर पिलावें या खस का जल पिलावें। अथवा नींबू के बीजों की मज्जा ४-४ रत्ती की मात्रा शीतल जल के साथ पिलावें।

२. रुक्मीश रस।

द्रव्य–हरड़ का चूर्ण १ सेर और नींबू के रस में शोधित जमालगोटा १६ तोले।

विधि–इनको मिलाकर चूर्ण बना २० तोले थूहर के दूध में १२ घण्टे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। *(र.च.)*

मात्रा–१-१ गोली प्रात: काल जल के साथ दें।

उपयोग–यह रस उत्तम कोटि का विरेचन है। इसके सेवन से अन्य विरेचक औषधियों के समान दाह, मूर्च्छा, चक्कर आना, थकावट आदि कोई भी उपद्रव उत्पन्न नहीं होता। वेग सहित दस्त आते हैं। आम को दूर करने में यह श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से जैसा रेचन होता है, वैसा निरुह बस्ति (सारक औषधियों के क्वाथ की बस्ति) देने पर, बिन्दु घृत से या निसोत के सेवन से नहीं होता। इसके सेवन से देह शुद्ध हो जाती है और बलका भी विशेष ह्रास नहीं होता है। यह रस वर्ण,बल और आयु को बढ़ाने में उत्तम है।

यह रस कोष्ठबद्धता, दारुण उदररोग, अर्शरोग और जो रोग अधोभाग के शोधन से शमन होता है, उन पर महौषधि है। अत: इसकी सर्वत्र योजना करनी चाहिये। यह आमनाशक, कामवर्धक और देह को शुद्ध बनाने वाली औषधि है।

वक्तव्य–सगर्भा स्त्री और अति सुकुमार, क्षत और क्षयी पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

३. गुड़ादि मोदक।

द्रव्य–गुड़ ३२ तोले, हरड़ ८० तोले, दन्तीमूल और चित्रकमूल २-२ तोले तथा पीपल और निसोत १०-१० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर १-१ तोले के मोदक बना लेवें। *(बं.से.)*

मात्रा–१-१ मोदक। प्रति १०वें दिन प्रात:काल निवाये जल के साथ लेवें।

उपयोग–इस मोदक के उपयोग से कोष्ठस्थ दोष का संशोधन होता है। जिससे उदावर्त, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श और कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं। जिस दिन मोदक का सेवन करें, उस दिन उष्ण भोजन करें, ठण्डा जल भी न पीवें।

यह अति सौम्य संशोधन है। सामान्यतः इससे १-२ दस्त साफ आ जाते हैं, कोष्ठ में रहे हुए सेन्द्रिय विष, आम, कृमि आदि नष्ट होते हैं। जिससे ग्रहणी, अर्श, कुष्ठ, त्वचारोग, पाण्डु आदि रोगों के पोषक आम आदि की उत्पत्ति ही नहीं होती।

४. सुख विरेचनी वटी।

द्रव्य-सोंठ २ तोले, जमालगोटे के बीजों की २६ मींगी (१ तोले)।

विधि-इनको रात्रि में एक कलईदार पात्र के भीतर उबलते हुए २० तोले जल में डालकर ढक दें। सुबह उसको हाथ से मसलकर, गरम जल से धोकर, अंकुर निकालकर खरल में घोटें। अच्छी तरह पिस जाने पर सोंठ का कपड़छन चूर्ण मिला जल के साथ ३ घण्टे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(स्व. श्री पं. गोवर्धनजी शर्मा, छांगाणी)*

उपयोग-१-१ गोली रात्रि को सोते समय शीतल जल से निगलने पर सुबह बिना कष्ट १ दस्त साफ आ जाता है। क्रूर कोष्ठ होने पर २-३ गोलियाँ दी जाती हैं।

सूचना-सगर्भा एवं सुकुमार स्त्रियों एवं छोटे बच्चों को इसे नहीं देना चाहिये।

५. बृहन्मञ्जिष्ठादि चूर्ण।

द्रव्य-मजीठ, छोटी इलायची के दाने, सौंफ, पाषाण भेद, कलमीशोरा, छोटा गोखरू और रेवन्द चीनी १-१ तोला, सोनागेरू, घी में (या एरण्ड तैल में) भुनी हुई छोटी हरड़, बड़ी हरड़, बहेड़ा, आँवला और गुलाब के फूल २-२ तोले तथा सनाय ४ तोले।

विधि-सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। *(स्व. श्री पं. यादव जी त्रिकम जी आचार्य)*

मात्रा-३ से ६ माशे, सुबह या रात्रि को निवाये जल के साथ।

उपयोग-यह चूर्ण दस्त और पेशाब को साफ लाने वाला और रक्त शोधक हैं। यह कब्ज, मूत्र की रुकावट, अर्श और रक्तविकार में विशेष लाभप्रद है। पित्त-प्रकृति वालों को तथा पित्तप्रकोप और रक्तविकार में इसका प्रयोग होता है।

६. पारद वटी (नीली वटी)।

(Mercury pill, Blue pill)

द्रव्य-पारद २ औंस, गुलकन्द ३ औंस और मुलहठी का चूर्ण १ औंस।

विधि-पहले पारद को गुलकन्द में मिलावें फिर मुलहठी मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

उपयोग-यह वटी विरचेनार्थ दी जाती है। इसका उपयोग मुंह में लालानि सरण वृद्धि कराने और रक्तशोधन के लिये सर्वदा होता है। यकृत् का पित्तप्रकोप (billiousness) होने पर, यकृत् वृद्धि, यकृत् को दबाने पर वेदना, यकृत् में से पित्तनिःसरणाधिक्य, शिर दर्द, आलस्य, मानसिक अवसाद, बेचैनी और आहारपचन में विकृति, खांसने पर पीड़ा होना, किञ्चित् शीत लगकर ज्वर आ जाना और कोष्ठबद्धता आदि लक्षण होते हैं। ऐसे रोगों में इस औषधि का उपयोग रात्रि को सोने के समय करने से आश्चर्य कर फल प्राप्त होता है। यह वटी अन्त्र के भीतर से समस्त वेदना उत्पादक पदार्थों को बाहर फेंक देती है, यकृत् का संशोधन करती है तथा पित्तप्रणाली के प्रदाह को दूर करती है।

सामान्य मस्तिष्कावरण प्रदाह (Meningitis) में १ गोली खिलाने और पारद मलहम की मालिश करने से अच्छा लाभ पहुँच जाता है। फिरंग रोग (Hard Chancre) पर दिन में दो बार १-१ गोली की मात्रा में इस औषध का उपयोग करने से तथा कृष्ण धावन (ब्लेक वॉश) की पट्टी बाहर लगाते रहने से रोग का शमन हो जाता है। किन्तु सामान्य उपदंश (Soft chancre) पर पारद का आभ्यान्तरित उपयोग नहीं होता। इस बात को सर्वदा लक्ष्य में रखना चाहिये।

विवेचन-फिरंग रोग में एक क्षत होता है, सामान्य उपदंश में अधिक (४-५) घाव होते हैं। फिरंग में चारों ओर की धारा कठिन और बीच में गड्ढा होता है। जल सदृश रसस्राव (उग्ररूप धारण करने पर थोड़ा पूय) होता है, तथा ज्वर आ जाता है, किन्तु सामान्य उपदंश में चारों ओर की धारा नरम रहती है और बहुत पूय निकलता है, ज्वर नहीं आता। इन लक्षणों के भेद से फिरंग रोग पृथक् हो जाता है। सामान्य उपदंश शिश्नेन्द्रिय पर से मिट जाने पर विष समाप्त हो जाता है। परन्तु फिरंग के व्रण मिट जाने पर भी उसका विष, रुधिर के द्वारा समस्त धातुओं में लीन होकर गुप्त भाव से विकार सदा के लिये छोड़ देता है जो उत्तम प्रतिकार होने पर ही दूर होता है।

७. संशोधन वटी।

द्रव्य–देवदाली के पक्के फल ३, मुनक्का १ तोला।

विधि–देवदाली के फलों की भीतर से जाली और बीजों को निकाल कर केवल कांटेदार टपर लेवें। उनका चूर्ण करें। फिर मुनक्का को धोकर भीतर से बीज निकाल डालें और चटनी की तरह पीसें। फिर देवदाली का चूर्ण मिलाकर १४ गोलियाँ बना लेवें। मुनक्का उतनी मिलावें, जिससे कि गोलियां ४-४ रत्ती की बन जाये। *(वैद्यराज किशनलालजी अग्रवाल)*

मात्रा–१-१ गोली कच्चे गोदुग्ध के साथ प्रातः काल और रात्रि को निगल लेवें। बस्ति लगाने के लिये गोदुग्ध में ४ गोली मिलावें।

उपयोग–जीर्णज्वर, मन्दज्वर, शिरदर्द और कामला रोग को दूर करने में यह वटी अति लाभदायक है। क्षय की प्रथमावस्था में भी इसका उपयोग सफलतापूर्वक होता है। जब सेन्द्रिय विष, कीटाणुप्रकोप या मल संग्रह होकर ज्वर बना रहता हो, तब इसका प्रयोग होता है। कभी-कभी आमाशय में दोष प्रकोप अधिक होने पर किसी किसी को वान्ति और आन्त्र में मल संग्रह अधिक होने पर विरचन होता है किन्तु उससे भय नहीं मानना चाहिये। ऐसा वमन, विरेचन केवल पहले ही दिन होता है, फिर नहीं होता तथा यह सौम्य रूप से होता है।

विवेचन–जब ज्वरकाल में अपथ्य आहार-विहार का सेवन होता है या योग्य उपचार नहीं होता तब ज्वर जीर्ण रूप धारण कर लेता है। अनेकों को मलावरोध, अरुचि, क्षुधामान्द्य, शिर में भारीपन, मूत्र में पीलापन, उत्साह का अभाव, आलस्य, फुफ्फुसों में कफ भरा रहना, हाथ पैर टूटना, व्याकुलता और शारीरिक उत्ताप ९९° डिग्री तक बढ़ना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह वटी उत्तम लाभ पहुँचाती है। थोड़े दिनों तक सेवन करने पर जीर्ण ज्वर दूर होकर देह सबल हो जाता है।

किसी किसी रोगी को जीर्ण ज्वर होने पर पित्त प्रकोप होकर मुखपाक, निद्रानाश, क्षुधामान्द्य, अरुचि, तृषावृद्धि, दाह, व्याकुलता, मलावरोध और कभी-कभी खट्टी वान्ति हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं-उस पर भी यह औषधि उत्तम मानी गई है।

देह में कीटाणुओं का बाहर से प्रवेश या सेन्द्रिय विष संगृहीत हो जाने पर मन्द-मन्द ज्वर आता रहता है। विशेषतः रात्रि को ९९° तक ताप होता है। सुबह ९७° रहता है। हाथ-पैर टूटना, क्षुधामान्द्य, उत्साह का अभाव, मूत्र में पीलापन, शीत या उष्णता सहन न होना, आमाशय में घण्टो तक भारीपन बना रहना, भोजन की डकार बार-बार आना, मलावरोध तथा शौच के साथ आम निकलते रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। थोड़ा-सा परिश्रम करने पर उत्ताप बढ़ जाता है। इस ज्वर के मूल कारण रूप कीटाणु-विष को दूर करने पर ज्वर स्वयमेव शमन हो जाता है। यह कार्य इस वटी से उत्तम प्रकार से होता है।

यदि मन्द-मन्द ज्वर अधिक समय तक रह जाता है, योग्य उपचार नहीं होता और अपथ्य का सेवन होता रहता है, तो किसी-किसी पर राजयक्ष्मा के कीटाणुओं का आक्रमण हो जाता है। फिर शुष्क कास, जीर्ण ज्वर बात-बात में क्रोध उत्पन्न होना, चिड़चिड़ापन, अग्निमांद्य और शारीरिक निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। देह अति कृश और निस्तेज हो जाती है। ऐसी अवस्था में भी इस वटी का सेवन कराकर योग्य उदरशुद्धि कराई जाये तो ज्वर दूर होता है और शरीर स्वस्थ हो जाता है।

यकृत् या पित्ताशय की पित्तनलिका के मार्ग का अवरोध होने पर कामला उत्पन्न होता है, देह में से पीला प्रस्वेद निकलता है, आँखों से जिस पदार्थ को देखें उसमें पीलेपन का भास होता है।

पेशाब पीला होता है, किन्तु यकृत्-पित्त का स्राव अन्त्र में कम होने से मल का रंग सफेद भासता है। उस रोग पर इस वटी का सेवन कराने और रोगी को दूध भात पर रखने से थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँच जाता है।

बृहदन्त्र में आम, उदरकृमि और मलसंग्रह हो जाने पर शिर में भारीपन निरन्तर बना ही रहता है, आलस्य आता है और स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है। कितने ही रोगी बार-बार जुलाब लेते रहते हैं जिससे अन्त्र अति शिथिल हो जाती है और शरीर भाररूप भासता है। उस पर इस वटी मिश्रित गोदुग्ध की बस्ति देने से उदर-शुद्धि होती है। फिर पचन-क्रिया सबल बन जाती है।

संक्षेप में जब मल, आम, कृमि, कफ या पित्त आदि का संग्रह होता है या पचनेन्द्रिय संस्थान में कीटाणु-प्रवेश होकर उनकी आबादी बढ़ जाती है, तब यह गुटिका आशीर्वाद के समान उपयोगी है।

इस वटी का प्रयोग श्री किशनलाल जी अग्रवाल अमरावती अनेक वर्षों से करते रहे हैं। प्रयोग अति सामान्य होते हुए भी चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

८. हरीतकी वटी।

द्रव्य–जवा हरड़ ५ तोला, थूहर का दूध १० तोले।

विधि–हरड़ के छोटे-छोटे टुकड़े कर थूहर के दूध में १ रात्रि भिगो देवें। दूसरे दिन खरलकर २-२ रत्ती गोलियां बना लेवें। *(आ.नि.सा.)*

मात्रा–१-१ गोली, सुबह निवाये जल या चाय के साथ।

उपयोग–इससे ४-५ जुलाब लग जाते हैं। यदि छाती में कफ हो तो वमन भी कराती है। छाती में कफ संग्रहीत होना, सांधों में दर्द, अन्त्र में आमसंग्रह, मलावरोध, रक्ताविकार, विस्फोटक, उदरकृमि, श्वास, कास, मेदोवृद्धि और अर्श-पीड़ितों को दी जाती है। आवश्यकता पर २-२ दिन पर या ४-६ दिन पर ५-७ बार दे सकते हैं। मेदो वृद्धि कम कराने के लिये सप्ताह में १ बार लम्बे समय तक दे सकते हैं।

वक्तव्य–अधिक जुलाब लगे तो शर्बत पिलावें अथवा खिचड़ी में घी डालकर खिला देवें। क्रूर-कोष्ठ वाले रोगियों को इस वटी का सेवन कराना चाहिये। मृदु प्रकृति वाले युवक, बालक, सगर्भा स्त्री तथा कृश, वृद्धों को इसका प्रयोग नहीं कराया जाये तो अच्छा है।

९. माजून एहमदी।

द्रव्य–गुलाब के फूल और गुलवनप्सा ३-३ माशे, दालचीनी १ माशा, पीपल ८ माशे, सनाय पत्ती और शुद्ध जयपाल ४-४ तोले, रूमी मस्तंगी २ तोला, बडी हरड़ का छिलका २॥ तोला, मिश्री और शहद २५-२५ तोले औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें।

विधि–मिश्री की चाशनी करें। पश्चात् चाशनी शीतल होने पर शहद मिलावें। चाटने योग्य अवलेह बना लें।*(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा–३ माशे सुबह अथवा आवश्यकतानुसार देवें।

अनुपान–सिकञ्जवीन सिर्का २ तोले, अर्क पोदीना और अर्क सौंफ ५-५ तोले और पीपरमेण्ट का तैल २ से ४ बूंद मिलाकर ४ हिस्से करें। पहले हिस्से के साथ माजून देवें। फिर ३ घण्टे बाद आवश्यकतानुसार उबाक शमनार्थ और उदरशोधन में सहायतार्थ १-१ घण्टे पर शेष भाग देवें।

उपयोग–यह उदरशोधन में उत्तम औषधि योग है। बृहदन्त्र मल से भर जाने पर अपानवायु न निकल सकती हो और बस्तिका जल न चढ़ सकता हो, पूर्ण बद्धोदर हो गया हो, ऐसी अवस्था में भी इस प्रयोग ने लाभ पहुँचा दिया है। अन्त्र का अस्त्र-चिकित्सा के लिये तख्त पर लिटाये हुए रोगी को भी इस माजून से लाभ हो गया है।

बद्धोदर के अतिरिक्त उदरकृमि, आमप्रकोप, शीतपित्त, रक्त विकार, कफवृद्धि आदि रोगों में तथा विषसेवन के समय भी माजून एहमदी का उपयोग हो सकता है।

१०. आमविध्वंसनी वटी

द्रव्य–मुलहठी, कूठ, हरड़, सैंधानमक, शुद्ध हिंगुल, सोहागे का फूला और शुद्ध जमालगोटा।

विधि–इन ७ द्रव्यों को समभाग मिला ६ घण्टे कांजी में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।*(वैद्यराज श्री सुखरामदास जी ओझा)*

मात्रा–१-१ गोली गुड़ के शर्बत के साथ। सुबह गुड़ को जल में भिगोकर फिर आधे घण्टे बाद छान लेवें तब इसका, अनुपान रूप से प्रयोग करें।

उपयोग–इस वटी के उपयोग में २ दस्त साफ आ जाते हैं तथा कफ, कृमि, विष और नया पुराना आम निकल कर पचन क्रिया प्रदीप्त हो जाती है, आम ज्वर और रस आम प्रधान रोगों में उदर शोधनार्थ वह वटी अच्छा कार्य करती है।

❑ ❑

(३) ज्वर

१. विश्वतापहरण (नूतन ज्वर)।

द्रव्य-हरड़, पीपल, ताम्रभस्म, शुद्ध कुचला, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी, निसोत, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोला।

विधि-प्रथम पारद व गन्धक की कज्जली करें फिर ताम्रभस्म मिलावें। पश्चात् सब औषधियों का कपड़-छन चूर्ण मिलाकर धतूरे के रस में १ दिन-रात खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

सूचना-इस रस को धतूरे के रस की भावना देने के पश्चात् हम ३ भावनायें भांग के रस की भी देते हैं। इन भावनाओं के हेतु से अन्त्रदाह नहीं होता।

मात्रा-२ से ४ रत्ती, दिन में २ बार अदरक के रस और शहद अथवा मिश्री मिले जल के साथ।

उपयोग-यह रस नूतन ज्वरों को दूर करता है। ज्वर में जब विरेचन की आवश्यकता हो, तब यह दिया जाता है। यह यकृद् विकार, मलावरोध और पित्तवातप्रकोप आदि को दूर कर ज्वर को नष्ट करता है। विषम ज्वर में भी लाभ पहुँचाता है।

इस औषध के पाठ में मूलग्रन्थ के भीतर **'अभिनव ज्वरघ्न'** इतना ही गुण दर्शाया है, किन्तु योग्य रूप से योजना करने पर यह रस अनेक रोगों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उपयोगी होता है।

विवेचन-आमज्वर और अभिनव ज्वर इन दोनों में भी कुछ अन्तर है। अरुचि, अपचन, उदर में जड़ता, उदर में अफारा, शूल, मूंह में जल छूटना, उबाक, कोष्ठबद्धता आदि लक्षणों की वृद्धि होकर ज्वर आ जाने पर आम ज्वर कहलाता है। उस पर बच्छनाभ प्रधान औषधि दी जाती है। इस रस में बच्छनाभ न होने से आमपचन का यथोचित कार्य इससे नहीं होता। आमप्रकोप रहित जो ज्वर हो, ऐसे नूतन ज्वरों पर इस रस का उपयोग होता है। इस रस में कब्ज को दूर करने का गुण तो जमालगोटा, कुटकी और निसोत के हेतु से है, किन्तु आम को पचन करने का गुण प्रबल नहीं है।

यह औषध यकृद्बल्य और विरेचन है। इसका उपयोग यकृत के विकार से उत्पन्न ज्वरों में भांगरे के रस के साथ करना चाहिये। कामलायुक्त ज्वर में इस औषध का अच्छा उपयोग होता है। तीव्र ज्वर के साथ में कोष्ठबद्धता, शौच का वेग किञ्चित् भी उपस्थित न होना, ऐसे लक्षण होने पर विश्व तापहरण रस देकर कुछ समय के पश्चात् मात्राबस्ति या निरुहबस्ति द्वारा कोष्ठ की शुद्धिकर देनी चाहिये।

एरंड तैल या ग्लिसरीन की पिचकारी देने या १०-१५ तोले एरंड तैल और ३०-४० तोले गरम जल मिलाकर रबर के एनिमा द्वारा गुदा से चढ़ा देने से सत्वर उदर शुद्धि हो जाती है। रोगी बालक हो तो ग्लिसरीन सपोजिटरी (वर्ती) चढ़ाने से भी मल-शुद्धि हो जाती है।

यकृद्वृद्धि के विकार में यह औषधि उत्तम कोटि की मानी गयी है। छोटे बालकों से यह रस अनेक बार सहन नहीं होता। यदि बालकों को देना हो तो इसके साथ प्रवाल पिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर देना चाहिये। इस तरह जिन देशों में वर्षा अधिक होती है, वातावरण में आर्द्रता रहती है, ऐसे आनूप देशों में यह अधिक अनुकूल रहता है। यद्यपि इस प्रकार पर आरोग्यवर्द्धिनी का भी उपयोग होता है, तथापि वह केवल यकृद् विकार पर ही उपयुक्त है।

यकृद्वृद्धि के पश्चात् उत्पन्न सर्वाङ्ग शोथ और जलोदर इन दोनों रोगों में कोटागंधाल (मराठी-नेवाली, सं. नेमाली, लेटिन-Ixora Parvifora) के पत्तों के रस में (या पुनर्नवा के रस में) इस रसायन का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

कभी-कभी मात्रा बढ़ जाने पर और पित्त प्रधान प्रकृति वाले को देने पर उष्णतावृद्धि, रक्तस्राव, अधिक दस्त लगना, बलक्षय आदि हानिकारक लक्षण प्रकट होते हैं। इस हेतु से औषध-प्रयोग सम्हाल पूर्वक करना चाहिये। इसे सगर्भा, अति सुकुमार और पित्त प्रकृति वालों को नहीं देना चाहिये। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

२. अमृतार्णव रस (ज्वर)।

द्रव्य-शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म और अभ्रक भस्म ५-५ तोला।

विधि-सब को मिलाकर चित्रकमूल के क्वाथ की ७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा-१ से ३ गोली, दिन में २ बार निवाये जल, कण्टकार्यादि क्वाथ (नागरादि पाचन) या सुदर्शन चूर्ण के अर्क के साथ देवें।

उपयोग-यह रस आमाशयिक विकार सह विषमज्वर को दूर करता है। आमाशय में दोष प्रकोप होकर उस स्थान की पचन-क्रिया बिगड़ती है। फिर वहां पर आमसञ्चय होकर ज्वर की उत्पत्ति होती है। इसी हेतु से आयुर्वेद ने ज्वर चिकित्सा में दोषों को पचन कराने वाली औषधियों का उपयोग प्रधानता से किया है। इस रस में चित्रकमूल के क्वाथ की ७ भावनायें देने का रहस्य भी यही है। आमाशय में दोषसञ्चय होने का निमित्त कारण जिस तरह उत्पन्न हुआ है, उसका विचार औषध-योजना करने पर अवश्य करना पड़ता है। एवं आमाशय के दोष से केवल ज्वर ही उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। दोष दूष्य के संयोग से इतर व्याधि भी उत्पन्न हो सकती है। इस दृष्टि से औषधि के गुणधर्म का विचार करना चाहिये।

विवेचन-केवल सामदोष से अग्निमान्द्य उत्पन्न होकर ज्वरोत्पत्ति होने पर त्रिभुवन कीर्ति, आनन्द भैरव आदि औषधियों का उपयोग होता है, किन्तु सामदोषज अग्निमान्द्य का निमित्त कारण मनोव्याघात, अतिशय मानसिक श्रम, काम, शोक, भय आदि का अतियोग होने अथवा मानसिक श्रम और उसी के हेतु से उन दोनों से उत्पन्न रोगों में भी भेद स्पष्ट रूप से प्रतीत होगा ही। धातुवैषम्य को दूर करने के समय इन अन्तर की ओर अवश्य लक्ष्य देना पड़ता है।

मिथ्या आहार से उत्पन्न हुई धातुवैषम्य प्रवृत्ति स्थूल रूप की होती है और मनोव्याघातज धातुवैषम्य प्रवृत्ति सूक्ष्म स्वरूप की होती है। इस हेतु से इसका परिणाम पहले मन पर होकर फिर शरीर पर प्रकट होता है तथा मिथ्या आहारजन्य वैषम्य में स्थूल शरीर के अवयवों में दोष संगृहीत होता है। इस तरह शास्त्रीय संप्राप्ति की दृष्टि से इन दोनों में यह अन्तर है। चिकित्सा करने में इस उत्पत्ति की ओर दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिये।

इस अमृतार्णव रस में अभ्रक और लोह इन दोनों का कार्य मनोव्याघात जन्य दोषदुष्टि को नष्ट कर धातुसाम्य-प्रवृत्ति स्थापित करना है। इस हेतु से कामज्वर, भय या शोक से उत्पन्न ज्वरों पर यह रस ब्राह्मी अर्क, पित्तपापड़ा, सारिवादि क्वाथ या सारस्वतारिष्ट आदि अनुपान के साथ दिया जाता है। ज्वर वेग तीव्र होने पर इस रस के सेवन-काल में कुछ अन्तर पर (१-२ घण्टे या पश्चात्) प्रवाल पिष्टी, मौक्तिक पिष्टी और गिलोयसत्व को मिलाकर देना चाहिये।

विषम ज्वर में दोषों का प्रसार भिन्न-भिन्न दूष्यों में होता है और दोष-दूष्यों का यह संयोग भिन्न-भिन्न प्रकार के निमित्त कारणों से होता है। जितना दोषदूष्य का संयोग तीव्र हो, उतना ही रोग तीव्र होता है। इस प्रकार के तीव्रप्रकोपकाल में महाज्वरांकुश, नारायण ज्वरांकुश, मृत्युञ्जय रस आदि औषधियां विशेष उपयोगी होती हैं। इन सब रसों में स्थूल प्रकोप को नष्ट करने का गुण है, किन्तु धातुओं में लीन दोषों का प्रशमन करने की सामर्थ्य नहीं है। यह महत्त्व का कार्य अमृतार्ण रस कर सकता है। विषमज्वर जितना जीर्ण हो, उसके साथ प्लीहावृद्धि, सर्वाङ्ग में पाण्डुता, बलहानि आदि उपद्रव अधिक रूप में हों, उतना ही अमृतार्णव का उपयोग अधिक होता है।

आमाशय के दोष से उत्पन्न होने वाले छोटे बच्चों के और बड़े मनुष्यों के रोगों में अमृतार्णव अच्छा कार्य करता है। छोटे बच्चों के क्षीरालसक और पारिगर्भिक विकारों में कारणभेद और अवस्था भेद से आमाशयदोष ही कारण होता है। क्षीरालसक में आमाशयस्थ कफ बढ़कर पक्वाशय और बृहदन्त्र में पचन-व्यापार की विकृति होकर रसरक्तवाही स्रोत रुद्ध होते हैं फिर उसी हेतु से शिशु क्षीण हो जाता है। उस विकार में शिशु का ज्वर बढ़ जाता है, हाथ-पैर कृश होते हैं, मस्तिष्क बड़ा हो जाता है, बार-बार मुँह से पानी निकलता है; कभी कोष्ठबद्धता तथा कभी अपक्व और श्लेष्म-मिश्रित पतला दस्त होता है। इस व्याधि में अमृतार्णव का अच्छा उपयोग होता है।

पारिगर्भिक विकार में सगर्भा माता के दूध से अधिक स्निग्धता, गुरुता और विकृति होने से उसका योग्य पचन नहीं होता। इस हेतु से आमाशयस्थ कफ दोष की वृद्धि होती है। फिर पचन-क्रिया बिगड़कर स्रोतों का अवरोध होकर बालक सूखता जाता है। यह विकृति माता की सगर्भावस्था के हेतु से होती है। इसमें भी विशेषत: क्षीरालसक के समान लक्षण होते हैं। इसके अतिरिक्त आमाशय विकृति के हेतु से बालक सारे दिन रोता ही रहता है, किसी भी स्थिति में उसे चैन नहीं पड़ता, मस्तिष्क और गाल शुष्क से भासते हैं, क्षुधा संदिग्ध, उदर में भारीपन, अति थकावट, बार-बार हरे दस्त और उदास एवं निस्तेज मुखमण्डल आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पहले वमन (बचप्रधान औषधि) देकर आमाशय का संशोधन करना चाहिये; फिर अमृतार्णव रस देना चाहिये।

आमाशयस्थ विकार से बालकों को बालग्रह रोग (Infantile eclampsia) उपस्थित होता है। इस विकार में कुछ अंश में विकृत दूध भी हेतु होता है। माता का दूध विकृत हो जाने पर या माता के अतिरिक्त गोदुग्ध आदि सेवन होता हो तो उसकी सम्हाल न रखने से उसमे विकृति हो जाती है। फिर उसके सेवन से आमाशय में कफ दुष्टि होती है; पश्चात् सम्पूर्ण कोष्ठ बिगड़कर उस स्थान की दोषविकृति होकर बालक को बालग्रह (धनुर्वात) के आक्षेप आने लगते हैं। पक्वाशय यह वातस्थान होने से उस स्थान में वात-विकृति होती है। उदर में वेदना, अफारा, ज्वर, मलावरोध या बार-बार दुर्गन्धयुक्त, काला-सा, योग्य रचना रहित, थोड़ा-थोड़ा दस्त होते रहना, बार-बार आक्षेप (दौरा) आना, आक्षेप तीव्र वेगपूर्बक आना, प्रत्येक दौरे के साथ बालक की शक्ति का ह्रास होना आदि लक्षण होते हैं। इस विकार पर या उस स्थिति में लक्ष्मीनारायण रस के समान अमृतार्णव रस का भी उपयोग होता है।

शिशु के कीटाणुजन्य अतिसार में दुग्धविकृति ही कारण होती है। ग्रीष्मऋतु में दूध जल्दी खराब हो जाता है। ऐसा खराब दूध बच्चे को पिला देने से अतिसार हो जाता है। इस विकार की तीव्रावस्था में एरण्ड तैल, दुर्जलजेता रस या सर्वांगसुन्दर रस प्रयुक्त होता है; किन्तु तीव्रावस्था का वेग मन्द होने पर (या तीव्रावस्था में वातप्रधान लक्षण अधिक प्रबल होने पर) अर्थात् बच्चे को धनुर्वात के आक्षेप, कम्प, अपतानक आदि विकार उपस्थित होने पर और साथ-साथ ज्वर, ग्लानि और शक्तिपात होने पर अमृतार्णव रस का उपयोग किया जाता है।

बड़े मनुष्य को अपचन और फिर बद्धकोष्ठ, ये विकार आमाशय की कफदुष्टि से उत्पन्न होते हैं। इस विकार में अग्निमान्द्य, मुँह में बार-बार मीठा जल आते रहना, उदर में भारीपन, भोजन की इच्छा कम रहना, अरुचि और विशेषत: स्निग्ध और भारी अन्न की चाह न होना आदि लक्षण होने पर और उसके साथ बल का ह्रास होने पर अमृतार्णव रस का अच्छा उपयोग हुआ है।

इस प्रकार आमाशय विकृति के हेतु से आमाशय में कफ की वृद्धि होकर बार-बार तमक श्वास का दौरा होता रहता है। इस विकार में कफप्रधान विकृति के हेतु से महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) पर दबाव पड़ने से तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस स्थिति में आरोग्यवर्धिनी और अमृतार्णव दोनों औषधियाँ उपयोगी हैं। पक्वाशय और बृहदन्त्र में मलसञ्चय अधिक होने और वातदोष का प्रधान्य होने पर आरोग्यवर्धिनी देनी चाहिये। विकार केवल आमाशय में ही हो और कफ की प्रधानता हो तो अमृतार्णव का उपयोग करना चाहिये। यह औषधि दौरा शमन हो जाने पर जीर्ण विकार में उपयोगी होती है। तीव्र वेग के समय दोषदूष्यादि के विचार से श्वासकुठार, समीरपन्नग, रसकर्पूर या सोम का फाण्ट आदि वातघ्न और श्वासहर औषधियों को प्रयोजित करनी चाहिए।

इस औषध में कज्जली जन्तुघ्न, योगवाही, रसायन, विकासी, ओर व्यवायी गुणों वाली है। इसके गुणधर्म के हेतु से श्लेष्मदुष्टि नष्ट होकर धातुसाम्य स्थापित होता है। अभ्रक भस्म और लोह भस्म का कार्य रसायन आदि गुणों के हेतु से अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त पहुँच जाता है। अभ्रक भस्म में वातवाहिनियों और वातवह केन्द्र को शक्तिदायक और शामक गुण है एवं लोह भस्म में रक्त को सबल बनाकर सारे शरीर के बल को बढ़ाने का गुण होता है। बच्छनाभ ज्वरहर, वेदनाशामक और वात के आवेग को दमन करने वाला है। बच्छनाग को गोमूत्र में शुद्ध करके मिलाने से वह हृदय की शक्ति क्षीण नहीं करता। चित्रकमूल में अग्निप्रदीपक, पाचक और आमाशयस्थ कफदोष की विषमता को नष्ट करना तथा लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में से वात-दुष्टि को दूर करना, ये गुण अवस्थित हैं। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

३. सुवर्ण चिन्तामणि।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, शुद्ध खर्पर (जसदभस्म), ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म (शतपुटी), नागभस्म, वंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्यमाक्षिक भस्म, वैक्रान्त भस्म, हीरा भस्म, नीलम पिष्टी, मोती पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, पन्नापिष्टी, माणिक्य पिष्टी, गोमेदमणि पिष्टी, राजावर्त पिष्टी, पुखराज पिष्टी, वैडूर्य (लहसुनिया) पिष्टी, शंख भस्म, वराटिका भस्म, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध हरताल (माणिक्य रस), शुद्ध मैनसिल, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध बच्छनाभ, उसारे रेवन, शुद्ध जमालगोटा, काली निशोथ, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, दंतीमूल, धतूरे के शुद्ध बीज, गोकर्णी के बीज और कड़वी तुम्बी के बीज, इन ४१ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पारद, गंधक की कज्जली करें। उसमें पहले बच्छनाभ, हरताल और जमालगोटे को क्रमश: मिला-मिलाकर एक जीव करें फिर भस्म और पिष्टी मिला लेवें। पश्चात् शेष काष्ठ औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला लेवें। शिलाजीत को भांगरे के रस में घोलकर मिला लेवें। फिर भांगरे के अच्छी तरह छाने हुये स्वच्छ रस और नागरबेल के पानों के रस की ७-७ भावनायें देकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ गोली, कालीमिर्च के ८ से १२ दाने और ३-४ माशे भांगरे के रस के साथ दिन में २ बार प्रात:सायं देवें।

उपयोग-चिन्तामणि रस सन्निपातिक ज्वर, अष्ट प्रकार के ज्वर, आम ज्वर, निराम ज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, जीर्णज्वर, आन्त्रिक ज्वर, त्रिदोषज ज्वर, राजयक्ष्मा जनित ज्वर, सहज ज्वर, शापाभिभूत ज्वर, अभिचारज ज्वर, भूतप्रेत, पिशाच, राक्षस और देवावेशज ज्वर इनको दूर करता है। स्थावर विष, जंगम विष, मूषकविष और व्रणजनित ज्वर आदि को यह चिन्तामणि रस शमन करता है। यह वृद्ध मनुष्यों को युवा के समान बल प्रदान करता है। यह तत्काल फल देने वाला होने से इसे चिन्तामणि संज्ञा दी है। यह रस राजाओं के सेवन करने योग्य कहा गया है।

यह वातज, पित्तज और कफज व्याधियों पर अधिक फलदायी है। इसका प्रयोग योग्य अनुपान के साथ सावधानी से करने पर इच्छित लाभ पहुँचाता है। बिगड़े हुए ज्वर और राजयक्ष्मा के हताश रोगियों के लिये यह अमृत सदृश उपकारक है।

विवेचन-सन्निपातों में सबसे पहले पचन संस्थान (उदर) का शोधन करना पड़ता है। उदर में मल, आम या कृमिजन्य विष विद्यमान होने पर वह रक्त में आकर्षित होता रहता है। इसे जब तक दूर नहीं किया जायेगा, तब तक ज्वर दूर नहीं हो सकेगा। अत: इसे दूर करने के लिए मूल प्रयोगकार ने उसारे रेवन, जमालगोटा; निशोथ, दन्तीमूल, गोकर्णी और कटु तुम्बी इस प्रयोग में मिलायी है।

रक्तगत विष को जलाने, पूय और कीटाणुओं का नाश करने और विकृत घटकों को मूलरूप में लाने के लिए पारद, गन्धक, सुवर्ण आदि भस्मों और रत्नों को मिलाया है। इसके अतिरिक्त इन भस्म-रत्नादि के हेतु से मस्तिष्क और हृदय को बल भी मिल जाता है। इस हेतु से सन्निपात की विविध अवस्थाओं में यह चिन्तामणि रस चमत्कारिक लाभ दर्शाता है।

व्रणपूयजनित ज्वर (Pyaemia) में जब पूय का प्रवेश रक्त में होता है, तब दिन में २-३ बार शीत-कम्पसह ज्वर आता है और स्वेद आकर दूर होता है। इस ज्वर में बाह्य उपचार के साथ इस चिन्तामणि रस का सेवन कराने पर कुछ दिनों में लाभ पहुँच जाता है। यदि वृक्क के क्षत में से पूय का प्रवेश रक्त में होता हो, तो स्थानिक शुद्धि के लिये वृक्काश्मरी पर कार्यकारी मूत्रल औषधि का भी साथ-साथ उपयोग करना चाहिये। परन्तु वृक्कक्षत प्रकार में इस रस का प्रयोग अधिक दिनों तक नहीं हो सकेगा।

मूषक-विष रक्त में फैल जाने पर (चूहे के काटने के १०-१५ दिनों के भीतर) स्थान-स्थान पर नीलाभ रक्त धब्बे होते हैं, वातनाड़ी और मांसपेशियों में भयंकर वेदना होती है। इस वेदना के हेतु से ज्वर, निद्रानाश और घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस मूषकविषज

ज्वर (Rat-bite fever) पर यह चिन्तामणि रस पुनर्नवाष्टक या रक्तशोधक अर्क अथवा मञ्जिष्ठादि अर्क के साथ देते रहने से ३-४ दिनों में तीव्र वेदना का दमन हो जाता है।

राजयक्ष्मा में किसी-किसी रोगी को कीटाणु विष और पूय का प्रकोप अधिक होता है। जिससे ज्वर अधिक रहता है और शक्ति बहुत कम हो जाती है। उन रोगियों को यह चिन्तामणि रस कम मात्रा में थोड़े दिन देने पर विष का दमन हो जाता है और शक्ति बढ़ जाती है और फिर क्षयहर अन्य उपचार करने का मार्ग सरल हो जाता है।

सूचना-जिन रोगियों को पीले, पतले दस्त आते हों या प्रवाहिका-जनित अन्त्रक्षत हो, उनको यह रस नहीं देना चाहिये।

४. चिन्तामणि रस (ज्वर)।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और शुद्ध जमाल गोटा इन १२ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर द्रोणपुष्पी के रस में १ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार अदरक के रस या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह रस अजीर्ण और उससे उत्पन्न ज्वर पर रामबाण है। इसके अतिरिक्त आठों प्रकार के ज्वरों और सब प्रकार के शूलों का नाश करता है।

जिस तरह ज्वर केसरी वटी में हरताल बढ़ाकर अश्वकंचुकी रस निर्माण किया है, उसी तरह ज्वरकेसरी में ताम्र भस्म और अभ्रकभस्म बढ़ाकर इस चिन्तामणि रस को तैयार किया है। ज्वरकेसरी में विशेषत: भाँगरे की भावना दी जाती है। भांगरे की भावना से जमालगोटे की उग्रता का शमन होता है किन्तु निघण्टु रत्नाकरकार ने ज्वरकेसरी को भी द्रोणपुष्पी की भावना देने को लिखा है। अत: इस रस को भी द्रोणपुष्पी के रस की भावना दी गई है। द्रोणपुष्पी में कीटाणुओं को नष्टकर विषमज्वर को दूर करने का अद्भुत गुण रहता है। इस दृष्टि से द्रोणपुष्पी की भावना विशेष हितावह मानी जाती है।

इस चिन्तामणि रस का मुख्य उपयोग अजीर्णजन्य ज्वर पर होता है। ऐसा मूल ग्रन्थकार का लेख है। ज्वर की आमावस्था कम होने पर आमज्वर के लक्षण मन्द हो जाने पर इस रस का उपयोग करना चाहिये। ज्वर के साथ शूल होने पर उसे भी यह रस दूर कर देता है। कफपित्तज ज्वर और एक दोषज ज्वर पर इस रस का उत्तम उपयोग होता है।

ज्वर आने के साथ पहले एक दो दिन तक तो उपवास करना चाहिये या फलों के रस पर रोगी को रखना चाहिये। सन्निपात ज्वर और केवल वातज्वर तथा इतर सेन्द्रिय विष से उत्पन्न ज्वर में आमानुबन्ध न होने पर रोगी को प्रारम्भ में उपवास कराने की उतनी आवश्यकता नहीं है। मुँह में से जल छूटना, उबाक बनी रहना, उदर में वायु भरा रहना, क्षुधा नष्ट हो जाना, किसी भी अन्न पर रुचि न होना, नेत्र पर भारीपन, किसी भी कार्य को करने की इच्छा न होना। मुँह का बेस्वादुपन, भोजन किया हुआ अन्न उदर में जैसा का वैसा रहा है, ऐसा भासना, कभी-कभी उदरपीड़ा होना, जड़ता और कोष्ठबद्धता इत्यादि साम लक्षणों युक्त होने पर ज्वर आने के १-२ दिन के पश्चात् चिन्तामणि रस की योजना करनी चाहिये।

ज्वरवेग अत्यधिक न हो, नाड़ी का वेग सामान्य हो और ज्वर में दाह आदि सब लक्षण मर्यादित हों, देह में गीलापन, संधिस्थानों में फूटने के समान वेदना, अंग में भारीपन, मस्तिष्क जकड़ने के समान भासना, बार-बार प्रतिश्याय, कास, प्रस्वेद न आना, मुँह में कड़वापन और अरुचि आदि लक्षण हों, तो ऐसे कफ-पित्तप्रधान ज्वर में मलावरोध होने पर चिन्तामणि रस का उपयोग करना चाहिये।

वातज्वर में ज्वर का वेग स्थिर नहीं रहना, सहसा ज्वर बढ़ता है और सहसा उतरता है। कम्प होना, कण्ठ, ओष्ठ और मुख में अतिशोथ, निद्रा नाश, बार-बार छींके आना, अंग जकड़ जाना, मस्तिष्क, छाती और सर्वांग में एक प्रकार की रूक्षता आ जाना और दर्द होना, कभी-कभी इन स्थानों में शूल चलना, मुँह में बेस्वादुपन, शौच शुद्ध न होना, मल शुष्क, काला-सा हो जाना, हाथ पैर शून्य हो जाना, पैरों में ऐंठन आना, कर्णगुंज होना, दांत भिंचना, शूल, उदर में वायु भर जाना, बार-बार उबासी आना आदि लक्षणों के साथ मलावरोध होने और मल का रंग काला-सा होने पर यह चिन्तामणि रस चिन्तामणि के तुल्य ही है।

विषम ज्वर के समान ज्वर अधिक दिनों आते रहने और फिर बद्धकोष्ठ की आदत होने से शौच शुद्धि न होना, मल चिपचिपा, छोटी-छोटी गांठों वाला और झागयुक्त होना, दस्त होने की इच्छा बनी रहना, अग्निमांद्य, जड़ता आदि सामान्य होने पर भी त्रासदायक कोष्ठशूल आदि लक्षण होने पर चिन्तामणि रस अच्छा कार्य करता है। ऐसी कोष्ठबद्धता से उत्पन्न तीव्रशूल भी इस रस के सेवन से नष्ट हो जाता है।

आमाशय में पाचक रस योग्य प्रकार का उत्पन्न न होने या आमाशय आदि पचनेन्द्रिय में शिथिलता आ जाने पर बार-बार अजीर्ण उत्पन्न होता है। इस अपचन की आदत वालों के लिये चिन्तामणि रस का उपयोग अच्छा होता है। इससे पचनेन्द्रिय की शिथिलता व अजीर्ण में सुधार हो जाता है।

चिन्तामणि रस में पाचन, विरेचन तथा पचनेन्द्रिय को किञ्चित् शक्ति देने का गुण है एवं मध्यम कोष्ठ की श्लैष्मिक कला पर सञ्चित

हुए श्लैष्मिक रस का स्राव करना और पाचक धर्म के हेतु से मल को दूर कर शूल को शमन करना आदि गुण भी रहते हैं।

विवेचन-इसमें कज्जली जन्तुघ्न, रसायन और उत्तेजक हैं। ताम्र भस्म तीव्र-पाचक और यकृत् का पित्तस्राव कराने वाली होने से कोष्ठ के पिच्छिल और दुर्गन्धयुक्त स्राव को नष्ट करती है। अभ्रक भस्म बल्य, रसायन और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाती है। त्रिफला किञ्चित् सारक, रसायन और शूलघ्न है। त्रिकटु तीव्र पाचक, उष्णवीर्य, उष्ण रसात्मक और दीपन है। जमालगोटा तीव्र सारक और विस्फोटकारक तथा द्रोणपुष्पी ज्वरनाशक, शूलहर और पाचक है।

सूचना-इस चिन्तामणि रस का उपयोग सगर्भा, बालक, वृद्ध और अति कृश रोगियों के लिये नहीं करना चाहिये। यदि करना ही पड़े तो बहुत सम्भालपूर्वक सौम्य अनुपान के साथ करना चाहिये। यह औषधि उग्र है; अत: इसके साथ प्रवालपिष्टी आदि सौम्य औषध की योजना करनी चाहिये। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

५. ज्वरारि अभ्र।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध बच्छनाभ पांचों औषधियां १-१ तोला, धतूरे के शुद्ध बीज २ तोले तथा सोंठ, कालीमिर्च और पीपल तीनों मिलाकर ५ तोले लें।

विधि-पहले कज्जली करें, फिर भस्म और विष मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों को कपड़-छन चूर्ण मिलाकर अदरक के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में तीन बार, निवाये जल या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह ज्वरारि अभ्र सर्व ज्वरों का नाश करता है। वातिक ज्वर, पैत्तिक ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, विषम ज्वर, द्वन्दज ज्वर और धातुगत विषमज्वर आदि को नष्ट करता है। एवं प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, गुल्म, अग्निमान्द्य, शोथ, कास, श्वास, हिक्का, तृषा, कम्प, दाह, शीत लगना, वमन, चक्कर आना और अरुचि आदि लक्षणों एवं उपद्रवों का भी नाश करता है।

यह ज्वरारि अभ्र रस अति व्यापक कार्यकारी है। दोषदूष्यों का संयोग होकर वह लीन होने पर जो वस्तु स्थिति निर्माण होती है, उसमें इस औषध का कार्य होता है। त्रिभुवनकीर्ति, महाज्वरांकुश, मृत्युञ्जय रस आदि का कार्य उत्क्लिष्ट दोष पर उत्तम होता है। ज्वरमुरारि (गदमुरारि) और इस ज्वरारि रस का कार्य उत्तान दोष की अपेक्षा लीन और तिर्यग्गत दोषों पर भली प्रकार से होता है, बल्कि गदमुरारि की अपेक्षा ज्वरारि अभ्रका कार्य विशेष लाभप्रद देखा गया है। अर्थात् ज्वर बिल्कुल नूतन हो और दोष-दूष्य स्वच्छ और स्पष्ट लक्षित होने पर त्रिभुवनकीर्ति आदि और वही ज्वर जीर्ण होकर दोषदूष्यादि के संयोग के लक्षण विविध प्रकार के भिन्न-भिन्न लक्षित होने पर ज्वरमुरारि रस और ज्वरारि अभ्र का उपयोग होता है। इस तरह नाग कल्प (बच्छनाभ प्रधान औषध) का कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

स्त्री विषयक शृंगार चेष्टा का चिन्तन और उसकी परिपूर्ति न होने या उस संबंध में अत्यन्त निराशा उत्पन्न होने पर मनोव्याघात होकर ज्वरोत्पत्ति हो जाती है। इस ज्वर में किन्हीं को दाह, ज्वर का तीव्र वेग और तृषा आदि लक्षण होते हैं। कइयों को प्रलाप; कम्प, कण्ठ में शुक्रता, निद्रानाश, सब अंगों में पीड़ा और शरीर अकड़ जाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस प्रकार के मानसिक व्याघातजन्य ज्वर में वातदोष का प्रकोप होता है। इस पर त्रिभुवनकीर्ति के समान उत्तान विकारनाशक औषधियों का उपयोग नहीं होता। उक्त वातजन्य लीन विष के पचनार्थ ज्वारारि रस प्रयोजित होता है। दाह आदि लक्षण प्रबल होने पर चन्द्रकला रस हितकारक माना जाता है तथा कम्प, प्रलाप आदि पर ज्वरारि अभ्र ही उपयोगी होता है।

शोकजन्य ज्वर में नष्टवस्तु का ध्यान बना रहता है; इस हेतु से वात प्रकुपित होता है। इसके अतिरिक्त खान-पान आदि में अनियमितता, देह की योग्य सम्हाल न होना, रूक्ष और अल्प अन्नसेवन आदि हेतु इसमें समाविष्ट होते हैं। शोक का सबल आघात पहले मन पर होता है जिससे सब शरीर विशेषत: वातवाहिनियां और वातवह-केन्द्र शिथिल होते हैं। फिर दोष प्रकोप होकर ज्वर हो जाता है। इस प्रकार का रोगी नष्ट वस्तु का नाम लेकर प्रलाप करता रहता है। मन में अति व्यथित हो जाता है। सब पदार्थों से उदासीनता आ जाती है। सब बातों का त्याग, यह नहीं और वह नहीं, इस तरह रोगी बिना-विचार किये बोलता रहता है। इसके अतिरिक्त तृषा लगने पर जल न मांगना, क्षुधा लगने पर भोजन न मांगना अथवा क्षुधा, तृषा का भान कम हो जाना, रोगी संज्ञारहित, दीन, दुर्बल, व्याकुल, अति हताश और शेष आयु किसी तरह पूरी करना ऐसी इच्छा व पड़े रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस तरह के जीवन से हताश रोगी ज्वरारि अभ्र के सेवन से धीरे-धीरे सुधरने लग जाते हैं।

बालक और नाजुक प्रकृति की स्त्रियों को संध्याकाल में या असमय में अपरिचित अथवा भयप्रद स्थान में जाने और मन के भीतर अनेक प्रकार की भीति उत्पन्न होकर विलक्षण मानसिक आघात पहुँच जाता है। इसका परिणाम मन की वातवाहिनियों और वातवह केन्द्र पर होता है। फिर वात प्रकुपित होकर ज्वरोत्पत्ति हो जाती है। इस ज्वर में रोगी को कम्प बना रहता है बार-बार मन में भय उपस्थित हो जाता है, मन ही मन में बड़-बड़ाहट करता रहता है, बीच-बीच में जोर से चिल्ला उठता है। व्याकुलता, तन्द्रा, विचारों में अस्थिरता, अच्छी

निद्रा न आना और किञ्चित् नेत्र लगने पर थोड़े ही समय में जागकर चिल्लाना आदि लक्षण होने पर यह ज्वरारि रस देना चाहिये।

ऐसे ज्वर में पहले वात दोष की विकृति प्रारम्भ होती है, तो भी रोगियों की मूलप्रकृति के अनुसार पित्त दोष या कफदोष के लक्षण होते हैं। दाहवृद्धि, तृषा, प्रलाप, मोह, चक्कर आना, वमन, उदर में जलन, मूत्र में दाह तथा पीला, पतला और जलन सह दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। इस स्थिति में ज्वरारि अभ्र को खस, पित्तपापड़ा, रक्त चन्दन, धनियाँ, कमल और मुलहठी के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

देह में जड़ता, ज्वर का वेग मर्यादित, आलस्य, मुँह में मीठापन, कास, श्वास, शीत बनी रहना, कम्प, बार-बार हिक्का आना, अन्न पर अरुचि, मुँह में बेस्वादुपन, भोजन सामने आने पर मुँह में जल छूटना और उबाक आने लगना आदि लक्षण हो तथा ज्वर अनेक दिनों से बना रहा हो तो ज्वरारि अभ्र का उपयोग अदरक के रस, पीपल और शहद के साथ करना चाहिये।

सन्निपातिक ज्वर में मुख्य कारण मनोव्याघात हो और मिश्रित लक्षण हों तो इस रस का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के सान्निपातिक ज्वर में और इतर सन्निपातिक ज्वरों में कितने ही अंशों में साधर्म्य और कितने ही अंशों में वैधर्म्य होता है। सन्निपात के सब लक्षण इन दोनों में समान हों, उनको तो साधर्म्य कहेंगे, किन्तु इतर सन्निपात में एक-एक अवयव समूह में पहले दोष सन्निपात का हेतु होकर फिर उसका परिणाम वातवाहिनियों, वातवह केन्द्र, और मन पर क्रमशः होता है तथा इस प्रकार के सन्निपात में प्रथम परिणाम मन पर होता है। फिर मस्तिष्कस्थ वातवह केन्द्र और वातवाहिनियाँ विकृत होकर अवयव समूह दुष्ट होते हैं। यथाहि-आन्त्रिक ज्वर में अन्त्र विकृति होकर उससे दोष-प्रकोप होता है और वहाँ से उसका प्रसार होकर आगे-आगे उसका परिणाम समस्त शरीर पर होता है तथा उन-उन अवयव समूहों के विकृति सूचक लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। श्लेष्मिक सन्निपात में श्लेष्म का स्थान, दूषित जो उरः है, वह पहले दुष्ट होता है। फिर उस स्थान का दोषसंचय सब अवयवों को दूषित करता है। इस हेतु से आन्त्रिक और श्लैष्मिक सन्निपात की चिकित्सा तथा मनोव्याघातजन्य सन्निपात की चिकित्सा में सहज प्रभेद हो जाता है। मनोव्याघात प्रकार में इस ज्वरारि अभ्रका उपयोग होता है।

विषम ज्वर और धातुगत ज्वर में ज्वरमुरारि (गदमुरारि) रस उपयोगी होता है। उस रस का गुणधर्म रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम-खण्ड में दिया है। वह जीर्ण अनियमित, विषम ज्वर और जीर्ण सन्निपातिक ज्वर में उपयोगी होती है। यदि ज्वर का मनोव्याघात कारण हो और वातप्रकोप की प्रधानता हो तो वहाँ पर इस ज्वरारि अभ्रका उपयोग किया जाता है।

श्वास रोग में श्वास के आवेग को शमन करने के लिये इस औषध का उपयोग किया जाता है। तीव्र दौरा न हो, कण्ठ और उरः स्थान जकड़े हुए भासते हों; मन में अतिशय व्याकुलता, जीभ का अति भीतर खींचना; किसी तरह रोगी को चैन न होना, सोते हुए बार बार करवट बदलना; हाथ पैर पटकना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो श्वासकुठार की अपेक्षा यह ज्वरारि अभ्र विशेष लाभ पहुँचाता है। इस रस का उपयोग विशेषतः मनोव्याघातज वातदुष्टप्रधान ज्वर में होता है। इस प्रकार के दोष-दूष्यसंयोग से उत्पन्न विषमज्वर, धातुगतज्वर और सान्निपातिक ज्वर तथा अन्य पित्त और कफ प्रधान लक्षण वाले ज्वरों में भी यह ज्वरारि अभ्र उपयोगी है।

विवेचन-इस रस में धतूरा, बच्छनाभ और अभ्रक भस्म इन द्रव्यों का संयोगजन्य गुण वेदनाशामक और मनः पीड़ा हारक है। इसमें कज्जली-जन्तुघ्न रसायन और योगवाही है। अभ्रकभस्म-मन पीड़ाहर, धातुपरिपोषण क्रम को व्यवस्थित करने वाली, रसायन और शामक है। ताम्रभस्म-पाचक, यकृत्पित्तस्रावक, कोष्ठगत दोषनाशक, यकृतप्लीहावृद्धिनाशक और क्षरणकारक है। बच्छनाभ वेदनाशामक, शोथहर, स्वेदल, मूत्रल, ज्वरनाशक और नाड़ी के वेग को मन्द करने वाला है। धतूरा=मनः पीड़ाहारक, वेदनाशामक, उत्तेजक तथा पीड़ा सहन करने की क्षमता उत्पन्न करने वाला है। त्रिकटु-पाचक, दीपक और योगवाही है। अदरक का रस-पाचक और ज्वरघ्न है। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

आम ज्वर में क्विनाइन या अन्य तीव्र औषधि का अधिक सेवन करा देने पर ज्वर कई दिनों तक नहीं छूटता। सुबह ९८ डिग्री तक स्वाभाविक उत्ताप बन जाता है; किन्तु भोजन के पश्चात् शनैः शनैः बढ़ता जाता है और सांय काल को १०१ डिग्री से १०२ डिग्री तक बढ़ जाता है। फिर रात्रि को घटने लगता है। अरुचि, मलावरोध (थोड़ा-थोड़ा दस्त आना), उदर में भारीपन, मुँह में फीकापन, मूत्र पीला हो जाना, निस्तेजस्ता, आलस्य, निर्बलता, हाथ पैर टूटते रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, मस्तिष्क में उग्रता बनी रहती है निद्रा अच्छी नहीं आती। किसी-किसी रोगी को ९८ डिग्री से ९९ डिग्री तक ही बढ़ता रहता है और निर्बलता, अग्निमान्द्य, अपचन, उदर में भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इन सब रोगियों को ज्वरारि अभ्र, प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व मिलाकर शहद के साथ सुबह व रात्रि को देते रहने और ऊपर सुदर्शन अर्क पिलाते रहने और दोपहर को केवल प्रवालपिष्टी सुदर्शन अर्क के साथ देते रहने से थोड़े ही (५-७) दिनों में ज्वर निवृत्त हो जाता है।

सूचना-रोगी को अन्न न देवें। दूध, चाय, फल आदि पर रखना चाहिये।

६. चन्द्रशेखर रस (श्लेष्मपित्तज ज्वर)।

द्रव्य-शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, कालीमिर्च १ तोला, सोहागे का फूला १ तोला तथा मिश्री ५ तोले लें।

विधि-पहले पारद, गन्धक की कज्जली करें फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला अच्छी तरह मर्दन कर ३ दिन तक मत्स्यपित्त के साथ खरल करें। फिर आध-आध रत्ती की गोलियां बनाकर सुखा लेवें। *(भै.र.)*

वक्तव्य-इस रस को मत्स्यपित्त की भावना के पश्चात् नींबू और अदरक के रस की ३-३ भावनायें देवें तो रस विशेष गुणदायक बनता है।

हमारा अनुभव-इस रस को अनेक समय के ब्रंकों न्युमोनिया में दिया गया है और इसने तात्कालिक लाभ पहुँचाया है।

मात्रा-१ से २ गोली तक, अदरक के रस के साथ दिन में २ बार देवें, फिर ऊपर कोष्ण जल पिलावें।

उपयोग-यह रस श्लेष्म-पित्त प्रधान अति उग्र ज्वर को मात्र ३ दिन में ही दूर कर देता है। इस रस के सेवन करने वालों को ज्वर उतर जाने पर मट्ठे के साथ भात और बैंगन का शाक खाने को देवें।

चन्द्रशेखर श्लेष्मपित्तज ज्वर में लाभदायक है। इस प्रकार के ज्वर में मुँह के भीतर चिपचिपापन और कड़वापन तन्द्रा, विचारों में अस्थिरता, कास, अरुचि तथा कभी दाह और कभी शीत लगना आदि लक्षण होते हैं। इसमें कफ की जड़ता, चिपचिपापन और शीतलता धर्म तथा पित्त का उष्णत्व व द्रवत्व धर्म इन सबकी वृद्धि होती है। इसी हेतु से आमाशय और उसके समीप में स्थित स्रोतस रुद्ध हो जाती है। परिणाम में ज्वर उपस्थित होता है। ऐसे समय पर स्रोतसों का रोध कम करने वाली, पाचक और उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। चन्द्रशेखर ये सब कार्य करता है। चन्द्रशेखर, मत्स्यपित्त, कालीमिर्च, सोहागा और अदरक के योग से श्लैष्मिक विकृति को दूर करता है। फिर उससे आमाशयस्थ पाचक पित्त अच्छी तरह अपना कार्य करने लगता है।

इस औषध के सेवन से प्रस्वेद अधिक आकर स्रोत और रक्त में रहा हुआ विष निकल जाता है, जिससे शरीर हल्का बन जाता है, नाड़ी का वेग मर्यादित होता है तथा पेशाब की शुद्धी होती है। इस तरह श्लेष्म और पित्तदुष्टि का नाश होकर साम्य स्थापित होता है। यह चन्द्रशेखर रस मस्तिष्कावरण प्रदाह (Meningitis) को दूर करने में भी विशेष प्रभावशाली प्रतीत हुआ है।

विवेचन-इस रस में कज्जली-जन्तुघ्न, रसायन और विकासी है। काली मिर्च-तीव्र पाचक और उत्तेजक है। सोहागा-आक्षेपहर, कीटाणुनाशक, दुर्गन्धहर, पाचक तथा कफ को पतला करने वाला है। मिश्रीहृद्य, प्रसादक और मत्स्यपित्त के स्वाद को दबाने वाली है। मत्स्यपित्त तीक्ष्णत्व, उष्णत्व और अम्लत्व धर्म बढ़ाने वाला, विकासी, व्यवायी और स्वेदल है। अदरक-श्लैष्मघ्न, ज्वरहर, पाचक, अग्निप्रदीपक और स्वेदल है। नींबू-पाचक, दीपक, सूक्ष्म स्रोतोगामी, रसों की सम्यक् उत्पत्ति करने वाला और रुचिकर है। *(औ.गु.ध.शा.)*

७. बृहत् कस्तूरीभैरव रस।

द्रव्य-कस्तूरी, कर्पूर, ताम्रभस्म, धाय के फूल, कौंच के बीच, रौप्य भस्म, सुवर्ण भस्म, मोतीपिष्टी, प्रवालपिष्टी, लोहभस्म, पाठा, बायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, खस, शुद्ध हरताल (माणिक्य रस), अभ्रकभस्म और आँवले इन १८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पहले कस्तूरी और कर्पूर को आक के पक्के पानों के स्वरस में ३ घण्टे खरल करावें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला ३ दिन आक के पानों के स्वरस में ही खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

सूचना-रोज रात्रि को खरलकर ढक्कन दृढ ढंक दें। जिससे कस्तूरी और कर्पूर अधिक उड़ न जायें।

मात्रा-१-२ गोली अदरक के रस, नागरबेल के पान रस, अर्कादि क्वाथ, ग्रन्थ्यादि क्वाथ, तगरादि कषाय या देवदार्वादि क्वाथ के साथ देवें। इसे आमातिसार, ग्रहणी और ज्वरातिसार में बेलगिरी, जीरा चूर्ण तथा शहद के साथ दिया जाता है।

उपयोग-बृहत्कस्तूरी भैरव के गुणवर्णन में मूल ग्रन्थकार ने इसे सर्व ज्वरहर कहा है। विषम ज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, भौतिक ज्वर, काम ज्वर, अभिघातज ज्वर, शत्रुकृतज्वर, सन्निपात ज्वर, डाकिनिकृत ज्वर और ग्रहपीड़ा आदि से उत्पन्न ज्वरों पर अदरक के रस के साथ देने का विधान किया है।

यह रस अग्निप्रदीपक, वातहर और मस्तिष्कशामक है। कास, प्रमेह, हलीमक, संतत आदि नूतन और जीर्ण विषमज्वर, पुनरावर्तक ज्वर, ज्वरावस्था के आक्षेप (धनुर्वात) और भूत-प्रकोपज आक्षेप, इन रोगों में अनुपान रूप से अदरक के रस का विधान किया है।

इस रस में प्रधान द्रव्य कस्तूरी है। इसके मुख्य गुणों की जब आवश्यकता होती है अर्थात् विष का तत्काल दमन कराना और अपक्व आम-मल का पचन कराना इष्ट हो तब इस बृहत्कस्तूरी भैरव की योजना की जाती है।

सन्निपात-सन्निपात में बार-बार आक्षेप आता हो या वातप्रकोपज लक्षण प्रलाप, निद्रानाश, मन की अस्वस्थता, बेचैनी आदि प्रधानरूप से उपस्थित हों, ज्वर १०२ डिग्री से अधिक हो तब इस रस के प्रयोग से चमत्कारिक लाभ पहुँचता है। यदि उदर में अति दूषित मलसंग्रह हो तो एरण्ड तैल या ग्लिसरीन की पिचकारी द्वारा पहले उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये।

सन्निपात ज्वर में पचन-संस्थान और रक्त आदि धातुओं में अपक्व, दूषित रस प्रायः विद्यमान् रहता है जो रक्त में शोषित होने पर विविध उपद्रव उपस्थित कराता है। अधिक स्वेद आना, शीतांग, मन्द-मन्द प्रलाप, तन्द्रा, अतिक्षीण नाड़ी, कम्प और शक्तिपात आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो अर्कादि क्वाथ या तगरादि कषाय के साथ यह रस देना चाहिये। प्रलापक सन्निपात में अनुपान, तगरादि कषाय विशेष अनुकूल रहता है। इसका पाठ रसतंत्रसार (प्रथम खण्ड) में है। प्रलाप एवं निद्रानाश हो तो तगरादि क्वाथ के साथ ब्राह्मी भी मिलाना चाहिये।

सूतिकाज्वर-विशेषतः गर्भाशय में रक्त में विष प्रवेश करने पर सूतिका-ज्वर की प्राप्ति होती है। लक्षण विशेषतः वातप्रकोपज आक्षेप

आदि रहते है। उस पर दशमूल क्वाथ के साथ इस रस की योजना करने पर तत्काल लाभ पहुँचाता है।

हृदय-क्षीणता-स्वल्प कस्तूरी भैरव में बच्छनाभ मिला है। अत: वह हृदय की क्षीणता होने पर पुन: पुन: नहीं दिया जाता। ऐसे स्थान पर यह बृहत् कस्तूरी भैरव निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। यह रस वातप्रधान सन्निपात में श्रेष्ठ माना गया है। इतना ही नहीं, पित्तज, वातपित्तज और वातकफज हृद्दौर्बल्य पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रस से हृदय और मस्तिष्क को बल मिलता है तथा आम पचन होकर ज्वर भी निवृत्त हो जाता है।

यह बृहत्कस्तूरी भैरव रस बालक, युवा, वृद्ध, सूतिका आदि को निर्भय रूप से सब प्रकार के ज्वरों में दिया जाता है। यदि सगर्भा का ज्वर अति बढ़ गया हो और हृदय शिथिल हो गया हो, तो निरुपायवश जीवन के संरक्षणार्थ इसका उपयोग करना चाहिये किन्तु मात्रा हो सके उतनी कम देनी चाहिये।

मधुरा आदि मुद्दती ज्वर-जब बुखार कई दिनों तक रह जाता है, तब रोग- विष धातुओं में लीन हो जाता है। इन ज्वरों में हृदय-विकृति, निद्रा-नाश, प्रलाप और शारीरिक निर्बलता अधिक होने पर अन्य औषधियों की अपेक्षा बृहत् कस्तूरी भैरव से सत्वर लाभ पहुँचता है।

विकृत ज्वर-कभी-कभी अपथ्य सेवन या औषध-योजना में भूल होने पर ज्वर कई दिनों तक नहीं छोड़ता, निर्बलता बढ़ती जाती है, रोगी का स्वभाव क्रोधी हो जाता है, बार-बार असमय पर ज्वर बढ़ता रहता है, शेष समय मन्द-मन्द बना रहता है। यकृत्प्लीहा की भी वृद्धि हो जाती है। ऐसे बिगड़े हुए ज्वरों में हृदय और मस्तिष्क के रक्षण की आवश्यकता होने पर बृहत् कस्तूरी भैरव को प्रधानता दी जाती है।

मानस-विकार-कोमल प्रकृति के पुरुष, स्त्री और बालकों को जाग्रत या स्वप्नावस्था में भय लग जाने पर मल-मूत्र का त्याग हो जाता है फिर पचनक्रिया और हृदय क्रिया दूषित हो जाती है। भय का संस्कार कभी-कभी ऐसा दृढ़ हो जाता है कि थोड़े-थोड़े समय पर बार-बार स्मरण हो जाता है और फिर मल मूत्र का त्याग हो जाता है। इसे अभिचारज विकार माना है। इसमें किसी को ज्वर रहता है, किसी को नहीं। किसी को रक्तवमन और रक्तातिसार की संप्राप्ति हो जाती है। इन सब विकारों का मूल मानस आघात है। अत: इस पर बृहत्कस्तूरी भैरव का सेवन करना आशीर्वाद के समान है। साथ-साथ भयनिवारणार्थ मानस उत्साह को भी प्रेरित करना चहिये। एतदर्थ मन संतुष्टि के उपाय करने चाहिये।

उदर-कृमि-उदर में कृमि हो जाने पर पाण्डु और हलीमक की संप्राप्ति होती है। इन रोगों में पहले कृमिघ्न एवं रेचक औषधियों द्वारा उदर शुद्धि कर लेनी चाहिये। फिर पाण्डु, हलीमक लक्षण-रूप से उपस्थित वातज आक्षेप, कण्डू, त्वचा की शुष्कता, निस्तेजता, अग्निमान्द्य आदि विकारों को दूर करने के लिए बृहत्कस्तूरी भैरव का सेवन कराया जाता है।

उन्माद-कभी-कभी भय आदि आघात से ज्वर या अतिसार नहीं होता है। प्रत्युत वातसंस्थान पर आघात पहुँच जाने से उन्माद उपस्थित हो जाता है। उसे भूत प्रकोपज उन्माद कहा है। यह कुछ समय शांत रहता है, फिर मन पर दुष्परिणाम हो कर क्रोधपूर्वक साहस के कार्य करना, दौड़ना, भागना, कूदना, मारना आदि होते हैं। इस पर बृहत् कस्तूरी भैरव या अन्य कस्तूरीप्रधान वातकुलान्तक आदि औषधि दी जाती है।

पूयज्वर-अन्तर्विद्रधि, क्षत, वृक्काश्मरी आदि होने पर पूयोत्पत्ति होती है। फिर यह पूय रक्त में जाता रहता है, रक्त में पूयविष का अधिक परिमाण होने पर शीतज्वर आ जाता है। यह ज्वर प्राय: दिन में २-३ बार आ जाता है। फिर स्वेद आकर चला जाता है। स्वेद आने पर प्रसन्नता या स्फूर्ति नहीं आती, विपरीत निर्बलता बढ़ती है, मूत्र में पूय निकलता है। ज्वर १०३ डिग्री लगभग हो जाता है। उस ज्वर के दमन और हृदय को बल देने के लिये बृहत् कस्तूरी भैरव दिया जाता है। साथ-साथ मुख्य विकारों को दूर करने वाली चिकित्सा भी करनी चाहिये।

विवेचन-इस रस में प्रधान औषधि कस्तूरी है। यह आक्षेप निवारक, उत्तेजक, मस्तिष्क शामक, वातहर, निद्राप्रद, स्वेदजनन, मूत्रल और आमपाचन गुण दर्शाती है। इन गुणों के हेतु से सन्निपात में शक्तिपात होने पर यह रस तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है।

दूसरी औषधि कपूर है। कर्पूर तत्काल पचन संस्थान पर प्रभाव पहुँचाता है, आमपाचन कीटाणुनाशक और आमाशय-संचलन क्रिया को बढ़ाना, ये ३ गुण दर्शाता है एवं रक्तवाहिनियों का प्रसारण, रक्ताभिसरण क्रिया, हृदय और श्वसन-तन्त्र को उत्तेजना देना, मस्तिष्क को किंचिद् उत्तेजित करके शान्त बनाना, शारीरिक उत्ताप का ह्रास करना और त्वचा को बल प्रदान करना आदि कार्य भी करता है।

ताम्र-भस्म-यकृदुत्तेजक होने से अन्त्र में अधिक पित्तस्राव कराकर अंत्रस्थ विष, आम और कीटाणुओं को जलाती है तथा मल को बाहर फेंकने में और रक्त का प्रसादन करने में सहायक बनती है।

हरताल-ज्वरघ्न, कीटाणु-विषनाशक, आमपाचक, कफघ्न और बल्य है। अभ्रक भस्म-मस्तिष्क, वातसंस्थान, हृदय और मांससंस्थान के लिये पोषक, उत्तेजक, कफघ्न, लीन विषनाशक और रसायन अर्थात् धातु परिपोषक-क्रिया (Constructive Matabolism) सुधारक है।

सुवर्ण-मस्तिष्क, वात नाड़ी संस्थान और हृदय के लिये बल्य, कीटाणु नाशक, आमविषघ्न और रसायन है। रौप्यभस्म-वातशामक, आमविष नाशक, मूत्रसंस्थान के लिये बल्य है। मुक्ता और प्रवाल-मस्तिष्क और हृदय के संरक्षक, उत्तापहर, निद्राप्रद, रसशुद्धिकर, पित्तशामक और

त्वचापोषक है। **लोहभस्म**-रक्ताभिसरण-क्रियावर्द्धक, रक्तप्रसादक, मूत्रशोधक, लीन विषनाशक और रसायन है। शेष द्रव्य सौम्य है और भिन्न-भिन्न लक्षणों को दूर करने में सहायक है। उक्त सब द्रव्यों के संयोग से यह रस सर्व ज्वर विनाशक और त्रिदोषशामक बना है।

८. कल्पतरु रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, शुद्ध मैनसिल, सुवर्ण-माक्षिक भस्म और सोहागे का फूला ये ६ औषधियाँ १-१ तोला, सोंठ और पीपल २-२ तोले और कालीमिर्च १० तोले लेवें।

विधि-पहले पारद-गन्धक की कज्जली करके बच्छनाभ; मैनसिल, माक्षिक और सोहागा क्रमशः मिलावें फिर सोंठ, मिर्च, पीपल का कपड़छन चूर्ण मिलाकर खरलकर बोतल में भर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ रत्ती, अदरक के रस और शहद के साथ, दिन में २ बार देवें।

उपयोग-यह कल्पतरु रस, वातश्लेष्मप्रधान ज्वर, श्वसनक ज्वर, श्वास, कास, मुखप्रसेक, शीत लगना, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि को दूर करता है। कफवातज शिरदर्द होने पर रस का नस्य कराने पर तुरन्त लाभ हो जाता है। घोर मोह, मन्द-मन्द प्रलाप और छींक आने में अवरोध हो, तो कल्पतरु रस का नस्य कराना चाहिये।

जब ज्वर-पीड़ित रोगी की छाती में कफ भरा हो, श्वास प्रकोप भी हो और घबराहट होती हो, तब इस रस का सेवन कराने पर चमत्कारिक लाभ मिलता है। यदि रोगी बेहोश हो और दांत भी दृढ़ बन्द हो गये हों, तो यह रस नासापुट में फूंक देने पर बेहोशी दूर हो जाती है।

९. पर्पटी रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १०-१० तोले लें।

विधि-दोनों की कज्जली कर अतीस के क्वाथ में खरलकर गोली बनावें। फिर सूर्य के ताप में सुखा मिट्टी की नई हाँडी में रख ऊपर तांबे की कटोरी ढक संधियों को उत्तम प्रकार से बन्द करें। संधिस्थान सूखने पर हांडी को चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि देवें। ताम्रपात्र पर शालिधान रखें। लगभग १ घण्टे में धान फूटने लगने पर अग्नि देना बंद करें। फिर यंत्र स्वांग शीतल होने पर रस को निकालकर पीस लेवें। इस रस को पर्पटी रस और नवज्वरादि रस भी कहते हैं। कितने ही ग्रन्थकारों ने इसे त्रैलाक्यसुन्दर और ज्वरांकुश संज्ञा भी दी है। *(र.र.स.)*

मात्रा-पहले अदरक के रस में जीरा और सैंधानमक मिलाकर जिह्वा पर लेप लगा लेवें। फिर अदरक के रस में २ से ३ रत्ती पर्पटी रस मिलाकर सेवन करावें और गरम कपड़ा अच्छी तरह ओढा देवें जिससे प्रस्वेद आकर ज्वर उतर जाता है।

उपयोग-यह रस नूतन ज्वरों पर, इनमें भी वातज्वर में विशेष हितकारक है। ३ दिन तक इस रस का सेवन कराते रहने से फिर से ज्वर आने की शंका भी नहीं रहती।

वर्षा के जल में भीगने, शीत लग जाने, अपथ्य भोजन के सेवन या असमय पर भोजन करने से ज्वर आ गया हो और सामान्य कब्ज हो, अधिक कब्ज न हो, तब इस रस के सेवन से लाभ पहुँच जाता है। अपचन के हेतु से बार-बार थोड़ा-थोड़ा दस्त होता हो, वह भी दूर हो जाता है।

वक्तव्य-यदि इस रस के सेवन के साथ अतीस के ६ रत्ती चूर्ण को ५ तोले गरम जल में डाल ढंक दें। फिर जल निवाया रहने पर छान कर पिला देवें (कपड़े पर अतीस का जो चूर्ण रहा हो, उसे दबाकर न निचोड़े) तो प्रस्वेद बहुत अच्छा आकर ज्वर उतर जाता है। सेन्द्रिय विष और कीटाणुओं का नाश करना, हृदय बल की वृद्धि करना, आमाशय और अन्त्र को सबल बनाना, ये सब कार्य पर्पटी रस और अतीस के संयोग से अधिक होते हैं। अतीससह पर्पटीरस का सेवन कराने पर विषमज्वर भी दूर हो जाता है।

सूचना-ज्वर उतर जाने पर अन्न की इच्छा न हो तो नहीं देना चाहिये। क्षुधा लगी हो तो मट्ठे के साथ भात देवें।

अधिक कब्ज हो तो पहले आरग्वधादि क्वाथ का सेवन कराना चाहिये या उस क्वाथ के साथ पर्पटीरस देना चाहिये।

ज्वर में मलावरोध हो या तीव्र ज्वर हो तो यह रस नहीं देना चाहिये।

१०. ज्वरसंहार।

द्रव्य-रससिंदूर अथवा हिंगुल १३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कुटकी, नीम की अन्तरछाल, कड़वा कूठ, नागरमोथा, सफेद सरसों, सेके हुए इन्द्रजौ, सोहागे का फूला, रक्तचन्दन, अतीस और ममीरी (या गुजलील-त्रायमाण) इन १३ औषधियों को कपड़-छन चूर्ण २-२ तोले लें।

विधि-सबको मिला अदरक, तुलसी, निर्गुण्डी के पान, इन तीनों के स्वरस के साथ ३-३ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(स्व. श्री पं. यादव जी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-२-२ रत्ती, दिन में २ बार, जल या ज्वरघ्न कषाय के साथ दें।

अनुपान-श्लेष्म प्रधान ज्वर और प्रतिश्यायसह ज्वर में गोजिह्वादि कषाय के साथ (यह कषाय आगे लिखा जायेगा)। न्यूमोनिया या पार्श्वशूलसह ज्वर हो तो यह रस, अभ्रक भस्म १ रत्ती और शृंगभस्म ४ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देवें। फिर ऊपर गोजिह्वादि कषाय, नौसादर और यवक्षार १-१ रत्ती मिलाकर पिला दें। सामान्य नूतन ज्वर में जल के साथ देवें।

उपयोग-यह रस अनेक ज्वरों में-विशेषत: कफ और वातप्रधान ज्वरों में प्रयुक्त होता है। यह तरुण और जीर्ण दोनों प्रकार के ज्वरों में लाभ पहुँचाता है। कफ, आम और विष को पचाता है, प्रस्वेद लाकर दोष को निकालता है, उदर को शुद्ध करता है; हृदय को बल देता है और शक्ति का संरक्षण करता है। शुष्क कास, नेत्रों में लाली या पित्तप्रकोप हो तो इस रस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

११. संतापशामक मिश्रण।

द्रव्य-गोदन्ती भस्म ८ तोले, गिलोय सत्व, प्रवालपिष्टी ४-४ तोले, जहरमोहराखताई पिष्टी २ तोले, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली २ तोले, जटामांसी, छोटी इलायची के दाने और खस इनका कपड़-छन चूर्ण १-१ तोला तथा भीमसेनी कपूर ६ माशे लें।

विधि-सबको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें।

मात्रा-१-१ माशा, शहद के साथ ३-३ घण्टे पर ३-४ बार देवें। ऊपर अमृताष्टक क्वाथ (गिलोय, नीम की अन्तरछाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्र-जौ, सौंठ, पटोलपत्र और रक्तचन्दन का क्वाथ) पिलावें।

उपयोग-संतापशामक मिश्रण ज्वरवेग अधिक हो तब व्यवहृत होता है। ज्वर में दाह, तृषा, वमन, शिरदर्द, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होने पर उनको यह शान्त करता है और ज्वरवेग को भी कम करता है। पित्तप्रधान ज्वर, मोतीझरा और विषमज्वरों में जब शारीरिक उत्ताप १०२ डिग्री से अधिक होता है, तब इस मिश्रण का सेवन कराने से मस्तिष्क का रक्षण होता है, संताप दूर होता है और ज्वरविष जल कर ज्वर कम हो जाता है। अश्मरी क्षत से उत्पन्न ज्वर के अतिरिक्त अनेक प्रकार के ज्वरों पर यह व्यवहृत होता है।

१२. निर्वेदन चूर्ण।

द्रव्य-नौसादर के फूल, फिटकरी का फूला, सोहागे का फूला, गोदन्ती भस्म, शुद्ध स्वर्णगैरिक, मीठे शोभांजन की छाल और खुरासानी अजवायन १-१ तोला और जौ या गेहूँ की राख २ तोले लेवें।

विधि-सबको मिला एक-जीव करके तुरन्त बोतल में भर लेवें। *(स्व. राजवैद्य पं. श्री रामचन्द्र जी)*

मात्रा-१-१ माशा, निवाये जल के साथ देवें।

उपयोग-ज्वरावस्था में या ज्वर न होने पर भी उत्पन्न शिरदर्द और अन्य अंगों का दर्द इस निर्वेदन चूर्ण से कम होता है, स्वेद आकर ज्वर कम होता है फिर शान्त निद्रा आ जाती है। यह औषधि आयुर्वेदिक सौम्य एस्पिरीन है। जिस तरह डॉक्टरी एस्पिरीन हृदय को निर्बल बनाती है, उस तरह की हानि इससे नहीं पहुँचती। अत: यह मिश्रण निर्भयतापूर्वक सबको आवश्यकता होने पर दिया जाता है।

१३. ज्वरान्तक रसायन।

द्रव्य-सोमल १ तोला, कली का चूना, सोहागे का फूला, कलमी शोरा और कच्ची लाल फिटकरी ५-५ तोले लें।

विधि-सबको मिला नींबू के रस में ३ घण्टे खरलकर पेड़ा बनाकर सुखा लेवें। फिर शरावसम्पुट कर ५ सेर गोबरी की आंच देवें। स्वांगशीतल होने पर निकालकर भस्म के समान अतीस का चूर्ण, चौथाई नौसादर और चौथाई प्रवालपिष्टी मिला लेवें।

मात्रा-२ से ४ रत्ती, दिन में ३ बार, शक्कर और निवाये जल, चाय या शहद के साथ।

उपयोग-यह रसायन बढ़े हुए ज्वरों में देने से घबराहट दूर करता है तथा प्रस्वेद लाकर ज्वर को उतारता है एवं अपचन, उदरपीड़ा, कफवृद्धि आदि को दूर करता है। ज्वर न हो तब देने से ज्वरविष, आम आदि को जलाकर ज्वर को रोक देता है, शीतसह आने वाले ज्वरों में उपयोगी है। पित्त ज्वर में सम्भलकर उपयोग करना चाहिये।

१४. शीतांशु रस।

द्रव्य-शुद्ध मन: शिला और शुद्ध हरताल १-१ तोला तथा त्रिकटु चूर्ण २ तोले।

विधि-इनको अच्छी तरह मिला ६ घण्टे नींबू के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(स्व. डॉ. लक्ष्मीपति)*

वक्तव्य-नींबू के स्थान पर द्रोणपुष्पी के रस में खरल करें तो अधिक लाभ पहुंचता है।

मात्रा–१-१ गोली दिन में दो बार शहद के साथ देवें। ऊपर चिरायता और कुटकी का या सुदर्शन का क्वाथ पिलावें।

उपयोग–यह शीतांशु रस शीत लगकर आने वाले मलेरिया (Malaria) ज्वरों को रोकता है। एक दो दिन तक देने से मलेरिया चला जाता है। एकांतरा और तिजारी और चातुर्थिक ज्वरों में ताप आने वाला हो उस दिन ज्वर आने के ४ (या ६) घण्टे पहले १ बार और २ (या ४) घण्टे पहले दूसरी बार शीतांशु रस का सेवन कर लेने पर ज्वर रुक जाता है। क्विनाइन के सेवन से जिस तरह लाभ के साथ हानि भी पहुँचती है और जीवनीय शक्ति निर्बल बनती है, उस तरह इस रस के सेवन से नहीं होती। मलेरिया ज्वर के अतिरिक्त सामान्य कफज्वर और अजीर्ण-ज्वर पर भी यह रस हितावह है।

अनुभव–इस रस का उपयोग हजारों रोगियों पर सफलतापूर्वक किया गया है। मलेरिया के लिये यह अति निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। अनेक मलेरिया ज्वरों में शीतांशु रस उपयोगी सिद्ध हुआ है।

१५. शीतारि रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, तीनों १-१ तोला शुद्ध जमालगोटा २ तोले, सैंधानमक, कालीमिर्च, इमली की छाल की राख (क्षार) और शक्कर १-१ तोले लें।

विधि–पारद गन्धक की कज्जली कर, शेष औषधियों का चूर्ण मिला; ३ दिन तक नींबू के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(र.यो.सा.)

मात्रा–१-१ रत्ती, दिन में २ बार, निवाये जल के साथ देवें।

उपयोग–यह शीतारि रस-शीतज्वर, वातश्लेष्मप्रधान ज्वर, अपचनजनित ज्वर और आमज्वर को दूर करता है।

१६. सिद्ध अश्वकञ्चुकी रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, सोहागे का फूला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूल, भुनी हींग, शुद्ध हिंगुल, रेवतचीनी, नागरमोथा, शुद्ध हरताल, बच, शुद्ध सोमल शुद्ध जमालगोटा और गोखरू इन २० औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर भांगरे के रस में ७ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लें। *(डॉ. रामरक्षपालजी)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ समय दें।

उपयोग–इस रस में उत्तेजक, कीटाणुनाशक, अन्त्रशोधक, दीपक, पाचन ज्वरहर और कफघ्न गुण अवस्थित हैं। इसमें सोमल और हरताल, दो उग्र द्रव्य मिलाये हैं। इस हेतु से इसका उपयोग अति सम्हालपूर्वक करना चाहिये। यह वातप्रधान और कफप्रधान रोगों पर तत्काल प्रभाव दर्शाता है। वातज, कफज, आमज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज रोगों में रोगानुसार अनुपान के साथ यह प्रयोजित होता है। किन्तु पित्तप्रधान रोगों पर उपयोगी नहीं हो सकेगा। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को या पित्तप्रधान काल (शरद् ऋतु) में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये या अति सम्हालपूर्वक कम मात्रा में करना चाहिये। प्लेग की गिल्टी, सर्पविष, बिच्छू का विष, चूहे का विष आदि पर बाहर लगाने में भी उपयोगी है। ऐसे रोगियों को आवश्यकता पर खिलाया भी जाता है।

अनुपान भेद से यह रस विविध व्याधियों में प्रयोजित होता है। यह प्रयोग २५ वर्ष पहले आबू स्थान पर किसी महात्मा द्वारा डॉक्टर साहब को मिला था। महात्माजी और डॉक्टर साहब इस रस को बार-बार प्रयोजित करते रहते थे। महात्माजी ने प्रयोग देने के समय निम्न अनुपानों से उपयोग करने को लिखवाया था।

(१) **शीतज्वर**–अदरक का रस।
(२) **वातज्वर**–भांगरे का रस।
(३) **जीर्ण ज्वर**–संभालु की राख या शहद-पीपल।
(४) **अजीर्ण ज्वर**–त्रिफलाक्वाथ या घृत।
(५) **वातपित्त ज्वर**–जीरा, शक्कर या आंवलों का चूर्ण और शक्कर।
(६) **विषमज्वर**–तुलसी या द्रोणपुष्पी का स्वरस अथवा नीम के पत्तों का रस।
(७) **आमाजीर्ण**–नागरबेल का पान या मस्तु (दही के जल के साथ)।
(८) **आम संग्रहणी**–मट्ठा, चित्रकमूल का क्वाथ, भुनी हींग या अनारदानों का रस।
(९) **आमातिसार**–मट्ठा या हरड़ का फाण्ट।
(१०) **तीक्ष्ण आमवात**–एरण्ड तैल।

(११) **अजीर्णजन्य अतिसार**-अजवायन।

(१२) **उदरवात**-घी के साथ।

(१३) **आमप्रकोपजनित कटिपीड़ा**-अजवायन और बच का चूर्ण।

(१४) **सर्पदंश**-जिस जगह सांप ने काटा हो, उस स्थान पर प्याज के रस में घिसकर लगा दें और सुहिंजने की छाल के रस अथवा सिरस के साथ सेवन करावें।

(१५) **कफयुक्त कास-श्वास**-अदरक का रस।

(१६) **बिच्छू का दंश**-प्याज के रस के साथ घिसकर लगावें।

(१७) **जलोदर**-ब्रह्मदण्डी का रस।

(१८) **अग्निमांद्य**-कलौंजी, कालाजीरा अथवा चित्रकमूल या सोहागे का फूला।

(१९) **कटिवात**-सिरस के फूलों के रस या सिरस की छाल के क्वाथ के साथ।

(२०) **वातजशूल**-शहद-पीपल या खसखस का क्वाथ।

(२१) **अस्थिवात**-बच, देवदारू और कूठ का चूर्ण।

(२२) **नाड़ीव्रण** (नासूर) पर-बिल्ली की हड्डी के साथ गोली पीसकर लगावें या पुराने गुड़ और मकड़ी के साफ जाले में मिला बत्ती बना कर नासूर में डालें।

(२३) **देहदुर्गन्ध**-सफेद चन्दन के साथ घिसकर लगावें और नेत्रबाला के साथ खिलावें।

(२४) **कर्णमूलजनित पीड़ा**-शहद या खजूर के रस के साथ मिलाकर कान में डालें।

(२५) **उदर में रक्त जम जाना**-सहिंजने के गोंद ९ माशे के साथ।

(२६) **दंतशूल**-नीलगिरी तैल के साथ लगावें।

(२७) **कफज उन्माद**-धतूरे के पत्तों के रस के साथ।

(२८) **पीनस**-कालीमिर्च के साथ।

(२९) **आध्मान**-सोंठ और शहद।

(३०) **प्लीहोदर**-गोमूत्र या निर्गुण्डी का रस।

(३१) **व्रणशोथ और गांठ**-सम्भालू (निर्गुण्डी) की जड़ या पत्तों के रस के साथ घिसकर लेप करें।

(३२) **शिरदर्द**-सन्तरे का रस।

(३३) **उदरशूल**-१ माशा लोंग के फाण्ट या सहिंजने के रस या घी के साथ अथवा तुलसी और अनारदानों के रस या गुड़ के साथ।

(३४) **अरुचि**-नींबू के रस के साथ या इलायची, मिर्च और लौंग के साथ।

(३५) **मुख दुर्गन्ध**-द्राक्षा के साथ या चौथाई रत्ती कपूर और इलायची के साथ।

(३६) **वातज शिरदर्द**-असगन्ध के चूर्ण के साथ खिलावें और लेप करें।

(३७) **शिर पर की खुजली**-गोमूत्र में मिलाकर लेप करें।

(३८) **कण्ठमाला**-पुनर्नवा मूल के क्वाथ के साथ।

(३९) **वमन बन्द करने के लिए**-शर्बत नींबू या शर्बत सन्तरा के साथ।

(४०) **अर्श**-बथुए के रस या जायफल के घासे के साथ अथवा हींग ओर पीपल के चूर्ण के साथ।

(४१) **ग्रहबाधा (भूत-बाधा)**-त्रिफला चूर्ण और घृत के साथ।

(४२) **वातप्रकोप**-भांगरे का रस।

(४३) **त्वचारोग, खुजली, दाह**-शुद्ध गन्धक के साथ।

(४४) **प्रसूता का सन्निपात**-जीयापोता या तुलसी का रस और शहद।

(४५) **वातज गुल्म**-निर्गुण्डी के पत्तों का रस।

(४६) **कफज गुल्म**-शहद या कालानमक।

(४७) **पाण्डु**-त्रिफला और पीपल का चूर्ण या पुनर्नवा का रस।

(४८) **कफ-वृद्धि**-नागरबेल के पान या अदरक का रस अथवा शहद-पीपल।

(४९) **श्वेतकुष्ठ, चित्री**-निम्ब की लकड़ी के साथ घिसकर लेप करें और खदिरछाल के क्वाथ के साथ खिलावें।

(५०) **अपस्मार**-४ रत्ती बच के चूर्ण और शहद के साथ दें और कालीमिर्च के चूर्ण के साथ सुंघावें।

(५१) **प्लेग की गांठ**-सत्यानाशी के रस के साथ सेवन करें और उसी रस में घिसकर लेप करें।

(५२) **कर्णपाक**-पुरुष के मूत्र के साथ या हींग के साथ या धतूरे के पत्तों के रस के साथ मिलाकर कान में डालें और जायफल के साथ खिलावें।

(५३) **दाह और मुखपाक**-६ माशे त्रिफला के साथ खिलावें।

(५४) **अश्मरी**-गोखरू और पाषाणभेद का या अकरकरे का चूर्ण

(५५) **मूत्रावरोध**-छोटी दूधी १ माशे या दूध की लस्सी या पेठे के रस के साथ।

(५६) **आमाशयदाह**-घी या मक्खन अथवा दही का घोल।

(५७) **वातरक्त, कुष्ठ, रक्तविकार, पामा, ब्यूची**-पुंवाड़ बीज या खदिर छाल के क्वाथ के साथ खिलावें और गोमूत्र में घिसकर लेप करें।

(५८) **सन्निपात में शीत और प्रस्वेद बन्द करने के लिए**-बच्छनाभ या भुनी कुलथी के आटे के साथ मालिस करें।

(५९) **आम और मेदोवृद्धि**-अकरकरा और शहद।

(६०) **धनुर्वात**-२ रत्ती सोहागे का फूला या गोकर्णी के क्वाथ के साथ।

(६१) **उदर में तीक्ष्ण शूल**-सैंधानमक।

(६२) **भगंदर**-नींबू के रस के साथ लगावें।

(६३) **संपूर्ण वातरोग**-निर्गुण्डी के पत्तों का रस।

(६४) **रतौंधी**-केले के रस के साथ खिलावें और स्त्री के दूध या तुलसी के रस में घिसकर अंजन करें।

(६५) **रक्तपित्त**-१ माशे सोनागेरु के साथ खिलावें।

(६६) **कटिरोग**-इमली के पत्तों या तेजपात के साथ।

(६७) **पामा**-आंवला या त्रिफला का चूर्ण।

(६८) **खुजली**-भाँगरे के रस के साथ सेवन करें और सरसों के तेल के साथ मालिश करें।

(६९) **आँख में फूला**-पुनर्नवा की जड़ के साथ घिसकर अञ्जन करें। अथवा सफेद चिरमी के मूल के साथ जल में घिसकर आँजें।

(७०) **कर्णशूल**-सोंठ के साथ स्त्री दुग्ध में घिसकर कानों में डालें।

(७१) **ऊर्ध्ववायु**-जीरा।

(७२) **अर्धांगवात और गृध्रसी**-घृत के साथ।

(७३) **गलत्कुष्ठ**-४१ दिन तक मूसली के रस के साथ।

(७४) **आमवृद्धि**-कालानमक या अमलतास की फली के गूदे के साथ देवें।

(७५) **श्वानविष**-चूने के पानी या पाठा के साथ देवें और जल में घिसकर लेप करें।

(७६) **मन्दाग्नि, जीर्णकफ**-कास-त्रिकटु, शहद।

(७७) **मूर्च्छा**-घी कुंवार की गांदल के साथ दें और गूगल, अगर और बंबूल की कोंपलों के साथ पीसकर कपालपर लेप करें।

(७८) **बद्ध कोष्ठ में विरेचन**-एरण्ड तैल या काली द्राक्षा के क्वाथ या अदरक के रस के साथ।

(७९) **कृमि**-पलाश बीज या बायविडंग के साथ।

(८०) **शिरदर्द, पीनस और आधाशीशी**-जायफल का चूर्ण।

(८१) **स्मृतिवृद्धि के लिए**-शंखाहुली स्वरस।

(८२) **अन्तर्विद्रधि**-सुहिंजने की छाल का क्वाथ।

(८३) **सर्वरोगनाशार्थ**-४० दिन तक मिश्री के साथ।

(८४) **इन्द्रलुप्त**-सफेद चिरमी के साथ मिलाकर मट्ठे में खरलकर शिर पर लेप करें।

(८५) **मकड़ी का विष**-भांगरे के रस के साथ खिलावें और लेप करें।

(८६) **पागल कुत्ते का विष**-कुचिले के चूर्ण के साथ सेवन करावें।

इसके अतिरिक्त दोष-दूष्य का विवेक करके इतर रोगों पर अनुकूल अनुपानों की योजना कर लेनी चाहिये। हमें इस रस को विविध रोगों में प्रयोग में लाने का अवकाश नहीं मिला। यह रस अधिक प्रवास करने वालों के लिये उपयोगी है। जहाँ अधिक साधन नहीं मिलते, वहाँ पर एक औषधि से विविध कार्य हो सकते हैं। प्रवास करनेवालों के लिए विशेष उपयोग समझ कर इस ग्रन्थ में इसे स्थान दिया है।

१७. विषमज्वरान्तक लोह (सुवर्णयुक्त)

द्रव्य-रसपर्पटी (समभाग की), लोहभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रक भस्म ८-८ तोले, सोहागे का फूला, सोनागेरू, वंग भस्म और प्रवाल भस्म २-२ तोले, सुवर्ण भस्म, मोतीपिष्टी, शंखभस्म और शुक्तिभस्म १-१ तोला लें।

विधि-सबको मिला निर्गुण्डी के पान, धतूरे के पान और कालमेघ के स्वरस में १-१ दिन खरलकर मोती की दो सीपों के भीतर लेप करके सुखा देवें। उन पर सीपों का संपुट बनाकर कपड़मिट्टी लगावें। मिट्टी का लेप १ इञ्च मोटा करें। उस पर राख लगा देवें जिससे लेप के जल का कुछ शोषण हो जाये। फिर निर्धूम कण्डों की आँच में रखकर बाटी के समान पकावें। मिट्टी लाल होने या गन्धक के जलने का गंध आने पर संपुट को निकाल स्वांग शीतल होने दें। फिर संपुट खोल सीप में से औषधि को निकालकर खरल कर लेवें। हम कालमेघ के क्वाथ में ३ दिन खरल कराते हैं और अन्य स्वरस में १-१ दिन खरल कराते हैं। *(स्व. श्री यादव जी त्रिकमजी आ.)*

मात्रा-१ से २ रत्ती, भुने जीरे का चूर्ण १ माशा और ४ माशे शहद के साथ या २ तोले ताजी गिलोय के क्वाथ के साथ दिन में २ या ३ बार। आमाजीर्ण सह ज्वर में हींग, पीपल और सैंधानमक के साथ।

उपयोग-यह लोह-वात, पित्त और कफ तीनों दोषों की विकृति से उत्पन्न ज्वरों को दूर करता है एवं प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, गुल्म, संतत्, सतत आदि विषमज्वर, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी; आमवृद्धि, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्, और अतिसार का भी नाश करता है, अग्नि प्रदीप्त करता है तथा बल और वर्ण की वृद्धि करता है।

यह लोह यकृद्बलवर्द्धक, कीटाणुनाशक, आमपाचक, ज्वरघ्न तथा मस्तिष्क, हृदय और रक्त के लिए पौष्टिक है। इस विषमज्वरान्तक लोह का मूल-पाठ 'भैषज्य रत्नावली का' है। इसमें आचार्यजी ने ज्वरघ्न गुण की वृद्धि हेतु निर्गुण्डी, धतूरा और काल मेघ के रस की भावना देने का विशेष विधान किया है। इस लोह का उपयोग बार-बार बढ़ने वाला जीर्णज्वर और बार-बार उलट उलटकर आने वाले विषमज्वर और राजयक्ष्मा के ज्वर पर बहुत अच्छा होता है।

विवेचन-राजयक्ष्मा का प्रारम्भ बहुधा गुप्त रूप से होता है। रोगी भ्रमवश मान लेता है कि मामूली बुखार है। यह ज्वर दिनों तक मन्द-मन्द बना रहता है। थोड़ी-थोड़ी खांसी भी चलती है। थोड़े दिनों में वह कास शुष्क और त्रासदायक बन जाती है। फिर परीक्षा कराने पर विदित होता है कि राजयक्ष्मा का आरम्भ हो गया है। इस प्राथमिक स्थिति में यह लोह गिलोय के क्वाथ और शहद के साथ दिया जाता है। यदि कफोत्पत्ति हो गई हो तो गिलोय, कटेली की जड़, एरण्डमूल और अदरक के क्वाथ के साथ (शहद मिलाकर) दिया जाता है।

अनुभव-कितने ही लोगों को ३-४ मास तक जीर्णज्वर बना रहा। शरीर अशक्त, मुंह सफेद भासना, हाथ पैर टूटते रहना आदि लक्षण बने रहते थे। ऐसी अवस्था में इस रस का प्रयोग किया गया है। मात्र १५-२० दिन में इससे लाभ देखा गया है।

जीर्णज्वर जिसमें यकृत्प्लीहावृद्धि हो गई हो, जो ज्वर महीनों से नहीं छोड़ता मन्द-मन्द बना रहता है और बार-बार थोड़े दिनों में बढ़ जाता है, जिसमें प्लीहा नाभि तक पहुँच गई हो, यकृत् पर भी शोथ आ गया हो, शरीर अतिकृश और निस्तेज हो गया हो, अग्नि अति-मन्द हो, कब्ज बना रहता हो, कार्य करने का उत्साह न रहा हो, ऐसी स्थिति में पथ्य-पालनसह भुना जीरा व शहद के साथ इस रस का सेवन कराने से धीरे-धीरे प्लीहावृद्धि का ह्रास होता जाता है, बल वृद्धि होती है और ज्वर दूर हो जाता है, आम अधिक गिरता हो और अपचनजनित पतले दस्त बार-बार लगते हों, तो वे भी दूर होकर शरीर निरोगी बन जाता है। अन्नरस द्वारा अन्त्र के भीतर राजयक्ष्मा के कीटाणुओं का प्रवेश हो जाने पर अन्त्रक्षय की सम्प्राप्ति होती है, फिर व्याकुलता, प्रारम्भ में कोष्ठबद्धता (फिर अतिसार), अग्निमान्द्य, अरुचि, शिर भारीपन; अतिसार हो जाने पर उदर में मरोड़े आना, उदर पर दबाने पर पीड़ा होना, अफारा, मंद-मंद ज्वर बना रहना और पाण्डुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर विषमज्वरान्तक लोह को लवंग चतु:सम चूर्ण और शहद के साथ देते रहने पर ज्वर, अतिसार आदि लक्षणों सह अन्त्रक्षय निवृत्त हो जाता है। रोगी को बकरी के दूध और फलों पर रखना चाहिये।

अग्न्याशय (Pancreas) की अपक्रान्ति होने पर रसक्षय (कफरोग) की प्राप्ति होती है। इस विकार में यकृत्वृद्धि, अग्निमान्द्य, उदरस्फीति, निस्तेजता, पाण्डुता, मल में साबुन सदृश वसा का स्राव होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। बालक को इस विकार पर कम मात्रा में २-४ मास तक गो-मूत्र के साथ और बड़े मनुष्य को भुने जीरे, सोंठ और सैंधानमक के साथ विषमज्वरान्तक लोह मिलाकर मट्ठे के साथ दिया जाता है।

मुद्दती ज्वर और प्रबल विषमज्वर की निवृत्ति होने पर जीर्णज्वर दीर्घकाल तक रहने पर पाण्डुरोग की प्राप्ति होती है। निस्तेज मुखमण्डल, अग्निमान्द्य, अरुचि, उदर में भारीपन और अफारा, मल के साथ आम जाना, निद्रावृद्धि, उत्साह का अभाव, कफ-कास, थोड़ा चलने आदि लघु श्रम से श्वास भर जाना, थोड़ा परिश्रम होने पर रात्रि को मामूली ज्वर आ जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो विषमज्वरान्तक लोह आशीर्वाद के समान उपकार होता है।

कामला रोग की सम्प्राप्ति रक्त में दूषित यकृत्पित्त मिल जाने पर होती है। इस पित्त के रक्त में जाने के कारण अनेक कारण हैं। पित्तवाहिनी का प्रदाह, पित्तवाहिनी में पित्ताश्मरी आ जाना एवं पित्ताशयनलिका पर अन्य तन्त्र का दबाव और कृमि आदि अनेक कारण हैं। इनमें अधिकतर

हेतु प्रदाह होता है। प्रदाहज कामला बहुधा मन्द वेग वाला होता है। इस विकार में मूत्र में पीलापन और मल में सफेद रंग जा जाता है। **नेत्र और ओष्ठ** की झिल्ली में पीलापन, दाह, उदर में गुड़गुड़ाहट, अपचन, अरुचि, हाथ पैर टूटना, कण्डू तथा नाड़ी और श्वसनक्रिया में **शिथिलता** आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार में यदि ज्वर न हो तो विषमज्वरान्तक लोह को नींबू, संतरा या मोसम्मी के रस के **साथ देवें**। रस में ४ से ८ रत्ती अपामार्ग का क्षार मिलावें, भोजन में मट्ठा और भात देवें। यदि ज्वर हो, तो विषमज्वरान्तक लोह को शहद मिले हुए गिलोय के स्वरस या क्वाथ के साथ देवें।

अपचन के हेतुओं से जब आमाशय या अन्त्र में प्रदाह होता है, तब बार-बार वायु उत्पन्न होती है। इस रोग को वात-गुल्म संज्ञा दी है। यह गुल्म कभी बड़ा और कभी छोटा हो जाता है। कभी प्रतीत भी नहीं होता, क्वचित् वेदना अधिक होती है, कभी कम होती है। मुखशोष, विषमाग्नि, शिरदर्द, हृदय में पीड़ा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर हिंगु, पिप्पली और सैंधानमक के साथ विषमज्वरान्तक लोह देना चाहिये।

उग्र औषध सेवन, दाहक विष, अधिक घृत सेवन अथवा अपचन के हेतु से उत्पन्न मूत्रदाह, मूत्रावरोध अथवा पित्तप्रमेह पर विषमजवरान्तक लोह को गिलोय के साथ दिया जाता है।

कफ पित्तप्रकोप सह कफ-कास और हृदय विकृति-जन्य श्वास रोग पर यह रस लाभ पहुँचाता है। अनुपान-शहद-पीपल। यदि कफ सरलता से न निकलता हो, तो वासास्वरस और शहद से देवें। इसे दिन में दो बार देते रहने से सरलता से कफशुद्धि होकर और कफोत्पत्ति बन्द होकर कास और श्वास दूर हो जाते हैं।

पुराना मोतीझरा तथा सतत ज्वर, एकाहिक ज्वर या चातुर्थिक आदि विषमज्वर जो दिनों से आता रहता हो, क्विनाइन लेने पर भी न गया हो, विपरीत में संताप होता हो, वैसे ज्वरों पर जीरा-शहद के साथ इस रस का प्रयोग करने पर ज्वर का शमन हो जाता है एवं रुधिर में रक्ताणु कम हो जाने से जो ज्वर न छूटता हो वह भी इसके द्वारा नष्ट होते देखा गया है।

१८. हिंगुकर्पूर वटी।

द्रव्य-उत्तम असली कच्ची हींग और उत्तम कर्पूर ८-८ तोले तथा कस्तूरी १ तोला लें।

विधि-पहले हींग और कर्पूर को मिलावें। (हींग-कर्पूर के सयोंग से गोली बांधने योग्य गीलापन आ जाता है) फिर कस्तूरी मिलाकर १-१ रत्ती की गोली बना लेवें। कदाचित् गोलियां न बन सकें, तो १०-२० बूंदें शहद मिलाकर गोलियाँ बना लें और उनको ६४ प्रहरी पीपल के चूर्ण पर डालते जायें। फिर तुरन्त शीशी में भर लेवें। सूखने तक यदि प्लेट पर खुली रखी जायेगी तो कस्तूरी व कपूर उड़ जाने के हेतु से वजन बहुत कम हो जायेगा। *(स्व. डॉ. वामन गणेश देशाई)*

मात्रा-१-१ गोली जल या २-४ तोले दूध, अथवा अदरक के रस और शहद के साथ दें। रोगी न निगल सके तो गोली को अदरक के रस और शहद में घिस जिह्वा पर लगा देवें।

उपयोग-ज्वर में सन्निपात के लक्षण-बुद्धिभ्रम, मन्द-मन्द प्रलाप, वस्त्र फेंकना, हाथ पैरों में कम्प होना, शय्या पर से बार-बार उठना, योषापस्मार (हिस्टीरिया) आदि के वेग उपस्थित होने पर यह वटी दी जाती है। आवश्यकता होने पर ३-३ घण्टे पर देते रहें।

श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) में इसके प्रयोग से कीटाणु नष्ट होते हैं, कफ की दुर्गन्ध दूर होती है तथा कफ पतला और शिथिल होकर सरलता से बाहर निकलने लगता है। विसूचिका में जब कि रोगी बहुत निर्बल हो गया हो नाड़ी गति मन्द हो, हाथ पैर ऐंठते हों उस दशा में भी यह चमत्कारी गुण दर्शाती है।

यह वटी प्रस्वेद लाती है और शारीरिक उत्ताप का ह्रास करती है। श्वास केन्द्र पर उत्तेजना पहुँचाकर श्वास-क्रिया को सबल, गम्भीर और नियमित बनाती है। इस हेतु से श्वासरोग में भी लाभ पहुँचाती है।

हृदय रोग में हृदयकम्प, हृदय में वेदना, घबराहट, चक्कर आना आदि लक्षण प्रतीत हों तो इस वटी का सेवन कराने से लाभ पहुँचता है।

शीत ज्वर में इस वटी का सेवन कराने से शीत, कम्प आदि सरलता से दूर हो जाता है।

सूचना-उदर रोगों में हींग मिलानी हों, वहाँ पर घी में भुनी हुई और उत्तेजनार्थ या फुफ्फुस विकार पर हींग देनी हो तब कच्ची हींग विशेष लाभ पहुँचाती है। अतः इस वटी में कच्ची हींग मिलाना विशेष हितकर माना जायेगा।

१९. कालाग्निभैरव रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, ताम्र भस्म ३ तोले, शुद्ध बच्छनाभ ४॥ माशे, शुद्ध हिंगुल १ तोला, धतूरे के शुद्ध बीज २ तोले, गोदन्ती भस्म और शुद्ध मैनसिल 5-5 तोले, सुहागे का फूला 2 तोले, यशद भस्म 6 तोले, शुद्ध जमालगोटा १ तोला, कालेसर्प का जहर ३ तोले, सुवर्णमाक्षिक भस्म ३ तोले, लोहभस्म १ तोला और वंगभस्म १ तोला लें।

विधि-पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। १२ घण्टे गोखरू के क्वाथ में खरलकर फिर सुखाकर बारीक चूर्ण बनावें। इसके साथ सर्प-विष और बच्छनाभ क्रमशः मिलाकर एक जीव करें। पश्चात् भस्म, हिंगुल, मैनसिल, जमालगोटा, सोहागा, धतूरा क्रमशः मिला, खरलकर एक जीव करें। इसे आक के दूध, दशमूल क्वाथ और लघु पञ्चमूल के क्वाथ में १२-१२ घण्टे खरलकर १/४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१ से २ गोली; दिन में ३ बार २-३ घण्टे पर। अर्कादि अथवा तगरादि या देवदार्वादि क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग-यह कालाग्नि भैरव दारुण सन्निपात को दूर करने में कालरूप है। पथ्यशालि चावलों का भात और दही।

कालाग्निभैरव में प्रधान औषधि-सर्पविष है, वह तत्काल अपना प्रभाव दर्शाता है। जब कफप्रकोप के लक्षण-ज्वर १०० डिग्री से १०२ डिग्री तक रहना, मन्द और भारी नाड़ी शीतल वायु या जल से दुःख होना, मस्तिष्क में भारीपन, श्वास लेने में कष्ट, छाती में कफाधिकता और शरीर-बल का ह्रास प्रतीत हो; तब यह रस चमत्कारी लाभ पहुँचाता है। यदि उदर में दूषित मल हो, तो एरण्ड तैल या ग्लिसरीन की बस्ति देकर उसे निकाल देना चाहिये।

वातप्रधान सन्निपात होने पर ज्वरवेग न्यूनाधिक होना, निद्रानाश, कम्प, दाह, पैरों में शून्यता आ जाना, उदर में शूल चलना, ज्वर १०२ डिग्री से अधिक होने पर प्रलाप होना और वेग का दमन होने पर प्रलाप बन्द हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस प्रकार में बहुधा आंतों में शुष्क मल संगृहीत हो जाता है। उसे दूरकर फिर कालाग्नि भैरव की योजना करने पर यश मिल जाता है। अनुपान अर्कादि क्वाथ।

वात-कफ प्रधान सन्निपात होने पर बहुधा एन्फ्लूएन्ज्ा में कहे हुए लक्षण-जुकाम, माँसपेशियों में वेदना, ज्वर १०३ से अधिक हो जाना, पचन संस्थान की अव्यवस्था, शिरदर्द, निद्रानाश, वातसंस्थान पर अधिकार न रहना, कम्प, आक्षेप और प्रलाप आदि में से न्यूनाधिक लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग पर कालाग्निभैरव रस गुडूच्यादि क्वाथ के साथ व्यवहृत होता है। गिलोय, तुलसीपत्र, बिल्वपत्र, लौंग, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ इन ७ औषधियों में से आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक मात्रा मिलाकर क्वाथ करना चाहिये।

सन्निपात का योग्य उपचार न होने या पथ्य-व्यवस्था का योग्य पालन न होने पर दिनों तक वह दूर नहीं होता। रोगविष धातुओं में लीन हो जाता है, शरीर अतिकृश, निर्बल और पाण्डु वर्ण का हो जाता है, अन्त्र अपना कार्य यथोचित नहीं कर सकता, तन्द्रा बनी रहती है, ज्वर १०० डिग्री या १०१ डिग्री तक रहता है। इस अवस्था में इस रस के साथ प्रवालपिष्टी, ब्राह्मी वटी मिलाकर सेवन कराई जाये तो यह रोगी को जीवनदान देता है।

मूषक विष से उत्पन्न ज्वर (Rat-bite fever) में स्थान-स्थान पर नीलाभ रक्त धब्बे होते हैं, मांसपेशियों में असह्य पीड़ा होती है एवं वातशूल भी उपस्थित होता है। इस ज्वर की तीव्रावस्था और तीव्र वेदना को दबाने के लिये मंजिष्ठादि क्वाथ या अन्य रक्तशोधक क्वाथ के साथ दिन में ३ बार यह रस दिया जाता है।

ग्रन्थिक ज्वर (Plague) अति मारक रोग है। तुरन्त योग्य उपचार नहीं हो सके तो रोगी का जीवन भय में आ जाता है। इस रोग में ज्वर १०३ डिग्री से १०७ डिग्री तक बढ़ जाता है। इस रोग की प्रथमावस्था में ही यदि कालाग्निभैरव का उपयोग किया जाये तो लाभ हो जाता है।

फुफ्फुसप्रदाहज सन्निपात (न्यूमोनिया) होने पर एक फुफ्फुस के कुछ खण्ड या दोनों फुफ्फुस पीड़ित होते हैं। दोनों फुफ्फुस प्रभावित होने पर डबल न्यूमोनिया कहलाता है। यह रोग बढ़ने पर फुफ्फुस दूषित-कफ पूर्ण हो जाता है। उसे जल में डालें तो डूब जाता है, वायु कोष और प्रणालियाँ कफ से भर जाने से श्वसन-क्रिया में अति कष्ट होता है। ज्वर १०१ डिग्री से १०४ डिग्री तक बढ़ता, घटता रहता है। जब तक कफ व श्वासकृच्छ्रता मर्यादा में हों और कफ पूयमय न बना हो, तब तक यह रोग सरलता से काबू में आ सकता है। पूयोत्पत्ति हो जाने पर प्रबल माना जाता है। इस प्रबलावस्था में भी बाह्य उपचार की उचित व्यवस्था सह कालाग्नि भैरव का प्रयोग करने पर प्रायः सफलता मिल जाती है।

सूचना-(१) रोगबल, रोगीबल, ऋतु, उपद्रव आदि का विचार करके इसकी अधिक-कम मात्रा की योजना करनी चाहिये। अधिक मात्रा कृश और निर्बल रोगी को या पित्तप्रकोप में दी जायेगी तो हानि होने की ओर अति प्रबलता में अत्यल्प मात्रा में निष्फल होने की संभावना है।

(२) इस रस में जमालगोटा मिलाया है, उसकी मात्रा बहुत कम है। वह मलशुद्धि में कुछ सहायता करा सकेगा, किन्तु प्रारम्भ में बस्ति देकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये।

(३) जिनको पहले पेचिश का रोग हो गया हो उनको उदर में थोड़ा सा कष्ट प्रतीत हो तो तुरन्त भुना जीरा, बेलगिरी आदि का चूर्ण औषधि के साथ मिला देना चाहिये।

(४) सगर्भा एवं पित्तप्रकृति वालों को यह रस नहीं देना चाहिये।

२०. न्यूमोनिया प्रकाश।

द्रव्य–शुद्ध बच्छनाभ १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध मल्ल ६ माशे, ताम्रभस्म ६ माशे, अभ्रक भस्म ६ माशे, अकरकरा, जावित्री, जायफल और लौंग १-१ तोला, मकरध्वज ३ माशे, शुद्ध कुचिला ३ तोले और पीपल ३ तोले लें।

विधि–सबको यथा विधि बंगला पानों के रस की ७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(वैद्य श्री देवकरणजी बाजपेयी)*

मात्रा–१-१ गोली, अदरक के रस और शहद से, दिन में २ या ३ बार।

उपयोग–यह रस श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) की सब स्थितियों में प्रयुक्त होता है। हताश रोगियों को भी इसके प्रयोग से जीवन दान मिला है। यह कभी असफल नहीं हुआ। इसकी अनेक चिकित्सकों द्वारा परीक्षा की गई है।

यह योग न्यूमोनिया की सफल औषधि है। न्यूमोनिया या डबल न्यूमोनिया की कैसी भी स्थिति में यदि इस योग का उपयोग किया जायेगा तो सफलता अवश्य मिलेगी। न्यूमोनिया में शीतांग सन्निपात होने पर भी इस रस को कस्तूरी भैरव रस के साथ मिलाकर देने से आशातीत लाभ देखा गया है।

२१. केशरादि वटी (ज्वर)।

द्रव्य–केशर, जायफल, जावित्री, लौंग और पीपलामूल १-१ तोला, कस्तूरी, रसमाणिक्य और अभ्रक भस्म ३-३ माशे लें।

विधि–सबको मिला नागर बेल के पान और अदरक के रस में १-१ दिन खरल करके आध-आध रत्ती गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, २-२ घण्टे पर २ या ३ बार।

उपयोग–यह केशरादि प्रलापक सन्निपात और सूतिकाज्वर में सत्वर फलप्रद है। रोगी उठकर भागता हो, प्रलाप करता हो, निद्रानाश हो, कपड़े फाड़ता हो, जोर-जोर से चिल्लाता हो तब यह जादू का असर करती है। जिस तरह हिंगुकर्पूर वटी प्रलाप पर लाभ पहुँचाती है, उसी तरह यह भी तुरन्त फल दर्शाती है।

२२. अर्क लोकेश्वर रस।

द्रव्य–पारद से मारित ताम्र-भस्म और शुद्ध सोमल को समभाग लें।

दोनों को मिलाकर घी कुंवार के रस में खरल करें, फिर लघु पुट में फूंकें, पुनः सोमल मिलाकर फूंके। इस तरह ३ पुट देवें। इस प्रकार तैयार की हुई ताम्रभस्म २ तोले, रससिंदूर २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, लोहभस्म ६ माशे, कस्तूरी और अम्बर १-१ तोला ओर केशर २ तोले लेवें।

विधि–सबको मिला नागरबेल के पान और अदरक के रस में १-१ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, नागरबेल या तुलसी के पत्तों के रस में।

यह वातश्लेष्मज्वर (इन्फ्लूएञ्जा) को दूर करता है। सन्निपातावस्था में भी यह सत्वर अपना चमत्कार दर्शाता है। श्वसनक ज्वर में कफ का प्रकोप हो जाये तो इसका सेवन कराने से तुरन्त लाभ दर्शाता है। इसके अलावा उदररोग और यकृत-प्लीहा-वृद्धि में भी इसके सेवन से अच्छा लाभ होते देखा गया है।

२३. सर्वज्वरहर लोह।

द्रव्य- चित्रकमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, खस, देवदारू, चिरायता, पाठा, **(नेत्रबाला)** कुटकी, छोटी कटेली (जड़ या पंचांग), सुहिंजने के बीज, मुलहठी और इन्द्र जौ (अथवा वासा) ये १-१ तोला और लोह **भस्म २० तोले** लें।

विधि- **सबको** मिला जल या तुलसी के रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार, सुदर्शन फाण्ट अथवा लक्षणों के अनुरूप अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह लोह वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, द्वंद्वज और विषम ज्वर तथा धातुओं में लीन ज्वरों को दूर करता है एवं शीत, कम्प, तृषा, दाह, अति स्वेद आना, वमन, भ्रम, रक्तपित्त, अतिसार, अग्निमान्द्य, कास, प्लीहावृद्धि, यकृद्‌वृद्धि, गुल्म, दारुण आमवात, अर्श, उदररोग, मूर्च्छा, निर्बलता, पाण्डु, हलीमक, अजीर्ण ग्रहणीदोष, राजयक्ष्मा और शोथ आदि रोगों को नष्ट करता है। संक्षेप में यह सर्वज्वरहर लोह बल्य, वृष्य, पुष्टिकर और रोगों का नाशक है तथा क्रमशः रक्तकणों की वृद्धि करता है।

विवेचन–विषमज्वरान्तक लोह और सर्वज्वरहर लोह दोनों जीर्ण ज्वरों में अति उपयोगी है। इन दोनों का कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। विषम ज्वरान्तक लोह सुवर्ण मुक्ता मिश्रित है तथा उसमें लोह के अतिरिक्त रसपर्पटी, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म की प्रधानता है। अतः यह राजयक्ष्मा आदि रोगों के कीटाणुओं का नाशक, वातशामक, हृद्य और यकृद्-उत्तेजक है। यह सब गुण सर्वज्वरहर **लोह में कम** परिमाण

में है। फिर भी यह सौम्य और मलावरोधसह जीर्ण ज्वरों पर अति उपकारक है। यह लोह दीपन पाचन, उदरशोधन करने वाला, रक्तप्रसादक, प्लीहा- वृद्धिनाशक और ज्वरघ्न है। पाण्डुता अत्यधिक हो तब यह विशेष रूप से प्रयोजित होता है।

इस लोह का उपयोग स्व. वैद्यराज पं. श्री रामचन्द्रजी शर्मा ने कई वर्षों तक सफलतापूर्वक किया है। जीर्ण मलेरिया जो क्विनाइन आदि औषधियाँ दीर्घकाल पर्यन्त लेने पर भी शमन न हुआ हो, जिन रोगियों के रक्त में रक्ताणु अति कम हो गये हों, अन्य औषधियां देने पर ज्वर प्रकुपित होता हो, उनको यह लोह गुडूच्यादि क्वाथ, निम्बादि चूर्ण या सुदर्शन चूर्ण या अर्क के साथ स्थिरतापूर्वक कम से कम १ मास और अधिक आवश्यकता हो तो २-३ मास पर्यन्त देने से सब लक्षणों के साथ ज्वर का शमन हो जाता है और शरीर सबल बन जाता है। यह लोह रक्त दबाव वृद्धि (हाई ब्लड प्रेशर) के रोगियों को निर्भयता से प्रयोजित होता है। लीनज्वर-विष को जलाने के साथ रक्तदबाव कम कराता है।

प्लीहावृद्धि यदि अधिक हुई हो फिर उस हेतु से जल-वायु परिवर्तन या थोड़ा-सा अपथ्य होने पर ज्वर आ जाता हो, इस तरह ज्वर जीर्ण होने में अति कृशता आ गई हो, शीत और उष्ण उपचार सहन न होता हो, बाहर की ठण्ड या गर्मी लगने पर ज्वर आ जाता हो, थोड़ा-सा परिश्रम होने पर भी स्वास्थ्य गिर जाता हो, थोड़े से चलने पर श्वास भर जाता हो, मस्तिष्क में घड़ी के दोलक के समान आवाज आती हो, कुछ कब्ज बना रहता हो, ऐसी अति शिथिल अवस्था में भी यह सर्वज्वरहर लोह सुदर्शन क्वाथ के साथ सेवन कराने पर अपना चमत्कार दर्शा देता है।

पाण्डु, उदर में कृमि होने से उत्पन्न हलीमक, अपचन होकर बार-बार दस्त लगना अग्निमांद्य और कास रहती हो या मन्द-मन्द ज्वर रात्रि को आ जाता हो, उस पर इस सर्वज्वरहर लोह का सेवन कराने से उपद्रवों सह ज्वर दूर हो जाता है। फिर थोड़े ही दिनों में शरीर लाल बन जाता है। विशेषता यह है कि यह रस स्वर्ण आदि बहुमूल्य पदार्थों के मिश्रण बिना भी तद्वत् गुणकारी है।

२४. स्वच्छन्दभैरव रस (ज्वर)।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध बच्छनाभ और शुद्ध गन्धक तीनों ४-४ तोले, जायफल २ तोले और पीपल का चूर्ण ७ तोले लेवें।

विधि-पारद, गन्धक की कज्जली कर बच्छनाभ मिलावें। फिर जायफल और पीपल क्रमशः मिला द्रोणपुष्पी के रस में १ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा-१ से २ रत्ती, नागरबेल के पान, अदरक के रस या द्रोणपुष्पी के रस के साथ; दिन में २ बार देवें।

उपयोग-इस रस के उपयोग से शीतज्वर, सन्निपात, विसूचिका, विषमज्वर, पीनस, प्रतिश्याय, अपचन, अग्निमांद्य, वमन और दारुण शिरोरोग ये दूर हो जाते हैं। इस रस के सेवनकाल में निराम ज्वर में दोषों का बलाबल देखकर दही-भात पथ्य रूप से दिया जाता है। यह रस जवरघ्न, कीटाणुनाशक, आमपाचक, अग्निप्रदीपक, कुछ ग्राही और कफघ्न है। यह अनुपान भेद से अनेक रोगों को नष्ट करता है।

अपचन से उत्पन्न ज्वर, जिसमें २-४ बार दस्त होते हैं, मुंह में चिपचिपापन, आलस्य, शिरदर्द, उबाक, अरुचि, प्रतिश्याय, सांधों-सांधों में वेदना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे अजीर्ण जन्य ज्वर में यह रस अदरक के रस के साथ देने से तत्काल लाभ पहुँचाता है।

इस रस को द्रोणपुष्पी के रस के साथ देने से शीतसह आनेवाले और विविध विषमज्वर सतत, एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि ज्वर दूर हो जाते हैं। पारी के बुखार में दो-दो घण्टे पर तीन बार ज्वर आने के पहले औषधि दे दी जाये तथा स्नान और भोजन न किया जाये तो ज्वर रुक जाता है। जल गरम करके शीतल किया हुआ पीवें। अति क्षुधा लगे तब दूध या चाय देवें। शक्कर और गुड, दही का सेवन कम से कम कराना चाहिये।

वर्षा ऋतु में या शीतकाल में शीतल वायु लग जाने और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप में घूमने से प्रतिश्याय हो जाता है तथा मन्द ज्वर आ जाता है उस पर यह रस नागरबेल के पान के रस से देने से लाभ पहुँचाता है।

यदि इस रस को देकर फिर ऊपर से कालीमिर्च मिलाकर उबाला हुआ निवाया दूध पिला दिया जाये और रोगी को कपड़ा ओढ़ाकर बैठा या सुला दिया जाये तो प्रस्वेद आकर सब विष निकल जाता है और प्रतिश्याय की निवृत्ति हो जाती है।

अपचनजनित विसूचिका में यह रस प्याज और नींबू के रस में मिलाकर देने से तुरन्त अपना गुण दर्शाता है। जब तक रोग का शमन होकर अच्छी क्षुधा न लगे तब तक कुछ भी भोजन नहीं देना चाहिये।

(२५) अर्धनारीनटेश्वर रस (अञ्जन)।

द्रव्य-काला सुरमा, पीपल, काँसी, सीसा, ताम्र, जसद, खपरिया, शीतलमिर्च, समुद्रझाग, मोतीपिष्टी, शुद्ध सुवर्ण, रौप्य और लोह इन १३ औषधियों को १-१ तोला तथा पीपल, सफेद मिर्च और छोटी इलायची के बीच ६-६ माशे लें। सुवर्ण, रौप्य, सीसा और जसदका वर्क बनवा लेवें। ताम्र, पीपल और कांसी को बारीक रेती से घिसवाकर कपड़छन चूर्ण करा लेवें। शेष औषधियों को कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। आठ प्रकार की धातुओं के चूर्ण या भस्मों को मिला सफेद पुनर्नवा (वसु-पञ्जाब में इटसिट) के रस के साथ लोह खरल में १४ दिनों तक

खरल करें। चमक रहित सूक्ष्म चूर्ण बन जाने पर मोतीपिष्टी, सुरमा, खपरिया, समुद्रझाग और काष्ठादि औषधियां मिलाकर २१ दिन तक सफेद पुनर्नवा के रस में पत्थर की खरल में मर्दन कर सुखा मसृण अञ्जन बनाकर बोतल में भर लेवें। *(र.यो.सा.)*

उपयोग-इस रस का उपयोग अञ्जन करने के लिये होता है। मुद्दती (मियादी) ज्वर को छोड़ शेष ज्वरों में उदरशुद्धि करा एक नेत्र में करेले के रस, बकरी के दूध, सफेद पुनर्नवा के रस या जल के साथ अथवा केवल सूखा अञ्जन कर दें और गरम कपड़े ओढ़ा देवें, जिससे थोड़े ही समय में प्रस्वेद आकर ज्वर दूर हो जाता है। कदाचित् आमदोष से पुन: ज्वर आ जाये तो फिर दूसरे नेत्र में अञ्जन कर देने से जवर की नि:शेष निवृत्ति हो जाती है। यह रस रसयोगसागर का बहुत बार का अनुभूत है। इसका प्रयोग शंकारहित होकर करें।

सूचना-इसके अञ्जन करने पर भी ज्वर न उतरे तो समझना चाहिये कि यह मुद्दती है अथवा अभिचार आदि बलवान कारण से उपस्थित हुआ है।

२६. बृहत् सुवर्णमालिनी बसन्त।

द्रव्य-सुवर्णभस्म ३ तोले, प्रवालपिष्टी ३ तोले, शुद्ध हिंगुल (रससिंदूर) ५ तोले, सफेद मिर्च का कपड़छन चूर्ण ८ तोले, कस्तूरी और गोरोचन १-१ तोला, शतपुटी नागभस्म २ तोले, वंगभस्म और अभ्रक भस्म ३-३ तोले, केशर १ तोला, मोतीपिष्टी ४ तोले, पीपल का कपड़छन चूर्ण १ तोला और खर्पर या यशद भस्म ११ तोले लेवें।

विधि-इनमें से केशर कस्तूरी को पृथक्कर शेष ४४ तोले चूर्ण को मिला खरल करके एक जीव बना लेवें। फिर गोदुग्ध में से निकाला हुआ मक्खन ३ तोले मिलाकर २ दिन खरल करें। फिर ७ दिन नींबू के रस में खरल करने से चिकनाई दूर होती है। फिर केशर, कस्तूरी मिला नींबू के रस में ३ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (र.यो.सा.)

वक्तव्य-(१) यदि सुवर्ण भस्म के स्थान पर सुवर्ण का वर्क लेवें तो उसे पहले हिंगुल (रससिंदूर) के साथ १ दिन अच्छी तरह खरल करके एक जीव कर लेवें। फिर अन्य औषधियाँ मिलावें।

(२) कितने ही चिकित्सक खर्पर के स्थान पर जसद भस्म और कोई केलेमना प्रेप्रेटा उपयोग करते हैं। दोनों से ही इस वसन्त का लाभ मिला है। इन दोनों में से अधिक लाभ किससे होता है, यह निर्णय विद्वानों के परीक्षण पर अवलम्बित है।

(३) कितने ही चिकित्सक ४२ दिन तक खरल करने का कहते हैं, किन्तु ऐसा करने पर नींबू के अम्ल की अनावश्यक वृद्धि होती है और गुणों में कमी होती है।

मात्रा-आधे से एक रत्ती दिन में २ बार, जीर्ण ज्वर में पिप्पली, शहद के साथ शुक्रक्षय एवं निर्बलता पर दूध, मलाई, मक्खन, मिश्री या असगन्ध के चूर्ण के साथ।

उपयोग-यह बृहत् सुवर्णमालिनीवस्न्त जीर्णज्वर, रक्तप्रमेह, मूत्रेन्द्रिय के भीतर वेदना, पाण्डु, कामला, शूल, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, क्षय, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, शुक्रक्षय, घोर व्यथायुक्त पित्तप्रकोप, बालग्रह, सगर्भा के रोग, योनिशूल, प्रदर, अतिसार, सूतिकारोग और सोमरोग, दौर्बल्य आदि में उपयुक्त होती है।

गुणधर्म-यह वसंत उत्तम रसायन, कुछ उष्ण उत्तेजक, बल्य, वाजीकर, हृद्य, मस्तिष्क पोषक, कीटाणुनाशक, रक्तप्रसादक और क्षयहर है। **सुवर्णमालिनी** वसंत की अपेक्षा इस वसंत में हृद्य और मस्तिष्कपोषक गुण अधिकतर रहते हैं।

विशेष क्रियास्थान-इस वसन्त की क्रिया पचनसंस्थान, प्लीहा, रक्त; वातनाड़ी; हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क और मूत्रयंत्र इन सबमें प्रकट **होती है। इनमें** पचन संस्थान को विशेष लाभ पहुँचाने के हेतु से रस, रक्त आदि सब धातुओं की उत्पत्ति शुद्ध और सबल होती है। परिणाम में जीवनीय शक्ति (Vitality) और निरोधक शक्ति (Immunity) सबल बन जाती है और नूतन रोगोत्पत्तिका भी प्रतिबन्ध हो जाता है। ४० **वर्ष की** आयु के पश्चात् जब देह की जीवनीय शक्ति का ह्रास होना आरम्भ हो तब दीर्घायु की इच्छा वालों को चाहिये कि रसायन **औषधि का सेवन** करके जीवनीय शक्ति को बलवत्तर बना लेवें। ऐसी रसायन औषधियों के भीतर इस बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त को श्रेष्ठ **माना गया है।**

वक्तव्य-यदि आमाशय का रस उग्र बन गया हो, भोजन कर लेने पर भारीपन आ जाता हो, छाती में दाह हो जाता हो और मुखपाक बार-बार हो। ऐसी पचनविकृति और पित्तप्रकोप के रोगों को यह वसन्त कम अनुकूल रहता है। ऐसा अनुभव करने पर विदित हुआ है।

अधिकारी-इस औषधि का उपयोग करने पर विदित हुआ है कि बालक वृद्ध, सगर्भा और प्रसूता सबको यह उचित लाभ पहुँचाती है। इसका प्रयोग सब ऋतुओं में निर्भयतापूर्वक हो सकता है। किसी भी प्रकृतिवालों को हानि नहीं पहुँचाती। फिर भी **वात और कफ प्रकृति** वालों को अधिक अनुकूल और पित्त प्रकृतिवालों को कम अनुकूल रहती है। पित्त प्रकृतिवालों **को देनी हो तब प्रवालपिष्टी, सुवर्णमाक्षिक** भस्म और अमृता सत्व मिलाकर देने से परिणाम अच्छा आता है।

जीर्णज्वर-रसायन संग्रहकार ने इस वसन्त को ज्वराधिकार में लिखा है और गुणधर्म के आरम्भ में **"जीर्णज्वरे देयमिदं प्रशस्तम्"**

लिखते हैं। अर्थात् इस वसन्त का सुफल जीर्णज्वर में विशेषकर प्रतीत होता है। जब जीर्णज्वर दीर्घकाल तक रह जाता है, तब प्लीहावृद्धि शुष्क कास, अग्नि मान्द्य, अरुचि, नेत्रदाह, मलावरोध और शारीरिक निर्बलता आदि लक्षण अथवा राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था के लक्षण प्राय प्रतीत होते हैं। प्राय: सायंकाल को शारीरिक उत्ताप कुछ बढ़ जाता है और हाथ, पैरों की नसों में खिंचाव होता है। उस अवस्था में इस वसन्त का उपयोग करने पर भविष्य में क्षय होने की भीति निवृत्त होती है और थोड़े ही दिनों में शरीर स्वस्थ और सबल बन जाता है इस अवस्था में मुलहठी चूर्ण, प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व, सितोपलादि चूर्ण और घी-शहद मिलाकर देना विशेष लाभदायक होता है। यदि शुष्क कास न हो, तो शहद, पीपल के साथ मिलाकर दिया जाता है। इस जीर्णज्वर पर सुवर्णमालिनी भी व्यवहृत होती है। किन्तु यह उसकी अपेक्षा अधिक लाभ पहुँचाती है।

मुद्दती और विषमज्वर-मुद्दती ज्वर दिनों तक रह जाता है, तब मस्तिष्क, हृदय और शारीरिक निर्बलता तथा पाण्डुता आ जाती है ऐसी अवस्था में ज्वर यदि ९९ डिग्री से अधिक रहता हो तो यह वसन्त मुख्य औषधि रूप से व्यवहृत नहीं होता; किन्तु आवश्यकता प मस्तिष्क और हृदय के संरक्षणार्थ सहायक औषधि रूप से प्रयुक्त होता है।

विवेचन-रक्तमह का उत्पत्ति अति मिर्च, राई, गुड या अन्य उग्र, दाहक पदार्थों का सेवन, सोमल का अधिक सेवन, शराब या तमाख का अति व्यसन, सूर्य के ताप या अग्नि का अति सेवन; कृमि-प्रकोप या सर्पदंश आदि कारणों से पित्त-प्रकोप होने से होती है। पित्त प्रको से उत्पन्न मेह को शास्त्रकारों ने याप्य अर्थात् अति परिश्रम से दूर होने वाला कहा है। इस प्रकार के रक्तमेह में मूत्र आमगन्धयुक्त, उष्ण नमकीन और रक्तवर्ण होता है। मूत्रत्याग के समय प्राय: दाह भी होता है। इस मेह पर इस वसन्त का सेवन पथ्य पालनसह कराया जाये तो थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है। अनुपान रूप से उशीरासव या खस, लोध, अर्जुनछाल और रक्तचन्दन का क्वाथ विशेष सहायक होता है।

यदि सर्पदंश, सोमल, तमाखू या अन्य दाहक विष के सेवन से. रक्तमेह होने से स्त्री या पुरुष के मूत्रमार्ग में क्षत हो गया हो तथ दाह होता हो या मूत्रमार्ग में वातप्रकोप होकर शूल चलता हो तो इस बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त को दूर्वाद्य घृत अथवा सारिवासव और उशीरास के साथ देने और दूर्वाद्य घृत की पिचकारी लगाते रहने से लाभ हो जाता है।

पाण्डु, विषमज्वर या अन्य मुद्दती ज्वर का आक्रमण हो जाने, जीर्ण अपचन, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, सोमरोग या प्रतिकूल जलवायु में रह के कारण पाण्डुता आ जाती है। शरीर काला-पीला हो जाता है, मुखनिस्तेज, मेंढक सदृश पाण्डु वर्ण का भासता है, हृदय का स्पन्दन ब जाता है, नाड़ी निर्बल और तेज हो जाती है, शारीरिक निर्बलता अग्निमान्द्य और उत्साह-क्षय आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थ में विष का निवारण कराना और रस को शुद्ध बनाकर रक्त की वृद्धि कराना ये दोनों कार्य लोह प्रधान औषधि की अपेक्षा इस वसन्त के सेवन से उत्तम प्रकार से होता है। यदि रक्तस्राव और रक्ताणुओं की कमी से पाण्डुता आई हो, अन्य प्रकार का विष न हो तो लोहप्रधा औषधि ही विशेष हितावह होती है।

श्वास-कास-शारीरिक शक्ति निर्बल बनने पर ठण्ड का आघात सरलता से लग जाता है फिर छाती में कफ संगृहीत होकर श्वासका की प्राप्ति कराता है। इस रोग के मूल कारण पाचक अग्निऔर पूर्व धातुओं से परधातु निर्माण करने वाली अग्नि, दोनों की निर्बलता है। इ रोग में बृहत् वसंत का कम मात्रा में शहद व पीपल के साथ २-३ मास तक सेवन करने पर आम-कफ जल जाता है, रक्त का प्रसाद होता है। फिर दोनों प्रकार की अग्नि प्रबल बनकर शरीर सबल हो जाता है और श्वास-कास दूर हो जाते हैं।

अतिसार-अर्श-अतिसार, ग्रहणी और अर्श रोग में बृहद् वसन्त मुख्य रूप से प्रयुक्त नहीं होती, तथापि रोगनाशक मुख्य औषधि साथ इसका सेवन कराते रहने पर शारीरिक निर्बलता नहीं आती या निर्बलता आई हो तो दूर हो जाती है और रोग पर काबू करने में सहाय मिल जाती है।

शुक्रक्षय-अति समागम, हस्तमैथुन आदि अनुचित मार्ग से शुक्र का अधिक व्यय करने पर शुक्रक्षय की संप्राप्ति होती है। फिर निस्तेजत बल माँस विहीनता, नेत्र दाह, उत्साह का अभाव, हृदय में धड़कन, स्मरणशक्ति और विचारशक्ति का ह्रास, चक्कर आना, मानसिक भ्र आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर यह वसंत थोड़े ही दिनों में चमत्कारिक लाभ पहुँचाता हैं। अनुपान असगंध का चूर्ण अ शक्कर या अश्वगन्धारिष्ट।

धातुक्षय-बहुधा रस-रक्त आदि धातुएं निर्बल बनने पर राजयक्ष्मा आदि विविध रोगों की सृष्टि होती है। यदि धातुएं बलवान बन ज तो नयी रोगोत्पत्ति रुक जाती है एवं रोग प्रथमवास्था में हो, तो केवल इस वसन्त के सेवन से ही दूर हो जाता है। यह वसन्त रस शुक्र पर्यन्त सब धातुओं के भीतर रहे हुए विष को नष्ट करती है और सबको पुष्ट बनाती है। इस हेतु से इस वसन्त का उपयोग अने रोगों के आरम्भ में मुख्य रूप से एवं रोग बढ़ बया हो तो अन्य रोग शामक मुख्य औषधि के साथ सहायक रूप से होता है।

बालकों की कृशता-सगर्भावस्था में माता निर्बल होने, शैशवावस्था में योग्य पोषण न मिलने और ज्वरादि रोगों का आक्रमण हो ज आदि कारणों से बच्चे कृश और निर्बल हो जाते हैं। उनको इस वसन्त का सेवन सरसों जितने प्रमाण में कराते रहने से थोड़े ही दिनों

बच्चों का विकास होने लगता है। फिर वे मोटे और सबल बन जाते हैं।

सगर्भा की निर्बलता-सगर्भावस्था में माता के रक्त में से रक्त और अस्थि में से मज्जा का शोषण गर्भ के भीतर होता है। इसी हेतु से माता की देह में निर्बलता और पाण्डुता आ जाती है। बलवती निरोगी स्त्रियों को आघात कम होता है। किन्तु रुग्णा और नाजुक प्रकृति की स्त्रियों को अधिक हानि पहुँचती है। ऐसी अवस्था में माता और गर्भ दोनों के सरंक्षण और सवंर्धनार्थ बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त को प्रवाल पिष्टी और सितोपलादि चूर्ण के साथ सुबह शाम २-४ मास या अधिक समय पर्यन्त देते रहने से माता और सन्तान दोनों को लाभ पहुँचता है। माता को हृदयबल, मस्तिष्क बल और उत्साह की प्राप्ति होती है एवं सन्तान भी तेजस्वी होती है।

गलगण्ड (Goitre)-यह रोग रस संस्थान में विकृति और बालग्रैवेयक ग्रन्थि (Throid Gland) की वृद्धि होने पर होता है। इस रोग की प्रथमावस्था में इस बसन्त का सेवन कराया जाये तो रससंस्थान और बालग्रैवेयक ग्रन्थि सबल हो जाती है और इस रोग का दमन हो जाता है। गण्डमाला (Scrofula) रोग जीर्ण बनने पर विष-रक्त में शोषित होता रहता है। फिर मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है और देह निर्बल और शुष्क हो जाती है। यदि ज्वर अधिक न हो तो इस वसन्त का सेवन कम मात्रा में शहद व पीपल के साथ कराते रहने और ऊपर रक्तशोधक अर्क पिलाते रहने पर रोग काबू में रहता है और शारीरिक निर्बलता नहीं आती।

वृक्काश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र-यकृत् पित्त की रचना विकृत बन जाने पर यकृत् पित्त में से अश्मरीकण बनने लगता है। फिर मूत्रमार्ग में प्रवेश करता है। जिससे बहुमूत्र (थोड़ा-थोड़ा मूत्र बार-बार निकलना), मूत्रकृच्छ्र या मूत्र में घी-तैल की चिकनाई का सा अंश आना आदि विकारों की प्राप्ति होती है। इस पर घृत-तैल आदि का सेवन कम करा, तमाखू का व्यसन हो तो उसे छुडा तथा अन्य अपथ्य सेवन होता हो तो त्याग कराकर इस वसन्त का सेवन मूत्रल अनुपान या शीतल पर्पटी के साथ कराने पर लाभ हो जाता है। यदि मूत्रकृच्छ्र, सुजाक या जीर्ण कठोर अश्मरी रोग में निर्बलता बढ़ी हो तो उसे दूर करने के लिए बृहत् सुवर्णमालिनी का सेवन गोखरू के क्वाथ के साथ कराया जाता है।

कामला-मूल प्रयोगकार ने बृहद्वसन्त को 'कामला सर्वशूलम्' वचन से कामला और पित्ताशय के शूलरोग में भी हितावह माना है। कामला रोग की उत्पत्ति सामान्यत: पित्तनलिका में प्रतिबन्ध होने पर होती है और वह क्षार द्रव्य या पित्तविरेचन और औषध प्रयोग से दूर हो जाता है। किन्तु जब यकृद् रचना और रक्त में विकृति हो जाती है तब मन्दवेगी कामला दृढ़ हो जाता है; उस पर क्षार अथवा पित्त-विरेचन द्रव्यों का उपयोग करने पर इच्छित लाभ नहीं पहुँच सकता। उस पर यकृद्बलवर्द्धक और रसप्रसादन गुणयुक्त औषधि का दीर्घकाल पर्यन्त सेवन कराना पड़ता है। ऐसे दृढ़ प्रकार पर मण्डूर और शिलाजीत के साथ इस वसन्त का सेवन कराना विशेष उपकारक माना है।

श्री वैद्यराज नगीनदास जे. मेहता का अनुभव-वे इस औषधि का उपयोग सफलतापूर्वक अनेक वर्षों से कर रहे हैं। उन्हीं की प्रेरणा से इस संस्था में इस प्रयोग का परीक्षण हुआ है। निम्नानुसार अपना विशेष अनुभव लिखते हैं।

सगर्भा की निर्बलता-सगर्भा स्त्री को यदि कफप्रकोप या वातवृद्धिजन्य निर्बलता हो तो बृहद् वसन्त कम मात्रा में प्रवालपिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म और अमृतासत्व मिलाकर देने पर लाभ पहुँचता है। यदि गर्भस्राव या गर्भपात का भय रहता हो, पहले अनेक बार ऐसा हो गया हो, तो शर्बत वनप्सा भी देते रहने से विपरीत परिणाम की भीति दूर हो जाती है।

सूचना-(१) गर्भस्राव और गर्भपात बार-बार होता हो, फिरंगविष या सुजाक विष रक्त आदि धातु में लीन हो, पित्तप्रकोप या ग्रीष्म ऋतु हो, तो इस वसन्त का उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) बृहत् सुवर्णवसन्त जिनको अनुकूलन नहीं रहती, उनको ४-६ दिन के भीतर नेत्रदाह और मूत्रदाह हो जाता है। जिनको पेशाब में जलन पहले से हो, उनको २-४ दिन में ही जलन और अधिक बढ़ जाती है।

जीर्ण मलावरोध-जीर्ण मलावरोध के रोगी बहुधा निर्बल और निस्तेज होते हैं, उनको अग्निमान्द्य भी होता है और शुक्रधातु भी पतली और उष्ण रहती है। उनको बृहत् सुवर्णवसन्त अकेली देने पर मलावरोध बढ़ाती है; किन्तु ईसबगोल की भूसी या द्राक्षा अथवा सारक औषधि के साथ देने पर प्राय: अनुकूल हो जाती है। इस वसन्त में आमाशय के बल की वृद्धि करा अग्नि को प्रदीप्त करने का विशेष गुण रहता है। इस हेतु से इन रोगियों की क्षुधा बढ़ती है, आहार में से सच्ची रसोत्पत्ति होकर बलवृद्धि होती है और मलावरोध भी नहीं होता। यदि रोगी रोज सुबह (या रात्रि को) दूध में घृत मिलाकर पीता रहे और उसका पचन सरलता से हो जाये, तो अन्त्र सबल बन जाती है और सदा के लिए यह रोग दूर हो जाता है।

राजयक्ष्मा-बृहद् वसन्त का उपयोग राजयक्ष्मा की द्वितीय श्रेणी तक सहायक रूप में अभ्रक, गिलोय, प्रवाल आदि औषधियाँ मिलाकर अनुपान रूप से च्यवनप्राश देने पर उत्तम होता है और परिणाम भी अति संतोषप्रद मिलता है। मैंने अनेक रोगियों पर उपयोग किया है। द्वितीयावस्था के प्रारम्भ में जब तक कफ सफेद हो और फुफ्फुस में बड़े विवर न हुए हों और शारीरिक निर्बलता कुछ आई हो, तो शृंग भस्म और च्यवनप्राश के साथ मिलाकर देना चाहिये। यदि उर:क्षत होकर रक्त आता हो, तो यह वसन्त स्फटिकमणि भस्म, शृंगभस्म और वासावलेह के साथ दी जाती है।

बन्ध्यत्व-सन्तानोत्पत्ति होने में स्त्रियों का रज और पुरुषों का वीर्य शुद्ध और सबल होना चाहिये एवं गर्भाशय भी निरोगी, शुद्ध और बीजग्रहणक्षम होना चाहिये। इनमें से यदि वीर्य दुर्गन्धमय, उष्ण या पतला हो या वीर्यस्थ शुक्राणुओं की निर्बलता हो, तो पुरुष को बृहद् वसन्त का सेवन २-३ मास तक कराने पर सन्तानोत्पत्ति होने के कितने ही उदाहरण मिले हैं। इस पर से विदित हुआ है कि यह वसन्त शुक्रल भी है।

रससंस्थान (Lymphatic system) की विकृति होने पर अनेक शारीरिक व्याधियाँ प्रकट होती हैं। गलगण्ड और गण्डमाला भी रसविकृतिजन्य व्याधियाँ है। इनमें गलगण्ड (Goitre) और गण्डमाला (Scrofula) पर यह वसनत हितावह मानी जायेगी। किन्तु इन दोनों पर विशेष परीक्षण की सुविधा नहीं मिली। इसलिये इन रोगों पर किस अवस्था तक यह सफल होती है, यह नहीं कहा जा सकता।

स्वानुभव-संक्षेप में जिन-जिन रोगों में अग्निमान्द्य, अशक्ति और स्फूर्ति का ह्रास प्रतीत हुआ है, उन-उन पर इस वसंत का उपयोग मुख्य या सहायक औषधि रूप से मैंने किया है। इस वसन्त के साथ च्यवनप्राश का अति सुन्दर योग होता है। ऐसा मैंने सैकड़ों रोगियों पर प्रयोग करके निश्चित किया है। जिन रोगियों के शारीरिक वजन में ह्रास हो गया हो, उनके वजन और शक्ति को यह बढ़ा देती है।

मेरे अनुभव के अनुसार इस वसंत के साथ दूध विशेष अनुकूल रहता है, किन्तु दही, मट्ठा उतना लाभदायक नहीं हुआ है। वसन्त के सेवनकाल में सात्विक, पथ्य भोजन और ब्रह्मचर्य का पालन आग्रहपूर्वक हो, तो नि:सन्देह इच्छित लाभ मिल जाता है। वात और कफ प्रकृतिवाले रोगी थोड़ी कालीमिर्च का सेवन कर सकते हैं। मैने इस वसन्त का सेवन सब ऋतुओं में किया है। मुम्बई की वायु में ग्रीष्मकाल में भी उष्णता १०० से ऊपर नहीं बढ़ती। ग्रीष्मऋतु में भी वात और कफ प्रकृति वालों को भी बृहत् सुवर्णवसन्त दी है और वह अच्छा लाभ पहुँचाती है, पित्तप्रकोप वालों को यह अनुकूल नहीं रही।

२७. अपूर्वमालिनी वसन्त।

द्रव्य-वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, वंग भस्म, प्रवाल भस्म, पारद भस्म (रससिंदूर), लोहभस्म, सोहागे का फूला और शंख भस्म ये ११ औषधियाँ समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर खरल करें। पश्चात् शतावरी और हल्दी के रस या क्वाथ की ७-७ भावनायें और कस्तूरी तथा कपूर के जल की (६४ गुने जल में एक तोला कपूर मिलाकर तैयार किये हुए जल को) १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इस रस को रसचण्डांशुकार ने बृहन्मालिनी वसन्त नाम दिया है। *(नि.र.)*

मात्रा-१ से २ गोली; दिन में दो बार देवें।

अनुपान-जीर्णज्वर में-शहद-पीपल, प्रमेहों पर गिलोयसत्व और मिश्री, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी (पथरी) पर बिजौरे की जड़ का कल्क या रस या अदरक का रस। ऐसे ही और रोगों पर समयानुकूल अनुपान की योजना करें।

उपयोग-यह अपूर्वमालिनीवसन्त रक्त, मांस आदि धातुओं के लिये पौष्टिक है। जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर, धातुक्षीणता, वातवाहिनियों की निर्बलता, प्रमेह, प्रदर, वातप्रकोप, उष्णता, पित्तवृद्धि, यकृत् और प्लीहा के दोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगों को दूर करने में अति लाभदायक है, वात और कफ प्रकृति के लिए हितकर है।

विवेचन-सुवर्णमालिनी और बृहन्मालिनी वसन्त से इस अपूर्व वसन्त की कृति और कार्य में बृहदन्तर है। बृहन्मालिनी और सुवर्णमालिनी वसन्त में सुवर्ण मौक्तिक और खर्पर प्रधान द्रव्य हैं तथा नींबू के रस की भावना दी गई है। इस वसन्त में ये तीनों औषधियाँ नहीं है एवं भावना शतावर; हल्दी, कस्तूरी और कपूर की दी है। द्रव्य व्यवस्था दृष्टि से सुवर्णमिश्रित दोनों वसन्तों का कार्यक्षेत्र रस आदि सप्त धातुऐं होने से विशेष व्यापक है, किन्तु इसका कार्य मर्यादित है।

उक्त दोनों वसन्तों का प्रभाव रससंस्थान पर और पचन संस्थान पर प्रबल होता है। इस वसन्त का कार्य वातवाहिनियों और मांससंस्थान पर प्रधान रूप से है। इस वसन्त में उत्तेजक द्रव्यों की प्रधानता है। हो सके तब तक बालक, वृद्ध और सगर्भा को नहीं देना चाहिये। वृक्क कार्य योग्य न रहता हो; तब यह लाभ नहीं पहुँचा सकेगी।

त्रिदोषजज्वर तीव्रतर रूप से आकर थोड़े समय में विकृत हो जाता है। फिर अनेक स्थानों में वातवाहिनियों को अति आघात पहुँच जाता है, वात-प्रकोप होकर शुष्कता, कम्प, हाथ-पैर भड़कना, हड़फूटन, स्थान-स्थान पर मन्द-मन्द शूल चलना, नाड़ियाँ खिंचना, हाथ पैरों में झनझनाहट होना, स्मरण शक्ति की निर्बलता, मलावरोध और उदरवात आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। रक्त में रक्ताणु का ह्रास होने से मुखमण्डल पर निस्तेजता प्रतीत होती है। माँस की शिथिलता हो जाने से किञ्चित श्रम होने पर थकावट आ जाना, श्वास भर जाना, गाल और होंठ आदि में शुष्कता, मांसभक्षी जीवों के मांस खाने की इच्छा होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। रोगियों का यकृत् बहुधा कार्य नहीं कर सकता। इनको सुवर्णप्रधान वसन्त की अपेक्षा यह अपूर्व मालिनीवसन्त विशेष लाभ पहुँचाती है।

यह अपूर्व मालिनीवसन्त धातुक्षीणता, स्वप्नदोष आदि से कृश होना; उठते-बैठते आँखों के सामने अन्धेरा आना, हाथ पैरों में फूटन,

निद्रानाश, चक्कर आना, किसी कार्य में उत्साह न होना आदि लक्षणों पर भी अच्छा उपयोगी होता है।

यदि निर्बल यकृत् वाले को भूलवश अधिक घृत आदि पौष्टिक पदार्थ दिया जाये, तो बहुमूत्र की प्राप्ति हो जाती है। फिर बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होता रहता है, पेशाब पीला और कुछ गरम होता है। इन रोगियों को यह वसन्त गिलोय के स्वरस और शहद के साथ देने पर लाभ पहुँचता है।

मांस की शिथिलता होने पर पचनसंस्थान के अवयव, आमाशय अन्त्र अग्न्याशय आदि (मांसमय होने से) अपना कार्य योग्य नहीं कर सकते हैं। यकृत् पित्त का और आग्नेय रस का स्राव कम परिणाम में होता है। यकृत् से आहार रस-संशोधन का कार्य भी योग्य नहीं होता। परिणाम में प्रमेह की उत्पत्ति हो जाती है, फिर मूत्रविकृति होकर विविध प्रकार के वर्ण वाले पित्तज प्रमेह हो जाते हैं। उन पर यह वसन्त लाभदायक है।

यकृत का आहार रस संशोधन-कार्य सुचारू रूप से न होने से अश्मरी कणों की उत्पत्ति हो जाती है तथा मूत्रकृच्छ्र हो जाता है। उसके मूल हेतु को यह वसन्त दूर करती है एवं उत्पन्न कणों को भी बिजौरे के मूल के संयोग से दूर कर देती है।

औषध मिश्रित द्रव्यों के गुणधर्म

वैक्रान्त-क्षयहर, बल्य, जन्तुघ्न और रक्त प्रसादक है।

अभ्रकभस्म-रसायन, मांससंस्थान और वात संस्थान के लिये बल्य।

ताम्रभस्म-यकृद्‌बलवर्धक, अन्त्रशोधक, आमपाचक और अग्निप्रदीपक।

सुवर्णमाक्षिक-रक्ताणुवर्धक, पित्तशामक और रक्तप्रसादक।

रौप्य भस्म-वातप्रकोपशामक बृंहण और **वृक्कदोषनाशक**।

वङ्गभस्म-शुक्रस्थान का पोषक, सेन्द्रियविषनाशक और प्रमेहघ्न।

प्रवालभस्म-सेन्द्रियविषनाशक, ज्वरघ्न और पित्तशामक।

रससिंदूर-रसायन, कीटाणुनाशक, विषघ्न और **रक्तपौष्टिक**।

लोहभस्म-रसायन, रक्ताणुवर्धक और प्रमेहहर।

सोहागा-दुर्गन्धनाशक, विषघ्न और वातदोषहर।

शंखभस्म-आमाशय पित्तशोधक, यकृद्‌बलवर्धक और वातहर।

शतावर-वातहर, वातपित्तज मेहहर और पित्तशामक।

हल्दी-रक्तशोधक, विषघ्न, प्रमेहहर, कृमिघ्न और वातशामक।

कस्तूरी-उत्तेजक, मस्तिष्कबलवर्धक और वातघ्न।

कपूर-कीटाणुनाशक, पीड़ाशामक और प्रस्वेदजनक।

२८. सर्वज्वरहर गुटिका।

द्रव्य-शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, सोहागे का फूला और प्रवाल भस्म १-१ तोला, गिलोय सत्व, वंशलोचन, गुल बनप्सा. गलाब के फूल, बीज निकाली हुई मुनक्का, बीज निकाले हुए उन्नाव, छोटी इलायची के दाने, गाँवजवाँ के फूल और शीरोखिस्त (Manna) य प्रत्येक ४-४ तोले लें।

विधि-इन सबको मिला गुलाब जल के साथ १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा-१ से ३ गोली तक, दिन में दो बार, शर्बत बनप्सा या जल के साथ देवें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से नये और पुराने बुखार दूर होते हैं। इस वटी के सेवन काल में चढ़े या उतरे हुए ज्वर का भी विचार करने की जरूरत नहीं है। यह बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सबको निर्भयतापूर्वक दी जाती है। इस वटी को चढ़े हुए बुखार में देने से उदर का शोधन होकर बुखार को धीरे-धीरे कम कराती है और बुखार आने के पहले देने से बुखार को रोक देती है, आने नहीं देती। यह कोष्ठबद्धता, पित्तवृद्धि, दाह, जुकाम और खाँसी आदि को भी दूर करती है।

परिचय-शीरोखिस्त, यह एक वृक्ष का सुखाया हुआ मधुर रस है। यह यूरोप के एक प्रकार के वृक्ष फ्रेक्सीनस ओनर्स (Fraxinus Ornus) का रस है। पंजाब, सीमान्त प्रदेश, नेपाल, अफगानिस्तान आदि में इस जाति के वृक्ष हैं। पंजाब में उसे आँगु, हुम, सुम आदि नाम दिये हैं। यह सौम्य सारक द्रव्य है। विशेषत: बालक और कोमल स्वभाववाली स्त्रियों को निवाये दूध के साथ उदर-शुद्धि के लिये दिया जाता है।

२९. ज्वरघ्नी गुटिका।

द्रव्य-शुद्ध जयपाल १ तोला, कुटकी २ तोले, सोगागेरु ३ तोले और सोंठ ६ माशें लें।

विधि-सबको मिला शहद के साथ खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर सोनागेरु में डालते जाये। यह सोनागेरु दूसरी बार अलग लेवें।

मात्रा-१ से ३ गोली, दिन में १ बार, जल के साथ देवें। उदर शुद्धि सम्यक् प्रकार से न हुई हो तो दूसरी मात्रा देवें।

उपयोग-ज्वरघ्नी गुटिका नूतन ज्वरों को दूर करती है। अनेक रोगियों को एक बार ही देने से आम, मल और विष आदि दूर होकर ज्वर का शमन हो जाता है। वातज, पित्तज, कफज द्वन्द्वज और विषम ज्वर आदि ज्वरों पर यह निर्भय औषधि है। अपचन, सामान्य मलावरोध, उदर कृमि और यकृत्-प्लीहावृद्धि को दूर कर उदर को साफ करने के लिये भी यह वटी दी जाती है।

सूचना-जिनको पेचिश या संग्रहणी रोग हो गया हो उन रोगियों को यह वटी नहीं देनी चाहिये।

३०. ज्वरहर योग।

द्रव्य-(१) प्रवाल भस्म १ भाग, गोदन्ती भस्म २ भाग और सोहागे का फूला २ भाग लें।

विधि-सुदर्शन के पत्तों के रस की ७ भावनायें देकर सुखाकर चूर्ण बना लेवें। इसमें से आधे से १ माशा चूर्ण सुदर्शन के पत्तों के १ तोला रस के साथ देने से एण्टीफेबिन और एस्पिरिन के समान सत्वर प्रस्वेद आकर शारीरिक उत्ताप कम हो जाता है।

सूचना-मात्रा अधिक होने पर पसीना अधिक निकलता है और शीतांग हो जाता है। अत: रोगी की शक्ति को देखकर आवश्यकता पर योग्य मात्रा में इस औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

शारीरिक उत्ताप स्वाभाविक हो जाने पर १ रत्ती रस सिंदूर शहद के साथ दे देने से शक्ति का संरक्षण होता है और शीतांग का भय निवृत्त हो जाता है।

(२) कलमीशोरा, फिटकरी का फूला और अतीस ५-५ तोले तथा आक के मूल की छाल २॥ तोला लें। सबको मिलाकर खरल करें। इस मिश्रण में से १-१॥ माशा निवाये जल, चाय या शहद के साथ दो-दो घण्टे पर ३-४ बार देने से बढ़ा हुआ ज्वर कम हो जाता है। विविध प्रकार के विषमज्वर, तीव्र आमवातिक ज्वर, आमज्वर, कफ प्रधान ज्वर आदि में विष को जलाकर प्रस्वेद और पेशाब द्वारा बाहर निकालने और ज्वर को शान्त करने के लिये यह प्रयोग अति उपयोगी है। छोटे बालकों को भी यह चूर्ण दिया जा सकता है।

(३) सफेद फिटकरी को मिट्टी के बर्तन के भीतर १६ गुने जल में भिगोकर १ दिन रहने दें। दूसरे दिन जल को छान लोहे की कड़ाही में डाल, पका, जल को सुखाकर बोतल में भर लेवें। इसमें से २ से ६ रत्ती को गुड के साथ मिलाकर देने से शीत लगकर आने वाला विषमज्वर तत्काल रुक जाता है। बुखार आने के ४-६ घण्टे पहले पहली मात्रा और २ घण्टे बाद दूसरी मात्रा देवें एवं बुखार न आया हो तो पुन: तीसरी बार दो घण्टे बाद एक मात्रा दे देने से बुखार रुक जाता है। जिन दिनों में बुखार न हो, उन दिनों में दिन में २ बार प्रात: सांय औषधि देनी चाहिये।

(४) सत्यानाशी के बीज १॥ माशे को जल के साथ पीसकर ४ तोले जल मिलावें। फिर आधे नींबू का रस निचोड़कर ज्वर आने के तीन-चार घण्टे पहले पिला देने से सतत् एकाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर रुक जाते हैं। कितने ही चिकित्सक नींबू के रस के बदले ३ रत्ती फिटकरी का फूला मिला देते हैं। इससे भी ज्वर का शमन हो जाता है।

सूचना-कभी-कभी इस प्रयोग से किसी-किसी को एक वमन या एक दस्त हो जाता है, परन्तु इससे कोई हानि नहीं होती, भीतर का रहा हुआ दोष निकल जाता है।

(५) अतीस, सोरा, फिटकरी का फूला और कालीमिर्च ये चारों १-१ तोला और शुद्ध हिंगुल ३ माशे मिला खरल करलें। चढ़े हुए बुखार में इस चूर्ण में से २ से ४ रत्ती निवाये जल या अदरक, पोदीना और दालचीनी मिली हुई चाय के साथ देने से प्रस्वेद आकर थोड़े ही समय में बुखार उतर जाता है।

जब ज्वर न हो तो, तब ज्वर को रोकने के लिए ३-३ रत्ती औषधि ३-३ माशा शक्कर के भीतर रखकर दिन में २ बार जल के साथ १-२ दिन तक देते रहना चाहिये।

(६) अंकोल के मूल की अंतरछाल का चूर्ण २-४ रत्ती तक निवाये जल या चाय के साथ देने से पसीना आकर ज्वर निवृत्त हो जाता है। किसी-किसी को इससे वमन होकर ज्वर विष निकल जाता है। रोगी को औषध देकर सुला देवे और रजाई या कम्बल ओढ़ा देने से अत्यन्त प्रस्वेद आ जाता है।

(७) हुलहुल के पत्ते १ तोला और काली मिर्च १॥ माशे को मिला, जल के साथ पीस, जल मिला, कपड़छन कर पिलाने, सुंघाने और नेत्र में अञ्जन करने से विषम ज्वर, शीत लगकर आने वाले एकाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर दूर हो जाते हैं।

३१. सप्तपर्णघनादि वटी।

द्रव्य-सप्तपर्ण घन ४० तोले लेवें एवं कुटकी, चिरायता, कांटेदार करंज के भुने हुए बीजों का चूर्ण १५-१५ तोले, कालमेघ १० तोले, शुद्ध कुचिला और दालचीनी का चूर्ण २॥-२॥ तोले।

विधि-सबको मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

सप्तपर्णघन विधि-सतौने की ताजा छाल को कूट ८ गुने जल में उबाल अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर नीचे उतार, मसल, छानकर कलईदार बर्तन में पकाकर घन बनावें। द्रव्य कड़छी को लगने लगे तब उतार कर सूर्य के ताप में सुखा लें। रबड़ी जैसा बना लें।

यदि सतौना की छाल सूखी हो तो कूट चूर्णकर ४ गुने जल में उबाल अर्धावशेष क्वाथ करें, फिर मसलकर छान लें। पुनः ४ गुना जल मिला अर्धावशेष क्वाथ कर मसलकर छान लें। फिर दोनों क्वाथों को मिला उपर्युक्त विधि से घन बनाकर उपयोग में लेवें।

मात्रा-२ से ४ गोली; दिन में ३ बार; जल के साथ देवें।

उपयोग-ये गोलियाँ सतत, एकाहिक, चातुर्थिक आदि नये विषमज्वर, अपचनजनित ज्वर तथा जीर्ण ज्वर इत्यादि ज्वरों को नष्ट करती है। मलावरोध, अग्निमान्द्य, उदरकृमि, अरुचि और निर्बलता को दूर करके शक्ति प्रदान करती है। ज्वर होने पर या न होने पर सब समय में दी जाती है, बड़े हुए ज्वर को उतारती है तथा नये आने वाले ज्वर को रोकती है। ज्वरजन्य यकृत तथा प्लीहावृद्धि को भी वह मिटाती है। यह सामान्य औषधि होते हुए अच्छी लाभदायक सिद्ध हुई है।

३२. ज्वरभैरव चूर्ण।

द्रव्य-गुल वनप्सा, गावजवां, खूबकला, सौंफ और अमृतासत्त्व ये सब समभाग।

विधि-मिलाकर चूर्ण करें। फिर सबके समान मिश्री का चूर्ण मिला लेवें। *(पं. श्री रघुवरदयाल जी)*

मात्रा-२ से ३ माशे, शहद या निवाये जल से, दिन में ३ बार।

उपयोग-यह चूर्ण सौम्य, प्रदाहहर, स्वेदल और ज्वरघ्न है। ग्रीष्म-काल में सूर्य के ताप में फिरने आदि से उत्पन्न प्रतिश्यायसह ज्वर और शुष्क कास सह ज्वर जो मन्द-मन्द रहता है, उसे दूर करने तथा बढ़े हुए ज्वर को कम करने के लिए यह चूर्ण व्यवहृत होता है। यह कण्ठप्रदाह को भी दूर करता है जिससे नूतन प्रतिश्याय और शुष्क कास भी निवृत्त हो जाती है।

३३. प्रतिश्यायहर कषाय।

द्रव्य-वनप्सा, गुलवनप्सा, अडूसा, मुलहठी, सपिस्ताँ (ल्हिसोड़े) और मुनक्का १-१ तोला, कालीमिर्च ६ माशे लें।

विधि-सबका जौकूट चूर्ण करें। इसकी ६ मात्रा बनावें। *(स्व. राजवैद्य पं. श्री रामचन्द्र जी)*

उपयोग-१ मात्रा में एक तोला शक्कर मिलाकर २० तोले जल में कलईदार बर्तन अथवा मिट्टी के बर्तन में औटावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छानकर पी लेवें। इसी प्रकार शाम और सुबह १-१ मात्रा लेवें। रोग की अवस्थानुसार कम से कम ३ दिन या अधिक से अधिक ७ दिन सेवन करने से नवीन जुकाम एवं तज्जन्य ज्वर, खाँसी, श्वास, इन्फ्लुएञ्जा आदि रोग नष्ट होते हैं।

रोगी को कब्ज हो और गले में दर्द हो, तो ३ माशे हरड़ और ३ माशे मकोय भी मिला देना चाहिये। बिगड़े हुए प्रतिश्यायजन्य दीर्घकालीन कास और श्वास हो तो इसके साथ २-२ माशे रेशाखतमी, खब्बाजी या आबरेशम साफ (कतरे) किये हुये और मिला लें। जल ३० तोले लें और शक्कर दुगुनी मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। इसका प्रयोग करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। यह योग हमारे यहाँ का परम्परागत अनुभूत है। कभी निष्फल नहीं जाता। यह प्रयोग राजस्थान के सुविख्यात प्राणाचार्य स्व. राजवैद्य पं. रामदयालुजी शर्मा का अनुभूत है।

३४. ग्रन्थिज्वरहर गुटिका।

द्रव्य-फिटकरी का फूला १० तोले, नौसादर पकाया हुआ, कालीमिर्च और सोनागेरु तीनों ५-५ तोले तथा गुड १० ताले लें।

विधि-पहले गुड को खरल में घोटें। नरम होने पर औषधियों का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा मिलाकर मर्दन करते जायें। सब चूर्ण मिला लेने के पश्चात् गोलियाँ बाँधने योग्य बनने पर १-१ रत्ती की गोलियां बना-बनाकर सोनागेरु के चूर्ण में डालते जायें। गोलियाँ डालने के लिए १०-२० तोले सोनागेरु अलग लेना चाहिये। सब गोलियां बन जाने पर गोलियों को सोनागेरु वाले थाल में अच्छी तरह हिलावें और बोतल में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा-१ से २ गोली; दो-दो या तीन-तीन घण्टे के अन्तर पर जल के साथ देते रहें। इस गोली के उपयोग के साथ फिलिपाइन से आने वाले एक प्रकार के जहरी कुचिले (Strychnos Ignatii) का चूर्ण २-२ रत्ती दिन में ३ बार देना अधिक लाभदायक है।

उपयोग-इस वटी का सेवन कराने से ग्रन्थिज्वर (प्लेग) सत्वर काबू में आ जाता है। ४-६ मात्रा देने पर ज्वर उतर जाता है। फिर

...ते रहें। रोगी को खाने के लिये कुछ भी न दें, केवल जल पर रखें। अच्छी क्षुधा न लगे, तब तक दूध भी नहीं देना चाहिये। क्षुधा के मारे रोगी छटपटाने लगे, तब आधा दूध मिली २०-३० तोले चाय पिलावें। ज्वर उतरने के पश्चात् भी अन्न एक सप्ताह तक नहीं देना चाहिये।

श्री त्रिलोचन्द ताराचन्द वैद्य ने लिखा है कि ''इस औषधि के सेवन से प्लेग के सैंकड़ों रोगी अच्छे हुए हैं, किन्तु जिन रोगियों ने दुराग्रहवश जल्दी अन्न खा लिया, उसके शरीर में रहे हुए विष ने प्रकुपित होकर उनके प्राणों का हरण कर लिया है।''

सूचना-किसी रोगी को उदर में मल-संग्रह होने से इस वटी के सेवल काल में पतले दस्त होने लगे, तो भय न मानें। विकार होगा, वह निकलकर स्वयमेव दस्त बन्द हो जायेगा। रोगी को जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाते रहें।

३५. हिमरत्लाकर चूर्ण।

द्रव्य-सफेद चन्दन का बुरादा, गुलाब की कली (सूखी), सेवती गुलाब, काहु, कुलफा, खस ताजा, धनियां, कासनी, नीलोफर नया, सौंफ, छोटी इलायची के दाने, खीरा के बीज, ककड़ी के बीज, कालीमिर्च प्रत्येक १-१ तोला लें।

विधि-सबको मिलाकर मोटा कूट लें।

सूचना-चन्दनादि औषधियाँ नई व असली लें, चूर्ण थोड़ी मात्रा में बनावें, चूर्ण समाप्त होने पर फिर नया बना लेवें। तैलीय द्रव्य कूटे हुए अधिक काल तक पड़े रहने पर दूषित हो जाते हैं।

मात्रा-६ माशे से २ तोले तक, सुबह १ समय। रात्रि को नये मिट्टी के बर्तन में २० तोले जल मिलाकर भिगोवें, सुबह जल को अलग निकाल औषध को शिला पर चटनी की तरह पीसें। फिर उसी जल में घोल, कपड़े से छान, २ तोले मिश्री मिलाकर पिला देवें। यदि शिला पर न पीस सकें तो अच्छी तरह मलकर छान लें और मिश्री मिलाकर पिला देवें।

उपयोग-हिमरत्लाकर चूर्ण ग्रीष्म ऋतु में अति उपकारक है। सूर्य के ताप में फिरने से लू लगना, चक्कर आना, व्याकुलता, नकसीर चलना, कण्ठावरोध होना, मन्द-मन्द जुकाम होना, फिर उस हेतु से निद्रा न आना, दाह, पित्त-प्रकोप, हाथ पैरों में जलन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर हिमरत्लाकर का हिम बनाकर प्रात: काल पीते रहने से लू लगने और अन्य विकार होने की भीति दूर होती है। यह चूर्ण ग्रीष्मकाल के लिये हितकारक है। अन्य ऋतु में इसका उपयोग विचारपूर्वक करना चाहिये।

वक्तव्य-ग्रीष्मऋतु में दिन में उष्णता और रात्रि को भी बेचैनी अधिक रहती है जिससे योग्य निद्रा नहीं आती, अन्न पचन नहीं होता, शिर में भारीपन रहता है, मुख सूखता है, दाह होता है एवं स्वेद अधिक आता है और विशेष प्रकार का मूत्रविष रक्त में बढ़ जाता है। उसे पूर्ण रूप से वृक्क बाहर नहीं निकाल सकता, जिससे पेशाब पीला हो जाता है। मूत्रविष रक्त के भीतर शेष रह जाने से मस्तिष्क निर्बल बनता है। अत: हिमरत्लाकर का सेवन कराने से पेशाब साफ आता है और मूत्रविष बाहर निकल जाता है। फिर निद्रा शान्त आने लगती है, व्याकुलता नहीं आती और पाचन-शक्ति योग्य कार्य करने लगती है।

गर्मी के दिनों में अपचन होकर पीले, पतले १-२ दस्त या कै हो जाते हैं। विशेषत: यह प्रकोप दिन में भोजन के बाद होता है, बेचैनी होती है किन्तु अधिक निर्बलता नहीं आती। शरीर शीतल नहीं होता, दस्त के समय पेशाब होता है। उस पर हिमरत्लाकर के हिम में नींबू या सन्तरे का शर्बत १ तोला और १/२ रत्ती कपूर मिलाकर पिला देने से वमन और दस्त बन्द हो जाते हैं। किन्तु दूषित पदार्थ खाने में आने पर कीटाणुजन्य विसूचिका (हैजा) हो जाता है, उसमें दस्त और कै थोड़े-थोड़े समय में होने लगते हैं, शरीर शीतल हो जाता है, पेशाब नहीं होता; हाथ-पैरों में बांयटे आते हैं। उस पर हिमरत्लाकर का उपयोग नहीं करना चाहिये।

वृक्क-कार्य योग्य न होने से पेशाब की उत्पत्ति योग्य नहीं होती। फिर रक्त में विष संग्रहीत होता रहता है। इसी हेतु से रात्रि को देह और मस्तिष्क में उष्णता रहती है तथा नेत्रों में कमजोरी और जलन, आलस्य बना रहना, पचन क्रिया मन्द हो जाना, शरीर शुष्क और श्याम हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर हिमरत्लाकर चूर्ण और ताजी गिलोय २ तोले का हिम बना, फिर शर्बत उन्नाव २ तोले मिलाकर पिलाने से प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।

कितनी ही स्त्रियों को रक्त में मूत्रविष वृद्धि हो जाने पर पेशाब पीला, जलता हुआ होता है, शाम के समय नशा-सा मालूम होता है, जैसे भांग पी हो। इनके अतिरिक्त हृदय का धड़कना, कण्ठ, मुख का सूखना, तृषा अधिक लगना, दाह होना, शिर में भारीपन, रहना, मासिकधर्म में रज: काला-पीला, जमा हुआ, थोड़े परिमाण में और दर्दसह गिरना और उसी हेतु से नेत्र में निर्बलता आना आदि लक्षण होते हैं। उस पर हिमरत्लाकर चूर्ण १ तोला, ताजी गिलोय ६ माशे, जीरा २ माशा और काली सारिवा ६ माशे मिला हिम बनाकर पिलाना चाहिये।

३६. कमलादि फाण्ट।

द्रव्य-कमल के फूल, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, खस, मुलहठी, नागरमोथा, सारिवा और मिश्री ये ८ औषधियां २-२ तोले लें।

विधि-सबको लेकर जौकूट करें। फिर ६४ तोले उबलते हुए जल में डालकर ढंक देवें। शीतल होने पर कपड़े में छानकर थोड़ा-थोड़ा (८-१० तोले) पिलाते रहते हैं।

(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

उपयोग-यह फाण्ट पित्तज्वर, विविध प्रकार के विषम ज्वर (मलेरिया), मोतीझरा और पित्तप्रधान रक्तष्ठीवी रोग में हितकारक है।

इस फाण्ट का सेवन कराने से हृदय का संरक्षण होता है, पेशाब साफ आता है, दाह का शमन होता है, पित्तजन्य दस्त बन्द होते हैं एवं हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति का बढ़ा हुआ वेग फिर कम हो जाता है। तीव्र ज्वर (१०२ डिग्री से अधिक), अनेक दिनों तक रह जाने पर हृदयेन्द्रिय विकृत और शिथिल हो जाती है। ऐसे ज्वरों में यदि प्रारम्भ से ही इस फाण्ट का सेवन कराया जाये तो हृदय पर ये दोनों घातक परिणाम नहीं होते।

३७. सुदर्शन मिश्रण।

द्रव्य-महासुदर्शन चूर्ण १० तोले, सोडा बाईकार्ब (श्वेत सज्जीखार) २॥ तोले, एरण्ड तैल में भुने हुए शुद्ध कुचले का चूर्ण आधा तोला और फिटकरी का फूला १॥ तोला लें।

विधि-सबको मिलाकर खरल कर लें। *(स्व. पं. श्री. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-३-३ माशे, दिन में २ या ३ बार; जल के साथ।

उपयोग-यह मिश्रण वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु में आने वाले बुखार, अपचन से आने वाले बुखार, ठण्डी लगकर आने वाले बुखार (मलेरिया), बार-बार थोड़े-थोड़े दिनों पर आने वाले बुखार और जुकाम के साथ आये हुए बुखार पर लाभदायक है। यह मलावरोध, अग्निमान्द्य, शिरदर्द, अरुचि, आलस्य, आम और कफप्रकोप आदि लक्षणों सह ज्वर को दूर करता है। ज्वर न हो तब तथा ज्वरावस्था में भी निर्भयतापूर्वक यह व्यवहृत होता है।

३८. संज्ञाप्रबोधन प्रधमन (नस्य) [प्रथम]।

द्रव्य-बच, लहशुन, कुटकी, सैंधानमक, बड़ी कटेल के फल, रुद्राक्ष, मोम और समुद्रफल इन सबको समभाग लें।

विधि-मोम को अलग रखकर सबको कूट कपड़छन चूर्णकरें। फिर मोम मिला आक के दूध की ३ भावनायें देवें। पश्चात् मयूरपित्त की ३ भावनायें देकर चूर्ण बना लेवें। *(वै.सा.सं.)*

उपयोग-इस चूर्ण में से १ रत्ती नाक के भीतर फूंक देने से सन्निपात में बेहोशी दूर हो जाती है एवं कफाधिक वायु, अपस्मार, हलीमक, शिरोरोग, कर्णरोग, मूर्च्छा आदि में भी प्रधमन (नस्य) सत्वर लाभ पहुँचा देता है।

(द्वितीय)।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कायफल की छाल, नयी छोटी पीपल, सफेद मिर्च और सूंघने की तमाखू सब समभाग लेवें।

विधि-पहले पारद-गन्धक कीकज्जली करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर दो-तीन दिन खरलकर लेवें। फिर छानकर शीशी में भर लें।

उपयोग-इस नस्य में से १ रत्ती जितना सुंघाने पर सन्निपात आदि रोगों में तत्काल मूर्च्छा दूर होकर चेतना आ जाती है।

३९. किरातादि कषाय।

द्रव्य-चिरायता, कुटकी, गिलोय, पित्तपापड़ा, सोंठ और नागरमोथा सबको समभाग लें।

विधि-सबको मिला जौकूट चूर्णकर २-२ तोले का क्वाथ दिन में २ बार पिलाते रहने से नये ज्वर ३-४ दिन में दूर हो जाते हैं। मलावरोध, पित्तप्रकोप और उदर में वायु भरा रहना आदि विकारों का भी शमन हो जाता है।

४०. पंचतिक्त कषाय।

विधि-छोटी कटेली की जड़, नीम-गिलोय, सोंठ, पुष्करमूल और चिरायता इन ५ औषधियों को समभाग मिला, जौकूट कर २-२ तोले का क्वाथ कर दिन में दो बार पिलाते रहें। पिलाने के समय १-१ तोला शहद मिला देवें। *(च.द.)*

उपयोग-इस कषाय के सेवन से सामान्य ज्वर, अपचन से उत्पन्न ज्वर, कफ प्रकोपज ज्वर, शीतज्वर, बढ़ने घटने वाले मलेरिया ज्वर और दिनों तक बने रहने वाले जीर्ण ज्वर आदि का नाश होता है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

सूचना-इस क्वाथ से उबाक या बेचैनी होने लगे तो मात्रा कम कर देनी चाहिये। अति मलावरोध हो तो इस क्वाथ में कुटकी भी मिला लें।

४१. सान्निपातिक क्वाथ।

द्रव्य-पीपलामूल, देवदारु, इन्द्रजौ, बायविडंग, ब्राह्मी, भांगरा, सोंठ, काली-मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, कायफल और कमल का कन्द प्रत्येक समभाग।

विधि-सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। *(वै.सा.सं.)*

मात्रा-२-२ तोले का क्वाथ कर दिन में ३ समय (आवश्यकता पर २-२ घण्टे पर) १-१ माशा शुद्ध गूगल मिलाकर देवें।

उपयोग-यह क्वाथ वातप्रकोप शामक है। इसके सेवन से सन्निपात के उपद्रव शीत, प्रलाप, अति प्रस्वेद, शूल और कफ आदि (विशेषकर संधिक सन्निपात) सत्वर दूर होकर रोग निवृत्त हो जाता है। सूतिका-ज्वर में भी यह अति हितकारक है।

...ण्डी, पाठा, बच और चव्य इन आठ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट ...र २ समय; १-१ माशा शुद्ध गूगल मिला कर लेवें। *(वै.सा.सं.)*

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से सन्निपात में वात और कफप्रकोप का सत्वर शमन हो जाता है। अति प्रस्वेद आकर शीतल हो जाना, प्रलाप, उदर शूल, कण्ठ में से कफ की आवाज आना, श्वास का वेग बढ़ जाना, सूतिका रोग और आमज्वर दूर होते हैं।

४२. दार्व्यादि क्वाथ।

द्रव्य–दारुहल्दी, देवदारु, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतास और पाढ ३-३ तोले, कपूर काचरी, खस, पीपल, चिरायता, गजपीपल, वनप्सा, तगर, पद्माख, काकड़ासिंगी, धनियां, सोंठ, नागरमोथा, निशोथ, वज्रदन्ती (पिया बांसा), हरड़, छोटी कटेली, नाय, कुटकी, जवासा, नीमगिलोय और पुष्कर मूल ये प्रत्येक १-१ तोला। खूबकला, त्रायमाण, सप्तपर्ण की छाल और काल मेघ ५-५ तोले।

विधि–सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–१-१ तोले का क्वाथ कर दिन में २ बार पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ विषमज्वर में लिए अति लाभदायक है। सामज्वर में आम, विष और कीटाणुओं को जलाकर नूतन ज्वर को दूर कर देता है। जीर्ण ज्वर में यह सर्वज्वरहर लोह के साथ अनुपान रूप से दिया जाता है।

इसका उपयोग अनेक वर्षों से वैद्य राज श्री रामचन्द्रजी ने किया था। हजारों रोगियों को दिया गया है, कभी निष्फल नहीं हुआ।

(स्व. वैद्यराज पं. रामचन्द्रजी शर्मा)

४३. मृतसंजीवनी सुरा।

द्रव्य–एक वर्ष से अधिक पुराना गुड १०२४ तोले, बंबूल की छाल ८० तोले, अनार के फल की छाल, अडूसे की छाल, मोचरस, लाजवन्ती, अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेल की छाल, श्योनाक की छाल, पाटला की छाल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, बड़े बेर की जड़, इन्द्रायण की जड़, चित्रकमूल, कौंच और पुनर्नवा इन २१ औषधियों को ४०-४० तोले लेवें।

विधि–औषधियों को जौकूट चूर्ण कर गुड़ से आठ गुने जल में मिला मिट्टी की नांद में भर मुँह बन्द कर देवें। १६ दिन के पश्चात् इस नाँद को खोलकर इसमें चिकनी सुपारी का मोटा चूर्ण १२८ तोले, धतूरा की जड़, लौंग, पद्माख, खस. लालचन्दन, सोया, अजवायन, कालीमिर्च, जीरा, कालाजीरा, कचूर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची के दौने, जायफल, नागरमोथा, गठिवन (पीपलमूल), सोंठ, मेथी, मेषशृंगी और सफेद चन्दन इन २१ औषधियों का मोटा-मोटा चूर्ण ८-८ तोले डालकर पुनः मुंह बन्द कर दें। फिर ८ दिन के बाद बक-यन्त्र (अर्क निष्कासन यन्त्र) से अर्क खेंच लें।

मात्रा–यह सुरा दोष-धातु, आयु और शक्ति के अनुसार नित्य पीते रहने से शरीर को दृढ़ बनाती है। पुष्टि, बल, कान्ति और अग्नि को बढ़ाती है एवं घोर सन्निपात, ज्वर और विसूचिका, श्वसनक ज्वर आदि नाना प्रकार के रोगों की बढ़ी हुई अवस्था में एवं (शीतांग सन्निपात में) तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

सूचना–इस विधि में नांद में भरकर १६ दिन तक रखने को लिखा है। किन्तु इतने दिनों में खमीर नहीं उठता। अतः ग्रीष्म ऋतु में कम से कम १६ से तीस दिन तक एवं शीतकाल में १-१॥ मास तक अवश्य रखना चाहिये। अर्थात् जब तक इसमें मद्यकिण्व उत्पन्न न हो तब तक रखना नितान्त आवश्यक है। तत्पश्चात् यन्त्र द्वारा अर्क खेंच लें। यदि जल्दी मद्यकिण्व की उत्पत्ति करनी हो, तो द्राक्षासव आदि आसव-अरिष्ट उत्तम प्रकार के बने हुये हों उनके पात्र में से गाद डाल देनी चाहिये फिर मद्यकिण्व उत्पन्न हो जाये, तब अर्क खेंच लेना चाहिये। मद्यकिण्व उत्पन्न हो जाने की परीक्षा यह कि जब खमीर उठने लगता है, तब बर्तन में से एक प्रकार की आवाज (वाष्प निकलने की) हुआ करती है। मद्यकिण्व उत्पन्न हो जाने पर यह आवाज बन्द हो जाती है और खोलकर देखने पर झाग वगैरह न दीखकर स्वच्छ नितरा हुआ जल दिखाई देता है।

४४. मृगमदासव।

द्रव्य–सिद्ध मृत संजीवनी सुरा या परिशोधित सुरासार (रेक्टीफाइड स्पिरिट) ५० तोले, कालीमिर्च, लौंग, जायफल, पीपल और दालचीनी ...त्येक २-२ तोले लें।

विधि–सबको मिला बोतल में भर मुँह बन्द कर एक सप्ताह तक रहने दें। फिर छान लेवें। *(भै.र.)*

वक्तव्य–मूलग्रन्थ में इस आसव में शहद और जल २५-२५ तोले मिलाने और एक मास तक बन्द रखने का विधान किया है।

सूचना–कस्तूरी को तीव्र मदिरा में खरल करके मिलानी चाहिये। फिर सब औषधियाँ मिलाकर बोतल को अच्छी तरह हिलावें एवं ...त दो तीन बार बोतल को हिलाते रहना चाहिये।

मात्रा–५ से १० बूंदे; जल मिलाकर १-१ या आध-आध घण्टे पर रोग का शमन होने तक देते रहें।

उपयोग–यह आसव, उत्तेजक, मस्तिष्क-शामक, आमपाचक, सेन्द्रिय विषघ्न, कीटाणुनाशक और बल्य है। इस आसव के उपयोग से

विसूचिका, हिक्का और सन्निपातिक ज्वर में बेहोशी आदि दूर होते हैं। न्यूमोनिया, इन्फ्लूएंजा, शीतांग सन्निपात, कालज्वर, पूयजन्य ज्वर और कफ प्रधान सन्निपातों में यह अच्छा लाभ पहुँचा देता है। विसूचिका में शीतांग हो गया हो, ऐसे समय पर १५-१५ मिनट पर १-१ मात्रा ३-४ बार देने से देह में उत्तेजना आ जाती है। श्वास का दौरा होने पर १०-१० बूंदों की १५-१५ मिनट बाद २-३ मात्रायें दे देने से श्वास वेग शमन हो जाते हैं। यदि हृदय और फुफ्फुस की गति शिथिल हो गई हो तो १५ से ३० बूंदों तक जल के साथ मिलाकर देने से हृदय और फुफ्फुस नियमित कार्य करने लगते हैं।

४५. मधुकादि कषाय। (प्रथम विधि)

द्रव्य-मुलहठी, अमलतासका गूदा, मुनक्का, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, परवल के पत्ते समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर जौकूट कर लें। (बं.से.)

मात्रा-१-१ तोले का क्वाथ, दिन में २ बार देवें या केवल रात्रि को सोने के समय देवें।

उपयोग-यह कषाय आमपाचक, विरेचन और ज्वरघ्न है। मलावरोधसह जीर्ण ज्वर को दूर करता है। वातज पित्तज और कफज तीनों प्रकृतिवालों के लिए यह हितावह है। ज्वर जीर्ण होने पर निर्बल आंतों वालों को बहुधा मलावरोध रहता है और मलावरोध के हेतु से ज्वर जल्दी नहीं छोड़ता। फिर कफप्रकोप, अग्निमान्द्य, मूत्र में पीलापन, जिह्वा पर मल की तह जमना, किसी को अपचन, अरुचि, उदरवात, नेत्रदाह आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में यह कषाय अति हितकारक है।

(द्वितीय विधि)

द्रव्य-मुलहठी, गिलोय, छोटी, इलायची और पित्तपापड़ा ये ४ औषधियाँ ३-३ माशे, कुटकी १॥ माशे ओर सनाय १। तोले लें।

विधि-सबको मिलाकर क्वाथ करें। फिर छान, प्रात:काल में १ तोला शक्कर मिलाकर देवें। *(भै.र.)*

उपयोग-यह कषाय पित्तशामक और उदरशुद्धिकर है। वातपित्तज ज्वर को नष्ट करता है। जो ज्वर विविध प्रकार के रसायन-प्रयोगों से दूर न हुआ हो या क्विनाइन के सेवन से प्रकुपित हुआ हो तथा जिसमें अन्त्र निर्बल होने से मलावरोध बना रहता हो तथा तृषा, कण्ठशोष, उबाक, अरुचि, जम्भाई आना, रोंगटे खड़े होना, हाड-हाड में दर्द होना, बेचैनी, हृदय में धड़कन, चक्कर आना, शिरदर्द, निद्रानाश, मूत्र में पीलापन और उदर में भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हों, उस पर यह क्वाथ व्यवहृत होता है।

वक्तव्य-यदि रोगी अति कृश और निर्बल हो गया हो तो मात्रा कम देवें। इस कषाय में कुटकी और सनाय विशेष मात्रा में है। दोनों विरेचन कराती है। मात्रा कम (पूर्ण मात्रा का १/८ हिस्सा) दिन में २-३ बार देने पर पचन-क्रिया को सुधारकर दस्त को साफ लाती है और मात्रा अधिक होने पर पतले दस्त कराती है।

४६. पंचतिक्तघन वटी।

द्रव्य-सप्तपर्ण की ताजी अन्तर छाल, कांटें वाले करंज के ताजे पत्ते, गिलोय, ताजी चिरायता और कुटकी इन ५ द्रव्यों को १-१ सेर लेवें।

विधि-सप्तपर्णछाल, करंजपत्र और गिलोय को जल से धोकर मोटा-मोटा कूट लें। चिरायता और कुटकी का जौकूट चूर्ण करें। सबको मिला ११ मन जल के साथ कलईदार बर्तन या मिट्टी के बर्तन में अष्टमांश क्वाथ करें। फिर मसलकर छान लें। शीतल होने पर पुन: छान, कलईदार बर्तन में डालकर मन्दाग्नि से पकावें। क्वाथ कुर्छी को लगे इतना गाढ़ा हो तब बर्तन को धूप में रखकर सुखा लेवें। गोली बनने योग्य हो तब अतीस का चूर्ण १० तोले मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-२ से ४ गोली, ३-३ घण्टे पर जल से देवें।

उपयोग-इस वटी के उपयोग से विषम ज्वर रुक जाते हैं। पारी के बुखार में ज्वर आने के ४ घण्टे पहले और २ घण्टे पहले दो मात्रा। (बड़े मनुष्य को ४-४ गोली) दे देवें। तीसरी मात्रा समय निकल जाने पर देवें। अन्य दिनों में दिन में ३ बार देवें।

सूचना-यदि कब्ज हो तो पहले उदर-शुद्धि कर लेनी चाहिये। चिरायता और कुटकी ४-४ माशे, हरड़, बहेड़ा और आँवला २-२ माशे मिला क्वाथ कर पिला देवें। आवश्यकतानुसार यह क्वाथ दिन में ३ बार उक्त वटी के साथ या वटी न देने पर भी दे सकते हैं। इस क्वाथ के अनुपान से वटी सत्वर गुण दर्शाती है।

४७. गजानन्द वटी।

द्रव्य-शुद्ध हिंगुल २२ तोले, लोह भस्म, शुद्ध कुचिला, शुद्ध बच्छनाभ, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आँवला और चित्रकमूल ये १० औषधियाँ १-१ तोला, एलुवा ३ तोले, और सेंकी हुई कुटकी ६ तोले लेवें।

विधि-पहले हिंगुल और बच्छनाभ मिलावें, तत्पश्चात् लोह भस्म, कुचिला और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण क्रमश: मिलाकर एक जीव करें। फिर नींबू के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(आ.नि.मा.)*

वक्तव्य–मूल पाठ में लोह भस्म और चित्रकमूल नहीं है, किन्तु गुणधर्मवृद्धि की दृष्टि से वैद्य कान्तिलालजी के अनुभव के अनुसार बढ़ा लिये हैं। एवं भावना नींबू के रस की दी है।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, अग्निमांद्य पर तक्र या जल के साथ और शारीरिक निर्बलता पर दूध के साथ।

उपयोग–यह वटी, दीपन, पाचन, कीटाणुनाशक, सारक, वातहर और बल्य है। मुद्दती ज्वर या विषम ज्वर दूर होने के पश्चात् रोगी का शरीर निस्तेज और निर्बल हो जाता है, पचनक्रिया मन्द हो जाती है, उदर में भारीपन बना रहता है, किसी किसी को मन्द-मन्द दर्द भी होता है एवं अति कमजोर हो जाने से उदर शुद्धि भी नियमित नहीं होती। इन लक्षणों-सह निर्बलता को दूर करने और शरीर को सबल बनाने के लिये इस वटी का अच्छा उपयोग होता है।

विवेचन–यकृत् की क्रिया मन्द हो जाने से पित्ताशय में से ग्रहणी के भीतर पित्त (Bile) का स्राव पूरा नहीं होता। इस प्रकार के अग्निमांद्य में मल सफेद और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है, यदि वायु उत्पन्न होकर सड़ने की क्रिया प्रबल हो जाती है तो सूक्ष्म सूक्ष्म कृमियों की उत्पत्ति हो जाती है। फिर वे हजारों की संख्या में शौच में प्रतीत होते हैं। इस विकार पर यह वटी तत्काल लाभ पहुँचाती है। यह उदरकृमियों को नष्ट करती है, उनकी उत्पत्ति को रोकती है; यकृत्-प्लीहा को बल देकर अन्न का सम्यक् पचन कराती और शारीरिक बल की भी वृद्धि कराती है।

मलेरिया के आक्रमण के पश्चात् शिरदर्द, उदर में भारीपन, मलावरोध, आलस्य बना रहना और मूत्र में पीलापन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। निर्बलता बढ़ती जाती है और कार्य करने का उत्साह नहीं रहता। यदि इस विकार को शीघ्र दूर न किया जाये तो रोगी मृत्यु के मुख में चला जाता है। यह वटी इस निर्बलता आदि लक्षणों सह ज्वर को दूर कर देती है, फिर शरीर स्वस्थ और सबल बन जाता है।

तमक–श्वास का दौरा शीत लगने और अपचन होने पर हो जाता है। फुफ्फुसों को बल मिले तो शीत का आघात कम पहुँचता है और पचन-संस्थान सबल हो, तो अपचन कम होता है। इन दोनों अवयवों को यह वटी शक्ति प्रदान करती है। इस हेतु से तमक श्वास की उत्पत्ति को दूर करने में भी यह वटी उपयोगी है।

४८. जीर्ण ज्वरान्तक चूर्ण।

द्रव्य–श्वासान्तक चूर्ण १ तोला और मिश्री ४ तोले।

विधि–मिलाकर ७२ घण्टे खरल करके बोतल में भर लेवें। *(वैद्यराज मुरलीधरजी मुलतानी)*

मात्रा–१ से २ रत्ती बनप्सादि शर्बत और शाही चूर्ण के साथ, दिन में २-३ बार देवें।

उपयोग–यह चूर्ण, प्रतिश्याय, क्षय ज्वर, जीर्ण ज्वर, श्वसनक ज्वर, पूय ज्वर और विकृत विषम ज्वर और लीन विषयुक्त ज्वर को दूर करता है।

४९. मंथर ज्वरहर चूर्ण।

द्रव्य–जीर्ण ज्वरान्तक चूर्ण १ तोला और मिश्री ४ तोले।

विधि–इनको ७२ घण्टे खरल करके बोतल में भर लेवें। (वैद्यराज मुरलीधरजी मुलतानी)

मात्रा–१ से २ रत्ती, जल के साथ, दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग–मोतीझरा आदि पित्तप्रधान मुद्दती ज्वरों को दूर करता है।

५०. मधुरान्तक वटी।

द्रव्य–तुलसी के पत्ते २ तोले, गिलोय सत्व १ तोला, लौंग, वंशलोचन, धनियां, कासनी के बीज और इलायची ६-६ माशे लेवें। *(र.सा.)*

विधि–सबको बारीक बना तुलसी के रस में खरलकर उड़द के बराबर गोली बनावें।

मात्रा–२से ४ गोली दिन में ३ बार जल के साथ दें।

उपयोग–मोतीझरे (मधुरे) के विष को बाहर निकालने में उपयोगी है। लक्ष्मीनारायण रस के साथ इस वटी का सेवन कराने से जल्दी लाभ होता है। सगर्भा स्त्रियों और बच्चों के ज्वर में भी निर्भयता पूर्वक दी जाती है। हजारों रोगियों को देकर अनुभव किया है।

(४) ज्वरातिसार।

१. प्राणेश्वर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, सोहागे का फूला, सौंफ, अजवायन और जीरा ये ७ औषधियाँ २-२ तोले, यवक्षार, भुनी हींग, सैंधानमक, कालानमक, सांभरनमक, समुद्रनमक, काचनमक, बायविडंग, इन्द्र जौ, राल और चित्रकमूल ये ११ औषधियाँ १-१ तोला लेवें।

विधि-पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें फिर अभ्रक भस्म और सोहागा मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर ३ घण्टे जल के साथ खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (रं.च.)

मात्रा-२-२ रत्ती की गोली, दिन में ३ बार, जल या मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग-यह रस ज्वरातिसार-नाशक है। इस रस में ग्राही, दीपन, पाचन, वातहर, शूलघ्न और जीर्ण ज्वरनाशक गुण अवस्थित हैं। उदर में काटने के समान वेदना होकर बार-बार सफेद, दुर्गन्धयुक्त, पतले और आटे के घोल के समान दस्त लगना, उदर में वायु भरी रहना, अफारा, मलिन जिह्वा, मुंह बेस्वादु बना रहना, बार-बार जल छूटना, अरुचि, मंद-मंद ज्वर बना रहना, क्षीण नाड़ी, थोड़े से परिश्रम से श्वास भर जाना, बार-बार प्रस्वेद आते रहना, शरीर गीला-सा भासना, देह में भारीपन, तन्द्रा, निद्रावृद्धि और किसी भी कार्य में उत्साह न होना आदि लक्षण होने पर इस प्राणेश्वर रस की योजना करनी चाहिये। इस रस के सेवन से यकृत्-पित्त का स्राव बढ़ जाता है। फलतः आम, कफ और कीटाणु नष्ट होते हैं, हींग के योग से उदरवात का शमन होता है तथा आमाशय और अन्त्र की वातवाहिनियां सबल बनती हैं। फिर बढ़ी हुई कृमिवत् गति (पुनःसरण क्रिया) शान्त होती है। अन्त्र की ग्राहक शक्ति में वृद्धि होती है; लघु अन्त्र में पचनक्रिया योग्य होने लगती है; परिणाम में अतिसार और ज्वर दोनों दूर हो जाते हैं। जीर्ण अतिसार एवं आमातिसार में इसका सेवन मट्ठे के साथ कल्प रूप में भी कराया जाता है और वह लाभ करता है।

विवेचन-इस रस में कज्जली-योगवाही, रसायन, यकृत्-पित्त-स्राववर्धक, अंत्रस्थ सेन्द्रिय विषनाशक और दुर्गन्धहर है। अभ्रकभस्म-रसायन, धातुपरिपोषणक्रम-व्यवस्थापक और शक्तिवर्धक है। सोहागा-आक्षेपघ्न, शूलहर, दुर्गन्धनाशक, कफघ्न और अन्त्रविषघ्न है।

सोंफ ओर अजवायन आमपाचक और वातहर है। जीरा पाचक और ग्राही है। यवक्षार और पञ्च लवण पाचक और यकृत् के लिये शक्तिवर्धक है। हींग, अजवायन और बायविडंग कीटाणुनाशक, वातहर और शूलघ्न है। इन्द्रजौ अन्त्रशक्तिवर्धक, ग्राही, यकृत् पित्तस्राववर्धक, कीटाणुनाशक और आमपाचक है। राल-ग्राही वातहर, कीटाणुनाशक और व्रणरोपक है तथा चित्रकमूल दीपन, पाचन और उदरवातघ्न है।

२. गगनसुन्दर रस।

द्रव्य-सोहागे का फूला, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म।

विधि-इन चारों औषधियों को ४-४ तोले लेकर छोटी दूधी के स्वरस में ३ दिन तक खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(र.रा.सु.)

मात्रा-१-१ गोली; दिन में ३-४ बार; २-२ रत्ती राल के चूर्ण के साथ देवें।

उपयोग-यह रस विविध प्रकार के रक्तस्राव, अति उग्र ज्वरातिसार और आमशूल को नष्ट करता है तथा जठराग्नि को बढ़ाता है। अतिसार बढ़ जाने के हेतु से ज्वर उपस्थित होता है, तब इस रस का सेवन अति हितकारक है।

जब कीटाणुओं के प्रकोप से अन्त्रप्रदाह होकर अतिसार हो जाता है, तब उदर पर थोड़ा दबाने से भी दर्द होता है। इस अन्त्रप्रदाह के हेतु से ज्वर भी उपस्थित होता है। ऐसे समय पर कीटाणुनाशक, ग्राही, ज्वरहर और संगृहीत विकार को पचन कराने वाली औषधि देनी चाहिये। इसरस के सेवन से कीटाणुजनित विकृतियां नष्ट होती हैं और ज्वरातिसार और रक्तातिसार का भी शमन हो जाता है।

सूचना-इस रस के सेवन कराने वालों को पथ्य में मट्ठा या बकरी का दूध देना चाहिये।

३. सेतुबन्ध रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध हिंगुल, अहिफेन, शुद्ध गन्धक तथा ताम्रभस्म प्रत्येक १-१ तोले लें।

विधि-प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें, फिर हिंगुल, ताम्रभस्म तथा अहिफेन को क्रमशः मिलाकर घोटें तब इस नील वर्ण की कज्जली में अदरक का रस डालते हुए ७ दिन तक घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। *(र.यो.)*

मात्रा-१/२ से १ गोली तक, अदरक के रस के साथ प्रयोग करें।

उपयोग-इस रस के प्रयोग से दाहसह भयंकर ज्वरातिसार नष्ट होता है। इसके प्रयोग काल में रोगी को उबालकर ठण्डा किया हुआ जल पिलाना व छाछ व मूंग के यूष का प्रयोग करना चाहिये।

नोट-विबंधसह ज्वर में इस रस का सेवन नहीं कराना चाहिये। इस रस में अफीम २० प्रतिशत है। **सम्भालकर प्रयोग करें।**

(वैद्य-बद्रीनारायण, कालेड़ा)

[५] अतिसार-प्रवाहिका।

१. त्रिविक्रम रस [रक्तातिसार]

द्रव्य-शुद्ध हिंगुल, अफीम, सोहागे का फूला और बीजाबोल इन चारों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर चूर्ण करें या शहद के साथ मर्दनकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में ३-३ घण्टे पर, ४ समय दें या चूर्ण को शहद के साथ चटावें।

उपयोग-यह रस पक्व, आम और शूलसह रक्तातिसार का नाश करता है। यह स्तम्भक और संग्राही होने से रक्तातिसार और आम संग्रहणी की आमावस्था दूर होने पर अच्छा कार्य करता है।

अपचन होकर अतिसार या संग्रहणी में बलपूर्वक दस्त होना, दिन में ४०-५० दस्त लग जाना, बार-बार थोड़ा-थोड़ा मल गिरना, अतिशय बलपूर्वक मरोड़ा आना, कींछने पर थोड़ी आम गिरना, आम रक्तमिश्रित आना, उदर में वेदना का अति प्रबल वेग होने से रोगी अति घबरा जाना, बेहोशी आ आना, मुँह से पानी छूटना, उबाक आती रहना, शुष्क वान्ति के हेतु से उदर में दर्द होना, हाथ पैरों में दर्द होना, साथ-साथ मन्द ज्वर भी रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस स्थिति में त्रिविक्रिम रस का उत्तम उपयोग होता है।

इतर समय में उत्पन्न होने वाले ग्रहणी रोग में उदर के भीतर वेदनाहोना, मल के साथ अधिकांश में जल आना, आंव और रक्त गिरना, बार-बार शौच होना, विशेषत: मरोड़ा आ आकर और उदर में प्रबल पीड़ा होकर दस्त होना आदि लक्षण होने पर यह त्रिविक्रम रस प्रयोजित होता है।

रक्तातिसार में उदरपीड़ा होकर मलमिश्रित रक्त गिरता है।, गुदभ्रंश होता है तथा गुदमार्ग में दर्द होने के हेतु से गुदद्वार और सब अवयव ठिठरा जाते हैं। ऐसी स्थिति में इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

विवेचन-इसमें हिंगुल-जन्तुघ्न, रसायन, अन्त्र के सञ्चित आम को निर्विषकर रूपान्तरित करने वाला और अन्त्र की दुर्गन्ध का नाशक है। अफीम-वेदनाशामक और स्तम्भक है। सोहागा-आक्षेपघ्न, दुर्गन्धिहर, कीटाणुनाशक और पाचक है। बीजाबोल-ग्राही, रक्तस्तम्भक और विशेषत: कोशिकाओं के रक्त का रोधक है। *(औ. गु.ध.शा. के आधार से)*

सूचना-मल में दुर्गन्ध आती हो या अपानवायु में दुर्गन्ध हो तो पहले एरण्डतैल देकर उदर को शुद्ध करना चाहिये। फिर अफीम प्रधान औषधि देनी चाहिये। दूषित मल रहने पर अफीम-मिश्रित औषधि दी जायेगी तो रोग दृढ़ बनेगा और विविध विकारों की उत्पत्ति होगी। यह अफीम प्रधान औषधि है। इसे कम मात्रा में सम्हालपूर्वक देना चाहिये।

२. प्रमदानन्द रस।

द्रव्य-पीपल, शुद्ध हिंगुल, कौड़ी भस्म, धतूरे के शुद्ध बीज, जायफल, सोहागे का फूला, शुद्ध बच्छनाभ और सोंठ, इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिला नींबू के रस, धतूरे के पत्तों के स्वरस और भांग के क्वाथ के साथ १-१ दिन खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनावें। ***(वै.सा.सँ.)***

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में ३ बार, जल या मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग-यह रस योग्य अनुपान के साथ प्रयोजित करने से ज्वर, ग्रहणी, कफवृद्धि और उदर-शूल को नष्ट करता है। इसका उपयोग सामान्यत: अन्त्रप्रदाह और गर्भाशय प्रदाह को दूर करने के लिये होता है।

यह औषध पाचक, दीपन, किञ्चित् ग्राही, शूलघ्न और किञ्चिद् उत्तेजक है। इसका परिणाम कोष्ठ और स्त्रियों के प्रजनन तन्त्र पर उत्तम होता है।

इस रस का उपयोग पक्वातिसार में अच्छा होता है। अतिसार और उसके साथ ज्वर और शूल होने पर इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। विष्टब्धाजीर्ण या विदग्धाजीर्ण के बाद अतिसार होने पर प्रमदानन्द उत्तम कार्यकारी है। अतिसार रोग निवृत्त होने पर पुन: कुछ अपथ्य सेवन करने से ग्रहणी, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में विकृति हुई है तो यह प्रमदानन्द उपयोगी होता है। शूलसह, झागमय मल गिरना, साथ में कुछ रक्त भी जाना, ज्वर, तृषा तथा शौच होने पर गुदा और उदर में जलन होना, आदि लक्षणयुक्त ग्रहणी में प्रमदानन्द व्यवहृत होता है।

इस रस का उपयोग स्त्रियों के गर्भाशय-शूल पर भी होता है। कष्टार्त्तव (पीड़ितार्त्तव) आदि ऋतुदोष होने पर यह अशोकारिष्ट के साथ देने से बहुत अच्छा कार्य करता है।

वक्तव्य-मूल ग्रन्थकार ने बाजीकरण रूप से उपयोग लिखा है, परन्तु यह गुण अनुभव में नहीं आया।

३. लघु शतपुष्पादि चूर्ण।

द्रव्य–सौंफ, सोंठ के टुकड़े और छोटी हरड़े तीनों ४०-४० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर ७॥ तोले घी के साथ भूने। फिर कपड़छन करके ६० तोले शक्कर और १० तोले सज्जीखार (सोडाबाई कार्ब) मिला लेवें। *(स्व. राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा–२ से ३ माशे, दिन में ३ बार, जल के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण आमातिसार, नूतन और जीर्ण आम संग्रहणी, प्रवाहिका, आमज शूल आदि में व्यवहृत होता है। यह संगृहीत आम को दूर करता है और आम की उत्पत्ति को बन्द करता है। पहले दीपन, पाचन और सारक गुण दर्शाता है फिर अन्त्र का कुछ आकुंचन कराता है। जिससे उदर में वायु हो, वह भी निकल जाती है और अन्त्र सबल बनती है। जीर्ण आमदोष, वातजन्य अजीर्ण, मन्दाग्नि का नाश करता है। यदि रोग जीर्ण हो, तो २-४ महीने तक सतत सेवन कराने से रोग निर्मूल हो जाता है।

इस चूर्ण का प्रयोग अनेक प्रवाहिका-पीड़ित रोगियों पर किया है। यह आशाप्रद लाभ दर्शाता है। अनेक जीर्ण प्रवाहिका पीड़ित रोगियों को लम्बे समय तक देते रहने से लाभ दर्शाता है।

४. बृहच्छतपुष्पादि चूर्ण।

(प्रथम विधि)

द्रव्य–सौंफ, सोंठ, छोटी हरड़, बड़ी इलायची के दाने, बेलगिरी, मरोड़ फली और पोस्तडोडे ये ७ औषधियां २०-२० तोले घी १० तोला लें।

विधि–घी के साथ सबको मिलाकर थोड़ा सेकें। फिर गुलाब के फूल २० तोले मिला कूट कपड़छन कर १ सेर शक्कर मिला लेवें। *(स्व. वैद्य श्री रामचन्द्र जी शर्मा)*

मात्रा–२ से ३ माशे, दिन में २ या ३ बार, जल के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण दीपन, पाचन और ग्राही है। अतिसार और प्रवाहिका में रुके हुये मल एवं आम को पचाता है, आमोत्पत्ति का ह्रास करता है और अन्त्र की उष्णता का शमन करता है। जीर्ण संग्रहणी में उदरपीड़ा होती रहती हो तथा बार-बार आमवृद्धि हो जाती हो उसे यह चूर्ण दूर करता है।

(दूसरी विधि)

द्रव्य–सौंफ, सेकी हुई ४ तोले, सोंठ १ तोला, छोटी हरड़ ४ तोले, जीरा सेका हुआ १ तोला, आम की गुठली की गिरी १ तोला, बेलगिरी १ तोला, पोस्त का चूर्ण २ तोले, छोटी इलायची के बीज १ तोला, मरोड़ फली ४ तोले और मुनक्का के बीज सेके हुए १ तोला लें।

विधि–सबको कूट कपड़छन कर १ सेर शक्कर मिला लेवें।

मात्रा–२ से ४ माशे; दिन में २ से ४ बार, जल या मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से आमातिसार, प्रवाहिका और आम संग्रहणी दूर होते हैं। यह चूर्ण आम का पचन करता है और अन्त्रप्रदाह का शमन करता है, अतिसार के लिये यह प्रयोग अति हितावह है। अतिसार चाहे जैसा बढ़ा हुआ हो या जीर्ण हो गया हो, यह सत्वर लाभ पहुंचा देता है। आम संग्रहणी में इस चूर्ण के साथ प्राणदा-पर्पटी का सेवन कराने से प्रकृति जल्दी स्वस्थ हो जाती है। छोटे बच्चे, सगर्भा, प्रसूता और वयोवृद्ध सबको यह चूर्ण निर्भय रूप से दिया जाता है। उपयोग करने पर यह अति लाभदायक सिद्ध हुआ है।

५. खदिरादि चूर्ण।

द्रव्य–सफेद कत्था (Pulvis Catechu Co) ४ भाग, हीरादोखी गोंद (Kino) २ भाग, क्रमेरिया का मूल (Krameria root) अभाव में मोलसरी की छाल २ भाग तथा दालचीनी और जायफल १-१ भाग लें।

विधि–इन सबको मिला खरल कर लें।

मात्रा–४ रत्ती से १ माशे तक, दिन में ३ बार, जल के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण प्रबल ग्राही है। अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला की शिथिलता और क्षीणतायुक्त अतिसार रोग में यह चूर्ण प्रयुक्त होता है; किन्तु अन्त्र में प्रदाह हो तथा यकृत् की क्रिया में वैषम्य हो तो इस चूर्ण का प्रयोग नहीं किया जाता है।

सूचना–फिटकरी, चूने का जल, धातव लवण, यवक्षार, अफीमक्षार (मोर्फिया) और इतर क्षारों के साथ इसका प्रयोग नहीं किया जाता। उदर में अति पीड़ा या रक्तस्राव होता हो तो खड़ियामिट्टी और अफीम का मिश्रण करके दिया जाता है।

६. प्रवाहिकाहर योग।

द्रव्य–एरंड तैल २॥ तोले और चूने का जल १२ तोले लें।

विधि–दोनों को खरल में मर्दन करने से श्वेत मिश्रण (Emusion) तैयार हो जाता है। फिर इलायची मिश्रण का अर्क (Tinct Cardimom Co.) ३० बूंदे मिला लेवें। पश्चात् तीन भाग करके दिन में ३ समय पिला देने से प्रवाहिका की निवृत्ति होती है।

एरंड तैल विरेचक औषध है, किन्तु इसकी क्रिया मृदुभाव से और सत्वर प्रकट होती है। अतः बालक, वृद्ध, दुर्बल, सगर्भा, प्रसूता आदि सबको यह निर्भयता पूर्वक दिया जाता है। कोष्ठबद्धता, उदरशूल, अतिसार, प्रवाहिका, अर्श और गुदनलिका संकोच आदि रोगों में अन्त्रस्थ मल, आम और विष का निर्गमन कराने के लिये यह व्यवहृत होता है। यदि विरेचन रूप से एरंड तैल की पूर्ण मात्रा दी जाये तो बहुधा ३-४ घण्टे में यह विरेचन कराता है। इसके विरेचन से कोई कष्ट नहीं होता, आमाशय पर इसकी कोई विपरीत क्रिया प्रतीत नहीं होती। एरण्ड तैल का प्रभाव विशेषतः अन्त्र की श्लैष्मिक कला पर होता है।

इस विरेचन गुण के अतिरिक्त इसमें यह विशेषता है कि चूने के जल के साथ मिश्रण बना कर लेने से अन्त्र की श्लैष्मिक कला की प्रदाहजन्य उग्रता का शमन कराता है। जिससे प्रवाहिका रोग में १०-१० या २०-२० मिनट पर शौच जाना पड़ता हो, उदर में सामान्य वेदना बनी रहती हो; कभी-कभी किञ्चिद् रक्त भी जाता हो, दिन-रात यह क्रम चालू ही रहता हो तथा रोगी को निद्रा न मिलती हो, ऐसे समय पर अफीम युक्त औषध देने के पहिले अन्त्र संशोधन कर लेना चाहिये। यह (योग) चौथाई-चौथाई मात्रा में आध-आध घण्टे पर सेवन कराते रहने से एक दिन में अन्त्र की शुद्धि और प्रदाह की निवृत्ति होकर रोगी को शान्ति मिल जाती है। दुर्गन्धयुक्त मल के रोगाणुओं का यह औषध अति शीघ्र नाश करती है।

इस इमलशन का उपयोग आमाशय के मुद्रिका द्वार और अग्न्याशय में रक्ताधिक्य होकर उग्रता आने से उत्पन्न अजीर्ण रोग में भी किया जाता है। यह एक दिन में ही उपकार दर्शाता है।

७. बीजकनिर्यासादि चूर्ण।

(Pulvis Kino Co.)

द्रव्य–हीरादोखी गोंद (दमुलखबैन) ७५ तोले, अफीम ५ तोले और दालचीनी २० तोले लें।

विधि–तीनों को मिला खरलकर, कपड़छन चूर्ण बनाकर बोतल में भर लें। इस चूर्ण में ५ प्रतिशत अफीम मिलाया है।

मात्रा–२ से ६ रत्ती दिन में ३ समय, जल या मट्ठे के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण रक्तातिसार और प्रवाहिका के नाश के लिये अंति हितावह है। अतिसार में जब अन्त्र की श्लैष्मिक कला की ग्रन्थियाँ पीड़ित हो जाती है; तब यह चूर्ण महोपकारक है। हीरादोखी गोंद में विशेष गुण यह है कि अतिसार न होने पर यह संकोचन -क्रिया नहीं करता। बालक और नाजुक प्रकृति की स्त्रियों को भी यह निर्भयता से दिया जाता है। आमाशय में दाह (Pyrosis) अर्थात् अपचन के हेतु से आमाशय के भीतर अधिक परिमाण में रसस्राव होने पर इस चूर्ण का अच्छा उपयोग होता है। दिन में ३ बार ५-५ रत्ती देने से शीघ्र प्रतिकार हो जाता है। साथ में मृदु विरेचक औषध की योजना करनी चाहिये। इस चूर्ण के योग से राजयक्ष्मा रोग में रात्रि को आने वाले अति प्रस्वेद, अतिसार और कास तीनों का दमन हो जाता है।

सूचना–इस चूर्ण के साथ क्षार, तिजाब, कासीस, रसकर्पूर, रौप्यक्षार (Argent Nitras) और सुरमा के उपक्षार (Antimonium Tartaratum) का संयोग नहीं कराना चाहिये। नागशर्करा (Sugar of Lead) का संयोग लाभप्रद विदित हुआ है।

८. बिल्वादि चूर्ण।

द्रव्य–बेलगिरी, ईसबगोल की भूसी, कथीरा गोंद, बबूल का गोंद, ल्हिसोड़ा, बिहीदाना, रूमी मस्तंगी और सोंठ ये औषधियां ५-५ तोले और मिश्री २० तोले लेवें।

(पं. श्री मुरारीलाल जी वैद्य शास्त्री)

विधि–सबको कूट पीस, कपड़छन चूर्ण कर लें।

मात्रा–१/२ माशे सुबह शाम बकरी के दूध के साथ और दोपहर को जल के साथ।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से रक्तातिसार, पित्तातिसार, आमातिसार और प्रवाहिका सत्वर दूर होता है। यदि खाँसी में कफ के साथ रक्त आता हो तो उसे भी यह चूर्ण दूर करता है।

९. स्वादिष्ट गंगाधर चूर्ण।

द्रव्य–उत्तम शुद्ध खड़िया मिट्टी २५ तोले, दालचीनी ७ तोले, बेलगिरी, जायफल, जावित्री और लौंग ३-३ तोले, कपूर, नीलगिरी का तैल और छोटी इलायची के दाने २-२ तोले और मिश्री २० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें।

मात्रा–३-३ माशे दिन में ३-४ बार, जल के साथ बालकों को २ से ४ रत्ती देवें।

उपयोग–यह चूर्ण छोटे बालकों और बड़े मनुष्यों के अतिसार पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। अपचन जनित दुर्गन्धयुक्त दस्त, उदर में वायु संगृहीत रहना, मुखपाक, उदरपीड़ा आदि दूर होते हैं। बालकों के हरे-पीले दस्त, दांत आने के समय दस्त और अपचनजनित दस्त पर भी लाभ पहुँचाता है।

१०. भुवनेश्वरी वटी।

द्रव्य–शुद्ध हिंगुल, हीरादोखी गोंद, मोचरस, बेल, अञ्जसार, राल सफेद, गुलाब के फूल, कपूर, अफीम, हींग, घी में भुना हुआ सोनागेरु इन सबको समान भाग लें।

विधि–सबके चूर्ण को लेकर बिहीदाना के लुआब में घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनावें। *(स्व. वैद्य श्री रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा–१ से २ गोली, २ से ३ बार, अनार के रस या मट्ठे के साथ।

उपयोग–यह यूनानी प्रयोग है। इसका प्रयोग वर्षों से राजवैद्यजी ने करके अनुभव प्राप्त किया है। यह औषधि आमजग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार में लाभदायक है।

अनेक रोगी जिनके वर्षों से प्रवाहिका है, प्रतिदिन ३-४ समय दस्त जाना पड़ता है, बार-बार आमयुक्त दस्त आता रहता है, उदर में दर्द बना रहता है, कभी अफारा भी हो जाता है। ऐसे रोगियों को लम्बे समय तक मट्ठे के साथ देने से इस औषध ने लाभ दर्शाया है।

११. सिंहास्यादि वटी।

द्रव्य–वासा स्वरसघन ८ तोले, कपूर १ तोला, आक के मूल की छाल और अफीम २-२ तोले लें।

विधि–सबको मिला खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें।

वासाघन–अडूसे के पत्तों के रस को कड़ाही में डाल मन्दाग्नि पर पकावें और बार-बार सम्हालपूर्वक चलाते रहें। रबड़ी जैसा हो जाने पर उतार लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में १ या २ बार, बकरी के दूध या जल के साथ देते रहें। विशेषत: रात्रि को सोने के समय एक बार ही दी जाती है।

उपयोग–सिंहास्यादि वटी प्रवाहिका में आमसह रक्तस्राव और अधिक कुन्थन, रक्तातिसार, रक्तमेह, रक्तवमन, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, कासरोग में कफ के साथ रक्त आना तथा राजयक्ष्मा रोग में उर:क्षत होकर रक्तमिश्रित कफ निकलना आदि विकारों को जल्दी दूर करती है।

पेचिश के अति उग्र प्रकोप में यह वटी लघु-शतपुष्पादि चूर्ण के साथ मिलाकर फिर जल के साथ देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

१२. प्रवाहिकाहर गुटिका।

(प्रथम विधि)

द्रव्य–अफीम १ तोला, लोबान २ तोले ओर जावित्री ३ तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ बार, जल या मट्ठे के साथ दें।

उपयोग–इस गुटिका के सेवन से भयंकर बढ़ी हुई प्रवाहिका रक्तातिसार, उदरपीड़ासह नया संग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं। पेचिश की भयंकर पीड़ा एक दिन में शमन हो जाती है।

(दूसरी विधि)

द्रव्य–नीलाथोथे का फूला १ तोला, अफीम २ तोले, सोहागे का फूला ४ तोले, अमृता सत्व ८ तोले, हीरादोखी गोंद ८ तोले लें।

विधि–सबको मिला जल के साथ खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३-४ बार, जल, मट्ठे या बकरी के दूध के साथ देवें।

उपयोग–जीर्ण प्रवाहिका रोग, जिसमें आँतों के भीतर क्षत हो जाने से रक्त और पूयमय दस्त बार-बार होते रहते हैं, उसे दूर करने के लिये यह गुटिका अतिहितकारक है एवं क्षयरोग के अतिसार पर भी वह वटी दी जाती है।

(तृतीय विधि)

द्रव्य–आम की गुठली की गिरी, बेलगिरी, जामुन की गुठली की गिरी, मोचरस, खस, लोध, छोटी हरड़ और इन्द्रजौ इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला, कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। इसे कूड़े की छाल के अष्टमांश क्वाथ के साथ १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में ३ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी प्रवाहिका को दूर करने में बिल्कुल निर्भय है। छोटे बालक, सगर्भा, प्रसूता आदि सबको दे सकते हैं।

१३. प्रवाहिकाहर चूर्ण।

द्रव्य–बीज निकाली हुई लालमिर्च।

विधि–इसको तवे पर डाल मंदाग्नि से सेंके। जल न जाये, यह संभालें। फिर पीसकर कपड़छन चूर्ण कर लेवें।

मात्रा–१ से २ माशे तक; भुनाजीरा, सैंधानमक और सोंठ मिले हुए मट्ठे के साथ दिन में ३ बार दें।

उपयोग–रक्तातिसार, आमातिसार तथा आममय प्रवाहिका ३ दिन में शमन हो जाते हैं।

सूचना–केवल मट्ठे पर रोगी को रखें या भात और दही खाने को देवें। ज्वर हो, तो इस औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

१४. दाड़िमावलेह।

द्रव्य–अनारदाना, मिश्री, शहद और गोघृत ६४-६४ तोले तथा सोंठ, पीपलामूल, पीपल, धनियां, अजवायन, जावित्री, जायफल, काली मिर्च, जीरा वंशलोचन, हरड़, निम्बपत्र, लजालू, कूठ, मोचरस, अरलू की छाल, कड़वा अत्तीस, पाठा और लौंग ये १९ औषधियाँ ४-४ तोले लेवें।

विधि–बिना कूटे हुए अनारदानों को रात्रि को ८ गुने जल में भिगो देवें। सुबह आधा जल जला, मसल, छान, मिश्री मिलाकर चाशनी करें। शेष औषधियों को कूट कर कपड़छन चूर्ण करें उसमें गोघृत मिलाकर चाशनी में मिला गरमकर अवलेह बना लेवें। फिर शीतल होने पर शहद मिलावें।

वक्तव्य–हम अनारदाने दूने लेते हैं।

मात्रा–४ से ६ माशे तक, दिन में २ से ४ बार। रोग उग्र होने पर कम मात्रा में अधिक बार सेवन कराना चाहिये।

उपयोग–यह दाड़िमावलेह समशीतोष्ण, उत्तम दीपन, पाचन और ग्राही है। इसका विपाक मधुर होता है एवं यह आंतों में स्निग्धता ला देता है। जीर्ण अतिसार, ज्वरातिसार, आमातिसार, रक्तातिसार, आमशूल, मन्दाग्नि, अन्त्रशोथ, अन्त्रक्षय और रक्तादि धातुओं में लीन विष आदि को नष्ट करता है।

दाड़िमावलेह वात, पित्त और कफ–तीनों प्रकृति के मनुष्यों को अनुकूल रहता है। प्रारम्भिक उग्रावस्था और जीर्णावस्था दोनों में यह निर्भयरूप से प्रयोजित होता है। सगर्भा स्त्रियों और छोटे बालकों को भी यह अवलेह दिया जाता है। इतना ही नहीं, क्षय रोग में होने वाले रक्तस्राव को रोकने के लिए भी यह प्रयोजित होता है। आंतों में शोथ आ गया हो, शूल चलता हो, दाह होता हो और रक्तस्राव हो रहा हो उनको यह तुरन्त दबा देता है। इस हेतु से रक्तातिसार पर इसका मुख्य औषध और अनुपान रूप से चिकित्सा में सर्वत्र प्रयोग हो रहा है।

यदि रक्तस्राव के कारण पाण्डुता आ गई हो, तो १-१ रत्ती लोहभस्म या मण्डूर मिलाना विशेष लाभप्रद है। अन्त्रक्षय हो, तो सुवर्णपर्पटी और प्रवाल पञ्चामृत के साथ दाड़िमावलेह की योजना अनुपान रूप से की जाती है।

१५. अतिसारहर वटी

द्रव्य–हींग भुनी, कालीमिर्च तथा कपूर ये प्रत्येक ५-५ तोले तथा अफीम १। तोले लें। सबको यथा विधि मिलाकर अदरक के रस में ६ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में ३ बार जल के साथ दें।

उपयोग–अतिसार, अपचन युक्त पतले दस्त, निराम प्रवाहिका रोग (Dysentary) तथा विसूचिका (Cholera) एवं ज्वरातिसार जिसमें दुर्गन्ध न आती हो मात्र जल गिरता हो उन पर लाभ दर्शाता है।

(६) ग्रहणी।

१. सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी।

द्रव्य—शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, कौड़ी भस्म १॥ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, सुवर्णमाक्षिक भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, शुद्ध बच्छनाभ, अतीस, भुनी हींग, मोचरस और जीरा ये प्रत्येक १-१ तोला लेवें।

विधि—पारद और गन्धक की २ तोले कज्जली को थोड़े घी के साथ लोहे की कड़ाही में मन्दाग्नि देकर गलावें। फिर कौड़ी भस्म और माक्षिक भस्म १-१ तोला मिला भैंस के ताजे गोबर पर केले के पान बिछाकर उस पर डाल, ऊपर दूसरा पान रख, दबा कर पर्पटी बना लेवें।

पारद १ तोले के साथ सुवर्णभस्म १ तोला मिलाकर अच्छी तरह खरल करें। फिर गन्धक १ तोला मिलाकर कज्जली बनावें। उसे थोड़े घी के साथ मिला मन्दाग्नि पर गलावें। उसमें ६ माशे कौड़ी भस्म मिलाकर उपर्युक्त विधि से पर्पटी बनावें।

उक्त दोनों पर्पटियां, माक्षिक भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म और काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला, खरलकर एक जीव कर लेवें। फिर अरणी मूल, मरेठी (भारतीय अकरकरा), चिरमी के पान, असगंध, पञ्चकोल (सोंठ, चव्य, पीपल, पीपलामूल और चित्रकमूल) इन ५ द्रव्यों के पृथक्-पृथक् क्वाथों की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.र.स.)*

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिन में २ या ३ बार घृत में सेकी हुई सोंठ, सौंफ के चूर्ण और शहद में या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—यह सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी रस दीपन, पाचन रुचिकर, ग्राही हृदय पौष्टिक कीटाणुनाशक, विषहर और ज्वरघ्न है। इसके सेवन से आमोत्पत्ति बन्द होती है; क्षुधा प्रदीप्त होती है। ज्वर रहता हो, तो दूर होता है। उदर में अफारा आता रहता हो, तो उसकी उत्पत्ति नहीं होती एवं अन्त्र की शिथिलता से मलशेष रह जाता हो, यथोचित उदरशुद्धि न होती हो तो नियमित होती है। उदर में सूक्ष्म कृमि हो, तो नष्ट होते है। रक्त में कीटाणु-विष की वृद्धि हुई हो तो वह जल जाता है। इन हेतुओं से यह रसग्रहणी, ज्वरसह संग्रहणी, आन्त्रिक शोथ (Sprue), अन्त्रक्षय (Intestinal T.B.) और राजयक्ष्मा में उत्पन्न क्षयज अतिसार आदि पर प्रयुक्त होता है। यह रस बालक, वृद्ध, युवा, सगर्भा, प्रसूता सबको निर्भय रूप से दिया जाता है। इसका प्रयोग गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ में अत्यधिक परिमाण में होता है।

विवेचन—

जीर्ण संग्रहणी—जब जीर्ण संग्रहणी रोग में मल; कीटाणु और दुर्गन्धयुक्त; श्वेत रंग का हो जाता है और शरीर अति क्षीण हो जाता है, तब प्राय: सुवर्ण पर्पटी दी जाती है। किन्तु ज्वरावस्था, अग्निमांद्य और आमप्रकोप होने पर सुवर्णपर्पटी भी उचित प्रभाव नहीं दर्शा सकती। उन रोगियों को सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी देने से सत्वरलाभ होने लगता है। यदि दुग्धकल्प के साथ सुवर्णग्रहणीगजकेसरी का प्रयोग किया जाये और आवश्यकतानुसार जातिफलादी चूर्ण का सेवन कराया जाये तो लाभ सत्वर होता है।

अन्त्रक्षय—इस रोग में अग्नि मन्द हो जाती है, अन्त्र अति निर्बल बन जाती है, अन्त्र में छोटे-छांटे व्रण हो जाते हैं। ज्वर कुछ-न-कुछ अंश में बना रहता है, शरीर निस्तेज और कृश हो जाता है, मल दुर्गन्धयुक्त थोड़ा-थोड़ा उतरता रहता है। ऐसी अवस्था में सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी का उपयोग होता है। ज्वर न हो, तो हेमगर्भपोटली (द्वितीय विधि) से भी लाभ पहुँच जाता है, किन्तु ज्वर, अफारा, अग्निमांद्य और आमवृद्धि हो, तो इस रस का सेवन कराना ही विशेष हितावह माना जाता है।

संग्रहणी के कतिपय रोगियों का यकृत् बहुत निर्बल हो जाता है। फिर अन्त्र की पचनक्रिया योग्य नहीं होती, अफारा होता है और मल दूषित होता रहता है। उन रोगियों को यदि आमाशय का रसस्राव यथोचित होता हो; तो उनको विशेषत: पञ्चामृत पर्पटी तक्र के साथ दी जाती है। किन्तु रोग जीर्ण हो जाने से अन्त्रक्षय के लक्षण उपस्थित हुए हों और अति निर्बलता आई हो तो पञ्चामृत पर्पटी के साथ इस रस की योजना की जाती है। इस रस के मिश्रण से क्षयज लक्षण दूर होते जाते हैं और शक्तिवृद्धि में अच्छी सहायता मिल जाती है।

प्रतिश्यायज कास—सूर्य के ताप में अधिक फिरने या कण्ठ पर शीतल वायु का आघात होने पर स्वरयन्त्र प्रदाह होकर प्रतिश्याय हो जाता है। उसकी योग्य चिकित्सा न होने पर आमाशय में उग्रता पहुँच जाने से बार-बार जीव मचलता है, वान्ति होने का भास होता रहता है और उदर में आम संगृहीत हो जाता है। साथ-साथ किसी-किसी को फुफ्फुसों में कफ सञ्चित होकर कफयुक्त कास की प्राप्ति भी हो जाती है। इस विकार पर सुवर्णग्रहणी गजकेसरी, सोहागे का फूला, शंख भस्म और कर्पूराद्य चूर्ण को घी और शहद के साथ मिलाकर पिया जाता है।

पर्वतीय अतिसार—बद्रीनारायण आदि पहाड़ों की तीर्थ यात्रा करने पर अनेक रोगियों को पार्वतीय अतिसार (Hill Diarrhoea) हो जाता है। अनियमित आहार एवं पहाड़ी जल के सेवन से अन्त्र में शोथ आ जाता है। उदर में पीड़ा होती रहती है तथा मल के साथ अधिक झाग आता है। अन्नपाचन योग्य नहीं होता और देह अति कृश हो जाती है। इस पर इस रस की योजना की जाती है। अनुपान रूप से

कुटजावलेह या आर्द्रकावलेह दिया जाता है।

पित्तातिसार–प्रसूता स्त्री को गरम औषधि, अति उष्ण योजना या सोंठ, अजवायन, गुड़ आदि का अधिक सेवन कराने पर पित्तप्रकोप होकर अतिसार हो जाता है। दस्त पतला और गरम-गरम होता रहता है और शरीर निर्बल हो जाता है। उन स्त्रियों को इस रस का सेवन लघुगंगाधर चूर्ण या जीरकाद्यरिष्ट के साथ कराने पर ४-६ दिन में लाभ हो जाता है।

जीर्ण प्रवाहिका–मधुर, स्निग्ध, गुरु पदार्थों का अत्यन्त सेवन करने से अन्त्रक्रिया अत्यन्त विकृत हो जाती है और बृहद् अन्त्र में आम-संग्रह होता रहता है, इससे उदर में मामूली दर्द, आमयुक्त दस्त का ३-४ समय आना, उदर में वायु भरी रहना आदि लक्षण होते हैं तब तक कल्प के साथ सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी का प्रयोग प्रवालपञ्चामृत के साथ किया जाये तो लाभ सत्वर होता है।

सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी में पारद-रसायन, कीटाणुनाशक और योगवाही है। गन्धक-कीटाणुनासक, दीपक, पाचक और ग्राही गुण दर्शाता है। कौड़ी भस्म आमाशय, अन्त्र और यकृत् पर पौष्टिक और वातहर है। सुवर्ण भस्म-कीटाणु विषहर, मस्तिष्क और हृदय के लिये बल्य, अन्त्रपोषक और रसायन है। सुवर्णमाक्षिक रक्तपौष्टिक, पित्तशामक तथा आमाशय और यकृत् के लिये बलप्रद, ग्राही, रसायन और क्षयहर है। बच्छनाभ-प्रदाहहर और ज्वरघ्न तथा आमपाचक है। अतीस आदि औषधियाँ, दीपन-पाचन और ग्राही है। हींग में वातहर गुण भी अधिक है।

२. ग्रहणीगजकेसरी।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हिंगुल, लोह भस्म, जायफल, बेलगिरी, मोचरस, शुद्ध बच्छनाभ, अतिविष, त्रिकटु (सोंठ कालीमिर्च, पीपल), धाय के फूल, भांग, हरड़, कैथ का गूदा, नागरमोथा, अजवायन, चित्रकमूल, अनारदाने, सोहागे का फूला, इन्द्रजौ, धतूरा के शुद्ध बीज और तालमखाने ये २३ औषधियाँ १-१ तोला और अफीम ५॥ तोले लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर हिंगुल, भस्म, विष और अफीम क्रमशः मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण डाल धतूरे के पत्तों के रस में ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बना लें। *(यो.र.)*

वक्तव्य–इस रसायन के पाठ में 'पक्षेक्षण' के स्थान पर कितने ही ग्रन्थकारों ने 'यक्षेक्षण' मानकर लताकरंज के बीज और कितनों ने सर्जरस (राल) अर्थ किया है। योगरत्नाकर के संशोधक ने पक्षेक्षण अर्थात् २२ औषधियाँ लिखा है। कितने ही ग्रन्थकारों ने पक्षेक्षण का अर्थ तालमखाना माना है।

इस प्रयोग में २२ या २३ औषधियाँ मानकर अफीम ८८ या ९२ तोले (चार गुना) लेने का भ्रम होता है। एक ग्रन्थकार ने २३ औषधियाँ १-१ तोला और अफीम ४ तोले लेने को लिखा है। किन्तु वृद्धव्यवहारानुरोध से हमने अफीम चतुर्थांश अर्थात् ५॥ तोले मिलाया है।

धतूरे के पत्तों को कूट स्वरस निकाल छानकर २-३ घण्टे रहने देवें। फिर ऊपर-ऊपर से नितरे हुए रस का उपयोग में लेवें। बार-बार थोड़ा-थोड़ा स्वरस मिला-मिलाकर खरल करते रहें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में ३ बार जल, मट्ठे या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह रस योग्य अनुपान के साथ देने से ग्रहणी रोग, सरक्त ग्रहणी, आमग्रहणी, शूलसह जीर्ण अतिसार, तीव्र वेदनासह विसूचिका और असाध्य प्रवाहिका को नष्ट करता है।

यह रस तीव्र विकार में उपयोगी है। संग्रहणी के विकार में तीव्र वेदनासह बार-बार अति परिमाण में झागमय मल गिरता है, साथ-साथ रक्त और आम जाते हैं तथा उदर में तीव्र शूल भी रहता है। उदर में शूल चलने के साथ कुछ आम और रक्तमिश्रित जलमय मल गिरता है। पसलियाँ, उदर, कण्ठ और पैरों के घुटनों में दर्द होता है या ऐंठन-सी वेदना होती है। सर्वांग में शूल चुभाने सदृश पीड़ा होती है, कौड़ी प्रदेश और आमाशय में बार-बार खूब भींचने का भास होता है, लघु अन्त्र और बृहदन्त्र के भीतर काटने के समान पीड़ा होती है। कुछ खा लिया तो अच्छा लगता है किन्तु खाया हुआ अन्न पचन होने (आमाशय में से आगे जाने) पर उदर में अफारा आता है या उदर में गोले उठते हैं। रोगी थोड़े ही समय में बिल्कुल दीन, कृश और निर्बल हो जाता है। सब प्रकार के भोजन करने की इच्छा तो होती है, किन्तु किसी भी भोजन में स्वाद नहीं आता। मन में किसी प्रकार से स्थिरता नहीं रही। पीड़ा थोड़ी बढ़ने के साथ धैर्य टूट जाता है, देह गल जाता है। कभी कभी मन की निर्बलता के हेतु से रोगी जहाँ बैठा हो, वहाँ ही उदर में बलपूर्वक मरोड़ा आकर दस्त होने लगता है, उसे रोकने की शक्ति नहीं रहती। इस तरह की वात-प्रधान ग्रहणी पर इस रस का सत्वर प्रभाव पड़ता है।

विवेचन–इस रस में धतूरा है। उसका महत्त्वपूर्ण धर्म बृहदन्त्र की श्लैष्मिक कला में से होने वाले रसस्राव को नियमित बनाने का है। बहुत दस्त और उनके साथ पिच्छिल आम का स्राव होता है। ये दस्त अनिच्छापूर्वक या रोकने की असामर्थ्य के हेतु से बैठे हुए स्थान में हो जाता है। किसी-किसी रोगी को ये दस्त इतने जल्दी-जल्दी और अधिक होते हैं कि एक घण्टे में कम से कम २०-२५ बार शौच हो जाने के उदाहरण मिले हैं। ऐसे अत्यन्त त्रासदायक विकार में यह रसायन पहले शूल को कम करता है फिर अब्धातु का नियमन करके दस्तों की संख्या घटाता है। यदि केवल अफीम के समान स्तम्भक औषध दी जाये, तो उतना इष्ट परिणाम नहीं आता।

तीव्र ग्रहणी में शूल के साथ रक्त अधिक बार जाता है। यह रक्त जाने के समय उदर में मरोड़ा आता है, उदर को दबाकर रखना **चाहिये**, ऐसा रोगी को लगता है, उदर में गुड़गुड आवाज होकर गोले उठने के समान भासता है, रक्त गिरने और शौच होने पर शरीर **को संभालने** की शक्ति नहीं रहती। लघुअन्त्र और बृहदन्त्र दोनों रूई के समान नरम हो जाते हैं। दोनों अति शिथिल भासते है। किसी-किसी रोगी को यह शिथिलता इतनी बढ़ जाती है कि किनछने के साथ उसका दबाव गुदमार्ग पर पड़कर काँच बाहर निकल जाती है, **जिसे गुदभ्रंश** (Prolapsus-ani) कहते हैं। साथ-साथ रक्त भी गिरता है। कितनों को केवल रक्त गिरता है, तब कईयों को रक्तमिश्रित जल **गिरता है**। अथवा मांस के धोवन सदृश लाल दुर्गन्ध-युक्त, काला-नीला या अरुण वर्ण का और उस पर तैल के अणु फैले हों, ऐसा जुलाब लगता है। रोगी अति व्याकुल हो गया है, ऐसा विदित होता है। रोगी को रोग की भीषणता, वास्तविक स्थिति की अपेक्षा अत्यधिक भासती है। उसके मन में बड़ी भारी भीति घुस जाती है। इस स्थिति में कूड़े की छाल के अर्क के साथ या सौंफ अर्क के साथ ग्रहणी गजकेसरी **देने से उत्तम** लाभ हो जाता है।

आमातिसार या आमसंग्रहणी में पहले लंघन कराना चाहिये; परन्तु कितने ही रोगियों से उपवास बिल्कुल सहन नहीं होता। उन्हें **शोधन रूप** लंघन कराना चाहिये। यह शोधन देने में स्नेह-विरेचन (एरण्ड तैल) को यथार्थ में आयुर्वेद ने मान्य नहीं किया। स्नेह-विरेचन से आम गिर तो जाती है; किन्तु आम का पचन नहीं होता। इस हेतु से आमोत्पत्ति कम नहीं होती। इस स्नेह विरेचन में बड़ा दोष है। इस हेतु से इस विकार में दीपन, पाचन औषधियों के साथ विरेचन देना चाहिये। पहले इन्द्रजौ, नागरमोथा, बिजौरा, अतीस आदि औषधियों के साथ या कूड़े की छाल के साथ अमलतास के गूदे के समान मृदु, संशोधक औषध देकर आमानुबन्ध को हो सके उतना कम कराना **चाहिये**। **कोष्ठ** शूल अत्यन्त तीव्र और उस शूल के साथ प्रत्येक वेग के साथ बहुत सा आम गिरना, शूल निकलने या मरोड़ा आने के साथ **बिना प्रयत्न** आम का अतिस्राव होना, मुँह में बार-बार जल छूटना, अरुचि, उबाक, किसी भी प्रकार के भोजन की इच्छा न होना आदि लक्षण होते हैं। आम बार-बार बहुत पतला केवल जल सदृश, झागदार और अति मात्रा में गिरता है। आम में रक्तांश हो, यह नियम नहीं। यदि रक्त हो, तो भी बहुत कम। आमस्राव और शूल के हेतु से रोगी थोड़े ही समय में अति क्षीण हो जाता है। रोगी को किसी तरह चैन नहीं पड़ता भ्रमित-सा भासता है एवं क्रोधी, आग्रही और दुर्बल मन वाला बन जाता है। इस अवस्था में ग्रहणीगजकेसरी बहुत उत्तम कार्य करता है।

इन सब संग्रहणी विकारों का पर्यवसान प्रवाहिका में होता है या कभी-कभी प्रारम्भ से ही प्रवाहिका हो जाती है। यह विकार अति त्रासदायक है। इस विकार में अन्त्र की शिथिलता मुख्य है और उसके संग्राहकत्व और पाचन, शोषण आदि धर्म क्षीण हो जाते है, इस हेतु से बार-बार शौच होते रहते हैं। जल भरे हुए हौज का डाट हटा लेने पर, उसमें से शनैः शनैः एक समान जल प्रवाह निकलने लगता **है**, उस तरह कोष्ठ में से धीरे-धीरे एक समान बुदबुदे की आवाज सह जल स्राव होता रहता है। उदर में मरोडा आता है, शूल चलता **और दाह होता है**, तृषा अधिक लगती है जुलाब पिच्छिल जल सदृश होता है, कभी-कभी उदर में तीव्र मरोड़ा आने से रोगी अति व्याकुल **हो जाता है**। शौच के वेग के समय बिल्कुल अधिकार नहीं रहता अथवा शौच के लिये किनछने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती, **शौच होने** में जरा भी श्रम नहीं होता, कभी-कभी बिल्कुल मालूम भी नहीं पड़ता। इस तरह स्थिति रहने से रोगी अत्यन्त जर्जरित हो **जाता है**। **इस विकार** पर उदर में औषध देने के साथ पिच्छा बस्ति का भी उपयोग करना पड़ता है। संग्रहणी रोग में पिच्छा बस्ति का **उपयोग अधिक होता है**। प्रवाहिका की इस अवस्था में ग्रहणीगजकेसरी, कोकम (अमचूर के तैल) या मक्खन को पतला बना उसके साथ **प्रयुक्त करना चाहिये**।

पिच्छा बस्ति—जवासा, कुश् और कांस इनकी जड़, सेमल का फूल, बड़ के पत्राङ्कुर, गूलर के कोमल पत्ते, पीपल वृक्ष के कोमल **पत्ते** ये ७ औषधियाँ ८-८ तोले लें। इन सबको कूट ३८४ तोले जल और १२८ तोले दूध मिलाकर पाक करें। दूध मात्र शेष रहने पर **उसे छान**, उसमें सेमल का गोंद, लाजवन्ती, लालचन्दन, नीलोफर, इन्द्र जौ, प्रियंगु, कमल की केसर का कल्क, घी, शहद और शक्कर **मिलावें। दूध, कल्क, घी, शहद, शक्कर** आदि की मात्रा प्रकृति और शक्ति के अनुसार निर्णीत करें। इस बस्ति का प्रयोग करने से प्रवाहिका, **गुदभ्रंश, रक्तस्राव** और ज्वर की निवृत्ति होती है।

परिणामशूल के विकार में वातदोष की दुष्टि अधिक होने पर शूल, विबंध और आध्मान विकार उपस्थित होते हैं, साथ में वान्ति होती है, वह शूल-सह, दुर्गन्धयुक्त, कसैली या कुछ कड़वी और बड़ी होती है वान्ति होने से त्रास अधिक होता है, तब ग्रहणी गजकेसरी **का** उपयोग करना चाहिये।

मध्यम कोष्ठ में उत्पन्न शूल विशेषतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्र की शिथिलता से और उनके भीतर पिच्छिलता कम हो जाने से होता **है। इस प्रकार का** शूल होने पर या वात वाहिनियों के क्षोभ होने पर शूल उपस्थित हुआ हो, तो ग्रहणी गजकेसरी उत्तम कार्य करता है।

उपर्युक्त विकारों से रोगी अति क्षीण हो जाता है। बलक्षय, मांस में क्षीणता और मानसिक निर्बलता आदि होते हैं। ऐसी परिस्थिति **में उसे** अपना जीवन भाररूप भासता है। ग्रहणी, अतिसार आदि व्याधि कम हो जाने के पश्चात् भी इस प्रकार की शारीरिक और मानसिक

निर्बल स्थिति भासती है। उसे नष्टकर पुनः शरीर को सम स्थिति में लाने और धातुसाम्य प्रस्थापित करने का उत्तम गुण इस ग्रहणीगजकेसरी में अवस्थित है। इस रस में रहे हुए अभ्रक भस्म और लोह भस्म का उपयोग इसी शक्तिपात वाली अवस्था में बहुत अच्छा होता है। इस औषधि में द्रव्य-संयोग का परिणाम विशेषतः लघु अन्त्र और बृहदन्त्र आदि पचनसंस्थान पर और शोषक ग्रन्थियों पर होकर ऊपर लिखे हुए विशेष फल की सम्प्राप्ति होती है। यह कज्जली-दरद कल्प, आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों पर कार्य करता है।

द्रव्य गुणधर्म–

कज्जली–जन्तुघ्न, योगवाही और रसायन है।

हिंगुल–जन्तुघ्न, आमाशय दोषहर, विशेषतः आमाशयस्थ कफ का नियमन करने वाला।

अभ्रकभस्म–बल्य, रसायन, सूक्ष्म स्रोतोगामी, मनोदोषघ्न और धातु साम्य प्रस्थापक।

लोहभस्म–स्तम्भक, संग्राही, बल्य, रसायन, योगवाही और रक्तपौष्टिक।

जायफल–वेदनाहर, स्तम्भक और संग्राही।

बेलगिरी–आमदोषघ्न, आमपाचक और उपलेपक।

मोचरस–उपलेपक और स्तम्भक।

बच्छनाभ–वेदनाशामक और अन्त्रस्थ स्राव का नियमनकर्त्ता।

अतीस–यकृत् को शक्ति देकर यकृत्पित्त का स्राव बढ़ाता है।

त्रिकटु–दीपन, पाचन और अन्त्रस्थ द्रव्यों की विकृति का नाशक।

धाय के फूल–स्तम्भक, संग्राही और अन्त्रस्थ द्रव्यगति-वि रक्षक।

भांग–उत्तेजक, पाचक, संग्राही और दीपक।

हरड़–रसायन, कसैली और पाचक।

कैथ–स्तम्भक, कसैला और पाचक।

नागरमोथा–आमपाचक और ग्राही।

अजवायन–दीपन, पाचन और उदरस्थ संज्ञावाहिनियों के सिरे को अवसन्न बनाकर शूल को शमन करने वाला।

चित्रकमूल–शैथिल्यनाशक, तीव्रपाचक और वातक्षोभशामक।

अनारदाने–स्तम्भक और संग्राही।

सोहागा–आक्षेपघ्न, दुर्गन्धहर और कीटाणुनाशक।

इन्द्रजौ–यकृत् पित्तविरेचक, अन्त्र को सबल बनाने वाला, आमपाचक तथा आमोत्पादक कीटाणुओं एवं कृमियों का नाशक।

धतूरा बीज–वातप्रक्षोभनाशक, वेदनाहर और अन्त्रस्थ रसस्राव-नियामक।

तालमखाना–उपलेपक और बल्य।

अफीम–तीव्र शामक, वेदनाहर, स्तम्भक और अन्त्रपौष्टिक।

धतूरा रस–यह रस धतूरे के रस की भावना देने से वेदनाशामक, स्तम्भक, तीव्र संग्रहणी अन्त्र में बढ़ी हुई अब्धातु का नियमन करने वाला, बल्य और रसायन बन गया है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

३. ग्रहणीवज्रकपाट।

द्रव्य–पारद भस्म (रससिंदूर); अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, जवाखार, सोहागे का फूला, बच और काली अरणी का मूल, इन ७ औषधियों को समभाग लें।

विधि–पहले पारद भस्म, अभ्रक भस्म और गन्धक को मिलावें। फिर सोहागे का फूला, जवाखार तथा अन्त में बच और अरणी का चूर्ण मिलावें। पश्चात् कालीअरणी के क्वाथ, भांगरे का रस, नींबू का रस तीनों के साथ ३-३ दिन मर्दनकर गोली बनाकर सुखा लेवें। इसे कड़ाही में रख, उस पर शराव ढक, गुड़, चूने से दृढ़ संधि लेप कर, मन्दाग्नि पर १॥ घण्टे तक स्वेदन करें। स्वाङ्गशीतल होने पर समान वजन में अतीस और उतना ही मोचरस का चूर्ण मिलावें। फिर भाँग के क्वाथ की ७ भावनायें दें। प्रत्येक भावना देने पर अच्छी तरह सुखा लें फिर दूसरी भावना देवें। अन्त में २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(र.र.स.)

वक्तव्य–रसयोगसागर में भाँग की भावना के स्थान पर कैथ और भांग की ७ भावनायें देने का एवं भावना देने के पश्चात् धाय के फूल, इन्द्र जौ, नागरमोथा, लोध, बेलगिरी, गिलोय इन ६ औषधियों के रस या क्वाथ की भावना देने को लिखा है, परन्तु हमें भांग की भावना के पश्चात् इन सब भावनाओं की आवश्यकता नहीं भासती।

मात्रा–१ से २ गोली तक, दिन में ३ बार, शहद के साथ या मट्ठे के साथ देवें। रसयोगसागर में ऊपर चित्रकमूल, सोंठ, बायविडंग, बेलगिरी सैंधानमक इन सबके कपड़छन चूर्ण को गुनगुने जल के साथ देने का विधान किया है। यह अग्निमांद्य वालों के लिये हितावह है।

उपयोग–यह रस ग्रहणी रोग के नाश करने में वज्र के कपाट सदृश है। यह रसायन विशेषत: आमवातज ग्रहणी विकार, वातरक्त के पश्चात् उत्पन्न ग्रहणी रोग, ग्रहणी में उत्पन्न आमवात, वातरक्त, आमसंचय और आमाजीर्ण का अनुबन्ध होने पर उत्तम कार्य करने वाला है। यह अन्त्र में उत्पन्न शोथ को नष्टकर आम पचन कराने वाला रस है।

विवेचन–दीर्घकाल के आमवात, रह रहकर अच्छा हो-होकर पुन: उत्पन्न होते रहने वाले आमवात का परिणाम हृदयेन्द्रिय, यकृत और बृहदन्त्र पर विविध प्रकार का होता है आमवात का कारण रूप दोष कुछ काल संधि में स्थित होता है एवं कुछ काल धातुओं में लीन होकर अन्त्रेन्द्रिय में प्रवेश कर यकृत् आदि इद्रियों में दुष्टि करता है। इस तरह इन्द्रियों में दुष्टि होने पर उन-उन इन्द्रियों की दुष्टि अनुरूप रोग उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगी की मूल दोष-दुष्टि और वह जिन-जिन स्थानों में पहुँचती है, उन-उन स्थानों को भी दुषित करती हैं एवं रक्त आदि दूष्यों से संयुक्त होती है। इस हेतु से चिकित्सा करने के समय दोष-दूष्य संयोग और स्थानिक विकृति आदि सब बातों का विचार करना पड़ता है। ग्रहणी आमवातज दोषों से दुष्ट होने पर इस औषध का उत्तम उपयोग होता है। केवल कफवृद्धि होने से बृहद्अन्त्र में श्लैष्मिक कला मोटी होकर अब्धातु की वृद्धि हुई हो, तो चिरकाल तक टिकने वाले ग्रहणी रोग में कफघ्न और सारक गुण युक्त अश्वकंचुकी रस का उपयोग होता है। यह रसतंत्रसार प्रथम खण्ड के भीतर अश्वकंचुकी के वर्णन में दर्शाया है।

इस अवस्था में रोगियों की संधियाँ अनेक दिनों तक पहले सूजी हुई होती है। संधिस्थानों का शोथ कम होने के पश्चात् कोष्ठ-विकृति के लक्षण थोड़े-थोड़े होते रहते हैं। उदर में अफारा, उदर में शूल चुभने के समान हल्की-हल्की वेदना, अन्न का पाचन योग्य न होना, विशेषत: द्विदल धान्य और मांसयुक्त अन्न का पचन बराबर न होना, इनके सेवन से लक्षण अधिक बढ़ जाना, उदर में अफारा आना, सब लघुअन्त्र और बृहदन्त्र, दोनों में एक प्रकार की जड़ता और दर्द होना, उदर में कुछ चिपका है ऐसा भासना, बार-बार शौच जाने की शंका, शौच जाने पर भी उदर-शुद्धि नहीं हुई ऐसा भासना, फिर शौच जाने की इच्छाहोना, बार-बार मरोड़ा आना, परन्तु यह अधिक बलपूर्वक न होना, अधिक किनछने की आवश्यकता न रहना, प्रत्येक वेग के साथ आमसह, झागमय दस्त होना, यकृत् के समीप कुछ दर्द होना, यकृत् कुछ बढ़ जाना, अरुचि और अग्नि माँद्य आदि विकार दीर्घकाल तक रहना ये सब लक्षण प्रतीत होते हैं। एवं ग्रहणी के विकार में होने वाले लक्षण कम होने पर पुन: कुछ अंश में साँधों में दर्द होना। इस तरह यह रोग चक्र नेमिवत् चलता रहता है। इस तरह के ग्रहणी रोग में ग्रहणी-वज्रकपाट उत्तम कार्य करने वाली औषधि है।

केवल बुद्धि से कार्य करने और बैठे रहने वाले मनुष्यों को मनोव्याघात के हेतु से या शोकादि के समान आत्यन्तिक मानसिक स्वास्थ्यनाशक प्रसंग उत्पन्न होने पर मन अस्वस्थ हो जाता है। फिर मन का असर वातवाहिनियों के केन्द्र स्थान पर होता है और उसका परिणाम वातवाहिनियों से संबंध वाले अवयवसमूहों पर होकर ये अवयव और उनके साथ में रही हुई धातु आदि विकृत होते हैं। इस तरह वायु के प्रेरकत्व की कमी होने से और पचनेन्द्रिय विकृत होने से अन्नरसौत्पत्ति की विकृति होते लगती है। फिर इस तरह बृहदन्त्र में दोष संगृहीत होने लगता है। यह सब दोष दूष्य-संयोग के कारण मानसिक विकृति होने से और इस रोग में वह मुख्यत: होने से उसका प्रतिकार करना पड़ता है। यह ग्रहणी रोग कुछ काल तक उपचार करने पर या उपचार न करने पर भी बन्द हो जाता है। उस समय उदर में दर्द, बार-बार चक्कर आना, मेह, झागमय, चिकने और दुर्गन्धियुक्त दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। दस्त अधिक बार नहीं होते, दिन में २-४ बार ही होते हैं। शौच के समय वेदना भी मन्द होती है, अग्निबल न्यून हो जाता है, किसी भी पदार्थ की अधिक रुचि नहीं होती, आज एक वस्तु पसन्द है तो कल उस पर अरुचि हो जाती है। कोष्ठ मे एक प्रकार का शूल भी तीव्र नहीं, मन्द ही होता है, फिर भी असह्य मालूम पड़ता है। ऐसी स्थिति में इतर औषधियों की अपेक्षा ग्रहणीवज्र-कपाट का उपयोग अधिक अच्छा होता है।

ग्रहणी विकार के पश्चात् उत्पन्न होने वाली यकृद्-विद्रधि में मूल हेतु आमदोषज ग्रहणी विकार हो एवं ग्रहणी होने पर या ग्रहणी रोग का शमन होने पर उस विद्रधि की उत्पत्ति हुई हो और विद्रधि अधिक जीर्ण न हो गई हो, उस पर इस ग्रहणी वज्र-कपाट की योजना हितावह है। विद्रधि अति बड़ी न हो, संख्या में अधिक न हो और उसका बल अधिक न हो, तो इस योग का प्रयोग किया जाता है। यकृद् विद्रधि में त्वचा निस्तेज, पाण्डु वर्ण की हो जाती है, कुछ शोथ-सा मालूम पड़ता है, नाखून पीले निस्तेज और स्फीत भासते हैं, बार बार अति ठण्ड लगकर तीव्रज्वर आ जाता है। यह ज्वर अनेक दिनों तक आता रहता है। बीच में ज्वर कुछ समय स्थगित होकर पुन: बलपूर्वक शीतसह आ जाता है, जिह्वा शुष्क रहती है, उसके ऊपर काले दाग होते हैं तथा सफेद या पीले मैल की तह लग जाती है एवं बार-बार कण्ठ में शुष्कता, अंगों में दाह आदि उपस्थित होते हैं। उसके साथ यकृत् में मन्द-वेदना हो और यकृत् का एक भाग ऊपर उठ आया हो, तो इस रस का उपयोग इन्द्रजौ और कुटकी के अथवा कूड़ा छाल के क्वाथ के साथ करना चाहिये।

द्रव्य गुणधर्म–इस रस में-कज्जली जन्तुघ्न, ग्रहणी-दोषनाशक, योगवाही और रसायन है। अभ्रक भस्म-मनोदोषनाशक, धातु परिपोषणक्रम व्यवस्थित करने वाली, योगवाही और रसायन है। जवाखार और सोहागा-आमपाचक और दोष संघातभेदक है। बच आक्षेप हर, मनोदोषनाशक

और शूलघ्न है। अरणी–आमपाचक, आमवातनाशक और आमशूलघ्न है। भांगरा–वातघ्न, अन्त्रदोषनाशक, आमशूलघ्न और रसायन है। नींबू का रसपाचक और अग्नि प्रदीपक है। अतीस–यकृत्पित्तस्रावक, यकृत् शक्तिवर्धक, स्वेदल और विद्रधिनाशक है। मोचरस–स्तम्भक और प्रसादक है। भांग पाचक, उत्तेजक और अग्नि–प्रदीपक है। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

४. पीयूषवल्ली रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, रजतभस्म, लोहभस्म, सोहागे का फूला, रसोत, सुवर्ण माक्षिक भस्म, लौंग, सफेद चन्दन, नागर मोथा, पाठा, जीरा, धनियाँ, लजवन्ती, अतीस, लोध, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, सोंठ, बेलगिरी, धतूरे के शुद्ध बीज, दाड़िम के छिलके, मजीठ, धाय के फूल और कूठ ये २८ औषधियाँ २–२ तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली बना, फिर भस्म और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला काले भांगरे के रस में ७ दिन खरल करें। पश्चात् १ दिन बकरी के दूध में घोटकर १–१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में २ या ३ बार देवें।

अनुपान–आम, विष और मल को बाहर फेंकने के लिए बेल की राख और गुड या बेल का शर्बत। उदरपीड़ा और अन्त्र के प्रकोप के शमनार्थ ईसबगोल का लुआब। आमपचनार्थ १ तोला नागरमोथा और ३ माशे सोंठ का क्वाथ।

उपयोग–यह रस उत्तम ग्राही और दीपन पाचन है। अतिसार, ज्वर, तीव्र रक्तातिसार, जीर्ण ग्रहणी रोग, शोथ, अर्श, आमवृद्धि, उदरशूल, वातावरोध, संग्रह ग्रहणी, लेसदार आम बढ़कर विविध विकार होना, तृषावृद्धि, दाह, उबाक, अरुचि, वमन, दारुण गुदभ्रंश, पक्वातिसार, अपक्वातिसार, नाना प्रकार के काले, लाल, पीले, मांस धोवन के समान वेदना सहित अतिसार, प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदर रोग, मलावरोध, सूतिका रोग, उसमें उपद्रव रूप उत्पन्न रोग, प्रदर, कामला, पाण्डु और अनेक प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है।

विवेचन–जब ग्रहणी रोग पर अफीमयुक्त औषधि देनी हो, तब ग्रहणीकपाट, ग्रहणीगजकेसरी आदि अनेक व्यवहृत होती है, किन्तु रोगी को अफीम अनुकूल न हो या अफीम देने से हानि पहुँचने की संभावना हो, तब यह पीयूषवल्ली रस निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। इस रस में आम को बाहर निकालने, पचाने और दस्त बांधने का गुण है। साथ–साथ उदर में संगृहीत वायु को निकालना, वायु की उत्पत्ति को रोकना और मलावरोध न होने देने का उत्तम गुण अवस्थित है। यह इन्द्रजौ, नागरमोथा और सोंठ के क्वाथ के साथ देने पर आम की उत्पत्ति को भी रोक देता है।

कितने ही रोगियों को ग्रहणी रोग कुछ दिन रहता है और कुछ दिन कब्ज से त्रास होता है। थोड़ी सी भूल होने पर, ऋतु बदलने या जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य गिर जाता है। अपचनसह थोड़ा–थोड़ा दस्त आता रहता है, तब ग्रहणीवज्रकपाट और यह पीयूषवल्ली रस दोनों उपकारक है। किन्तु ग्रहणी वज्रकपाट में भांग की ७ भावनायें होने से यह आमाशय रस का स्राव अधिक कराता है और तेज बनाता है एवं अधिक ग्राही असर पहुँचाता है। तब इसके विपरीत इस पीयूषवल्ली रस में भांगरे की ७ भावनायें होने से वह आमाशय रस की तीव्रता को कम करता है और यकृत् को सबल बनाकर योग्य पित्तस्राव कराता है तथा आमाशय और अन्त्र की श्लैष्मिक कला की उग्रता को दूरकर स्निग्ध बनाता है। जिससे अन्त्रस्थ अन्तःस्राव (कफप्रधान अब्धातु का स्राव) नियमित हो जाता है।

नये ग्रहणी रोग में आमावस्था होने पर अपचन, अरुचि, आम बहुत गिरने से दस्त में अति दुर्गन्ध आना, उदर में भारीपन रहना, मुँह बेस्वादु रहना आदि लक्षण होने पर पहले बेल की राख और गुड का अनुपान देकर उदरस्थ आम, विष और मल को निकाल देना चाहिये। फिर नागरमोथा और सोंठ के क्वाथ का अनुपान देने से आमोत्पत्ति रूक जाती है। और अतिसार या ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है।

अतिसार में वातप्रधान लक्षण–उदर में वायु का अवरोध, हृदय, नाभि, गुदा आदि में वातजनित पीड़ा होना, झागदार, अरुण रंग का मल होना, बार–बार थोड़ा–थोड़ा शुष्कसा दस्त आवाज और आमसह गिरते रहना आदि लक्षण उपस्थित होने पर लघुअन्त्र का स्राव अधिक होता है। उस स्राव को अफीम प्रधान तीव्र स्तम्भक औषधि देकर सत्वर दबा दिया जाय, तो विकार अन्त्र में रह जाने से कुछ समय के पश्चात् अतिसार बढ़ जाता है या दोष धातु में लीन हो जाये तो भविष्य में विविध विकार उत्पन्न करता है। अतः ऐसे प्रसंगों पर अन्त्र की श्लैष्मिक त्वचा की उग्रता को शान्त कराकर अन्त्रस्राव की उत्पत्ति कम करानी चाहिये। यह कार्य इस रस से उत्तम प्रकार से होता है।

कफप्रधान संग्रहणी में मल दुर्गन्धियुक्त, लेसदार गिरता है, उदर में मन्द–मन्द वेदना होती है। अरुचि और जिह्वा पर सफेद मैल की तह बनी रहती है। कार्य करने का उत्साह नहीं रहता ऐसे लक्षणयुक्त नये ग्रहणी विकार को यह रस सत्वर दूर करता है।

प्रवाहिका युक्त ग्रहणी में अन्त्र के भीतर उग्रता उत्पन्न होती है। किसी–किसी स्थान पर से श्लैष्मिक–कला निकल जाती है, फिर थोड़े–थोड़े समय में उदर में पीड़ा होकर दस्त लगते रहते हैं, बार–बार किनछना पड़ता है, अधिक बल से किनछने पर काँच बाहर निकलता है। ऐसे ग्रहणी विकार में बेल की राख और गुड के साथ इस रस का प्रयोग किया जाता है। यदि उदर पीड़ा अति तीव्र हो, तो अफीमयुक्त औषध ग्रहणी कपाट या ग्रहणीगजकेसरी देना चाहिये। अतिसार और ग्रहणी रोग चिरकाल तक रह जाने पर बृहदन्त्र और गुदनलिका की अन्तस्त्वचा में से मलिन, लेसदार, दुर्गन्धियुक्त आम का स्राव होता रहता है जो मल के साथ बाहर निकलता रहता है। कितने

हो निर्बल अन्त्रवालों को कब्ज होने पर उस आम में से विष का शोषण रक्त में होता रहता है। जिससे मस्तिष्क में उग्रता, व्याकुलता, अति निर्बलता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगियों को यह रस बेल की राख और गुड़ के साथ देने से आश्चर्यकारक लाभ पहुँचाता है।

यदि यकृत्पित्त का स्राव कम होने से दस्त सफेद, मैले रंग के गाढ़े और दुर्गन्धयुक्त गिरते हों, ऐसे रोगियों को यह रस नहीं दिया जाता उन्हें भांग प्रधान औषधि ग्रहणी वज्रकपाट या नृपतिवल्लभ रस देना चाहिये।

यदि अतिसार या ग्रहणी रोग में दस्त के साथ थोड़ा-थोड़ा रक्त गिरता हो और वेदना तीव्र न हो, गुदा में जलन होती हो, किसी को गुदभ्रंश भी होता हो, तृषा अधिक लगती हो, उस पर यह रस सत्वर लाभ पहुँचाता है। आम भी साथ में गिरता हो, तो केवल गुड के शर्बत के साथ और आम न हो, तो ईसबगोल के लुआब के साथ देना चाहिये।

जीर्ण अतिसार या ग्रहणी रोगी की पचनक्रिया निर्बल होने से अन्न-रस-योग्य न बनता हो और आम की उत्पत्ति अधिक हो जाती हो, फिर उस हेतु से कफप्रधान प्रमेह की प्राप्ति हुई हो, मूत्र में चिपचिपा या तन्तु जैसा द्रव्य अथवा आटे के समान चूर्ण जाता हो, अथवा पेशाब गाढ़ा उतरता हो या पेशाब अधिक परिमाण में आता हो, तथा देह निस्तेज हो गई हो, तो इस रस का सेवन नागरमोथा और सोंठ के क्वाथ के साथ कराने से आमोत्पत्ति बन्द होकर प्रमेह रोग दूर हो जाता है।

विदेश की जलवायु या दूषित अन्न-जल के सेवन से अतिसार हो गया हो, थोड़ा-थोड़ा दस्त दिन में ४-६ बार आता हो, वृक्क की विकृति होने से पेशाब की उत्पत्ति कम हो गई हो तथा पेशाब गाढ़ा हो गया हो, फिर उसी हेतु से शोथ, कभी कभी ज्वर आ जाना; प्लीहा वृद्धि, उदर में भारीपन, मन्द-मन्द पीड़ा, उदर में वायु भरी रहना, अरुचि, उबाक, निस्तेजता और शुष्कता आदि लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो इस रस का सेवन बेल की राख या नागरमोथे के क्वाथ के साथ कराना चाहिये।

यदि सूतिका को अधिक सोंठ, अजवायन आदि खिलाने से, अपथ्य अन्न के सेवन कराने से अतिसार हो गया हो, पतले गरम-गरम दस्त होने से गुदा में जलन होती हो, तो इस रस का सेवन ईसबगोल के लुआब के साथ कराने से सत्वर लाभ पहुंचता है।

५. स्वच्छन्द भैरव रस (ग्रहणी)।

द्रव्य–शुद्ध पारद १० तोले, शुद्ध गन्धक और सैंधानमक २०-२० तोले लें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर सैंधानमक मिला, भिलावे के क्वाथ में ५ दिन तक खरल करें। फिर गोला बाँध छोटी हाँडी में रख, दृढ़ मुख मुद्रा करें। फिर बालुका-यंत्र में रख, चूल्हे पर चढ़ाकर रात्रि भर मध्याग्नि देवें। *(र.च.)*

वक्तव्य–क्वाथ के लिये भिलावे के ४-४ टुकड़े कर लेवें। भिलावे का तैल टुकड़े करने के समय देह को न लग जाये, वह सम्हालें। कदाच भिलावे का तेल लग जाये, तो उस पर तुरन्त नारियल का तैल लगा लेवें। क्वाथ करने में भिलावे की वाष्प लगने पर शरीर सूज जाता है, अतः सावधानी रखें।

अग्नि अत्यधिक न हो जाये, यह सम्हालें, अन्यथा पारद उड़ जायेगा। फिर औषधि योग्य प्रभाव नहीं दर्शा सकेगी।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में दो बार लेवें।

उपयोग–यह स्वच्छन्द भैरव ग्रहणी, संग्रहणी, कफ, कास, श्वास, उग्र ज्वर, तन्द्रा और स्वल्प निद्रा पर प्रयुक्त होता है। इसके सेवन से शरीर पुष्ट, तेजस्वी और स्फूर्ति वाला बनता है।

विवेचन–यह रस में संगृहीत आम और कफ दोष की दुष्टि को नष्ट कर उस स्थान को बल देता है और कफ के चिपचिपेपन को दूर कर स्रोतोरोध को नष्ट करता है। संग्रहणी के विकार में बहुत कम मल गिरना, मल के साथ झाग चिपचिपे, गाढ़े श्लेष्मा समान आम जाना, अति किनछना, किनछने से अति उद्वेग होने पर भी चैन न पड़ना, गुदभ्रंश होना, मल-मिश्रित अथवा मल-विरहित गिरना मुँह से उबाक और शुष्कता, क्वचित् वमन हो जाना, उदर में जड़ता, क्षुधा बिल्कुल नष्ट होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर संग्रहणी रोग में इस रस का उत्तम उपयोग होता है।

कास और श्वास रोग में कफ का चिपचिपापन अधिक होने पर कफ की गांठ सत्वर नहीं छूटती हो, खांस-खाँसकर अति व्यथित होने पर थोड़ा-सा गाढ़ा और लेसदार कफ निकलता हो, तो स्वच्छन्द भैरव का प्रयोग अति हितकर होता है। तुलसी का रस या नागरबेल के पान का रस अथवा अदरक का रस अनुपान रूप से देना चाहिये।

कफाधिक सन्निपात ज्वर में तन्द्रा उपस्थित होने पर स्वच्छन्दभैरव अधिक उपयोगी होता है। आन्त्रिक सन्निपात (मधुरा) में उग्र तन्द्रा आने पर यह रस दिया जाता है। इस तरह स्रोतोरोध के हेतु से या अति निर्बलता से निद्रानाश और स्वल्प निद्रा होने पर भी यह रस हितकारक है।

इसके सेवन में समग्र धातुपोषणक-क्रम व्यवस्थित होता है। इसी हेतु से देह पुष्ट होता है। इसके प्रयोग से मन शान्त होता है, सेन्द्रिय विष नष्ट होता है और शरीर मोटा बनता है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

संग्रहणी रोग में आमाशय की पचन–शक्ति अति मन्द हो जाने से मुँह में चिपचिपापन रहता हो, भोजन कर लेने पर उदर में घण्टों तक भारीपन रहता हो, उदर में मन्द-मन्द पीड़ा बनी रहती हो, वायु भरी रहती हो, अपानवायु जल्दी न सरती हो तथा मल में आम बहुत गिरता हो, ऐसे लक्षण उत्पन्न होने पर यह व्यवहृत होता है।

सूचना–यदि मस्तिष्क में रक्त दबाववृद्धि होने से निद्रानाश हुआ हो, तो उस पर यह रस नहीं दिया जाता। शुष्क कास से पीड़ित रोगी को यह न दें तथा पतले, गरम दस्तयुक्त अतिसार रोग में भी इस रस का प्रयोग न करें।

६. राजवल्लभ रस।

द्रव्य–जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, सोहागे का फूला, घी में भुनी हुई हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सैंधानमक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, निसोत और रौप्यभस्म ये २१ औषधियाँ ८-८ तोले लेवें।

विधि–पहले पारद, गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म मिलाकर एक जीव करें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण डाल, आंवले के स्वरस की ७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इसे अन्य ग्रन्थकारों ने नृपतिवल्लभ संज्ञा भी दी है।(र.चं.)

मात्रा–२-२ गोली, दिन में ३ बार, जल या मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग–यह राजवल्लभ ग्रहणी रोग के लिये अति उपकारक है। उदरशूल, गुल्म, दारुण आमवात, हृदयशूल, पार्श्वशूल, नेत्रशूल, हलीमक, शिर:शूल, कटिशूल, उदरकृमि, कुष्ठ, दाह, वातरक्त, भगन्दर, उपदंश, अतिसार, ग्रहणी, अर्श और प्रवाहिका आदि रोगों को नष्ट करता है।

यह औषध दीपन, आमपाचक, कफघ्न, ग्राही, वेदनाशामक और रसायन है। यह यकृत् को बल प्रदान करता है और अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष और कीटाणुओं को नष्ट करता है। यह अति निर्भय औषधि है। सगर्भा, प्रसूता, बालक और निर्बल प्रकृतिवाले को दे सकते हैं। यह आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों की पचन-विकृति को सूधारता है। यह अपचन और अग्निमान्द्य-जनित विकार तथा यकृत् के विकार से उत्पन्न अतिसार और ग्रहणी रोग को दूर करता है। यकद्वृद्धि होकर या शोथ आकर योग्य पित्तस्राव न होता हो, पचनक्रिया योग्य कार्य न करती हो, दस्त सफेद और दुर्गन्धयुक्त आता हो, दिन में ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा कुछ पतला दस्त होता हो, कभी दस्त में छोटे-छोटे कृमि भी निकलते हों, जिह्वा पर मल की तरह रहती हो, कभी कब्ज रहकर दस्त मैले रंग का हो जाता हो, उदर में भारीपन रहता हो, वायु बार-बार उत्पन्न होती हो, ऐसे लक्षणयुक्त अतिसार और ग्रहणी रोग में यह रस अच्छा लाभ पहुँचता है।

विवेचन–कतिपय रोगियों को अतिसार कुछ दिनों तक रहता है और कुछ दिनों तक नहीं रहता। पचन-क्रिया मन्द रहती है, दस्त में आम जाता रहता है, उदर में पीड़ा बार-बार उत्पन्न हो जाती है, शरीर अशक्त और कृश हो जाता है। आम अधिक संगृहीत होने पर एरण्ड तैल का विरेचन लेना पड़ता है अन्यथा विविध उपद्रव उपस्थित होते हैं। ऐसे रोगियों को यह राजवल्लभ रस, प्रवालपञ्चामृत और शुद्ध कुचिला (१ रत्ती) के साथ मिलाकर दिया जाता है।

बहुमूत्र (मूत्र बूंद-बूंद टपकने) की उत्पत्ति अन्त्रस्थ पचन-क्रिया की विकृति से भी होती है। ऐसे रोगी को प्राय: दिन की अपेक्षा रात्रि को बार-बार पेशाब के लिये उठना पड़ता है। रोग तीव्ररूप धारण करें, तब दिन में भी पेशाब बूंद-बूँद आता रहता है, कुछ जलन भी होती है, साथ में अग्निमान्द्य पेशाब पीला होना, यकृत्वृद्धि, हृदय फूला हुआ, मलावरोध, निर्बलता, खट्टे पदार्थ खाने पर सांधों-सांधों में दर्द, स्वप्नदोष आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग पर इस राजवल्लभ रस का सेवन कराने से सकृत् सबल बनकर फिर थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँच जाता है। अति पुराना रोग भी जड़ मूल से दूर हो जाता है। घी पचता हो, उतना खाना चाहिये, दही का त्याग करना चाहिये। धूम्रपान का व्यसन हो, तो हो सके उतना कम कर देना चाहिये। प्रारम्भ में यह रस त्रिकटु और शहद के साथ दिन में २ या ३ बार देना चाहिये।

आमवात रोग एक बार हो जाने पर अनेकों को आजीवन बारबार त्रास देता रहता है। मधुर पदार्थ खाने या शीत लगने पर भिन्न-भिन्न स्थानों के सांधों में दर्द हो जाता है। दूषित ग्रहणी वालों को पतले दस्त भी होते रहते हैं। ऐसे रोगियों को पथ्यपालन सह इस के साथ सोंठ चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर सेवन कराया जाये, तो अच्छा लाभ पहुँचता है। हृदय में शिथिलता हो, तो इस रस के साथ कुचिला या अभ्रक १-१ रत्ती मिला देना चाहिये।

वातवाहिनियों की विकृति होने पर पार्श्वशूल, हृदयशूल, मस्तिष्कशूल, चक्षु:शूल आदि उत्पन्न होते हैं। यदि शूल के रोगी को आमवृद्धि भी हो, तो इस रस का सेवन कराने पर शूल निवृत्त होता है और वातवाहिनियों की विकृति भी दूर हो जाती है। इस रस के साथ शृंग भस्म, हींग और शुद्ध कुचिले का चूर्ण मिला देने से लाभ पहुँचता है।

७. रत्नविजय पर्पटी

द्रव्य–शुद्ध गन्धक ४ तोले, शुद्ध पारद २ तोले, रौप्य भस्म १ तोला स्वर्ण भस्म ६ माशे, वैकान्त भस्म और मुक्ता पिष्टी ३-३ माशे लें।

विधि–पारद, गन्धक की कज्जली करके शेष भस्में मिलाकर एक दिन मर्दन करें। फिर घी लगी कड़ाही में रसपर्पटी के समान रसकर गोबर पर रखे हुए केले के पत्ते पर पर्पटी बना लें (स्व. श्री पं. यादवजी आचार्य)

मात्रा–१ से ३ रत्ती, दिन में २ या ३ बार, शहद, चतु:सम चूर्ण और शहद या जीरा और शहद अथवा बकरी के दूध, मट्ठे, अनार

के रस, मोसम्मी के रस या मीठे अंगूर के रस के साथ अथवा प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व, कमलककड़ी के चूर्ण और बेलगिरी के चूर्ण के साथ देवें।

चतु:सम–लौंग, भुना जीरा, सोहागे का फूला और जायफल समभाग मिला चूर्ण कर लेने पर चतु:सम चूर्ण तैयार होता है।

उपयोग–यह रत्नविजय पर्पटी कष्टसाध्य संग्रहणी, आन्त्रिक शोथ, अन्त्रक्षय, राजयक्ष्मा में उपद्रवयुक्त ग्रहणी, शोथ, जीर्ण प्रवाहिका, अतिसार, पाण्डुरोग, प्लीहावृद्धि, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, हृद्रोग, जीर्ण विषमज्वर तथा कफ और वातप्रकोप से उत्पन्न अन्य रोगों को नष्ट करती है एवं शरीर को पुष्ट और सबल बनाती है। पर्पटी के अन्य प्रयोगों से लाभ न हुआ हो, ऐसे रोगियों को इस पर्पटी के सेवन से लाभ मिल जाने के उदाहरण मिले हैं। साथ में दुग्धकल्प या तक्र-कल्प, इनमें से किसी एक का आश्रय लिया जाता है।

विवेचन–जब ग्रहणी रोग में भोजन कर लेने पर तुरन्त दस्त लग जाते हैं, आमाशय और अन्त्र, भोजन को अधिक देर धारण नहीं करते, जिससे बड़े-बड़े १-२ पीले दस्त गरम-गरम तुरन्त आ जाती हैं। फिर उसी हेतु से देह शुष्क और निस्तेज होती जाती है, शरीर का वजन धीरे-धीरे घटता जाता है। किसी-किसी रोगी को कुछ ज्वर भी रहता है। अन्त्र में रोग कीटाणु (यक्ष्माकीटाणु) की आबादी हो जाती है। अन्त्र में क्षत हो जाते हैं, फिर रोग सुदृढ़ होने पर कास-श्वास आदिउपद्रव भी उपस्थित होते हैं। शरीर कृश और निस्तेज हो जाता है, उस पर उपद्रवों की प्राप्ति होने के पहले दुग्धकल्प के साथ सेवन कराने से यह पर्पटी अमृत के समान उपकार दर्शाती है।

ताम्रप्रधान पञ्चामृत पर्पटी का सेवन तक्रकल्प के साथ कराया जाता है। दुग्धकल्प के साथ कभी नहीं। जिन रोगियों को तक्र अनुकूल न हो या राजयक्ष्मा, अन्त्रक्षय, अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, शोथ, कफप्रकोप या सुजाक आदि विकार हों, उनको संग्रहणी-शमनार्थ रत्नविजय पर्पटी दुग्धकल्प के साथ देने पर लाभ पहुँच जाता है।

जिस संग्रहणी रोग में जिह्वा से लेकर गुदनलिका पर्यन्त आमाशय, अन्त्र आदि समस्त संस्थान की श्लैष्मिक झिल्ली पर सूक्ष्म-सूक्ष्म स्फोट हो जाते हैं, उस प्रकार के विकार में जिह्वा लाल एवं कांटेवाली भासती है। दस्त बड़े-बड़े सफेद या पीले रंग के और गरम-गरम लगते हैं। खाया हुआ अन्न बिना पचन हुआ, कच्चा ही निकल जाता है। यदि दस्त सफेद रंग के हों, तो यकृत् पित्त का अभाव मानकर पंचामृत पर्पटी देनी चाहिये। यदिदस्त पीले रंग के हों, तो इस रत्नविजय पर्पटी की योजना करनी चाहिये।

सूचना–यदि ज्वर अधिक हो या पर्पटी देने पर ज्वर अधिक हो जाये, तो मात्रा कम कर देनी चाहिये।

८. ग्रहणीशार्दूल रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ तोला, सुवर्णभस्म १॥ माशा, लौंग, नीम के पान, जायफल, जावित्री और छोटी इलायची के दानों का चूर्ण १-१ तोला लें।

विधि–सबको अनारदाने के रस में १२ घन्टे खरलकर मोती की बड़ी दो सीपों के भीतर लेप करके सम्पुट करें। ऊपर ३ कपड़ मिट्टी करके पुटपाक की कृति से पाक करकें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर पीस लेवें। (र.सा.सं.)

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में ३-४ बार भुने जीरे का चूर्ण और शहद के साथ। उदर में पीड़ा होती हो, तो कुटजारिष्ट से।

उपयोग–ग्रहणीशार्दूल प्रबल ग्रहणीरोग, सूतिका रोग, अर्श, अग्निमांद्य, कास, श्वास, अतिसार और आमशूल को दूर करता है और बल वीर्य की वृद्धि करता है।

ग्रहणी शार्दूल रस का निर्माण सर्वांग सुन्दर रस के पाठ में किञ्चित् अन्तर करके किया है। सर्वांग सुन्दर रस में रसपर्पटी मिलायी है। पुटपाक की तरह पाक करने पर कज्जली रसपर्पटी में रूपान्तरित हो जाती है। इसमें सुवर्ण मिलाकर इसके कीटाणुनाशक गुण को बढ़ाया है। सर्वांग सुन्दर रस का जो कार्य है, वे सब करते हुए यक्ष्मा-कीटाणु विष को नष्ट करने का महत्व का कार्य यह रस कर देता है। अत: सर्वांग सुन्दर रस की अपेक्षा इसमें इतनी विशेषता है। इसी तरह यह प्रसूता के ज्वरयुक्त ग्रहणी रोग में मस्तिष्क और हृदय का संरक्षण करता है। शेष गुणधर्म सर्वांग सुन्दर रस में (रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह प्रथम खण्ड में) लिखा है।

९. अष्टामृत पर्पटी।

द्रव्य–शुद्ध पारद, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, वंगभस्म, रौप्य भस्म और जहरमोहरा खताई पिष्टी ये ७ औषधियाँ ४-४ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म मिला घी वाली कड़ाही में मन्दाग्नि पर रसकर (गोबर फैलाकर ऊपर रखे हुये) केले के पान पर पर्पटी बना लेवें।

मात्रा–१ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार, शहद, पीपल या लौंग, सोहागे का फूला, जायफल और दालचीनी के समभाग चूर्ण ४ रत्ती के साथ में मिला कर देवें।

उपयोग–यह पर्पटी जीर्ण संग्रहणी रोग में व्यवहृत होती है। यह आमाशय में वेदना, वान्ति होना, अन्त्र में मन्द-मन्द पीड़ा बनी रहना, दस्त में दुर्गन्ध आना, शरीर निस्तेज और कृश हो जाना, अग्निमांद्य, अरुचि, प्लीहावृद्धि और मन्द-मन्द ज्वर आदि लक्षणों सह ग्रहणी रोग को दूर करती है।

१०. लवंग द्रावक।

द्रव्य–लौंग, अतीस, नागरमोथा, पाठा, बेलगिरी, धनियाँ, धाय के फूल, मोचरस, जीरा, लोध, इन्द्रजौ, खस, राल, काकड़ासिंगी, सैधानमक, सोंठ, पीपल, खरैंटी का मूल, यवक्षार, अफीम और रसोंत ये २१ औषधियाँ १-१ तोला तथा लौंग २१ तोले लें।

विधि–सबको मिला, कपड़छन चूर्णकर, पोस्त डोडो के क्वाथ की ७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१ से गोली २ गोली, दिन में ३ बार, जल के साथ दें।

उपयोग–यह वटी चिरकारी ग्रहणी, शोथयुक्त पाण्डु, कामला, पक्व अतिसार, आमवृद्धि और उससे उत्पन्न विविध विकार, मन्दाग्नि और दारुण अम्लपित्त आदि रोगों का नाश करती है।

वह वटी दीपन, पाचन, ग्राही और स्तम्भक है। जब अतिसार रोग में मुखपाक, खट्टी डकारें आना, छाती में दाह, उदर में भारीपन रहना और दिन में ३-४ दस्त उदर पीड़ा सह होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, तब यह वटी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

इस वटी के सेवन से आमाशय की उग्रता का शमन होता है, आमोत्पत्ति बन्द होती है तथा अन्त्रगत वेदना और प्रदाह दूर होते हैं, अन्त्र स्निग्ध और आकुंचित बनता है एवं दस्त में रक्त जाता हो, तो वह भी बन्द हो जाता है।

मानसिक श्रम करने वाले के ग्रहणी विकार और जीर्ण अम्लपित्त रोग में इस वटी के साथ १-२ रत्ती अभ्रपर्पटी मिला देन से सत्वर लाभ पहुँचता है।

विवेचन–मूत्रपिण्डों के शोथ याविकृति के हेतु से रक्त मे रहा हुआ विष मूत्र मार्ग से बाहर नहीं निकल सकता। फिर शोथ और निस्तेजता (पाण्डु) बढ़ने लगती है। ऐसे शोथमय पाण्डु पर यह वटी और लौह पर्पटी या ताप्यादि लोह मिलाकर मूत्रजनन अनुपान (मूली के पान के रस, एलाद्यरिष्ट या पुनर्नवाष्टक क्वाथ) के साथ देने पर अच्छा लाभ पहुँचाती है।

११. कामचार मण्डूर।

द्रव्य–मण्डूरभस्म ४० तोले, पीपल २० तोले लें।

विधि–मण्डूर भस्म को लोहे की कड़ाही या खरल में डाल भृंगराज स्वरस में ७ दिन मर्दन करें। फिर जितना वजन हो उससे आधा पीपल का चूर्ण मिलाकर घोट लें। (आ.सं.)

मात्रा–२ से ४ रत्ती, दिन में २ या ३ बार, दूने गुड के साथ मिला, मसूर और बेलगिरी के क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग–यह मण्डूर जीर्ण अतिसार, संग्रहणी, आमवात और अम्लपित्त को नष्ट करता है तथा पुष्टिप्रद और अग्निप्रदीपक है।

विवेचन–जब आमाशय का पित्त तेज हो जाने से खट्टी डकार और वान्ति होती रहती है तथा यकृत् निर्बल बन जाने से अंत्र के भीतर पचन क्रिया योग्य नहीं होती, जिससे आमविष की वृद्धि होकर अपचन, आमवात, अम्ल पित्त, यकृत् का शोथ, उदरवात, संग्रहणी, शिरदर्द, नेत्र की निर्बलता, चक्कर आना, बाल सफेद हो जाना, पाण्डु और त्वचा रोग आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इन सब विकारों पर यह रस अद्भुत लाभ पहुँचता है।

मण्डूर को भांगरे के रस में ७ दिन खरल करने से, वह आमाशय और यकृत् क्रिया को सुधारता है। फिर पचन क्रिया सबल बनती है और निर्बलता दूर होकर शक्ति बढ़ने लगती है। छोटे बालक, सगर्भा, प्रसूता और वृद्ध आदि को यह मण्डूर निर्भयता-पूर्वक दिया जाता है।

बालकों की पचन क्रिया विकृति, प्लीहावृद्धि और हृदय की निर्बलता जनित शोथ होने पर कामचार मण्डूर पुनर्नवा के क्वाथ या पुनर्नवारिष्ट के साथ देने से थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है।

संग्रहग्रहणी रोग में इस मण्डूर के साथ सुवर्ण पर्पटी या अभ्र पर्पटी मिला कर कम मात्रा में लम्बे समय तक सेवन कराया जाता है।

१२. ग्रहणीहर योग।

द्रव्य–श्योनाक की छाल २० तोले लें।

विधि–श्योनाक की छाल को चावल के धोवन में पीसकर कल्क करें। कल्क को गीले चौलड़े कपड़े में पलेट ऊपर १-१ अंगुल कपड़ मिट्टी करें। पश्चात् निर्धूम गोबरी की अग्नि में दबाकर बाटी के समान सेक लेवें। मिट्टी लाल होकर पक जाने पर बाहर निकाल कपड़े को खोल कल्क को किसी मोटे कपड़े में लपेट दबाबर रस निचोड़ लेवें।

मात्रा–१। -१ तोला, दिन में ३ बार देवें। साथ में लवंग चतु:सम: (लौंग, जायफल, जीरा और सोहागे का फूला) १-१ माशा शहद के साथ देते रहें।

उपयोग–यह योग जीर्णग्रहणी, जीर्ण अतिसार और प्रवाहिका में अच्छा लाभ पहुँचाता है। पथ्य का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये। यदि अन्नपचन होता हो, तो खिचड़ी आदि हल्का भोजन देवें। ज्वर हो या अन्न पचन न होता हो, उदर में वायु उत्पन्न होती हो और सरलता

से अपानवायु न सरती हो, तो रोगी को मट्ठे पर रखना चाहिये। इस योग के साथ निम्नानुसार बाह्य परिमार्जन करते रहने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

बाह्य उपचार–आंवलों को जल में पीसकर कल्क करें। फिर रोगी को चित्त लेटा, नाभि के चारों ओर आलवाल किनारी बाँध, बीच में अदरक का रस भरें। इस तरह रोज आधे घन्टे तक लेटाने पर प्रवृद्ध अतिसार भी रुक जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है तथा उदरवात का शमन हो जाता है।

१३. बबूलाद्यरिष्ट।

विधि–बबूल की अन्तर छाल ८०० तोले को ४०९६ तोले जल में मिला कर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर १२०० तोले गुड़ और ६४ तोले धाय के फूल एवं पीपल ८ तोले तथा जायफल, शीतलमिर्च, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, नागकेशर, लौंग, कालीमिर्च, इन ८ औषधियों के ४-४ तोले जौकूट चूर्ण को मिला देवें। फिर चीनी के बोयाम में भर एक मास पर्यन्त बन्द रखें। आसव परिपक्व होने पर छान कर बोतलों में भर लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१। से २॥ तोले तक, दिन में २ बार, समान जल मिलाकर भोजन कर लेने पर पिलावें।

उपयोग–यह अरिष्ट संग्रहग्रहणी, प्रवाहिका, अन्त्र-क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, श्वास और कास को नष्ट करता है।

इस बबूलाद्यरिष्ट में मुख्य औषध बबूल की अन्तर छाल है। यह कसैली, स्तम्भक और अन्त्रस्थ दोषनाशक है। यह अरिष्ट पक्वातिसार और जीर्ण संग्रहणी में स्तम्भक गुण के लिये व्यवहृत होता है। बार-बार बड़े जुलाब होकर थकावट आ जाने और अग्निमांद्य आदि लक्षण होने पर बबूलाद्यरिष्ट हितावह है।

कुष्ठ के विकार मे कोष्ठस्थ विष प्रमुख कारण होने पर बबूलाद्यरिष्ट का उपयोग होता है। शरीर पर काले दाग हो जाना, स्थान-स्थान पर कील गाड़ने के समान रोमरन्ध्रों के मूल में मोटापन आ जाना आदि लक्षण होने पर बबूलाद्यरष्टि अच्छा लाभ पहुँचता है।

अच्छमेह, लालामेह और हस्तिमेह, पूयमेह विकार पर यह अच्छा कार्य करता है। इसका उपयोग मधुमेह में चाहिये वैसा नहीं होता।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

विवेचन–इस अरिष्ट में मुख्य औषधि बबूल की छाल है। उसमें गोंद और टेनिक एसिड (Tannic Acid) अधिक मात्रा में रहते हैं। जिससे यह छाल ग्राही गुण करती है तथा आम, रक्त, अतिसार, पित्त और दाह का नाश करती है। कास रोग में श्वास-प्रणालिका की उग्रता का शमन करती है एवं मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मूत्रेन्द्रिय और जननेन्द्रिय की प्रादाहिक उग्रता का ह्रास करती है। इसी तरह छाल में कुष्ठ, कृमि और विष को नष्ट करने का गुण भी अवस्थित है। वंगसेन ने जलोदर रोग पर भी बबूल की छाल के क्वाथ की योजना की है।

१४. हरीतक्यादि अवलेह।

विधि–साफ किया हुआ तुरंजबीन २० तोला लेकर ४० तोले गुलाब जल में रात्रि को काच या चीनी मिट्टी के बरतन में मिलाकर सुबह कलई किये हुए बरतन में डालकर उसको मन्द अग्नि पर उबालें। जब १० तोला जल शेष रहे तब बरतन को अग्नि पर से उतारें। बाद में उसमें गुलकन्द, मुरब्बे की बिना बीज की हरड़, सेव का मुरब्बा और अदरक का मुरब्बा १०-१० तोले लेकर उनको पीसकर कल्क करें। पीसे हुए कल्क को तुरंजबीन के उबले हुए जल मे मिलाके मन्द अग्नि पर अवलेह सिद्धकर बाद में उनको अग्नि से उतार कर उसमें गावजवां के फूल, वंशलोचन, कागदी इलायची के दाने, उस्तखद्दूस और रूमी मस्तंगी १-१ तोला और कपूरकाचरी ६ माशे का बारीक चूर्ण मिलावें।

सूचना–अर्क में कल्क मिलाने के बाद अग्नि तेज देने से अवलेह कड़वा हो जाता है और जल जाता है। अत: मन्द अग्नि दें।

(राजवैद्य श्री पं. रमेशचन्द्रजी शर्मा)

मात्रा–६-६ माशे; दिन में १ या २ बार आवश्यकता के अनुसार देवें।

उपयोग–यह अवलेह आमज ग्रहणी, आमातिसार, प्रवाहिका, अपचनजनित दस्त होना, उदरपीड़ा, उदरवात, कब्जियत, दाह, अर्श और अरुचि वगैरह रोगों में मल, आम, कृमि और जहर को बाहर निकालने तथा रोगी को शान्ति देने के लिये काम में आता है। नये या पुराने रोगों पर स्त्री, बालक, सगर्भा और निर्बल मनुष्यों को भी निर्भय होकर दे सकते हैं।

(७) अर्श।

१. बावली बूंटी

(ले. Lochnera Pusilla)

द्रव्य–बावली बूंटी।

परिचय–यह वनौषधि राजपूताना, यू.पी. आदि अनेक स्थानों में ज्वार-बाजरा के खेतों में आश्विन से पौष, माघ तक मिलती है। यह बूंटी लगभग १॥-२ फीट ऊँचाई तक बढ़ जाती।

इसमें २-३ अंगुल लम्बे, पतले पत्ते होते हैं और मिर्च के आकार की छोटी फली आती है, जिसमें काले जीरे के समान बीज निकलते हैं। इस बूंटी के बीजों को चूहे प्रेम से खाते हैं इसका स्वाद अति कड़वा है। पशु इसे खा ले, तो वह पागल बन जाता है। इसे संस्कृत में शंखी (शंखफूली) कहते हैं। शंखपुष्पी का क्षुप इससे भिन्न होता है।

मात्रा–पञ्चांग ३ माशे से १ तोला तक, ११ कालीमिर्चों के साथ मिला चटनी की तरह पीसकर दिन में दो समय ४० दिन तक पिलाते रहें।

उपयोग–[redacted]। केवल ४-५ दिन में ही रक्तार्श का रक्त गिरना बन्द हो जाता है। ४० दिन तक सेवन करने से रोग जड़मूल से चला जाता है। शुष्क अर्श रोग में भी यह बूंटी लाभ पहुँचाती है।

सूचना–कटिशूल पर इसके पंचांग से सिद्ध किये तैल की मालिश की जाती है।

२. लोहादि मोदक।

द्रव्य–लोहभस्म, इन्द्रजौ, सोंठ, शुद्ध भिलावे, चित्रकमूल की छाल, बेलगिरी, बायविडंग और हरड़ ये ८ औषधियाँ समभाग लें।

विधि–फिर सबके समान गुड मिला कर ३-३ माशे के मोदक बना लेवें। *(र.र.स.)*

मात्रा–१-१ मोदक, सुबह-शाम सेवन करें।

उपयोग–इस मोदक का सेवन करने पर अर्श, शुष्कार्शजनित वेदना, रक्तार्श का रक्त गिरना, मलावरोध, अग्निमांद्य आदि दूर होते हैं।

सूचना–पित्तप्रकृति वाले रोगियों पर इसका प्रयोग फलप्रद नहीं होता।

३. अर्शोहर भस्म।

द्रव्य–ताजा जमीकन्द २॥ सेर, लालफिटकरी ४० तोले लें।

विधि–जमीकन्द को लेकर उसके बीच में खड्डा करें। उसमें लाल फिटकरी का चूर्ण भर देवें। फिर जमीकन्द के टुकड़े से खड्डे को ढककर कपड़मिट्टी करें। सूखने पर गजपुट की अग्नि देने से सफेद भस्म हो जाती है। *(श्री वैद्य गोपालजी कुंवरजी ठक्कर)*

मात्रा–६ से १२ रत्ती, दिन में २ बार मक्खन या मलाई के साथ।

उपयोग–यह भस्म अर्श के मस्से में से रक्त गिरता हो, उसे एक दो दिन में बन्द कर देती है एवं पचन-क्रिया सुधारती है और मलशुद्धि कराती है।

४. अर्शोहर गुटिका।

प्रथम विधि–रीठे के बक्कल और रसोंत को समभाग मिला जल के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार निगलकर ऊपर बकरी का दूध १० तोले गरमकर ठण्डा किया हुआ पीवें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से १-२ सप्ताह में रक्तार्श दूर हो जाता है।

द्वितीय विधि–शुद्ध मैनसिल और शुद्ध गन्धक को समभाग मिला ७ दिन तक भांगरे के रस में मर्दनकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, मट्ठे या बकरी के दूध के साथ; दिन में २ बार सेवन करें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से अर्श और अर्शजनित मंदाग्नि, उदरपीड़ा, मलावरोध और निर्बलता दूर होती है।

तृतीय विधि–मोती की सीप को ३ पुट मूली के स्वरस में देकर भस्म बनावें। फिर यह भस्म, एलुवा और रसौंत सब समभाग मिला मूली स्वरस के साथ ७ दिन घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(स्व. राजवैद्य श्री रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा–१ से २ गोली, सौंफ का अर्क अथवा जल के साथ, प्रातःसायं देते रहें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से मल शुद्धि होती है; अर्श और यकृत् के विकार, बद्धकोष्ठ, आध्मान, शूल, मन्दाग्नि, अरुचि नष्ट होते हैं, रक्तार्श का रुधिर बन्द होता है एवं वातार्श में भी इसका उपयोग सद्यः फलदायी देखा गया है। यकृद्वृद्धि, तज्जन्य उदररोग, आम का संग्रह एवं आमप्रधानरोग इस महौषध से नाश होते हैं। इसमें मुक्ताशुक्ति की भस्म है, इस कारण केल्शियम की कमी होने से त्वचा के फोड़े फुन्सी अथवा शीतपित्त के समान ददौरे का भी नाश करता है। अधिक विरेचन हो तो बीच-बीच में यह गोली बन्द कर देनी चाहिये अथवा मात्रा आधी कर देनी चाहिये। यह अनुभूत वटी है, कभी निष्फल नहीं जाती।

५. अर्शोहर लेप।

प्रथम विधि–सोमल, नीला थोथा और सिंदूर, तीनों १-१ तोला लेकर बारीक चूर्ण करें। फिर निर्मली बीज को जल के साथ पत्थर पर

घिस, उसमें उक्त चूर्ण आध रत्ती मिला मस्से पर लेप को करें। मस्से को छोड़ इतर किसी स्थान पर न लग जाये, इस बात की सम्हाल रखना चाहिये। यदि इतर स्थान पर लग जाये तो वहाँ मक्खन या घी लगा लेवें। लेप लगाने के पश्चात् रोगी पौन घण्टे तक औंधा सोता है। जिससे औषध अन्य भाग में न लग जाये। इस लेप से जलन अधिक होने पर निम्न मलहम लगाना चाहिये। इस लेप को करने से पहले अर्श के धागा बाँध देना चाहिये फिर प्रतिदिन लेप करते रहने से अर्श मुरझा कर अपने आप गिर जाता है।

दाहशामक मलहम–कत्था ११ तोला, कपूर १ तोला और सोनागेरू २ तोले को ४ तोले घी में मिला मस्से पर लेप कर देने से दाह का शमन हो जाता है। जब जलन सहन न हो सके, तब यह मलहम लगाना चाहिये।

इस तरह सोमलयुक्त लेप प्रतिदिन दो समय लगाते रहने से थोड़े ही दिनों में मस्से जलकर गिर जाते हैं। मस्से के समीप व्रण होने पर सोहागे का फूल, सफेदा और सेलखड़ी को धोये घी में मलाकर दिन २-३ बार लेप करते रहने से व्रण दूर हो जाते हैं।

सूचना–इस अर्शोहर लेप का प्रयोग करने के पहले रोगी को ३ दिन तक अपथ्य वस्तुएं हो सके उतनी अधिक खा लेने को कहें। जिससे भीतर के मस्से भी अच्छी तरह फूल कर बाहर आ जायें, फिर लेप करना प्रारम्भ करें। प्रयोग प्रारम्भ करने के पश्चात् पथ्य भोजन देवें। प्रतिदिन मृदु विरेचक औषध देकर कोष्ठशुद्धि कराते रहें।

द्वितीय विधि–पीले सोमल को जल में घिसें, इसके ऊपर रेवाचीनी को घिसें फिर मस्से पर बूंद डालें या लेप करें, मस्से के अतिरिक्त अन्य स्थान पर न लग जाये, इसलिये पहले चारों ओर घी या वेसलीन लगा लेवें। इस तरह दिन में दोबार लेप करते रहने से मस्से फूल जायेंगे। फिर उसमें से जल टपकने लगेगा और थोड़े ही दिनों में मस्से सूख जायेंगे।

फिर पञ्च-वल्कल (वट, पीपल, गूलर, पिलखन और बेंत की छाल) के गुन गुने क्वाथ से धो देवें पश्चात् प्याज ५ तोले को कूट १० तोले घी में भून, १ तोला हल्दी डाल दें। फिर प्याज की पोटली बांधकर मस्से पर सेक करें। पोटली शीतल हो जाने पर प्याज को गरम घी में डुबो लेवें। इस तरह सेक करते रहने पर वेदना शमन हो जाती है, मस्से गिर जाते हैं और उनके व्रण भी भर जाते हैं। व्रण पर शीतलता के लिए दूध की मलाई (किञ्चित् सोहागे का फूला अथवा यशदपुष्प मिला हुआ धोया घी) या वेसलीन लगाते रहें।

(आ.नि.मा.)

तृतीय विधि–निम्ब की निम्बोली की मज्जा, रसोंत, कपूर और सोनागेरू, इन चारों को जल के साथ पीसकर मस्से पर लेप करने से मस्से मुरझा जाते हैं। इन चारों को एरण्ड तैल में मिलाकर मल्हम बनाकर भी लगा सकते हैं।

चतुर्थ विधि–यदि मस्से फूल गये हों और वेदना होती हो तो कड़वी तोरई या तुम्बी के बीजों की गिरी को खट्टे मट्ठे में पीसकर लेप करने से मस्से फूट जाते हैं और पीड़ा शान्त हो जाती है।

६. अर्शोहर योग।

विधि–निम्ब की निम्बोली की गिरी का तैल ५-५ बूंद शक्कर या केप्सूल में रखकर निगलवाते रहने से थोड़े ही दिनों में मस्से नष्ट हो जाते हैं और मलावरोध भी नहीं रहता तथा रोग मिट जाने से शरीर भी बलवान् बन जाता है।

७. दन्त्यरिष्ट।

द्रव्य–दन्तीमूल, चित्रकमूल, दशमूल (१० औषधियाँ), हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन १५ औषधियों को ४-४ तोले लें।

विधि–२०४८ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान ४०० तोले गुड मिला, चीनी के बोयाम में भर मुखमुद्रा कर १५ दिन रख देवें। परिपक्व होने पर छान लेवें। *(च.सं.)*

वक्तव्य–वंगसेन और वृन्द माधव ने इस अरिष्ट में चित्रकमूल नहीं लिखा है और १ मास तक बन्द रखने का विधान किया है। पाक १५ दिन में नहीं होता। अतः १ मास बन्द रखना चाहिये। अथवा सिद्ध न हो तो १॥-२ मास भी रखना पड़ता है।

मात्रा–१। से २॥ तोले तक, दिन में दो बार, भोजनकर लेने पर, समान जल मिलाकर लेवें।

उपयोग–इस अरिष्ट के सेवन से अर्श, ग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होते हैं। यह मल और उदरवात की गति को अनुलोम करता है तथा पचनक्रिया को सबल बनाता है। यह अरिष्ट अर्श, ग्रहणी, गुल्म, आध्मान, उदरकृमि, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, मूत्ररोग, गर्भाशय-विकार आदि में मलावरोध रहने पर व्यवहृत होता है। रात्रि को देने पर सुबह शौचशुद्धि होती है।

८. अर्शोहर वटी (प्रथम)।

द्रव्य–नीम की निम्बोली, बकायन की मींगी, बीज रहित मुनक्का और छोटी हरड़ ये सब ५-५ तोले तथा हींग ३ तोले लें।

(धन्वन्तरि)

विधि–मुनक्का के अलावा अन्य चीजों को घी में सेककर कपड़छन चूर्ण करें। फिर मुनक्का मिला पीसकर छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना लें।

मात्रा–१ या २ गोली लेकर ऊपर मिश्री मिला बकरी का दूध पीवें। दिन में २-३ बार।

उपयोग–यह वटी रक्तार्श व सब प्रकार की बवासीर में लाभदायक है।

(८) अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विसूचिका

१. नागेश्वर रस।

द्रव्य–शुद्ध बच्छनाभ, लौंग, दालचीनी, पीपल, कालीमिर्च, अकरकरा, सोंठ, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, पीपलामूल, कालानमक, सैंधानमक, साँभरनमक, भुनी हींग ये १५ औषधियाँ १-१ तोला, सोहागे का फूला और शंखभस्म ४-४ तोले तथा शुद्ध हिंगुल २ तोले लेवें।

विधि–पहले हिंगुल और बच्छनाभ को मिलावें फिर सोहागे का फूला और शंख भस्म डालें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला नींबू का रस २५ तोले डाल खरलकर, सुखाकर चूर्ण बना लेवें। *(आ.नि.मा.)*

वक्तव्य–हम नींबू का रस १०० तोले डालकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं।

मात्रा–२ से ३ रत्ती; अदरक का रस और शहद या जल के साथ; दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग–यह रस सब प्रकार के अजीर्ण रोग और अग्निमांद्य को दूर करता है। उदरशूल और उदरवाद का शमन करता है तथा रुचि को बढ़ाता है। विशेषत: वातप्रधान और कफप्रधान रोगों पर व्यवहृत होता है। आमाशय और यकृत् दोनों स्थानों के पित्तप्रवाह को बढ़ाता है और अन्त्र को भी बल देता है। कब्ज रहता हो, मल में दुर्गन्ध आती हो या सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होते हों वे सब विकार दूर होते हैं।

२. अग्निमुख रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ तीनों १-१ तोला मिलाकर अदरक के रस के साथ खरल करें। फिर अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) का क्षार, इमली का क्षार, अपामार्ग का क्षार, जवाखार, सज्जीखार, सोहागे का फूला, जायफल, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा आँवला ये १४ औषधियाँ १-१ तोला तथा शंख भस्म, सैंधानमक, साँभरनमक, समुद्रनमक, कालानमक, भुनी हींग और जीरा ये ७ औषधियाँ २-२ तोले लें।

विधि–सबको मिला नींबू के रस में ३ दिन मर्दनकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(र.का.)*

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ५-७ समय मुँह में रखकर रस चूसें या २-२ गोली; दिन में ३ बार; गुनगुने जल के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी पाचनी और दीपनी है। अजीर्ण, शूल और विसूचिका को दूर करती है। एवं हिक्का, गुल्म और उदररोग को भी नष्ट करती है।

इस अग्निमुख का कार्य अग्निकुमार और अग्नितुण्डी की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है। इन दोनों औषधियों की अपेक्षा इसमें क्षार अत्यधिक होने से इस रस का विशेषत: वियोजन और शोषण यकृत्, मध्यम कोष्ठ, कफ स्थान और वृक्कों में होता है। वह औषध पाचन-दीपन, कफस्थान में रहे हुए कफ का हरण कर पतला बनाने वाला तथा यकृदादि अवयवों को शक्तिदायक है।

विवेचन–यकृत् की अशक्तता या यकृत्पित्त की उत्पत्ति कम हो जाने से जो एक प्रकार का अतिसार हो जाता है उसमें कफ दुष्टि भी दोषप्रत्यनीक चिकित्सा की दृष्टि से एक कारण होता है। ऐसे अतिसार में दस्त सफेद, जल में घुले हुए आटे के सदृश क्वचित् खड़िया मिट्टी के जल के सदृश, सफेद, दुर्गन्धयुक्त, कुछ अंश बंधा हुआ और कुछ बिना बंधा हुआ होता है। इसमें दूसरा प्रकार ऐसा है कि मेथी आदि शाक के निचोड़े हुए रस के समान हरा सा, दुर्गन्धयुक्त और कुछ मल मिला होता है। इन दो प्रकारों में से पहले प्रकार में इस अग्निमुख रस का उपयोग अधिक होता है एवं दूसरे प्रकार में अग्नितुण्डी से लाभ पहुँचता है। प्रथम प्रकार में कफ दोष का प्राधान्य होने से यकृत्पित्त का सम्यक् स्राव नहीं होता है। इस कफ की प्रधानता कम हो जाने पर यकृत् का स्राव सम्यक् होने लगता है फिर अतिसारनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार के अतिसार में या इस प्रकार के यकृद् विकार में जुलाब के साथ वमन भी होती है। यह वमन, चिपचिपी और झागयुक्त होती है। आमाशय में से कफदुष्टि के हेतु से पाचक पित्त का स्राव योग्य नहीं होता, जिससे भोजन का परिपाक भी योग्य नहीं हो सकता और इस हेतु से वमन होती है। यह विकार कभी-कभी बहुत पुराना भी देखने में आता है। इस स्थिति में अग्निमुख का अच्छा उपयोग होता है।

अन्न के विदाह और विष्टब्धता के हेतु से उत्पन्न शूल के साथ-साथ अफारा, दूषित डकार आना, उदर और कण्ठ को बांध दिया हो ऐसा भासना आदि लक्षण होते हैं। कुछ समय तक उदरशूल अधिक और कुछ समय तक कम रहता है। क्वचित् भयंकर शूल चलने लगता है। इस विकार पर अग्निमुख का अधिक उपयोग होता है। शंख और हींग के हेतु से आक्षेप के सदृश वेदना का निवारण हो जाता है तथा शामक औषधियों के योग से अवशिष्ट वेदना शमन हो जाती है।

लघु अन्त्र और बृहदन्त्र के कुछ भाग में अन्न दूषित होने लगता है, उसमें एक प्रकार के कीटाणुओं की विक्रिया की सहायता मिल

जाने से वायु का संचय खूब हो जाता है। इस हेतु से कब्ज और कभी अत्यन्त तीव्र अफारा उत्पन्न हो जाता है। उदरतंग हो जाता है, यहाँ तक कि श्वासोच्छ्वास क्रिया में भी बाधा पहुँचती है। कौड़ी स्थान तक समग्र उदर में वायु भर जाती है, इस हेतु से उदर अतिशय खिंचता है। रोगी बेचैन हो जाता है, सारे उदर में मन्द-मन्द वेदना होती है, पहले मल शुद्धि नहीं होती, फिर अधोवायु भी नहीं सरता मूत्र का भी कुछ अवरोध होता ही है। इस स्थिति में वायु को अनुलोमन कराने वाली और कोष्ठस्थ दुष्टि को नष्ट करने वाली औषधि देनी चाहिये। केवल विरेचन देने से यह कार्य नहीं होता। अग्निमुख में वातानुलोमक और कोष्ठ-दुष्टिनाशक गुण अवस्थित होने से विकार समूह का इस रस के सेवन से निवारण हो जाता है। ऐसी स्थिति में निम्बू कारस और पानी व शक्कर मिलाकर इस अनुपान से यह रस देना चाहिये।

निर्जन्तुक विसूचिका (अजीर्ण के तीव्र प्रकोप से उत्पन्न विसूचिका) में सारे कोष्ठ में शूल चुभाने के सदृश वेदना होती है। किसी-किसी रोगी को जल के सदृश बड़े-बड़े जुलाब होते हैं। जुलाब के हेतु से सर्वांग की नाड़ियाँ खिंचती है। हाथ पैरों में ऐंठन होती है, कभी-कभी मूत्रावरोध होता है, किसी को वमन भी होता है। इस व्याधि का कारण कोष्ठस्थ अन्नदुष्टि है। इस स्थिति में अग्नि मुख के सेवन से सत्वर लाभ हो जाता है।

गुल्म अर्थात् गोला यह किसी भी प्रकार का हो फिर भी उसे गुल्म ही कहने की परिपाटी होने से गुल्म चिकित्सा में अनेक बार बड़ी गड़बड़ हो जाती है। अन्त्र के भीतर अन्त्रस्थ भाग में वायु का संचय और अवरोध होकर अन्त्र फूल जाने पर वह गोले के सदृश भासता है। ऐसे प्रकार केवातगुल्म पर अग्नि मुख का अच्छा उपयोग होता है। ऊपर आनाहकी जो अवस्था कही है, उस की व्याप्ति सम्पूर्ण कोष्ठ में होती है और इस गुल्म की व्याप्ति अन्त्र के थोड़े से भाग में होती है। इस तरह यह केवल वातावरोधजन्य ही होने से सत्वर दूर हो जाता है। कफगुल्म, रक्तगुल्म, अष्ठीला आदि रोगों पर इसका उपयोग कम होता है।

वृक्क विकृति होने पर मूत्रस्राव कम और लालरंग का होता है। मूत्र में क्लेद जाता है, मुँह और हाथ, पैरों पर सूजन आ जाती है। उदर की त्वचा भी शोथमय बन जाती है, यह शोथ धीरे-धीरे बढ़ने पर उदर में जल संचय होने लगता है। पतला और आटे के घोल के सदृश बार बार जुलाब होता है। वृक्क द्वारा क्लेद वहन सम्यक् प्रकार से न होने से और कोष्ठस्थ कफदुष्टि के हतु से सर्वांगशोथ या उदर रोग (जलोदर) की उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार के विकार में अग्नि मुखरस मूत्रल औषध के साथ अर्थात् गोखरू, धमासा, पित्तपापड़ा, सारिवा और पुनर्नवा आदि औषधियों के क्वाथ के साथ देने पर मूत्र-पिण्ड में से क्लेद वहन कार्य सम्यक् होकर मूत्रस्राव भली प्रकार से होने लगता है और उसमें से मल द्रव्य बाहर निकल जाता है। इस स्थान पर अग्निमुख का कार्य द्विविध होता है। एक तो उसमें रहे हुए क्षार के योग से मूत्रपिण्डों से क्लेदवहन और मूत्रस्राव यथोचित होता है। दूसरा कार्य शंखभस्म, हींग, अजमोद और औषध का वियोजन उदर और अन्त्र में होने से उस स्थान के विकार का शमन होकर अतिसार कम हो जाता है।

जीर्ण कास और उसके साथ अतिसार होने पर अग्निमुख रस का प्रयोग करना चाहिये। जीर्ण कास में कफ का अच्छी तरह स्राव नहीं होता कफ बिल्कुल घट्ट और गांठदार बन जाता है। अतिशय खांसने पर कफ की छोटी सी गांठ निकलती है। साथ-साथ उदरपीड़ा, अपचन, उदर में अफारा और सफेद दुर्गन्धमय दस्त आदि लक्षण प्रस्तुत होते हैं। इस स्थान पर भी अग्नि मुख का कार्य उत्तम होता है। अनुपान रूप से कफस्रावी और श्वासवाहिनियों की उपशामक औषधियाँ-मुलहठी, वासा, छोटी कटेली के मूल आदि के क्वाथ की योजना करनी चाहिये।

विश्लेषण—इस अग्निमुख रस में पारद-गन्धक की कज्जली जन्तुघ्न और रसायन है। बच्छनाभ शूलघ्न और वातशामक है।

अश्वत्थक्षाभ, चिंचाक्षार, अपामार्गक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा तथा पञ्च लवण ये पाचक, कफघ्न और दुर्गन्धनाशक है। जवाखार-मूत्रल और पाचक है। जायफल शामक, पाचक और शूलहर है। जीरा शूलहर है। जीरा और लौंग-कोष्ठस्थ विदाहनाशक है। त्रिफला-किञ्चित् स्तम्भक और अन्त्र की पुर:सरण क्रियावर्धक है। हींग वातशूलघ्न और आक्षेपहर है। शंखभस्म विदाहनाशक, स्वादुत्पादक, शूलघ्न, दीपक और पाचक है। नींबू का रस पित्तस्रावक्षक और पाचक है।

सूचना—यह औषध तीक्ष्ण होने से रक्तपित्त, रक्तार्श और उर:क्षत विकार वाले को नहीं देना चाहिये।*(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

शोभाञ्जन (सुहिंजना) के वृक्ष की छाल के स्वरस की अथवा क्वाथ की भावना देने से विशेष गुण की वृद्धि होती है।

३. भीमवटी।

द्रव्य—रससिंदूर या भिलावे से पकाया हुआ हिंगुल रसायन और शुद्ध कुचला २-२ तोले लें। लोहभस्म ३ तोले, भुनी हींग ४ तोले, काली मिर्च ५ तोले, एलुवा ६ तोले और शुद्ध गूगल ७ तोले लें।

विधि—गूगल को छोड़ शेष सब औषधियों का बारीक चूर्ण करें। गूगल को एरण्ड तैल मिला-मिलाकर अच्छी तरह कूटें। फिर चूर्ण मिला चित्रकमूल के क्वाथ में ३ रोज मर्दन करा २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१-१ गोली, सुबह शाम जल, अदरक का रस या त्रिकटु और अजवायन के चूर्ण अथवा दूध के साथ।

उपयोग–यह भीम वटी अग्निमांद्य (वातज और कफज), अजीर्ण, हिस्टीरिया, संग्रहग्रहणी, आमवात, श्वास, कास, हिक्का, वातरक्त, शूल, उपान्त्रप्रदाह, गुल्म, इनको नष्ट करती है और मन्दाग्नि के लिए उत्तम योग है।

विवेचन–अजीर्ण और अग्निमाँद्य रोग जीर्ण होने पर आमाशय और अन्त्र शिथिल हो जाते हैं। आमाशय और यकृत् के पित्त की उत्पत्ति बहुत कम होती है। फिर उदर में भारीपन, अफारा, उदरपीड़ा, उदरवात, निर्बलता, मुखमण्डल की निस्तेजना, मलावरोध आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उन पर इस भीमवटी का सेवन कुछ दिनों तक कराने से आमाशय, यकृत्, अन्त्र और उदरस्थ वातनाड़ियाँ बलवान् बनती है, पचनक्रिया सबल होती है, फिर सर्वलक्षणों सह अजीर्ण और अग्निमांद्य रोग दूर होते हैं।

विषमज्वर दिनों तक रह जाने से और अपथ्य आदि कारणों से प्लीहा बढ़ जाती है। फिर पचनक्रिया अति मन्द हो जाती है। भोजन करने पर उदर में भारीपन आ जाता है। मधुर पदार्थ खाने या अपथ्य सेवन करने पर ज्वर आ जाता है। किसी-किसी को मन्द-मन्द ज्वर बार-बार सताता रहता है। कभी-कभी प्लीहा नाभि तक बढ़ जाती है। शरीर निस्तेज बन जाता है। उस पर यह भीमवटी कासीसगोदन्ती भस्म या प्लीहान्तक क्षार चूर्ण के साथ मिलाकर थोड़े दिनों तक सेवन कराने पर रोग निवृत्त हो जाता है। अनुपान रूप से गोमूत्र दिया जाये, तो लाभ जल्दी होता है।

शराब, तमाखू अथवा गरम मसाले आदि दाहक पदार्थों का अति सेवन, विषप्रकोप और कीटाणुओं के आक्रमण और अन्य हेतुओं से जब यकृत बढ़ जाता है; तब मन्द-मन्द ज्वर, क्षीण नाड़ी, शुष्क श्वेत जिह्वा और शारीरिक निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर भीमवटी को प्लीहान्तक चूर्ण के साथ देते रहने से यकृत् पूर्वावस्था में आ जाता है। भोजन में घी तैल और शक्कर कम से कम देना चाहिये। तथा शराब व तमाखू आदि उपरोक्त कुपथ्यों को त्याग कर देना चाहिये। अनुपान में गोमूत्र दिया जाये तो विशेष लाभ पहुँचता है।

संग्रहणी, अजीर्णातिसार और जीर्ण आमवात रोगों में अग्नि प्रदीप्त करने और आम को जलाने के लिये यह वटी अति हितावह है। इसी तरह अपतन्त्रक, हिक्का, श्वास, कास और शूल आदि रोगों में वातशमन, कफनाश और शक्ति वृद्धि के लिये भी भीमवटी दी जाती है।

वातप्रधान प्रकृतिवालों को ज्वर के पश्चात् या वृद्धावस्था के हेतु से निर्बलता आने पर बहुधा अग्निमांद्य, अरुचि, उदरवात और मलावरोध आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। किसी-किसी को हाथ पैरों में भी वायु की फड़कन होती रहती है, कटिवेदना बनी रहती है, शरीर निर्बल हो जाता है, त्वचा अशुद्ध व श्याम हो जाती है। ऐसी अवस्था में भीमवटी का सेवन आशीर्वाद के समान है। अनुपान अजवायन का फाण्ट।

गृध्रसी रोग होने पर नितम्ब से लेकर नीचे पैरों की ओर गृध्रसी नाड़ी (Scitica) में शूल चलता रहता है। उसकी तीव्रावस्था का शमन होने पर कुचिला प्रधान औषधि समीरगज केसरी या भीमवटी दी जाती है। जिनको मलावरोध रहता हो, उनको अफीम-मिश्रित समीरगजकेसरी बहुधा अनुकूल नहीं रहता, उनको भीमवटी कम मात्रा में २-३ मास तक सेवन कराने पर लाभ हो जाता है।

सूचना–पित्तप्रकोपज अजीर्ण, अम्लपित्तज अग्निमांद्य के रोगी को यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

४. अजीर्णारि रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ४-४ तोले, हरड़ ८ तोले, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, सैंधानमक १२-१२ तोले और शुद्ध भाँग १६ तोले लें।

विधि–पारद-गन्धक की कज्जलीकर शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, ७ दिन नींबू के रस में सूर्य के ताप में खरल में रखकर घोटें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बना ले।

(यो.र.)

मात्रा–१ से २ गोली, प्रातःकाल या भोजन कर लेने पर; जल के साथ दिन में १ या २ बार लें।

उपयोग–अजीर्णारि रस प्रातःकाल में सेवन करने पर नये अपचन को दूरकर दस्त साफ ला देता है। जीर्ण-अजीर्ण, अग्निमांद्य में दिन में दो बार भोजनकर लेने के १-१॥ घण्टे बाद लेना चाहिये। भोजन कर लेने पर जिनको उदर में भारीपन आ जाता है, उनके लिये अति हितकर है।

उदरशूल, प्लीहावृद्धि और वातज गुल्म रोगों में भी लाभदायक है। निर्बल शरीर वाले को ज्वर आने के पश्चात् यकृत् बढ़ जाता है, पाचन-शक्ति मंद हो जाती है, उन रोगियों को अजीर्णारि रस देने से यकृत्-प्लीहावृद्धि दूर होकर पचनक्रिया सबल बन जाती है।

५. सर्वतोभद्र रस।

द्रव्य–अभ्रक भस्म २ तोले, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारद ६ माशा तथा कपूर, केशर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची के दाने, गजपीपल, कूठ, तालीसपत्र, धाय के फूल, दालचीनी, नागरमोथा, हरड़, कालीमिर्च, सोंठ, बहेड़ा, पीपल और आँवला इन २० औषधियों को ३-३ माशे लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर कपूर और केशर मिलाकर अदरक के रस में घोटें। पश्चात् शेष काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला ६ घण्टे अदरक के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखालें। *(र.सा.सं.)*

मात्रा–२ से ४ गोली; दिन में २ बार; शहद, मिश्री, जल, अनार का रस या कच्चे नारियल के जल के साथ।

उपयोग–यह सर्वतोभद्र रस अग्निमांद्य, आमवृद्धि, विसूचिका, वातकफप्रकोप, वित्तकफप्रकोप, आनाह, मूत्रकृच्छ, संग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त, रक्तपित्त, पित्तप्रकोप, जीर्णज्वर, धातुस्थ विषमज्वर, पाँच प्रकार का कास, कामला, पाण्डु आदि रोगों को दूर करता है।

सर्वतोभद्र रस का उपयोग विशेषतः वातप्रकोपज जीर्ण आमाशय-विकृति पर होता है। यह वातनाड़ी-पौष्टिक, शूलहर और कीटाणु-नाशक गुण दर्शाता है। फिर शनैः शनैः अग्नि को प्रदीप्त करता है और शक्ति को बढ़ाता है।

विवेचन–दीर्घकाल पर्यन्त अपचन अथवा अन्त्र किसी रोग से पीड़ित रहना, विषप्रकोप, शरीर निर्बल होने पर भी थोड़े-थोड़े समय पर संतानों को जन्म देना, प्रसव होने पर योग्य नियमों का पालन न होना आदि कारणों से उदरगुहा में चारों ओर फैली हुई वातनाड़ियां शिथिल हो जाती है। फिर रक्त आदि धातुओं में वायु का शोषण होता रहता है और शरीर फूलता जाता है। बाहर से शरीर मोटा भासता है, तथापि निर्बलता शनैः-शनैः बढ़ती जाती है। थोड़ा-सा अधिक खाने में आ जाये, असमय पर भोजन किया जाये, मानसिक आघात पहुँच जाये या रात्रि को आवश्यक निद्रा न मिले तो अपचन हो जाता है। उदर (आमाशय और अन्त्र) में वायु भर जाने से भारीपन आ जाना, थोड़ा-थोड़ा शौच होना, अधोवायु की प्रवृत्ति कष्ट से होना, गैस उत्पन्न होना, छाती में घबराहट, शिरदर्द, क्रोध उत्पन्न होना और निकम्मे विविध विचार आते रहना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। किसी-किसी को शीत लग जाने या गरम पेय पीने पर पित्ती (शीतपित्त) के धब्बे निकल आते हैं किसी-किसी को शुष्क कास हो जाती है। ऐसे लक्षणयुक्त विकार पर सर्वतोभद्र रस का सेवन कराने पर थोड़े ही दिनों में आश्चर्ययुक्त लाभ पहुँच जाता है।

रोग अति जीर्ण हो और निर्बलता अधिक हो, तो मात्रा १-१ रत्ती, दिन में ३-३ बार देनी चाहिये। आमप्रधान विकार सबल हो तो १-१ रत्ती पंचामृत लोह गुग्गुल भी साथ-साथ देते रहना चाहिये।

आमाशय का पित्त दूषित होने पर अम्लपित्त, विदग्धाजीर्ण, उदर में भारीपन बना रहना, मुखपाक, खट्टी वमन आदि विकार उपस्थित होते हैं। उनके लिये यह रसायन अति लाभदायक है। आमाशय के पित्तप्रकोप को शमन कर क्रिया को सुधारता है।

६. अग्निसुत रस।

द्रव्य–कौड़ी भस्म १ तोला, शंख भस्म २ तोले, शुद्ध पारद ६ माशे, शुद्ध गन्धक ६ माशे और काली मिर्च ३ तोले लें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म और अन्त में कालीमिर्च का कपड़छन चूर्ण मिला नींबू के रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इस रसायन को अग्निसुनू और अग्निकुमार भी कहते हैं। *(यो.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में ३ बार, घी शक्कर के साथ देने से क्षीण मनुष्य को बल मिलता है। पीपल का चूर्ण और घी के साथ सेवन कराने पर ग्रहणी विकार दूर होता है। सब प्रमेहों पर मट्ठे के साथ देवें।

उपयोग–यह रस युक्तिपूर्वक प्रयुक्त करने से शोष, ज्वर, अग्निमांद्य, अरुचि, शूल, गुल्म, पाण्डु, उदररोग, अर्श, ग्रहणी और प्रमेह आदि रोगों को नष्ट कर देता है।

यह अग्निमान्द्यनाशक है। अग्निमान्द्य की उत्पत्ति कफवृद्धि से एवं पित्त में द्रव आदि गुणों की वृद्धि से भी होती है। पित्त में द्रव आदि गुणों की वृद्धि होने पर अग्निसुत को घृत के साथ देना चाहिये। इस द्रवत्व गुण-वृद्धि के साथ पित्त में विस्रत्व गुण बढ़ जाने पर दुर्गन्धमय डकारें आती है और खट्टी दुर्गन्धमय वान्ति होती है। ऐसी परिस्थिति में इस रस का उपयोग घी, शक्कर के साथ किया जाता है।

अग्निमान्द्य के हेतु से क्षीणता और कृशता आने पर घी शक्कर के साथ इस औषध का सेवन कराया जाता है। इस रस का कार्य तिर्यग्गत दोष या लीन दोषों पर नहीं होता। उभयग दोष होने पर इस रस का कार्य अच्छा होता है। अतः जीर्ण विकार की अपेक्षा नूतन विकार पर इसका कार्य अधिक होता है।

नूतन कफज ग्रहणी रोग में बार-बार पतले दस्त होते हो; मल और जल अधिक न मिले हों, मुंह में जल आता हो, तथा उबाक, उदर और अन्त्र में जड़ता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो यह रस पीपल के चूर्ण के साथ देना चाहिये। यदि आम और रक्त गिरता है तो यह रस नहीं देना चाहिये। उस विकार में दोष लीन रहते हैं। कफज ग्रहणी या कफ वातज ग्रहणी विकार नया उत्पन्न हुआ हो, तो इस रस का उपयोग करना चाहिये।

आमाजीर्ण कफप्रकोप से उत्पन्न होता है। इसकी उपेक्षा होने पर कभी अतिसार प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार के अतिसार में पित्त की क्षीणता और कफ की अधिकता के हेतु से मल सफेद, जड़, गाढ़ा-सा झागमय होता है। बार-बार शौच जाना पड़ता है। इस पर अग्निसूनु, प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार के आमाजीर्ण या विष्टब्धाजीर्ण के हेतु से ज्वर की उत्पत्ति होने पर अथवा अजीर्णजन्य अतिसार या ग्रहणी के साथ अतिसार के लक्षण या उपद्रव उपस्थित होने पर भी इस रस का उपयोग किया जाता है।

इस रस को मट्ठे के साथ देने से अरुचि, शूल, उदरवात, गुल्म, पाण्डु, उदर और अर्श रोग नष्ट होते हैं, ऐसा मूल ग्रन्थकार ने लिखा है। यदि ये विकार नये हों, तो इन पर लाभ पहुँच सकता है किन्तु रोगबल अधिक हो जाने पर इस रस का उपयोग नहीं हो सकेगा। ये सब रोग अन्त्र के दूषित होने पर होते हैं। कफ-दोष से अन्त्र-दुष्टि हुई हो, किन्तु दुष्टि अधिक न हो गई हो, तब तक इस रस का उपयोग हितकारक होता है।

अग्निसुत में कज्जली-जन्तुघ्न, रसायन और योगवाही है। शंख और कपर्दिका भस्म-दीपन, पाचन और मल-स्तम्भक है। कालीमिर्च-तीक्ष्ण, उष्ण, चरपरे रसयुक्त, दीपन, पाचन और उस हेतु से पाचक पित्त का सम्यक् स्राव कराने वाली है। नींबू का रस पित्तस्रावी और पाचक आदि गुणों को बढ़ाने वाला है। (औ.गु.ध.शा. के आधार से)

७. अग्नि-प्रदीपक गुटिका।

द्रव्य–पीपरमेन्ट के फूल, हींग और कालीमिर्च तीनों समभाग लेवें।

विधि–पहले पीपरमेण्ट के फूल और कच्ची हींग को मिला लेवें। इनके पिघल जाने पर उसमें कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनाकर सोंठ के चूर्ण में डालते जायें (सुखाने की आवश्यकता नहीं है।) उन्हें खुले मुंह की शीशी में भर लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में ३ बार या आवश्यकता पर २-२ घण्टे पर जल, मिश्री या शहद के साथ देवें।

उपयोग–इस गुटिका के सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। अपचन-जनित उदरपीड़ा, शूल, बार-बार दस्त लगना, उबाक, वमन, अफारा, शिरदर्द आदि शमन होते हैं।

८. बिडलवणादि वटी।

द्रव्य–बिड़नमक, कालानमक और सैंधानमक १५-१५ तोले, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, चित्रकमूल की छाल, अजवायन, अजमोद, धनियाँ, डांसरिया (गिर्दसमाक), सूखा पोदीना, मीठे सुहिंजने की छाल, भुनी हींग, पीपलामूल और नौसादर के पुष्प ये १३ औषधियाँ १०-१० तोले लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्ण मिला नींबू के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(स्व. आयु. मा. स्वामी लक्ष्मीरामजी)

मात्रा–१ से २ गोली, जल के साथ; अग्निमान्द्य में भोजन करने पर। उदरपीड़ा में आवश्यकता पर २-२ घण्टे में ३-४ बार सौंफ अर्क के साथ।

उपयोग–यह वटी दीपन-पाचन और उदरवातहर है। अजीर्ण, उदरशूल, अफारा, उदर में भारीपन आदि विकारों को दूर करती है और पाचनशक्ति को बढ़ा देती है। कफ और वात-प्रकृति वालों के लिए तथा मेदोवृद्धिवालों के लिये यह वटी लाभदायक है।

सूचना–सगर्भा स्त्री तथा अम्लपित्त, रक्तपित्त, प्रवाहिका और अर्श रोग इनके पीड़ितों को यह वटी नहीं देनी चाहिये।

९. जम्बीर लवण वटी।

औषध द्रव्य–जम्बीरी या कागजी नींबू का रस १२० तोले, सैंधानमक १२ तोले, सोंठ; अजवायन; सज्जीखार, पीपल, भुनी हींग, काँटेवाले करंज के सेके हुए फलों की गिरी, कालीमिर्च, छिला हुआ लहसुन, सफेद सांठी की जड़ (पुनर्नवा सफेद), पीली सरसों, सेका हुआ सफेद जीरा, अतीस और समुद्र लवण ये १३ औषधियाँ २॥-२॥ तोले लेवें।

विधि–पहले नींबू के रस को कपड़े से छान अमृतबान या कांच के बरतन में भर, सैंधानमक मिला, बर्तन के मुंह पर स्वच्छ, सफेद कपड़ा बांधकर ४ दिन सूर्य के तेज ताप में रखें। रात्रि को रोज बरतन को उठा लें। पाँचवें दिन उस रस को मजबूत मिट्टी के बरतन में डाल मन्दाग्नि पर पकालें। लकड़ी के डण्डे से चलाते रहें। रस गाढ़ा होने पर अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, नीचे उतार, शीतल होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–२-२ गोली, शीतल जल से लें अथवा मुंह में रखकर चूसें। आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार या भोजन के बाद देवें।

उपयोग–जम्बीरलवण वटी उत्तम दीपन, पाचन है। अग्निमांद्य, अरुचि, उदरशूल, अजीर्ण और अफारा में अच्छा लाभ पहुँचाती है। आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों की पचन क्रिया को सुधारती है। गैस को निकालती है, आम को जलाती है और दूषित मल को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाती है।

शाक-भाजी, मांसाहारी और गरिष्ठ अन्न खानेवाले सबों के लिये यह हितकारक है। उदर में अन्न पत्थर समान पड़ा रहता हो, उदरशूल

चलता हो, उदर में वायु संगृहीत होती हो और अन्त्र की क्रिया शिथिल होने से कब्ज हो जाती हो, उन विकारों पर यह दी जाती है, यकृत्-पित्त का योग्य स्राव न होने से दस्त में दुर्गन्ध आती हो, मल का रंग सफेद या मैला प्रतीत होता हो, उदर में छोटे-छोटे कृमि हो जाते हों और पेशाब भी पूरा साफ न होता हो, उन दोषों को यह वटी दूर कर पचनशक्ति को सबल बना देती है।

पचन-क्रिया मन्द होने से आम और कफ की वृद्धि होती हो, अरुचि बनी रहती हो, थोड़े-थोड़े दस्त लगते रहते हों, जुकाम, कास और श्वास भी हो जाता हो, उन सब विकारों को जम्बीरलवण वटी थोड़े ही दिनों में दूर करती है।

१०. उदावर्तहर गुटिका।

(गैसहर वटी)

द्रव्य–लवणभास्कर चूर्ण ४० तोला, हिंग्वष्टक चूर्ण ४० तोला, सितोपलादि चूर्ण २० तोला, साइट्रिक एसिड ५ तोला, एरण्ड तैल से शुद्ध किया हुआ कुचिला, सोहागे का फूला, नौसादर २॥-२॥ तोले, पीपरमेंट के फूल ६ माशे तथा बीज निकाली हुई साफ मुनक्का ४० तोले लें।

विधि-पहले चूर्णों को अच्छी तरह कूटकर कपड़छन करें। फिर कुचिले का चूर्ण करें। एसिड, कुचिला, सोहागा और पीपरमेण्ट फूलों को मिला एक जीव करें। उसके साथ सभी चूर्णों को भली भांति मिला लेवें। मुनक्का को अच्छी तरह पीस, कल्क बना लेवें। फिर सबको मिला खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें और अमृतबान में भरते जायें। (३ दिन में गोलियां स्वयमेव सूख जाती है।)

मात्रा–१ से २ गोली, आवश्यकता पर दिन में ३ से ६ बार जल के साथ लेवें।

उपयोग–उदावर्तहर गुटिका आमाशय और अन्त्र में संचित वायु को दूर करने के लिये तैयार करायी है। अपचन, उदरशूल, छाती में घबराहट, व्याकुलता, निद्रानाश, शिरदर्द, आमाशय और अन्त्र की शिथिलता, अफारा थोड़ा-थोड़ा दस्त आना, मलावरोध और क्षुधानाश आदि विकारों को दूर करती है।

विवेचन–आमाशय की वातनाड़ियाँ शिथिल होने से आमाशय झुक जाता है। पूरे परिमाण में पुन: आकुञ्चित नहीं होता। तब आमाशय में वायु संगृहीत होती रहती है। इस तरह आँतें चौड़ी होकर शिथिल हो जाती है। पुन: संकुचित नहीं होती तब उनमें वायु भर जाती है और कष्ट पहुँचाती रहती है। जो भारी भोजन अधिक करते हैं, पहले का भोजन पचन होने के पहले पुन: भोजन करते हैं, द्विदलधान्य, मैदे के पदार्थ, खोवा, मिठाई और तले हुये पदार्थ अधिक मात्रा में लेते रहते हैं, व अपथ्य गरम-गरम चाय आदि विशेष रूप से लेते रहते हैं, उनको उदावर्त रोग की संप्राप्ति हो जाती है। उदावर्त रोग की उत्पत्ति में दूषित पदार्थ, कृमि, विष, प्रबल रोग आदि अन्य हेतु भी है; तथापि वर्तमान में अध्यशन, अपथ्य सेवन, असमय भोजन आदि नियम-भंग के हेतु से यह रोग अत्यधिक प्रचारित हुआ है।

कई मनुष्यों ने मान लिया है कि पौष्टिक भोजन और घृत आदि का सेवन अधिक करने पर शक्ति अधिक बढ़ जाती है। अन्त्र की निर्बलता से घृत आदि पौष्टिक पदार्थ न पचकर मल के साथ निकलते रहते हैं और प्राय: अपचन होकर गैस उत्पन्न हो जाता है। जो वस्तु पचन होती है, वह बल बढ़ाती है। पचन न हो तो रोगोत्पत्ति कराती है। इस नियम की ओर सामान्यत: मनुष्य दुर्लक्ष्य करते हैं। इस हेतु से चारों ओर गैस बढ़ने की शिकायत सुनी जाती है।

आमाशय में वातोत्पति (Gastracism), आमाशय-पीड़ा (Gastralgia), आमाशय की वातनाड़ी-विकृति (Gastraneuria), आमाशय-प्रसारण (Gastrectasia) एवं आमाशय के समान अन्त्र के विकार, किसी स्थान में आंकुचित होकर अन्त्रभाग में प्रसारण हो जाना, शिथिल हो जाना, मल संचय होना तथा वायु भरा रहना, इन रोगों पर उदावर्तहर वटी लाभ पहुँचाती है।

गैस पीड़ितों में कई रोगी गरम-गरम चाय और सिगरेट एवं तली हुई चीजों व खट्टे पदार्थ के व्यसनी है उनको प्राय: अम्लपित्त भी रहता है। इन रोगियों को चाहिये कि व्यसन को कम करें तो यह औषधि लाभ पहुंचा सकती है। व्यसन का नियन्त्रण नहीं होगा तो उनको सच्चा लाभ नहीं पहुँचा सकेगा।

गैस की पीड़ावालों को यकृत् (लिवर) बहुधा कमजोर रहता है। उनको घी, तैल, चर्बी और भारी भोजन अधिक परिमाण में पचन नहीं होते। अत: उनको लघु, पौष्टिक पथ्य का सेवन कराना चाहिये। जो भोजन सरलता से पचन होता है। उसके सेवन से ही उनको अधिक शान्ति और बल मिल सकेंगे।

११. वातपन्नग वटी।

द्रव्य–धतूरे के पक्के डोडे २ सेर, सोंठ के टुकड़े १ सेर और अजवायन आध सेर लेवें।

विधि–एक मिट्टी के घड़े में कुचले हुए धतूरे के डोडे १ सेर को बिछावें। फिर ऊपर सोंठ, उस पर अजवायन फैला, सब पर शेष डोडों को बिछा पश्चात् ४ अंगुल ऊपर रहे उतना जल भर, ढक्कन ढक चूल्हे पर चढ़ाकर मंद-मंद अग्नि देवें। ६ घण्टे लगभग अग्नि देने पर जल सूख जायेगा। फिर सोंठ को निकाल छाया में सुखाकर कपड़छन चूर्ण करें। इस चूर्ण में २ तोले शुद्ध हिंगुल और १ तोला कर्पूर मिला पोदीने के रस में ६ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली; दिन में २ बार; जल के साथ देवें।

उपयोग–वातपन्नग वटी अफारा, अग्निमांद्य, उदावर्त रोग (आमाशय में गैस उत्पन्न होना) और उदरवात को दूर करती है। आमाशय और अन्त्र की उग्रता का शमन कराती है। नये और पुराने रोग में भी तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है।

१२. संचलपाक वटी।

द्रव्य–सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा, अकरकरा, कालानमक, मिश्री ये सात औषधियाँ १०-१० तोले लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्ण कर निम्बू के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(वैद्य श्री रामगोपालजी पुरोहित)

मात्रा–२ से ४ गोली, जल के साथ।

उपयोग–यह वटी दीपन, पाचन और उदरवातहर है; अग्निमांद्य, आध्मान, अजीर्ण, उदरशूल, मलावरोध आदि विकारों को दूर करती है।

१३. पाचनसुधा वटी।

द्रव्य–सैंधानमक, बिडनमक, संचलनमक, समुद्रनमक, पीपल, धनियाँ, पीपलामूल, स्याह जीरा, तालीसपत्र, सोंठ, मिर्च, जीरा सफेद, पत्रज, इलायची, अम्लबेंत, अनारदाना इन १६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–इनका कपड़छन चूर्ण बना लेवें, फिर निम्बू के रस में ३ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(वैद्य श्री रामगोपालजी पुरोहित)

मात्रा–२-२ गोली, सुबह शाम अथवा भोजन के बाद, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी दीपन, पाचन, सारक है। अग्नि को प्रदीप्त करती है, अजीर्ण, अफारा, उदावर्त, उदरशूल में सत्वर लाभ दर्शाती है।

१४. स्वादिष्टपाचन वटी।

द्रव्य–किशमिश १० तोला, अनारदाना १० तोला, डांसरिया १० तोला, जीरा १० तोला, अम्लबेंत ४ तोला, कालानमक ४ तोला, सैंधानमक ४ तोला, मिश्री ४ तोला।

विधि–इन सबको कूट कपड़छन चूर्ण बना लेवें। फिर निम्बू के रस में खरलकर चने के समान गोलियां बना लेवें।

(वैद्य श्री रामगोपालजी पुरोहित)

मात्रा–२ से ४ गोली तक, भोजन के बाद जल के साथ उदावर्त, अफारा शूल आदि में ३-३ घण्टे से जल के साथ लेवें।

उपयोग–यह वटी अग्निमांद्य, आनाह, मलावरोध, उदावर्त, अजीर्ण, अरुचि, वमन आदि रोगों में सत्वर लाभ करती है।

१५. बचादि चूर्ण।

द्रव्य–बच, हरड़, चित्रकमूल, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ को समभाग लें।

विधि–मिलाकर चूर्ण करें।

मात्रा–३-३ माशे चूर्ण गुनगुने जल के साथ।

उपयोग–आनाह और अधोवायुजनित उदावर्त्त दूर होते हैं। दूध-भात, छाछ-भात या माँस-रस और भात का भोजन देवें।

१६. हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण।

द्रव्य–भुनी हींग २ भाग, बच ४ भाग, कूठ ६ भाग, कालानमक ८ भाग और बायविडंग १० भाग।

विधि–सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ३ माशे गुनगुने जल के साथ।

उपयोग–आमोत्पन्न आनाह, विसूचिका, हृद्रोग, गुल्म और वात की विलोम गति इत्यादिविकार शमन होते हैं।

१७. द्राक्षादि गुटिका (अरुचि)।

द्रव्य–धोकर बीज निकाली हुई काली मुनक्का १ सेर, भुना हुआ जीरा १० तोले, सैंधानमक, कालीमिर्च, मिश्री और नींबू का सत्व (citric acid) ५-५ तोले लें।

विधि–पहले मुनक्का को पीसकर नींबू का सत्व मिलावें। फिर नमक, मिश्री और कालीमिर्च क्रमशः मिला, खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर सोंठ के चूर्ण में डालते जायें।

मात्रा–१-१ गोली, मुँह में रखकर रस चूसे। दिन में १० गोली तक, भोजन के आध घण्टा पहले या भोजन के पश्चात् लें।

उपयोग–इस गोली के सेवन से अरुचि दूर होती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है तथा उदर-शुद्धि होती है। अपचन, उदरवायु, कब्ज आदि विकारों में यह लाभदायक है। सगर्भा को भी हितावह है।

१८. रोचक गुटिका।

द्रव्य–पहले लिखा हुआ नागेश्वर रस और गुठली रहित खजूर (अथवा मुनक्का बीज निकाली हुई) समभाग।

विधि–इनको मिला, खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–१-१ गोली, मुँह में रखकर चूसें। दिन में १० गोली तक।

उपयोग–यह गुटिका अपचन और अरुचि को दूर करने में अति हितावह है, उदर का शोधन करती है और क्षुधा भी बढ़ाती है।

१९. नृसार पुष्प।

द्रव्य–नौसादर और साँभर नमक १०-१० तोले।

विधि–दोनों को मिलाकर बारीक चूर्ण करें। फिर एक बड़े शराव में रख, उसके समान दूसरा शराव ऊपर औंधा रख, दोनों की संधि पर कपड़मिट्टी करें। सूख जाने पर २॥ सेर लकड़ी के कोयलों की अग्नि पर सम्पुट को रख देवें। स्वांग-शीतल होने पर ऊपर के शराव के भीतर लगे हुए पीले वर्ण के पुष्पों को सम्हालकर निकाल लें।

(आ.नि.मा.)

मात्रा–ज्वर में प्रस्वेद लाने के लिए ८ रत्ती तक तथा अग्निमान्द्य, ज्वर, विषमज्वर और यकृत्-विकार में ४ रत्ती तक, जल के साथ दिन में ३ बार देवें।

उपयोग–यह पुष्प अपचन, अग्निमांद्य, यकृत् के पित्तस्राव की न्यूनता, कफवृद्धि, उदर का भारीपन, कोष्ठबद्धता आदि को दूर करता है। यह पुष्प पित्ताशय के शूल में गरम जल के साथ देने से पित्तस्राव बढ़ाकर शूल का सत्वर शमन करता है। अजीर्णजन्य शिरःशूल के लिये अति उत्तम दवा है।

२०. लवण रसायन (नमक सुलेमानी)।

द्रव्य–सैंधानमक, कालानमक, संचलनमक और नौसादर ७-७ तोले, चित्रकमूल, अजवायन, अजमोद, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, सफेद जीरा, कालाजीरा, जायफल और जावित्री ये १० औषधियाँ १-१ तोला लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्ण बनाकर पक्के पत्थर की खरल में आध सेर सिरके के साथ मर्दन करें। सिरका थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खरल करते रहें। फिर शुष्क बन जाने पर बोतल में भर लेवें। (हकीमे हाजिक श्री उत्तमचन्द जी)

मात्रा–४ से ८ रत्ती तक, दिन में २ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह नमक सुलेमानी खाये हुए भोजन को सत्वर पचा देता है। उदर में भारीपन को मिटाता है। अपचन, अफारा, उदरशूल, उदावर्त, अपचनजनित अतिसार, अरुचि और अग्निमान्द्य को दूर करता है।

२१. दीपनपाचन चूर्ण।

द्रव्य–सैंधानमक, कालानमक, सांभरनमक ८-८ तोले और काचलवण (बिड़नमक) ४ तोले लें। पहले सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर काली मिर्च, पीपल २-२ तोले, डांसरियाँ (गिर्द समाक), अकरकरा, अम्लबेंत ८-८ तोले, धनियाँ, दालचीनी, चित्रकमूल, कैथ ४-४ तोले और अनारदाना ३० तोले लेकर चूर्ण करें। पश्चात् इमली के सत्व (टारटेरिक एसिड) ४ तोले में १ तोला जल मिलाकर घोटें। उसमें उपरोक्त दोनों प्रकार के चूर्ण मिला लेवें। अच्छी तरह मिलकर शुष्क हो जाने पर १६ तोले मिश्री; कालाजीरा और सफेद जीरा ८-८ तोले तथा सोंठ का चूर्ण २ तोले डालकर खरल कर लेवें।

मात्रा–१/२ माशे से २ माशे तक।

उपयोग–यह चूर्ण, दीपन, पाचन है। इसके सेवन से अपचन, अफारा, उदरपीड़ा, उबाक और अरुचि का नाश होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। यह चूर्ण उदर में संगृहीत वायु को भी बाहर फेंकने में अच्छा लाभ करता है।

२२. शतपत्र्यादि चूर्ण।

द्रव्य–गुलाब के फूल २० तोले, नागरमोथा, जीरा, श्वेत चन्दन का बुरादा, छोटी इलायची के दाने, शीतल मिर्च, गिलोय सत्व, खस, वंशलोचन, खसखस, ईसबगोल की भूसी, गोखरु, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, लौंग, सारिवा (अनन्तमूल), कमलगट्टा (जिभ्भी निकाले हुए), नीलोफर, कमल और तीखुर (तवाखीर) ये २० औषधियां १-१ तोले तथा मिश्री ४० तोले लें।

विधि–सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। *(स्व. पंश्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा–१ से ३ माशे, दिन में २ बार; जल के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त और आमाशय विकार से उत्पन्न मुखपाक पर व्यवहृत होता है।

विवेचन–अधिक मिर्च और अधिक नमक का सेवन, धूम्रपान; तमाखू खाना, विष, संक्रामक तीव्र ज्वर, शराब, सड़े हुए अन्न या फल, अधकच्चे भोजन का सेवन आदि कारणों से आमाशय में विकृति हो जाती है; तब आमाशय में पचन कराने के लिए जो आमाशयिक रस (Gastric Juice) बनता है; उसमें लवणाम्ल (Hydrochloric acid) विशेषांश में उत्पन्न होता है और आमाशय में प्रदाह हो जाता है। फिर पित्तप्रकोपजनित विदग्धाजीर्ण और अम्लपित्त आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इन आमाशयिक पित्तप्रकोपज विकारों में मुखपाक, दाह, भोजन कर लेने पर उदर में भारीपन, अपचन, प्यास अधिक लगना, पेशाब में पीलापन आ जाना, खट्टी डकारें आना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन विकारों पर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है।

विदग्धाजीर्ण होने पर खट्टी-खट्टी डकारें आना, छाती में दाह, तृषा, पसीना अधिक आना, व्याकुलता, निद्रानाश, चक्कर आना, मलमूत्र में पीलापन, उदर में भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस अजीर्ण पर भूल करके अग्निकुमार रस या हिंग्वष्टक, लवणभास्कर, वज्रक्षार आदि तीक्ष्ण और पित्तवर्द्धक औषधि नहीं देनी चाहिये अन्यथा रोग बढ़ जाता है। उस पर यह शतपत्र्यादि चूर्ण विशेष कार्य करता है।

विदग्धाजीर्ण के साथ उदर में वायु उत्पन्न हुई हो, अफारा रहता हो तथा खट्टी डकारें बार-बार आती रहती हों, तो उसके साथ सोडाबाई कार्ब मिलाकर शीतल जल के साथ दिन में ३ बार देते रहना चाहिये।

सूचना–अधिक नमक, अधिक मिर्च, अति गरम-गरम भोजन, अधिक चावल, खट्टे पदार्थ, इनमें से जो विपरीत या अधिक हों, उनका त्याग करें। तमाखू, शराब आदि व्यसन हो तो उसे छोड़ देना चाहिये।

२३. भल्लातकादि क्षार।

द्रव्य–भिलावा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सैंधानमक, कालानमक और बिड़लवण इन १० औषधियों को ३२-३२ तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर एक हांडी में भर ढक्कन ढंक, मुखमुद्राकर गजपुट अग्नि देवें। स्वांगशीतल होने पर काली भस्म को निकाल पीसकर बोतल में भर लेवें। *(च.सं.)*

मात्रा–४ रत्ती से १ ॥ माशे तक, दिन में २ बार घी के साथ पिलावें या भोजन के साथ मिलाकर खिलावें।

उपयोग–यह भल्लातकादि क्षार हृदयरोग, पाण्डु, ग्रहणी, गुल्म, उदावर्त (आमाशय और अन्त्र में वायु-गैस की उत्पत्ति), अफारा और उदरशूल को दूर करता है।

यह क्षार उत्तम अग्निप्रदीपक और शूलहर है, वायु को अनुलोम कराता है। इस हेतु से उदावर्त, अपचन, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, अफारा और वातज गुल्म रोगों में व्यवहृत होता है। आमाशय में गैस उठने पर यह तुरन्त लाभ पहुँचाता है।

विवेचन–वर्तमान में गरम-गरम चाय, आइसक्रीम, अधिक मसाला, सिगरेट, अपथ्य सेवन और रात्रि का जागरण आदि कारणों से आमाशय से वायु (गैस) उठती रहती है। फिर आमाशय में अम्लपित्त सदृश खट्टापन बढ़ जाता है। नेत्र निर्बल हो जाते हैं, मस्तिष्क में दर्द होता रहता है और बेचैनी बनी रहती है। इन रोगियों की आमाशयस्थली बहुदा शिथिल बन जाती है। आमाशयिक पित्त परिमाण में कम किन्तु अधिक उग्र बनता है। इस पित्त की उग्रता कम कराने और आमाशय को बल देने के लिये यह भल्लातकादि क्षार अति हितावह है।

आमाशय के समान अन्त्र में वायु उत्पन्न होकर गुड़-गुड़ शब्द होने पर अन्त्र शिथिल होने लगते हैं; फिर मल में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, मलावरोध रहता है, दिन में ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा शौच होता रहता है। किसी किसी को अर्श त्रास देता है। उन रोगियों को भल्लातकादि क्षार का सेवन कराने से आमाशय और अन्त्र की पचनक्रिया सुधर जाती है और देह स्वस्थ हो जाती है।

आमाशय में वायु बार-बार उठने पर हृदय को आघात पहुँचता है। फिर हृदयाधरिक प्रदेश में दर्द होता है, हृदय की गति बढ़ जाती है, स्पन्दनक्रिया अनेक बार अनियमित बन जाती है। यह हृदयरोग आमाशय के लक्षण रूप होने से भल्लातकादि क्षार के सेवन से सरलता से शमन हो जाता है।

पचनक्रिया विकृति होने पर अन्नरस का योग्य शोषण नहीं हो सकता एवं आम-विष का भी रक्त में प्रवेश होता रहता है जिससे रक्त की उत्पत्ति कम होती है और जो उत्पन्न होता है वह भी निर्बल होता है, फिर देह पाण्डु भासती है। इस रोग पर भल्लातकादि क्षार का सेवन कराने पर पचनक्रिया सबल बन जाती है फिर देह पुष्ट और तेजस्वी बन जाती है।

२४. पाचन चूर्ण।

विधि–इन्द्रायण के पक्के फलों में लवण पञ्चक (सैंधानमक, सांभरनमक, कालानमक, समुद्रनमक, काचनमक) का चूर्ण भरें। फिर सुखा, हांडी में भर कर गजपुट देवें। स्वांगशीतल होने पर क्षार-भस्म निकाल लेवें। फिर हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चव्य, चित्रकमूल और पीपलामूल का कपड़छन चूर्ण भस्म के समान वजन में मिलाकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–१॥ से २॥ माशे; जल के साथ देवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। कफप्रधान और वातप्रधान अजीर्ण, उदरकृमि, आमविकार, अफारा, उदरशूल, उदावर्त, मलावरोध आदि व्याधियां दूर होती है। यह चूर्ण उत्तम पाचक और सारक है।

२५. पिप्पल्याद्यासव।

विविध–पीपल, कालीमिर्च, चव्य, हल्दी, चित्रकमूल, नागरमोथा, बायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाठा, आंवला, एलवालुक (अभाव में मीठा कूठ या नेत्रवाला), खस, रक्तचन्दन, मीठा कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, प्रियंङ्गु, नागकेशर ये २३ औषधियां २-२ तोले लेकर जौकूट चूर्ण करें। फिर चूर्ण के साथ २०४८ तोले जल, १२०० तोले गुड़, ४० तोले धाय के फूल और २४० तोले मुनक्का डाल, सबको मिश्रित कर चीनी के बोयाम में भर दें। मुनक्का को कुछ कूट लेना चाहिये जिससे मिश्रण बन जाये। फिर आसव-विधान के अनुसार १-१॥ मास तक बन्द रखकर आसव तैयार कर लेवें। आसव-विधि रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड के आसव-अरिष्ट प्रकरण में विस्तार से लिखी है।

मात्रा–१। से २॥ तोले, समान जल मिलाकर दिन में २ बार भोजन कर लेने पर देवें।

उपयोग–यह आसव क्षय, वात-गुल्म, उदररोग, अग्निमांद्य, अजीर्ण, उदावर्त, कृशता, ग्रहणी, अन्त्रक्षय, पाण्डु और अर्श रोग को नष्ट करता है।

यह पिप्पल्याद्यासव उत्तम दीपन, पाचन औषध है। यह आमाशय और यकृत् दोनों को सबल बनाता है, जिससे आमाशय और लघु अन्त्र दोनों स्थानों की पचनक्रिया प्रबल होती है। और रस-रक्तादि सब धातुओं की उत्पत्ति सत्वर होने लगती है। परिणाम में शारीरिक क्षीणता दूर हो जाती है। पाचक अग्नि की क्षीणता होने पर अपचन उत्पन्न हुआ हो, तो उसे दूर करने के लिये यह अति उपयोगी है। बार-बार होने वाले अजीर्ण विकार में विशेषत: आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण पर यह उत्तम लाभदायक है। कतिपय लोगों को दाल (द्विदल धान्य) गेहूँ और दूध के पदार्थ का पचन नहीं होता फिर अजीर्ण हो जाता है। ऐसे अजीर्ण पर पिप्पल्याद्यासव अच्छा कार्य करता है।

आमाशय–रस का निर्माण योग्य न होने पर रसाजीर्ण और फिर रसक्षय होता है। रसक्षय के बाद रक्तक्षय मांसक्षय आदि धातुओं का क्षय होता जाता है। इस प्रकार के क्षय में यह आसव अमृत के समान उपकारक है।

कफगुल्म और वातगुल्म पर पिप्पल्याद्यासव उपयुक्त है। कफोदर और वातोदर में जल संगृहीत होने के पहले इस औषध का उत्तम उपयोग है।

सूचना–ग्रहणी रोग की तीव्रावस्था में इस आसव का उपयोग नहीं करना चाहिये। किन्तु रोग जीर्ण होने पर या तीव्रता का शमन होने पर आम संग्रहणी हो जाती है। फिर मल के साथ बहुत आम जाता है, किसी-किसी को अन्त्रक्षय (Intestinal tuberculosis) होजाता है। इन दोनों प्रकार के विकारों में यदि अग्निमान्द्य के लक्षण हो तो इस आसव को व्यवहत करने से लाभ पहुँचता है।

पाण्डुरोग में लोह और शिलाजतु आदि औषधियों के साथ यह आसव सेवन कराने से सत्वर गुण प्राप्त होता है।

वातार्श और कफार्श पर इस आसव का सेवन लाभदायक है। *(औ.गु.ध.शा. के आधार से)*

२६. मधूकासव।

द्रव्य–महुवे के सूखे फूल १०२४ तोले, बायविडंग ५१२ तोले, चित्रकमूल २५६ तोले, भिलावा २५६ तोले और मंजीठ १२ तोले लें।

विधि–भिलावे के ४-४ टुकड़े करके मिलावें। शेष सबको जौकूट चूर्ण करें। सबको ३०७२ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। तीसरा हिस्सा (१०२४ तोले) जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। क्वाथ करने के समय शरीर को वाष्प न लगे, यह सम्हालें। क्वाथ शीतल होने पर शहद १२८ तोले मिलावें। फिर उसे छोटी इलायची, नेत्रवाला, अगर और चन्दन के कल्क से अन्दर लीपे हुए घड़े में डाल देवें और मुखमुद्राकर १ मास तक रहने दें। आसव तैयार होने पर छानकर बोतलों में भर लेवें। *(च.सं.)*

सूचना–यदि १५ दिन के पश्चात् १२८ तोले शहद और मिला दिया जाय, तो आसव विशेष गुणकारी बनता है।

मात्रा–१।-१। तोला, दिन में दो बार, समान जल मिलाकर भोजनकर लेने पर पिलावें।

उपयोग–यह आसव बृंहण और कफपित्तहर है तथा ग्रहणी को प्रदीप्त करता है। इसके प्रयोग से शोथ, कुष्ठ, किलास (श्वित्र) और प्रमेह रोग नष्ट होते हैं।

यह आसव उत्तम आमपाचक और अग्निप्रदीपक है। इस आसव का परिणाम आमाशयस्थ पाचक पित्त पर अधिक होता है। आमाशय, अग्न्याशय और अन्त्र की पचन क्रिया सबल बनती है। इस हेतु से रस-रक्त आदि सब धातुएँ बलवान् बन जाती है।

विवेचन–इस आसव में कीटाणुनाशक, दुर्गन्धिहर और किञ्चिद् उत्तेजक गुण होने से फुफ्फुस और श्वासप्रणालिकाओं में संगृहीत कफ सरलतापूर्वक बाहर निकलता रहता है। इस हेतु से यह आसव जीर्णकास, जिसमें दुर्गन्धियुक्त सफेद या पीला कफ बार-बार निकलता रहता है, उस पर लाभ पहुँचाता है।

उपकुष्ठों की उत्पत्ति प्राय: अन्त्र में से दूषित रस, आमवात, कृमि विष या कीटाणुओं के शोषण से होती है। अत: अन्त्र का शोधन होने पर वे रोग सरलता से दूर हो सकते हैं। यह आसव अन्त्रसंशोधक, कीटाणुनाशक और सेन्द्रियविष नाशक होने से नये उपकुष्ठ (विविध चर्म रोगों को भी) दूर करता है। इस तरह वृक्कों को सशक्त बनाकर नये कफज शोथ का शमन करता है। यह आसव दीपन-पाचन गुणयुक्त होने से कफज प्रमेहों पर भी अच्छा लाभदायक है। इनके अतिरिक्त यह जीर्ण आमवात में लीन दोष को जलाकर देह को नीरोग बना देता है।

२७. द्राक्षादि चाटण।

द्रव्य—किशमिश, गुठलीरहित आलू बुखारा, गुठलीरहित खजूर, अमलतास की फली का गूदा, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, दालचीनी, भुनी हींग, भुना जीरा, कालानमक, सैंधानमक और लहसुन (साफ किया हुआ) ये १३ औषधियाँ ५-५ तोले, नींबू का रस ३० तोले और गुड ३९ तोले लेवें।

विधि—अमलतास की फली के गूदे को नींबू के रस में भिगो दें। फिर मसल कर छान लें। किशमिश, आलूबुखारा, खजूर और लहशुन पहले अच्छी तरह शिला पर पीसकर कल्क बना लेवें। शेष औषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर कल्क, चूर्ण, गुड और अमलतास मिश्रित नींबू का रस मिला अवलेह के सदृश बना लेवें।

मात्रा—४ से ६ माशे दिन में २-३ बार देवें।

उपयोग—द्राक्षादि चाटण रुचिकर, कीटाणुनाशक, उदरकृमिहर, दीपन, पाचन, उदरवातहर और सारक है। उदरशुद्धि के लिये यह निर्भय औषधि है। कोमल स्वभाववाली स्त्रियों, सगर्भा और बच्चों को भी दे सकते हैं। पुराने मलावरोध से पीड़ित और ज्वरपीड़ित रोगी के लिये यह उपयोगी है।

२८. विसूचिकान्तक रस।

द्रव्य—तालचन्द्रोदय १ तोला, आम की गुठली की गिरी, अजवायन सत्व और कपूर ६-६ माशे; लाल या पीली मिर्च (बीज रहित) १॥ तोले जायफल और लौंग ३-३ माशे लें।

विधि—कर्पूर और अजवायन सत्व को मिलाकर जल बनावें। ताल चन्द्रोदय और मिर्च को खरल करें। फिर शेष औषधियों का चूर्ण मिलाकर नींबू के रस और लहशुन के रस में ६-६ घण्टे खरल करें। पश्चात् कर्पूर, अजवायन के सत्व का मिश्रण मिला, एक जीव करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

वक्तव्य—पहले प्रयोगदाता के पाठ के अनुसार हम मल्लचन्द्रोदय मिलाते थे; किन्तु मल्लचन्द्रोदय कभी कभी वृक्कों के कार्य में प्रतिबन्ध करता है। इसलिये अब तालचन्द्रोदय मिलाते हैं। इस तरह अजवायन सत्व के परिमाण में भी सुधार किया है।

मात्रा—१-१ गोली प्रति घण्टे ४-६ बार देवें।

उपयोग—विसूचिकान्तक रस अपचनजन्य और कीटाणुजन्य दोनों प्रकार के हैजे पर प्रयुक्त होता है। यह प्रयोग विसूचिका के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ है।

अपचनजन्य रोग होने पर दिन में ३ बार प्याज के रस के साथ देने मात्र से लाभ पहुँच जाता है। रोग कीटाणुजन्य होने पर १-१ घण्टे पर देते रहने से ४-६ घण्टे में कीटाणुओं का नाश होकर विसूचिका दूर हो जाता है। तुरन्त योजना न होने से बलह्रास हो गया हो, तो आवश्यकतानुसार कस्तूरी आध-आध रत्ती भी मिला देनी चाहिये।

वक्तव्य—रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड में लिखी हुई विसूचिकाहर वटी (पीपरमेंटयुक्त) और यह विसूचिकान्तक रस दोनों विसूचिका की उत्तम औषधियाँ हैं। यदि औषध रचना की दृष्टि से विशेष विचार किया जाये, तो कहना पड़ेगा कि इस रस की अपेक्षा विसूचिकाहर वटी का कार्य विशेष व्यापक है। फिर भी कफप्रधान प्रकृतिवाले मेदस्वी और अफीम जिनको प्रतिकूल है; उनको यह रस जीवन दान देता है। विसूचिकाहर वटी में अफीम आती है। अत: जब तक दूषित मल हो; तब तक नहीं दी जाती। एवं सगर्भा, बालक आदि जो अफीम सहन नहीं कर सकते, उनको विसूचिकाहर वटी नहीं दे सकते। अत: दूषित मल हो तब तक और बालक, सगर्भा आदि को यही रस देना पड़ता है। एवं शरीर अधिक शीतल बन जाने और हृदय की क्रिया मन्द हो जाने पर यह रस आशीर्वाद-रूप है। इसके सेवन से मृत्युमुख में जाने के लिये तैयार हुए अनेक रोगियों के जीवन की रक्षा हुई है।

अपचन जन्य या कीटाणुजन्य विसूचिका में हृदय की गति क्षीण हो जाती है, हाथ पैर शीतल, रोगी शक्तिहीन हो जाता है, कितने रोगी बेहोश हो जाते हैं, जीवन की आशा नहीं रहती। ऐसे समय में इस रस ने १-१ घण्टे पर सौंफ अर्क के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ दर्शाया है।

२९. अजीर्णान्तक वटी (रसोन वटी)

द्रव्य—भुना जीरा, भुनी सौंठ १५-१५ तोले, कालीमिर्च १० तोले, पीपल ५ तोले; कालानमक और सांभरनमक १२-१२ तोले, भुनी हींग १० तोले और साफ किया हुआ एक कली का लहसुन ४० तोले लेवें।

विधि–लहशुन को चटनी के समान पीस लें। फिर शेष सब औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला १ घण्टे तक खरलकर तुरन्त १-१ रत्ती की गोलिया बना लेवें। *(वैद्यराज श्री कान्तिलाल जी)*

मात्रा–२ से ४ गोली दिन में ३ बार या आवश्यकतानुसार जल, नींबू और अदरक के रस या चविकासव के साथ।

उपयोग–यह वटी उत्तम दीपन-पाचन और स्वादु है। उपयोग करने पर विदित हुआ है कि वैद्य जीवनोक्त रसोनादि वटी की अपेक्षा यह अधिकतम प्रभावशाली है। यह वटी अजीर्ण, नये अपचन, अफारा, सूक्ष्म उदरकृमि, उदरशूल और अपचन जनित विसूचिका को दूर करने में अति हितावह है। स्वादु भोजन अधिक कर लेने से भारीपन आ जाता है फिर पचनक्रिया सम्यक् कार्य नहीं देती। ऐसी अवस्था में २-२ गोली १-१ घण्टे पर ३ बार ले लेने पर उदर का भारीपन दूर होता है फिर अपचन नहीं होता।

विवेचन–मलावरोध रोग जीर्ण हो जाने पर विरेचन लेते रहना, यह हितकर नहीं माना जायेगा। विरेचन नहीं लें तो व्याकुलता बनी रहती है। विरेचन लेते है, तो निर्बलता बढ़ती है। आंते अधिक शिथिल होती जाती है। ऐसी अवस्था में सत्वर फलदायी और अपनायी औषधि की योजना करनी चाहिये जो कि दीपन, आमपाचन, कृमिघ्न और सारक हो। अजीर्णान्तक वटी इन गुणों से युक्त होने से मलावरोध पीड़ित निर्बल रोगियों के लिये आशीर्वाद के समान है।

ग्रीष्मकाल में ककड़ी, खरबूजा, तरबूज और आम आदि फल जल्दी खराब हो जाते हैं। ऐसे फलों का सेवन करने पर विसूचिका के सदृश अपचन, अफारा, पतले दस्त लगना और व्याकुलता आदि विकार उपस्थित होते हैं। उन पर यह वटी तत्काल अपना प्रभाव पहुँचाती है।

आमसंग्रहणी होने पर पाचन क्रिया अति मन्द हो जाती है। शौच के साथ आम निकलती रहती है और कुछ आँतों में जमा होती है। फिर आँतों में बढ़ जाने पर ५-७ पतले दस्त हो जाते हैं और रोगी निर्बल हो जाता है। इस विकार में आमोत्पत्ति रोकने और अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये अजीर्णान्तक वटी ४-४ गोली नींबू और अदरक के रस के साथ दिन में २ बार भोजन के आरम्भ में दी जाती है और भोजन कर लेने पर पिप्पल्याद्यासव पिलाया जाता है।

३०. रसोनकर्पूर वटी

द्रव्य–कपूर, साफ किया हुआ एक कली वाला लहसुन और हींग, तीनों समभाग।

विधि–सबको मिला, प्याज के रस में ३ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली आध-आध घण्टे पर प्याज के रस के साथ देते रहें या १ माशा शक्कर के साथ निगलवा देवें।

उपयोग–यह गुटिका विसूचिका में अच्छा लाभ पहुँचाती है। अपचन, शूल, जुकाम और अतिसार आदि को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करती है। इस वटी के सेवन से रोग बल कम हो जाने के बाद अधिक निर्बलता नहीं आती एवं इसे निर्बल हृदय वालों को भी निर्भयतापूर्वक अधिक बार दे सकते हैं।

विसूचिका के तीव्र प्रकोप में आधे-आधे घण्टे पर १-२ गोली देते रहना चाहिये। बर्फ जैसा शीतल जल १-१ चम्मच देते रहें। रोग-बल कम होने पर मात्रा भी देर से देनी चाहिये।

३१. वज्र वटी।

द्रव्य–एरंड तैल में शोधित कुचिले का चूर्ण १६ तोले, कालीमिर्च ८ तोले; शुद्ध हिंगुल, ताम्रभस्म, पीपल और वत्सनाभ २-२ तोले लेवें।

विधि–सबको मिला अदरक और नींबू के रस में १-१ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ या ३ बार जल के साथ दें।

उपयोग–यह वटी दीपन-पाचन, कृमिघ्न और वातहर है। अपचन, अग्निमांद्य, अफारा, मलावरोध, उदरकृमि, उदावर्त, आमातिसार, उदरशूल, वातविकार और ज्वर को नष्ट करती है।

वज्रवटी में कुचिला के गुणों की प्रधानता है। कुचिला शारीरिक चयापचय (Metabolism) क्रियावर्द्धक, आमाशय पौष्टिक (दीपन-पाचन) अन्त्र की पुर: सरणगतिवर्द्धक, हृद्य, उदरकृमिनाशक, श्वासोच्छवास कराने वाले केन्द्र और रक्ताभिसरण के लिये उत्तेजक, कफस्रावी, कामोत्तेजक और वातनाड़ी पौष्टिक है।

सूचना–कुचिला या कुचिला प्रधान औषधि नये तीक्ष्ण वातरोग में कभी प्रयुक्त नहीं होती। जीर्ण पक्षाघात, कम्प आदि वातरोग, जो संचालक नाड़ियों की विकृति से हुआ हो, उस पर व्यवहृत होती है।

विवेचन–कुचिला के साथ हिंगुल और ताम्र मिलाया है। जिससे यह वटी यकृत् को उत्तेजित करके अधिक पित्तस्राव कराती है तथा यकृत् प्लीहा की निर्बलता को भी दूर करती है। गजानन्द वटी और भीम वटी दोनों कुचिला प्रधान है फिर भी इन तीनों के गुणधर्म में अन्तर रहता है।

ज्वर—वत्सनाभ का मिश्रण होने से मुद्दतीज्वर, जीर्ण विषमज्वर, सूतिकाज्वर, बालकों का आक्षेपसहज्वर, इन सब पर यह सफलतापूर्वक व्यवहृत होती है। प्रस्वेद लाकर ज्वर उतार देती है। विषमज्वर दिनों तक रह जाने पर उसका विष रक्तादि धातुओं में लीन हो जाता है। फिर मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है; देह कृश और निस्तेज हो जाती है। प्रायः यकृत् प्लीहावृद्धि भी होती है। यदि थोड़ा-सा कुपथ्य किया तो ज्वर प्रकुपित होकर १०१ डिग्री से १०२ डिग्री तक बढ़ जाता है। इनके अतिरिक्त अग्निमान्द्य, अरुचि, मलावरोध, उदरवात, आमवृद्धि, शिरदर्द, नेत्रदाह और मूत्र में पीलापन आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं। इन रोगियों को डाक्टरी में क्विनाइन प्रधान औषधि देते रहे हैं। किन्तु पित्त प्रकृति वालों से क्विनाइन सहन नहीं होती और जो रोगी अति क्विनाइन सेवन कर चुके हैं उनको क्विनाइन से लाभ भी नहीं पहुंचता। उन सब रोगियों को इस वटी का सेवन कराने पर थोड़े ही दिनों में ज्वर निवृत्त हो जाता है।

अजीर्ण—अपचन होने पर दुर्लक्ष्य करने से रोग जीर्ण और दृढ़ बन जाता है। फिर थोड़ा-थोड़ा दस्त आने रहना, उदर में भारीपन, अग्निमांद्य, मलावरोध, निद्रा-वृद्धि, आलस्य, शिर में भारीपन, मुँह पर कुछ शोथ भासना, मूत्र में गन्दलापन, बार-बार दूषित डकारें आते रहना; भोजन करने की इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस रोग पर इस वटी का सेवन १-२ सप्ताह कराने पर लाभ पहुँच जाता है। एवं अजीर्ण से शूल आदि उपद्रवों की प्राप्ति हुई हो, तो वे भी नष्ट होते हैं।

आमाजीर्ण—असमय पर भोजन करने या अत्यधिक भोजन करने पर योग्य पचन नहीं होता। फिर अन्त्ररस दूषित हो जाने पर आमाशय में दाहशोथ होकर अपचन हो जाता है। फिर दूषित डकार आना; उदर में भारीपन, प्रतिश्याय, किसी किसी को ज्वर हो जाना, उदर में शूल चलना, थोड़ा-थोड़ा दुर्गन्धयुक्त दस्त होना और बेचैनी आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर वज्रवटी और अग्नितुण्डी दोनों हितावह औषध है। ४-४ घण्टों पर दिन में २ बार देने से प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। उदर में विशेष भारीपन हो, तो साथ में हरड़ और सोंठ का चूर्ण देने से सत्वर लाभ पहुँचता है। यदि भोजन न दिया जाये और केवल चाय या तक्र पर रखा जाये तो विशेष अच्छा है। दोपहर को अति क्षुधा लगने पर मौसम्मी, सन्तरा, अनार आदि फल दे सकते हैं।

यकृद्विकृति-यकृत् अशक्त हो जाने पर पित्तस्राव कम होता है फिर अन्त्र में अन्न का योग्य पचन नहीं होता। जिससे दस्त में दुर्गन्ध आना, दस्त का रंग सफेद होना, उदर में छोटे-छोटे कृमियों की उत्पत्ति होना, कभी-कभी पतले दस्त लगना, उदर में शूल चलना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस वटी का सेवन कुमार्यासव के साथ कराने से यकृत् प्रबल हो जाता है और यकृत् विकार जनित सब लक्षण दूर हो जाते हैं।

उपांत्रदाह—शोथ (Appendicitis) रोग होने पर उदर के दक्षिण भाग में जड़ता बनी रहती है। दबाने पर कुछ दर्द मालूम पड़ता है, कुछ-कुछ दिनों पर शूल का दौरा होता रहता है, वातवर्द्धक या गुरु भोजन करने पर बहुधा दौरा हो जाता है। अन्य दिनों में भी अग्निमांद्य, मलावरोध, शारीरिक निर्बलता, जिह्वा सफेद, मलयुक्त रहना आदि लक्षण भासते हैं। उस पर इस वटी का सेवन कुछ दिनों तक कराना चाहिये और भोजन लघुपथ्य देना चाहिये।

अग्नितुण्डी वटी और वज्रवटी, दोनों अपचन और वातप्रकोप पर हितावह है। दोनों में कुचिले की प्रधानता है। इन दोनों में कुचिले की मात्रा समान है। फिर भी ताम्र आदि के योग से यह वटी अग्नितुण्डी की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण और पित्तस्रावी बनी है। अतः यकृत् की निर्बलता होने पर वज्रवटी अग्नितुण्डी की अपेक्षा अधिक उपकारक है। परन्तु सामान्य अपचन हो, तो वज्रवटी की अपेक्षा नमक मिश्रित अग्नितुण्डी का प्रयोग करना विशेष अच्छा माना जायेगा।

वक्तव्य—जिनका हृदय अधिक निर्बल हो और जीर्ण अजीर्ण के हेतु से जिनको औषधि दीर्घकाल तक देनी हो, उनको कुचिला प्रधान औषधि बहुत कम मात्रा में देनी चाहिये।

सबल हृदय वालों को सत्वर लाभ पहुँचाने और तीव्रप्रकोप में विकार को तत्काल दबाने के लिये वज्रवटी विशेष उपकारक है। तीव्रप्रकोप में एक दो दिन औषध सेवन कराना हो, तो निर्बल हृदय वाले को भी वज्रवटी दे सकते हैं।

३२. तण्डुलादि कृशरा।

द्रव्य—लाल शाली चावल २ भाग; तिल और मूंग १-१ भाग लें। सबको पृथक्-पृथक् भूनें, तिल को कूटकर छिलके दूर करें।

विधि—फिर सबको मिला खिचड़ी बना घी मिलाकर खिलावें।

उपयोग—यह खिचड़ी अच्छी तरह पेट भरकर खिलाते रहने से तीव्राग्नि अर्थात् भस्मक रोग का शमन हो जाता है। रोग अधिक तीव्र न हो, तो खिचड़ी १-१ दिन छोड़कर खिलाना चाहिये।

इस खिचड़ी के सेवनकाल में प्रवाल पिष्टी ६ रत्ती, वंशलोचन १ माशा, सोनागेरु ४ रत्ती और गिलोयसत्व १॥ माशा (या गिलोय स्वरस ४ तोले) मिला दो हिस्से कर प्रातः सायं शहद के साथ देते रहने से अधिक लाभ पहुँचता है।

३३. रसोनादि अर्क

द्रव्य–लहसुन की साफ कली ६। तोले
तुलसी के हरे पत्ते २। तोले
जावित्री का अधकचरा चूर्ण ६। तोले
परिशोधित सुरासार ६० औंस

विधि–इन सबको मिलाकर बोतल में भर ऊपर से डाट लगा लें। बोतल का मुँह बन्द करें और ४८ घण्टे तक भिगोकर बाद में फिल्टर पेपर से छान डालें।

मात्रा–५ से १० बूंद १-१ औंस जल के साथ दिन में ३ बार देवें।

उपयोग–यह रसोनादि अर्क उष्णवीर्य, उत्तम जन्तुघ्न, दीपन, पाचन और वातहर औषधि है। उदरशूल, अफारा, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विसूचिका, अतिसार, वमन, अरुचि, विविध वातरोग, श्वास, दुर्गन्धसह कफयुक्त खांसी, कुत्ता खांसी, क्षय, फुफ्फुस शोथ, श्वसनक ज्वर, वातश्लैष्मिक ज्वर (वायुकोष या श्वास प्रणालिका में सड़ान होना) इन सबका नाश करता है। इसके अलावा नाड़ीव्रण और कर्णशूल में उपयोगी है।

वर्तमान समय में मोतीझरा, रक्तपित्त, रक्तबार बढ़ना (हाईब्लडप्रेशर), संग्रहणी, कण्ठमाल, कण्ठरोहिणी (डिप्थेरिया) और अपस्मार पर भी सहायक औषधि रूप से उपयोग में आता है। नाड़ीव्रण में लहसुन का इञ्जेक्शन देने से आश्चर्यकारक लाभ होने के उदाहरण मिले हैं।

विवेचन–विसूचिका-हैजे में (अतिसार या वमन हो तब) आधे-आधे घण्टे पर ५-५ बूंदे देने से ४-६ घण्टे में रोगी की स्थिति अच्छी हो जाती है। अपचन होता हो, तो दिन में तीन बार १०-१० बूंदे देने से या भोजन में संयम रखने से १ दिन में ही लाभ हो जाता है।

अतिसार, मरोड़ा और संग्रहणी के रोगी की पाचन शक्ति बहुधा कमजोर हो जाती है। उसको व्यवस्थित करने के लिये २-३ मास तक अर्क की १०-१० बूंदें दिन में ३ बार देने से रोग जल्दी दूर हो जाता है।

मोतीझरे के रोगी के मल में दुर्गन्ध आती हो और उसकी जीर्णावस्था में आंतें कमजोर हो जाती हों तो रसोनादि अर्क सहायक औषधि रूप में देने से पाचन-क्रिया में विकार नहीं बढ़ता है, दस्त साफ आता है, पाचन शक्ति बढ़ती है तथा ज्वर का शमन होता है।

कफ में दुर्गन्ध हो वैसी खांसी, श्वास, मांस की सड़ान और क्षय में रसोनादि अर्क सहायक औषधि रूप से देने से दूषित कफ बाहर निकलता रहता है। रोग वृद्धि में रूकावट होती है, भीतर से विकार जलने लगता है तथा रोग का शमन हो जाता है।

वातप्रकोप से शरीर के किसी भी भाग में या मस्तक में होने वाले शूल; उदरशूल, गृध्रसी वात, कटिवात, साँधों का दर्द इन पर रसोनादि अर्क सफलतापूर्वक काम देता है।

लहशुन में रक्तभार कम करने का गुण है। इसलिये रसोनादि अर्क बढ़े हुए रक्तभार के रोगियों को देते हैं। इससे चक्कर आना कम हो जाता है। शांत निद्रा आती है और बढ़े हुए भार में भी कुछ लाभ होता रहता है।

कण्ठमाल और नाड़ीव्रण में रसोनादि अर्क की ५-५ बूंदें दिन में तीन बार तक औषधि रूप से देने से रोग आगे बढ़ नहीं सकता। कान पकने की शुरुआत हो तब और पीप इकट्ठा होकर भीतर दूसरे अवयवों को हानि करने लगे, तब दोनों वक्त कर्णशूल शुरू होता है। इन दोनों अवस्थाओं में रसोनादि अर्क से रुई भिगोकर कान साफ करते रहने से पीप जल जाता है और शूल को जल्दी आराम होता है।

३४. लवण द्रावक।

द्रव्य–नमक ४८ औंस, गन्धक का तेजाब ४४ औंस, जल ३६ औंस और वाष्प जल ५० औंस।

विधि–पहले जल पर गन्धक का तेजाब डालें। शीतल होने पर लवण मिला, चीनी मिट्टी के बकयन्त्र में भरें। आधार पात्र के भीतर ८ औंस जल रखें और अग्नि देकर तेजाब बना लेवें। जो वाष्परूप द्रावक निकले, वह आधार पात्र में होकर नल द्वारा दूसरे आधार पात्र में रखे हुए वाष्प जल के भीतर ले जायें। वाष्प जल के योग से वाष्प द्रावक का तेजाब बन जाता है। इस तरह ६६ औंस होने पर प्रक्रिया समाप्त करें। प्रारम्भ से अन्त तक द्रव में आधार पात्र को सावधानी पूर्वक शीतल रखना चाहिये। इसमें हाइड्रोजन क्लोराइड ३१.७९% (वजन में) रहता है। यह विशुद्ध लवण द्रावक वर्णहीन, तीक्ष्ण और अम्ल स्वादयुक्त है। इसे वायु में रखने पर श्वेतवर्ण और गन्धयुक्त धूम (लवण मिश्रित क्लोरीन गैस) निकलता है। इस तेजाब को डाक्टरी में म्यूरियाटिक एसिड (Muriatic acid) भी कहते हैं।

इस तरह लवण द्रावक बनाने पर नमक जल और गन्धक के तेजाब के मिश्रण के योग से बकयन्त्र में सल्फेट ऑफ सोडा रह जाता है तथा लवण में अवस्थित क्लोरीन गैस उस तेजाब में से निकलती है।

वक्तव्य–इस तेजाब को अल्कोहल, क्षार, क्षारघटित सब कार्बोनेट, भस्म, सुरमा (टार्टर) इमेटिक, कसीस, नागशर्करा, रजत और पारद घटित लवण के साथ नहीं मिलाना चाहिये।

मात्रा–लवण द्रावक ३३। औंस वजन को इतने जल में मिलावें कि सब मिलाकर १०० औंस भार में हो जाये। इसे विमर्दित लवण द्रावक (Acid Hydrrochioric dill) कहते हैं। इसके भीतर १०% हाइड्रोजन क्लोराइड रहता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १०४५ से १०५२ तक होता है। इसकी मात्रा ५ से ६० बूंदें हैं। इसे १ औंस जल में मिलाकर देवें। सामान्यत: २० बूंदों से अधिक नहीं देना चाहिये।

गुणधर्म–स्वल्प मात्रा में जल के साथ मिलाकर सेवन करने पर आमाशय पौष्टिक, रसायन, क्षारनाशक और कृमिघ्न है। अधिक मात्रा में और जल रहित सेवन करने पर दाहकर विषक्रिया करता है।

उपयोग–लवण द्रावक आदि सब खनिज द्रावक शरीर के भीतर सामान्यत: क्षारप्रधान स्राव (Alkaline secretion) की वृद्धि और अम्लगुण का ह्रास कराते हैं। इस हेतु से इस द्रावक का सेवन करने पर लाला (Saliva), यकृत् पित्त (bile), आग्नेय पित्त (Pancreatice Juice) और अन्त्ररस (Succus entericus) इन सबकी वृद्धि होती है तथा आमाशय में अम्ल गुण विशिष्ट रस (Gastric Juice) का ह्रास होता है। इसलिये आमाशय में अम्ल गुणविशिष्ट पाचक रस का नि:सरण आवश्यकता से अधिक होने पर भोजन के २० मिनट पहले लवण द्रावक का सेवन कराने से अम्लरसोत्पत्ति का ह्रास हो जाता है। इसके विपरीत पाचक रस का नि:सरण न होता हो या न्यून होता हो, तो भोजन कर लेने पर इस द्रावक का सेवन कराने से अम्ल रस की पूर्ति भी हो जाती है। इस तरह प्रयोगानुरूप यह आमाशय पित्तोत्पत्ति का दमन या वृद्धि कराता है।

आमाशय में अम्लपाचक रस का निर्माण दीर्घकाल तक अधिक होता रहे, तब पचनक्रिया विकृत होकर विदग्धाजीर्ण (Acid dyspepsia) की सम्प्राप्ति होती है। फिर भोजन कर लेने पर उदर में भारीपन आ जाता है, छाती में दाह होता है, अम्ल उद्‌गार आता है और व्याकुलता होती है। इस विकार के शमनार्थ भोजन के २० मिनट पहले लवण द्रावक का प्रयोग करना चाहिये।

क्वचित् अन्य दूरवर्ती यन्त्रों के साथ आमाशय की समवेदकता रखने के लिये आमाशय रस अधिक परिणाम में नि:सृत होता है। फिर खट्टी डकारें, उबाक, वमन, छाती में दाह आदि विदग्धाजीर्ण लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर भी अम्ल रसाधिक्य के दमनार्थ भोजन के पहले लवण द्रावक का प्रयोग जल मिलाकर किया जाता है।

यदि क्षार आदि के अतियोग से छाती में दाह (Pyrosis) होता हो, तो उस विकार पर इस द्रावक का उपयोग आहार के पीछे किया जाता है। इस अम्लाधिक्य के निवारणार्थ भोजन के प्रारम्भ में लवणद्रावक और शोरक-द्रावक का प्रयोग किया जाता है।

आमाशय को अत्यधिक और अनियमित उत्सेचन क्रिया के हेतु से आमाशय में विविध प्रकार के रस (एसेटिक एसिड, ल्युटिरिक एसिड, लेक्टिक एसिड) उत्पन्न होकर अम्लपित्त हो जाता है। उस अवस्था में भी इस द्रावक को जल में मिलाकर देने से अम्लोत्सेचन का दमन होता है।

एक प्रकार के विष्टब्धाजीर्ण रोग (Fermentative dyspepsia) में आमाशय में से अम्ल रस का स्राव स्वल्प होता है। ऐसे समय पर भोजन के पश्चात् लवण द्रावक का प्रयोग करने पर अम्लस्राव को सहायता पहुँचाकर पचन करने की क्षमता को बढ़ा देता है। आमाशय में यदि मुक्त रस न हो तो मांसवर्द्धक सत्व (पेपसिन प्रोटिन) नहीं गल सकता। अत: अम्ल रस की अल्पता होने पर भोजन के पश्चात् लवणद्रावक का उपयोग करना चाहिये।

आमाशय रस की उत्पत्ति में अनियमितता होने पर इस द्रावक का उपयोग कुचिले और कितनी ही कड़वी औषधियों के साथ करने पर पचन-क्रिया को विशेष लाभ पहुँचता है। एवं यह अन्त्र प्रसेक (Intestinal Catarrh) और चिरकारी अतिसार में भोजन के २-३ घण्टे बाद प्रयुक्त होता है।

यह पेशाब में से क्षार का ह्रास कराता है। अत: मूत्र में फोस्फेट जाने पर अश्मरी रोग में तथा यकृत् पित्त के स्राव में उत्तेजना आने के लिये इस द्रावक का प्रयोग दिन में ३ बार होता है। इसी तरह पेशाब में ऑक्जेलिक एसिड या सिस्टिक ऑक्साइड उपस्थित होने पर भी यह व्यवहृत होता है। यदि पेशाब में लिथेट ऑफ अमोनिया (यूरेट) जाता हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

घातक पाण्डु (Pernicious Anaemia) रोग में तथा आन्त्रिक ज्वर में आमाशय रसस्राव का ह्रास या अभाव होने पर २० से ३० बूंद तक लवणद्रावक अधिक जल (२-४ औंस) के साथ प्रयुक्त होता है।

सब खनिज तेजाब की क्रिया जीवित और मृत तन्तुओं (tissues) पर रासायनिक (Chemical) होती है। ये तन्तुओं के एल्ब्यूमिन के ऊपर क्रिया करते हैं और उसके भीतर से समस्त जल का शोषण करके तन्तुओं का ध्वंस करते हैं। इस हेतु से दुष्टव्रण जो सत्वर फैलता है और तन्तुजाल को नष्ट करता है (Phagedenic ulceration and sloughing), उस पर ये विशेष उपकारक है। मुँह में दुष्ट और जीर्ण बिगड़े हुए विविध क्षत तथा कोथमय क्षत (Cawcrumoris) पर इसका प्रयोग किया जाता है।

कण्ठ में कृत्रिम झिल्ली (Aphtal or Thrush) होने पर जल रहित लवणद्रावक को ८ गुने शहद में मिलाकर स्थानिक लेप किया जाता है। इनके अतिरिक्त बिगड़े हुए, गले हुए क्षतों पर भी इसका स्थानिक प्रयोग होता है।

कण्ठरोहिणी (डिप्थेरिया) रोग पर इसके उग्र द्रावक को समभाग शहद के साथ मिलाकर कण्ठ में झिल्लीमय रोगग्रस्त स्थान पर लगाने

पर लाभ पहुँचता है। स्वस्थ स्थान पर प्रयोग करने पर प्रबल प्रदाह उत्पन्न होता है। अत: सावधानीपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

सूचना–विशुद्ध द्रावक (जिसमें जल मिलाकर विमर्दित न बनाया हो ऐसा द्रावक) त्वचा पर लगाने से प्रबल दाहक असर पहुंचाता है। एवं यदि उदर में सेवन कराया जाये; तो जिन-जिन तन्तुओं को उसका स्पर्श होगा; उन सब तन्तुओं को नष्ट कर देता है तथा विषाक्त लक्षण प्रकाशित करता है।

कण्ठ और आमाशय के प्रदाह से बचने के लिये इस द्रावक को अत्यधिक जल में मिला कर कांच की नली द्वारा लेना चाहिये ताकि उसके प्रभाव से दाँतों को बाधा न हो।

वक्तव्य–आमाशय की प्रसेकावस्था (Catarrhal Condition) जिसमें श्लैष्मिक स्राव का अत्यधिक संग्रह हो, उसमें तेजाब सेवन का निषेध है। यह तेजाब स्वस्थ व्यक्तियों को बड़ी मात्रा में दीर्घकाल तक दिया जायेगा तो उत्तेजना और अपचन की उत्पत्ति कराता है एवं आमाशय में क्षत उत्पन्न कर देता है।

३५. शोराद्रावक।

(Acidum Nitrricum, Nitric Acid)

द्रव्य–गन्धक का तेजाब १६ औंस, क़ल्मी शोरा (Sodium Nitrate) १ पौंड और जल।

विधि–इनको मिलाकर बक यंत्र द्वारा खींच लेने पर सोरक द्रावक तैयार होता है। इस द्रावक में ७२ प्रतिशत हाइड्रोजन नाईट्रेट (वजन में) और ३० प्रतिशत जल है। यह द्रावक स्वच्छ, वर्णहीन, प्रवाही और तीक्ष्ण, गन्धकयुक्त है। आपेक्षिक गुरुत्व १.४२ है। वायु में रखने पर उसमें से तीव्र दाहक वायु निकलती है।

सूचना-क्षार, मद्यार्क, कार्बोनेट ऑक्साइड, सल्फाइड, अम्लप्रधान द्रव्य, कासीस और नागशर्करा के साथ इस द्रावक को नहीं मिलाना चाहिये।

निर्जल द्रावक दाहक होने से उसका उपयोग उदर-सेवन में नहीं होता। विमर्दित (जलमिश्रित) अधिक मात्रा में लेने पर या जल रहित द्रावक का सेवन करने पर प्रदाह की उत्पत्ति और दाहकविष क्रिया करता है। विषाक्त लक्षण उपस्थित होने पर गन्धक द्रावक के समान चिकित्सा की जाती है। दोनों में भेद यह है कि गन्धक द्रावक के मुँह की श्लैष्मिक त्वचा श्वेतवर्ण की तथा सोरक द्रावक के लगने पर पीतवर्ण की हो जाती है। यह द्रावक दीर्घकाल तक सेवन करने पर मुँह आ जाता है। अत: कुछ दिन बन्द कर देना चाहिये।

मात्रा–इस द्रावक के १५ औंस ४५ ग्रेन वजन को इतने जल में मिलावं कि सब मिलकर १०० औंस नाप में हो जाये। इस विमर्दित शोरा द्रावक में १०% हाइड्रोजन नाइट्रेट होता है। इसकी मात्रा ५ से २० बूंदें १ औंस जल के साथ देवें।

उपयोग–शोरा द्रावक योग्य मात्रा में सेवन करने पर यह लालानि: सारक, अग्निप्रदीपक, पौष्टिक, शीतलताप्रद, रसायन, पित्तनि:सारक और क्षारनाशक है। इसके सेवन से क्षुधा प्रदीप्त होती है। पचनशक्ति की वृद्धि होती है और शरीर बलवान बनता है। गन्धक द्रावक के समान इसमें संकोचक गुण नहीं है। अधिक दिनों तक सेवन करने पर अजीर्ण और उदर में वेदना उपस्थित होती है। इसके सेवन से कभी-कभी मुंह आ जाता है। आमाशय व्रण (Ulcer) पैदा कर देता है।

बाह्य उपचार में निर्जल द्रावक अति प्रबल दाहक है। उपदंशज सड़े हुए घाव (Chancres), माँसाँकुर (Warts) अर्श के मस्से (Haemorrhoids), दुष्ट सड़े हुए क्षत (Phagedenic Sores), जहरीले सर्प और पागल कुत्ते का विष, इनको जलाने के लिये व्यवहृत होता है।

रोगान्त–दौर्बल्य और अग्निमांद्य को दूर करने के लिये कड़वी वनौषधि के साथ विमर्दित द्रावक देने पर उपकार होता है।

अजीर्ण रोग में पेशाब के भीतर ऑक्जेलिक एसिड जाता है और मानसिक दुर्बलता आती है, उस पर इस द्रावक के प्रयोग से विशेष फल मिल जाता है।

बालकों के अतिसार, जिसमें अधिक किंछना पड़ता हो, मल हरे रंग का दही के कण जैसा और आममिश्रित हो, उस पर यह द्रावक आश्चर्यकारक उपकार दर्शाता है। बालकों के चिरकारी अतिसार में मल हल्के हरे रंग का हो, खट्टी बास आती हो, रचना भी योग्य न हो, उस पर भी इस द्रावक का अच्छा उपयोग होता है।

अम्लपित्त रोग में किसीकिसी को भोजनकर लेने पर थोड़े ही समय में खट्टी डकारें और अम्ल रस मुंह में आ जाता है, दांत भी खट्टे हो जाते हैं। तथा छाती में दाह (Pyrosis) होता है। उस रोग में भोजन के पहले शोराद्रावक और लवण द्रावक मिश्रण देने पर अम्लता सत्वर निवृत्त होती है। किसी-किसी को आमाशय से मुँह में आया हुआ रस क्षारगुण विशिष्ट होता है, अतिशय कष्ट, उबाक और वान्ति होती है ऐसे प्रकार पर भोजन कर लेने के २ घण्टे बाद शोरा द्रावक या लवण द्रावक का प्रयोग करने पर उपकार होता है।

जीर्ण यकृत् प्रदाह (Chronic hepatitis) में पारद सेवन से उपकार न होने पर या किसी हेतु से पारद प्रयोग अविधेय हो, तो

विमर्दित शोरा द्रावक ५ या १० बूँदों की मात्रा में १-१ औंस जल के साथ दिन में ३ बार कुटकी चूर्ण, रोहितकारिष्ट या कुमार्यासव के साथ एकाध मास सेवन करने पर लाभ हो जाता है। (प्रति सप्ताह २ दिन औषधि बन्द कर देवें)। चिरकारी यकृद्दाल्युदर (cirrhosis) रोग में भी इसके प्रयोग से उपकार होता है बालकों के यकृत् क्रिया की शिथिलता के हेतु से मलावरोध होने पर यह द्रावक निसोत या कुटकी के साथ दिया जाता है। यकृत् के समान चिरकारी प्लीहावृद्धि पर भी यह द्रावक लाभदायक है।

फिरंग रोग की द्वितीयावस्था में किसी-किसी को संधिवात और चर्मरोग हो जाता है। रोगी वृद्ध और दुर्बल होने पर अथवा रसकर्पूर, अमीर रस और मल्लप्रधान औषधि अविधेय होने पर इस द्रावक का उपयोग १०-१० बूंदों की मात्रा में (सारिवासव और रक्तशोधकारिष्ट के सेवन कराते हुए) करने पर रोग निवृत्त हो जाता है।

पेशाब में क्षार की अधिकता होने पर फॉस्फेट क्षार की अश्मरी होने पर इस द्रावक का सेवन कराया जाता है। इसके अतिरिक्त १ बूंद द्रावक को १ औंस जल में मिलाकर मूत्राशय में पिचकारी देने से अश्मरी गल जाती है। इस तरह जीर्ण मूत्राशय प्रदाह रोग में भी यह पिचकारी हितावह है। परन्तु प्रदाह में उग्रता हो, तो पिचकारी नहीं देनी चाहिये। प्रारम्भ में दो दिन के अन्तर पर पिचकारी देवें फिर रोज एक बार देवें। पिचकारी देने के पश्चात् मूत्राशय में ४० सैकिण्ड से अधिक समय तक औषद को न रखे। कदाच पिचकारी से कष्ट हो, तो पिचकारी न देवें।

मधुमेह रोगी को पीने के १ पिण्ट जल में १ ड्राम द्रावक मिला लें फिर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहने पर अधिक पिपासा और तीव्र दाह का निवारण होता है तथा मूत्र परिमाण कम होता है। यदि साथ में अतिसार हो, तो शोराद्रावक न देवें।

अर्श रोग में मस्सा भीतर की वली में हो जो वली बन्धन योग्य न हो, उस पर निर्जल शोराद्रावक का स्थानिक प्रयोग करने पर यथेष्ट उपकार होता है। बिल्कुल मन्द अवस्था में २-३ बार लगाने पर ही बहुधा ठीक होता है। रक्तस्राव युक्त अर्श रोग में इसका स्थानिक प्रयोग करने पर रक्तस्राव बन्द होता है। स्फीत और प्रदाह युक्त वली आकुञ्चित होती है तथा वेदना शान्त होती है।

सड़े और गले हुए दुष्ट क्षत विशेषत: दूषित शस्त्र के लग जाने से उत्पन्न क्षत (Hospital Gangrene), सत्वर फैलने और तन्तुओं के नाशक क्षत (Phagedenic), मुख का सड़ा हुआ क्षत (Cancrum Oris), कोमल कर्कस्फोट, वेदना विहीन और भग्न भयंकर व्रण आदि पर निर्जल सोराद्रावक का स्थानिक प्रयोग सर्वोत्तम माना गया है।

वक्तव्य–काच की शलाका को द्रावक में डुबोकर घाव पर स्पर्श कराने पर समस्त मृत तन्तु नष्ट हो जाते हैं। चारों ओर के जीवित तन्तुओं की अवस्था परिवर्तित होती है तथा विकार दूर होकर स्वस्थावस्था की प्राप्ति हो जाती है।

प्रचुर पूय नि:सरणयुक्त दुष्ट व्रण को धोने के लियें शोराद्रावक के धावन का व्यवहार करने पर उपकार होता है।

इस द्रावक की क्रिया त्वचा के ऊपर के हिस्से के तन्तुओं तक सीमाबद्ध होती है। भीतर में रहे हुए गम्भीर तन्तुओं में यह प्रवेश नहीं कर सकता।

देह पर किसी स्थान में कृत्रिम त्वचा की उत्पत्ति होकर माँसाँकुर (मस्से Naevuswart) बनने और गुदा पर त्वचा विकृति या गुदशूक (condyloma) हो जाने पर उनको जलाने के लिये यह द्रावक महौषध है। १-२ ड्राम विमर्दित द्रावक को १ पाइन्ट जल में मिलावें। फिर उसमें पट्टी भिगोकर निरन्तर उस पर रखने से और बार-बार पट्टी को गीली रखने पर वह विकार दूर हो जाता है और कोई कष्ट नहीं होता। कितने ही चिकित्सक निर्जल द्रावक को स्पर्श कराकर उसे जला डालते हैं। गर्भाशय के जीर्णप्रदाह में भी यह द्रावक भीतर जाता है। इस तरह विषाक्त जन्तु का दंश होने पर यह द्रावक उत्तम दाहक है। शीतपित्त के ददोरों पर कण्डू के शमनार्थ इस द्रावक के धावन में कपड़ा भिगोकर (स्पंजिंग) पोंछा जाता है।

मुख के भीतर श्लैष्मिक झिल्ली का प्रदाह, मुख में क्षत, कण्ठ में नयी कृत्रिम झिल्ली (Thrush) बनना, रसकर्पूर आदि के सेवन से अधिक लाल-स्राव होना, आमाशय की अति उग्रता के हेतु से मुँह की श्लैष्मिक त्वचा का लाल-लाल प्रदाह युक्त और उज्ज्वल होना, इन पर यह विमर्दित द्रावक हितकारक है। कम मात्रा में और जल मिलाकर उदर-सेवन करने पर उपकार दर्शाता है।

गवैयों के स्वरभंग, पचन विकृति से प्रतिफलित (रिफ्लेक्स) होकर उत्पन्न स्वरभंग तथा स्वरयन्त्र की अति थकावट से उत्पन्न स्वरभंग में १० बूंदें विमर्दित शोरा द्रावक का सेवन जल मिलाकर कराने पर लाभ हो जाता है।

आशुकारी श्वास नलिका प्रदाह में निकलने वाले कफ का परिमाण अत्यधिक होने पर जलमिश्रित द्रावक का सेवन कराया जाता है।

विचर्चिका पर शोरा द्रावक १० बूंदों को १ औंस जल में मिलाकर भिगो कर रखने से विचर्चिका एवं किट्टिभ नष्ट हो जाता है।

३६. विमर्दित शोरा-लवण द्रावण।

(नूतन शंख द्राव–Acidum NitroDhydrochioricum dilutum)

द्रव्य–शोरा द्रावक १२ औंस, लवण द्रावक १६ औंस और वाष्प जल १०० औंस।

विधि–सबको मिलाकर बना लेवें। इनको मिलाकर १४ दिन तक बोतल में रहने देवें। फिर व्यवहार में लावें। इसका आपेक्षित गुरुत्व १.०७ है।

मात्रा–५ से २० बूंदों तक, १-१ औंस जल के साथ, दिन में ३ बार।

उपयोग–यह मिश्र द्रावक पाचक, अग्नि प्रदीपक, क्षारनाशक, अर्बुदनाशक पित्तनिः सारक और रसायन है। कुछ दिनों तक सतत सेवन करने पर मुँह आ जाता है। अतः अल्पकाल एवं मात्रा में सम्हालपूर्वक सेवना कराना चाहिये।

मूत्र में ऑक्जेलिक एसिड उपस्थित होने पर द्रावक अन्य द्रावकों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पेशाब में यूरेट क्षार उपस्थित होने पर इसका सेवन कुछ दिनों के लिये बन्द करें। पुनः कुछ दिन बाद चालू करें। इस तरह वर्ष में ३-४ बार सेवन कराने और पथ्य पालन करने ऑक्जेलिक एसिड का परिवर्तन होकर आरोग्य की प्राप्ति होती है।

विवेचन-जीर्ण यकृत् प्रदाह और तीव्र यकृत्प्रदाह की उग्रता का शमन होने पर इसका आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रयोग विशेष उपकारक है। यकृत् में रक्ताधिक्य होने पर शोरा-लवण विमर्दित द्रावक ८ औंस को १ गैलन (८% उष्ण) में मिला उसमें कपड़ा भिगोकर यकृत् पर लपेटा जाता है। तथा ऊपर तैलमय रेशमी कपड़ा बांधा जाता है। इस तरह सुबह शाम दिन में दो बार प्रयोग किया जाता है। इस तरह पैर, जंघा, ऊरू आदि भागों को पोंछने के लिये भी इस द्रावक का उपयोग शीतल जल में मिलाकर किया जाता है। देह के दक्षिण पार्श्व के बाहुमूल तक स्पञ्ज किया जाता है। यह स्पञ्ज दिन में दो बार १-१ मिनट तक किया जाता है। स्नान के निमित्त धातुपात्र नहीं लेना चाहिये। एवं जिस स्पञ्ज का उपयोग किया जाता है, उसे शीतल जल में रख दें। अन्यथा द्रावक की तेजी से स्पञ्ज नष्ट हो जाता है।

कामला, यकृत् रोग से उत्पन्न अतिसार और शोथ होने पर इस मिश्र द्रावक का उपयोग विशेष उपकार दर्शाता है एवं पित्तनिःस्सरण की विकृति से उत्पन्न विविध पीड़ाओं पर यह उपकारक है।

मुँह के भीतर उपदंशज क्षत होने पर यह द्रावक शहद और जल में मिला कर कुल्ले कराने से विलक्षण उपकारक होता है। फुफ्फुस कोथ (gangrin of the lungs) रोग में मृत द्रव्य (विष) शरीर में शोषित होने पर विविध उपद्रव उपस्थित होते हैं, इस रोग पर इस द्राव का प्रयोग हितकारक है। एवं कफकास में इसके मृदु प्रवाही में कपड़ा भिभोकर वक्षःस्थल पोंछ लेने पर लाभ पहुँचता है।

३७. संजीवन अर्क।

द्रव्य-अफीम ४ ड्राम, छोटी इलायची के दाने १ औंस, जायफल २ औंस, कपूर ४ औंस और परिशोधित सुरासार २० औंस लेवें।

विधि-इन सबको बोतल में बन्द कर १ सप्ताह रहने देवें। बोतल को रोज २-३ बार चला लें। सप्ताह के पश्चात् फिल्टर पेपर से छान लें और जितना परिशोधित सुरासार कम हुआ हो उतना और मिला लेवें।

मात्रा-५ से १५ बूंदे दिन में ३ बार, १-१ औंस जल या शक्कर के साथ।

उपयोग-यह संजीवनी अर्क अपचन, अपचनजनित पतले दस्त, वमन, अपचनजन्य विसूचिका, कीटाणुजन्य विसूचिका, कालज-अतिसार, भय-जनित अतिसार, पार्वतीय अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, पक्वातिसार, उदर-शूल, प्रसूता का मक्कलशूल, मासिक धर्म में शूल और छाती में कफसंग्रह आदि पर व्यवहृत होता है। कर्णशूल में इसकी बूंदें कान में डाली जाती है। दन्तशूल होने पर इसका फोहा दांतों में रखा जाता है। सुजाक की जलन पर और स्त्रियों के सोमरोग में भी यह अर्क अच्छा लाभ पहुँचता है।

विवेचन-विदग्धाजीर्ण रोग होने पर थोड़ा-थोड़ा पतला दस्त होता रहता है, प्यास, छाती में दाह, बेचैनी आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं। इस पर यह अर्क दिन में ३ बार देने से रोग का शमन हो जाता है।

नूतन अजीर्ण-अपचन से जब आमाशय और अन्त्र में प्रदाह उपस्थित होता है, तब दिन में ५-७ बार वमन और दस्त होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में सञ्जीवन अर्क देने से तुरन्त लाभ पहुँच जाता है।

विसूचिका-कीटाणुजन्य हैजा होने पर वमन और दस्त बहुत जल्दी-जल्दी होने लगते हैं, प्यास भी बनी रहती है। थोड़े समय के पश्चात् हाथ पैरों में ऐंठन भी आती है। इस रोग की प्रथमा और द्वितीयावस्था में यह अर्क सत्वर लाभ पहुँचाता है। १२ घन्टे व्यतीत हो जाने पर जब शरीर शीतल हो जाता है, शक्ति क्षीण हो जाती है, रक्त गाढ़ा हो जाता है और रोगी में बोलने की शक्ति भी नहीं रहती, तब इसके प्रयोग से और अन्य दवाई से भी लाभ होने की आशा कम हो जाती है। इस विकार पर ५-५ बूंदे आध-आध घन्टे और फिर १-१ घन्टे पर या वमन, दस्त होने पर जल १-१ चम्मच या शक्कर के साथ देते रहना चाहिये।

मोतीझरे में अतिसार-मोतीझरे में कभी-कभी अतिसार अति दुःखदायी बन जाता है। रोगी इस अतिसार के हेतु से अति पीड़ित रहता है। बहुधा ऐसे समय पर मानसिक अस्वस्थता, निद्रानाश, मन्द-मन्द प्रलाप भी होता है। इन सब लक्षणों को सञ्जीवन अर्क बहुत सरलता से दूर कर देता है। किन्तु मात्रा बहुत कम देनी चाहिये। अन्यथा आध्मान व नशा हो जाने की संभावना रहती है।

कफप्रकोप-श्वास और कास रोग में थोड़ा अपथ्य होने या आहार-विहार में भूल होने अथवा ऋतुदोष से कफसंग्रह बढ़ जाता है। छाती कफ से भारी रहती है और सरलता से कफ नहीं निकलता, जिससे रोगी बड़ा बेचैन रहता है। इस अवस्था में दिन में ३ बार ५-५ बूंदे सञ्जीवन अर्क देते रहने से २-४ दिन में कफ निकलकर छाती मुक्त हो जाती है।

मक्कलशूल-प्रसव होने के पश्चात् गर्भाशय में कीटाणु अथवा वायु का प्रवेश होने, शीत लग जाने या आँवल का कुछ अंश रह जाने पर मक्कलशूल उत्पन्न होता है। इस पर यह अर्क चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है। शूल को शमन करने के लिये मात्रा पूरी दी जाती है, किन्तु स्तन्य द्वारा बच्चों को हानि न हो, यह सम्हालना चाहिये।

पीड़ितार्त्तव-बीजाशय या बीजवह नलिका में विकृति होने पर मासिक धर्म में शूल चलता है। कितनी ही रुग्णायें इस विकार में मूर्च्छित हो जाती है। इस विकार पर यह अर्क रुग्णा को अच्छी शक्ति देता है। यदि कब्ज हो, तो उसे दूर करना चाहिये और पथ्य भोजन लेना चाहिये। मात्रा १५ बूंदे देनी चाहिये।

जीर्ण आमवातिक उपद्रव-आमवात (Rheumatism) हो जाने के पश्चात् थोड़ा शीत लग जाने या शक्कर खाने पर कितने ही रोगियों को बार-बार कष्ट पहुँचता है। हृदय में विकृति, ज्वरोत्पत्ति, देह में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दर्द होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर सौंठ के फाण्ट के साथ १५-१५ बूंदे दिन में ३ बार देते रहने से जल्दी गुण प्रतीत होता है। आवश्यकतानुसार वातशूलान्तक मलहम की मालिश भी करते रहना चाहिये।

कालज अतिसार-ग्रीष्म ऋतु में धूप में फिरना, तरबूज, खरबूज आदि अधिक खाना और फिर शीतल जल पीने आदि से कालज अतिसार (Summer Diarrhoea) उत्पन्न हो जाता है। उसको यह अर्क दबा देता है।

पार्वतीय अतिसार-पर्वतों में अधिक फिरना, झरने का दूषित जल पीना, बिना विश्रान्ति लिये गरम-गरम दूध, चाय पीना आदि कारणों से पार्वतीय अतिसार (Hill diarrhoea) हो जाता है। यह रोग कभी-कभी बदरीनाथ, अमरनाथ आदि की यात्रा करके वापस आने पर जलवायु परिवर्तन और भारी भोजन में भी हो जाता है। इन दोनों प्रकारों पर यह संजीवन अर्क रोगियों को जीवनदान देता है। भोजन में दही, मट्ठा, खिचड़ी भात आदि लघु पथ्य अन्न देना चाहिये।

सुजाक में मूत्रदाह-सुजाक रोग की तीक्ष्णावस्था में रोगी को मूत्रत्याग में जलन होती है, किसी-किसी को जलन इतनी अधिक होती है कि आँखों में अश्रु आ जाते हैं। इन रोगियों को सञ्जीवन अर्क देने से २-३ दिन के भीतर जलन और उग्रता का दमन हो जाता है।

सोमरोग-स्त्रियों को सोमरोग-मूत्रातिसार होने पर मूत्र त्याग पर उनका अधिकार नहीं रहता, देह शुष्क और निर्बल हो जाता है। ऐसी रुग्णाओं को सञ्जीवन अर्क देते रहने से अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

अति विरेचन-कभी विरेचन का अति योग हो जाने पर दस्त बन्द नहीं होते, रोगी अति दीन और पीड़ित होता है। उसे यह अर्क ५-५ बूंदे २-३ बार देने पर स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

मानस अतिसार-स्त्रियों और बालकों को जाग्रत या स्वप्न में भय लग जाने पर किसी-किसी को अतिसार हो जाता है, किसी को ज्वर भी आ जाता है। इन भयजनित विकारों पर यह अर्क तत्काल लाभ पहुँचा देता है। भय के समान शोक के आघात से भी अतिसार हो जाता है। शरीर शीतल हो जाता है और नाड़ी मन्द हो जाती है। उस समय भी संजीवन अर्क अपना प्रभाव तुरन्त दर्शा देता है।

३८. अर्क शबाब आवर (गैसहर अर्क)।

औषध द्रव्य-पोदीना ४० तोले, चन्दन का बुरादा, गुलाब के फूल २०-२० तोले, जटामाँसी, बड़ी इलायची के दाने, गावजवाँ, अदरक, धनिया, ये ५ औषधियाँ १०-१० तोले, सौंफ, ब्राह्मी, दालचीनी, नागरमोथा ये ४ औषधियाँ ५-५ तोले, तुलसीपत्र, कपूरकाचरी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात और लोंग ये ५ औषधियाँ ३-३ तोले, अम्बर और केसर ६-६ माशे, अर्क केवड़ा १। सेर, अर्क बेदमुश्क २॥ सेर, नारङ्गी ११ नग, सेव २० नग और बंगला पान २०० लें।

विधि-इनका अर्क २ बार निम्न विधि से खींचा जाता है।

(१) सूखी मुख्य औषधियों को यवकूटकर २४ घन्टे पहले ८ गुने जल में भिगो दें। फिर अर्क खेंचने के समय पोदीना, अदरक, धनियां और तुलसी के पान तथा नागरबेल के १०० पानों को कूटकर मिला लें। जल का तीसरा हिस्सा अर्क खेंच लेवें।

(२) दूसरी बार अर्क खेंचने के समय पान १००, नारंगी और सेव कुचले हुये, अर्क केवड़ा, अर्क बेद मुश्क मिलाकर अर्क खेंच लेवें।

(३) दूसरी बार अर्क खेंचने के समय अर्क गिरने के स्थान पर केसर, अम्बर, लौंग, छोटी इलायची के दानों की पोटली लटकावें।

मात्रा-१-१ औंस दिन में २ या ३ बार पिलावें।

उपयोग-यह अर्क अजीर्ण, अग्निमांद्य, उदरशूल, उदावर्त, अफारा, मलावरोध, शिर-शूल, मस्तिष्क-निर्बलता आदि पर व्यवहृत होता है। यह अर्क गैस पीड़ितों के लिये आर्शीवाद रूप है। थोड़े दिन तक सेवन करने पर रोग शमन हो जाता है, आमाशय और अन्त्र की श्लैष्मक कला के प्रदाह को दूर करता है तथा दोनों स्थानों की पचनक्रिया सुधर जाती है। यह प्रयोग हकीम निजामुद्दीन साहिब से मिला है उनके हम आभारी हैं। आपने इसका प्रयोग अनेक वर्षों तक किया है।

३९. स्वादिष्ट छुहारे।

द्रव्य–छुआरे १ सेर, नींबू रस २ सेर लें।

विधि–छुहारों को पहले पानी से धोकर ४-५ दिन तक नींबू के रस में भिगोवें। फूल जाने पर भीतर से गुठली निकालकर निम्न मसाला भरें। ऊपर नींबू का रस डाल देवें।

मसाला–कालीमिर्च, पीपल और दालचीनी तीनों २-२ छटांक, सोंठ, जीरा, स्याह जीरा तीनों १-१ छटांक, सैंधानमक ६ छटांक और शक्कर २ सेर, इन सबको मिलाकर भरें और अमृबान में रखकर मुँह बांध देवें। अमृतबान को ४-५ दिन धूप में रखें।

उपयोग–यह छुहारा रुचिवर्द्धक और पाचन है। अपचन को दूर करता है। भोजन के साथ अचार के समान इसका उपयोग हो सकता है एवं रुचि उत्पन्न कराने के लिये अन्य समय में भी ले सकते हैं।

उपर्युक्त मसाले (शक्कर रहित) को नीबूं के रस में मिलाकर रबड़ी जैसा घोल बनावें। फिर १-२ दिन घोटकर ४-५ दिन धूप में रखकर सुखादें और छोटी-छोटी गोलियाँ बना लेवें। ये गोलियाँ पाचक और रुचिकर बन जाती है।

छुआरे के समान मुनक्का को नींबू के रस में भिगो, मामूली मसाला मिला कर खाने से स्वादिष्ट, पाचक और सारक गुण की प्राप्ति होती है।

गुलकन्द के भीतर उक्त मसाला मिला लेने पर गुलकन्द में पाचन गुण बढ़ जाता है।

४०. श्यामादि वटी (अग्निमान्द्य)।

विधि–काली निशोथ की छाल और बड़ी हरड़ समभाग लेकर बारीक चूर्ण करके थूहर के दूध में १२ घन्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली थोड़े गरम पानी अथवा दूध के साथ प्रातः काल लेवें।

उपयोग–श्यामादि वटी आँतों में रहे हुए वायु की विपरीत गति को नष्ट करके अपचन और अफारा (मल और वायु संग्रह को दूर करता है।)

यह वटी, दीपन, पाचन, वातहर, रेचक, निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। आंतों की उष्णता को दूर करने के लिये अनुपान रूप से दूध के साथ इसका सेवन करना चाहिये। अथवा जल के साथ सेवन करें। यदि गैस के रोगी को अपचन हो, अपान वायु शुद्ध न होता हो, अधिक व्याकुलता रहती हो तो यह औषधि श्रेष्ठ है।

यह वटी आम, विष और कीटाणुओं को बाहर निकालती है तथा अन्त्र को शुद्ध बनाती है। मल को फेंकने के बाद आंतों का संकोच होने में सहायता पहुँचाती है एवं आँतों के भीतर प्रवाह भी नहीं लाती।

जिस दिन इस वटी का सेवन किया जाये उस दिन तले हुए पदार्थ, कब्ज करने वाले और भारी पदार्थ न खायें, तो आंत अपना स्वभाविक कार्य नियमित करने लगती हैं।

सूचना–श्यामादि वटी को ८-८ घन्टे ३ दिन तक खरल करके गोलियाँ बनायें। उनको सोंठ के २० तोले चूर्ण में डालते जायें तो अधिक अच्छा है।

४१. पाचन सुधा।

द्रव्य–१५०० नारङ्गियों का रस, अद्रक रस २० मिलो, नींबू का रस २० किलो, ताजा मूली का रस १० किलो, सैंधा नमक, काला नमक ५-५ किलो, काला जीरा, श्वेत जीरा, सोंठ, पीपलामूल, कालीमिर्च प्रत्येक ६५३ ग्राम, हाऊबेर, अजवायन, कुलिंजन, प्रत्येक ५०० ग्राम, शक्कर २० मिलो, गुलाबजल, केवड़ाजल तथा वाष्प जल ५-५ किलो लेवें। पीपरमेन्ट के फूल २ तोले डालें। (वैद्य बद्रीनारायण)

विधि–र. तं. सार (प्र.खं.) में उद्धृत आसवारिष्ठ प्रकरण के प्रारम्भ में दी गई संधान विधि से संधान करा लिया जाता है।

मात्रा–आधे तोले से १ तोले तक, चौगुना पानी मिलाकर दिन में २ बार लें अधिक अजीर्ण या अपचन हो तो प्रति २-३ घन्टे बाद लेना चाहिये।

उपयोग–पाचन सुधा-उदावर्त्त (गैस बनना), पेट में वायु रुकी रहना, भारीपन, पेट फूलना, अग्निमान्द्य, अजीर्ण तथा आम विष को दूर करता है। इससे आमातिसार, आमज संग्रहणी, मलावरोध, मूत्रावरोध एवं अर्श आदि रोगों के दमन में सहायता पहुँचती है।

यह औषधि आमपाचक, कीटाणुनाशक तथा उदरविकारों के लिये सुधा (अमृत) सम प्रभावक होने से इसे "पाचन सुधा" संज्ञा दी है। यह उष्णवीर्य, अग्निवर्धक औषधि होने से वात एवं कफ दोषों से उत्पन्न विविध व्याधियों के शमन में तत्काल प्रभाव दिखाती है। स्वादिष्ट, पाचक, रुचिकारक एवं निर्भय औषधि होने से सामान्य ज्ञान वाले गृहस्थी भी निर्भय रूप से इसका प्रयोग कर सकते हैं।

उदर में गैस प्रकोप आमाशय, आँतों इन २ स्थानों में होता है। आमाशय में होने पर वह गैस बार-बार ऊपर हृदय की ओर उछलता

रहता है और ग्लानि, बेचैनी व व्याकुलता उत्पन्न कराता है। कभी-कभी मस्तिष्क की ओर गमन करके शिर में भारीपन व चक्कर आदि पैदा कर देता है। इस पाचन सुधा से मूल विकारकारी गैस नष्ट होकर उद्गार शुद्धि व अपानवायु निष्कासन सरलता से हो जाता है, तब उक्त सब उपद्रव मिट जाते हैं।

अधिक घृत, तैल या गुरुपाकी गरिष्ठ भोजन अधिक ले लेने पर उदर में भारीपन, व्याकुलता, आलस्य आदि बने रहते हैं। वमन, शूल, ग्लानि आदि होते हैं, इसमें भी यह हितकारी है। आमाशय में रसस्राव कम उत्पन्न होने पर कफज अग्निमांद्य उत्पन्न होता है, आँखों के चारों ओर तथा कपोल भाग पर सूजन भासती है, आम वृद्धि होती है, पेट में से दुर्गन्ध आने का भास होता है, इन सब विकारों पर यह पाचन सुधा अच्छा लाभ दर्शाती है। कभी-कभी रोग अति जीर्ण होने से साथ में अग्निकुमार रस की भी योजना करनी होती है।

दीर्घकाल तक अत्यधिक आम संगृहीत हो जाने पर उदर में भारीपन रहने वाले कई रोगियों को अन्न पर अति अरुचि, उदर कठोर, मल खुश्क, जिह्वा श्वेत मलयुक्त, चिपचिपी, मुँह में जल भर आना आदि लक्षण रहते हैं। ऐसे लक्षणों युक्त रोगी को भी पाचन सुधा का कम मात्रा में लम्बे अरसे तक सेवन कराया जाता है। शीघ्र लाभ पहुँचाने हेतु साथ में अग्नितुण्डी वटी का प्रयोग कराया जाये और नियमित उदर शोधनार्थ कुछ समय तक रात्रि को पञ्चसम या पञ्चसकार चूर्ण दिया जाये तो शीघ्र लाभ होता है। नियमित उदर शुद्धि होने पर शक्ति संरक्षणार्थ रात्रि को ब्राह्मरसायन देते रहना हितावह माना जायेगा।

भोजन में द्विदल धान्य (चना, मसूर, सेम आदि), गरिष्ट भोजने ले लेने पर मलावरोध व वातप्रकोप होकर उदरशूल पैदा होता है, उस समय पाचन सुधा का सेवन हितकारी होता है।

४२. महाशंखवटी।

द्रव्य-पारद, गन्धक, शंखभस्म, पांचों लवण, इमली का क्षार, सोंठ, कालीमिरच, पीपल, हिंगु और शुद्ध वत्सनाभ समान भाग लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक की अच्छी कज्जली करें फिर शंखभस्म और वत्सनाभ को उसमें मिलाकर अच्छी प्रकार घोटें। तदनन्तर हिंगु के अतिरिक्त शेष औषधें मिलावें। पुन: अच्छी प्रकार मर्दन करके क्रमश: अपामार्ग के स्वरस अथवा क्वाथ की, चित्रक के क्वाथ की और नींबू के रस की भावना देवें। नींबू के रस की इतनी भावना देवें कि सब मिलित द्रव्य अम्ल रस के हो जावें। जब घुटाई अच्छी प्रकार से हो जावे तब थोड़े नीम्बू के रस में मिला कर हिंगु उसमें डालें। यथासम्भव शीघ्र ही उसे सम्यक् मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। छाया में सुखावें। इसमें हींग इसलिए पीछे से मिलाई है कि उसकी गन्ध आदि कम से कम उड़े। इस प्रकार से बनी वटी अधिक लाभकारी रहती है। अन्यथा हींग पहले मिला देने पर अधिक काल तक घोटने और सुखाने में हिंगु का प्रभाव कम हो जाता है और वटी उतनी अच्छी कार्यकारी नहीं रहती। (भैषज्य रत्नावली)

ग्रन्थ में लिखा है कि इसी में यदि लोहभस्म और वंगभस्म और मिला दी जाये तो उसको महाशंखवटी कहते हैं। परन्तु अनेक निर्माता तथा वैद्य उक्त भस्म विरहित योग को ही महाशंखवटी नाम से बनाते और विक्रय करते हैं। रसेन्द्रसार संग्रह में लोह और वंगभस्म रहित योग को ही बृहत् महाशंखवटी नाम दिया गया है।

मात्रा-२ से ४ रत्ती। **अनुपान**-जल अथवा गुनगुना जल।

उपयोग-इस वटी के सेवन से जठराग्नि शीघ्र प्रदीप्त होती है। भस्मक रोग नष्ट होता है। अधिक भोजनकर लेने पर भी उसका पाचन शीघ्र होता है। सब प्रकार के अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त, महाशोथ, अर्श का नाश होता है। वात, पित्त तथा कफ विनिष्ट होते हैं। निद्रा, आलस्य, अरोचक, परिणाम शूल और प्रवाहिका में उपकारी है।

महाशंख वटी एक अति उपयोगी, सुन्दर और वैद्यों के प्रतिदिन के कार्य में आने वाला योग है। जब अजीर्ण से या अन्य किसी कारण उदर में शूल हो तो इसका उपयोग तत्काल लाभ करता है। जब उदर में वायु भरता है और रुद्ध होकर कष्ट देता है, उस समय इससे तत्काल शान्ति मिलती है। अतिसार की स्थिति में जिसमें कि वायु के साथ जल मिश्रित मल निकल जाता है, महाशंख वटी २ रत्ती या ४ रत्ती में उसके समभाग में सज्जीखार या सोडाबाईकार्ब मिलाकर देने से अतिसार शान्त हो जाते हैं। यह देखा गया है कि जब शूल में या किसी अन्य उदर कष्ट में पित्त का अनुषङ्ग विशेष हो अतिसार को रोकना हो तब उसमें सज्जीखार या साडाबाईकार्ब मिलाने से उस वटी में मिले हुए अम्ल और इस क्षार के योग से जब पेट में समीकरण प्रक्रिया होती है तो उससे तत्काल उद्गार एवं अपान आकर रोगी को शांति प्राप्त होती है।

जब मलबन्ध विशिष्ट हो तब इसके साथ क्षार की योजना की अपेक्षा केवल इसका ही उपयोग करना विशेष लाभदायक होता है। तीव्र शूल में २ से ४ रत्ती औषध को पीसकर देना चाहिये। जहाँ पर शीघ्र एवं निश्चित लाभ देखना हो वहाँ वटी के रूप में बनी हुई औषधों का सूक्ष्म चूर्ण करके देना ही श्रेयस्कर है। वटी के रूप में औषध जब पेट में पहुँचती है तब वह शनै:शनै घुलती है और वेदना के ऊपर उसका एक साथ पूर्ण बल के साथ प्रभाव नहीं होता। परन्तु सूक्ष्म पिष्ट वटी पेट में जाकर शीघ्र घुलती है और कष्ट पर उसका प्रभाव प्रबलता से एक साथ होता है तथा वेदना भी तत्काल शान्त होती अनुभव होती है। रोगी औषध के प्रभाव को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। अनेक बार

तो विविध द्रव्यों की भावनाओं से औषधों की गोलियां इतनी कठोर एवं अघुलनशील बन जाती है कि यही सन्देह रहता है कि वे पेट में घुलेंगी भी या नहीं।

क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र में वात के प्रकोप या अवरोध से जो शूल उत्पन्न होता है उसमें इसका विशेष लाभ देखा गया है। जब शूल तीव्र हो और रोगी उसके कारण छटपटाता हो, इसकी दो गोली (४ रत्ती) पीसकर जल से देने पर रोगी को शीघ्र ही शान्ति प्राप्त होती है। यदि एक घन्टे में वेदना कम न हो तो दूसरी मात्रा भी इसी प्रकार एक घन्टे के अनन्तर ही देनी चाहिये। देखा गया है कि इस दूसरी मात्रा के अनन्तर प्रायः निश्चित् रूप से वेदनोपशम होता है। तब तीसरी मात्रा, आवश्यकता होने पर दूसरी मात्रा के दो या तीन घन्टे पश्चात् और चौथी उसके चार घन्टे पश्चात् देनी चाहिये।

अजीर्ण में भी इसका उक्त प्रकार से ही प्रयोग करना उचित है। उससे पाचन शीघ्र होता है और शान्ति प्राप्त होती है। कभी अजीर्ण के साथ वयस्क लोगों में आम दोष के कारण घुटनों में वेदना और जकड़ रहती है। उस स्थिति में इस वटी का प्रयोग लाभकारी होता है। मात्रा चार-चार घन्टे से दिन में ३ या ४ बार देनी चाहिये। आमाशयिक व्रण के कारण यदि आमाशय में शूल हो तो इस वटी को देने से वेदनाशान्ति न होकर वेदना की वृद्धि होती है। क्षार या सोडाबाईकार्ब मिलाकर देने से भी उस वेदना की वृद्धि होती है। उस समय सूतशेखर रस बृहत् या स्वर्ण रहित का प्रयोग करना उचित है। उसकी गोली भी पीसकर ही देनी चाहिये। आमाशयिक व्रण की वेदना की शान्ति सूतशेखर देने से १०-१५ मिनट के पश्चात् ही होती देखी गई है। जब उदरशूल के साथ कोष्ठबद्धता हो तब केवल शंखवटी का प्रयोग अधिक अच्छा है और जब मल द्रव रूप में आता हो या अतिसार हो तब इसके साथ क्षार का योग उत्तम है।

उपान्त्र शोथ में भी इसका प्रयोग बहुत अच्छा होता है। जब वेदना तीव्र होती है और सहन शक्ति के भी बाहर होती है तब यदि आधुनिक वेदनाहर औषधियां न देकर बृहत् शंखवटी की मात्रा पीसकर दी जावे तो वेदना शीघ्र ही नियन्त्रित हो जाती है। वेदना शान्ति के अनन्तर २१ दिन, एक मास या डेड़ मास इसका प्रयोग कराने से उपान्त्र शोथ की पुनरावृत्ति नहीं होती। यदि उपान्त्र शोथ के रोगी को बद्धकोष्ठता रहती हो तो उसके लिये कुमार्यासव (शार्ङ्गधर संहिता) की योजना भी दोनों समय भोजनोत्तर करनी चाहिये। उससे उपान्त्र शोथ के रोगी स्थायी रूप से स्वास्थ्य लाभ करते हैं। प्रयोग ३० या ४० दिन करना होता है।

❑ ❑

(९) कृमिरोग।

१. कृमिशत्रु चूर्ण।

द्रव्य-पलाश के बीज सेके हुए ५ तोले, कपीला, अजमोद, बायविडंग और इन्द्रजौ २॥-२॥ तोले तथ भुनी हींग ६ माशे लें।

विधि-सबको मिला कूट कपड़ छन चूर्ण कर नीम के पत्तों के स्वरस की ५ भावनायें और अजमोद, बायविडंग के क्वाथ की दो भावनायें देकर सुखा कर चूर्ण बना लेवें।

मात्रा-२ से ४ रत्ती, दिन में तीन बार जल के साथ दें।

उपयोग-इस औषध के सेवन से कृमि नष्ट हो जाते हैं। छोटे बालक को देना हो, तो मात्रा कम देनी चाहिये।

२. कृमिकण्टक रस।

द्रव्य-सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, भुनी हींग, सफेद जीरा, कालाजीरा, अजवायन, खुरासानी अजवायन, अजमोद, किरमाणी अजवायन, हिंगुपत्री (डीकामाली), बायविडङ्ग, सौंफ, सैंधा नमक, काला नमक, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस नीम की शलाकाएं, कलूम्बा (Calumba) और चिरायता ये २४ औषधियाँ १-१ तोला और ताम्रभस्म २ माशे लेवें।

विधि-सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। (र.यो.सा.)

मात्रा-३ माशे आवश्यकतानुसार, जल में मिलाकर घोल दें। फिर २-३ ठीकरी को खूब तपाकर उसमें डालकर ढक दें। वाष्प शान्त होने पर छानकर बच्चे को पिला देवें इस तरह सुबह शाम दो बार देंवे।

उपयोग-इस रस के सेवन से बालकों के कृमि और इनसे उत्पन्न ज्वर, पाण्डु, वमन, अतिसार, उदरपीड़ा, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, कामला आदि दूर होते हैं। यह रस बालकों के लिये अति लाभदायक है।

३. मुस्तादि योग।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नागर मोथा, फ्लाश के बीज सेके हुए, बायविडङ्ग की मज्जा (छिलका निकाले हुए), दाड़िम के मूल या वृक्ष की छाल, सेकी हुई कांटेवाले करंज की गिरी, सेके हुए इन्द्रजौ, कपीला और किरमानी अजवायन (खुरासानी अजमोद) ये १० औषधियां १०-१० तोले तथा अजवायन सत्व (Thymol) और भुनी हुई हींग-५-५ तोले लें।

विधि–पारद गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, अनन्नास के पत्तों के रस में एक दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा लें।

(सि.यो.सं.)

मात्रा–२ से ४ गोली तक, दिन में दो बार निम्न क्वाथ से देवें।

अनुपान–नागरमोथा, मूसाकानी, फ्लाश के बीज, बायविडङ्ग, दाड़िम वृक्ष की छाल, अजवायन, किरमाणी अजवायन, सुपारी, देवदारु, सुहिंजने की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला और इन्द्रजौ इन १४ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर १ तोला चूर्ण को १६ तोले जल में मिला चतुर्थांश क्वाथ करके पिला देवें।

उपयोग–इस योग के ७ से २१ दिन सेवन करने से उदरकृमि और उनसे उत्पन्न उपद्रव दूर हो जाते हैं।

आमाशय के विकार से कृमि उत्पन्न होने पर अरुचि, अपचन, वान्ति, मंदज्वर, अफारा, उदरपीड़ा, हिक्का, पाण्डुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस औषध का सेवन करने पर कृमियों का नाश हाकर पचन क्रिया सुधर जाती है।

आमाशय के समान यकृत् और अन्त्र विकार से (निर्बलता से) अन्त्र में विविध प्रकार के कृमि उत्पन्न होते हैं फिर अति निर्बलता आ जाती है। जुकाम, कास, उदरपीड़ा, उदर में वायु भरा रहना, भारीपन, मलावरोध, थोड़ा-थोड़ा दस्त होना, उबाक आना, मंद-मंद ज्वर बना रहना, नाक, गुदा और सर्वाङ्ग में खुजली चलना, शीतपित्त के समान रक्तपित्त के धब्बे हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस विकार पर मुस्तादि योग के सेवन से लाभ हो जाता है।

४. कृमिघ्न योग।

द्रव्य–कपीला, बायविडङ्ग नागरमोथा, डीकामाली और काला नमक इन पाँचों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर चूर्ण करें।

मात्रा–२-२ माशे, भोजन करने के पहले गुनगुने जल के साथ दिन में २ समय देवें।

उपयोग–उदरकृमि तथा रक्त में उत्पन्न कीटाणु, अरुचि, अग्निमांद्य, उदरशूल, कोष्ठबद्धता और ज्वर आदि लक्षण थोड़े दिनों में दूर हो जाते हैं।

अनेक बार पाण्डुरोग की उत्पत्ति उदरकृमि की वृद्धि होने पर होती है, उसमें पाण्डुता, कृशता, उदर में आध्मान, ज्वर रहना, प्लीहावृद्धि (क्वचित् यकृद्वृद्धि भी), किसी को कफवृद्धि, अग्निमान्द्य, मलावरोध आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर यह चूर्ण देने से कृमि गिरने लगते हैं फिर थोड़े दिनों में रोगशमन होकर उपद्रव दूर हो जाते हैं।

५. नियमनादि कषाय

द्रव्य–कड़वे निम्ब की अन्तरछाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कूड़े की छाल, बच, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, खैर की छाल और निसोत ये ११ औषधियाँ समभाग लें।

विधि–इनको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

(नि.र.)

मात्रा–१-१ तोले को १६ गुने गोमूत्र में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करके सुबह पिलावें।

उपयोग–इस कषाय के सेवन से उदरकृमि (पुरीषज कृमि) एक सप्ताह में गिर जाते हैं। जब पुरीषज कृमि (सूत जैसे पतले और छोटे-छोटे कृमि) उत्पन्न होते हैं तब उदर में वायुसंग्रह, गुदा में खाज आना, हाथ पैर गलना, दिन में ३-४ बार दस्त लगना, उदरपीड़ा, कृशता, नेत्र के चारों ओर कालापन, रोग बढ़ने पर डकार और निःश्वास में मल की दुर्गन्ध आना, पाण्डुता, रोंगटे खड़े होना और अग्निमान्द्य आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उन सूक्ष्म कृमियों के लिए यह क्वाथ अति हितकारक है। यह कषाय कृमियों को गिराता है तथा उनकी उत्पत्ति भी बन्द कर देता है। प्रारम्भ में जब तक कृमि निकलते रहें, तब तक ऊपर की सब वस्तुएं मिलाकर कषाय तैयार करें। कृमि निकलना बन्द होने पर विरेचक औषधि निसोत न डालें एवं जल में क्वाथ करके १०-१५ दिनों तक देते रहने से कृमि की उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

६. कृमिकण्टक चूर्ण (नलबंध)।

द्रव्य–किरमाणी अजवायन, कांटेदार करंज के सेके हुए बीज, कालीजीरी, कलूम्बा, कुटकी, हिंगुपत्री (डीकामाली), सैंधानमक, कालानमक, इन्द्रजौ, बायविडङ्ग, कचूर, काकड़ासिंगी, निम्बोली की गिरी, कालीमिर्च और अतीस कड़वा इन १५ औषधियों को समभाग लें।

विधि-इन सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। (आ. नि. म.)

विशेष-मूल ग्रन्थ में अतीस नहीं है, हमने बढ़ाया है।

मात्रा-२ से ५ रत्ती तक बालकों को । बड़े मनुष्य को ३ माशे तक, दिन में ३ बार जल के साथ देवें।

उपयोग-यह कृमिकण्टक चूर्ण उदरकृमि की उत्पत्ति को रोकता है। पचन संस्थान में रहे हुए गोल कृमि और सूक्ष्म कृमियों को निकाल देता है। और कृमिजन्य ज्वर, अपचन जनित ज्वर, मन्द जीर्ण ज्वर, उदर पीड़ा, परिणाम शूल, पित्तप्रकोप, अफारा, वमन, अतिसार, मलावरोध, अपचन और अग्निमांद्य को दूर करता है।

यदि उदरकृमि से पाण्डुता, शोथ और अति निर्बलता आ गई हो और मलावरोध रहता हो तो यह चूर्ण गोमूत्र के साथ देते रहना चाहिये।

बालकों के सूखा रोग में अपचन, मलावरोध, हाथ-पैर और मुख मण्डल पर शोथ आदि लक्षण हों, उदर बड़ा प्रतीत होता हो तो कृमिकण्टक चूर्ण और १-१ रत्ती फिटकरी का फूला मिलाकर देते रहने से थोड़े ही दिनों में बालक स्वस्थ हो जाता है। दो-दो मास के बच्चों के लिये भी यह चूर्ण निर्भय औषधि है। इसका उपयोग स्व. वैद्य त्रिलोकचन्द ताराचन्द ने अनेक वर्षों तक किया था। सामान्य औषधि होते हुए भी यह अतिलाभप्रद है।

सूचना-सूखा रोग में बालकों के यकृत और वृक्क अपना कार्य उचित रूप से नहीं कर सकते। अत: घृत-तैल, शक्कर और गुड़ नहीं देना चाहिये।

७. संजीवनीवटी।

द्रव्य-विडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, आमला, बहेड़ा, बच, गिलोय, शुद्ध भिलावाँ, वत्सनाभ ये १० औषधियाँ बराबर भाग लें।

विधि-सबका बारीक चूर्ण बनाकर गोमूत्र से ६ घन्टे घोटकर घूघंची (१ रत्ती) बराबर गोली बनावे।

मात्रा-ज्वर अजीर्ण गुल्मादि रोगों में १-१ गोली दिन में ३ बार, हैजे में २-२ गोली, सर्पदंश में ३ गोली और सन्निपात में ४-४ गोली २-२ घन्टे पर।

अनुपान-किञ्चित् निवाये जल से सन्निपात में और सर्पदंश में लौंग व तुलसी रस के साथ।

उपयोग-ज्वर, अजीर्ण, कृमि, वमन, उदरशूल, कफयुक्त कास, गुल्म, विसूचिका (हैजा), सर्पदंश और सन्निपात में उपयोगी है। यह वटी जैसा नाम है, वैसी ही गुणप्रद है। प्रत्येक प्रांत में इसका अत्यधिक प्रयोग सफलता सह होता रहता है।

सूचना-(१) अति गरम जल या अति गरम चाय के साथ संजीवनी का सेवन न करें।

(२) मलावरोध सह ज्वरावस्था में पहले उदर शोधन करके संजीवनी वटी देने पर तत्काल गुण दर्शाती है।

❑ ❑

(१०) पाण्डु-कामला

१. प्रवालमाक्षिक मिश्रण।

द्रव्य-प्रवालपिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म और अमृता सत्व तीनों १-१ तोला लें।

विधि-तीनों को मिला खरल में घोटकर शीशी में भर लें।

मात्रा-३ रत्ती प्रात: सायं शहद के साथ दें।

उपयोग-इसके सेवन से थोड़े ही दिन में पाण्डु, रक्त की न्यूनता, रक्त में श्वेताणुवृद्धि, निस्तेजता और दाह आदि का शमन होकर रक्तवृद्धि होती है।

आवश्यकता पर २-२ रत्ती तक तीनों औषधियां दे सकते हैं। इस मिश्रण में लोह भस्म आधे से एक रत्ती तक मिलाने से रक्ताणुओं की सत्वर वृद्धि होती है। यदि दाह न हो, तो अमृतासत्व के बदले ६४ प्रहरी पीपल २-२ रत्ती मिला देने से अग्नि प्रबल होती है और पाण्डु रोग दूर हो जाता है।

यदि हृदय की धड़कन, हृदयावरोध, हृदयशूल या हृदय में दाह आदि लक्षण भी प्रतीत होते हों तो अर्जुन छाल का क्वाथ अनुपान रूप से दिया जाता है।

यह अति सौम्य औषधि है। सुकुमार स्त्रियों और बच्चों को भी दी जाती है।

२. कालमेघ नवायस।

द्रव्य-नवायस चूर्ण (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड) २ भाग और कालमेघ पञ्चांग का चूर्ण १ भाग लें।

विधि-सबको खरल में मिला कालमेघ के स्वरस या क्वाथ की ७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(स्व. श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)

मात्रा-२ से ३ गोली, दिन में २ बार जल के साथ।

उपयोग-यह रसायन जीर्ण विषमज्वर, जीर्णज्वर, ज्वर के पश्चात् की निर्बलता, पाण्डुरोग और यकृद् वृद्धि में लाभदायक है।

३. पञ्चानन वटी (पाण्डु)।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गूगल और शुद्ध जमालगोटा इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें फिर भस्म और शेष औषधियाँ क्रमशः मिलाकर १ प्रहर तक १ तोले घृत के साथ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

(र.सा.सं.)

मात्रा-१ से २ गोली, प्रातः काल जल या पुनर्नवाष्टक कषाय के साथ।

सूचना-इस रस के सेवन काल में शीतल जल और अम्ल पदार्थों का त्याग कराना चाहिये। शोथ होने पर नमक का भी त्याग कराना चाहिये।

उपयोग-यह पञ्चानन वटी शोथसह पाण्डु रोग को दूर करती है। जब आहार-विहार या औषधि प्रयोग में भूल होने से या यकृद् विकृति से शोथ उत्पन्न होता है तब उस शोथसह पाण्डु को दूर करने के लिये इस रस की योजना होती है।

विवेचन-जब त्रिदोषज पाण्डु (Progressive Pernicious Anaemia) होता है, तब नेत्र के अन्तः पटल, त्वचा और श्लैष्मिक कला आदि में से बूंद-बूंद रूप से रक्तस्राव होता है, फिर त्वचा पर चारों ओर रक्त के धब्बे हो जाते हैं, पैरों से घुटनों की ओर शोथ बढ़ता है, मेद बढ़ जाता है, बल काक्षय होता है। हृत्स्पन्द वेग की वृद्धि, हृदय प्रसारण, बार-बार मूर्च्छा, रात्रि को ज्वर १०२-१०४ डिग्री तक रहना, रोगवृद्धि के साथ-साथ विचार-शक्ति का ह्रास होना आदि लक्षण प्रकट होते है। त्रिदोषज पाण्डु की उत्पत्ति रक्त में विषवृद्धि से होती है, इस पर विशेषतः मल्ल का प्रयोग किया जाता है, किन्तु प्रारम्भ में विष को बाहर निकालने और जलाने का प्रबल प्रयत्न किया जाये तो सत्वर लाभ पहुँचता है। यह कार्य इस रस से उत्तम रूप से होता है। अतिसार न हो और रक्तस्राव न होता हो ऐसे रोगियों पर पञ्चानन वटी का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ कुष्ठ रोगोक्त महातिक्त घृत का सेवन कराया जाये, तो विशेष लाभ पहुँचता है।

लसीका ग्रन्थि वृद्धि जन्य श्वेताणु वृद्धि (Lymphatic Leukaemia) रोग में मुखमण्डल निस्तेज, सफेद-सा बन जाना, लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ जाना, अपचन, प्लीहावृद्धि, नेत्र की पुतलियां बड़ी हो जाना आदि लक्षण होते हैं। रोग बढ़ने पर निद्रानाश सह शोथ उपस्थित होता है। यदि मुख, नासिका आदि स्थानों से रक्तस्राव न होने लगा हो तो इस पञ्चानन वटी के सेवन से लाभ पहुँचने लगता है। यह औषधि प्रातःकाल एक ही समय देनी चाहिये। दोपहर और रात्रि को लोह या मण्डूर प्रधान औषधि की योजना करनी चाहिये।

पञ्चानन वटी के मुख्य ३ कार्य हैं-(१) पचन संस्थान में अवस्थित उत्तान मल को बाहर निकालना, (२) रक्त आदि धातुओं में प्रविष्ट (लीन) विष को जलाना तथा (३) वातसंस्थान और यकृत्प्लीहा को बल देना। इनमें पहला कार्य जमालगोटा करता है। यह तीव्र विरेचन द्रव्यों में श्रेष्ठ है। शोथ और जलोदर सह पाण्डु रोग पर इसका अधिक प्रयोग होता है।

स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले द्रव्य-नया पुराना मल, आमविष, कफ, कृमि, कीटाणु, पूय, बाहर से प्रविष्ट विष और मृत घटक आदि जो पचन संस्थान या बृहदन्त्र में अड्डा जमाकर दृढ हो गये हों उनको बलात्कार से बाहर फेंकने का कार्य जमालगोटा कर देता है।

प्रथम कार्य की सिद्धि होने पर त्वचा के नीचे संगृहीत जल जो शोथ उत्पन्न कराता है, वह रक्त में आकर्षित हो जाता है। फिर ताम्र, कज्जली आदि की सहायता से धातुओं में प्रविष्ट विष को जलाने रूप द्वितीय कार्य कर देता है।

ताम्र के योग से यकृत्पित्त का स्राव अधिक होने से अन्त्र में रहे हुए सेन्द्रिय विष के हानिकर प्रभाव से बचने की क्रिया होने लगती है एवं यकृत्प्लीहा में प्रविष्ट विष जल जाता है तथा रक्ताभिसरण क्रिया बलपूर्वक होने लगती है।

पारद और गन्धक रक्त में प्रविष्ट होकर लीन विष को नष्ट करने में सहायता पहुँचाता है।

तृतीय कार्य की सिद्धि के लिये अभ्रक और गूगल को मिलाया है। अभ्रक रक्त की न्यूनता पूर्ण करता है, हृदय और वातवाहिनियों को सबल बनाता है, पाण्डुरोग में उत्पन्न घबराहट, श्वास और बेचैनी दूर करता है, उदर में बढ़ी हुई लसीका ग्रन्थियों और रसवहन विकृति को सुधारता है, मांस को दृढ़ और निरोगी बनाता है। इस हेतु से पाण्डु रोग सम्पूर्ण उपद्रवों सहित नष्ट हो जाता है।

गूगल वातवाहिनियों को सबल बनाता है, सेन्द्रिय विष और दुर्गन्ध को नष्ट करता है; मेद को कम करता है; हृदय को पुष्ट बनाता है। परिणाम में विष नष्ट होकर सत्वर स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

वक्तव्य—इस औषधि में जमालगोटा है। अतः अन्त्रप्रदाह (उदर पर दबाने से वेदना होना) या वृक्कों में क्षत होने से मूत्र में पूय जाता हो तो पंचानन वटी का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

४. लोहसिन्दूर।

द्रव्य—रससिन्दूर ४ तोले, लोहभस्म ८ तोले और शुद्ध गन्धक १२ तोले लेवें।

विधि—इन सबको खरल में मिलाकर आतशी शीशी में भरें। ऊपर आधी बोतल तक २४ तोले सेमल का क्वाथ भरें। फिर बालुकायन्त्र में रखकर मृदु अग्नि देवें। सेमल का क्वाथ लगभग समाप्त होने पर त्रिफला का गरम क्वाथ २४ तोले डालें। फिर गिलोय का गरम स्वरस २४ तोले डालें। द्रव सूख जाने और गन्धक लगभग जल जाने पर (तलस्थ रसायन बन जाने पर) अग्नि देना बन्द करें। अग्नि लगभग १ दिन देनी पड़ती है। फिर स्वांग शीतल होने पर निकाल त्रिकटु के क्वाथ और अदरक के रस में १२-१२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (र.यो.सा.)

वक्तव्य—बोतल में रस डाल अग्नि से सुखाने की अपेक्षा खरल में ही तीनों प्रकार के रसों को घोट, सुखा, शुष्क औषधि को आतशी शीशी में भरकर सिन्दूर बनाने पर विशेष गुणवाला बनता है।

मात्रा—१-१ गोली, दिन में दो बार च्यवन प्रशावलेह या रोगोचित अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—यह लोहसिंदूर शुष्क (धातुक्षयसह) पाण्डु का नाश करता है। विविध ज्वर, उदरकृमि, आमवात, मधुमेह, उपदंश, जीर्णज्वर अदि रोगों से आई हुई पाण्डुता, निर्बल माताओं को संतानोत्पत्ति, बालकों को स्तनपान, अति मैथुन, हस्तमैथुन, उपवास, मानसिक चिन्ता, अति शुक्रस्राव, पौष्टिक भोजन का अभाव, तमाखू आदि का अतिसेवन, तथा सीसा विष इत्यादि कारणों से पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है। इनमें से सब पर तो इसका प्रयोग नहीं हो सकेगा। जिनमें विष प्रकोप अवस्थित हो ऐसे राजयक्ष्मा, लसीकामेह (Albuminuria) मधुमेह, उपदंश और सीसा विष से उत्पन्न पाण्डु पर इसका उपयोग नहीं होता एवं जब तक तीक्ष्ण ज्वर हो तब भी इस औषध से पाण्डुता दूर नहीं हो सकती फिर भी कुछ शक्ति तो प्रदान अवश्य करता है। यदि मांस में अधिक क्षीणता आ गई है तो अभ्रक भस्म साथ में मिला देना चाहिये तथा च्यवनप्राशावलेह या आँवलों का मुरब्बा अनुपान रूप से देने से शुष्कता, पित्तप्रकोप, दाह, कोष्ठबद्धता आदि दूर होकर सत्वर लाभ मिल जाता है।

अधिक संतानोत्पत्ति या बालकों को स्तन्यपान के हेतु से शुष्कता आई हो तो प्रवाल पिष्टी और अमृतासत्व के साथ इस रस का सेवन कराना चाहिये।

अति मैथुन, हस्तमैथुन, बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य भङ्ग आदि कारणों से शुष्कता आई हो तो च्यवनप्राश, अमृतपाश अथवा शतावर्यादि चूर्ण अनुपात रूप में मिला देना चाहिये।

त्रिदोषज पाण्डु (Progressive Pernicious Anaemia) जिसमें रक्तस्राव होता रहता है तथा हृदय मेदोपक्रान्तियुक्त हो जाता है, उस पर इस रस से लाभ नहीं पहुँचता। लसीका रस या लसीका ग्रन्थियों से उत्पन्न पाण्डुरोग में भी इस रसायन का उपयोग नहीं होता एवं स्त्रियों के हलीमकमें भी रुग्णा शुष्क नहीं होती, मोटी ताजी प्रतीत होती है, उस पर इस औषध का प्रायः उपयोग नही होता।

विवेचन—इस रस में मुख्य औषधि रससिंदूर, लोहभस्म और गन्धक है। लोह भस्म रसासन, हृद्य, रक्त के रक्ताणुओं को बढ़ाने वाली, पित्तशामक और रुधिराभिसरण क्रियावर्धक है। रससिंदूर-रसायन, कीटाणुनाशक, हृद्य और उत्तेजक है। लोहभस्म का संयोग होने से रक्त में लाली बढ़ाने में सहायता पहुँचाता है। गंधक रक्तप्रसादक, कृमिघ्न, बल्य और पाचक है। सेमल की जड़, त्रिफला और गिलोय पित्तशामक और पोष्टिक है।

५. नारायण मण्डूर।

द्रव्य—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अपामार्ग की जड़, चव्य, पीपलामूल, भुनी हींग, भारंगी, गजपीपल, अजमोद, अजवायन, बच, हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दन्तीमूल, मजीठ, वज्रवल्ली (अस्थि संहारी), लहशुन, कालीमिर्च, पाठ, सरफोंका, पुनर्नवा, शुद्ध जमालगोटा, सैंधानमक, मूर्वा, कुटकी और इन्द्रायण इन २९ औषधियों का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला तथा मण्डूर भस्म या लोहभस्म २९ तोले लेवें।

विधि—सबको खरल में डाल घोटकर भांगरा, बिजौरा, हल्दी, अदरक, प्रसारणी, तुलसी, वनतुलसी, नागरमोथा, आंवले के रस या क्वाथ के साथ १-१ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (र. यो.सा.)

वक्तव्य–इस रसायन में लोहभस्म की अपेक्षा मण्डूरभस्म मिलाना अधिक हितावह माना जायेगा। मण्डूर का वियोजन और रूपान्तर लोहभस्म की अपेक्षा सरलता से होता है एवं मण्डूर उदरशोधन में सहायक भी होता है।

मात्रा–१ से २ गोली, प्रात: काल सफेद पुनर्नवा के स्वरस, मट्ठा या गुनगुने जल के साथ दें। शोथ और जलोदर के विष को पेशाबद्वारा बाहर निकालना हो, तब यवक्षार को भी पुनर्नवा रस में मिला देनी चाहिये। विरेचन कराके मल को निकालना हो तब अनुपान में गुनगुना जल देवें। दोष को पचन कराना हो और ज्वर न हो तब मट्ठे के साथ देना हितकारक है।

उपयोग–इस रस के सेवन से प्रबल पाण्डुरोग, विषप्रकोपज पाण्डु, शोथसह पाण्डु, कामला, शोफ रोग, अरुचि, अग्निमान्द्य, गुल्म, हृद्रोग, शूल, उदररोग, पार्श्वपीड़ा, विविध प्रकार के विषमज्वर, वमन, मलावरोध, क्षय, त्रिदोषज श्वास-कास आदि रोग दूर होते हैं। यह रस पाण्डुरोग के लिये अति लाभप्रद है।

विवेचन–पाण्डुरोग की संप्राप्ति के अनेक कारण है। विविध रोग, कीटाणु या विष से रक्त रचना में विकृति, आमाशय, हृदय और यकृत्प्लीहा की निर्बलता ये मुख्य कारण है। रक्तस्राव, मानसिक चिन्ता, फुफ्फुस विकार, गर्भाशय विकृति, विषप्रयोग आदि अन्य भी कुछ हेतु हैं। इसमें से विविध रोग कीटाणु और आमाशय आदि इन्द्रियों की निर्बलता या कार्य-विकृति होने पर यह मण्डूर अच्छा लाभ पहुँचाता है।

पाण्डुरोग में रक्त की न्यूनता, रक्ताणुओं की न्यूनता और केशिकाओं की विकृति इन तीनों में से किसी भी प्रकार की विकृति हो, उन पर यह रसव्यवहृत होता है। इस मण्डूर की योजना विविध गुणयुक्त द्रव्यों को मिलाकर की गई है।

पाण्डुरोग को दूर करने के लिये उदर में संगृहीत मल, आम, विष, कीटाणु आदि को कफ, मल, मूत्र प्रस्वेद द्वारा बाहर निकाल देना चाहिये। और पचनेन्द्रिय संस्थान की इन्द्रियों को कार्यक्षम बना देना चाहिये। जिससे पुन: रोगोत्पादक दोष की उत्पत्ति न हो। इसलिये उदर संशोधनार्थ नारायण मण्डूर में दन्तीमूल, जमालगोटा, कुटकी और इन्द्रायण की योजना की है। मुँह से कफद्वारा दोष को बाहर निकालने के लिये बच, बहेड़ा, भारङ्गी आदि तथा श्वासोच्छ्वास और प्रस्वेद द्वारा विष को बाहर निकालने के लिए हींग, तुलसी, अजवायन, लहशुन आदि मिलाये हैं। विष आम और कीटाणुओं के नाश का कार्य भी इन हींग, लहशुन, अजवायन, प्रसारणी, त्रिकूट आदि से सम्यक् प्रकार से होता है।

आमाशय आदि इन्द्रियों के लिए उपकारक, त्रिकटु, त्रिफला, पीपलामूल, लहशुन, हींग, अजवायन, चव्य, गजपीपल, अजमोद आदि मिलाये हैं। वृक्कों द्वारा विष निकालने के लिए पुनर्नवा, अपामार्ग आदि। यकृत-प्लीहा पर लाभ पहुँचाने के लिये अपामार्ग, सरफोंका और पाठा तथा जीवन-विनिमय क्रिया सुधारने के लिये अपामार्ग, आँवला, हरड़, भांगरा आदि का सम्मिश्रण कराया है। इन सब द्रव्यों की सहायता लेकर मण्डूरभस्म रक्त, रक्ताणु, रक्तवाहिनियाँ, रक्ताभिसरण-क्रिया और हृदयेन्द्रिय आदि पर लाभ पहुँचाकर पाण्डु, शोथ, उदररोग, श्वास, अग्निमांद्य, विबंध आदि को नष्ट करती है।

सूचना–जिनको दस्त पतले होते हों अर्थात् मल की प्रवृत्ति हो तो उस दशा में इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि इसमें जमालगोटा है। जमालगोटा क्षीण रोगी, क्षतक्षयी, वृक्करोगी और उदरप्रदाह के रोगी को निषिद्ध है।

६. पञ्चामृत मण्डूर।

द्रव्य–लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध पारद, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायविडंग, चित्रकमूल, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, पुष्करमूल, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, कचूर, धनियाँ और चव्य ये २५ औषधियाँ २-२ तोले, मण्डूर भस्म २५ तोले, गोमूत्र १०० तोले और पुनर्नवा के मूल का क्वाथ २०० तोले लेवें।

विधि–पारद-गन्धक की कज्जली करके भस्म मिला लेवें। पश्चात् गोमूत्र मिलाकर पाक करें। फिर पुनर्नवा का क्वाथ मिलाकर पाक करें। नीचे उतार काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। शीतल होने पर शहद ८ तोले मिलाकर चौड़े मुँह की बोतल या अमृतबान में भर लेवें।

(भै.र.)

मात्रा–२ रत्ती से १ माशे तक, प्रात: तालमखाने के क्वाथ के साथ दें।

उपयोग–पञ्चामृत मण्डूर शोथयुक्त जीर्ण संग्रहणी रोग, कामला, अग्निमांद्य, जीर्ण ज्वर, प्लीहावृद्धि, शोथ, गुल्म, उदररोग, यकृत्-वृद्धि, कास, श्वास, प्रतिश्याय इनको दूर करता है तथा कान्ति और पुष्टि की वृद्धि कराता है।

पञ्चामृत मण्डूर उत्तम शक्तिवर्द्धक है। इसका उपयोग जीर्णरोग में अधिक होता है। रोग जितना पुराना हो और रोगी की शक्ति कम हो, उतनी ही मात्रा कम देनी चाहिये। मात्रा अधिक हो जाने पर प्रतिफलित क्रिया (Reaction) होकर हानि पहुँचाती है।

विवेचन–आँतों में सूजन आ जाने पर अन्त्र की पचनक्रिया दूषित होती है। आहार रस और मल को आगे सरकाने की क्रिया यथोचित नहीं होती। आम, मल, विष, कृमि कीटाणु आदि बृहदन्त्र में संगृहीत होते रहते हैं फिर बड़ी कठिनाई से थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता है।

इस स्थिति में इन आम-मलादि में से विष का शोषण रक्त में होता रहता है। इसी हेतु से पाण्डु, कृशता, निस्तेजता, प्रतिश्याय, श्वास, कास, उदरवात, उदरशूल, उदरकृमि आदि रोगों की सम्प्राप्ति होती है। यह पञ्चामृत मण्डूर इन रोगों के मूलरूप अन्त्रशोथ को दूर करता है। जिससे वे रोग, कारणनाश के साथ छिन्नमूल होकर नष्ट हो जाते हैं।

अन्त्र में से जब आमविष अधिक मात्रा में रक्त के भीतर शोषित हो जाता है तब ज्वर आ जाता है। यह विषशोषण क्रिया दूर नहीं हुई या अपथ्य सेवन होने से संगृहीत विष का नाश नहीं हुआ तो ज्वर जीर्ण बन जाता है। फिर देह निस्तेज और कृश हो जाती है। यदि विषशोषण भी होता रहता है तो ज्वरविष धातुओं में लीन हो जाता है फिर सरलता से दूर नहीं होता। इस प्रकार के दृढ़ जीर्ण ज्वर उदरविकृतिसह, पञ्चामृत मण्डूर के सेवन से १ मास में दूर हो जाते हैं।

क्षुधा न लगती हो, उदर को दबाने पर दर्द होता हो, भोजन बिना पचन हुये मल बन जाता हो और देह अति कृश और निस्तेज हो गई हो, ऐसे संग्रहणी रोग में इस औषधि का उपयोग होता है। इस रोग में यदि ज्वर, कास, आदि लक्षण हो तो वे कुछ दिनों में दूर हो जाते हैं।

फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा और वृक्क स्थान को यह बल देता है और पचन-क्रिया सुधारता है। इस हेतु से यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और इनसे उत्पन्न पाण्डु, कामला और उदररोग की भी इसके सेवन से निवृत्ति होती है।

७. मण्डूर वटक।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायविडङ्ग, चव्य, चित्रकमूल, दारुहल्दी, दालचीनी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, पीपलामूल और देवदारु ये १५ औषधियाँ ८-८ तोले, मण्डूर भस्म २४० तोले और गोमूत्र १९२० तोले (२५ सेर) लें।

विधि–पहले मण्डूर को गोमूत्र में मिलाकर पाक करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (च.सं.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार प्रात: मटठे के साथ देवें।

उपयोग–मण्डूर वटक पाण्डु रोगी को जीवनदान देने वाला है। इसके अतिरिक्त कुष्ठ, कृमि, उदरोग, कण्ठरोग, अग्निमांद्य, अरुचि, अजीर्ण, **शोथ**, उरुस्तम्भ, कफविकार, अर्श, अतिसार, अफारा, ग्रहणी, कामला, प्रमेह और प्लीहावृद्धि इन रोगों को दूर करता है।

विशेष–जिन रोगियों को तक्र सेवन अनुकूल रहता है, उनको तक्र-कल्प कराना चाहिये अथवा मट्ठे-भात पर रखना चाहिये। इस तरह पथ्यपालन दृढ़तापूर्व हो, तो त्रिदोषज पाण्डु, विविध उपद्रवयुक्त पाण्डु, कुंभ-कामला, विषप्रकोप, अस्थिमज्जा विकृति, लसीका की **वृद्धि**, प्लीहावृद्धि आदि विकार सरलता से नष्ट हो जाते हैं।

८. क्षारादि मण्डूर।

द्रव्य–सैंधानमक, एलुवा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, और मण्डूर भस्म इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में २ बार गोमूत्र या जल के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डु और अन्य प्रकार के पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं।

यह मण्डूर अन्त्र शोधक है। अन्त्र में आम, मल, मिट्टी या अन्य विष आदि के संग्रह से उत्पन्न विकारों पर यह लाभदायक है। उदर जिनका बढ़ गया हो, दबाने पर कठोर भासता हो उन रोगियों को यह मण्डूर दिया जाता है।

पथ्य-दही, भात या मट्ठा और भात देना चाहिये। शोथ हो तो नमक नहीं देना चाहिये, ज्वर हो तो दूध भात पर रोगी को रखना चाहिये।

९. गोमूत्रादि क्षार।

द्रव्य–८ सेर गोमूत्र और १ सेर कालीजीरी लें।

विधि–लोहे की कड़ाही में दोनों मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। जब काली-जीरी और गोमूत्र जलकर भस्म हो जाये तब कड़ाही को नीचे उतार लें। शीतल होने पर राख को बोतल में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

विवेचन–आँतों में सूजन आ जाने पर अन्त्र की पचनक्रिया दूषित होती है। आहार रस और मल को आगे सरकाने की क्रिया यथोचित नहीं होती। आम, मल, विष, कृमि कीटाणु आदि बृहदन्त्र में संगृहीत होते रहते हैं फिर बड़ी कठिनाई से थोड़ा-थोड़ा मल त्याग होता है।

इस स्थिति में इन आम-मलादि में से विष का शोषण रक्त में होता रहता है। इसी हेतु से पाण्डु, कृशता, निस्तेजता, प्रतिश्याय, श्वास, कास, उदरवात, उदरशूल, उदरकृमि आदि रोगों की सम्प्राप्ति होती है। यह पञ्चामृत मण्डूर इन रोगों के मूलरूप अन्त्रशोथ को दूर करता है। जिससे वे रोग, कारणनाश के साथ छिन्नमूल होकर नष्ट हो जाते हैं।

अन्त्र में से जब आमविष अधिक मात्रा में रक्त के भीतर शोषित हो जाता है तब ज्वर आ जाता है। यह विषशोषण क्रिया दूर नहीं हुई या अपथ्य सेवन होने से संगृहीत विष का नाश नहीं हुआ तो ज्वर जीर्ण बन जाता है। फिर देह निस्तेज और कृश हो जाती है। यदि विषशोषण भी होता रहता है तो ज्वरविष धातुओं में लीन हो जाता है फिर सरलता से दूर नहीं होता। इस प्रकार के दृढ़ जीर्ण ज्वर उदरविकृतिसह, पञ्चामृत मण्डूर के सेवन से १ मास में दूर हो जाते हैं।

क्षुधा न लगती हो, उदर को दबाने पर दर्द होता हो, भोजन बिना पचन हुये मल बन जाता हो और देह अति कृश और निस्तेज हो गई हो, ऐसे संग्रहणी रोग में इस औषधि का उपयोग होता है। इस रोग में यदि ज्वर, कास, आदि लक्षण हो तो वे कुछ दिनों में दूर हो जाते हैं।

फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा और वृक्क स्थान को यह बल देता है और पचन-क्रिया सुधारता है। इस हेतु से यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि और इनसे उत्पन्न पाण्डु, कामला और उदररोग की भी इसके सेवन से निवृत्ति होती है।

७. मण्डूर वटक।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायविडङ्ग, चव्य, चित्रकमूल, दारुहल्दी, दालचीनी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, पीपलामूल और देवदारु ये १५ औषधियाँ ८-८ तोले, मण्डूर भस्म २४० तोले और गोमूत्र १९२० तोले (२५ सेर) लें।

विधि–पहले मण्डूर को गोमूत्र में मिलाकर पाक करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (च.सं.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार प्रातः मटठे के साथ देवें।

उपयोग–मण्डूर वटक पाण्डु रोगी को जीवनदान देने वाला है। इसके अतिरिक्त कुष्ठ, कृमि, उदरोग, कण्ठरोग, अग्निमांद्य, अरुचि, अजीर्ण, शोथ, उरुस्तम्भ, कफविकार, अर्श, अतिसार, अफारा, ग्रहणी, कामला, प्रमेह और प्लीहावृद्धि इन रोगों को दूर करता है।

विशेष–जिन रोगियों को तक्र सेवन अनुकूल रहता है, उनको तक्र-कल्प कराना चाहिये अथवा मट्ठे-भात पर रखना चाहिये। इस तरह पथ्यपालन दृढ़तापूर्व हो, तो त्रिदोषज पाण्डु, विविध उपद्रवयुक्त पाण्डु, कुंभ-कामला, विषप्रकोप, अस्थिमज्जा विकृति, लसीका की वृद्धि, प्लीहावृद्धि आदि विकार सरलता से नष्ट हो जाते हैं।

८. क्षारादि मण्डूर।

द्रव्य–सैंधानमक, एलुवा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, और मण्डूर भस्म इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में २ बार गोमूत्र या जल के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में मिट्टी खाने से उत्पन्न पाण्डु और अन्य प्रकार के पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं।

यह मण्डूर अन्त्र शोधक है। अन्त्र में आम, मल, मिट्टी या अन्य विष आदि के संग्रह से उत्पन्न विकारों पर यह लाभदायक है। उदर जिनका बढ़ गया हो, दबाने पर कठोर भासता हो उन रोगियों को यह मण्डूर दिया जाता है।

पथ्य-दही, भात या मट्ठा और भात देना चाहिये। शोथ हो तो नमक नहीं देना चाहिये, ज्वर हो तो दूध भात पर रोगी को रखना चाहिये।

९. गोमूत्रादि क्षार।

द्रव्य–८ सेर गोमूत्र और १ सेर कालीजीरी लें।

विधि–लोहे की कड़ाही में दोनों मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। जब काली-जीरी और गोमूत्र जलकर भस्म हो जाये तब कड़ाही को नीचे उतार लें। शीतल होने पर राख को बोतल में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–४ से ६ रत्ती, दिन में ३ बार शहद या गुनगुने जल के साथ।

उपयोग–गोमूत्रादि क्षार से अपचन, आभाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, उदरशूल, पाण्डु, कीटाणुजन्य घातक पाण्डु, श्वेताणुवृद्धिसह पाण्डु, मन्द ज्वर, प्लीहावृद्धि, आमवृद्धि से शरीर फूल जाना और मेदवृद्धि आदि रोग थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

यह क्षार आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों की पचन क्रिया को सुधारता है। आम विष, कीटाणु और उदर कृमि का नाश करता है एवं रक्तस्थ आमविष को जलाता है। पचन-संस्थान और रक्त को शुद्ध बनाता है। इसलिये पाण्डु, मन्द ज्वर, अजीर्ण, मलावरोध और उदरवात आदि रोग सहज ही में दूर हो जाते हैं।

रसाजीर्ण, जलोदर और शोथ रोग में भी सहायक औषध रूप से प्रयोजित होती है। सिरके में या गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से त्वचा के सफेद दाग (श्वित्र) मिटते हैं।

पचन–क्रिया दूषित होने पर आम विष की उत्पत्ति होती है फिर उसका शोषण रक्त में होता है। परिणाम में रक्त, मांस, मेद आदि धातुओं में विकृति होती है। शरीर फूल जाता है, व्याकुलता बनी रहती है, सहनशीलता कम होती है और वात प्रकोप के लक्षण प्रतीत होते हैं। देह के किसी भाग को दबाने पर वेदना होती है, इस स्थिति से गोमूत्रादि क्षार का सेवन लाभदायक होता है।

अन्त्र की पचन क्रिया और रक्तादि धातुएं निर्बल होने पर घृत, तैल आदि का पचन बहुत कम होता है इस हेतु से परिश्रम न करने वाले के उदर पर और अन्य भाग में चर्बी बढ़ने लगती है। फिर क्षुधा, तृषा का वेग सहन नहीं होता और प्रस्वेद में दुर्गन्ध आती है। इस स्थिति में पचन-क्रिया को व्यवस्थित करने और मेद को जलाने के लिए गोमूत्रादि क्षार और मेदोहर गुग्गुल दोनों का सेवन कराया जाता है।

१०. विशालादि क्षार।

द्रव्य–सज्जीखार, लोटिया सज्जी, जवाखार, काला नमक, काच नमक, सांभर नमक, सैंधा नमक, सोहागा, कलमी शोरा और नौसादर ये १० औषधियां २-२ तोले और अजवायन २० तोले लेवें।

विधि–सबको मिलाकर १ दिन तक इन्द्रायण के रस में खरल करें। फिर इसको इन्द्रायण के फलों में भरकर डोरे से बांधे। सब फलों को हांडी में बन्दकर गजपुट में फूंके। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल देवें।

उपयोग–विशालादि क्षार-अपचन, आमप्रकोप, उदरशूल, मलावरोध, उबाक, वमन, उदरकृमि, अतिसार, प्लीहावृद्धि, मन्द ज्वर आदि लक्षणों सह पाण्डु रोग को दूर करता है।

यह क्षार अन्त्रगत अम्लता, आमप्रकोप और रक्तस्थ आम विष को जलाता है। अतः इन कारणों से उत्पन्न रोग दूर हो जाते हैं।

११. विशालादि चूर्ण।

द्रव्य–इन्द्रायण फल, कुटकी, नागर मोथा, कड़वा कूठ, देवदारु और इन्द्रजौ ये ६ औषधियाँ १-१ तोला, मूर्वा २ तोला और कड़वा अतीस ६ माशे लें।

विधि–सबको मिला कूट कपड़छन चूर्ण कर लेवें।

मात्रा–३ से ६ माशे चूर्ण प्रातः काल गुनगुने जल से देकर ऊपर ६ माशे शहद चटा देवें अथवा ६ माशे से १ तोला चूर्ण गरम जल में रात्रि को काच के पात्र में भिगो देवें। सुबह छानकर पिला देवें।

उपयोग–यह चूर्ण कोष्ठ-शुद्धि करने वाला और कीटाणुनाशक है। पाण्डुरोग, ज्वर, दाह, कास, श्वास, अरुचि, गुल्म और रक्तपित्त आदि रोगों का नाश करता है।

पाण्डु रोगी को जब मन्द ज्वर, मलावरोध, उदरकृमि, दाह आदि विकार सताते हों, तब प्रातः काल इस चूर्ण का सेवन कराते रहने से और दिन में दो बार भोजन कर लेने पर लोह या मण्डूर प्रधान औषध देते रहने से थोड़े ही दिनों में ज्वर आदि लक्षणों सह पाण्डुरोग दूर हो जाता है।

इस चूर्ण से रोगी को २-३ दस्त लगते हैं। इस हेतु से भोजन में खिचड़ी, चावल आदि देने चाहिये। चने, मटर, सेम आदि नहीं एवं गेहूँ, जौ आदि कम देने चाहिये। इस चूर्ण की मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये, अन्यथा विरेचन अधिक होता है, जिससे आँते कमजोर बनती है, और मरोड़े होकर दस्त लगते हैं, फिर अरुचि और मन्दाग्नि बढ़ जाती है एवं निर्बलता अधिक आ जाती है।

सूचना–इस चूर्ण में प्रधान औषधि इन्द्रायण फल है। यह प्रबल विरेचक है। शोधक होने से मात्रा अधिक देने पर यकृत् और अन्त्र को हानि करता है। अत्यधिक मात्रा हो जाने पर विषक्रिया करता है। आमाशय और अन्त्र में प्रदाह होता है तथा रक्त और श्लेष्ममिश्रित

मल का विरेचन होने लगता है एवं अधिक मात्रा से वृक्क और मूत्राशय में भी प्रदाह कर देता है। अतः इस चूर्ण का सेवन योग्य मात्रा में करना चाहिये। सगर्भा स्त्रियों को तो यह चूर्ण नहीं देना चाहिये।

१२. हरीतकी रसायन।

विधि–गर्मी के दिनों में उत्तम रसदार काबुली हरड़ों को रात्रि में गोमूत्र में डालें, दिन में धूप में सुखावें। सूख जाने पर धूप में से उठा लेवें। इस तरह २१ दिन तक भिगोकर सुखावें। *(वृ.नि.र.)*

मात्रा–१-१ हरड़ रोज सुबह सेवन करें।

उपयोग–यह हरीतकी रसायन-पाण्डु, अग्निमान्द्य, आमवृद्धि, पुराना अजीर्ण रोग, ग्रहणी, जीर्णज्वर, उदररोग, प्लीहावृद्धि, उदरकृमि, मलावरोध, शोष, आदि दूर करता है। ४-६ माशे मात्रा में दीर्घकाल तक शान्तिपूर्वक सेवन करने पर शरीर निरोग बन जाता है। अपचन और मलावरोध पर एक दिन या २-४ दिन के लिये सुबह-शाम, दोनों समय और अधिक मात्रा में भी दी जाती है। पुराने मलावरोध के रोगी के लिये यह प्रयोग अति हितकारक, सरल और निर्भय है। जिनका शरीर व्याधि-मन्दिर बन गया हो, शीतल या उष्ण, उत्तेजक या शामक अथवा कोई भी औषध सहन न होती हो, आहार-विहार के आनन्द से जो वंचित हो गये हों और दुःख से जीवन व्यतीत करते हों, उनके लिये हरीतकी रसायन का कल्प अति गुण-कारक है। श्रद्धासह एक वर्ष सेवन करने पर शरीर स्वस्थ, सबल और तेजस्वी बन जाता है।

सूचना–चेतकी जाति की हरड़ इसमें विशेष उपयोगी है। किन्तु वह दुर्लभ होने से उसके अभाव में बाजार में मिलने वाली काबुली हरड़ कम से कम ६ माशे और १ तोले के बीच में वजन वाली हो और जो पानी में डालने से डूब जाये अर्थात् तैरे नहीं, उसको काम में लेना चाहिये। इसकी सामान्य मात्रा गुठली रहित छाल की ३ से ६ माशे तक। अति क्षीण, सगर्भा, अतिवृद्धि और प्रसूता को इसका सेवन निषिद्ध है। उदररोगी, बद्ध कोष्ठी और स्थूल पुरुष को वह अति उपयोगी है।

१३. लोहासव।

द्रव्य–लोह भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अजवायन, बायविडङ्ग, नागरमोथा, चित्रकमूल की छाल ये ११ औषधियाँ १६-१६ तोले तथा धाय के फूल ८० तोले लें।

विधि–त्रिफला को छोड़ शेष सबका जौकूट चूर्ण करें। लोहभस्म को हरड़ के चूर्ण के साथ खरलकर थोड़ा जल मिलाकर ३ दिन रहने देवें। फिर उसके साथ आँवले और बहेड़े का चूर्ण खरलकर जल मिलाकर ४ दिन रहने देवें। पश्चात् लोहमिश्रित त्रिफला तथा जौकूट औषधियों को मिश्रित कर २०४८ तोले जल, २५६ तोले शहद और ८०० तोले गुड़ में अच्छी तरह मिला अमृतबान में भर मुखमुद्राकर १ मास रहने देवें। फिर देख लें। आसव परिपक्व होने पर छानकर बोतलों में भर लें। ***(शा. सं.)***

कतिपय फार्मेसी वाले लोहे का बुरादा लेते हैं, कोई मण्डूर मिलाते हैं। एवं कितने ही कासीस (Ferri Sulph) मिलाते हैं। बुरादा और मण्डूर आसव में बिलकुल नहीं मिलता। कासीस पूर्णांश में मिल जाती है। फिर भी लोह भस्म मिलाना विशेष श्रेयस्कर माना जायेगा। लोह भस्म मिलाने पर अल्कोहलोत्पत्ति अधिक होती है और भस्म का मिश्रण भी हो जाता है।

मात्रा–१। से २। तोला, दिन में दो बार, जल मिलाकर भोजन के बाद देवें।

उपयोग–वह आसव अति अग्निप्रदीपक है। पाण्डु, कामला, शोथ, गुल्म, उदररोग, अर्श, प्लीहावृद्धि, यकृत्वृद्धि, जीर्णज्वर, कास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ग्रहणी और हृदयरोग व निर्बलता का नाश करता है।

विवेचन–पाण्डु कामला जो कि प्रायः यकृत् की निर्बलता से ही उत्पन्न होते हैं, के लिये अपचन और अतिसार के सहित रोगी को लोहासव तथा कोष्ठबद्धता वाले को कुमार्यायव देना ठीक रहता है।

लोहासव में अग्निप्रदीप्त करने के लिये त्रिकटु, अजवायन, चित्रकमूल और नागरमोथा मिलाया है। उदरशुद्धि और कृमिहर गुण की उत्पत्ति निमित्त त्रिफला, बायविडङ्ग, नागरमोथा मिलाया है। इन सबके साथ लोहभस्म का संयोग होने से सबके गुणों में अति वृद्धि हो जाती है। इस प्रयोग रचना पर लक्ष्य देने से विदित होता है कि जिस पाण्डुरोग में अग्निमांद्य लक्षण प्रबल हो, उस पर वह आसव लाभ पहुँचाता है।

विषमज्वर, आमवात आदि संक्रामक ज्वर, मानसिक चिन्ता और उदर कृमि आदि कारणों से पाण्डुता आ जाती है। इस पाण्डुरोग में विशेषतः रक्त रचना विकृति हो जाती है। जब रक्त में प्राण वायु मिश्रण विधान (Oxidation) विकृत हो जाता है, तब रक्त अशुद्ध बन जाता है, रक्ताणुओं का ह्रास हो जाता है। धमनियों की दीवार मृदु हो जाती है और रक्ताभिसरण क्रिया बलपूर्वक नहीं हो सकती। फिर कोशिकाओं में यथोचित पूर्ण रक्त नहीं पहुँच सकता। जिससे देह अति शिथिल और निस्तेज हो जाती है। साथ-साथ देह को सम्यक् पोषण न मिलने से इन्द्रियां स्वकार्यक्षम नहीं रह सकती। इस हेतु से निम्न प्रदेश में शोथ आने लगता है। मांस में क्षीणता आने पर हृत्कोष

शिथिल हो जाता है। मस्तिष्क विकृति होने पर रोगी चिड़चिड़ा हो जाता है या निरुत्साही और उदासीन बन जाता है। फिर नेत्र आदि की श्लैष्मिक कला में रक्तहीनता, शिरदर्द, तन्द्रा, चक्कर आना, हाथ पैरों पर शोथ, हाथ पैरों में शीतलता, निद्रावृद्धि आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे लक्षणयुक्त पाण्डु रोग पर यह आसव सत्वर लाभ पहुँचाता है। यह पाचन क्रिया बढ़ाता है तथा रक्ताणुओं की वृद्धि कर रक्ताभिसरण क्रिया को सबल बनाकर स्वास्थ्य की प्राप्ति करा देता है।

अनेक बार लंघन आदि कारणों से रक्तरञ्जक द्रव्य (Haemoglobin) की कमी हो जाती है। इस वर्ण द्रव्य के हेतु से रक्त में लाली भासती है। रक्त-रञ्जक कम हो जाने पर देह निस्तेज भासती है। इस रक्तरञ्जक की न्यूनता को भी यह लोहासव दूर करता है।

कभी-कभी युवती स्त्रियों को एक प्रकार का हलीमक रोग हो जाता है। उसमें त्वचा हरी-पीली हो जाती है। रक्त में रक्ताणुओं की संख्या आधी भी नहीं रहती एवं रक्तरज्जक (रञ्जक पित्त) का भी ह्रास हो जाता है। देखने में रोगिणी पुष्ट भासती है। किन्तु हृदय में घबराहट, मन्द ज्वर (रक्ताणुओं की न्यूनता से एक प्रकार का ज्वर होने लगता है), अग्निमान्द्य, चक्कर आना, मलावरोध थोड़े परिश्रम से श्वास भर जाना. श्वेत प्रदर, मासिक धर्म कष्ट से और असमय पर आना, तथा बलक्षय आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर लोहासव का सेवन अमृत के समान उपकारक है। साथ-साथ रुग्णा को शुद्ध वायु का सेवन तथा अग्नि बल के अनुसार घृत और पौष्टिक आहार की योजना कर देनी चाहिये।

अनेक बार उदरकृमि की उत्पत्ति हो जाने से पाण्डुरोग की प्राप्ति होती है। उदरकृमि होने पर कुछ अंश में ज्वर बना रहना, उबाक, वमन, उदर-पीड़ा, आध्मान, क्षुधानाश, मुखमण्डल पर निस्तेजता, हृदय में कम्प होना, चक्कर आना, श्वासकृच्छता, आम और रक्त मिश्रित दस्त तथा पैर, नाभि और मूत्रेन्द्रिय पर सूजन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर पहले कृमिनाशक औषधि का सेवन कराना चाहिये। फिर लोहासव देने से देह सत्वर तेजस्वी और बलवान बन जाती है। तथा रक्त की न्यूनता और अग्निमान्द्य, दोनों दूर हो जाता हैं।

पाण्डुरोग में उत्पन्न लक्षण रूप शोथ, पाण्डुरोग में इन्द्रियां अपना कार्य करने के लिये असमर्थ हो जाने से और पचन विकृति हो जाने से उत्पन्न गुल्म, अर्श और उदर में आध्मान, अपचन, अपचन के पश्चात् होने वाला मलावरोध या बार-बार दस्त होना, उदरशूल, प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, गौण कुष्ठ (त्वचाविकार), अरुचि, ग्रहणी, हृदयविकृति आदि हो जाने पर उन सब को यह लोहासव दूर करता है।

१४. योगराज रस।

द्रव्य–त्रिफला, त्रिकटु, चित्रकमूल और बायविडंग, ये औषधियां ३-३ तोले, शुद्ध शिलाजीत, रौप्यमाक्षिक भस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म और लोहभस्म ये ४ औषधियाँ ५-५ तोले, मिश्री ८ तोले और शहद २४ तोले लेवें।

विधि–पहले काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें फिर भस्म मिलावें। मिश्री को शिलाजीत के साथ खरल करें। उसमें चूर्ण भस्म का मिश्रण मिलावें। पश्चात् शहद मिला लोहे के पात्र में भरकर १ सप्ताह धान्यराशि में दबा देवें। फिर निकाल कर प्रयोग में लावें। (**च.सं.**)

मात्रा–४ से ८ रत्ती तक, दिन में २ बार, सुबह व रात्रि को देवें।

अनुपान–इस योगराज रस को विकार हर और मूत्र संस्थान की क्रिया में बाधा न पहुँचाने वाले अनुपान के साथ देना चाहिये। पाण्डु में दुग्ध, कामला में मूली का रस तथा गोमूत्र, नूतन बालग्रह और धनुर्वात में एरण्डतैल, रक्तदबाववृद्धि में लहसुन का रस तथा नूतन अर्श में मट्ठा, अपस्मार और शोषरोग में दूध आदि।

उपयोग–योगराज रस हृदय और पचन संस्थान की निर्बलता से उत्पन्न सब रोगों का नाश करने में उत्तम औषधि है। शीतज्वर के पश्चात् उत्पन्न पाण्डु, मृद्भक्षणजन्य पाण्डु, उदरकृमिजन्य पाण्डु (Tropical Chlorosis) सगर्भा स्त्रियों को होने वाला पाण्डु, रक्तस्राव और अधिक रज-स्राव से उत्पन्न पाण्डु और विषप्रकोपज पाण्डु आदि सब प्रकार के पाण्डु, सर्व प्रकार के कामला और हलीमक (Chlorosis) आदि रोगों को नाना प्रकार के उपद्रवों सह यह रस नष्ट करता है।

चिरकालिक अजीर्णरोग या गर्भाशय विकृति और उदर रोगों के सेन्द्रिय विष से उत्पन्न धनुर्वात, अपस्मार, वातनाडी प्रदाह के पश्चात् होने वाले विविध वातप्रकोप, जीर्ण विषविकार, जीर्णकास, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, श्वास, अरुचि, अजीर्ण विषविकार, जीर्णकास, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, श्वास, अरुचि, अजीर्णजन्य कफप्रमेह, कुष्ठ और अर्शरोग में शान्तिपूर्वक कुछ समय तक योगराज रस का सेवन कराने पर वे नष्ट हो जाते हैं। मूल ग्रन्थकार ने भी 'विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च' इस वचन से अपस्मार को दूर करने में इसे महौषधि मानी है।

जिस तरह ताप्यादि लोह विविध रोगों पर लाभ पहुँचाता है, उसी तरह यह योगराज रस भी अति दिव्य औषधि है। किसी रोग विष से वातनाड़ियाँ अति पीड़ित होती है और वात धातु दूषित होती है। फिरश्लेष्म प्रकोप होकर जब रक्त में श्वेत जीवाणु संख्या बढ़ जाती है। तब श्वेत जीवाणुवृद्धिमय पाण्डु (Leukaemias) रोगों की संप्राप्ति होती है, उस पर और त्रिदोषज पाण्डु (Pernicious Anaemia) रोग पर अनेक सफल औषधियाँ भी व्यर्थ हो जाती हैं। ऐसे प्रबल मारक रोग पर भी इस योगराज रस का पथ्य पालनसह सेवन करने पर लाभ हो जाता है।

यदि पाण्डुरोग उपद्रव रूप से उत्पन्न हुआ हो, तो साथ में मूत्ररोग को दूर करने वाली चिकित्सा भी करनी चाहिये। जिससे सत्वर आरोग्य प्राप्ति हो सके।

१५. कामलाहर रस।

द्रव्य–शुद्ध समगुण गंधक वाले पारे की कज्जली, नौसादर पुष्प, यवक्षार और सोडाबाईकार्ब (सज्जीक्षार) ८-८ तोले तथा त्रिफला का कपड़छन चूर्ण १६ तोले।

विधि–सबको मिलाकर खरलकर लेवें। (स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–३ से ४ माशे तक, दिन में ३ बार, मक्खन रहित ताजे मट्ठे के साथ दें।

उपयोग–इस कामलाहर रस का सेवन ४ दिन तक कराने से नया कामला रोग दूर हो जाता है। भोजन में मात्र मट्ठा और भात देना चाहिये। फलों में ईख, संतरा, मौसम्बी, अनार, अंगूर आदि दे सकते हैं।

जिन कामला रोगियों के नेत्र, नख, मूत्र ये अत्यन्त पीतवर्ण के हो गये थे, आंतों में सूजन, उदर में भारीपन, बेचैनी, घबराहट आदि उपद्रव थे, अनेक औषधियां भी असफल हो गई थीं, ऐसे हताश कामला रोगियों को इससे जीवन दान मिला है। यह कामला पर शतशोऽनुभूत औषधि है।

सूचना–अधिक कब्ज हो तो कुटकी क्वाथ या पञ्चसकार चूर्ण या मेगसल्फ देकर उदर शुद्धि करा लेना चाहिये। मूत्रावरोध या मूत्रदाह हो तो कच्चे नारियल का जल पिलाना चाहिये।

❑ ❑

(११) रक्तपित्त

१. रक्तपित्तकुलकण्डन रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल पिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शतपुटी नाग भस्म और वंगभस्म समभाग लें।

विधि–पहले पारद, गन्धक की कज्जली कर, भस्म मिला, सफेद चन्दन, कमल और मालती के फूल, अडूसे के पत्ते, धनियां, गजपीपल, शतावर, सेमल का कन्द, वट की जटा और गिलोय इनके यथा संभव स्वरस अथवा क्वाथों की ३-३ भावनायें देकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। ***(रसयोगसागर)***

मात्रा–१ से २ गोली, अडूसे के रस और शहद के साथ देवें।

उपयोग–दारुण रक्तपित्त, मधुमेह, प्रमेह, प्रदर, रक्तस्राव, पित्तजन्य व्याकुलता, दाह आदि में यह रस लाभ दर्शाता है। रक्तपित्त के लिये यह औषधि रामबाण है। जैसा कि ग्रन्थकार ने लिखा है। "नाऽस्त्यनेन सममत्र भूतले, भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम्" अत: एव यह रक्तपित्त-रोगियों के लिये प्राणप्रद है।

२. रक्तपित्तान्तक रस।

द्रव्य–अभ्रक [illegible] भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–पहले पारद, गन्धक की कज्जली करके हरताल मिलावें। फिर भस्म मिला मुलहठी के क्वाथ और गिलोय के रस के साथ ३-३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ बार शहद, मिश्री के साथ देवें।

उपयोग–रक्तपित्तान्तक रस दारुण रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षतक्षय, तृषा, शोथ और अरुचि को दूर करता है। रक्तपित्त के साथ ज्वर हो तो वह भी दूर हो जाता है।

त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura) होने पर प्राय: ज्वर भी १००° तक बढ़ जाता है, कभी-कभी शिरदर्द होता है। संधि स्थानों में वेदना या अतिसार हो जाता है। कण्ठ, हाथ, पैर और कभी-कभी मुखमण्डल पर धब्बे हो जाते हैं और श्लैष्मिक कला से भी रक्तस्राव होने लगता है। इस रोग पर रक्तपित्तान्तक रस का सेवन अतिहितावह है। रोगी दूध, मोसम्बी, संतरे, मीठे अनार आदि पर रह जाये तो जल्दी लाभ पहुँचाता है। इस त्रिदोषज रक्तपित्त के रोगी को पूर्ण आराम कराना चाहिये और सिगरेट, गरम-गरम चाय, शराब आदि का व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

त्रिदोषज रक्तपित्त के अतिरिक्त उर:क्षत में भी रक्तपित्तान्तक रस अच्छा कार्य करता है। अनुपान रूप से वासा स्वरस और अजा दुग्ध देना चाहिये।

वर्तमान में विदेशी औषधियाँ, अन्त:क्षेपण से औषध ग्रहण, निरंकुश बर्ताव आदि कारणों से रक्तविकार और रक्तपित्त प्रकोप हो जाता है। इन रोगियों को पथ्य पालन सह रक्तपित्तान्तक रस का सेवन कराने पर कुछ दिनों में देह स्वस्थ और सुदृढ़ बन जाता है।

३. अर्केश्वर रस।

द्रव्य–ताम्र भस्म, रससिंदूर, वंग भस्म, अभ्रक भस्म और सुवर्ण-माक्षिक भस्म इन ५ औषधियों को समभाग मिला लें।

विधि–गिलोय के स्वरस की २१ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में २ बार वासा स्वरस और मधु अथवा अडूसा के पान और क्षीर विदारी के चूर्ण और शहद के साथ देवें।

उपयोग–इस अर्केश्वर रस का सेवन लघु, पथ्य, पौष्टिक भोजन के साथ करने से थोड़े ही दिनों में दारुण रक्तपित्त को दूर करता है।

विवेचन–श्लेष्म-रक्तज रक्तपित्त, शीताद (Scurvy) रोग आवश्यक पोषण न मिलने पर होता है। इस प्रकार में मसूडे शिथिल हो जाते हैं और उनमें से रक्तस्राव होता है, मुँह में दुर्गन्ध निकलती है, शनैः शनैः दांत गलते जाते हैं, नेत्र, नाक और मुँह की श्लैष्मिक कला से रक्तस्राव होता रहता है। यदि रुधिर में लालरंग (रक्तरंजन) कम हो जाये तो पाण्डु हो जाता है और हृदय में धड़कन होने लगती है। किसी-किसी में मूत्र के साथ रक्त या लसीका (एलब्युमिन) जाता है, अतिसार भी हो जाता है। इस रोग पर चन्द्रकला रस और अर्केश्वर रस दोनों हितावह है। दोनों ताम्रप्रधान होने से यकृत को बल देते हैं और रुधिर वाहिनियों पर प्रसादक और शामक गुण दर्शाते हैं। शारीरिक कृशता, पाण्डुता, अग्निमांद्य और शुक्र की निर्बलता अधिक हो, दाह कम हो या ना होता हो और ज्वर न रहता हो तो अर्केश्वर रस, चन्द्रकला की अपेक्षा अधिकतर लाभ पहुँचाता है। कफप्रकोप और रक्तवमन हो, उरःक्षत हो, नासिका से बार-बार रक्तस्राव होता हो तो वासा स्वरस और शहद अनुपान रूप से अधिक अनुकूल रहता है। प्रकृति भेद से या वातपित्त-वृद्धि के हेतु से या मूत्र के साथ श्लेष्म, लसीका या रक्त जाने से जिनको अडूसा-पान और विदारीकन्द का चूर्ण अनुकूल रहे तो उनको इनकी योजना करनी चाहिये। जो रोगी अतिसार से भी पीड़ित रहता हो, उसे दाड़िमावलेह या खट्टे मीठे अनार के रस के साथ देने से विशेष लाभ पहुँचता है।

४. रसामृत रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध शिलाजीत, गिलोय, श्वेत चन्दन, मुनक्का, महुए के फूल, धनियां, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम के पान और छिली हुई मुलहठी इन १२ औषधियों को १-१ तोला लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें, फिर भस्म और कपड़छन चूर्ण मिलावें। पश्चात् शिलाजीत को जल में घोलकर मिला देवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से १॥ माशे तक समान शक्कर मिला, फिर शहद मिलाकर दिन में दो बार सेवन करें। प्रातःकाल बकरी का धारोष्ण दूध पीवें, रात्रि को गरम करके शीतल किया हुआ दूध पीवें।

उपयोग–रसामृत रस पित्तप्रकोप, अम्लपित्त, रक्तपित्त और त्रिदोषज ज्वर को दूर करता है।

मोतीझरे का उपचार सदोष होने या पथ्य का पालन न होने पर वह मस्तिष्क को उष्णता पहुँचाता है और अनेकों को अम्लपित्त की प्राप्ति करा देता है। उनको रसामृत का सेवन कुछ दिन तक कराने पर ज्वर विष सह रक्त पित्त और अम्लपित्त के लक्षण दूर हो जाते हैं।

अपथ्य–रक्तपित्त और अम्लपित्त के रोगी को चाहिये कि दही, मट्ठा, हींग, लहशुन, लालमिर्च, तेज नमक, शराब, धूम्रपान और स्त्री समागम का त्याग करें। धूप और अग्नि का सेवन भी नहीं करना चाहिये।

अति धूप में घूमना, गरम मसाले आदि का अतिसेवन, दीर्घकाल स्थायी ज्वर आदि रोगजनित उष्णता और विषप्रकोप आदि कारणों से रक्तपित्त के लक्षण उपस्थित होने पर रसामृत रस आशीर्वाद के समान कार्य करता है।

५. शतमूल्यादि लोह।

द्रव्य–शतावर, शक्कर, धनिया, नागकेशर, श्वेतचन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडङ्ग, नागरमोथा, चित्रकमूल और सफेद तिल ये १५ औषधियां १-१ तोला और लोहभस्म १५ तोले लें।

विधि–पहले काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें फिर लोहभस्म मिलाकर खरल करें। *(भै.र.)*

मात्रा–३-३ रत्ती, दिन में ३ बार देवें।

अनुपान–बकरी का दूध, शहद, मक्खन, मिश्री, वासास्वरस, पेठे का रस, गूलर के मूल का जल और धमासे का क्वाथ आदि व्यवहृत होते हैं। इनमें वासास्वरस और शहद के साथ देकर ऊपर बकरी का दूध पिलाना विशेष हितकर माना जाता है। दाह और तृषा अधिक हो तो शतमूल्यादि लोह के साथ मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, तृणकान्त मणि पिष्टी, वंशलोचन और गिलोय सत्व भी मिला देना हितकारक है और अनुपान रूप से पेठे का रस देवें।

उपयोग–यह शतमूल्यादि लोह रक्तपित्त-अधिकार में कहा है। तृषा, दाह, वमन आदि विकारों सह रक्तपित्त को शान्त करता है। ऊर्ध्वांग रक्तपित्त में इसका प्रयोग किया जाता है।

सूचना–इस रसायन का सेवन करने पर पित्तवर्धक आहार-विहार, मिर्च, अधिक नमक, क्षार, हींग, गरम चाय, तेज खटाई, सिरका, राई, धूम्रपान, अग्नि और सूर्य के ताप का सेवन, शराब आदि छुड़ा देने चाहिये।

६. रक्तरोधक वटी।

द्रव्य–प्रवाल पिष्टी २ तोले, रसोंत, गिलोय सत्व, सुवर्णमाक्षिक भस्म, बकायन के ताजे पान और नीम के कोमल पान १-१ तोला और कपूर ३ माशे लें।

विधि–सबको मिला घी कुंवार के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना सोनागेरु के चूर्ण में डालते जायें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २-३ बार जल के साथ देवें। आवश्यकता हो, तो दोपहर को भी दे सकते हैं।

उपयोग–रक्तपित्त, रक्तप्रदर, अर्श आदि रोगों में रक्तप्रवाह को रोकने के लिये यह वटी निर्भयतापूर्वक दी जाती है।

७. वासाकूष्माण्ड खण्ड।

द्रव्य–उत्तम पके हुए सफेद पेठे को छील, बीज निकाल, घीया-कस से कस कर २०० तोले रस लेवें। गोघृत ६४ तोले, अडूसे की जड़ ६४ तोले, शक्कर ४० तोले, नागरमोथा, आंवला, वंशलोचन, भारंगी, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने ये ७ औषधियाँ १-१ तोला, एलवालुक (अभाव में खस), सोंठ, धनियां, कालीमिर्च ये ४ औषधियाँ ४-४ तोले, पीपल १६ तोले और शहद ३२ तोले लेवें।

विधि–पेठे को निचोड़कर रस अलग रखें। फिर धूप में थोड़ा सुखा घी में मन्दाग्नि पर भून लेवें। अडूसे की जड़ को १६ गुने जल में मिला, चतुर्थांश क्वाथ करें और काष्ठादि औषधियों को पीसकर बारीक चूर्ण करें। फिर क्वाथ को छान पेठे का रस, शक्कर और भूना पेठा मिला अवलेह समान बना लेवें। तैयार होने पर नीचे उतार काष्ठादि औषधियों का चूर्ण मिलावें और शीतल होने पर शहद मिला लेवें।

मात्रा–१ से २ तोले तक, दिन में २ बार बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

उपयोग–इससे कास, श्वास, क्षय, हिक्का, हलीमक; हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं।

(१२) कास

१. अमृतार्णव रस (वातज कास)।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सोहागे का फूला, रास्ना, बायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, गिलोय, पद्माख और शुद्ध बच्छनाभ, इन १६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर खरल करें; फिर शहद मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ या ३ बार, दूध या जल के साथ देवें। शुष्ककास का त्रास अधिक हो, तो सितोपलादि चूर्ण या कपूर १/२ रत्ती भी मिलाते रहें।

उपयोग–अमृतार्णव रस वातिक कास को दूर करने में अति हितावह है। यदि मंद-मंद ज्वर रहता हो, तो वह भी इस रस के सेवन से दूर हो जाता है।

विवेचन–वातज कास होने पर छाती में शूल सदृश वेदना, कण्ठ और मुख का मुखमण्डल निस्तेज हो जाना, वेगपूर्वक सूखी खाँसी चलना, तन्द्रा आना और भोजन का परिपाक होने पर खांसी का वेग उठना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस विकार पर अमृतार्णव रस बहुत अच्छा काम देता है।

पित्तप्रकोपज कास होने पर भी शुष्क कास चलती है, किन्तु कण्ठ और छाती में दाह, मुंह में कड़वापन, खांसी का वेग उठने पर विद्युत या तारे के सदृश प्रकाश का भास होना, अधिक तृषा लगना और व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन लक्षणों से यह वातज कास से पृथक् हो जाती है। पित्तज कास पर प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण अधिक उपकारक है। फिर भी रोग के विष को नष्ट करने के लिये कभी-कभी अमृतार्णव रस (या सूतशेखर) मिला करके भी दिया जाता है।

फुफ्फुसों में वायुकोप स्फीति (Emphysema) की संप्राप्ति होने पर फुफ्फुस कोषों का यथोचित आकुंचन नहीं होता। यह विकार बहुधा कास या तमक श्वास के साथ उपस्थित होता है। इस रोग में श्वासकृच्छ्ता, गात्रनीलता, कभी कास रहना, कभी न रहना और झागदार कफ आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह रोग निवृत्त नहीं होता, किन्तु श्वास-कष्ट और कफ को दूर करने के लिये उपचार किया जाता है। यह कार्य अमृतार्णव से सरलतापूर्वक हो जाता है, यदि कफ चिपकता हो, तो कफकुञ्जर रस की योजना की जाती है।

२. नागवल्लभ रस।

द्रव्य–कस्तूरी, दालचीनी, सोहागे का फूला तीनों १-१ तोला, केशर, शुद्ध हिंगुल, पीपल, तीनों २-२ तोले, अकरकरा, जायफल, जावित्री, बच्छनाभ चारों ४-४ तोले लें।

विधि–सबको मिला नागरबेल के पान के रस में ३ दिन खरलकर पाव-पाव रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(यो.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली दिन में ३ बार नागरबेल के पान में या अदरक के रस और शहद के साथ दें। तीव्र प्रकोप में आवश्यकता पर १-१ या २-२ घण्टे पर ३-४ बार दें।

सूचना–इस नागरवल्लभ में बच्छनाथ का परिणाम अत्यधिक है। इस हेतु से इस रसायन का उपयोग अति सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

उपयोग–यह नागवल्लभ रस प्रमेह; कास, क्षय और वायु को नष्ट करता है। यह रस श्वास-मार्ग को उत्तेजित करता है; कास-श्वास कम कराता है; कफोत्पत्ति को कम करा कफ का नियमन करता है तथा पित्त का द्रवत्व धर्म बढ़ा हो तो उसका भी ह्रास कराता है एवं यह बलदायक, पीड़ाहर और किञ्चित् उत्तेजक है।

विवेचन–श्वासयन्त्र में किसी कारणवश, विशेषत: कफ प्रकोप होने पर विकृति होकर श्वासोच्छ्वास कम से कम हो जाना, नाड़ीमन्द होना, रोगी को शून्यता भासना, जीव भीतर की ओर खिंचता जा रहा हो अथवा किसी गाढ अंधकार में पड़ा हो ऐसा भासना आदि लक्षण उपस्थित होने पर श्वासयन्त्र को उत्तेजित करने का महत्व का कार्य इस रस के प्रयोग से होता है। इसमें बच्छनाभ अवसादक है। किन्तु गोमूत्रद्वारा विशेष संशोधित बच्छनाभ में अवसादक गुण उतना प्रबल नहीं रहता। इस रसायन के योग से श्वसन मार्ग नियामक वातवाहिनियों और सुषुम्णास्थित वातवाहिनियों के नियामक केन्द्र, इन दोनों पर परिणाम होकर श्वासोच्छ्वास उत्तेजित और नियमित बन जाता है एवं प्रतिबन्ध दूर हो जाता है।

कास की प्रथमावस्था में जब श्वासावाहिनियां क्षुभित होती है, कास बिल्कुल शुष्क आता है, तब इस औषध का उपयोग नहीं किया जाता; किन्तु क्षोभ दूर हो जाने पर कफोत्पत्ति अधिक होने पर, श्वासवाहिनियों में से पतला, झागयुक्त सफेद थूंक जैसा स्राव होने पर, साथ-साथ मन्दज्वर, अङ्ग टूटना, देह भारी हो जाना, बैठे हुए स्थान से उठने की इच्छा न होना, मुँह में बार-बार जल भर जाना, मुँह बेस्वादु रहना, खाँसी के वेग से नाक और आँख से स्राव होने का भास होना आदि लक्षण होने पर नागवल्लभ का उपयोग करना चाहिये। नागवल्लभ से कफोत्पत्ति कम हो जाती है और सर्वाङ्ग में एक प्रकार की उत्तेजना आने के समान भासता है।

तमक श्वास या प्रतमक श्वास व्याधि जीर्ण होने पर अथवा इसका दौरा अधिक दिनों तक रहने पर एवं कभी कभी निर्बल मनुष्यों के श्वास का वेग अति प्रबल होने से श्वसनेन्द्रिय उत्तरोत्तर अधिक थकती जाती है। इस विकार में भी कफोत्पत्ति होती ही है। एक ओर श्वासमार्ग की थकावट और कफोत्पत्ति, फिर वह जहाँ का तहाँ अवरुद्ध रहता है। परिणाम में रोगी की अति दयनीय अवस्था हो जाती है; श्वास लेने और छोड़ने में त्रास होती है, कण्ठ और छाती में से घर्ड़-घर्ड़ आवाज निकलती रहती है। श्वास का वेग कम होने पर प्राणवायु की योग्य पूर्ति नहीं होती। इस स्थिति में नागवल्लभ का उपयोग अच्छा होता है।

कीटाणुजन्य क्षय में इस रस का कितना उपयोग होता है, यह तो निर्णीत नहीं हुआ, किन्तु कफप्रधान दोष से श्वासवाहिनियां रुद्ध होकर क्षय होने पर कफ का स्राव कराकर जल्दी विकार को दूर कर देने का कार्य इस रसायन से हो जाता है।

छोटे बच्चों को क्षीरालसक नाम का विकार होने पर बालक कृश हो जाता है; सर्वाङ्ग में सिलवटें होजाती है; उदर में विकृति हो जाने से बार-बार वान्ति होती है; दूध भी नहीं पचता। जल मिला हुआ दस्त सफेद खड़िया के समान होता है, उदर कठोर और बढ़ा हुआ भासता है, छाती में घरघर आवाज निकलती है। थोड़ी थोड़ी वान्ति और खांसी के हेतु से शिशु उत्साहहीन हो जाता है। खांसी आने पर शारीरिक हलचल होती है, शेष समय सुस्तभाव से पड़ा रहता है। इस विकार में और अस्थिमार्दव (मृदु अस्थि) रोग में यह प्रभेद महत्व का है कि, अस्थिमार्दव में पैर की हड्डी मुड़ जाती है, ऐसा इस क्षीरालसक में नहीं होता। क्षीरालसक की इस स्थिति में नागवल्लभ का अति कम मात्रा में (१/१६ से १/८ रत्ती) प्रयोग करने पर अच्छा लाभ पहुंचता है। अस्थिमार्दव में अस्थि विकृति होने से इस औषध का कुछ भी उपयोग नहीं होता। प्रवाल मिश्रण प्रयुक्त किया जाता है।

कफज प्रमेह, हस्तिमेह, लालमेह, अच्छमेह, पिष्टमेह आदि प्रकारों में रोगी को अति आलस्य, जड़ता, त्वचा में से दुर्गन्ध निकलना आदि लक्षण होते हैं। पेशाब बहुधा श्वेत रंग का किन्तु अधिक मात्रा में बार-बार होता है। मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व कम हो जाता है। (लालामेह में मात्र गुरुत्व अधिक होता है।) प्रमेह के इन प्रकारों पर नागवल्लभ का अच्छा उपयोग होता है।

पक्षाघात का तीव्र झटका शमन हो जाने पर मन्दावस्था में पक्षाघात के शेष रहे हुए विष और विकृति दूर करने के लिये यदि कफभूयिष्ट लक्षण हो, तो नागवल्लभ की योजना की जाती है।

बार-बार कफप्रकोप होने वालों को और प्रतिश्याय की आदत वालों को इस औषध का सेवन अवश्य करना चाहिये।

वक्तव्य–नागवल्लभ में कस्तूरी होने से श्वास वाहिनियां, इनसे सम्बन्ध वाली वातवाहिनियाँ, इनके केन्द्र तथा श्वसनयन्त्र, इन सबको

उत्तेजित करती है-एवं शक्तिप्रद, उष्णवीर्य, रसायन और वाजीकरण है। दालीचीनी-वेदनाशामक, आक्षेपहर, कफशामक और दीपन-पाचन और सोहागा-आक्षेपघ्न, कफनाशक और कास श्वासशामक है। केशर-उत्तेजक और कफघ्न है। हिंगुल-जन्तुघ्न, प्रतिश्यायनाशक, स्वेदल, योगवाही और रसायन है। पीपल-दीपन, पाचन और रसायन है। अकरकरा-उत्तेजक और कफघ्न है। जायफल और जावित्री वेदनाशामक, ज्वरहर, सूक्ष्मस्रोतोगामी, विकासी और व्यवायी है तथा स्वेद और मूत्र द्वारा क्लेद को बाहर निकालते हैं। नागरबेल का पान-उत्तेजक, श्वासनलिका प्रदाहहर (कफहर), पाचक, कृमिघ्न और दुर्गन्धनाशक है। *(औ.गु.ध.शा.)*

३. नाग रसायन।

द्रव्य—लोंग, जायफल, जावित्री, नागभस्म शतपुटी, कालीमिर्च और पीपलामूल ये ६ औषधियां १-१ तोला तथा कस्तूरी और केशर ३-३ माशे लें।

विधि—सबको मिला अदरक के रस में 6 घन्टे खरलकर आधे-आधे रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(यो.र.)*

वक्तव्य—इस रस में हम कर्पूर ६ माशे और मिलाते हैं। कर्पूर मिलाने से श्वासक्रिया सबल बनने से अधिक सुविधा रहती है और कफ पतला और शिथिल होकर सरलता से बाहर निकलता है।

मात्रा—१ से २ गोली, दिन में ३ बार, अदरक के रस और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग—यह रस कफक्षय, श्वास, कास, शूल, प्रतिश्याय, पीनस आदि व्याधियों को हरता है। कफप्रकोप होने से कास, श्वास या शूल उत्पन्न हुआ हो, उस हेतु से अति अशक्ति आ गई हो, शरीर अति निर्बल हो गया हो, किसी भी कार्य करने का उत्साह न रहा हो, बार-बार सफेद चिपचिपा कफ कष्टपूर्वक गिरता रहता हो तथा पचनक्रिया अति मन्द हो गई हो, ऐसी परिस्थिति में इस रसायन के उपयोग से लाभ होता है।

४. कफकेतु रस।

द्रव्य—सोहागे का फूला, पीपल, शंखभस्म और शुद्ध बच्छनाभ ये सब समभाग मिलालें।

विधि—इसे अदरक के रस में ३ दिन तक खरलकर १/४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा--१ से २ गोली, अदरक के रस और शहद या नागरबेल के पान के रस के साथ।

उपयोग—यह कफकेतु रस प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, कास, गलरोग, गलग्रह, दन्तरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग और सन्निपात पर सेवन कराने से उपरोक्त रोगों को नष्ट कर देता है।

विवेचन—कफकेतु का उपयोग मुख्यत: कफप्रधान ज्वरों पर होता है। कफ ज्वरों में मुख्य लक्षण कफविकृति के होते हैं, फुफ्फुसकोष्ठ और श्वास-नलिकाएं कफ पूर्ण हो जाती है, कण्ठ में घर-घर आवाज होती रहती है, फुफ्फुसों में खिंचाव होता है और बेचैनी प्रतीत होती है, अनेक रोगियों को चित्त लेटने में या दूषित पार्श्व पर लेटने से अधिक कष्ट होता है। ऐसी अवस्था में कफकेतु के प्रयोग से आश्चर्य-कारक लाभ पहुँचता है।

कफज्वर के अतिरिक्त वात ज्वर, वात कफज्वर और पित्तकफज्वर आदि में भी जब कफ प्रकोप होकर दूषित कफ छाती में भर जाता है, तब कफ को दूर करने और ज्वर को शमन करने के लिये कफकेतु का प्रयोग किया जाता है।

निमोनिया, एन्फ्लुएञ्जा, कण्ठरोहिणी और आमवातिक ज्वर कफप्रधान है। इसके अतिरिक्त विषम ज्वर के कतिपय रोगियों में भी कफ की प्रधानता होती है। इन पर अनुपान भेद से कफकेतु का अच्छा उपयोग होता है। सामान्यत: अनुपान अदरक का रस और शहद या तुलसी का रस दिया जाता है।

कफ प्रधान सन्निपात होने पर कफ-कास, श्वासावरोध, घबराहट, मंद-मंद प्रलाप, शरीर शीतल रहना, मंद नाड़ी और मलावरोध आदि लक्षण प्रतीत होते हैं इस पर मलावरोध दूर करने के पश्चात् कफ और आम का पचन कराकर ज्वर को दूर करने के लिय शीतभंजी, सूतराज, कफकेतु, समीरपन्नग आदि रस की योजना की जाती है। समीरपन्नग सोमल प्रधान है। तमाखू के व्यसनी और वयोवृद्ध जिनको बार-बार पेशाब होता रहता है उनको कम, अनुकूल रहता है। शीतभंजी ताम्र प्रधान है। ताम्र को रक्त दबाव वृद्धि और मूत्रावरोध वाले को न दिया जाये तो अच्छा सूतराज में बच्छनाभ और धतूरा मिला हुआ है। धतूरा मिला होने से हृदय पर अवसादक असर अधिक होता है। अत: निर्बल हृदय वालों, सुकुमार स्त्री और बालकों को यह नहीं दिया जाये। किन्तु उन सब प्रकार के विकार वालों को कफकेतु सरलतापूर्वक दिया जाता है।

सूर्य के ताप में अधिक फिरने पर नासिका और स्वरयन्त्र में प्रदाह होकर प्रतिश्याय हो जाता है। प्रारम्भ में जलसदृश स्राव होता है

और किसी-किसी को कुछ ज्वर भी आ जाता है। हाथ-पैर टूटते हैं, मूत्र पीला हो जाता है। इस विकार में तीव्रावस्था हो और बार-बार छींके आती रहती हों, तब तक तो अच्छनाभ प्रधान औषधि न दी जाये और बनफ्सा मिश्रित क्वाथ दिया जाये तो अच्छा। फिर वेग मन्द होने पर कफ कुछ गाढ़ा बनने पर कफकेतु का सेवन कम मात्रा में कराने पर २-३ दिन में ही प्रदाहसह ज्वर, प्रतिश्याय आदि विकार शमन हो जाते हैं।

धूप में फिरने के अतिरिक्त शीत लगने और वर्षा में भीगने पर नासामार्ग में प्रदाह होकर प्रतिश्याय हो जाता है। इसमें छींक कम आती है और त्रास कम होता है किन्तु क्षुधानाश, उदर में भारीपन, मलावरोध, शिर में भारीपन, अङ्ग अकड़ जाना और मन्द ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। शीत का आघात होने पर कभी-कभी प्रदाह बहुत दूर तक फैल जाता है। इसे तुरन्त न सम्हालने पर इन्फ्लुएञ्जा, निमोनिया या लकवा आदि रोगों की संप्राप्ति हो सकती है। अत: ऐसी प्रदाहावस्था में कफकेतु रस अच्छा लाभ पहुँचाता है।

प्रतिश्याय रोग की योग्य चिकित्सा न करने पर और आहार-विहार में स्वच्छन्दी रहने पर पीनस रोग की प्राप्ति हो जाती है। फिर नासिका से पूयमय दुर्गन्ध युक्त कफ स्राव होता रहता है। शिरदर्द, तालु और कण्ठ में शुष्कता, नासाशोष, स्वरभंग, कृशता, पाण्डुता, त्वचा शुष्क होकर खुजली चलाना और ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग पर कफकेतु और व्योषादि वटी का सेवन कराया जाता है तथा व्याघ्री तैल, कलिंगादि तैल या अन्य औषधि का नस्य और बाह्योपचार किया जाता है।

कफज कास और कफ प्रधान श्वास रोग में कफ को बाहर निकालने और कफोत्पत्ति कम कराने के लिये कफकेतु का प्रयोग अदरक के रस और शहद के साथ किया जाता है।

सूचना-(१) इस प्रयोग में बच्छनाभ का परिमाण अत्यधिक है। अत: इसका उपयोग अति सम्हाल पूर्वक करना चाहिये। जिनके हृदय खण्ड का कपाट सदोष हों, हृदयावरण में विकृति हुई हो या हृदय अधिक निर्बल हो उनको यह रस नहीं देना चाहिये। बहुत कम मात्रा में देवे और साथ में हृदय पौष्टिक औषधि अभ्रक भस्म, मुक्ता पिष्टी, अकीक पिष्टी आदि मिला देवें।

(२) बच्छनाभ प्रधान औषधि देने पर प्रारम्भ में मूत्र परिमाण बढ़ जाता है और मूत्र साफ आता है। फिर रोग घटने या वृक्क थक जाने पर पेशाब पीले रंग का हो जाता है और कम मात्रा में उतरता है। यदि वृक्क थक गये हों, तो यह बच्छनाभ वाली औषधि बन्द कर देनी चाहिये।

(३) जिनका वृक्क मूत्रोत्पत्ति का कार्य यथोचित न करता हो, उनको बच्छनाभ वाली औषधि देनी पड़े तो ३ दिन से अधिक दिनों तक नहीं देनी चाहिये।

(४) कफ पीड़ित रोगियों को जल गरम करके ठण्डा किया हुआ पिलाना चाहिये। नदी और कुएं के ताजे जल से कफवृद्धि होती है एवं भोजन भी कफवर्द्धक नहीं देना चाहिये।

(५) यदि रोग की तीव्रावस्था में कफकेतु या इतर बच्छनाभ प्रधान औषधि का उपयोग अधिक परिमाण में हो जायेगा, तो कफ सूख जायेगा। फिर फुफ्फुसों में खिंचाव होगा, शुष्क कास आती रहेगी, ऐसा क्वचित् हुआ हो, तो मरिच्यादि क्वाथ अथवा भारंगी, बनफ्सा, मुलेठी, मिश्री के क्वाथ से देकर कफ को तरल बनाना पड़ता है।

उदरस्थ अवयवों में प्रदाह होने पर वहाँ दबाने पर वेदना होती है। आमाशय में प्रदाह होने पर बहुधा उबाक आती है और मुँह में जल आता रहता है। अन्त्र में प्रदाह होने पर मलावरोध होता है, दर्द रहता है और उदर में वायु उत्पन्न होती है। आमाशय और अन्त्र के इन सब रोगों पर अग्निकुमार, प्राणदा पर्पटी आदि अनेक मुख्य औषधियाँ हैं। तथापि उनके अभाव में कफकेतु रस अजवायन के फाण्ट के साथ दिया जाता है।

इस रस में मुख्य औषधि बच्छनाभ है। यह ज्वरघ्न, प्रदाहनाशक, वेदना शामक और वातवाहिनियों के लिये शामक है। सोहागा-आक्षेपहर, कीटाणुनाशक, दुर्गन्धहर, पाचक, कफस्रावी और श्वास-कास शामक है। पीपल-दीपन, पाचन, ज्वरहर, कफहर और रसायन है। शंखभस्म अग्नि-प्रदीपक, विदाहनाशक, कफोत्पत्ति रोधक, आमाशय पित्तशोधक है। अदरक-ज्वरहर, अग्निप्रदीपक, आमपाचक, श्लेष्महर और स्वेदल है।

वक्तव्य-बच्छनाभ के मुख्य गुण प्रदाह शामक, अवसादक पीड़ाहर और ज्वरघ्न है। नासिका, कण्ठ, मस्तिष्कावरण, फुफ्फुस और आमाशय आदि में से किसी भी स्थान की श्लैष्मिक कला में प्रदाह होने पर बच्छनाभ-प्रधान औषधि दी जाती है। बच्छनाभ स्वेद और मूत्र को बढ़ाता है और श्लैष्मिक स्राव को कम कराता है।

५. कफकुञ्जर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, थूहर और आक का दूध ४-४ तोले तथा पाँचों नमक मिले हुए ४ तोले लें।

विधि–सबको खरलकर सुखा दें। फिर आक के दूध में चटनी जैसा बना कर शंख के भीतर भरें तथा पीपल, गज पीपल और खस के ४ तोले चूर्ण को आक के दूध में पीस चटनी जैसा बनाकर शंख के मुख और संधि स्थान पर लेप करें। सूखने पर शंख के ऊपर कपड़ मिट्टी करें एवं मिट्टी का १-१ अंगुल मोटा लेप करें। फिर अग्नि में डाल एक प्रहर आंच देवें। स्वांग शीतल होने पर कपड़ मिट्टी दूर कर शंख सहित सूक्ष्म चूर्ण कर लेवें। (*यो.र.*)

मात्रा–यह रस आध रत्ती और कपूर आध रत्ती, दोनों को कत्था चूना लगे नागरबेल के पान में डालकर दिन में ३ बार देवें।

उपयोग–यह कफकुञ्जर श्वास, कास, हृद्रोग और पांचों प्रकार के कफ प्रकोपों को दूर करता है। यह रस उत्तेजक कफघ्न है। फुफ्फुसों में से कफ को बाहर निकालने के लिये यह व्यवहृत होता है।

विवेचन–जीर्ण कास या श्वास में जब कफ दृढ़ चिपक जाता है, सरलता से नहीं छूटता तब रोगी को अति घबराहट रहती है। छाती और पसलियों में दर्द होता है, कफ पीला हो जाने पर कितनों ही को मन्द ज्वर आता है, कब्ज रहता है, शान्त निद्रा नहीं मिलती और अग्नि भी मन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था में यह रस कफ को सरलता से बाहर निकालता है, साथ-साथ पचन-क्रिया सुधारता है और कब्ज को भी नहीं होने देता।

कतिपय रोगियों का आमाशय निर्बल होने से थोड़ा-सा अधिक भोजन करने या असमय पर खाने से अपचन हो जाता है। फिर श्वास-कास की पीड़ा बढ़ जाती है। ऐसे रोगियों को कफकुञ्जर कुछ दिनों तक सेवन कराने से कफप्रकोप दूर होता है और आमाशय सबल हो जाता है।

प्रतिश्याय में योग्य उपचार यथा समय न होने पर वह जीर्ण होकर स्थिर हो जाता है। फिर नासिका से पीला श्लेष्मा बार-बार गिरता रहता है। मस्तिष्क में भारीपन, व्याकुलता, आलस्य, निद्रा में वृद्धि, नेत्र की निर्बलता और क्षुधामान्द्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी जीर्णावस्था में कफकुञ्जर देने से थोड़े ही दिनों में कफ प्रकोप होकर स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

सूचना–क्षतज कास (उर:क्षत और राजयक्ष्मा) होने पर हो सके तक तब लवण या तीव्र क्षारप्रधान औषधि कफकुञ्जर रस या अन्य नहीं देनी चाहिये एवं शुष्क कास (वातिक या पैत्तिक) में भी इस रस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

तमक श्वास में यदि कफ प्रकोप हो तो कफ को बाहर निकालने और श्वास रोग को शिथिल बनाने में कफकुञ्जर रस का उपयोग होता है। यदि तमक श्वास के साथ हृदय की गति बढ़ी हुई (Cardiac Ashtma) हो तो उस पर भी इस कफकुञ्जर की योजना होती है।

६. बृहच्छृङ्गाराभ्र रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, नागकेशर, जावित्री, कपूर, लौंग, तेजपात और सुवर्ण भस्म १-१ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, तालीसपत्र, नागरमोथा, कूठ, जटामाँसी, दालचीनी, धायके फूल, छोटी इलायची के दाने, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा आंवला और गजपीपल २-२ तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करके भस्म मिलावें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला पीपल के क्वाथ के साथ ७ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियों बना लेवें। (*र.सा.सं.*)

विशेष–हम इस रसायन में ४ तोले शृङ्गभस्म भी मिलाते हैं।

मात्रा–१ से २ गोली, दालचीनी के चूर्ण और शहद के साथ, दिन में २ बार।

उपयोग–यह शृङ्गाराभ्र विशेषत: कासरोग, वातज, पित्तज और त्रिदोषज कास, हृदयशूल, पार्श्वशूल, शिर:शूल, स्वरभङ्ग, कुष्ठ, कफप्रकोप, वातरक्त, रक्तपित्त और श्वास रोग को नष्ट करता है। मूसली का चूर्ण घी और शहद के साथ दिया जाये तो वाजीकरण गुण दर्शाता है। ध्यान रहे यह रस कफ को बांध-बांध कर बाहर लाता है जिससे कष्ट भी होता है।

यह रस उत्तेजक, दीपन-पाचन, वातहर, कफघ्न, कीटाणुनाशक तथा हृदय और फुफ्फुसों के लिये बलवर्द्धक है। जीर्ण श्वास, जीर्ण कास, राजयक्ष्मा,न्यूमोनिया के पश्चात् की निर्बलता, जीर्ण प्रतिश्याय आदि में श्लेष्म प्रकुपित होता है और छाती में अति संगृहीत हो जाता है। पहले सफेद गिरता है और फिर पीला हो जाता है। इस कफ को यथा समय न निकालने से जीवनीय शक्ति अतिक्षीण हो जाती है और विविध रोगों की उत्पत्ति होती है। इस रस के सेवन से संचित कफ सरलता से बाहर निकलने लगता है, नूतन उत्पत्ति बन्द हो जाती है तथा ज्वर रहता हो, तो उसका भी शमन हो जाता है। फिर थोड़े ही दिनों में कफधातु शुद्ध होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

विवेचन–कास रोग और राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में खाँसी बार-बार आती रहती है, किन्तु कफ नहीं गिरता। अति बेचैन होने पर

थोड़ा-सा झाग गिरता है। ऐसी अवस्था में इस रस का उपयोग नहीं होता (उस समय गोदंती भस्म, प्रवाल आदि शामक औषधि की योजना की जाती है)। किन्तु वह अवस्था दूर होकर कफ संचित हो जाने पर अग्नि मन्द हो जाती है। अरुचि, श्वासवाहिनियों की विकृति होने से बार-बार खांसी चलना, पसलियों में शूल चलना, शिर में भारीपन, मन्द-मन्द ज्वर, हाथ पैर टूटना, थोड़े परिश्रम से प्रस्वेद आना, आलस्य, निद्रा की वृद्धि और मुखमण्डल उदास रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस अवस्था में बृहद् श्रृङ्गाराभ्र व्यवहृत होता है। कफ अधिक गाढ़ा न हुआ हो, तब यह रस गोदन्ती भस्म, प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व और अति स्वल्प में सुवर्णवसन्त मिलाकर शहद के साथ देना चाहिये।

फुफ्फुसावरण में अकस्मात् वायु प्रवेश कर जाने से पार्श्वशूल उपस्थित होता है। तीव्रशूल, श्वासकृच्छता, नाड़ी की तेजगति, घबराहट आदि लक्षण उपस्थति होते हैं। उस पर इस रस का उपयोग होता है। अधिक वेदना होने पर ३-३ घण्टे बाद ३ समय देने से वेदना का ह्रास हो जाता है। साथ-साथ गरम की हुई रूई की पोटली से सेक करना चाहिये। अथवा हींग और अफीम को घिस गुनगुना करके लेप करना चाहिये।

जीर्ण प्रतिश्याय या जीर्ण कास के पश्चात् कितने ही रोगियों की मस्तिष्क शक्ति कम हो जाती है। विशेष विचार करना हो, तो मस्तिष्क थक जाता है, स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है, बार-बार चक्कर आते हैं, मन अस्थिर रहता है। रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त और शुष्क भासता है। उसको यह श्रृङ्गाराभ्र देने से थोड़े ही दिनों में मस्तिष्कगत विकृति दूर होती है, मुखमण्डल प्रसन्न बन जाता है और शारीरिक स्फूर्ति आ जाती है।

अति स्त्रीसहवास या अन्य कारण से वातवाहिनियां शिथिल हो गई हो, उससे या मानसिक आघात पहुँचने से नपुंसकता आई हो, तो वह इस रस के सेवन से दूर होती है। भोजन में से रस योग्य न बनने से रक्त आदि धातुओं का रूपान्तर सम्यक् नहीं होता। फिर उस हेतु से शुक्र धातु की निर्बलता और नपुंसकता की प्राप्ति हुई हो, तो इस रस के सेवन से रक्त आदि धातुओं का परिपोषण सम्यक् होकर विकार का शमन हो जाता है।

७. कासकेसरी रस।

द्रव्य—शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अभ्रक भस्म, कुटकी, रस-माणिक्य (या शुद्ध हरताल) इन ७ औषधियों को ५-५ तोले लें।

विधि—सबको मिला पञ्चकोल (पीपल, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रकमूल, और सोंठ) के क्वाथ में ३ दिन खरल करके गोला बनावें। फिर दो शराव के भीतर रख दृढ़ मुखमुद्रा कर, भूधर यन्त्र में (गजपुट के नीचे खड्डा कर उसमें) रखें। फिर ऊपर ७ इञ्च मिट्टी डाल ऊपर गजपुट दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर निकालकर खरल कर लेवें। *(र.यो.सा.)*

वक्तव्य—इस रसायन में कुटकी आदि वनौषधियाँ हैं, वे पक जानी चाहिये। किन्तु जलकर नष्ट न होनी चाहिये। अन्यथा योग्य लाभ नहीं पहुँचता। कुटकी उत्तेजक और कफस्रावी है, वह कफ को पतला बनाकर बाहर निकालती है। पीपल आदि भी कफस्रावी है, वे भी जल जाने पर योग्य क्रिया नहीं कर सकती।

मात्रा—१ से २ रत्ती नागरबेल के पान, आर्द्रकावलेह, बहेड़ा और शहद या केवल शहद के साथ दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग—कासकेसरी कफ कास, ऊर्ध्व श्वास, रक्तविकार, त्वग्विकार आदि को नष्ट करता है।

छाती में कफ संगृहीत होने पर कफकुठार और कास केसरी दोनों हितकारक हैं। इनमें से कफकुठार में ताम्रभस्म होने से यह अधिक उग्र है। जिन रोगियों से अधिक उग्रता सहन न हो सके, उनके लिये यह कास केसरी हितावह है।

इसके सेवन से कफ सरलता से बाहर निकलता है और अग्नि प्रदीप्त होकर कफोत्पत्ति का ह्रास होता है। इस हेतु से जब कफ गाढ़ा हो जाता है, सरलता से नहीं निकलता, अधिक खांसने पर छाती में वेदना हो जाती है, तब इसका उपयोग होता है।

विवेचन—कास रोग जीर्ण होने पर कफ सफेद और गाढ़ा बन जाता है। फिर कुछ दिनों के पश्चात् पककर रंग पीला हो जाता है। देह में मन्द-मन्द ज्वर भी बना रहता है, अग्नि मन्द हो जाती है, किसी-किसी को फुफ्फुस एवं श्वासवाहिनियों में कफ संगृहीत हो जाने से बार-बार खांसी चलती रहती है और कफ की गांठ निकलती रहती है। शिर में भारीपन भासता है, थोड़ा चलने या थोड़ा परिश्रम करने पर श्वास भर जाता है, पेशाब प्रायः पीला होता है। ऐसी अवस्था में कफ कुठार और यह रस अति हितकारक है।

किसी-किसी रोगी को पीले बँधे हुए कफ के साथ रक्त भी गिरता है। उस कफ को निकालने के लिए कफकुठार देने पर रक्तस्राव बढ़ जाने का भय रहता है। उसे कास केसरी को सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद के या वासावलेह के साथ देने से लाभ हो जाता है।

वर्षा ऋतु में कितने ही व्यक्तियों को कफकास और श्वास हो जाता है। उनको कास केसरी और श्रृङ्गभस्म मिलाकर नागरबेल के पान में दो बार देते रहने से उत्पन्न विकार नष्ट हो जाता है और नयी उत्पत्ति रुक जाती है।

८. कफान्तक रस।

द्रव्य–शुद्ध बच्छनाभ १ तोला, हल्दी १४ तोले, सोहागे का फूला और पीपल १०-१० तोले लें।

विधि–सबको मिला, खरलकर बोतल में भर लेवें। *(र.का.)*

मात्रा–१-१ रत्ती, दिन में ३ बार, कत्था-चूना लगे हुए नागरबेल के पान के साथ देवें।

उपयोग–इस रस के उपयोग से कफ सरलता से बाहर निकल जाता है और नयी उत्पत्ति रुक जाती है। यह कास और श्वास रोग में हितावह है।

९. द्राक्षादि गुटिका (कफ)।

द्रव्य–खाने की तमाखू २० तोले, कालीमिर्च २० तोले और बीज निकाली हुई मुनक्का ४० तोले लें।

विधि–तमाखू और कालीमिर्च के कपड़छन चूर्ण को मिला मुनक्का के साथ कूट एक जीव कर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। इन गोलियों को काली मिर्च के चूर्ण में डालते जायें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ बार देवें।

उपयोग–द्राक्षादि गुटिका के सेवन से कफ बहुत जल्दी पक जाता है और सरलता से निकल जाता है। यह तमाखू के व्यसनी को विशेष अनुकूल रहती है, दूसरों को कुछ बेचैनी लाती है। बेचैनी हो, तो १-१ तोले घी पिलाना चाहिये।

१०. मधुयष्ट्यादि गुटिका।

द्रव्य–मुलहठी, लौंग, सफेद मिर्च, बहेड़ा, छोटी इलायची के दाने, सौंफ, सफेद कत्था ये ७ औषधियाँ ५-५ तोले, रव्वेसूस २० तोले और पीपरमेण्ट के फूल १ तोला लें।

विधि–पीपरमेण्ट को छोड़ शेष औषधियों को मिलाकर खरल कर लेवें। फिर पीपरमेन्ट मिला थोड़े जल से खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ५-७ बार, मुँह में रखकर रस चूंसे।

उपयोग–मधुयष्ट्यादि गुटिका सूखे हुए कफ को पतला करके सरलता से बाहर निकालती है। श्वास ग्रहण में कष्ट हो रहा हो, उसे दूर करती है। शुष्क कास और कफ कास दोनों पर यह उपयोगी है।

११. अर्क लवङ्गादि वटी।

द्रव्य–लौंग, बहेड़ा और पीपल ४-४ तोले, काकड़ासिंगी, दालचीनी, २-२ तोले, अनार का सूखा छिलका और सोहागे का फूला १-१ तोला, कत्था और मुलहठी सत्व १०-१० तोले, मुनक्का और आक के फूल ५-५ तोले लें।

विधि–मुनक्का और आक के फूलों को कूटकर चौगुने जल से क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर मुलहठी सत्व और सोहागा मिलावें। पश्चात् शेष द्रव्यों को कपड़छन चूर्ण मिला १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(स्व. श्री वैद्यराज यादव जी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–१-१ गोली दिन में ४-६ बार मुँह में रखकर चूसते रहें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से खाँसी का वेग कम होकर कफ सरलता से निकलकर कण्ठ साफ हो जाता है। जब छाती में कफ भरा हो और खाँसी बहुत आने पर भी कफ न निकलता हो, तब यह वटी अति उपकारक होती है। यह वटी श्वास में लाभ करती है।

१२. जीर्णकासान्तक वटी।

द्रव्य–लोबान के फूल, श्रृङ्गभस्म और सोहागे का फूला १-१ तोला, कपूर ६ माशा तथा अफीम ३ माशा लेवें।

विधि–इन सबको मिलाकर शहद में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। गोलियों को शंखजीरे के पाउडर में डालते जाये। ४ दिन में गोलियां सूख जावेंगी।

मात्रा–१-गोली, दिन में २ या ३ बार दें।

उपयोग–यह वटी पुरानी खाँसी में बहुत उपयोगी है। कण्ठ और श्वास नलिका में क्षत हो तो उन पर भी लाभदायक है।

सूचना–कब्ज वाले रोगियों को कब्ज दूर करने के बाद इनका प्रयोग कराना चाहिये।

१३. कासान्तक चूर्ण

द्रव्य–घी कुंवार के छोटे-छोटे टुकड़े कर सूर्य के ताप में सुखावें और छोटी कटेली के पञ्चाङ्ग को छाया में सुखा लेवें। फिर दोनों को १। -१। सेर लेकर मिला लेवें। काले नमक का चूर्ण ५० तोले लेवें।

विधि–फिर एक हाँडी में घीकुंवार कटेली का चूर्ण आधा भरें, ऊपर काला नमक डालें। फिर शेष चूर्ण ऊपर बिछा, ढककर कपड़मिट्टी करें। सूखने पर गजपुट की अग्नि देवें। स्वाँग शीतल होने पर भस्म को निकाल पीसकर बोतलों में भर लेवें। ***(आ.नि.मा.)***

मात्रा–२-३ रत्ती, दिन में ५-७ बार, मुँह में डालकर चूंसते रहें।

उपयोग–इस कासान्तक चूर्ण के सेवन से संगृहीत कफ सरलता से खुलकर बाहर आ जाता है। फिर फुफ्फुस और श्वास-वाहिनियां अपना कार्य करने में सशक्त हो जाती है, अग्निप्रदीप्त होती है और मलावरोध दूर होता है। यह सामान्य औषधि होने पर भी खाँसी और मन्दाग्नि के लिये चमत्कारिक लाभ पहुँचाती है।

तमाखू के व्यसनी को कुछ वर्षों के बाद श्वास रोग हो ही जाता है और कफ गिरता रहता है। उनको इस चूर्ण का सेवन कराने पर कास और श्वास रोग में भी लाभ पहुँचता है। यदि व्यसन छोड़ दें तो पूरा-पूरा लाभ हो जाता है।

१४. कास विजय चूर्ण।

द्रव्य–छिली मुलहठी, मग्जकद्दू, वंशलोचन, बबूल का गोंद और कतीरा गोंद, ये सब २-२ तोले तथा मिश्री १० तोले लेवें।

विधि–इन सबको कूटकर मिला लेवें। ***(श्री पं. मुरारीलाल जी शर्मा)***

मात्रा–३-३ माशे, शहद या घी-शहद (कम, अधिक, बराबर नहीं) मिला- कर दिन में ३ बार लेवें अथवा जल मिला चटनी जैसा बनाकर चाट लेवें।

उपयोग–यह चूर्ण वातज और पित्तज शुष्क कास को शमन करने में उत्तम है। वातिक कास में सैकड़ों बार खाँसने पर कफ नहीं निकलता, अधिक त्रास होने पर थोड़ा झाग आता है। किसी-किसी को छाती पर कफ चिपका हुआ रहता है, किन्तु छूटता नहीं, उसके लिये यह चूर्ण आशीर्वाद के समान कार्य करता है।

पैत्तिक कास होने पर कण्ठ में जलन, कण्ठ और मुख में शोष, जलपान की इच्छा बनी रहना, छाती में कफ सूख जाना तथा खांसने पर छाती और पसलियों में दर्द होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस उत्तेजक पैत्तिक कास पर यह कास विजयचूर्ण तत्काल लाभ दर्शाता है। शुष्क कफ को शिथिल करके निकालता है तथा श्लैष्मिक कला की उग्रता को शमन करता है।

१५. समशर्कर चूर्ण।

द्रव्य–लवंग, जायफल और पीपल १-१ तोला, कालीमिर्च ६ तोले, सोंठ १३ तोले और शक्कर १५ तोले लेवें।

विधि–इन सबका कपड़छन चूर्ण कर लेवें।

मात्रा–४ से ६ माशे तक, दिन में २ या ३ बार, जल या शहद के साथ दें।

उपयोग–यह चूर्ण वातिक, पैत्तिक-और श्लैष्मिक कास को दूर करता है। इसके अतिरिक्त मन्द ज्वर, अरुचि, प्रमेह, वातजगुल्म, श्वास, मन्दाग्नि और ग्रहणी विकार (दिन में ३-४ बार दस्त होता हो), ऐसे उपद्रव हों उनको शमन करता है। श्वास-संस्थान और पचन-संस्थान को बलवान बनाता है।

१६. अहिफेनादि चूर्ण।

द्रव्य–अफीम, छोटी हरड़, बहेड़ा, सफेद मिर्च और आकड़े की डोडी की कलियाँ इन ५ औषधियों को समान भाग लें।

विधि–अफीम छोड़कर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् अफीम को जल में डाल चूर्ण में मिला खरलकर चूर्ण सुखा लेवें। इसके बाद मिट्टी के तवे पर चूर्ण को जलाकर काली भस्म कर लेवें।

मात्रा–१-१ रत्ती, १ बार (रात्रि में) अथवा दिन में २ बार, शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण कफ प्रधान खांसी का नाश करने के लिये उत्तम है। जिनकी छाती में कफ बहुत जमा हो, रात्रि को सोते समय त्रास देता हो, बार-बार खांसी आती हो यह चूर्ण सोने के १ घन्टे पहले देने से प्रगाढ़ निद्रा आ जाती है। आवश्यकता हो तो इस चूर्ण को दिन में भी दे सकते हैं।

सूचना–(१) जिनका कफ बहुत गाढ़ा और चिकना हो गया हो तथा निकलने में त्रास देता हो उनको यह चूर्ण नहीं देना चाहिये। अन्यथा कफ सूखकर विशेष त्रास बढ़ जायेगा।

(२) इस चूर्ण के विशेष सेवन से कफ सूख जाये तो समशर्कर चूर्ण अथवा कासविजयचूर्ण का सेवन कराकर कफ को पतला कर लेवें।

१७. अर्कमूलत्वगादि चूर्ण।

द्रव्य–आक के मूल की छाल (एप्रिल मास में निकाली हुई) ४ तोले, लौंग, अपामार्ग क्षार, अभ्रकभस्म और श्रृंगभस्म सब १-१ तोला।

विधि–सबको मिलाकर खरलकर लेवें।

मात्रा–४-४ रत्ती, शहद या नागरबेल के पान में, दिन में ३-४ बार।

उपयोग–यह चूर्ण उष्ण, कफस्रावी, रसायन और ज्वरघ्न है। जब छाती में कफ संचित हो जाता है, मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है तथा बार-बार कष्टपूर्वक कफ की गांठ निकलती है, अग्निमान्द्य, अरुचि, बचैनी आदि लक्षण होते हैं, तब इसके सेवन से वे सब दूर होते हैं एवं फुफ्फुस,, श्वास-वाहिनियाँ, यकृत् और आमाशय में उत्तेजना आती है। फुफ्फुस उत्तेजित होने पर कफस्राव होता है, तथा आमाशय और यकृत् उत्तेजित होने पर पचन क्रिया में लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त इन चूर्ण में रसायन-धर्म भी अवस्थित है। जिससे विविध रसोत्पादक ग्रन्थियों की क्रिया सबल बनने से जीवन-विनिमय क्रिया सुधरती है। परिणाम में इस चूर्ण के सेवन से शरीर स्वस्थ और सबल बनता है।

१८. कफनाशक क्वाथ।

द्रव्य–कायफल की छाल, भारंगीमूल, कटेली की जड़, आक के मूल की छाल, काकड़ासिंगी, मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, अडूसे के पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और पुष्करमूल इन १३ औषधियों को २-२ तोले लें।

विधि–सबको मिला, जौ कूटकर २६० तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें, चतुर्थांश जल रहने पर उतारकर छान लेवें। फिर शीतल होने पर २० तोले शहद मिलाकर बोतल में भर लेवें। ***(श्री वैद्य गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर)***

मात्रा–२॥-२॥ तोले, दिन में ३-४ बार, ३-३ घन्टे बाद देते रहें।

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से कफ जल्दी पक जाता है और कण्ठ में से आवाज निकलने लगती है। कफकास, तमकश्वास, पसली का शूल, कफज्वर, न्यूमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा, जुकाम और फुफ्फुसशोथ आदि रोगों में जहाँ कफ का जमाव अधिक होता है, वहाँ पर इस क्वाथ के सेवन से सत्वर लाभ पहुँचता है।

१९. शर्बत जूफा

द्रव्य–जल में धोकर कुचली हुई मुनक्का ३० तोले, उन्नाव, सपिस्ताँ (सूखे, पक्के ल्हिसोड़े), सूखे अञ्जीर, सोसन के मूल (बेख सोसन) और मुलहठी ये ५ औषधियाँ २०-२० तोले, सौंफ का मूल, कर्फस का मूल (बेख कर्फस), जूफा और हंसराज १०-१० तोले, बिहीदाने, अनीसून और सौंफ ५-५ तोले, छिले हुए जौ, अलसी, जटामाँसी और खतमी के बीज ३-३ तोले लें।

विधि–सबको जौ कूटकर रात्रि को ३ गुने जल में भिगो दें। सुबह मन्दाग्नि पर पकावें। एक तिहाई जल रहने पर उतार शीतल करके कपड़े से छान लें। फिर ६ सेर चीनी मिला शहद जैसी चाशनी बना लें। शीतल होने पर कपड़े से छानकर बोतलों में भर लें।

(स्व. श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–१ से २ तोले शर्बत, जल के साथ मिलाकर दिन में २-३ बार देवें।

उपयोग–वात और पित्तप्रधान कास में इसका उपयोग अच्छा होता है। इसके सेवन से कफ शिथिल होकर खाँसने के साथ तुरन्त सरलता से बाहर निकल जाता है।

जब तमक श्वास में कफ सूख जाता है और रोगी को अत्यन्त त्रास, बेचैनी, निद्रानाश आदि होते हैं, उस समय शर्बत जूफा अनेक रोगियों को दिया गया है, इससे कफ सरलता से पिघलकर बाहर निकल जाता है और श्वास का दौरा शान्त हो जाता है।

२०. भार्ङ्ग्यादि क्वाथ।

द्रव्य–भारङ्गीमूल, बहेड़ा, नागरमोथा, पुनर्नवा, देवदारु, गिलोय, कुटकी, नीम की अन्तरछाल, दारुहल्दी और मिश्री इन १० औषधियों को समभाग लें।

विधि–मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–२-२ तोले का क्वाथ कर दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ उरस्तोय (एम्पाइमा) की प्रथमावस्था में अति हितकर है। उरस्तोय की प्रथमावस्था में फुफ्फुसावरण में थोड़ा जल-सञ्चय होता है। एवं शुष्क कास, ज्वर, पार्श्वशूल और घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह विकार अति त्रासदायक माना गया है।

इस रोग में छाती में स्रोतोरोध होने से फुफ्फुसावरण में जल भरने लगता है। ऐसी स्थिति में इस क्वाथ के सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है। निस्तेजता, शोथ और बद्धकोष्ठ होने पर अरोग्यवर्द्धिनी, मण्डूर भस्म और श्रृङ्गभस्म दिन में दो बार आम के मुरब्बे के साथ देना चाहिये। तीव्र प्रकोप में रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिये। यदि फुफ्फुस प्रणालिकाओं में पीला कफ भी संगृहीत हो, तो छोटी कटेली भी क्वाथ में मिला लेनी चाहिये।

२१. कट्फलादि क्वाथ।

द्रव्य–कायफल, रोहिषतृण, भारङ्गी, नागरमोथा, धनियां, बच, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंगी और देवदारु इन ११ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–१-१ तोला का क्वाथ करके १-१ रत्ती हींग और ६-६ माशा शहद मिलाकर दिन में २ या ३ बार पिलावें।

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से कण्ठ-विकार, श्वास-हिक्का और ज्वर सहित वातकफात्मक कास दूर होते हैं।

वक्तव्य–यदि कण्ठ में अधिक त्रास होता हो तो क्वाथ पीने के पहले ३ माशा मक्खन अथवा घृत चाट लेवें तथा क्वाथ पीने के बाद मुलहठी का टुकड़ा मुँह में रखें।

२२. तालीसादि मोदक।

विधि–तालीस पत्र १ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पीपल ४ तोले, दालचीनी और छोटी इलायची के दाने ६-६ माशे और शक्कर ३२ तोले लेकर चाशनी बनाकर चूर्ण मिलावें। ३-३ माशे के मोदक बना लेवें।

वक्तव्य–यदि पित्त का अनुबन्ध हो तो मोदक बनाते समय ५ तोले वंशलोचन मिलावें।

मात्रा–१-१ लड्डू दिन में २-३ बार देवें।

उपयोग–तालीसादि मोदक श्रेष्ठ वातश्लेष्महर, दीपन, पाचन, जन्तुघ्न औषधि है। इसके सेवन से श्वास, कास, अरुचि, उबाक, प्लीहावृद्धि हृदयशूल, पार्श्वशूल, उरस्तोय (एम्पाइमा), पाण्डु , ज्वर, अतिसार और मूढवात (मूत्रावरोध अथवा पेट में वायु भरी हुई हो) आदि विकार दूर होते हैं।

२३. एलादि वटी।

द्रव्य–छोटी इलायची के दाने, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६-६ माशे लें तथा छोटी पीपल २ तोला, मिश्री, मुलैठी, बीज रहित छुआरा, मुनक्का प्रत्येक ४-४ तोला लें।

विधि–सब चीजें महीन पीसकर शहद में मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा–१-१ गोली जल से लें या दिन में १०-१५ गोली तक चूंसे।

२४. कर्पूरादि गुटिका।

द्रव्य–कपूर, दाड़िम के फल की छाल और लौंग १-१ तोले, कालीमिर्च, पीपल, बहेड़े की छाल और कुलिंजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था १-१ तोले लें।

विधि–सबको मिला बबूल की छाल के क्वाथ से भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। ३ घन्टे तक खरल करना चाहिये।

मात्रा–१-१ गोली, १०-१५ बार मुँह में रखकर रस चूंसे।

उपयोग–सब प्रकार की खांसी विशेषत: वातजकास में अति उपयोगी है। जिस कास में सोने पर वेग उत्पन्न होता है, २-४ मिनट तक खाँसी चलती है, फिर थोड़ा झाग निकलता है, उस पर यह अति लाभप्रद है।

२५. कासमर्दन वटी।

द्रव्य–श्वेत कत्था ४ तोला; सेलखड़ी २ तोला, छोटी इलायची के बीज ६ माशे लें।

विधि–सबको बारीककर कपड़छन चूर्ण बनावें। ३० तोले बंबूल की छाल को २॥ सेर जल में मिलाकर क्वाथ करें, जल चतुर्थांश रहने पर उतार छान लें। फिर क्वाथ और चूर्ण को मिला मन्द-मन्द आंच पर पकावें और चलाते रहें। जब गोली बाँधने योग्य हो जाये, तब नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर चने के बराबर गोली बना लें। यदि मसाला हाथ से चिपकता हो तो थोड़ी-सी सेलखड़ी लगाकर गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली मुंह में रखकर चूंसे। दिन भर में १०-१५ गोली चूंसें।

उपयोग–इस वटी से वातज कास, पित्तज कास, नूतन कास, जीर्ण कास थोड़े ही दिनों में दूर होती है। मुख-पाक, दन्तचालन, गल-घंटिका की शिथिलता, स्वरभेद में लाभ पहुँचता है। छोटे बच्चों को गोली का चूर्ण बनाकर शहद से चटा देना चाहिये।

२६. लवङ्गादि वटी।

द्रव्य–लौंग, बहेड़े की छाल और कालीमिर्च १-१ तोला, कत्था ३ तोले को मिला बंबूल की छाल के क्वाथ में ६ घण्टे खरल करके मटर सम गोली बनावें। *(वै.जी.)*

मात्रा–१-१ गोली दिन में ५-७ बार मुंह में रखकर चूंसें।

उपयोग–कास, श्वास रोग में हितकर है। सूखी खाँसी में श्वास नलिका की उग्रता को दूर करके और कफ कास में कफ को सरलता से बाहर निकाल कर लाभ पहुँचाती है।

❑ ❑

(१३) श्वास, हिक्का।

१. श्वासकासचिन्तामणि रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सुवर्णभस्म, तीनों १-१ तोला, मुक्तापिष्टी ६ माशे, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म २-२ तोले और लोह भस्म ४ तोले लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक मिलाकर कज्जली करें, फिर शेष भस्म मिला कटेली का रस, बकरी का दूध, मुलहठी का क्वाथ और नागरबेल के पान के रस की क्रमशः ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (र.यो.सा.)।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ या ३ बार, शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपान के साथ।

उपयोग–श्वासकासचिन्तामणि सम शीतोष्ण, रक्तपौष्टिक, फुफ्फुस-बलववर्द्धक, हृद्य और कफस्रावी है। इस रस का प्रयोग तीव्र आक्षेपकाल में नही होता, आक्षेप का दमन होने पर होता है। मूलभूत श्वास रोग तथा लक्षण और उपद्रव रूप श्वासरोग, दोनों पर यह व्यवहृत होता है। सामान्यतः मूलभूत श्वास में फुफ्फुस संस्थान निर्बल बन जाता है। कफ प्रकोप कुछ न कुछ अंश में होता ही है और अग्नि मन्द हो जाती है। इस सब सामान्य स्थिति को लक्ष्य में रखकर मूल ग्रन्थकार ने अनुपान रूप से शहद पी लेने का विधान किया है। किन्तु विशेष लाभ लेने के लिये आवश्यकतानुसार अनुपान बदल लेना चाहिये।

विवेचन–हृदयविकृतिसह श्वास, पाण्डुरोग, विषमज्वर या मुद्दतीज्वर दीर्घकाल तक रह जाना और आमवात (Rheumatism) आदि रोगों से हृदय निर्बल हो जाता है या किसी हृदय खण्ड का प्रसारण या अन्य विकृति हो जाती है, तब रुधिराभिसरण क्रिया सम्यक् नहीं हो सकती। देह को आवश्यक शुद्ध रक्त नहीं मिलता। फिर हृद्गतिवर्द्धक केन्द्र (Cardio-Accelerating Centre) उत्तेजित होता है जिससे हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है और पीड़ित हृदय जब अशुद्ध रक्त को नहीं खींच सकता, तब दूषित वायु रक्त में बढ़ती जाती है, जो सुषुम्णागत श्वसन केन्द्र (Respiration Centre) को प्रकुपित करता है। फिर हृद्विकारज तमक श्वास (Cardiac Asthma) की संप्राप्ति होती है। इस विकार में नाड़ीताल में विकृति, छाती में दबाव, श्वासावरोध, श्वास ग्रहण में व्याकुलता, झागमय कफस्राव, कुछ अंश में मूत्रावरोध आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस पर श्वास कास चिन्तामणि शहद पीपल के अनुपान से देते रहने पर हृदय को बल मिलता है और शनैः-शनैः श्वास का दमन हो जाता है।

चिपके हुए कफ युक्त श्वास में-श्वास लेने पर वायु श्वसन यन्त्र के भीतर प्रवेश करती है, तब उरोगुहा का विस्तार होता है और फुफ्फुस स्थित वायु कोष फूलते है और निःश्वास से वायु बाहर निकलने पर वायुकोष और उरोगुहा का आकुंचन होता है। यह आकुंचन-प्रसारण-क्रिया नियमित रहती है; उष्णता से या अफीम आदि औषधि के सेवन से इस श्वसन यन्त्र (श्वासप्रणालिका, फुफ्फुस आदि) में श्लेष्मा चिपक जाता है, तब वायु के आवागमन में प्रतिबन्ध होता है। उस कफ को यदि सत्वर बाहर न निकाल दिया जाये तो वायुकोष और श्वासप्रणालियां पीड़ित होकर शिथिल हो जाती है और फिर बार-बार श्वासावरोध (Dyspnoea) होता है और तमक श्वास (Asthma) की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार के विकार में इस रस को उत्तेजक कफस्रावी अनुपान वासापत्र, मुलहठी, बहेड़ा, भारंगी और मिश्री के या मरिचादि क्वाथ अथवा शामक, कफस्रावी जूफा शर्बत के साथ देना चाहिये। यदि कफ शुष्क हो गया हो, तो उसे पुनः आर्द्र बनाकर बाहर निकालने में मरिचादि क्वाथ विशेष हितावह है।

अजीर्णजन्य श्वास–आमाशय विकृति होने पर विदग्धाजीर्ण या विष्टब्धाजीर्ण की प्राप्ति होती है। ये दोनों प्रकार के अजीर्णरोग जीर्ण होने पर हृदय और फुफ्फुस को भी हानि पहुँचाते हैं फिर श्वास रोग की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार के श्वास रोग को उपद्रव रूप श्वास माना है। इस प्रकार में मूल कारण रूप अजीर्ण को दूर करना चाहिये; केवल श्वास रोग का उपचार करने पर उसका दमन **नहीं हो सकेगा।**

विष्टब्धाजीर्ण हेतु होने पर अदरक के रस और शहद के साथ श्वासकासचिन्तामणि दिया जाता है। यदि विदग्धाजीर्ण रूप कारण हो, दाह, खट्टी डकार, कफ का अभाव, श्वासवेगवृद्धि और अति व्याकुलता हो, तो श्वासकासचिन्तामणि, प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण को शहद के साथ देते रहने से श्वास रोग का दमन हो जाता है।

पित्तप्रकोपसह श्वास—पित्त प्रधान प्रकृति वालों को गरम-गरम आहार, धूम्रपान, अधिक मिर्च आदि के सेवन से और उष्णोपचार से श्वास रोग बढ़ता है तथा समशीतोष्ण उपचार से शमन होता है। फुफ्फुसों में प्राय: कफ नहीं बढ़ता, मामूली रहता है, पचनक्रिया मन्द होती जाती है। शरीर दिन प्रति दिन निर्बल होता जाता है और बार-बार चक्कर आते रहते हैं। इस प्रकार के विकार में श्वासकासचिन्तामणि जूफा शर्बत के साथ दिया जाता है एवं आवश्यकतानुसार अग्निप्रदीपक औषधि प्रवालपञ्चामृत या शंख भस्म भी मिला देनी चाहिये।

धूम्रपान वालों का श्वास—कितने ही धूम्रपान के व्यसनियों की छाती कफ से भरी रहती है और कभी-कभी फुफ्फुसों में क्षत हो जाते हैं। फिर यक्ष्मा-पीड़ित रोगी के सदृश दुर्गन्धयुक्त कफ गिरता रहता है। प्रतिदिन २० से ४० तोले तक कफ गिरता है। ऐसे रोगियों को श्वासकासचिन्तामणि के साथ श्रृङ्गभस्म और लोहबान पुष्प मिलाकर देने से शारीरिक उत्ताप बढ़ा हो तो वह भी कम हो जाता है।

वृद्धावस्था में श्वास—वृद्धावस्था, अति स्त्री सेवन, मानसिक चिन्ता, उपवास आदि कारणों से शारीरिक निर्बलता आ जाती है। फिर थोड़ा-सा परिश्रम करने पर श्वास भर जाता है। इसे क्षुद्र श्वास (Breathlessness) कहते हैं। इस विकार पर श्वासकासचिन्तामणि कम मात्रा में शहद, पीपल के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में शरीर सबल बन जाता है और श्वास रोग की निवृत्ति हो जाती है।

वंशागत श्वास—कितनेक कुटम्बों में वंशागत श्वास रोग (Bronchial Asthma) प्राप्त होता है। इस विकार में श्वासनलिका या वायुकोषों में प्रदाह उत्पन्न करने वाले बाह्य कारणों का अभाव होता है। केवल श्वास संस्थान की स्वाभाविक निर्बलता ही प्रतीत होती है। ऐसे रोगियों को छोटी आयु में जब स्थिति-स्थापन गुण (Elasticity) अधिक हो, उस समय अति कम मात्रा में लम्बे समय तक सितोपलादि चूर्ण और शहद के साथ श्वासकासचिन्तामणि दिया जाये, तो लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—श्वास रोगी को मलावरोध हो, तो उसे दूर करना चाहिये। श्वास का आक्षेप हो, उस मसय आक्षेपशामक उपचार करना चाहिये।

कफप्रधान कास—कास रोग की उत्पत्ति प्रतिश्याय, कीटाणु विष प्रकोपज ज्वर, इन्फ्लुएञ्ज़ा आदि विषाक्त वायु, वाष्प आदि का आकर्षण या आर्द्र वायु का आघात और धूम्रपान आदि कारणों से होती है। इसमें आशुकारी और चिरकारी ऐसे २ प्रकार हैं। आशुकारी में तीव्र वेग रहते हैं, कफोत्पत्ति नहीं होती अथवा झागमय कफ रहता है। उस अवस्था में इस रस का उपयोग अधिक लाभप्रद नहीं है, किन्तु रोग जीर्ण होने पर वेग शिथिल हो जाता है। फिर फुफ्फुसों में कफ संचय होने लगता है। इस चिरकारी अवस्था में निर्बल हृदय और नाजुक प्रकृति वालों को कफकुठार की अपेक्षा श्वासकासचिन्तामणि देना विशेष अच्छा माना जायेगा।

हिक्का—हिक्का की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं। किन्तु सब कारणों द्वारा बहुधा महाप्राचीरा पेशी (diaphragm) का आक्षेप पहले होता है। यदि आमाशय नलिका, आमाशय अथवा अन्त्र के प्रदाह के हेतु से यह विकृति हुई हो, तो यमला हिक्का उपस्थित होती है। इस विकार पर श्वासकासचिन्तामणि गुड मिले सोंठ के फाण्ट के साथ दिया जाता है।

वक्तव्य—भैषज्यरत्नावलीकार ने इस प्रयोग का नाम श्वासचिन्तामणि रखा है और नागर बेल के पान के स्थान पर अदरक के रस की भावना दी है तथा सुवर्ण का परिमाण आधा कर दिया है। बंगाल और इतर आर्द्र वायु वाले प्रदेश में उस तरह का प्रयोग हितावह रहेगा। ऐसे देशों के लिए पारद के स्थान पर भी कितनेक चिकित्सकों ने रस सिन्दूर कर दिया है।

रस सिन्दूर और अदरक के रस का संमिश्रण होने पर उग्रता बढ़ती है। वह पित्त प्रधान प्रकृतिवालों से सहन नहीं होती। आवश्यकता होने पर शीतल अनुपान के साथ कम मात्रा में सेवन करावें।

२. पीतश्वासकुठार

द्रव्य—शुद्ध मन:शिला और कालीमिर्च का कपड़छन चूर्ण, दोनों को समभाग लें।

विधि—सबको मिला अदरक के रस और नागरबेल के पान के रस में १२-१२ घन्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(आ.नि.मा.)

मात्रा—१-१ गोली, २-२ घन्टे पर २-३ बार, नागरबेल के पान में या जल से दिन में २ बार लेते रहें।

उपयोग—पीतश्वासकुठार श्वासरोग का दमन करने में उपयोगी है। आशुकारी आक्षेपकाल में २-२ घन्टे पर देते रहना चाहिये एवं आक्षेप का असर हो, तब तक गरम करके शीतल किया हुआ जल देवें, अन्न नहीं देना चाहिये। इस तरह सम्हाल कर २-३ बार देने पर दौरा शमन हो जाता है। यह शीतप्रकोपज श्वास की अपेक्षा अपचनजन्य श्वासप्रकोप पर अधिक कार्य करता है।

सूचना—बार-बार इफेड्रिन आदि तीक्ष्ण औषधियों का अन्त: क्षेपण कराने वालों को देर से असर होता है। यदि रोगी थोड़े समय तक कष्ट सहन कर लेवें, तो रोग निरोधक शक्ति सबल हो जायेगी और अन्त:क्षेपण की आवश्यकता सदा के लिये छूट जायेगी।

चिरकारी जीर्ण तमक श्वास में पथ्यपालनसह २-४ मास तक पीतश्वास कुठार का सेवन करने पर लाभ पहुँचता है। श्वास के अतिरिक्त **कफकास** में भी यह रस हितावह है।

३. श्वासहारी रस।

द्रव्य–सवुर्ण भस्म, नागभस्म शतपुटी, ताम्रभस्म, शुद्ध पारद और गन्धक ये ५ औषधियां समभाग लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष भस्म मिलाकर अगस्त्य के रस के साथ ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।* ***(र.यो सा.)***

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में एक या दो बार शहद, मलाई-मिश्री, मुलहठी और बहेड़े का चूर्ण और शहद शर्बत जूफा अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ।

उपयोग–यह श्वासहारी रस, कास, श्वास और हिक्का रोग को नष्ट करता है। आचार्यों ने इस रस का नाम श्वासहारी रखा है। अर्थात् वे इस रस को कास और हिक्का अपेक्षा श्वास पर अधिक कार्यकारी मानते हैं। श्वास रोग में महा श्वास (Infaction of the Lungs) ऊर्ध्व श्वास (Acute Oedema of the Lungs), छिन्न श्वास (Cheyne-Stokes Breathing), तमक श्वास (Asthma) और क्षुद्र श्वास (Breathlessness) ये ५ प्रकार है।

इनमें से पहले २ प्रकार पर औषध प्रयोग सफल नहीं होता। तृतीय प्रकार के श्वास (छिन्न श्वास) में यदि सुषुम्नास्थित श्वसन केन्द्र की अति विकृति नहीं हुई है ओर वृक्क सन्यास (Uraemia) प्रबल रूप में न हुआ हो तो लाभ हो सकता है। शेष २ प्रकार के श्वास रोगों पर इस श्वासहारी का प्रयोग होता है। इन २ प्रकारों में तीव्र दौरे के शमन हो जाने के पश्चात् इसका उपयोग होता है।

विवेचन–तमकश्वास का आक्रमण विशेषतर पिछली रात्रि में होता है। बार-बार छींके आना, अफारा, अपचन, बार-बार मूत्र त्याग और अति व्याकुलताआदि लक्षण उपस्थित होते हैं। किसी को शुष्क काससह और किसी को अति कफ विकृतिसह होता है। इस रोग में बहुधा यकृत् भी कमजोर होता है। इस प्रकार पर यह श्वासहारी रस सफल औषधि है। यदि शुष्क कास है, तो सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ दिया जाता है। कफ हो और आमाशय की पचन विकृति हो तो अदरक का रस और शहद अनुपान रूप से दिया जाता है। सामान्य कफ हो, अधिक शुष्कता न हो, तो नागरबेल के पान में या शहद-पीपल के साथ यह रस दिया जाता है।

तमक श्वास का दौरा अनेक बार हृदय विकृति के हेतु से होता है। जब हृदयस्थ शिराओं में से आवश्यक दूषित रुधिर का योग्य शोषण नहीं होता, तब रक्त में आंगारिक वायु (Carbonic Acid Gas) बढ़ती जाती है। जब यह अत्यधिक हो जाती है, तब श्वास का दौरा उपस्थित होता है। इस प्रकार श्वास ग्रहण में अति व्याकुलता, कास और झागमय कफ आदि लक्षण होते हैं। इस पर यह रस महोपकारी है। यह रस एकाध मास तक सेवन करने पर हृदय को सबल बनाकर श्वास विकार को नष्ट कर देता है।

वक्तव्य–श्वास रोगी को चाहिये कि श्वास दूर होने पर एक वर्ष तक आहार विहार में संयम रखें, आग्रहपूर्वक पथ्य का पालन करें।

मुद्दती ज्वर रोगों का अधिक समय तक रहना, तीव्र मिर्च आदि पदार्थों का अति सेवन, तेज औषधियों का सेवन या शीतल वायु आदि का आघात होकर श्वसन यन्त्र में प्रदाह हो जाना आदि कारणों से शुष्क कास की प्राप्ति होती है। यह कास वेगपूर्वक चलती रहती है। फिर अति व्याकुलता आकर थोड़ा झाग निकलता है। यह कास कभी-कभी मिथ्या उपचार या अपथ्य सेवन से जीर्ण हो जाती है। फिर शारीरिक कृशता, हृदय, मस्तिष्क और यकृत् की निर्बलता, फुफ्फुस और श्वास प्रणालियां प्रदाह पीड़ित हो जाना, अग्निमान्द्य, आलस्य, मलावरोध, उत्साह का अभाव और कास के हेतु से रात्रि को आवश्यक निद्रा न मिलना आदि लक्षण उपस्थित होते है। उसे अभ्रक आदि उत्तेजक औषधि नहीं दी जाती। शामक उपचार ही किया जाता है। यह रस शामक तथा मस्तिष्क, यकृत् और फुफ्फुस बलवर्द्धक होने से जीर्ण कास में अति हितावह है।

कासरोग में मात्रा-आध-आध रत्ती, प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण और घी शहद के साथ मिलाकर दिन में ३ बार देते रहने से १५ दिन में फुफ्फुस प्रदाहसह कास की निवृत्ति हो जाती है।

कफज कास रोग पर श्वासहारी को मुख्य औषधि नहीं कह सकेंगे, तथापि मस्तिष्क और फुफ्फुस को बल देने और कीटाणुओं का नाश करने के लिये यह रस नागरबेल के पान में या शहद-पीपल के साथ दिया जाता है।

राजयक्ष्मा रोग की प्रथमावस्था में शुष्क कास उत्पन्न होती है फिर कफोत्पत्ति हो जाती है। पहले कफ सफेद बनता है फिर पीला-हरा, दुर्गन्धयुक्त और बताशे के सदृश बंधा हुआ बन जाता है। इस प्रकार के कास पर भी इस रस का उपयोग होता है। शुष्क होने पर अमृतप्राश घृत या प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण शहद-पीपल से दिया जाता है। कफ होने पर वासावलेह के साथ सेवन कराने पर विशेष लाभ पहुँचता है।

---

* कनकभुजशुल्वं, सूतराजं सुगन्धं, मुनिरसपरिपिष्टं वल्लमात्रं दिनान्ते।
हरति सकलकासं श्वासहिक्कासमेतं, त्रिभुवनहितकारी जायते श्वासहारी॥

हिक्का रोग पर भी श्वासहारी का प्रयोग होता है। जो हिक्का शीतल वायुके आघात से अन्ननलिका में प्रदाह के कारण उपस्थित हुई है, जौ सौम्य प्रकार की होती है। छाती में मन्द-मन्द वेदना, हिक्का रुक-रुककर चलना, शीतल जलपान करने पर अधिक कष्ट देना और अफारा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस पर यह शहद-पीपल या गुड़ मिले क्वाथ के साथ दी जाती है। यदि यह हिक्का १०-२० दिन रहने से कुछ कफप्रकोप भी हो गया हो तो ३-३ माशे कटेली के क्वाथ और शहद के साथ श्वासहारी दिया जाता है।

४. श्वासारि एला।

द्रव्य—उत्तम जाति का पारदर्शक एलुवा २० तोले, वङ्गक्षार १ तोला और गुड़ ४ तोले लें।

विधि—तीनों को मिलाकर कूटें, गोलियाँ बनाने योग्य हो तब १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावे। यदि गोली न बन सके तो थोड़ा गुड और मिला लेवें। इन गोलियों को सुवर्ण वङ्ग में डाली जायें, जिससे वे सुवर्ण सदृश चमकीली और अधिक गुणदायक बन जाती हैं।

मात्रा—२-२ गोली, दिन में २ बार, जल के साथ निगलवा देवें। फिर सुबह ऊपर निवाया घी २ तोले पिलावें या ४ तोले मलाई, मिश्री मिलाकर खिलावें। रात्रि को घी या मलाई देने की जरूरत नहीं है।

सूचना—(१) घी पिलाने के पश्चात् आध घन्टे तक जल न पिलावें। अति प्यास लगे तो निवाया दूध या निवायी चाय पिलावें।

(२) तेल, मिर्च, खटाई और पक्का भोजन न खिलावें।

(३) तमाखू के व्यसनी का हो सके उतना धूम्रपान कम करा देना चाहिये।

उपयोग—श्वासारि एला कफ प्रधान श्वास के लिए अति हितकारक है। देह निर्बल बनने, वृद्धावस्था या मेदोवृद्धि होने पर थोड़े परिश्रम से श्वास भर जाता हो और श्वास क्रिया में कष्ट हो तो इस पर यह लाभ पहुँचाती है।

५. शंखचूड़ रस।

द्रव्य—रससिंदूर, अभ्रकभस्म (सहस्र पुटी) और सुवर्णभस्म १-१ भाग, वैक्रान्त भस्म ३ भाग और शंखभस्म ३० भाग।

विधि—सबको मिलाकर खरलकर शीशी में भर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा—४-४ रत्ती, बिजौरे के रस के साथ अथवा जवाखार और घी के साथ मिलाकर १-१ घन्टे पर २-३ बार देवें।

उपयोग—शंखचूड़ रस पांचों प्रकार की हिक्का का तत्काल नाश करता है। विशेष कर गैस बढ़ने के कारण आमाशय और उदर में वायु उत्पन्न होकर पुनःपुनः ऊपर चढ़ती रहती है और हृदय तथा महाप्राचीरा पेशी को आघात पहुँचाती रहती है। उसमें शंखचूड़ रस आश्चर्यजनक कार्य करता है। शंखचूड़ रस के सेवन से मृत्यु के मुख में गये हुये रोगियों के बच जाने के भी उदाहरण मिले हैं।

सूचना—आवश्यकता हो तो हृदयाधरिक प्रदेश के ऊपर राई के प्लास्तर की पट्टी ५-१० मिनट तक लगावें। प्लास्तर से त्वचा लाल हो जाये तो प्लास्तर को हटाकर घी चुपड़ देना चाहिये।

६. पिप्पल्यादि लोह (हिक्का)।

द्रव्य—पीपल, आमला, काली दाख, बेरकी गुठली की मींगी, बायविडंग, पुष्करमूल और लोहभस्म इन ७ औषधियों को समान भाग लें।

विधि—सबको कपड़छन चूर्ण करें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा—१-१ माशा; एक-एक घण्टे अथवा दो-दो घण्टे पर आवश्यकतानुसार दिन में ३ बार (सुबह, दोपहर और सांयकाल) शक्कर और शहद के साथ देवें। सहायक औषधि रूप से शुक्ति पिष्टी भी मिला सकते हैं।

उपयोग—पिप्पल्यादि लोह-सेवन, हिचकी और कास एवं तृषावृद्धि को ३ दिन में दूर करता है। ग्रीष्म काल में बर्फ, आइसक्रीम आदि का अधिक सेवन, शीतकाल में शराब, गरम-गरम चाय, कॉफी तथा राई और गर्म मसाले आदि उष्ण पदार्थों का अधिक सेवन, अधिक दिनों तक ज्वर रहना; संखिया, क्विनाइन आदि उग्र औषधियों के अधिक सेवन से और कृमि अथवा अन्य किसी कारण से उदर में बहुत उग्रता आ जाती है जिससे किसी-किसी रोगी को हिक्का आती है, साथ में अपचनजन्य बार-बार वमन होकर कण्ठ सूखना, पानी पीने पर भी प्यास शांत न होना और वातप्रकोप आदि दीखने में आते हैं। ऐसे रोगियों को पिप्पल्यादि लोह और शुक्ति पिष्टी मिला कर शक्कर और शहद के साथ देते रहने से अपचन जन्य बढ़े हुए लक्षणों सह हिक्का दूर होती है।

ठण्ड लग जाने के कारण कितने ही रोगियों को छाती और फेफड़ों में आघात होता है, छाती जकड़ जाती है, श्वास सुखपूर्वक नहीं ले सकते तथा हिक्का आने लगती है। उसमें पिप्पल्यादि लोह के साथ सोठं चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देकर ऊपर तुलसी की चाय पिलाने से फेफड़ों में भरा हुआ पतला कफ सरलता से निकल जाता है, फेफड़े और छाती जकड़ाहट से मुक्त हो जाते है तथा हिक्का दूर हो जाती हैं।

सूचना—(१) यदि कब्जियत हो, तो ग्लिसरीन की पिचकारी देकर पेट साफ कर लेना चाहिये और काली मुनक्का२-३ तोला सेक कर १-१ करके खिलाना चाहिये।

७. तालीससोमादि चूर्ण।*

द्रव्य–तालीसपत्र, सोम (Ephedra Anterimedia), मुलहठी, अडूसे के फूल और पुष्करमूल इन ५ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। *(सि.यो.सं.)*

मात्रा–५-५ रत्ती, दिन में ३-४ बार, शहद के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण श्वासवेग का दमन करता है एवं श्वास, कास और प्रतिश्याय को दूर करता है। यह चूर्ण उत्तेजक, कफघ्न, ज्वरहर, मूत्रल और श्वासकासहर है। इस चूर्ण का उपयोग कफजकास पर अधिक होता है, जिसमें सफेद बंधा हुआ या पीला कफ गिरता है, मन्द-मन्द ज्वर रहता है, शिर और छाती में भारीपन, अग्निमान्द्य, मूत्र में पीलापन और शीतल वायु सहन न होना आदि लक्षण भी होते हैं। उस पर यह चूर्ण अच्छा लाभ पहुँचाता है। यदि पोटास क्लोरास २-२ रत्ती और मिला दिया जाये, तो कफनि:सारक और मूत्रल असर अधिक होता है।

विवेचन–धूम्रपान का व्यसन पुराना होने पर अनेकों को श्वास रोग की सम्प्राप्ति हो जाती है। फिर फुफ्फस और श्वास प्रणालिकाओं में कफ बना रहता है, थोड़ा चलने पर श्वास भर जाता है कार्य करने में उत्साह मन्द हो जाता है। उस पर इस चूर्ण का सेवन २-४ मास तक कम मात्रा में कराने पर लाभ पहुँचता है। यदि तमाखू के व्यसन को छोड़ देवें तो स्थिर लाभ मिलता है।

कितने ही रोगियों को श्वास का दौरा बार-बार होता है, फुफ्फुस कफ से भर जाते हैं, बोलने एवं श्वास लेने में बड़ी कठिनाई होती है, बार-बार कास चलती रहती है किन्तु कफ नहीं निकलता है ऐसी स्थिति में तालीशसोमादि चूर्ण सत्वर लाभ कराता है।

८. श्वासान्तक चूर्ण।

द्रव्य–बहेड़ा २० तोले, लौंग ३ तोले, अपामार्ग क्षार, वंग क्षार, बच और सोनागेरु ६-६ माशे लेवें।

विधि–बहेड़े और लोंग को कूटकर कपड़छन करें। फिर शेष औषधियाँ मिलाकर खरल कर लेवें।

मात्रा–३-३ माशे, प्रात:-सांय, शहद के साथ। मन्द-मन्द ज्वर भी रहता हो, तो श्रृंगभस्म २-२ रत्ती मिलाते रहना चाहिये।

उपयोग–यह चूर्ण कास और श्वास रोग में संगृहीत कफ को सत्वर दूर करता है। थोड़े दिनों तक सेवन करने से कफ निकल कर साफ हो जाता है, कफोत्पत्ति बन्द हो जाती है, पचनक्रिया सबल बनती है तथा श्वास और कास रोग दूर हो जाते हैं।

सूचना–धूम्रपान करने का व्यसन हो, तो छोड़ देना चाहिये। ज्वर रहता हो और अधिक कफोत्पत्ति हो, तो जल गरम करके शीतल किया हुआ पीना चाहिये तथा स्नान भी निवाय जल से करना चाहिये।

९. मरिचादि कषाय।

द्रव्य–कालीमिर्च १ तोला, वनप्सा १६ तोले, वासापत्र १२ तोले, गावजवां ८ तोले और मुलहठी ४ तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। *(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा–क्वाथ चूर्ण १ तोले को ४० तोले जल में उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर १ तोला शक्कर मिलाकर छान लेवें। इस तरह दिन में २ बार सुबह, रात्रि को क्वाथ करके पिलावें।

उपयोग–इस क्वाथ का उपयोग जुकाम बिगड़कर उत्पन्न हुई शुष्क कास, जिसमें कफ सूख जाता है और नहीं निकलता, साथ-साथ कितने ही रोगियों को ज्वर भी बना रहता है। इस प्रकार के ज्वरसह कास पर इस कषाय का अच्छा उपयोग होता है। यह हजारों रोगियों पर आजमाया हुआ अनेक वर्षों का परीक्षित प्रयोग है। यदि रोगी को मलावरोध भी रहता हो, तो हरड़, बहेड़ा २-२ तोले ऊपर कहे हुए कषाय में मिलाते हैं। उस कषाय को मध्यम मरिचादि कषाय नाम दिया है तथा रेशाखतमी और खुब्बाजी २-२ तोले मिलाते हैं। उस कषाय को बृहत्मरिचादि कषाय संज्ञा दी है।

यदि कफाधिक श्वास रोगी को देने के लिये कषाय तैयार करना है, तो प्रति मात्रा १-१ तोला अडूसा मिला लेते हैं। इस तरह एक ही कषाय को ३ प्रकार से बनाकर व्यवहत करते हैं। यह अति सन्तोषप्रद सफल प्रयोग है।

१०. रसेश्वर अर्क।

द्रव्य–रसकर्पूर ६ माशे और कपूर १ तोला लें।

विधि–दोनों को पृथक्-पृथक् थोड़े जल के साथ पीसें। फिर नागरबेल के पक्के ५० पानों पर आगे की ओर रसकर्पूर लगावें और

---

* मूल ग्रं. सिद्ध योग संग्रह में यह योग 'तालीसादि चूर्ण' नाम से है।

५० अन्य पानों पर आगे की ओर कर्पूर का लेप करें। लेप सूखने पर रसकूर्पर लगे पानों पर कर्पूर लगे हुये पान रखें (रसकर्पूर लगे हुए भाग के सामने कर्पूर लगा भाग रखें।) फिर सब पानों के जोड़ों को एक पर दूसरे को इस तरह रख सूत के डोरे से बाँध लेवें। पश्चात् मिट्टी की हांडी में ४ सेर जल भर, उसमें दौलायंत्र के समान पान के गट्टे को लटकावें। पान हांडी के जल से १ अंगुल ऊँचे रहने चाहिये। उसे चूल्हे पर चढ़ाकर आँच देवें। ६० तोले जल शेष रहने पर हांडी को उतार लें। शीतल होने पर पानों को मसल जल को छानकर बोतल में भर लेवें।

(पं. अम्बाराम शंकरजी)

मात्रा–१-१ औंस; २-२ घण्टे पर २ या ३ बार; ६ माशे शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग–श्वास रोग का तीव्र आक्रमण होकर अति घबराहट होने पर और सन्निपात में श्वास प्रकोप होने पर इस अर्क का सेवन कराने से तत्काल लाभ पहुँचता है।

सूचना–(१) रोगी को अर्क पिलाने के पश्चात् बबूल की छाल के क्वाथ के ५-७ कुल्ले करावें और पान खाने को देवें, पान में चौथाई रत्ती कर्पूर डाल देवें। पुनः २-२ घण्टे बाद दूसरी बार भी कुल्ले करा लेवें।

(2) जिन रोगियों के दाँतों में से पीप निकलता है या दांत हिलते हो, तो यह अर्क नहीं देना चाहिये। अन्यथा दांत गिर जायेगा।

११. वासकासव।

विधि–वासापञ्चांग १० सेर को २०४८ तोले जल में उबालें। तृतीयांश (तीसरा हिस्सा) जल शेष रहने पर उतार मसलकर छान लें। फिर गुड़ ४०० तोले, धाय के फूल ३२ तोले, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने, नागकेशर, शीतलमिर्च, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और नेत्रबाला इन ९ औषधियों का ४-४ तोले का जौकूट चूर्ण मिला अमृतबान में भर मुखमुद्रा कर १५ दिन रहने दें। परिपक्व होने पर छानकर बोतलों में भर लें।

(ग.नि.)

मात्रा–१।-१। तोला जल के साथ; दिन में २ बार देवें।

उपयोग–गदनिग्रहकार ने लिखा है कि यह अरिष्ट सब प्रकार के शोथों को दूर करता है। इस आसव में मुख्य वासा है। उसका उपयोग प्राचीन आचार्यों ने श्वास यन्त्र के प्रदाह, कफप्रकोप, कास, श्वास, रक्तपित्त, उरःक्षत, रक्तवमन, रक्तप्रदर आदि रोगों पर लिखा है। नव्य चिकित्सकों के मत में वासा के सुखाये पत्ते की बीड़ी बनाकर पिलाने से कास और श्वास रोग में लाभ होता है। इनके मतानुसार वासा कफ निःसारक, आक्षेपहर और संशोधक हैं एवं विषमज्वर, आमवात, क्षय, तमकश्वास और चिरकारी श्वासनलिकाप्रदाह और उरोगत अन्य कफप्रधान रोगों में व्यवहृत होता है। इन गुणों के अनुरूप कास रोग में इसको प्रयुक्त करने पर कफ सरलता से बाहर निकलता रहता है। जिससे रोगी की बेचैनी दूर होती है और रोग-बल सत्वर कम हो जाता है।

श्वासरोग, रक्तपित्त और क्षयरोग में भी इस आसव से लाभ पहुँचता है। यद्यपि वासा-स्वरस की अपेक्षा इसके गुण में कुछ अन्तर पड़ जाता है, तथापि वासा-स्वरस निकालने की जहाँ सुविधा न हो वहाँ पर वासकासव का प्रयोग हो सकता है और यह उपकारक ही होता है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

१२. श्वासहर योग।

(१) महायोगराज गूगल ४ से ८ रत्ती तक का धूम्रपान कराने से तत्काल श्वास का दौरा शमन हो जाता है। आवश्यकता पर एक घण्टा बाद फिर से दूसरी बार धूम्रपान कराना चाहिये।

पथ्य रूप से गुड़ शक्कर मिला हुआ दूध पिलावें। जिनको दूध अनुकूल न हो, उनको ११ नग कालमिर्च निगलवाकर यकृत-बल के अनुसार १ से ४ तोले घी पिलावें।

सूचना–धूम्रपान करने पर धुएं को मुख से ही निकालें, नाक से नहीं। चावल, दही, लालमिर्च, तैल अदि का कुछ दिनों के लिए परित्याग करना चाहिये

कुछ दिनों तक अति कम मात्रा में, दिन में २-३ बार श्वासकुठार या समीरपन्नग, अभ्रक और श्रृङ्गभस्म का मिश्रण सेवन करें और प्रतिदिन सुबह फुफ्फुसों पर सरसों के तैल की मालिश कर फिर बालुका स्वेद १५-२० मिनट तक करते रहें, तो कफाधिक श्वासरोग समूल नष्ट हो जाता है।

(२) कपूर ३ रत्ती को गुड़ में लपेट कर निगलवा देने से श्वास के दौरे का शमन हो जाता है। आवश्यकता पर १ घन्टे बाद दूसरी बार देवें। कफ न हो, तो पीने के लिये मिश्री मिला गुनगुना थोड़ा दूध या चाय दे सकते हैं। कफ प्रधान श्वास हो, तो चाय का गुनगुना जल ही देना चाहिये।

(३) नारियल की जटा को चिलम में रख धूम्रपान कराने से तुरन्त श्वास का दौरा निवृत्त हो जाता है।

(४) छाया में सुखाई हुई अड़ूसे की पत्ती ४ भाग, छाया में सुखाई हुई धतूरे की पत्ती, भाँग, काली चाय और खुरासानी अजवायन

की पत्ती २-२ भाग लें। सबको कूट मोटा चूर्ण बना कलमीसोरे के तृप्तद्रव में (कलमीसोरे को जल में मिलाकर घोल करें। जब उसमें अधिक सोरा न घुल सके, तब उस घोल को तृप्तद्रव कहते हैं।) भिगोकर छाया में सुखा लेवें। आवश्यकता पर इसकी मोटे कागज में बीड़ी बनाकर धूम्रपान करने के लिये देवें। ***(स्व. श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य)***

उपयोग–इस धूम्रप्रयोग से श्वास का दौरा तत्काल दब जाता है। छाती में घबराहट होती हो, वह दूर होती है और कफ सरलता से बाहर निकल जाता है। शुष्ककास में लाभदायक है। यदि धूम्रपान करने से कण्ठ में शुष्कता उत्पन्न हो, तो थोड़ी देर के बाद शक्कर मिला हुआ गोदुग्ध पिलावें।

१३. हिक्काहर योग।

(१) इन्द्रायण की १ रत्ती और कालीमिर्च ३ नग को पीस १० तोले बकरी के दूध में मिलाकर पिला देवें। आवश्यकता पर ३-३ घन्टे पर दूसरी और तीसरी बार देने से कष्टदायक हिक्का, कास और कफप्रकोप का निवारण हो जाता है।

(२) मयूरपुच्छभस्म और पीपल का चूर्ण ३-३ रत्ती मिलाकर शहद के साथ देने से हिक्का के वेग का शमन हो जाता है।

(३) मयूरपुच्छ के चन्दोवे और नारियल की जटा दोनों को समभाग मिला सम्पुट में बन्दकर भस्म बनावें। इनमें से ४-४ रत्ती, ३-३ घन्टे के अन्तर पर देने से २-३ समय में हिक्का का निवारण हो जाता है।

(४) बेरकी मींगी निकाल, पीस, उसे आक के दूध की एक भावना देकर छाया में सुखावें। इसमें से थोड़ा चूर्ण चिलम में डालकर तमाखू की तरह पिलाने से तत्काल हिक्का निवृत्त हो जाती है।

(५) गाँजा को ५-१० बार गरम जल से धोवें। जब तक हरा जल निकले, तब तक धोते रहें। फिर सुखा, पीस, शहद से २-२ रत्ती की गोलियां बनावें और कालीमिर्च के चूर्ण में डालते जायें। इनमें से १ गोली गुनगुने जल से देवें। आवश्यकता पर २ घन्टे बाद और १ गोली दे सकते हैं। इस गोली के सेवन से कुछ नशा आ जाता है, किन्तु हिक्का शमन हो जाती है।

(६) सुपारी १ नग का चूर्ण बबूल की ताजी पत्ती १ तोला दोनों को मिला कूटकर गोली बनावे। फिर चिलम में रख धूम्रपान कराने से तत्काल हिक्का का निवारण हो जाता है।

(७) छोटी या बड़ी कटेली की जड़ १ तोले का क्वाथ कर ३ भाग कर १-१ घन्टे पर पिलाने से हिक्का का शमन हो जाता है। कफ-प्रकोपयुक्त रोगी के लिये यह प्रयोग तत्काल फलदायी है।

(८) ताम्र भस्म १/४ रत्ती शहद से चटाने से हिक्का शान्त हो जाती है।

१४. हिक्काहर तन्त्र।

कोष्ठ में विशेष अशुद्धि न हो और निराम दोषों से युक्त हो और औषध योजना करने में असुविधा हो, उस दशा में एक बड़ा चम्मच (टेबल स्पून) को हाथ में लेकर रोगी के गले के अन्तिम भाग में उपजिह्वा नामक जो सर्प की ठोडी की तरह दिखाई देती है। उसको क्रमशः ७ या ११ बार उत्तरोत्तर किञ्चिद् अधिक दबाव के साथ उस चम्मच की डांडी से दबाया जाये, तो तत्काल ही हिक्का बन्द हो जायेगी फिर आवश्यकतानुसार औषध योजना कर सकते हैं।

हिक्का रोगी को जब तक रोग की उग्रता न मिट जाये, तब तक अन्न आदि न देकर केवल दिन में ३-४ बार आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार प्रति मात्रा में १॥-१॥ माशा सोंठ का चूर्ण और बीज निकाली हुई १०-१० मुनक्का और दूध आवश्यकतानुसार मिलाकर पथ्य के रूप में दिया जाना आवश्यक है।

१५. श्वासारि लवण।

द्रव्य–आक के २०० पीले पके पान, लगभग १० तोले घी और १ सेर सैंधानमक लेवें।

विधि–पानों को अच्छी तरह कपड़े से पोंछकर साफ करें। फिर १ मिट्टी की हांडी के भीतर पानों को जमावें। प्रत्येक पान पर थोड़ा घी चुपड़कर ऊपर सैंधानमक का चूर्ण डालें। ऊपर दूसरा पान फिर घी लगाकर सैंधानमक डाल कर रखें। इस क्रम से एक के ऊपर दूसरा पान रखते जायें। इस तरह सब पान, घी और सैंधानमक हाँडी में रखकर ढक्कन ढक मुखमुद्रा करके गजपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर आक के दूध में मिला, हलवा सदृश गाढ़ाकर, हाँडी में भर मुखमुद्रा करके गजपुट देवें। स्वाँग शीतल होने पर नमक को पीसकर बोतल में भर लेवें। ***(वैद्यराज नगीनदास जी)***

मात्रा–२ से ४ रत्ती, शहद के साथ, तेज आक्रमण के समय १-१ घन्टे पर २-३ बार देवें। श्वास रोग की सामान्य अवस्था में १ से २ रत्ती, दिन में २ बार, शहद या नागरबेल के पान में देवें।

उपयोग–यह लवण कफप्रधान श्वास रोग के आक्रमण के बल को तुरन्त शिथिल कर देता है तथा कफ को सरलता से बाहर निकालने लगता है। जीर्णावस्था में भी यह हितावह है।

जीर्णावस्था में सुबह-शाम इस लवण के साथ मुलहठी, बहेड़ा, मिश्री और अडूसे के पत्तों के क्वाथ का सेवन करते रहने से जल्दी लाभ पहुँचता है। ३-४ मास तक इस प्रयोग का सेवन और पथ्यपालन करने पर रोग, बिल्कुल शान्त हो जाता है।

कफप्रधान श्वास के अतिरिक्त जीर्ण कफप्रधान कास पर भी यह हितावह है। ज्वर हो, तो उसे भी दूर करने में सहायता पहुँचाता है। कफ सफेद या पीला हो, दोनों प्रकारों पर यह दिया जाता है। फुफ्फुसों में पूय होने से कफ दुर्गन्धयुक्त और हरी आभावाला हो गया हो, तो ऐसी अवस्था में यह विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकता।

१६. श्वासकान्तक चूर्ण।

द्रव्य–मिश्री ४ तोले और सोमल ३ माशे।

विधि–दोनों को मिलाकर ७२ घन्टे खरल करके बोतल में भर लेवें।

(वैद्यराज मुरलीधर जी मुलतानी)

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ बार, दूध के साथ।

उपयोग–नियमित समय पर बार-बार होने वाला दमा, खांसी, प्रतिश्याय आदि को नष्ट करता है। नाड़ीव्रण और भगंदर को भी नष्ट करता है। इस चूर्ण में आठवां हिस्सा अहिफेन मिलाकर देने से नपुसंकता और वीर्य के पतलेपन को दूर करता है और स्तम्भन भी बढ़ाता है।

सूचना–वृक्कों में क्षत या अश्मरी हो या वृक्क वृद्धि होने से उचित मूत्र-शुद्धि न होती हो, रात्रि को बार-बार पेशाब करने के लिए उठना पड़ता हो, तो उक्त चूर्ण नहीं देना चाहिये।

१७. रास्नादि क्वाथ।

द्रव्य–रास्ना, दशमूल, सोंठ, कचूर, पीपल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, भूमि आंवला, भारंगी, गिलोय, नागरमोथा और चित्रकमूल की छान इन औषधियों को बराबर-बराबर लें।

विधि–सबको लेकर जौकूट चूर्ण कर लेवें।

मात्रा–३ से ४ तोले का क्वाथ करके तीन हिस्से करें। जिसमें से सुबह, मध्याह्न एवं सांयकाल को दिन में ३ बार, आध-आध तोला शहद के साथ क्वाथ पिलावें।

उपयोग–रास्नादि क्वाथ अकेला अथवा अनुपान रूप से देने से श्वास रोग, हृदय ग्रह (छाती जकड़ना), पार्श्वशूल (उरस्तोय Empyma), हिक्का और कास का नाश करता है।

श्वास प्रकोप में श्वासदमन चूर्ण के साथ हार्दिक श्वास और श्वास रोग की जीर्णावस्था में श्रृङ्गाराभ्र अथवा श्वासकासचिन्तामणि के साथ, छाती जकड़ने में समीरपन्नग रस के साथ, पार्श्वशूल अथवा उरस्तोय में कल्याणसुन्दर रस, रससिंदूर अथवा लक्ष्मीविलास रस (सुवर्णयुक्त) के साथ रास्नादि क्वाथ देने से तत्काल लाभ होता है।

१८. सिंह्यादि क्वाथ।

द्रव्य–बड़ी कटेली, हल्दी, अडूसे के पत्ते, गिलोय, सोंठ, छोटी इलायची के दाने, भारंगी, नागरमोथा, पीपल और कालीमिर्च इन १० औषधियों को समान भाग लें।

विधि–सबको लेकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–१ तोले का क्वाथ करके रोज सुबह २१ दिन तक सरसों के तैल में मिलाकर लेवें। तैल १ से २ तोले तक शक्ति अनुसार मिलावें।

उपयोग–सिंह्यादि क्वाथ के सेवन से छाती में इकटठा हुआ कफ बाहर निकल जाता है, फेफड़े शुद्ध हो जाते हैं और श्वास-कास दूर होकर शरीर निरोग हो जाता है।

जिनकी छाती में कफ बहुत भर जाता है, रोजाना कफ पाव से आध सेर निकलता रहता है, शरीर बहुत अशक्त हो जाता है, थोड़े से चलने पर अथवा काम करने से श्वासोच्छ्वास बढ़ जाता है, भोजन का पचन सम्यक् रूप से नहीं होता, रोज आम और कफ की उत्पत्ति अधिक परिमाण में बढ़ती रहती है। तब इस क्वाथ का सेवन करने से थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है।

१९. हरिद्रादि लेह।

विधि–हल्दी, कालीमिर्च, काली मुनक्का, रास्ना, पीपल और कचूर इन ६ औषधियों को समान भाग मिलाकर चूर्ण करें।

मात्रा–१ तोला चूर्ण और १ तोला पुराना गुड़ और १ तोला तैल (गोघृत हो, तो अति उत्तम) मिलाकर दो हिस्से करें। १-१ भाग को १-१ घण्टे पर चटावें।

उपयोग–श्वास की तीव्रावस्था, जिनको बहुत घबराहट हो रही हो उनको इस लेह को चटा देने से कफ सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। पतला कफ सूख जाता है और श्वास का वेग शान्त हो जाता है।

(१४) राजयक्ष्मा-उरःक्षत।

१. अभ्रकल्प।

द्रव्य-अभ्रक भस्म ८ तोले, लोहभस्म ६ तोले; शुद्ध पारद ४ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले लें।

विधि-पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म मिला त्रिफला, भांगरा, सुहिंजने की छाल, चिरायता और चित्रकमूल की छाल इसके क्वाथ या रस की क्रमशः ७-७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ गोली दिन में २ बार वंशलोचन ४ रत्ती, पीपल २ रत्ती, केशर १/२ रत्ती, कस्तूरी १/४ रत्ती और शहद ३ माशे (राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में गोघृत १॥ माशा भी) के साथ मिलाकर ४० दिन या अधिक समय तक देते रहें।

उपयोग-यह रस राजयक्ष्मा, धातुशोष, जीर्णज्वर, श्वास, कास, अग्निमांद्य, राजयक्ष्माजनित ज्वर, मलावरोध, अरुचि, पाण्डु आदि को दूर करता है।

यह रसायन राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में और अति निस्तेज और निर्बल बने हुए जीर्ण ज्वर के रोगियों के लिये हितकारक है। यह कल्प रक्तधातु, वातसंस्थान तथा फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, यकृत् और अन्त्र इन इन्द्रियों पर विशेष लाभ पहुँचाता है। ज्वर दीर्घकाल पर्यन्त रह जाने पर जब पचन संस्थान अपना कार्य योग्य नहीं कर सकता, तब अन्त्र में मल संगृहीत होकर उस से विष का शोषण रक्त में होता है। फिर यकृत्, वृक्क, फुफ्फुस और मस्तिष्क में विक्रिया (Reaction) होने लगती है। पश्चात् धातु शोष की प्राप्ति होती है अथवा क्षय कीटाणुओं की प्राप्ति होकर राजयक्ष्मा की उत्पत्ति हो जाती है। अतः उस उत्पत्ति को सत्वर रोक दिया जाये और अन्त्र शक्ति को सबल बना दिया जाये तो राजयक्ष्मा की आगे संप्राप्ति नहीं होती। इस अवस्था में यह कल्प अति हितकारक है।

वक्तव्य-अति शुष्क कास हो, तो यह अथवा अन्य अभ्रक मिश्रित औषधि नहीं दी जाती।

२. हेमाभ्रसिंदूर।

द्रव्य-प्रथम विधि-सुवर्ण भस्म, रससिंदूर और अभ्रकभस्म, तीनों को समभाग मिला लें।

विधि-अदरक के रस की ७ भावनायें देकर शुष्क चूर्ण बना लेवें या आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(नि.र.)*

मात्रा-१ से २ गोली तक, दिन में दो या तीन बार, अदरक के रस, शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-इस रस का ४० दिन तक सेवन करने से क्षय, क्षयजनित पाण्डु और दारुण क्षयज कास नष्ट होते हैं। यह औषध क्षय की द्वितीयावस्था की प्राप्ति होने पर अति हितावह माना गया है।

यह सिंदुर-कल्प बल्य, रसायन, क्षयहर और कफघ्न है। इस औषधि में मुख्य गुण सुवर्णभस्म का है। सुवर्णभस्म सब प्रकार के कीटाणुजन्य क्षयों की प्रशस्त औषधि है। इसका मुख्य धर्म क्षय के कीटाणुओं को नष्ट करना है। यह उसमें प्रभाविक शक्ति है। अभ्रक भस्म उरःस्थ अवयवों को विशेषतः फुफ्फुस और श्वासनलिका को बल देता है एवं हृद्य और रसायन है। इन दोनों के साथ रससिंदूर का संयोग कराया है। रससिंदूर में रसायन, कीटाणुनाशक, योगवाही और कफघ्न गुण अवस्थित है। इन तीनों के संयोग से क्षयरोग में कीटाणुओं को नाश करने के अतिरिक्त शारीरिक शक्ति के संरक्षण के अद्वितीय गुण का अविर्भाव हो जाता है। इस हेतु से इस औषध का उपयोग राजयक्ष्मा पर उत्तम होता है।

ज्वर अधिक होने पर इस रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इसके सेवन से ज्वरोष्मा बढ़ने की संभावना है। कफ अधिक गिरता हो और सहज कफ निकलता हो, तो इस औषध का उपयोग करना चाहिये। यदि उरःक्षत हो और उसमें से रक्तस्राव होता हो, तो इस रस का उपयोग न करना ही अच्छा माना जायेगा। अन्यथा इस रस के प्रयोग से ज्वर बढ़ता है; रक्त न गिरता हो तो भी गिरने लगता है। कफज क्षय में बलमांस विहीनत्व अधिक होने पर इस रसायन की बहुत कम मात्रा अनुकूल अनुपान (वासावलेह या च्यवनप्राशावलेह आदि) के साथ देते रहने से या दूध का ताजा मक्खन, शहद और मिश्री अनुपान रूप से देने से अच्छा लाभ पहुँचाता है।

सूतिका रोग में पाण्डुता एक लक्षण होता है। इसके अनेक हेतु होते हैं। (१) प्रसवकाल में अति रक्तस्राव हो जाना; (२) गर्भ की वृद्धि के लिये निर्बल रुग्ण माता के रक्त का विशेष अंश नष्ट हो जाना; (३) प्रसवकाल की वेदना का परिणाम माता के मन; नाड़ी चक्र और वातवाहिनियों पर होना; (४) प्रसूतावस्था के प्रारम्भ के १० दिनों में और इसके बाद भी प्रदरस्राव अधिक होना, (५) प्रसव के पश्चात् पीड़ा के शमनार्थ पूर्ण विश्रान्ति न मिलना; (६) प्रसवकाल में योग्य सम्हाल न रहना; (७) गर्भावस्था या जापे में योग्य आहार न मिलना, (८) मानसिक व्यथा हो जाने से एक प्रकार की पाण्डुता आ जाना, आदि कारण होते हैं। यह पाण्डुता रक्त के भीतर रक्ताणुओं की कमी से होती है। इस पाण्डुता के साथ अनेक इन्द्रियाँ भी बलहीन हो जाती है, ओज और स्नेह का क्षय हो जाता है। इस हेतु से केवल लोह-कल्प से पूरा लाभ नहीं मिल सकता। ऐसी परिस्थिति में इस हेमाभ्रसिंदूर का उत्तम उपयोग होता है।

यदि क्षयकास और क्षतजकास में कफ की अधिकता हो, तो इस औषध का उत्तम उपयोग होता है।

राजयक्ष्मा पीड़ित रोगियों पर इस रस का प्रयोग किया गया। इस रस के साथ गिलोय सत्व ४ रत्ती सितोपलादि चूर्ण २ माशा मिलाकर

च्यवनप्राश के साथ सेवन कराया गया। लगभग १-२ मास सेवन करते रहने पर इस योग से पूर्ण लाभ होते देखा गया। यह राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में अत्यन्त लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त जिस कुष्ट रोग में पृथक्-पृथक् स्थान पर दाग हों, उनमें यदि स्पर्शबोध न होता हो, सुप्ति अधिक हो, तो उस विकार पर इस रसायन से लाभ हो जाता है।

(औ.गु.ध.शा. के आधार से)

(द्वितीय विधि) द्रव्य-हेममाक्षिक भस्म, रससिंदूर (षड्गुणगन्धक जारित), अभ्रक भस्म शतपुटी (रक्तवर्ग भावित), ये तीनों द्रव्य समभाग लें।

विधि-पहिले रससिन्दूर को अदरक के रस में घोटें। निश्चन्द्र होने पर अभ्रक और हेममाक्षिक भस्म मिला पुनः अदरक के रस की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से ३ गोली; दिन में २ या ३ बार; मधु के साथ दें। ऊपर भृङ्गराज, जल पिप्पली (कथरा; सौ. रतबोलियो) और मकोयका स्वरस २॥ से ४ तोले पिलावें।

उपयोग-यह रस प्रथम विधि की अपेक्षा अल्प मूल्य वाला होने पर भी पाण्डु, शोथ, जलोदर, अन्य उदरव्याधि तथा क्षय की पूर्वावस्था, मध्यमावस्था प्लीहावृद्धि, यकृद्रोग, अन्त्रविकार, सर्वाङ्गशोथ, एकांगशोथ, शरीर के किसी भी अवयव का शोथ, स्त्रियों के अनेक जटिल रोग (गर्भाशय के रोग, योनिव्यापत्), शिरोरोग और अनेक विध फुफ्फुस विकार में निश्चयपूर्वक लाभ करता है। यह हमारा शताशोऽनुभूत, अव्यर्थ प्रयोग है। शोथ के समग्र प्रकार और उदर रोगों में रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिये।

रोगी की निर्बल अवस्था में जब कि विरेचन कराना कठिन और संदेहास्पद हो, तो उक्त अनुपान से केवल २-४ बार मूत्र विशेष मात्रा में आता है और १ सप्ताह के अन्दर ही चमत्कारी लाभ होता है। प्रथम विधि वाला हेमाभ्रसन्दिूर जिन-जिन रोगों पर दिया जाता है, उन सब रोगों में यह भी पूर्व कथित रीति से सेवन कराने पर विलक्षण लाभ दर्शाता है, यह अचूक औषधि है। *(श्री राधाकृष्ण वैद्य)*

वक्तव्य-हृदय, आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस, वृक्क आदि अवयवों को आधुनिक विद्वानों ने इन्द्रिय कहा है। इसी हेतु से फिजियोलोजी का अर्थ इन्द्रिय-विज्ञान या इन्द्रिय कार्य-विज्ञान माना है। उस प्रवाह के अनुसार हमने भी स्वतन्त्र क्रिया करने वाले अवयवों के स्थान पर इन्द्रिय शब्द का प्रयोग किया है।

शोथ होने में हेतु विशेषतः हृदय, यकृत् और वृक्क इन ३ इन्द्रियों के कार्य की विकृति है। अतः इन इन्द्रियों के कार्यों को मूल स्थिति में स्थापित कराना चाहिये एवं दूसरा कार्य रक्त में से जल को बाहर निकालना है। (रक्त में जल की न्यूनता होने पर अन्तस्त्वचा में अथवा जलोदर रोग में उदर-कला के भीतर से संग्रहीत जल रक्त में आकर्षित हो जाता है।) हृदय विकारज शोथ में इन दोनों प्रकार के कार्यों की सिद्धि इस रस के सेवन से हो जाती है।

विवेचन-इस रस में अभ्रक और रससिंदूर है जो हृदय को सबल बनाते हैं। रससिन्दूर और अभ्रक में यकृत्पित्तस्राव को बढ़ाने का गुण भी है। सुवर्ण-माक्षिक पित्तशामक, शीतवीर्य और रक्तप्रसादक है। भृङ्गराज यकृद् बलवर्द्धक है। रससिंदूरादि के प्रभाव से यकृत् अपने कार्य करने में सशक्त बन जाता है। अभ्रकभस्म वृक्क और मूत्राशय को बल प्रदान करती है। माक्षिक मूत्र में जाने वाले पित्त, अम्ल द्रव्य आदि का रूपान्तर कराती है तथा मकोय आदि अनुपान द्रव्य-मूत्रवृद्धि करा रक्तस्थ विष और अधिक जल को बाहर निकालने में सहायता पहुँचाते हैं। इस तरह संप्राप्ति-शास्त्रानुसार विचार करने पर इस रसायन में रोग के मूल हेतु और संग्रहीत दोष को दूर करने का गुण विदित होता है।

वक्तव्य-इस हेमाभ्रसिन्दूर को गूलर के शर्बत के साथ में सेवन कराया जाये, तो उरःक्षत में एवं रक्तष्टीवी को विशेष लाभकारी है। हृदय की विशेष निर्बलता होने पर आध आध रत्ती मुक्तापिष्टी अथवा मुक्ता भस्म या जहरमोहरा खताई अथवा अकीकपिष्टी भी मिला दी जाय तो अधिक गुण होता है।

३. राजयक्ष्मकरिमत्तकेसरी।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध बच्छनाभ, सुवर्ण भस्म, मौक्तिक भस्म और शुद्ध गन्धक इन पांचों को २-२ तोले लें।

विधि-पहले पारद, गन्धक की कज्जली कर फिर बच्छनाभ, सुवर्ण भस्म और मौक्तिक भस्म क्रमशः मिलावें। पश्चात् चित्रकमूल के क्वाथ और अदरक के रस की अनुक्रम से ३-३ भावनायें देवें। चूर्ण शुष्क हो जाने पर ताम्बे के कटोरदान में भर संधिस्थान पर बाम्बी की मिट्टी और नमक मिलाकर कपड़मिट्टी करें। संधिस्थान सूखने पर कटोरदान को एक हांडी में रखें। ऊपर नीचे चारों ओर ४-४ अंगुल सफेद राख दबायें। फिर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ावें। ३ घण्टे तक मन्दाग्नि देवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल त्रिकटु के क्वाथ और अदरक के रस की ३-३ भावनायें देकर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में दो बार, अमृतासत्व, पीपल और शहद के साथ दें।

उपयोग-इस रस का उपयोग राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था, द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था तीनों में होता है। यदि राजयक्ष्मा में अग्निमांद्य प्रधान हो, तो प्रथमावस्था में इस रस के साथ गिलोयसत्व ४ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, श्रृङ्गभस्म १ रत्ती और सितोपलादि १॥ माशा मिला

घी-शहद के साथ देने से ज्वर, शुष्ककास और अग्निमान्द्य दूर होकर रोग का शमन सत्वर हो जाता है। द्वितीयावस्था में इस रस के साथ प्रवाल पिष्टी २ रत्ती और श्रृङ्गभस्म २ रत्ती मिला देनी चाहिये। तृतीयावस्था में ज्वर कम हो उस समय इस रस का प्रयोग हो सकता है। किन्तु तीव्र ज्वरावस्था होने पर प्रवाल, श्रृङ्ग और रौप्यभस्म देना, विशेष लाभदायक माना जायेगा। इस रस में अदरक, चित्रकमूल और त्रिकटु की भावना होने से अग्नि को प्रबल करने और विकार को शमन करने में अच्छी सहायता मिल जाती है। बच्छनाभ का संयोग होने से इस रस से ज्वर शमन का कार्य भी होता है। राजयक्ष्मा की उत्पत्ति में मूल हेतु पचनेन्द्रिय संस्थान की विकृति और जीर्ण ज्वर होने पर यह रसायन विशेष हितकारक माना गया है।

वक्तव्य-शारीरिक बल और हृदय कमजोर हो, तो मात्रा कम देनी चाहिये। ज्वर कम रहता हो, तो इसका विशेष उपयोग नहीं करना चाहिये। सुवर्णमालिनीवसन्त अथवा जयमंगल रस विशेष हितकर है।

४. क्षयकुलान्तक रस।

द्रव्य-हरताल, मौक्तिक, सुवर्ण और रजत इन सबकी भस्म तथा हिंगुल ४-४ तोले, भीमसेनी कपूर १ तोला और प्रवाल भस्म १ तोला लें।

विधि-सबको मिला वासापत्र के स्वरस में १२ घण्टे और सफेद कटेली के रस में ६ घण्टे तक खरलकर चक्रिका बनावें। फिर सूर्य के ताप में सुखा बालुका यन्त्र में रख शिव-शक्ति की पूजाकर ६ घण्टे तक दीपक की अग्नि देवें। पश्चात् यन्त्र स्वाङ्गशीतल होने पर चक्रिका को निकालकर पीस लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-आध आध रत्ती, दिन में दो बार, शहद के साथ ४० दिन या कम से कम २० दिन तक सेवन करावें।

उपयोग-यह रस कीटाणुनाशक, पूयका रूपान्तरण कराने वाला, बल्य, कफस्रावी, दीपन, पाचन और हृद्य है। प्रमेह, रक्तप्रकोप, श्वास, कास आदि सब उपद्रवों सह सर्व प्रकार के क्षयों को नष्ट करता है तथा देह को सुवर्ण के सदृश बना देता है। क्षय की द्वितीय और तृतीयावस्था में व्यवहृत होता है।

सूचना-पथ्य का यथोचित पालन करना चाहिये। इमली और धूम्रपान का अति निषेध है स्त्री सहवास से आग्रहपूर्वक बचना चाहिये। मन, क्रम, वचन से ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिये।

५. क्षयकेसरी रस।

द्रव्य-हरताल से बना हुआ माणिक्य रस ४ तोले, रौप्यभस्म, अभ्रक भस्म, श्रृङ्गभस्म और प्रवालपिष्टी २-२ तोले, शंखभस्म, रससिन्दूर और सफेद मिर्च १-१ तोला, मोती की पिष्टी, सुवर्ण के वर्क, लोहबान के फूल, कपूर और केशर ६-६ माशे, कस्तूरी ३ माशे और पीपरमेण्ट के फूल १॥ माशा लें।

विधि-पहले माणिक्य रस के साथ भस्म, पिष्टी और सुवर्ण वर्क मिलावें। पश्चात् लोहबान पुष्प और मिर्च मिला, गिलोय, वासा पत्र और कटेली पञ्चाङ्ग के क्वाथ की १-१ भावना देकर सुखा, चूर्ण करें। फिर केशर, कस्तूरी, पीपरमेण्ट के फूल और कपूर मिला नागरबेल के पान के रस में ६ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बना लें। (आ.नि.मा.)

मात्रा-१ से २ गोली दिन में २ या ३ समय १/४ रत्ती कपूर और नागरबेल के पान में या सितोपलादि चूर्ण अथवा लवङ्गादि चूर्ण के साथ दें।

उपयोग-यह रस राजयक्ष्मा, जीर्ण विषमज्वर, राजयक्ष्मा में ज्वर और कफ विकार तथा श्वासरोग, वातरोग, कुष्ठरोग, त्वचारोग और वातरक्त आदि व्याधियों का नाश करता है। क्षय की सब अवस्थाओं में यह व्यवहृत होता है। किन्तु प्रथमावस्था में प्रायः अनुकूल नहीं रहता, उत्तेजना बढ़कर कास बढ़ जाती है।

विवेचन-हरताल और सुवर्ण के योग के सेवन से क्षय कीटाणु नष्ट होते हैं। तीक्ष्ण ज्वरावस्था में इतर सुवर्णयुक्त योग प्रयुक्त नहीं होता। ऐसे समय पर विष और कीटाणुओं का नाश करने के साथ ज्वर को शमन करने का महत्वपूर्ण कार्य इस रस से होता है; इसके सेवन से संग्रहीत कफ बाहर निकलता है; कफोत्पत्ति कम होने से फुफ्फुस दोष-मुक्त हो जाते हैं। ज्वर विष का ह्रास हो जाता है तथा शक्ति शनैः शनैः बढ़ने लगती है। राजयक्ष्मा रोग पर यह उत्तम औषध है।

वक्तव्य-इस रस में यदि शुद्ध बच्छनाभ भी मिलाया जाये, तो ज्वर निराकरण के लिये उत्तम है।

६. रसराज रस (यक्ष्मा)।

द्रव्य-(प्रथम विधि) मोतीपिष्टी, प्रवालपिष्टी, पारद भस्म (रससिंदूर), सुवर्णभस्म, शुद्ध मनः शिला, अभ्रक भस्म, लोहभस्म और वङ्गभस्म इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर गिलोय और शतावर के स्वरस की ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। *(र.चं.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में २ बार, शहद, घी और सफेद मिर्च के चूर्ण के साथ अथवा वासा-स्वरस और शहद के साथ या बकरी के दूध के साथ देवें।

उपयोग-यह रस क्षय की द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था से उरःक्षत होकर रक्तस्राव होने लगता है, उस अवस्था में हितकर है। इसके

सेवन से रक्तस्राव का रोध होता है, कफ की शुद्धि होती है, ज्वर मर्यादा में रहता है तथा स्फूर्ति की वृद्धि होती है। इस रस में आम और दूषित कफ को जलाने, विष को नष्ट करने और क्षय-कीटाणुओं कोनष्ट करने का गुण होने से उर:क्षत के मूल हेतु को दूर कर शरीर को स्वस्थ बना देता है।

क्वचित् बाहर की चोट लगने, शराब, गांजा आदि के अधिक सेवन या तीक्ष्ण औषधि आदि सेवन से, क्षय की संप्राप्ति न होने पर भी उर:क्षत होकर रक्तस्राव (रक्तवमन या कफ के साथ रक्त आना) होने लगता है। उन विकारों पर ६ माशे घी, ३ माशे शहद और ४ रत्ती सफेद मिर्च (या १॥ माशे सितोपलादि चूर्ण) के साथ दिन में २ या ३ बार देने से सत्वर लाभ होता है।

शुक्रक्षय के हेत से कृशता, पाण्डुता और अग्निमान्द्य होकर क्षय की प्राप्ति हुई हो, फुफ्फुस के खोखले होने का संदेह हो, कफ सरलता से न निकलता हो, कफ का रंग पीला और दुर्गन्ध युक्त हो गया हो, उस पर भी इस रस का सेवन अति हितकारक है। इसके साथ श्रृंङ्गभस्म, गोदन्ती भस्म और मुलहठी मिला देने से विशेष लाभ पहुँचता है।

द्रव्य-(द्वितीय विधि)शुद्ध शंख और शुद्ध शुक्ति १०-१० तोले तथा शुद्ध गन्धक २० तोले लें।

विधि-सबको मिला ३ दिन आक के दूध में खरल करके गोला बनावें। फिर सूर्य के ताप में सुखा, शराव-सम्पुटकर गजपुट में फूंक देवें। स्वाङ्गशीत होने पर
सम्पुट को खोल गोले को निकालकर पीस लेवें। ***(र.यो.सा.)***

मात्रा-२-२ रत्ती। सफेद मिर्च के ४ रत्ती चूर्ण और घृत के साथ मिला कर दिन में ३ समय देते रहें।

उपयोग-यह राजयक्ष्मा की कास का शमन करता है। यह अति सौम्य, मृदु क्षाररूप औषध है। तीव्रक्षार के समान यह बलपूर्वक कफ को बाहर नहीं निकालता, किन्तु इसका कार्य अति कोमल रूप से होता है। राजयक्ष्मा में तीव्र औषध का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये। तीव्र औषध से रक्तस्राव की वृद्धि होने की भीति रहती है एवं कास बार-बार वेगपूर्वक चलती रहे, ऐसी उत्तेजक औषधि भी हितकर नहीं मानी जाती। कारण रोगी के कष्ट में वृद्धि हो जाती है। अत: इस सौम्य औषधि का प्रयोग हितकर है। इस रसराज से कफ सरलता से बाहर निकलता है।कास के वेग की अधिक वृद्धि नहीं होती, रक्तस्राव नहीं होने देता एवं रक्त गिरता हो तो भी उसे बन्द करता है। साथ ही पचन-क्रिया को सबल बनाता है और भोजन में योग्य रस का निर्माण कराता है। यदि अतिसार हो गया हो, तो उसे भी दूर कर देता है।

विवेचन-राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था जब तक कास का वेग प्रबल होता है और शुष्क कास चलती रहती है, तब तक कोई भी उत्तेजक औषधि का प्रयोग नहीं होता उस अवस्था में यह समशीतोष्ण औषधि दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त शुष्क कास के शमन में मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी और सितोपलादि भी, घी-शहद के साथ विशेष हितकारक है। फिर जब कफ गिरने लगता है तब इस रस का प्रयोग कफस्रावार्थ होता है।

चिरकारी और जीर्ण श्वासनलिका के प्रदाहजन्य कास रोग की रसोत्सृजनावस्था में कफ गिरने लगता है। वह शनै: शनै: गाढ़ा और बताशे के सदृश बन जाता है। कभी-कभी कफ कठिनता से और कभी-कभी अत्यधिक परिमाण में सहज ही निकलता है। इस विकार पर सबल रोगी को कफनि:सारक उत्तेजक क्षारप्रधान औषध, अर्कक्षार, वङ्गक्षार, अपामार्ग आदि कफ को पतला बनाकर बाहर निकालने के लिये दिये जाते हैं। किन्तु वृद्ध बालक, सगर्भा स्त्री तथा दुर्बल और कृश रोगियों को अग्नि प्रदीप्त कराने, कफ निकालने तथा कफोत्पत्ति का ह्रास और श्वासनलिका के प्रदाह को शमन कराने के लिये सौम्य औषधि देनी चाहिये। यह कार्य इस रस से उत्तम प्रकार से होता हैं।

श्वासनलिका-प्रसारण हो जाने पर उसमें कफ संग्रहीत होता है तथा दुर्गन्ध की उत्पत्ति होती है। शनै: शनै: कीटाणुओं के हेतु से व्रण हो जाते हैं। पश्चात् कफ के साथ किञ्चित् रक्त भी आता है। बार-बार प्रबल कास उपस्थित होती है। विशेषत: रात्रि को और प्रात: काल उठने पर कास अधिक आती है। इस व्याधि पर रसराज को कालीमिर्च और गोघृत के साथ मिला कर देने से कफ को बाहर निकलने में सहायता मिल जाती है, कीटाणु नष्ट होतें हैं। कफ की दुर्गन्ध दूर होती है, तथा व्रण शनै:शनै भर जाते है।

७. तरुणानन्द रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोला लेकर कज्जली करें। फिर बेल छाल, अरणी की छाल, गम्भारी की छाल, पाढल, खरैंटी मूल की छाल, नागर मोथा पुनर्नवा की जड़, आँवला, बड़ी कटेली का पञ्चाङ्ग अडूसे के पत्ते, विदारीकंद और शतावरी इन १२ औषधियों में से प्रत्येक का स्वरस अथवा क्वाथ ५-५ तोला लेकर अनुक्रम से कज्जली के साथ मिला खरल करें। फिर अडूसे के पत्तों का स्वरस १० तोला लेकर उसके साथ खरल करें। फिर तैयार कज्जली से दुगुनी अभ्रक भस्म और आधा भाग कपूर तथा जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीस पत्र, छोटी इलायची के दाने और लवंग इन ६ औषधियों का १-१ माशा बारीक चूर्ण लें।

विधि-इन्हें मिलाकर बिदारीकंद के स्वरस की १ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार, नारियल के पानी अथवा गाय या बकरी के दूध के साथ देवें।

उपयोग-तरुणानन्द क्षय, धातुक्षय, दारुण उर:क्षत: पांच प्रकार की खांसी, स्वरभंग, अरुचि, कामला, पांडु, कफवृद्धि, हलीमक, जीर्णज्वर,

तृषा, वातजगुल्म, आमप्रधान संग्रहणी, अतिसार, शोथ, कुष्ठ और भगंदर, जीर्ण प्रतिश्याय आदि रोगों को दूर करता है।

तरुणानंद रस-उग्रता शामक, जन्तुघ्न, कफहर जीर्ण ज्वर नाशक है। क्षय की प्रथम और द्वितीयावस्था में जब तक खांसी वेगपूर्वक आती रहे, कफ पतला बिना बंधा हुआ आता हो, मन्द-मन्द ज्वर बना रहता हो, व्याकुलता हो, किसी-किसी रोगी के फेफड़ों में क्षत हो जाने से अथवा छोटी रक्तवाहिनियों के टूट जाने से रक्त आता हो, उस समय यह रस बहुत अच्छा लाभ पहुँचाता है।

वक्तव्य-छोटी रक्तवाहियाँ टूटने से रक्त आता हो, उसको बकरी का दूध अनुपान रूप से देना अच्छा लाभदायक है। जिसकी छाती में दाह होता हो; मस्तिष्क में उष्णता रहती हो, उनको नारियल का पानी अनुपान रूप से बहुत हितकर होता है। अपचन, अफारा, अधिक तृषा, अरुचि रहना आदि लक्षण हों। तो कच्चे नारियल के पानी के साथ देना चाहिये। कफ बहुत अधिक हो, जीर्णज्वर से त्रास बढ़ रहा हो, उनको सुदर्शनादि क्वाथ के साथ देने से बहुत जल्दी लाभ होता है।

८. श्रृङ्गाराभ्र।

द्रव्य-अभ्रक भस्म ८ तोला, कपूर, जावित्री, खस, गजपीपल, तमाल पत्र, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धायके फूल ये १२ औषधियां ३-३ माशे, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, ये सब औषधियाँ १॥-१॥ माशे, छोटी इलायची के दाने, जायफल और शुद्ध गन्धक ६-६ माशे तथा शुद्ध पारद ३ माशे तथा शुद्ध पारद ३ माशे लेवें।

विधि-पहले पारद और गन्धक की कज्जली करें, फिर अभ्रक भस्म मिलावें। बाद में काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला पानी के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गालियां बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार अदरक या नागरबेल के पान के साथ सुबह और शाम देवें।

उपयोग-श्रृङ्गाराभ्र-अग्निमांद्य से उत्पन्न हुए रोग ज्वर, उदरपीड़ा, क्षय, धातु क्षय, आन्त्रिकक्षय, खांसी, श्वास, शोथ, नेत्रविकार, प्रमेह, मेदोवृद्धि, वमन, शूल, अम्लपित्त, अधिक, तृषा, घोर गुल्म रोग (वातज गुल्म), पांडु, रक्तपित्त, विषविकार, जुकाम, प्रतिश्याय, कफवृद्धि, आमवातज, कफ और वातज रोग तथा सब प्रकार के पित्त रोगों का नाश करता है। यह औषधि बलवर्धक, धातुपौष्टिक है, युवावस्था की प्राप्ति कराती है तथा कामोत्तेजक है। श्रृंगाराभ्र का पथ्य पूर्वक सेवन कराने से बलीपलित का नाश होकर मनुष्य कामदेव के समान और दीर्घायु हो जाता है।

जिस रोगी का शरीर धीरे-धीरे निर्बल होता जाये, बाहर से ज्यादा रोग मालूम न होता हो, वातनाड़ियों में निर्बलता आ गई हो, तथा पचन संस्थान जिसका नियमित कार्य न करता हो उनको श्रृंगाराभ्र आर्शीवाभ्र के समान लाभदायक है। वात-पित्त और कफ तीनों प्रकार की प्रकृति वालों को यह औषधि अनुकूल रहती है।

मानसिक चिन्ता, अधिक परिश्रम करना, अति स्त्री सहवास अथवा ज्वरादि रोग अधिक समय तक रहने से शरीर निर्बल हो गया हो, तो श्रृङ्गाराभ्र को च्यवनप्राशावलेह के साथ सेवन कराने से शरीर स्वस्थ और बलवान् बनता है।

जिन रोगियों के पतला-पतला कफस्राव होता हो, खांसी बार-बार चलती रहती है, मन्द-मन्द ज्वर बना रहता हो, रोगी को अत्यन्त निर्बलता आ गई हो, अन्नपचन न होता हो, ऐसी स्थिति में श्रृंगाराभ्र चौसठ प्रहरी पीपल व गिलोय सत्व के साथ मिलाकर वासावलेह के साथ देने पर अच्छा लाभ दर्शाता है।

सूचना-इस औषधि के सेवनकाल में पत्ती शाक ज्यादा प्रमाण में नहीं खाना चहिये। खटाई, इमली, कच्चीं केरी आदि और कब्ज करने वाले पदार्थ त्याग देवें।

९. सिद्ध संजीवनी वटी।

द्रव्य-शुद्ध कुचला १ सेर का कल्क, केशर, दालचीनी और पीपल २-२ तोले, लौंग, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च और चांदी के वर्क ४-४ तोले, अकरकरा ८ तोले, कर्पूर १ तोला, कस्तूरी और सोने के वर्क ३-३ माशे लें।

विधि-१ से २ कुचिले को ४२ दिन गोमूत्र में भिगोवें। दिन में सूर्य के ताप में बर्तन रखें। रोज गोमूत्र बदल देवें, फिर ऊपर से छिल्के और भीतर से जिब्भी निकालकर जल से धोवें। जब तक हरा जल निकले तब तक बराबर जल मिला-मिलाकर धोवें। धोने की रीति ऐसी है कि आज जल में मसल धोकर फिर जल में भिगो दें। दूसरे दिन मसल धोकर, फिर नया जल रख दें। इस तरह लगभग एक सप्ताह तक धोने से कुचिले की तीव्रता विशेषांश में निकल जाती है। जल हरा न होने पर उसे १० सेर दूध में मिला कर उबालें। दूध की रबड़ी बन जाने पर कुचिले को निकाल जल से धोकर खरल में मर्दन करें। आवश्यकता हो, तो जल मिलाकर कल्क बना लेवें। सबको कुचिले के कल्क के साथ मिलावें। पहले वर्क मिलावें। फिर केशर, कपूर और कस्तूरी मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर एक जीव-कर लें। बाद में जायफल १० तोले, कालीमिर्च १० तोले और लौंग २० तोले को कूट ४ सेर जल मिलाकर क्वाथ करें। शेष जल १ सेर रहने पर उतार छानकर उसके साथ खरल करें। इस क्वाथ की ३ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(आ.नि.मा.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ समय, दूध या जल के साथ देवें।

उपयोग–यह गुटिका उत्तम रसायन, दीपन, पाचन, ग्राही, कीटाणुनाशक, बल्य, कामोत्तेजक और वातशामक है। इसके सेवन से राजयक्ष्मा रोगी के ज्वर और कफज कास का शमन होकर क्षुधा प्रदीप्त होता है और शक्ति बढ़ती है। निरोगी मनुष्य को शक्तिवृद्धि के लिये भी यह गुटिका हितकारक है। स्वस्थ व्यक्तियों को देना हो, तो पाचनशक्ति के अनुसार दूध-घी का सेवन अधिक कराना चाहिये। इसके सेवन से वीर्य की स्तम्भनशक्ति, स्फूर्ति और शारीरिक बल की वृद्धि होती है।

१०. शुक्रसंजीवन रस।

द्रव्य–मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, सुवर्णभस्म, भीमसेनी कपूर, छोटी-पीपल, केशर, वंशलोचन अमृतासत्व, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, लौंग, बीज निकाली हुई मुनक्का, शुद्ध शिलाजीत, चन्द्रोदय और कस्तूरी, इन १६ औषधियों को समभाग लेवें।

विधि–पहले चन्द्रोदय, सुवर्ण भस्म, मुक्ता और प्रवाल को मिलावें। फिर काष्ठादि द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। कपूर, केशर, कस्तूरी को अलग रखें। मुनक्का चटनी की तरह पीसकर मिलावें। शिलाजीत को जल में मिलाकर डालें। फिर १-१ दिन तक गुलाबजल और वासापत्र स्वरस में खरल करें। तीसरे दिन सुबह कर्पूर, केशर और कस्तूरी मिला गुलाबजल में ६ घन्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

(सि.भे.म.)

वक्तव्य–हम इसके साथ वङ्गभस्म और यशद (हत्वन्त) भस्म मिलाते हैं।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, बकरी या गौ के दूध अथवा पेठे के रस के साथ।

उपयोग–यह रस शामक, मस्तिष्क तथा हृदय-बलवर्द्धक, अस्थिपोषक निद्राप्रद और क्षयहर है। पित्त प्रकोप और शुक्रक्षय के रोगियों के लिये अतिहितकारक है। देह में उष्णता, निस्तेज मुखमण्डल, बार-बार चक्कर आना, कान में गूंज, मस्तिष्क में घड़ी के दोलक के समान टक-टक होते रहना, अग्निमांद्य, मन्द-मन्द ज्वर रहना, पेशाब में पीलापन, हाथ-पैर टूटना, आलस्य बना रहना, थोड़ा विचार करने पर मस्तिष्क थक जाना, साधारण प्रतिकूलता में क्रोध उत्पन्न होना, दृष्टि मन्द हो जाना, ऊँची आवाज भी सहन न होना, शीत उष्ण सहन न होना, वीर्य में पतलापन और उष्णता रहना, स्वप्नदोष होना आदि लक्षण भासते हैं। इस पर यह रस अति हितकारक है। जो मनुष्य युवावस्था में वृद्ध बन जाता है, उसके वीर्य को सुदृढ़ बनाकर पुनः नवयुवावस्था की प्राप्ति कराता है। यह रस स्त्रियों और बालकों के लिये भी हितकर माना गया है।

शुक्र के अति दुरुपयोग से उत्पन्न क्षय, ज्वर के पीछे की निर्बलता, अति मानसिक परिश्रम से उत्पन्न मस्तिष्क की शिथिलता, वातप्रकोप, पित्तवृद्धि और हृदय की धड़कन बढ़ जाना आदि पर यह हितकारक है।

११. रजतादि लोह।

द्रव्य–हरतालमारित रजतभस्म और अभ्रक १-१ तोला, त्रिकटु, त्रिफला और लोहभस्म, तीनों २-२ तोले लें।

विधि–सबको खरल करके मिला लें।

(र.चं.)

मात्रा–२-४ रत्ती, दिन में २ बार, घी-शहद के साथ दें।

उपयोग–यह रस अति बढ़े हुए क्षय, पाण्डु, उदररोग, अर्श, श्वास, कास, नेत्ररोग तथा सब प्रकार के पित्त प्रकोपज रोगों को दूर करता है।

विवेचन–राजयक्ष्मा रोग की द्वितीयावस्था में जब ज्वर अधिक हो, तब सुवर्ण वाली औषधि देने से बहुधा ज्वर बढ़ जाता है, उस अवस्था में यह रस हितावह है। इस रस के सेवन से ज्वर का ह्रास होता है, पार्श्व शूल शमन होता है, प्लीहावृद्धि दूर होती है, अर्श की पीड़ा शान्त होती है तथा मानसिक प्रसन्नता होती है। किसी स्थान में खिंचाव या शूल होता हो, खट्टी डकारें आती हों, पेशाब में जलन होती हो, नेत्रज्योति मन्द हो गई हो, तो ये सब लक्षण दूर हो जाते हैं।

राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में मन्दज्वर, शुष्क कास, कण्ठ में शुष्कता, पाण्डुता, नेत्रदाह, अपचन, चक्कर आना और बेचैनी आदि लक्षण प्रतीत होते हैं, उस अवस्था में यह लोह, प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व के साथ घी शक्कर में दिया जाता है। इसके सेवन से ज्वर और कास में लाभ पहुँचता है और पाण्डुता दूर होती है।

यदि रक्तवाहिनियाँ संकुचित हो जाने से निर्बलता, वातिकपीड़ा और धातुक्षय उत्पन्न हुए हों, स्थान-स्थान पर अकस्मात् पीड़ा हो जाती हो और अग्निमांद्य रहता हो, तो उसे दूर करने के लिये रजतादि लोह अति हितावह है। इसके सेवन से शुष्कता, शिथिलता, शूल और पाण्डुता, दूर होकर देह सबल बन जाती है।

१२. लोकेश्वर पोटली (सुवर्ण लोकनाथ रस)।

द्रव्य–रससिंदूर ४ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोला और शुद्ध गन्धक ८ तोले लें।

विधि–सबको मिला, कज्जलीकर, चित्रकमूल के क्वाथ में ३ दिन मर्दन करें फिर उसे रससिंदूर से चौगुनी शुद्ध पीली कौड़ियों में

भरें और सोहागे को आक के दूध में घोटकर सब कौड़ियों के मुँह बन्द करें। पश्चात् उनको चूना पोती हुई मिट्टी की छोटी हांडी या तवे के संपुट में रखकर दृढ़ मुखमुद्रा करें। सब कौड़ियों का मुँह नीचे रहना चाहिये अन्यथा पारा उड़ जाने की सम्भावना है। सूखने पर शाम को १५ इञ्च के खड्डे में अग्नि देवें। (आंच कम होने पर कौड़ियाँ कच्ची रह जायेंगी, अधिक अग्नि होगी तो पारद उड़ जायेगा) स्वांगशीत होने पर निकालकर कौड़ियों समेत पीस लेवें। *(र.र.स.)*

मात्रा-१ से २ रत्ती, पुष्टि के लिये शहद-पीपल और क्षयादि रोगों पर कालीमिर्च और घी के साथ दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग-यह लोकनाथ दीपन-पाचन, क्षयनाशक, कृमिघ्न, उग्र, पौष्टिक और वीर्यवर्द्धक है। शारीरिक कृशता, अग्निमान्द्य, कास, कफपित्त प्रकोप और राजयक्ष्मा आदि को दूर करता है। अति कृश, विषम भोजन जनित क्षय, कास, हिक्का, पाण्डु, मूर्ख वैद्यों के उपचार से क्षीण और रोगग्रस्त बने हुए मनुष्य, विविध प्रकार के ज्वर, ज्वर से संतप्त, जिन्हें चक्कर आते रहते हों, मदात्यय रोगी और उन्माद से ग्रसित, सब इस लोकेश्वर पोटली के सेवन से स्वस्थ होते हैं।

सूचना-इस रसायन के सेवनकाल में नमक का त्याग करना चाहिये। अन्यथा पारद भस्म का रूपान्तर होकर यथोचित लाभ नहीं दे सकता। भोजन घी और दही के साथ करना चाहिये। बैंगन, बेलफल, तैल, करेले, मैथुन और क्रोध का त्याग करना चाहिये। औषध सेवन कर चित्त लेटें और पैर ऊँचे रक्खें (जिससे उदर में रक्ताभिसरण-क्रिया अधिक होकर दोष को जलाने में सुविधा रहती है।)

आमाशयपित्त तेज होने अथवा रसायन का अति सेवन हो जाने से वमन हो जाये, तो गिलोय का स्वरस या बिजौर की जड़ का स्वरस अथवा सैंधानमक लगे हुए लाजा चूर्ण (भात की लाही) या शहद पीपल का सेवन करें।

पित्त प्रकोप उपस्थित होने पर शीतल जल से स्नान करावें या शिर पर शीतल जल की धारा डालें और केले खिलावें।

कफ-वृद्धि हो, तो भोजन में कालीमिर्च का चूर्ण या गुड़ मिला हुआ अदरक का पाक देवें।

वमन होने पर धनिये का मगज या छोटी इलायची और कालीमिर्च का चूर्ण घी-शक्कर से देवें। कृमि प्रकोप में अजमोद और बायविडङ्ग मट्ठे के साथ देवें या एरण्ड मूल और नागरमोथे का क्वाथ पिलावें।

विरेचन होने पर छोटी दूधी का रस गुनगुना कर या भाँग का चूर्ण शहद के साथ देवें।

हड़फूटन होने पर घी की मालिश करा उष्ण जल में स्नान करावें।

यह लोकेश्वर पोटली अत्यन्त वीर्यवान उत्तम औषध है। यह कफ प्रकोप पर और कफ प्रकृति वालों के लिये हितकर है। इस लोकेश्वर रस के गुण रसतन्त्रासार (प्रथम खण्ड) में लिखे हुए लोकनाथ रस से मिलते जुलते हैं। लोकनाथ में सुवर्ण नहीं है और इसमें सुवर्ण होने से इन्द्रिय विष, गरविष और राजयक्ष्मा के कीटाणुओं के नाश के लिये यह विशेष कार्य करता है। आम वृद्धिजन्य शारीरिक कृशता, संग्रहणी, अन्त्रक्षय, फुफ्फुसक्षय, कफप्रकोप, देह में विविध स्थानों पर उत्पन्न गांठ और मांसक्षय एवं अस्थिक्षय पर व्यवहृत होता है। विशेष गुणधर्म लोकनाथ रस के समान है।

१३. रत्नगर्भ पोटली रस।

द्रव्य-रससिंदूर, हीराभस्म (अभाव में वैक्रान्त भस्म), सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म १०० पुटी, लोहभस्म, ताम्रभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शंखभस्म और तुत्थभस्म इन १२ औषधियों को समान भाग लें।

विधि-सबको मिलाकर ७ दिन तक चित्रकमूल की छाल के क्वाथ में मर्दन करें। तत्पश्चात् शुद्ध पीली कोड़ियौं में भरें। पश्चात् आक के दूध में सोहागे को मिलाकर कौड़ियों को मुखमुद्रा करें। तत्पश्चात् कौड़ियों के मुँह नीचे रहे इस प्रकार मिट्टी की मजबूत छोटी हाँडी में भर ढक्कन, ढक कपड़मिट्टी करके सूखने पर गजपुट अग्नि में पकावें। स्वांग शीत हो जाने पर निकाल कौड़ियों सहित औषधि को खरलकर निर्गुण्डी के रस (अथवा क्वाथ की) और अदरक के रस की ७-७ और चित्रकमूल की छाल के क्वाथ की २१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में २ बार, शहद और पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सफेदमिर्च और घी के साथ देवें।

उपयोग-रत्नगर्भ पोटली रस साध्य और असाध्य क्षय का नाश करता है। तथा आठ प्रकार का महारोग, वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, अश्मरी, मूढगर्भ, उदररोग, कास, श्वास और अतिसार आदि रोगों को उपद्रव सहित नष्ट करता है।

रत्नगर्भ पोटली रस-रसायन, उष्णवीर्य, उत्तेजक, वातहर, कफघ्न, विषशामक, रक्त प्रसाधक, जन्तुघ्न, दीपन, पाचन और क्षतरोपण है। पचनेन्द्रिय संस्थान, श्वास संस्थान, वातनाड़ी संस्थान और अस्थि रचना को बलवान बनाता है। इस हेतु से अनेक असाध्य रोगों में यह चमत्कारिक लाभ पहुंचा सकता है। वात और कफप्रधान प्रकृति वालों के लिये भी हितकर है।

क्षय की द्वितीय और तृतीयावस्था में यह रस अच्छा काम करता है। मात्र प्रथमावस्था में (जिनको शुष्क कास हो) यह रस लाभदायक नहीं। इस रस के सेवन से पूयप्रधान कफ का शोधन होने लगता है। नयी उत्पत्ति रुक जाती है। और फेफड़ों के क्षत भर जाते हैं। पूय का शोधन करने का कार्य ताम्र और तुत्थ करता है। हीरा (वैक्रान्त), रससिंदूर, स्वर्ण आदि जंतुघ्न है। इस हेतु के ज्वर १०२° तक अथवा

अधिक बढ़ जाये तो कम होने लगता है। मुक्ता, प्रवाल, शंख आदि क्षतों (उर:क्षतों) की रोपण क्रिया में सहायक बनते हैं। लोह, माक्षिक रक्त को शुद्ध करके वृद्धि करते हैं। नागभस्म रस-रक्तादिसप्त धातुओं का पोषण करती है। इस हेतु से रत्नगर्भ-पोटली रस वात और कफ प्रकृति के रोगियों के लिये आर्शीवाद स्वरूप है।

इस रस के साथ में अभ्रक भस्म और शृङ्गभस्म मिश्रण करके देने से जल्दी लाभ होता है। जिन रोगियों को रात्रि में खाँसी अधिक त्रास देती हो, तो अनुपान रूप से सितोपलादि चूर्ण गोघृत और शहद के साथ देने से शान्ति आ जाती है।

विवेचन-जिनके आमाशय और यकृत निर्बल हो गये हों, उनको उदर और अन्त्र की पाचनक्रिया की विकृति हो जाती है, फिर आम विष में शोषित होता रहता है। और विविध रोगों की सृष्टि होती रहती है इस मूल कारण को रत्नगर्भ पोटली रस दूर करता है। उसमें भी रक्तादि धातुओं में प्रवेश हुए विष को जलाता है। परिणाम में पाचनशक्ति के विकार से उत्पन्न हुआ रोग, अग्निमान्द्य, अपचन, अरुचि, मलावरोध, अतिसार, अर्श, संग्रहणी और मेहादि रोग तथा रक्त में विष प्रवेश से उत्पन्न हुए रोग क्षय, कुष्ठ, वात व्याधि आदि रोगों का नाश होता है।

यकृत् निर्बल होने से पाचक पित्त (Bile) की उत्पत्ति कम होती है। जिससे रक्त मे विष मिश्रण होने के बाद पित्त की रचना बिगड़ती है। पित्त में से अश्मरी उत्पन्न करने वाला पदार्थ पृथक् होता है इस हेतु से वृक्क और मूत्राशय में शर्करा, सिकता और अश्मरी की रचना होने लगती है। कितनीक सुकुमार स्त्रियों एवं पुरुषों को किसी-किसी समय पित्ताशय में अश्मरी हो जाती है। यह अश्मरी बहुत त्रास देती है। इससे भयंकर शूल चलती है एवं वमन होती है। रुग्ण (स्त्री-पुरुष) बहुत व्याकुल और हताश हो जाते हैं। इस रोग के उत्पादक कारण, रत्नगर्भ पोटली रस के सेवन से दूर हो जाते हैं और सरलता से मिट जाते हैं।

जिनके रक्त में आम विष वृद्धि हो जाती है, उनकी वातनाड़ियों को दूषित रक्त से पोषण मिलता है। परिणाम में अनेक वातरोग, कटिवात, हाथ पैरों में शूल चलना, उदरशूल, गृध्रसी, मस्तिष्क शूल आदि रोगों की संप्राप्ति होती है यह आम विष रत्नगर्भ रस के सेवन से दूर होता है। इतना ही नहीं, स्वर्ण रौप्य आदि द्रव्यों से वातनाड़ियों को पोषण मिलने लगता है। जिससे वातरोग में यह रस उत्तम लाभदायक है।

कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति जन्तुओं से होती है ऐसी आधुनिक चिकित्सकों की मान्यता है। आयुर्वेद के मतानुसार वात, पित्त, कफ, मूल त्रिदोष निर्बल हो जाने से इस रोग की सृष्टि होती है। रत्नगर्भ पोटली रस से वात, पित्त, कफ मूल त्रिदोष सबल बनते हैं। जिससे जंतुओं का नाश होकर रक्तादि धातुएं शुद्ध और सबल बनती है इस कारण से गलित्कुष्ठ, वातरक्त, अस्थिक्षय, कंठमाला, क्षय आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना-पित्त प्रधान प्रकृति वाले मनुष्यों को उष्णता अधिक रहती हो, तृषा अधिक लगती हो, प्रस्वेद अधिक आता हो, निद्रा कम आती हो तथा व्याकुलता रहती हो, उनको रत्नगर्भ पोटली रस नहीं देना चाहिये।

१४. मृगांक रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद २ तोले, सुवर्ण भस्म २ तोले, मोतीपिष्टी ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और सोहागे का फूला २ तोले लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों को मिला कांजी के साथ ३ दिन तक खरल करके गोला बनावें फिर सूर्य के ताप में सुखाकर दृढ़ शराव संपुट करें। पश्चात् लवण यन्त्र में रखकर ४ प्रहर तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर रक्ताभ गोले को निकाल कर पीस लेवें। ***(र.यो.सा.)***

मात्रा-१/२ से १ रत्ती तक। तुरन्त पीसी हुई ७ या १४ नग कालीमिर्च के चूर्ण और शहद के साथ दिन में २ बार सुबह और रात्रि को देवें।

उपयोग-यह मृगाङ्ग रस राजयक्ष्मा रोग को दूर करता है। सामान्यत: इसका उपयोग शुष्क कास का दमन होने और कफोत्पत्ति हो जाने के पश्चात् करना चाहिये।

विवेचन-क्षय की प्रथमावस्था में सूखी खांसी चलती रहती है, ऐसी अवस्था में फुफ्फुसों की श्लैष्मिक कला को स्निग्ध बनाने और कीटाणुओं की ग्रन्थियों को नष्ट करने की आवश्यकता रहती है। अत: प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण के साथ मृगांक का सेवन सुबह कम मात्रा में सम्हाल पूर्वक कराया जाता है। अनुपान घी शहद विशेष हितावह रहते हैं। द्वितीयावस्था में कफ गाढ़ा, सफेद फिर पीला बन जाता है, उस कफ को बाहर निकालने, कीटाणुओ की वृद्धि रोकने, विष को दूर करने और फुफ्फुसों को निर्दोष बनाने के लिये उपचार किया जाता है। इस हेतु से अभ्रकभस्म और श्रृंगभस्म के साथ मृगांक मिलाया जाता है। अनुपान रूप से कासकण्डनावलेह विशेष सहायक बनता है। यदि कफ में रक्त आ रहा हो, तो अनुपान वासावलेह देना चाहिये।

तृतीयावस्था में फुफ्फुसों में बड़े-बड़े गढ्ढे बन जाते हैं। कफ हरे पीले रंग का दुर्गन्धमय बताशे के सदृश बन्धा हुआ आता है। उस अवस्था में अभ्रक, श्रृंग और वासवलेह के साथ मृगाँक देना चाहिये। यदि कोई महत्त्व का अन्य लक्षण उपस्थित हो तो उसके अनुरूप योजना कर देनी चाहिये। राजयक्ष्मा के समान धातुक्षय, जीर्ण ज्वर जन्य निर्बलता तथा संग्रहणी, कास श्वास, कुष्ठ, पाण्डु आदि से प्राप्त निर्बलता

को नष्ट करने के लिये यह मृगाँक रस निर्भय रूप से व्यवहृत होता है। अनुपान कालीमिर्च या रोगानुसार।

पथ्य-लघु पथ्य भोजन, मांस रस, बकरी का घी, दूध और मक्खन, गाय के दही का मटठा, इलायची, जीरा, कालीमिर्च की छोंकवाले भात, दाल, शाक, गेहूँ के मोटे आटे की पतली रोटी, दलिया, परवल आदि शाक पथ्य है। विदाही पदार्थ, हींग, क्षार, बेलफल, बैंगन, करेला, स्त्री-सहवास, क्रोध, परिश्रम, मानसिक चिन्ता आदि अपथ्य है। जो लहसुन और प्याज रोज खाते हैं, उनके लिये हितावह है।

सूचना-रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में दिये हुए महामृगाङ्क की अपेक्षा इस रस में स्वर्ण और मुक्ता अधिक मात्रा में मिलाया है। अत: इसका उपयोग कम मात्रा में करना चाहिये।

१५. कपर्द पोटली रस।

द्रव्य-कपर्दिका भस्म १२ तोले, शंख भस्म ८ तोले, प्रवालभस्म ४ तोले, सोहागे का फूला ३ तोले, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद २-२ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोला और कालीमिर्च का चूर्ण २४ तोले लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर शेष औषधियां मिलाकर खरल कर लेवें।

मात्रा-१ से २ रत्ती दिन में २ बार मक्खन मिश्री या घी शहद के साथ देवें।

उपयोग-कपर्द पोटली रस कीटाणुनाशक, अग्निप्रदीपक और शुष्क-कासहर है। इसका उपयोग राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमान्द्य, हाथ पैर टूटना, मूत्र में पीलापन और शुष्क कास आदि लक्षण होने पर किया जाता है। आवश्यकतानुसार सूतशेखर, लघुवसंत नं. २, सितोपलादि चूर्ण या गिलोयसत्व, प्रवालपिष्टी आदि औषधि मिलाकर उपयोग किया जाता है।

१६. सुवर्ण सर्वाङ्गसुन्दर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मोती भस्म, प्रवाल भस्म, शंख भस्म ये ८ औषधियाँ १-१ तोला, सोहागे का फूला २ तोले और सुवर्ण भस्म आधा तोला लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियाँ मिला ३ दिन नींबू के रस में खरल कर चक्रिका (पूरी) बनावें। उसे धूप में सुखा दृढ़ शरावसंपुट कर (१ सेर गोबरी के चूर्ण की अग्नि) देवें स्वाङ्ग शीत होने पर निकाल लोहभस्म ६ माशे और हिंगुल ३ माशे मिलाकर खरलकर लेवें।

मात्रा-आध से २ रत्ती दिन में २ बार, पीपल-शहद, घृत, मिश्री, नागरबेल के पान, मिश्री अथवा अदरक के रस और शहद के साथ।

उपयोग-यह रस राजयक्ष्मा, घोर वातपित्त ज्वर, दारुण सन्निपात, अर्शरोग, ग्रहणीविकार, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातज रोग तथा कफज रोगों को नाश करता है।

यह रस सगर्भा, प्रसूता, बालक आदि सबको निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। नूतन संग्रहणी रोग में भी कितनों को मुखपाक, बड़े-बड़े जुलाब, अरुचि, पाण्डुता, उदर वातसंग्रह, जिह्वा पतली, लेसदार और निस्तेज, अच्छी निद्रा न आना, शिर के बाल गिरते रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह रस उत्तम लाभ पहुँचाता है। आमाशय और अन्त्र, दोनों अवयवों की क्रिया योग्य बनाता है। कीटाणुओं का नाश करता है। आमविष को जलाता है और रक्ताणुओं की वृद्धि कर स्वास्थ्य और बल प्रदान करता है।

विवेचन-राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में शुष्क कास और मन्द ज्वर के साथ किसी-किसी को दाह, मुखपाक एवं अतिसार, उदावर्त, अपचन और अधिक निर्बलता रहती है। उसे १-१ माशे सितोपलादि चूर्ण, चोसठ प्रहरी पीपल, कामदुधा रस और घी-शहद के साथ दिन में ३ बार देते रहने से कास, ज्वर और दाह आदि लक्षणों सह राजयक्ष्मा दूर हो जाता है।

राजयक्ष्मा की दूसरी अवस्था में बंधा हुआ कफ गिरना, दोपहर के बाद ज्वर बढ़ जाना, कभी दाह, मुखपाक, अरुचि और पतले दस्त भी लगना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उनको इस रस का सेवन अभ्रक भस्म और श्रृंगभस्म कामदुधा रस १-१ रत्ती मिलाकर शहद के साथ सेवन कराया जाता है। कफ में दुर्गन्ध हो, आमाशय में अम्लरस हो, तो लोहबान के फूल और मुलहठी २-२ रत्ती मिला देना चाहिये। यदि कफ में रक्त गिरता हो तो अनुपान रूप से वासावलेह देना चाहिये।

उग्र औषधि या तमाखू आदि का अधिक सेवन या मानसिक चिन्ता और दीर्घकाल पर्यन्त आहार-विहार में स्वच्छन्दता के हेतु से पित्त प्रकोपज प्रदर की प्राप्ति होती है, फिर जल सदृश पतला, उष्ण स्राव होता रहता है और अग्निमांद्य, मुखपाक, उदर में भारीपन, छाती और कण्ठ मे दाह, हृदय में घबराहट, मस्तिष्क में उग्रता, निद्राह्रास, मासिक धर्म देर से असमय पर थोड़ा होना, देह श्याम और शुष्क हो जाना और निर्बलता के कारण अन्धेरा आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर इस रस का सेवन मधुकाद्यावलेह के साथ १-२ मास तक सेवन कराने पर प्रदर शमन हो जाता है और शरीरसबल और तेजस्वी बन जाता है।

१७. गुडूच्यादि रसायन।

द्रव्य (प्रथम विधि)-खस, वासा के पान, तेजपात, कूठ, आँवले, सफेद मूसली, छोटी इलाचयी के दाने, रेणुका बीज, मुनक्का, केशर,

नागकेशर, कमल का कन्द, कपूर सफेद चन्दन का बुरादा, लालचन्दन, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, मुलहठी, धान का लावा, असगन्ध, शतावर, गोखरू, कोंच के बीज, जायफल, शीतल मिर्च और तगर इन २७ औषधियों का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला रससिंदूर, अभ्रक भस्म, वङ्गभस्म और लोहभस्म १-१ तोला और गिलोय सत्व ३१ तोला लें।

विधि-पहले भस्मों को मिलावें। फिर गिलोयसत्व और शेष काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला लें।

वक्तव्य-मूल ग्रन्थकार ने इस चूर्ण का मोदक बना लेने को लिखा है। हमने मिश्री, घी और शहद रोज मिला लेना अच्छा माना है। इस हेतु से प्रयोग चूर्ण रूप से दिया है।

मात्रा-चूर्ण ३ माशे, मिश्री ३ माशे, घी ३ माशे, और शहद ३ माशे मिलाकर दिन में ३ बार सुबह शाम तथा रात्रि को देवें, ऊपर गौ का दूध पिलावें।

उपयोग-इस रसायन के सेवन से क्षय, रक्तपित्त, पैरों की जलन, रक्त-प्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ, सब प्रकार के प्रमेह, दारुण सोमरोग और जीर्ण ज्वर आदि दूर होते हैं। यह रसायन बल्य, वृष्यों में उत्तम, मेध्य और राज-रोग (दढ़ घोर रोगों) का नाशक है। शास्त्रकारों ने इसका प्रयोग १ वर्ष या ६ मास तक करने का विधान किया है। यह उत्तम कल्प है।

सूचना-इस कल्प के सेवन काल में क्षार (सज्जीखार, जवाखार आदि) और तेज खटाई का त्याग करना चाहिये। वृक्कविकार हो और मूत्र में पूय जाता हो तो रससिंदूर नहीं मिलाना नहीं चाहिये।

द्रव्य (द्वितीय विधि)-गिलोय सत्व और खूबकला ४-४ तोले तथा प्रवालपिष्टी और छोटी इलायची के दाने २-२ तोले और श्रृंङ्गभस्म १ तोला लेवें।

विधि-सबको मिलाकर मिश्रण करें।

मात्रा-१-१ माशा दिन में ३ बार शहद के साथ देवें। ऊपर बनफ्शा का अर्क पिलावें।

उपयोग-यह रसायन क्षय के बढ़े हुए ज्वर के विष को दूर करने के लिये अति उपयोगी है। इसके सेवन से क्षयज्वर अधिक नहीं बढ़ता। कफ सरलता से निकलता जाता है और शारीरिक शक्ति का क्षय नहीं होता। जीर्ण ज्वर में भी इस रसायन के सेवन से अच्छा लाभ पहुँचता है।

१८. अमृतप्राश घृत।

द्रव्य-जीवक (लम्बा सालब), ऋषभक (अभाव में विदारीकन्द), वीरा (क्षीरविदारी अर्थात् पेठा), जीवन्ती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा (शकाकुल छोटी), महामेदा (शकाकुल बड़ी), काकोली (श्याम मूसली), क्षीरकाकोली (श्वेत मूसली), छोटी कटेली की जड़, कड़ी कटेली की जड़, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, मुलहठी, कोंच के बीज, शतावर, ऋद्धि (अभाव में खरैंटी), फालसा, भारंगी, बड़ी-द्राक्षा (मुनक्का), बृहती, सिंघाड़ा, भुई आँवला, श्वेत विदारीकन्द, पीपल, खरैंटी, बेर, अखरोट की गिरी, खजूर, बादाम की गिरी और पिस्ता, ये ३६ औषधियाँ और चिरौंजी, नेवजा (चिलगोजा), खुरमाणी ये सब १-१ तोले लें।

विधि-सबको बारीक चूर्ण करें। उसे जल में पीसकर कल्क करें। फिर आंवले, विदारीकन्द (शतावर का स्वरस) और ईख का स्वरस, बकरे के माँस का रस, गोदुग्ध और गोघृत, ये सब १२८-१२८ तोले और उक्त कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर घृतपाक करें। घी पक जाने पर कड़ाही को उतार तुरन्त घी निकाल लेवें। घृत शीतल होने पर, शहद ३२ तोले, मिश्री २०० तोले तथा कालीमिर्च, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात और नागकेशर का चूर्ण २-२ तोले मिला देवें। ***(च.सं.)***

सूचना-(१)मांस रस न मिलाना हो, तो उतना साबुत उड़द का क्वाथ डालें।

(२) घृत में से आधा या पौन हिस्सा अलग रख लेना चाहिये। आवश्यकता अनुसार प्रक्षेपद्रव्य, मिलाते रहना चाहिये।

(३) अखरोट, बादाम, पिस्ता आदि तैलीय द्रव्य अच्छे ताजे एवं प्रकृति के अनुकूल हों, वे ही मिलावें।

मात्रा-आध से एक तोले एक दिन में दो बार गोदुग्ध के साथ सेवन करें। भोजन में मुख्य दूध और मांसरस का सेवन करें।

उपयोग-यह अमृतप्राश घृत मनुष्यों के लिए अमृत रूप ही है यह शीतवीर्य, उत्तम पौष्टिक अवलेह है। यह कृश, क्षीणवीर्य, क्षीणदेह और क्षीण स्वर वाले को पुष्ट और बलवान बना देता है। यह कास, हिक्का, ज्वर, क्षय, रक्तपित्त, श्वास, तृषा, दाह, पित्तप्रकोप, वमन, मूर्च्छा, हृद्रोग, योनिरोग, मूत्ररोग आदि को नष्ट करता है। यह संतानप्रद और पौष्टिक है।

यह घृत राजयक्ष्मा और बालकों के सूखारोग में हितकारक है। विशेष स्त्री समागम करने वाले, दुर्बल और ज्वर आदि रोग से मुक्त हुए निर्बल मनुष्यों को पुष्ट बनाता है।

१९. गन्धक-कज्जली योग।

विधि-छोटी कटेली, निर्गुण्डी और पूतिकरंज तीनों का रस या क्वाथ ४ सेर तक कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि देवें। उबलने

पर उसमें शुद्ध गन्धक का चूर्ण ४० तोले डालकर कलछी से चलावे। गन्धक गलकर मिल जाने पर शुद्ध पारद ४० तोले डालें। पारद गन्धक मिल जाने पर कड़ाही को नीचे उतार तुरन्त दूसरे लोहपात्र में निकालकर रख देवें, शीतल होने पर पात्र को (या पत्थर की खरल को) धूप में रखकर घोंटें। रस सूखकर कज्जली तैयार हो जाने पर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–१-१ रत्ती दिन में २ या ३ बार देवें।

अनुपान–नूतन घोर ज्वर में १ माशा भूना जीरा और १ माशा सेंधानमक के साथ मिलाकर नागरबेल के पान में देवें। ऊपर गरम जल पिलावें। वमन होने पर शक्कर के साथ। आमप्रकोप (अपचन) में गुड़ के साथ देकर ऊपर जल पिलावें। क्षय में अजा दुग्ध के साथ। रक्तातिसार में कुड़े की छाल के क्वाथ के साथ। रक्तक्षय में उदुम्बर के साथ।

उपयोग–गन्धक-कज्जली योग वातज, पित्तज और कफज तीनों प्रकृति वालों के लिये उपकारक है। ज्वर, कफकास, शुष्क कास, कफप्रकोप, अपचन, उदर कृमि, क्षय, रक्तक्षय, रक्तातिसार, रक्तप्रदर और वमन आदि रोगों को दूर करता है इसे आचार्यों ने सर्व व्याधिहर कहा है। यह देह शुद्धिकर, व्याधि नाशक और आयुवर्द्धक है। यह सब प्रकृति को अनुकूल आ जाये, ऐसा सौम्य योग है। सगर्भा, प्रसूता और बालकों के लिये भी इसकी योजना निर्भय रूप से कर सकते हैं।

विवेचन–राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था मे सामान्यत: मन्द-मन्द ज्वर और शुष्क कास, द्वितीयावस्था में कफोत्पत्ति होकर पहले सफेद कफ बनना फिर पीला बनना, बताशे सदृश बनना, उनमें पूय मिश्रित होकर नीलाभ बताशे सदृश बनना आदि क्रमशः रूपान्तर होता जाता है। तृतीयावस्था में ज्वर ९९ डिग्री से १०१ डिग्री तक बनना, घटना, दुर्गन्धयुक्त नीलाभ कफ निकलना, बलक्षय, शरीर हाडपिञ्जरवत् और निस्तेज बन जाना, रात्रिको स्वेद आकर अधिक निर्बलता आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सब अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न अनुपानों के साथ गन्धक कज्ज्ली योग की योजना हो सकती है। प्रथमावस्था में प्रवालपिष्टी, अमृतासत्व, सितोपलादि चूर्ण और घी शहद मिलाना विशेष हितावह विदित हुआ है। द्वितीयावस्था में सुवर्ण प्रधान औषधि मृगाङ्क, जयमङ्गल रस, अभ्रक भस्म, श्रृङ्गभस्म, प्रवालपिष्टी के साथ मिलाकर च्यवनप्राश या एलादिमन्थ के साथ देना चाहिये। कफ अत्यधिक हो गया हो, तो वासावलेह के साथ देवें। तृतीयावस्था की प्राप्ति होने पर रोग निवारण की आशा बहुधा नहीं रहती। फिर भी सुखरूप और शान्तिमय अन्तिम जीवन व्यतीत होने के लिये तृतीयावस्था में अनुपान वासावलेह के साथ उपकारक है। आवश्यकतानुसार सुवर्ण, अभ्रक, मुक्ता, प्रवाल, श्रृंग मिला देना चाहिये।

सामान्य स्थिति के राजयक्ष्मा रोगी के लिये यह कम खर्च वाला और प्रभावशाली योग है। सुवर्ण, मुक्ता आदि बहुमूल्य औषधियाँ मिलायी जायेंगी, तो यह अपना विशेष चमत्कार दर्शाता है।

यह रोग बालकों के ज्वर, अतिसार, वमन, प्रतिश्याय और उदरकृमि पर भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। प्रसूता को भी मन्द ज्वर और अतिसार होने पर दिया जाता है।

२०. विन्ध्यवासी योग।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शतावरी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गंगरेन और खरैंटी इन ९ औषधियों को १-१ तोला लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् ९ तोला लोहभस्म मिलाकर खरल करें।

वक्तव्य–हम इस योग में प्रवालपिष्टी, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म और श्रृङ्ग भस्म तीनों ९-९ तोले भी मिलाते हैं।

मात्रा–१ से २ रत्ती दिन में ३ बार सितोपलादि चूर्ण, घी और शहद के साथ अथवा अमृतप्राश घी के साथ।

उपयोग–यह रोग शुक्रक्षय शोक अथवा चिन्ताजनित शोथ, उर:क्षत, कण्ठरोग, कफ-कास, श्वास, बाहुस्तंभ, अर्दित आदि रोगों सहित उग्र राजयक्ष्मा को दूर करता है।

जिनको मानसिक अघात अथवा दिनों तक ज्वर आदि रोग के हेतु से अथवा शुक्र का अत्यन्त दुरुपयोग होने से शरीर निस्तेज और निर्बल बन जाता है जिससे अग्निमांद्य, वातप्रकोप, रक्ताभिसरण क्रिया मांद्य, निद्रावृद्धि, आलस्य, स्मरण शक्ति की न्यूनता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में विन्ध्यवासी योग को १-२ मास तक सेवन करने से सब रोग दूर होकर शरीर सबल और निरोग बन जाता है।

२१. एलादि मन्थ।

द्रव्य–छोटी इलायची के दाने, अजमोद, आँवला, हरड़, बहेड़ा तथा खैर, नीम, असना (साल भेद) और साल (विजय सार) (इन ४ वृक्षों के बीच की कठोर लकड़ी का बुरादा) बायविडङ्ग, भिलावा, चित्रकमूल की छाल, बच, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागरमोथा और फिटकरी इन १८ औषधियों को १६-१६ तोले लें।

विधि–जौकूट चूर्ण करें। फिर १६ गुने जल में मिला चतुर्थांश करें। इस क्वाथ में ६४ तोले गोघृत मिलाकर सिद्ध करें। घृत शेष रहने पर निकाल मिश्री १२० तोले, वंशलोचन २४ तोले और शहद १२८ तोले मिला मथनी से मथकर एक जीव बना लेवें। ***(च.द.)***

वक्तव्य–हम इस घृत में तेजपात, दालचीनी और छोटी इलायची ४-४ तोले मिलाते हैं।

मात्रा-१ से २ तोले प्रातः काल देवें। ऊपर गौ अथवा बकरी का गुनगुना दूध पिलावें। इस तरह रात्रि को भी सोने के आध घण्टे पहले दे सकते हैं।

उपयोग-यह मन्थ अत्यन्त मेधावर्धक, बुद्धि को शुद्ध करने वाला, नेत्र के लिये हितकारक और आयुवर्द्धक है। तथा राजयक्ष्मा, शूल, पाण्डु और भगन्दर को नष्ट करता है। इसके सेवन में कुछ भी अपथ्य नहीं है और जो भी प्रकृति के विरुद्ध हो उससे दूर रहना चाहिये।

यह राजयक्ष्मा की सब अवस्थाओं में तथा उरःक्षत कास और कृशता में हितकारक है। इसके सेवन से शक्ति का संरक्षण होता है। ज्वर के पश्चात् की निर्बलता, बराबर संतान होने से आई हुई कृशता, बालकों को सूखा रोग इन सबके लिये यह सफलतापूर्वक व्यवहृत होता है।

यह एलादिमन्थ राजयक्ष्मा एवं उरःक्षती पीड़ित रोगियों को अनुपान रूप से देते रहने से लाभ दर्शाता है यह राजयक्ष्मा की सहायक औषधि है।

यह अग्निमांद्य, उदररोग एवं उदर में चलनेवाली शूल परिणामशूल में अजवायन रस के साथ पथ्य पालनसह सेवन करने से लाभ करता है। यह उदर के समस्त विकार नष्ट करके अग्निप्रदीप्त करता है।

२२. हरितक्यादि अवलेह (स्वानुभूत)।

द्रव्य-अर्क गुलाब ४० तोला, तुरंजबीन २० तोला, गुलकन्द मुरब्बा, हरड़, मुरब्बा सेव, मुरब्बा अदरक, गुले गावजवां १०-१० तोले, वंशलोचन छोटी इलायची के दाने, उस्तेखद्दूस १-१ तोला, कपूर काचरी १/२ तोला, रूमीमस्तंगी १ तोला, लेवें।

विधि-पहले अर्क गुलाब और तुरंजबीन को कलईदार बर्तन में भिगो देवें। १२ घन्टे बाद उबालकर आधा रख लेवें। गुलकन्द गुलाब, मुरब्बा हरड़, मुरब्बा सेव, मुरब्बा अदरक, इनको अच्छी तरह साफ करके बारीक पीसकर पिट्ठी के समान बना लेवें और उपरोक्त अर्क में डालकर अवलेह सिद्ध करें। पक्व हो जाने पर गुलेगावजवान, वंशलोचन, छोटी इलायची, उस्तेखद्दूस, कपूरकाचरी, रूमीमस्तंगी का कपड़छन चूर्ण बना मिला देवें।

मात्रा-१/२-१/२ तोला दिन में दो समय दूध केसाथ या पानी के साथ।

वक्तव्य-(१) मुरब्बों की पिट्ठी चासनी में डालकर सिद्ध करने में पूरा ख्याल रखें अगर आँच तेज दे दी गई तो कड़वा हो जावेगा और जल जावेगा।

(२) शक्कर या मधु के स्थान पर चासनी तुरंजबीन की ली गई है। जहाँ आम की अवस्था में मीठा निषेध हो या हानिकर हो उस अवस्था में तुरंजबीन की चासनी करते हैं।

(३) यूनानी में प्रायः खमीरों तथा माजूनों में शक्कर की जगह मधु की चाशनी की जाती है वे लोग शहद को आग पर चढ़ाना हानिकार नहीं मानते। मलमल में छानकर आग पर चढ़ाने मोम का अधिकांश भाग ऊपर छन जाता है।

उपयोग-यह हरीतक्यादि अवलेह कब्ज, जीर्ण प्रवाहिका, आमातिसार, आंत्रिकशोथ, अग्निमान्द्य, दाह आदि पर लाभ करता है। आन्त्रिक क्षय में अनुपान रूप से देते रहने से लाभ करता है।

२३. कुर्स कहरुवा।

द्रव्य-गिले अरमनी (स्वर्ण गैरिक), निशास्ता और गुलाब के फूल १४-१४ माशे, कहरवा और हब्बुलास २१-२१ माशे, मीठे जल के केकड़े की सम्पुट में की हुई भस्म, कुलफे के बीज, सफेद चन्दन का बुरादा, कद्दू का मगज और ककड़ी का मगज ३५-३५ माशे, गीले मखतुल १०॥ माशे, प्रवालपिष्टी, कतीरा, वंशलोचन और धोया हुआ सादनजका चूर्ण १७॥-१७॥ माशे, अरबी गोंद (या बबूल का गोंद) और मुलहठी सत्व (रब्बे चूस) २४॥-२४॥ माशे मथ कपूर॥। माशा लेवें।

विधि-सबको कूट कपड़छन चूर्णकर बिहीदाने के लुआब में पीसकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ या टिकिया बना लेवें। ***(तिब्बे अकबरी)***

मात्रा-२ से ४ गोली, दिन में या ३ बार वासास्वरस और शहद केसाथ अथवा पेठे के ५-५ तोले स्वरस के साथ देवें।

उपयोग-यह प्रयोग उरःक्षत होकर होने वाले रक्तस्राव को सत्वर बन्द करता है। एवं खांसी में कफ के साथ रक्त आता हो, रक्त की वान्ति होती हो, नकसीर चलती हो इन सब में लाभ पहुंचाता है।

२४. खर्जूरासव।

द्रव्य-पिंडखजूर ३२० तोले, हाउबेर व धाय के फूल ३२-३२ तोले लें।

विधि-पिण्डखजूर बीजरहित कुचली हुई को २०४८ तोले जल में मिला कर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर मसल छान उसमें हाउबेर, धाय के फूल मिलाकर अमृतवान में भर दें। मुद्रा कर १५ दिन रहने दें। परिपक्व हो जाने पर छान लें।

मात्रा-२-४ तोले, समान जल मिलाकर दिन में दो बार दें।

उपयोग-यह खर्जूरासव राजयक्ष्मा, शोफ, प्रमेह, पाण्डु, कामला, ग्रहणी, पांच प्रकार के गुल्म और अर्श रोग को अति शीघ्र नष्ट करता है।

यह पौष्टिक, उत्तेजक और कीटाणुनाशक है। पित्त प्रकोप को शमन करता है। सुजाक और प्रमेह रोगी के लिये भी हितकारक है। राजयक्ष्मा में दाह, अम्लपित्त रक्तपित्त के समान लक्षणवालों की शक्ति कायम रखने के लिये प्रयुक्त होता है। अन्तर्विद्रधि और बाह्य विद्रधि में विडङ्गारिष्ट के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचता है। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में ३-४ बार देना चाहिये। साथ में बङ्गभस्म और श्रृंङ्गभस्म का सेवन कराते रहने से गुण दर्शाता है।

२५. रसायन बिन्दु।

द्रव्य-कौड़िया लोहबान २० तोले, कपूर, जायफल, जावित्री और लौंग २-२ तोले लें।

विधि-सबको मिला कूटकर पाताल यन्त्र से चुबा लें। यह काले रंग का गाढ़ा सुगन्धित चोबा निकलता है।

(श्री पं. मुरारीलाल जी शर्मा वैद्य शास्त्री)

मात्रा-१ सीक भर (आधी रात) पान में लगाकर खिलावें या बादाम के तेल और गोंद के साथ दिन में ३-४ समय दे सकते हैं।

उपयोग-यह बिन्दु जीर्ण श्वास नलिका प्रदाह, दुर्गन्धमय कफ संगृहीत होना, प्रतिश्याय, आमवात, प्रसूता के ज्वर और वात प्रकोप, सिरदर्द, कण्ठ के भीतर शोथ, दुर्गन्धमय खट्टी डकार आना, कण्ठ में जलन, निद्रा कम आना, बालकों का शय्यामूत्र, दाँत चबाना आदि रोगों पर हितकारक है।

इस रसायन बिन्दु का सेवन करने पर कफ श्वासनलिका द्वारा बाहर निकलता है। जिससे जीर्ण श्वासनलिका के दाहशोथ में हरा या पीला कफ बार-बार निकलता रहता है, उस पर अच्छा लाभ पहुँचता है। इसके सेवन से श्लैष्मिक कला को शक्ति और उत्तेजना मिलती है इस हेतु से संचित कफ सत्वर बाहर निकल जाता है और नूतन उत्पत्ति का ह्रास हो जाता है। यह औषधि फुफ्फुस के सब रोगों पर लाभदायक है। बादाम के तैल और गोंद के साथ देने पर दुर्गन्धयुक्त कफ में सत्वर लाभ पहुँचता है।

नूतन प्रतिश्यायज ज्वर में कण्ठ के भीतर वेदना, हाड़-हाड़ दुखना, शिर में भारीपन, शारीरिक उत्ताप अधिक नहीं बढ़ना, अरुचि, उबाक आना, मलावरोध, मुँह में चिपचिपापन आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तब इस चोबे का सेवन पान के साथ करने पर प्रतिश्यायसह ज्वर आदि दूर होते हैँ और आवाज खुल जाती है।

कितनेक बालकों के मूत्राशय के द्वार पर संयम कम होने से रात्रि मे निद्रा में पेशाब हो जाता है और उसमें कीटाणु विष संगृहीत हो जाने से दाँत चबाते हैं। ये दोनों विकार इस चोबे के सेवन से दूर होते हैं। बालकों को यह औषध अति कम मात्रा में शक्कर या दूध के साथ दीं जाती है।

आमवात के हेतु से संधि-संधि में पीड़ा होने पर और सूतिका को मन्द ज्वर और वातप्रकोप होकर हाड़-हाड़ में दर्द होने पर इस बिन्दु का सेवन कराने से दर्द दूर होता है और जीवविनिमय क्रिया बलवानें बन जाती है। नये आमवात में यह चोबा ४-४ रत्ती समान सोडाबाईकार्ब के साथ मिलाकर दिन में ३-४ बार देना चाहिये।

यदि आमाशय रस अम्ल और दुर्गन्धित हो जाने से कण्ठ में दाह होता हो, खट्टी डकार आती रहती हो, कभी मुँह में छाले हो जाते हों **तथा बार**-बार अपचन हो जाता हो, तो रसायन बिन्दु का सेवन शक्कर के साथ करने पर आमाशय रस निर्दोष बन जाता है।

प्रतिश्यायजनित शिरदर्द हो, तो इस रसायन बिन्दु को ४ गुने गुनगुने तिल तैल या सरसों के तैल में मिलाकर कपाल पर लगाया जाता है।

विशेष योग-यह रसायन बिन्दु १ तोला, दालचीनी का तैल २ तोले, मालकांगनी का तैल ४ तोले और चमेली का तैल ८ तोले मिलाकर नपुसंकता दूर करने के लिए तिला रूप से उपयोग किया जाता है। पं. मुरारीलाल जी मिश्र ने इसको अनेक बार आजमाया है।

२६. सुदर्शनादि कषाय।

द्रव्य-महासुदर्शन चूर्ण और गिलोय १-१ तोला, काली द्राक्षा और मुलहठी ६-६ माशे और वासापत्र २० नग लें।

विधि-इनको १६ गुने जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश रहने पर छान लेवें। ***(श्री वैद्य कांतिलाल जी)***

मात्रा-ऊपर के क्वाथ के ३ विभाग कर दिन में ३ बार पिलावें।

उपयोग-यह क्वाथ राजयक्ष्मा में ज्वर, कास, कफ, रक्तस्राव और मलावरोध को दूर करता है तथा शान्ति और शक्ति प्रदान करता है। यह जीर्ण ज्वर और शुष्क कास में भी लाभदायक है।

२७. बनफ्शादि शर्बत।

द्रव्य–गुलबनफ्शा और अञ्जीर २-२ तोले, नीलोफर, गावजवाँ, मुलहठी, गिलोय, उन्नाब, सपिस्ताँ (लेसवा), सौंफ, छोटी इलायची के दाने, कालीमिर्च, दालचीनी, बिहीदाना, काली मुनक्का, वासापत्र ये १३ औषधियाँ १-१ तोला लेवें।

विधि–सबको मिला यवकूट कर रात्रि में २ सेर जल में भिगो दें। सुबह चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर मन्थन कर लुआब को छान लेवें। इसमें १ सेर मिश्री मिलाकर शर्बत बना लेवें। ***(वैद्यराज मुरलीधरजी मुलतानी)***

मात्रा–१। से २॥ तोले तक ८-१० तोले जल में मिलाकर दिन में २ या ३ बार सुबह, दोपहर, रात्रि को पिलावें।

उपयोग–यह शर्बत पित्तशामक, कफघ्न और रक्तशोधक है। विशेषत: श्वासान्तक चूर्ण या शाही चूर्ण के साथ दिया जाता है। राजयक्ष्मा में कफ को बाहर निकालने और उत्पत्ति को रोकने के लिये दिया जाता है। यह जीर्ण प्रतिश्याय, पीनस और शुष्क कास आदि में भी लाभ दर्शाता है।

२८. शाही चूर्ण।

द्रव्य–वंशलोचन, छोटी पीपल और छोटी इलायची के दाने, तीनों १-१ तोला, दालचीनी, गिलोय सत्व और शिरखिस्त, तीनों ६-६ माशे, मोतीपिष्टी, प्रवालपिष्टी, पन्नापिष्टी, माणिक्यपिष्टी, नीलमणिपिष्टी, पुखराजपिष्टी, तृणकान्तमणिपिष्टी, अकीकपिष्टी, अभ्रक भस्म ३-३ माशे, सुवर्णभस्म (या वर्क) १॥ माशा, रौप्यभस्म (या वर्क) १॥ माशे लेवें। मिश्री सबके वजन समान (७ तोले) लेवें।

विधि–काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। सबको अच्छी तरह मिलाकर खरलकर लेवें। ***(वैद्यराज मुरलीधरजी मुलतानी)***

मात्रा–२ से ४ रत्ती दिन में ३ बार।

अनुपान–बनफ्शादि शर्बत या रोगानुसार अनुपान के साथ दें। वातप्रकृति वाले को १॥ तोले बनफ्शादि शर्बत के साथ देवें। पित्त प्रकृति वालों को यह चूर्ण देकर ऊपर ४ गुना जल मिला हुआ शर्बत पिलावें। कफ प्रकृति वालों को २-३ बूंदे अदरक का रस तथा २-३ बूंदे नागरबेल के पान का रस शर्बत में मिलाकर देवें। पुरुषों के वीर्य विकार और स्त्रियों के रक्तप्रदर, पीतप्रदर और दुष्ट प्रदर में उटंगन के बीज, बीजबन्ध और बिहीदाने ३-३ माशे को १० तोले जल में उबाल ३ तोले जल शेष रहने पर छान उसमें चूर्ण मिलाकर देवें।

उपयोग–यह शाही चूर्ण राजयक्ष्मा को दूर करता है। इसका प्रयोग सब अवस्थाओं में किया जाता है। वात, पित्त या कफाधिक लक्षण भेद से अनुपान में भेद करना चाहिये। यह प्रयोग वैद्यराज मुरलीधरजी का वंशागत है। १०० से अधिक वर्षो का सफल अनुभूत प्रयोग है। यदि प्रथमावस्था में ही इसका प्रयोग किया जाये, तो रोग बहुत जल्दी दूर हो जाता है।

सूचना–ज्वर १९ डिग्री से अधिक हो तो मात्रा कम देनी चाहिये, एवं निर्बलता अधिक आ गई हो, तो भी मात्रा कम देनी चाहिये।

राजयक्ष्मा के अतिरिक्त विलासी मनुष्यों को निर्बलता और कृशता को दूर करने के लिये भी यह प्रयुक्त होता है। स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, दुष्टप्रदर, अधिक संतान, प्रसूति और ज्वरादि हेतु से उत्पन्न स्त्रियों की कृशता आदि को यह दूर करता है। यह रोग राजयक्ष्मा की अपेक्षा हृद्रोग पर अत्यधिक लाभ दर्शाता है।

यह शाही चूर्ण हृदय में भारीपन, दाह, व्याकुलता, तृषा, कण्ठशोष, स्वेदाधिक्य, गरमगरम डकार आना इस रोग को आयुर्वेद में पैत्तिक हृद्रोग कहते हैं। इस रोग पर शाही चूर्ण अच्छा लाभ दर्शाता है।

शराब के व्यसनी जिनके हृदय में बार-बार घबराहट होती है। हृदयगति अनियमित रहती हो, उदर में गैस बनता हो ऐसे हृद्रोगियों पर भी यह चूर्ण व्यवहृत होता है।

२९. मुक्तापञ्चामृत रस।

द्रव्य–मोतीपिष्टी या भस्म ८ तोले, प्रवालभस्म या पिष्टी ४ तोले, उत्तम वंगभस्म २ तोला, शंखभस्म १ तोला, मुक्ताशुक्ति भस्म या पिष्टी १ तोला लें।

विधि–सबको खरल में डाल ईख के रस में ६ घंटे घोटकर गोला बनावें और सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में फूंके।

इसी प्रकार ईख के रस, गाय के दूध, विदारीकन्द रस, घृतकुमारी, शतावरी, तुलसी या सम्भालू और हंसपदी के रस में ६-६ घन्टे खरल करके ५-५ लघु पुट लगावें। बाद में घोटकर बारीक कपड़छन चूर्ण सा बनाकर शीशी में भर लें।

मात्रा–२ से ४ रत्ती तक सुबह-शाम, पीपल के चूर्ण मे मिलाकर गाय के दूध के साथ।

उपयोग–इसके सेवन से जीर्ण ज्वर, चिरकालिक मन्द ज्वर, वात-बालसक ज्वर तथा राजयक्ष्मादि रोग दूर होते हैं।

यह उत्तम कोटि का सौम्य सुधाकल्प है। यह शरीर में कैल्शियम की कमी की पूर्ति करता है।

यह रसायन-अस्थिक्षय, माँसक्षय तथा बच्चों के बालशोष (अस्थिमार्दव) (Rickets) में तथा शिर:शूल, परिणामशूल तथा संग्रहणी आदि विकारों में भी प्रभावशाली देखा गया है।

❑ ❑

(२५) स्वरभंग

१. कुलिंजनाद्य गुटिका।

द्रव्य–कुलिंजन ५ तोले, कूठ, बच, अकरकरा, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, छाटी पीपल, इलायची के दाने, जावित्री, तेजपात, कपूर, नागरमोथा, कत्था और बहेड़ा १-१ तोला. केशर ३ माशे और कस्तूरी १ माशा लेवें।

विधि–सबको मिला कूट नागरबेल के पान के रस में ६ घन्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली मुँह में रखकर या नागरबेल के पान में रखकर दिन में १० गोली तक चूसते रहे।

उपयोग–यह वटी स्वरभेद को दूर करती है। अधिक गाने, व्याख्यान करने, जागरण करने, सूर्य के ताप में घूमकर शीतल जलपान करने या अपथ्य भोजन से गला बैठ जाने पर इस वटी का अच्छा उपयोग होता है। एवं यह वटी जुकाम, कास और श्वास में भी हितावह है।

२. कुलिञ्जनावलेह।

विधि–कुलिंञ्जन (पान की जड़)१ सेर लेकर १० सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर क्वाथ को छान पुनः चूल्हे पर चढ़ा गाढ़ा करें। उसमें १२४ तोले शक्कर डालकर पाक करें। पश्चात् कायफल, पुष्करमूल, भारङ्गी, सोंठ, पीपल, चव्य, चित्रकमूल, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बायविडंग, धनियां, जीरा, कालाजीरा, कांटेवाले करंज के भुने फल का मगज, काकड़सिंगी, अडूसा के पान इन २१ द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण ८८ तोले मिलाकर अवलेह बना लेवें।

मात्रा–आधा से १ तोला तक दिन में ३ बार।

उपयोग–यह अवलेह सब प्रकार की कफज कास, हिक्का, स्वरभेद, कण्ठविकार, प्रतिश्याय आदि पर व्यवहृत होता है। विशेषतः यह आवाज सुधारने में उत्तम है। क्षयरोग में स्वरभेद पर दिया जाता है। इसके सेवन से जठराग्नि सुधरती है।

३. मृगनाभ्यादि चूर्ण।

द्रव्य–कस्तूरी ३ माशे, छोटी इलायची के दाने २ तोले, लौंग ३ तोले और वंशलोचन ४ तोले लें।

विधि–इनको खरलकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–२-२ रत्ती दिन में ३ बार घी और शहद के साथ सेवन करावें।

उपयोग–थोड़े ही दिनों में आक्षेपज स्वरभ्रंश और वाक् स्तम्भ दूर होते हैं। अनेक मनुष्यों के वाक्स्तम्भ देखा गया, उनको इस योग का सेवन २-३ मास तक करते रहने पर वाक्स्तम्भ दूर हो जाता है।

४. चव्यादि चूर्ण।

द्रव्य–चव्य, अम्लवेत, सोठ, कालीमिर्च, पीपल डांसरिया (अभाव में इमली पक्की), तालीसपत्र, जीरा, वंशलोचन, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची के दाने इन १३ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर चूर्ण में चौथा भाग गुड़ मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। ***(आ.सं.)***

मात्रा–१ गोली दिन में ५-७ बार मुँह में रखकर रस चूसें।

उपयोग–यह चूर्ण स्वरभेद, पीनस, कास और श्लैष्मिक अरुचि को थोड़े ही दिनों में दूर करता है।

५. गोरक्ष वटी।

द्रव्य–रससिंदूर, ताम्रभस्म और लोहस्म तीनों समभाग लें।

विधि–सबको मिला छोटी कटेली के फलों के स्वरस में २१ दिन तक खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। ***(वृ.यो.त.)***

मात्रा–१-१ गोली दिन में २-३ बार मुँह में रखकर चूसें या नागरबेल के कत्था चूना लगे पान में रखकर सेवन करें।

उपयोग–गोरक्ष वटी अनेकों स्वरभेदों को दूर करती है। व्याख्यान अथवा जोर-जोर से गाने से, रोमान्तिका, एन्फ्लुएञ्जा आदि ज्वर से, धुआं आदि का प्रवेश, गरम पेय अथवा गैस का आघात, प्रतिश्याय अथवा शीत का आघात लग जाना आदि कारणों से प्रसेकमय स्वरयन्त्र प्रदाह (Catarrhal Laryngitis) हो जाता है। इस प्रकार के स्वरभेद में स्वरयंत्र में गुदगुदी, भारी आवाज, शुष्क कास, झागदार कफ आना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि आक्रमण प्रबल हो, तो लगभग स्वरलोप हो जाता है इस प्रकार पर गोरक्षवटी का बहुत अच्छा उपयोग होता है।

विवेचन–तेजाब आदि के सेवन, मुख मण्डल पर शोथ, कण्ठरोहिणी और कण्ठ के भीतर विसर्प प्रकोप आदि कारणों से स्वरयन्त्र द्वार में सूजन (Oedematous Larynigitis) आ जाती है। फिर श्वास ग्रहण में कष्ट, आवाज बैठ जाना, गात्रनीलिमा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह रोग क्षयरोग के उपद्रव रूप न हो तो गोरक्षवटी का सेवन कुलिञ्जनाद्यवलेह के साथ कराने से लाभ जल्दी पहुँचता है। गले के ऊपर बर्फ रखवाने और वाष्प का नस्य कराने से रोग शमन से सहायता मिल जाती है।

६. त्र्यम्बकाभ्र।

द्रव्य-अभ्रक भस्म १० तोले और कटेली, खरैंटी, गोखरू, घीकुंवार, पीपलामूल, भांगरा, वासापत्र, तेजपात, बेर के पान, आंवले, हल्दी और गिलोय इन १२ औषधियों का घन सत्व १०-१० तोले लें।

विधि-इनको मिला खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। ***(भै र.)***

मात्रा-१ से २ गोली दिन में ३ बार। शहद, नागरबेल केपान, कुलिञ्जनाद्यवलेह या अन्य रोगानुरूप अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-त्र्यम्बकाभ्र स्वरभंग, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा व्याख्यान आदि से उत्पन्न एवं वातवह नाड़ियों की विकृति से उत्पन्न स्वरभंग दूर करता है। इनके अतिरिक्त दूषित जलवायु से उत्पन्न ज्वर, कास, श्वास, उरोग्रह,यकृद्विकार, हिक्का, तृषा, कामला, अर्श, ग्रहणी, विविध प्रकार के ज्वर, शोथ, क्षय और अर्बुद आदि रोगों को शान्त करता है। यह अद्‌भुतगुण दर्शक उत्तम बाजीकरण, अग्नि प्रदीपक, श्रेष्ठ रसायन और विविध रोगनाशक औषधि है।

यह रस उत्तम शक्तिवर्द्धक और वातवाहिनियों के लिए पौष्टिक है। नूतन और जीर्ण, दानों अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है। यदि पक्षवध होकर वाणी का लोप हो गया हो तो त्र्यम्बकाभ्र कितना कार्य करेगा, यह नहीं कह सकते एवं क्षयरोग की तृतीयावस्था में स्वरयन्त्र की वातनाड़ियाँ नष्ट हो जाती हैं, उसके लिए भी कोई उपाय नहीं है शेष सब स्थानों में यह प्रभाव दर्शाता है।

क्षयज स्वरयन्त्र (Tuberculous Laryngitis) प्राथमिक हो, आवाज में भारीपन हो, स्वरयन्त्र की कला अन्तर्भरण युक्त हुई हो, क्षय ग्रन्थियां न हुई हो तो यह त्र्यम्बकाभ्र लाभ पहुँचा जा सकता है।

७. कण्ठसुधारक वटी।

द्रव्य-मुलेठी सत्व ७ तोले, पीपरमेंट के फूल ३ माशे, कपूर, इलायची और लौंग १-१ तोला तथा जावित्री २ तोले लें। ***(धन्वन्तरि)***

विधि-सबको मिला जल में आध घन्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा-१-१ गोली मुँह में रखकर चूसते रहें। दिन में ८-१० गोली तक।

उपयोग-अरुचि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, मुखपाक, वमन, व्याकुलता, अजीर्ण, उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगों को नष्टकर चित्त प्रफुल्लित करती है।

(२६) छर्दि

१. पारदादि चूर्ण (छर्दि)

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, बेरकी मींगी, लौंग, नागरमोथा, प्रियंगु, धानका लावा, सफेद चन्दन का बुरादा, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने और तेजपात इन १३ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर चन्दन के अर्क या ४ गुने गरम जल में भिगोये हुए चन्दन के फाण्ट से एक दिन खरल करके सूखा चूर्ण बना लेवें। ***(यो.र.)***

मात्रा-४ से ८ रत्ती २-२ घन्टे पर दिन में ४-६ समय कालीमिर्च के चूर्ण और शहद के साथ जल, लाजमण्ड या पोदीने के रस के साथ देवें। यदि इस रस के साथ जहरमोहरापिष्टी २-२ रत्ती मिलाते रहें, तो लाभ सत्वर होता है।

उपयोग-यह पारदादि चूर्ण प्रबल वमन का भी नाश करता है। इसका उपयोग अम्लपित्त और विदग्धाजीर्ण जनित वमन पर अच्छा होता है। पित्ताशयशूल और वृक्कशूल (वृक्काश्मरी) आदि कारणों से वमन होती है। एवं विसूचिका और ताम्र, सोमल, जमालगोटा, कनेर आदि के विषप्रकोपक से वमन भी होती है। इन सब पर इसका उपयोग नहीं होता। जमालगोटा और कनेर आदि के विष पर जब शामक उपचार करना हो, तब इस चूर्ण का प्रयोग हो सकता है। सगर्भा के वमन में इस चूर्ण के साथ एलादि चूर्ण मिला देने पर विशेष लाभ होता है। वमन के अतिरिक्त यह हिक्का पर भी लाभदायक है।

२. वमनान्तक योग।

(१) मोरपंख की चन्द्रिका को जलाकर की हुई राख २ रत्ती, छोटी इलायची के दाने २ रत्ती तथा १/८ रत्ती पीपरमेन्ट के फूल को शहद में मिलाकर चटाने से विविध उपद्रवोसह वमन और हिक्का त्वरित दूर होते हैं। मोरपंख की भस्म कासरोग में भी लाभदायक है।

(२) आंवलों का शर्बत या जामुन का शर्बत या संतरे का शर्बत या नीबूं का शर्बत शीतल जल मिलाकर थोड़ा पिलाने से सूर्य के ताप में घूमने से उत्पन्न बेचैनी और वान्ति शमन हो जाती है।

(३) चमेली के पानों का स्वरस, कालीमिर्च और मिश्री मिलाकर देने से नयी और पुरानी छर्दि हो जाती है।

(४) चन्दन और मुलहठी को जल में ठण्डाई के समान पीस, छानकर पिलाने से रक्तवमन और पित्तप्रकोपज वमन दूर होती है।

(५) नींबू का रस निचोड़ लेने पर शेष रहे हुए छिल्के को छाया में सुखा लें। फिर जलाकर राख करें। उसमें से ४ से ८ रत्ती राख शीतल जल के साथ या शहद के साथ २-२ घन्टे पर देने से वान्ति रुक जाती है। सगर्भा, बालक और वृद्ध आदि के लिए हितावह है।

३. लाजमण्ड।

द्रव्य-धानका लावा २१ तोला, छोटी इलायची २-४ नग, लौंग २-४ नग और मिश्री ३ से ६ माशे लें।

विधि-सबको २० तोले जल में मिला ५-७ उफान आवे। तब तक उबालें। फिर शीतल होने पर कपड़े से छान लेवें।

(श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

उपयोग-इस मण्ड में से १-२ चम्मच थोड़ी-थोड़ी देर से रोगी को पिलाते रहने से वमन निवृत्त हो जाती है। यदि वान्ति हरी-पीली और कडुवी होती हो और वमन होने पर कण्ठ में दाह होता हो, तो थोड़ा नींबू कारस मिला देवें। यदि इस मण्ड के पात्र को बर्फ पर रखकर शीतल करके उपयोग में लिया जाये, तो विशेष लाभ होता है। यह मण्ड वमन, हिक्का और तृषा रोग पर उत्तम औषध और पथ्य है।

सूचना-वान्ति और हिक्का रोग में मेव मीठा, मीठा नींबू, बेदाना, (अनार), मोसम्बी और ईख उत्तम पथ्य है।

४. पित्तशामक योग।

(१) सिंकजवीन सिरका (उत्तम सिरके में दुगुनी शक्कर डालकर बनाया हुआ शर्बत) ६ माशा, सौंफ का अर्क २ तोले, पोदीने का अर्क २ तोले, ये तीनों मिलाकर बार-बार देते रहने से २-४ मात्रा मे पित्त की वमन बन्द हो जाती है। ***(स्व. श्री पं. रामचन्द्रजी वैद्य)***

५. सगर्भा की छर्दि नाशक योग।

नागरमोथा, धानिया और मिश्री २-२ तोले और सोंठ ६ माशे मिलाकर क्वाथ करें। उसका ३ भाग कर दिन में ३ बार पिलाने से वमन रुक जाती है।

(१७) दाह

१. सुधाकर रस।

द्रव्य-रससिंदूर, अभ्रकभस्म, सुवर्ण का वर्क और मौक्तिक पिष्टी, इन ४ औषधियों को समभाग लेवें।

विधि-इनको त्रिफला क्वाथ और शतावर के क्वाथ में ७-७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। ***(आ.सं.)***

मात्रा-१-१ गोली दिन में २ बार शीतल जल, काली सारिवा का फाण्ट या पित्तपापड़ा, खस और नागरमोथा के क्वाथ के साथ देवें। मदात्ययजन्य दाह में आँवलों के हिम के साथ।

उपयोग-यह रस घोर दाह, मदात्ययजन्य दाह, प्रमेह और वातरक्तज दाह आदि को दूर करता है तथा बल्य और शुक्रवर्द्धक है। जब रक्त में मूत्रविष, क्षार, मद्यज विष, पित्त अथवा अन्य तीक्ष्ण द्रव्यों के विष की वृद्धि होकर दाह होता है, तब इस रस के सेवन से विष शमन और रक्तप्रसादन होकर दाह निवृत्त हो जाता है।

२. रसादि वटी।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, श्वेत चन्दन का बुरादा, जटामांसी, नेत्रबाला, नागरमोथा, खस, छोटी इलायची के दाने और दरियाई नारियल, ये १० औषधियाँ समभाग लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला चन्दनादि अर्क के साथ ३ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें। ***(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)***

मात्रा-१ से २ गोली गुलाब जल या चन्दनादि अर्क के साथ दिन में ३-४ बार।

चन्दनादि अर्क-चन्दन का चूर्ण, मौसमी, गुलाब के फूल, केवड़े के फल और कमल के फूल, इन सबको ८ गुने जल में मिलाकर १० या १२ सेर अर्क खींच लेवें।

उपयोग-यह रसादि वटी किसी भी प्रकार के दाह, तृषा, हिक्का और पित्तप्रकोपज वमन (खट्टी वमन), अम्लपित्त को दूर करता है। विसूचिका में भी इसका उपयोग होता है। वमन और विसूचिका में पोदीने के रस के साथ देने पर विशेष गुण होता है।

३. चन्द्रप्रभा चूर्ण।

द्रव्य-सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मुलहठी, मुनक्का (काली), नीलोफर, कमल के फूल, महुए के फूल, नेत्रबाला, छोटी इलायची के दाने, नागरमोथा और धनियां ये सब समभाग और सबके समान मिश्री लेवें। ***(वै.चि.सा.)***

मात्रा-३ से ६ माशे, दिन में ३ बार गौ या बकरी के दूध या जल के साथ।

उपयोग-यह चूर्ण दाह रोग पर अच्छा लाभदायक है। कण्ठ, हृदय और आमाशय में दाह, **मुखपाक**, नाक में से रक्तस्राव और मस्तिष्क **में दाह**, आदि को दूर करता है। अम्लपित्त, तृषा और पित्तप्रकोपज श्वेतप्रदर में भी हितावह है।

४. खर्जूरादि चूर्ण।

द्रव्य-पिण्ड खजूर, आंवले के बीज, पीपल, शिलाजीत, छोटी इलायची के दाने, मुलहठी, पाषाणभेद, सफेद चन्दन, खीरा ककड़ी का मगज और धनियां इन १० औषधियों को समभाग और शक्कर सबके समान लेवें।

विधि-पिण्डखजूर और शिलाजीत को छोड़ शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। फिर पिण्डखजूर को अलग कूटें। पश्चात् उसके साथ शक्कर चूर्ण और शिलाजीत मिला कूटकर एक जीव बना लेवें। *(आ.सं.)*

मात्रा-६ माशे से १ तोला, प्रातः काल जल के साथ। मूत्ररोग में शक्कर मिले मुलहठी के फाण्ट के साथ या गोखरू के हिम के साथ।

उपयोग-यह चूर्ण अङ्गदाह, मूत्रेन्द्रियदाह और अश्मरी या शर्करा, सिकता से उत्पन्न शूल को नष्ट करता है। पेशाब को साफ ला देता है। यह चूर्ण वृष्य और बल्य है तथा शुक्र विकृति से उत्पन्न रोगों को नष्ट करता है।

५. गुडूच्यादि क्वाथ।

द्रव्य-गिलोय, आँवला, नागरमोथा, रक्तचन्दन, हरड़ और सोंठ इन ६ द्रव्यों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर जौकूट कर लेवें।

उपयोग-२-२ तोले जौकूट चूर्ण का क्वाथकर दिन में ३ बार पिलाते रहने से विविध प्रकार के दाह की निवृत्ति हो जाती है।

मलेरिया ज्वर में क्विनाइन का अधिक सेवन करने पर कितनेक रोगियों को नेत्रदाह, दृष्टिमान्द्य, मस्तिष्कदाह, बधिरता, चक्कर आना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस पर इस क्वाथ का सेवन कराने से लाभ हो जाता है। इस क्वाथ के साथ कामदुधा रस देने से विशेष लाभ पहुँचता है।

ज्वर आकर चले जाने के पश्चात् कभी-कभी वातनाड़ियों में प्रदाह तथा रक्त, मांस, मज्जा आदि धातुओं में दुष्टि शेष रह जाती हैं। फिर किसी को नेत्र में दाह, नेत्र खुले रहने पर दाह होना, नेत्र बन्द करने पर दाह शमन हो जाना, किसी को हृदय में दाह और घबराहट एवं किसी को मस्तिष्क में दाह, विचार शक्ति का ह्रास, स्मरणशक्ति का अभाव आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इन सब प्रकारों पर इस क्वाथ के सेवन से लाभ पहुँचता है।

दिनों तक ज्वर रह जाने या मिर्च आदि का अधिक सेवन और गरम-गरम भोजन करने की आदत आदि से अन्त्रदाह हो जाता है। फिर मल शुष्क हो जाना, उदर में वातसंचय, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस विकार पर इस क्वाथ से दूध सिद्ध करके दिन में २ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में लाभ पहुँच जाता है, इस सिद्ध दुग्ध के साथ बादाम का तैल १-१ ड्राम देते रहने से अधिक लाभ पहुँचता है।

६. कज्जली रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद १ भाग, सात बार घृत-दुग्ध से शुद्ध किया हुआ गन्धक २ भाग, और मिश्री ६ भाग लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर मिश्री मिलाकर ३ घन्टे खरलकर बोतल में भर लेवें। *(यो. र.)*

मात्रा-१ से ॥। माशे तक दिन में २ या ३ बार देवें।

अनुपान-मिश्री मिला हुआ, आंवलों का स्वरस या हिम अथवा नारियल का जल।

उपयोग-यह कज्जली रस मदात्यय रोग पर कहा है। यह मदात्ययजन्य दाह, विषप्रकोपज दाह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, वमन और उबाक को दूर करता है।

फिरङ्ग रोग संतानों को भी त्रास पहुँचाता है। ऐसे फिरङ्ग पीड़ित मनुष्य के बालकों को यह कज्जली रस दिया जाये, तो फोड़ा फुन्सी, श्वेतकुष्ट, नासाव्रण, तालुछिद्र व अन्य उपदंशजन्य विकारों से रक्षा हो जाती है। अनुपान शहद।

(१८) उन्माद-अपस्मार।

१. उन्मादगजांकुश रस।

द्रव्य-धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, जटामांसी, बायविडङ्ग, नागरमोथा, मोचरस, शंखाहुली, भूतकेशी (अभाव में जटामाँसी) तगर और एलुवा इन १४ औषधियों को समभाग लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करके भस्में मिलावें। फिर काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर ब्राह्मी बाम (जलनीम) के स्वरस में ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से ३ गोली तक दिन में २ बार ब्राह्मी के क्वाथ, सारस्वतारिष्ट या चण्डासव के साथ देवें।

वक्तव्य-ब्राह्मी (वाम-Moniera Cuneifolia) में वामक गुण है। इसके रस की मात्रा २-३ माशे है। इसके साथ दूध का सेवन नहीं कराना चाहिये। पाचन हो जाने पर दूध देना चाहिये। मण्डूकपर्णी (हरिद्वार की ब्राह्मी (Hybrocotyle Asiatica) के छायाशुष्क पानी की मात्रा २-४ रत्ती ही है, किन्तु धूप में सुखाने पर १-१ तोले का क्वाथ सहन हो जाता है। और इसके साथ दूध दे सकते हैं।

उपयोग-उन्माद गजांकुश रस शीतवीर्य, कीटाणुनाशक, विषघ्न, उन्मादहर और मस्तिष्क पौष्टिक, बल्य है। जीर्ण और नूतन वातज और पित्तज उन्माद को दूर करता है।

विवेचन-बहुधा सब प्रकार के उन्माद रोग के प्रारम्भ में बुद्धि विभ्रम (विवेकाभाव), मन की चंचलता और शून्यता, व्याकुलदृष्टि, अधीरता और असम्बद्ध भाषण, ये सामान्य लक्षण उपस्थित होते हैं। इस प्रथमावस्था में ही यदि इस रस का सेवन ब्राह्मी स्वरस ४ माशे या हरिद्वार से आने वाले ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी) एक तोले क्वाथ के साथ दिन में २ बार दिया, तो थोड़े ही दिनों में सेन्द्रियविष नाश और क्षोभ शमन होकर उन्माद दूर हो जाता है।

गाँजा, शराब आदि का सेवन, मानसिक चिन्ता और विष प्रकोप के हेतु से पित्तज उन्माद उपस्थित होता है। उसकी तीव्रावस्था होने पर सामाजिक मर्यादा का बिल्कुल अभाव (लज्जा का अभाव), अवचिार, सामान्य बात में भी अति क्रोध, सहनशीलता का अभाव, निद्रानाश, दोड़ादौड़ी, मारपीट करना आदि उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में पहले उत्तान दोष को दूर करने के लिये विरेचन देकर उदरशोधन करना चाहिये। फिर रक्त आदि धातुओं में लीन विष को जलाने और उग्रता के शमनार्थ पथ्य पालनसह उन्माद गजाँकुश और कामदुधा मिलाकर मण्डूकपर्णी के क्वाथ या चण्डासव के साथ देना चाहिये। हस्तमैथुन आदि की आदत हो, तो वह भी छोड़ देनी चाहिये।

उन्माद जीर्ण होने पर प्राय: वातिक या श्लैष्मिक लक्षण उपस्थित होते हैं। वातिक होने पर चिन्तातुरसा या शुष्क और निस्तेज मुखमण्डल बिना हेतु रुदन, हास्य, नृत्य, भोजन पचन हो जाने पर वातप्रकोप होकर कभी अकस्मात् तीव्र प्रकोप के लक्षण अविचार, अति चंचलता, निद्रानाश आदि उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में चतुर्भुज रस अथवा यह रस कम मात्रा में २-४ मास तक ब्राह्मी घृत के साथ देते रहने पर लाभ पहुँच जाता है।

चतुर्भुज कस्तूरी प्रधान होने से इस रस की अपेक्षा निद्रानाश और अति चंचलता को दबाने में अधिक उपयोगी है। इसी तरह उन्माद रोग में यदि कफप्रकोप लक्षण मंदचेष्टा, उदासीनता आदि हों, तो इस रस की अपेक्षा चतुर्भुज रस को विशेष लाभप्रद माना जायेगा।

२. अपस्मारहर रस।

द्रव्य-शुद्ध सुरमा, शुद्ध बच्छनाग, रससिन्दूर, सोमल, शुद्ध हरताल (रस माणिक्य), शुद्ध मैनसिल से ६ औषधियाँ ५-५ तोले और सक्तुकविष (अभाव में बच्छनाग) ६ माशे लेवें।

विधि-सबको मिला देवदाली के रस में १ दिन खरलकर १-१ तोले की शिवलिङ्गाकार गोलियाँ बनावें। फिर सूखने पर अलग-अलग मलमल के कपड़े की पोटली में बन्दकर गुच्छ बनावें। उसे एक हाँडी में डंडा गन्धक के बीच लटकावें। वह गुच्छ तले से कुछ ऊँचा रहना चाहिये। फिर मंद-मंद अग्नि देवें। अच्छी तरह गन्धक का पाक होने पर अग्नि देना बन्द करें। स्वाङ्ग शीतल होने पर पोटलियों में से गोलियाँ निकाल ऊपर से गन्धक को हटा देवें। फिर कूट चूर्णकर देवदाली के रस में ३ दिन खरलकर १/४-१/४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। ***(र.यो.सा.)***

मात्रा-१-१ गोली, रोज सुबह कड़वी तुम्बी के गर्भ (गूदे) २ रत्ती के साथ मिला करेले के १ तोले रस के साथ देवें।

उपयोग-यह अपस्माहर रस सब प्रकार के नये और पुराने अपरस्मार को थोड़े ही दिनों में दूर करता है।

सूचना-मात्रा सहन हो सके, तो अधिक देवें। भोजन में घृत अधिक देवें। खटाई मिर्च आदि का त्याग करावें।

३. चतुर्भुज रस।

द्रव्य-पारदभस्म (अभाव में रससिन्दूर) २ तोले तथा सुवर्णभस्म, शुद्ध मैनसिल, कस्तूरी, रसमाणिक्य (हरताल से बना हुआ), ये ४ औषधियां १-१ तोला लें।

विधि-सबको मिला घीकुंवार के रस में १ दिन खरल करके गोला बनावें। फिर एरण्ड के पत्तों में लपेट धान्यराशि में ३ दिन रखकर निकाल लेवें। फिर त्रिफला के क्वाथ में १ दिन खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। ***(र.सा.सं)***

मात्रा-१ से २ गोली त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ या बच के चूर्ण के साथ नागरबेल के पान में रख दिन में दो बार देवें।

उपयोग-यह रस उन्माद रोग पर कहा है। वात संस्थान की विकृति से उत्पन्न सब रोगों पर लाभदायक है। अग्निबल के अनुसार सेवन करने पर वलीपलित का नाश कर देह को सुदृढ़ और सुन्दर बनाता है। अपस्मार, ज्वर, कास, शोष, अग्निमान्द्य, क्षय, हस्तकम्प, शिरकम्प विशेषत: गात्रकम्प, वातपित्तज रोग और कफप्रकोपज व्याधियाँ इनको यह चतुर्भुजरस नि:सन्देह नष्ट कर देता है। जो रोग सब प्रकार की औषधियों के सेवन, वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्म के योग और मन्त्र या विविध औषधि आदि से दूर न हुए हों, ऐसे असाध्य को भी यह रस नष्ट

कर देता है जिस तरह वज्र वृक्षों का नाश करता है उसी तरह यह असाध्य रोगों का नाशक है।

इस रस में उत्तेजक, आक्षेप निवारक, रसायन और सेन्द्रिय विषनाशक गुण है। इस रस का वातवाहिनियों और वात केन्द्र पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। इस हेतु से उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, हिस्टीरिया (अपतन्त्रक) और इतर वामतप्रकोपज व्याधियाँ शमन हो जाती है। एवं मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। उन्माद, हिस्टीरिया आदि में यह रस जटामांसी या ब्राह्मी के अर्क शंखपुष्पी के स्वरस के साथ सेवन कराने से विशेष लाभ पहुँचाता है।

यदि गर्भाशय में दोष है, तो इस रस के सेवन के साथ शर्बत बनफशा भी दिन में २ बार पिलाते रहना चाहिये। हिस्टीरिया, अपस्मार आदि में इस औषध के सेवन से पहले ही दिन से लाभ प्रतीत होने लगता है। रोगिणी को पहले दिन से निद्रा आने लगती है एवं दौरे का वेग भी कम होने लगता है।

हृदय की शिथिलता, शक्तिपात, श्वासकृच्छ्रता, चेतनानाश, मूर्च्छा और सन्निपात में शीताङ्गवस्था की प्राप्ति होने पर अदरक के रस और शहद के साथ देने से तत्काल लाभ पहुँचता है। रोगी को होश आ जाता है। देह में उष्णता आ जाती और हृदय नियमित कार्य करने लग जाता है एवं प्रसूता के आक्षेप और बालकों के धनुर्वात को दूर करने में भी यह रस उपकारक है।

कण्ठनलिका, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्तनलिका और महाप्राचीरापेशी आदि स्वाधीन मांसपेशियों के आक्षेप होने पर इस रसायन के सेवन से तत्काल लाभ पहुँचता है। महाप्राचीरा प्रभावित होने से हिक्कारोग में भी अच्छा लाभ पहुँचता है। इन रोगों में इसे जटामाँसी के क्वाथ के साथ देना चाहिये।

हिस्टीरिया, जीर्ण पक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी, आक्षेप, कम्पवात और कटिवात आदि वात विकारों पर निर्गुण्डी पत्र के स्वरस, सोंठ स्वरस और शहद के साथ देने और ऊपर रास्नादि अर्क या क्वाथ पिलाते रहने से रोग का निवारण सत्वर होता है। वृद्धावस्था की निर्बलता या व्याधि विशेष से उत्पन्न निर्बलता, गात्रकम्प, हस्तकम्प, शिरः कम्प आदि पर त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ दिया जाता है।

विद्याध्ययन, मानसिक श्रम, चिन्ता, अधिक जागरण आदि कारणों से देह दिन प्रतिदिन सूखती जाती हो, अग्निमान्द्य, कास, मस्तिष्क में भारीपन, जीर्णज्वर, कोष्ठबद्धता, हाथ पैर टूटना, किसी कार्य में उत्साह न होना, बेचैनी, नाड़ी की मन्दगति, स्वप्नदोष होते रहना और वीर्य की निर्बलता आदि लक्षण प्रतीत होते हों तो इस रस का सेवन त्रिफला, पीपल और शहद के साथ कराने से थोड़े ही दिनों में अग्नि प्रदीप्त होती है। मलावरोध दूर होता है। मानसिक प्रसन्नता होती है। मस्तिष्क सबल बनता है, रोगी बलवान, पुष्ट निरोगी हो जाता है। यदि कोष्ठबद्धता न हो, तो ब्राह्मी घृत अथवा ब्राह्मी के अर्क के साथ ब्राह्मी, शंखाहुली के फाण्ट या हिम के साथ सेवन कराना विशेष हितकर है।

राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में यह रस उपकारक है। प्रथमावस्था में जब शुष्क कास हो, तब इस रस का सेवन न कराया जाये, क्योंकि कस्तूरी के हेतु से किसी-किसी रोगी के कण्ठ में शुष्कता की वृद्धि हो जाती है और फिर श्वासनलिका में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। क्षय की द्वितीयावस्था में जब शुष्क कास नहीं रहती और कफ निकलने लगता है, तब इस रस का सेवन १ रत्ती बच के चूर्ण और नागरबेल के पान में व अदरक के रस के साथ कराने से क्षय कीटाणु नष्ट होते हैं। कफ सरलता से बाहर आ जाता है। ज्वर का निवारण होता है। पचनक्रिया प्रबल होती है और रोगी को शान्ति मिलने लगती है।

शराबी लोगों के उन्माद, निद्रानाश, अग्निमान्द्य आदि विकारों पर भी यह रस लाभदायक है। उन्माद रोग में यदि सर्वाङ्ग में दाह, असहिष्णुता, जोर-जोर से चिल्लाना, नग्न रहना, वीभत्स चेष्टा करना, अथवा मानसिक विलक्षण चंचलता और बार-बार जड़ सदृश बन जाना आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो धमासा या ब्राह्मी अर्क के साथ चतुर्भुज रस दिया जाता है।

इस रस में सुवर्ण भस्म होने से हृदय के लिए बल्य है। तथा रक्तप्रसादन कार्य अच्छा होता है। कीटाणु और सेन्द्रिय विष नष्ट होते हैं एवं त्वचागत पित्तविकार शमन होता है। सुवर्ण में वृष्य गुण होने से नपुन्सकता भी दूर होती है।

रससिन्दूर रसायन, उत्तेजक, कफघ्न, हृद्य और कीटाणुनाशक है। सुवर्णभस्म शीतवीर्य, रसायन, हृद्य, प्रज्ञावर्धक, मस्तिष्क पौष्टिक, वृष्य, बृहंण, कीटाणुनाशक और विषघ्न है। मनःशिला और हरताल उत्तेजक, कफवातनाशक, आक्षेपघ्न, कीटाणुनाशक और विषघ्न है। कस्तूरी आक्षेपहर, उत्तेजक और निद्राप्रद है और घीकुवांर, उदरशोधक है।

चतुर्भुज रस न्यून रक्तचाप, स्मरणशक्ति का अभाव, वृद्धावस्था में निद्रानाश, मस्तिष्क निर्बलता पर लाभदायक है।

अति मानसिक श्रम से मस्तिष्क निर्बल बन जाता है फिर स्मरण शक्ति का ह्रास, आलस्य, मन में विविध कल्पना आती रहना, मानसिक व्याकुलता बनी रहना, निस्तेजता, शारीरिक कृशता, अग्निमांद्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, उस पर यह चतुर्भुज रस ब्राह्मी शंपुष्पी के क्वाथ या फाण्ट के साथ देते रहने से लाभ पहुँचता है।

सूचना-(१) चतुर्भुज रस में रससिन्दूर, मनः शिला और हरताल उग्र औषधियाँ होने से इसका उपयोग सम्हालपूर्वक कम मात्रा में करना चाहिये।

(२) जब हृदय की गति बढ़ गई हो और मस्तिष्क में रक्त की वृद्धि हो, तब इस रस का उपयोग नहीं करना चाहिये।

४. अपस्मारहर योग।

(१) घोड़ा बच का कपड़छन चूर्ण शक्ति के अनुसार ३ से ६ रत्ती तक दिन में २ बार शहद के साथ देते रहने और दूध भात का भोजन कराते रहने से जीर्ण अपस्मार रोग भी दूर हो जाता है। *(भै. र.)*

आयुर्वेद निबन्धमालाकार ने बच के चूर्ण में शहद मिलाकर मटर सदृश गोलियां बनाकर ३-३ गोलियां देने को लिखा है। गोलियों का उपयोग करना विशेष सुविधा वाला है। आयुर्वेद निबंधमालाकार ने अनुभव करके इस प्रयोग को उन्माद के लिये भी लाभदायक दर्शाया है एवं नाम भी उन्मादहर वटी दिया है।

कितनेक मनुष्यों से बच शहद में नहीं लिया जाता है, लेने पर वमन हो जाता है, ऐसे सुकुमार व्यक्तियों को कैपसूल में बच का चूर्ण भर कर निगला देवें।

(१) शुद्ध हींग १ से २ रत्ती गधी के दूध के साथ दिन में २ बार देते रहने से १ मास में अपस्मार दूर हो जाता है। रोज दूध की योजना न हो, तो हींग को ३ दिन गधी के दूध में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बांधकर उपयोग में ले सकते हैं।

(२) नमक जिसमें न मिलाया हो वैसी इमली १ सेर लेकर मिट्टी के बर्तन में १ मन जल में उबालें। १॥ सेर (अर्थात् दो बोतल) जल शेष रहने पर नीचे उतार कपड़े से छानकर बोतल में भर लें। इसमें से २-२ तोले जल दिन में ३ बार पिलाते रहने से शराब, भांग और गांजा के विषप्रकोप से हुआ उन्माद विकार सत्वर शमन हो जाता है।

५. शंखकीटादि नस्य।

द्रव्य-शंख का सूखा हुआ कीड़ा, पलाशपापड़ा, नकछिंकनी, कालीमिर्च, कायफल और कपूर को समभाग लें।

विधि-सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करे।

उपयोग-इस चूर्ण में से एक चुटकी लेकर सूँघने से अपस्मार का दौरा रुक जाता है। यह चूर्ण मस्तिष्क शोधक होने से शिर:शूल को भी दूर करता है।

६. महाचैतस घृत।

मुख्य द्रव्य-गोघृत ४। सेर, क्वाथ द्रव्य, कल्क द्रव्य।

क्वाथ द्रव्य-शण के बीज, निसोत, एरण्डमूल, दशमूल, शतावरी, रास्ना, पीपल, सहिंजने की छाल, इन १७ औषधियों को २०-२० तोले मिलाकर जौ कूट करें। फिर ६४ सेर जल मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करके छान लेवें।

कल्क द्रव्य-विदारीकन्द, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, पिण्डखजूर, मुनक्का, शतावरी, मुञ्जातक कन्द (अभाव में ताल फल) और गोखरू तथा चेतस घृतोक्त कल्क द्रव्य (इन्द्रायण हरड़, बहेड़ा, आंवला, रेणुक बीज, देवदारू, एलावालुक, शालपर्णी, तगर, हल्दी, दारूहल्दी, काली सारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेशर, तालीसपत्र बड़ी कटेली, मालती के ताजे फूल, बायविडङ्ग, पृश्नीपर्णी, कूठ, रक्तचन्दन और पद्मकाष्ठ ये २८ औषधियां) सब मिलाकर ४० औषधियों को २-२ तोले लें।

विधि-सबको मिला जल के साथ-साथ ८५ तोले कल्क तैयार करें। फिर कल्क क्वाथ और ४। सेर गोघृत को मिलाकर मन्दाग्नि पर यथाविधि पाक करें।

(भै.र.)

मात्रा-१ से २ तोले दिन में दो बार देवें। मात्रा प्रारम्भ में आधे से १ तोला देवें। तत्पश्चात् अग्निबल को देखकर मात्रा बढ़ावें।

उपयोग-यह घृत अपस्मार और उन्माद रोग में अति हितावह है। मस्तिष्क की निर्बलता का नाश करता है एवं अपस्मार, दूषीविष प्रकोप, उन्माद, प्रतिश्याय, श्वास, कास, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर और ग्रहपीड़ा आदि रोगों को दूर करता है। यह घृत शुक्र और आर्त्तव का शोधन करता है। मानसिक विकृति और वातप्रकोप को दूर करता है। मस्तिष्क, मन, बुद्धि, शुक्राशय और गर्भाशय को सबल बनाता है।

७. ब्राह्मी तैल।

मुख्य द्रव्य-काले तिलों का तैल, ब्राह्मी स्वरस, भृङ्गराज स्वरस, शंखपुष्पी स्वरस और बकरी का दूध ४-४ सेर लें।

कल्क द्रव्य-बच, कूठ, दशमूल, एरण्डमूल, नागकेशर, तेजपात, छरीला, पानड़ी, जटामांसी, श्वेतचन्दन, दारुहल्दी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, खरैंटी और गिलोय इन २४ औषधियों को २-२ तोले मिला ब्राह्मी क्वाथ में पीसकर कल्क बनावे।

विधि-पहले दिन तैल के साथ कल्क और ब्राह्मी स्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। फिर क्रमश: एक दिन के अन्तर से शेष स्वरस और दूध डालकर मन्दाग्नि से पकावें। सबका पाक होकर तैल सिद्ध होने पर उतारकर तुरन्त छान लेवें। इसमें इच्छानुसार मोगरा आदि की सुगन्ध मिला सकते हैं। *(श्री पं. विश्वनाथजी द्विवेदी, आयुर्वेदशास्त्राचार्य)*

वक्तव्य–यहाँ पर जिस ब्राह्मी का प्रयोग किया है, उसे हिन्दी में ब्राह्मी, जल नीम, सफेद चमनी, बंगला में ब्राह्मी, धोपचमनी, मुम्बई महाराष्ट्र में बाम, गुजरात में बांब, कड़वी लूणी, आंध्र में सम्रेणु, कृष्णपर्णी, तेलगु में सम्ब्राणि चेट्टु और लेटिन में मोनीएरा-कुनीफोलिया (Moniera Cuneifolia) कहते हैं।

इस ब्राह्मी के छाते जमीन पर फैलते हैं। इसके पान सामने-सामने, वृन्तरहित, कुछ मांसल, चोसर के समान बिल्कुल अखण्ड, काले दाग वाले ६ से २५ मिलीमीटर (१/४ से १ इञ्च) लम्बे और २.५ से ९० मिलीमीटर (१/१२ से १/३ इञ्च) चौड़े होते हैं। ये स्वाद में कड़वे हैं। पुष्प पत्रकोण में से निकले हुए एकाकी होते हैं। उप वृन्त पत्र ५ मिलीमीटर (१/५ इञ्च) लम्बे होते हैं। डोडी ५ मिलीमीटर लम्बी, अण्डाकार चिकनी होती है। यह ब्राह्मी भारत में सर्वत्र गीले स्थानों पर तालाब और नदी किनारों पर होती हैं। ग्रीष्म ऋतु में फूल-फल आते हैं।

इसी ब्राह्मी में उत्तेजक, मूत्रल, रसायन, पौष्टिक, कृमि-नाशक, विषघ्न, ज्वरहर, शोथनाशक और कफघ्न गुण अवस्थित है यही मस्तिष्कगत विकृति और वातविकार पर लाभदायक है। जीर्ण उन्माद, रक्तदबाव वृद्धि और जीर्ण अपस्मार पर यह हितावह है। यह उत्तेजक होने से तीव्र प्रकोपकाल में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है एवं जीर्णरोग में भी नाड़ी मन्द हो, तब वह नहीं दी जाती है।

इस ब्राह्मी में क्षुधा को मन्द करने का दोष रहा है। इस हेतु से खाने की औषधि में इसके साथ दीपन औषधि मिलानी पड़ती है।

उपयोग–इसके तैल की मालिश शिर पर करते रहने से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ जाती है। जीर्ण उन्माद और जीर्ण अपस्मार में अति हितकारक है। मानसिक श्रम अधिक करने वालों के मस्तिष्क को सबल बनाकर लाभ पहुँचाता है।

उपरोक्त ब्राह्मी से बने हुए तैल का अनुभव करने पर विशेष प्रभाव शाली पाया है। यह उन्माद, अपस्मार आदि मनोविकार और जीर्ण ज्वरादि रोगों को नष्ट कर मनुष्यों को मेधावी और कान्तिवान् बनाता है। कई वर्षों से निरन्तर इसका अनुभव किया गया है, इसके नस्य और शिरोबस्ति अप्रतिम गुणकारी सिद्ध हो चुके हैं।

(श्री पं. राधाकृष्ण द्विवेदी)

८. चन्द्रहास अर्क।

द्रव्य–अजमोद, खुरासानी अजवायन, भांग, धतूरे के बीज, कर्पूर, पोस्त के डोडे और जायफल, प्रत्येक को ४-४ तोले लें।

विधि–सबको जौकूट चूर्णकर ४०० तोले गोदुग्ध में मिलाकर रात्रि को भिगो देवें। प्रातःकाल भभके से अर्क निकाल लें।

(श्री गोपालजी कुंवरजी, ठक्कुर, आयुर्वेदाचार्य)

मात्रा–१। से २॥ तोले शाम को या आवश्यकता पर देवें। जिनका पित्त तेज न हो, उनको ऊपर नागरबेल का पान (कस्तूरी १/५ रत्ती मिला हुआ) खिलावें।

उपयोग–यह अर्क पहले कुछ उत्तेजक, फिर शामक, पाचक, निद्राप्रद, वेदना शामक और बल्य है। किसी भी रोग में निद्रा लाने के लिये यह निर्भय और उत्तम औषधि है। श्वास, कास, अग्निमान्द्य, संग्रहणी, मधुमेह और हैजे में भी यह लाभ पहुँचाता है।

निद्रा लाने वाली और वेदना शामक औषधि के रूप में अफीम विशेष कार्य करती है। किन्तु सगर्भा, प्रसूता, बालक, मलावरोध के रोगी, अत्यन्त गाढ़े कफ युक्त कास, शिराओं में नीलापन की वृद्धि, नेत्र की पुतली संकुचित होना आदि विकार वालों को अफीम नहीं दी जाती। तब इन स्थानों में यह अर्क निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। यह अर्क घण्टों तक शान्त निद्रा ला देता है। अन्त्र पर शामक असर पहुँचाता है और दस्त भी साफ ला देता है। इसके सेवन से अफीम के समान नशा नहीं आता। किसी भी रोग में वेदना के हेतु से निद्रा न आती हो, वहाँ परनिद्रा लाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

मस्तिष्क की निर्बलता में यह अर्क १५-१५ बूंद द्राक्षारिष्ट और जल में मिलाकर दिया जाता है। इसके सेवन से मस्तिष्क शान्त रहता है।

९. अपस्मारारि रस।

द्रव्य–शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक तीनों ४-४ तोले लें।

विधि–सबकी कज्जली करें। फिर ३ दिन गिलोय के स्वरस में खरलकर गोला बनावें। इसे धूप में सुखा शराब सम्पुटकर कपोत पुट (२-३ गोबरी के कण्डों की अग्नि) देवें।

सूचना–अधिक अग्नि लगेगी तो पारा उड़ जायेगा। अग्नि कम लगेगी तो गन्धक नहीं उड़ सकेगा और नीलाथोथा भी पक नहीं सकेगा। फिर निकाल केले के खम्भे के स्वरस में ७ दिन खरलकर चूर्ण शीशी में भर लेवें।

(र.यो.सा.)

मात्रा–आध से १ रत्ती ब्राह्मी के रस, घी या नींबू की सिकञ्जी के साथ देवें। बेचैनी हो तो नींबू का जल पिलावें।

उपयोग–यह अपस्मारारि रस नये और पुराने अपस्मार को दूर करता है।

वक्तव्य–इस रस के सेवन करने वालों को कूष्माण्ड, ककड़ी, तरबूज, करेला, कुसुम्भ, ककोड़े, कलम्बी और मकोय इन वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये।

१०. चन्द्रावलेह।

द्रव्य–शतावरी, विदारीकन्द, पेठा और शंखाहुली प्रत्येक का स्वरस २५६-२५६ तोले तथा शक्कर ४०० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। अवलेह योग्य चाशनी बनने पर नीचे उतार लें। शीतल होने पर छोटी इलायची के दाने ६४ तोले, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, मुनक्का, सफेद चन्दन, कमल, काला अनन्त मूल, नागरमोथा, पद्माख, खस, आंवला, जटामांसी और लौंग, ये १३ औषधियाँ ४-४ तोले, वंशलोचन और सर्पगन्धा १६-१६ तोले का कपड़छन चूर्ण मिला लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)

मात्रा–आध से १ तोला तक, चन्दनादि अर्क, केवड़े का अर्क, गाँवजवाँ के फूलों का अर्क, वेदमुश्क का अर्क या गोदुग्ध के साथ दिन में दो बार।

उपयोग–यह अवलेह निद्रानाश, उन्माद, अपस्मार, शिर में चक्कर आना, मूर्च्छा, हाथ पैरों का दाह, मानसिक निर्बलता, आदि विकारों को दूर करता है। यह अवलेह मस्तिष्क को शान्त और पुष्ट बनाता है मन को प्रसन्न रखता है। उन्माद की तीव्रावस्था में तथा जीर्णावस्था में लाभदायक है।

११. सर्पगन्धा चूर्णयोग।

द्रव्य–सर्पगन्धा का कपड़छन चूर्ण ५ तोले और रससिन्दूर ३ माशे लें।

विधि–दोनों को मिलाकर खरल कर लेवें। *(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा–२ रत्ती से ४ रत्ती, प्रात:सायं जल, दूध या गुलाब के अर्क के साथ।

उपयोग–इस योग का सेवन कराने पर अनिद्रा, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), उन्माद, रक्तचाप और नये अपस्मार में लाभ पहुंचता है।

सूचना–(१) सर्पगन्धा का प्रयोग करने के पहले निशोत या कालादाना अथवा मेगनेशिया सल्फास जैसे विरेचन द्रव्य देकर उदर शुद्धि कर लेनी चाहिये।

(द्वितीय योग) द्रव्य–सर्पगन्धा चूर्ण ५ तोले, जहरमोहरा पिष्टी, प्रवाल पिष्टी और अमृतासत्व ६-६ माशे।

विधि–इनको मिलाकर खरलकर लेवें।

मात्रा–१/२ से १ माशा प्रात: सायं गुलाब के अर्क या गुलकन्द के साथ।

उपयोग–इसके सेवन से निद्रा आ जाती है और मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है।

सूचना–(१) सर्पगन्धा के सेवन काल में नमकरहित भोजन करें तो विशेष और सत्वर गुण दर्शाता है।

(२) रक्तभार (ब्लड प्रेशर) को कम करता है। अत: अतिक्षीण और निर्बल रोगी, जिसका ब्लड प्रेशर पहले ही कम हो, उनको यह औषधि न दें अथवा विशेष सावधानी के साथ दें।

१२. विजयासत्वादि वटी।

द्रव्य–भांगसत्व (Ext. Cannabis Indica) और अभ्रक भस्म १-१ तोला, सफेद मिर्च, छोटी इलायची के दाने और वंशलोचन २-२ तोले लें।

विधि–सबको मिला, थोड़े जल के साथ खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में ३ बार, जीर्ण रोगों के तीक्ष्ण प्रकोप में आवश्यकतानुसार २-२ घण्टे पर जल के साथ दें।

उपयोग–उन्माद, अपस्मार, वाताक्षेप, प्रलाप, कम्प, रज:शूल, राजयक्ष्मा की कास, अग्निमांद्य, अरुचि, अतिसार, ग्रहणी, वृक्कशूल और स्वप्नदोष को दूर करती है।

इस वटी में मुख्य औषधि भांगसत्व है। यह दीपन, उष्णवीर्य, ग्राही, मादक, आक्षेपहर, वेदनाशामक, कामोत्तेजक, गर्भाशय-उत्तेजक और आकुञ्चक, कफघ्न और वातशामक है। अभ्रक भस्म उत्तम वातहर, कीटाणुनाशक, योगवाही और मांसवर्धक है। शेष तीनों सहायक औषधियां है। भांगसत्व की मुख्य क्रिया प्रलापशमन और शान्त निद्रा लाना, ये मस्तिष्क पर प्रभावकारी होती है और यह मन को प्रसन्न बनाती है। इसी हेतु से उन्माद, हिस्टीरिया और प्रलाप पर यह वटी लाभ पहुँचाती है।

इसमें वेदनाशामक गुण और गर्भाशय पर क्रियाकारी होने से आर्तवशूल में यह वटी व्यवहृत होती है। इसी तरह यह वृक्कशूल में भी अपना गुण तत्काल दर्शाती है। दीपन, पाचन और ग्राही गुण के लिये अतिसार, ग्रहणी और प्रवाहिका में अन्य औषधि के साथ यह दी जाती है।

१३. चण्डासव।

द्रव्य–शंखावली का स्वरस ५ सेर, शक्कर १। सेर, शहद १। सेर, धाय के फूल २० तोले, मुनक्का २० तोले, ब्राह्मी (जलनिम्ब),

जटामांसी और नेत्रबाला ५-५ तोले तथा छोटी इलायची के दाने, तालीसपत्र, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और काली मिर्च २।।-२॥ तोले लें।

विधि–मुनक्का को चटनी की तरह पीस लें। काष्ठादि औषधियों को जौ कूट कर लें। फिर सबको मिलाकर अमृतबान में भर मुखमुद्रा कर १ मास तक बन्द रखें। आसव परिपक्व होने पर बोतलों में भर लेवें। *(पं. श्री मदनलाल जी)*

वक्तव्य–१० सेर शंखावली को जल से धोकर स्वरस निकालें। लगभग २॥ सेर जल मिलाना पड़ता है। तैयार होने पर ३॥-४ बोतल आसव बनता है।

मात्रा–१। से २॥ तोले दिन में दो बार समान जल मिलाकर।

उपयोग–यह आसव मस्तिष्क पर शामक असर पहुंचाता है। उन्माद, अपस्मार, मदात्यय जनित निद्रानाश, बुद्धिमांद्य, भ्रम, प्रमेह, पूयमेह और दाह आदि रोगों को दूर करता है, तथा मानसिक अस्वस्थता को शमन करता है।

इसी प्रकार (उपरोक्त विधि से) ब्राह्मी तैल में कही हुई ब्राह्मी से जल-निम्बासन बना लें। वह भी अपूर्व फलदाता है। मस्तिष्क सम्बन्धी प्रत्येक रोगों में जलनिम्ब को अनेक प्रकार से सेवन करने पर चमत्कारी लाभ मिलता है।

शंखावली से जो आसव बनता है यह मस्तिष्क शामक है। इस हेतु से उन्माद की तीव्रावस्था में उपयोगी है और ब्राह्मी से बना हुआ आसव उत्तेजक होने से चिरकारी अवस्था में लाभ पहुँचाता है। *(श्री पं. राधाकृष्ण द्विवेदी)*

(१८) वात व्याधि।

१. रसराजरस (वात)।

द्रव्य--शुद्धपारद (रससिंदूर) ४ तोले; अभ्रक के सत्व की भस्म (अभाव में अभ्रक भस्म) १ तोला और सुवर्णभस्म ६ माशे लें।

विधि–इन तीनों को मिलाकर १२ घण्टे घीकुंवार के रस में खरल करें। फिर लोहभस्म, रौप्यभस्म, वंगभस्म, असगंध, लौंग, जावित्री और क्षीरकाकोली, ये ७ औषधियाँ ३-३ माशे मिलाकर मकोय के रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में २ बार। मिश्री मिले हुये दूध, च्यवनप्राश या खमीरेगावजवां अम्बरी के साथ।

उपयोग–इस रस के सेवन से पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ; अपतन्त्रक, (हिस्टीरिया), धनुस्तम्भ, आमवात, गृध्रसी, अपतानक (Tetanus) बधिरता, चक्कर आना और अनेक वातविकार नष्ट होकर बल, वीर्य और बाजीकरण शक्ति की वृद्धि होती है।

सूचना–रसराज रस के ११ पाठ रसयोगसागर में दिये हैं। इनके अतिरिक्त नाम बदलकर कुछ पाठ और दिये हैं। तथा ४-६ पाठ प्रकाशित नहीं हुये। इन सब पाठों में यह पाठ वातरोग पर विशेषतया उपकारक है। यह रस उत्तम वातशामक, रसायन, शुक्रवर्द्धक, मस्तिष्क पोषक और हृद्य है। मस्तिष्क, हृदय और वातवाहिनियों पर विशेष प्रभाव दर्शाता है। सामान्यतः वातदोष और रस-रक्त आदि सब धातुओं को बल प्रदान करता है।

वातरोग जीर्ण होने पर देह और सब इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। उष्ण और शीतल कोई भी औषधि सहन नहीं होती है। उन हताश रोगियों के जीवन की रक्षा और शक्तिवृद्धि के लिये रसराज अमृत के सदृश उपकारक हैं।

वृद्धावस्था में और वातरोग के हेतु से देह अति निर्बल बनने पर चक्कर आते रहते हैं। कोई कार्य करने का उत्साह नहीं रहता, ठण्ड बिल्कुल सहन नहीं होती। बार-बार शिरदर्द हो जाता है और मानसिक व्याकुलता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में रसराज का सेवन खमीरे गावजवां अम्बरी के साथ कराने पर थोड़े ही दिनों में चमत्कारी लाभ पहुँचता है। फिर शनैः शनैः बलवृद्धि होकर रोग निवृत्त हो जाता है।

वृद्धावस्था, प्रसवावस्था, अम्ल पदार्थों का अधिक सेवन और धातुक्षीणता आदि कारणों से वातवाहिनियों में विकृति होकर मांसपेशियों में खिंचाव (Spasm) होता रहता है। उस विकार पर यह रसराज रस आशीर्वाद के समान है। पथ्य- पालनसह सेवन करना चाहिये। अनुपान दूध या च्यवनप्राशावलेह।

यदि रक्त में विष या कीटाणुओं का प्रकोप होकर धनुस्तम्भ या अपतानक की प्राप्ति हुई हो, तो उस पर भी रसराज लाभ पहुँचाता है। किन्तु विद्रधि या प्रसवावस्था में अपत्यमार्ग के भीतर क्षत हुआ हो और उस मार्ग से पूय कीटाणुओं का प्रवेश होने से तीव्र आक्षेप आता हो, तो उस अवस्था में इस औषधि का उपयोग नहीं होता।

यह रस हृद्य होने से हृदय को बल देता है। हृत्स्पन्दन और रक्ताभिसरण क्रिया सबल बनती है। रक्त में रहे हुए विष और कीटाणुओं का नाश होता है। रक्त दबाव (Blood pressuree) का ह्रास हुआ हो, तो वह बढ़ जाता है तथा हाथ, पैर, पीठ, हृदय आदि अवयवों में वायु का स्पन्दन या पीड़ा होती हो, तो वह भी इसके सेवन से दूर हो जाती है।

इस रस में सुवर्ण, वङ्ग, क्षीर काकोली और असगंध आदि मिलाने से शुक्राक्षय और शुक्र को भी लाभ पहुँचता है। शुक्र शुद्ध और गाढ़ा बनता है। कामोत्तेजना होती है। मुखमण्डल तेजस्वी बनता है और मन भी प्रसन्न रहता है। शुक्र की निर्बलता वाले को ब्रह्मचर्य का

आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये और अम्ल रस प्रधान भोजन का त्याग करना चाहिये।

पक्षाघात की संप्राप्ति बहुधा, रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों पर आघात पहुँचने से होती है। अतः जीर्णावस्था में दोनों पर लाभ पहुँचाने वाली औषधि दी जाती है। एकांगवीर, योगेन्द्र रस, बृहद् वातचिन्तामणि और रसराज में दोनों पर लाभ पहुँचाने का महत्वपूर्ण गुण है। इनमें से एकांगवीर में तीव्र औषधियों की भावनायें दी हैं। अतः वह अति तीक्ष्ण है, वह सबसे सहन नहीं होता। अतः सौम्य प्रकृति वालों के लिये शेष तीन औषधियों में से ही योजना करनी पड़ती है। जिन रोगियों को पित्तप्रकोप न हो और शुक्रक्षय हो, उनको बृहद् वातचिन्तामणि और योगेन्द्र रस की अपेक्षा रसराज विशेष अनुकूल आता है। आवश्यकतानुसार नारायण तैल की मालिश आदि बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये।

वक्तव्य–(१) रोग जितना जीर्ण हो और रोगी जितना निर्बल हो, उतनी ही औषधि की मात्रा कम देनी चाहिये। निर्बलों के लिये पथ्य का पालन आग्रहपूर्वक कराना चाहिये।

(२) शराब का व्यसन हो तो छुड़ा देना याहिये।

(३) भूतकाल में उपदंश रोग हुआ हो और उसका विष देह में हो, तो मल्ल प्रधान औषधि मिला लेनी चाहिये।

२. नवग्रह रस।

द्रव्य–सोमल, हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, गोदन्ती, नीलाथोथा, हरताल, मैनसिल और खर्पर या (जसद का फूल) इन ९ औषधियों को २-२ तोले लेवें।

विधि–पहले पारद, गन्धक मिलाकर कज्जली करें फिर हरताल मिलावें। पश्चात् शेष औषधियां मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। एक जीव होने पर करेले और नीम के पत्तों के स्वरस में ६-६ घण्टे खरलकर, सुखा कर आतशी शीशी में भर, मुख मुद्राकर बालुका यंत्र में रख, २४ घण्टे मन्द अग्नि देकर तलस्थ रसायन बना लेवें।

मात्रा–१ से २ चावल तक सुबह २॥ तोले मक्खन या मलाई के साथ।

उपयोग–यह रसायन अर्धाङ्गवात आदि वातरोग, अर्श, ग्रन्थि और फैलने वाले फोड़े को नष्ट करता है, एवं गुल्म और शूल को दूर करने में यह अति हितावह है। यह औषध रक्तविकार, विद्रधि, श्वास अथवा फिरंग पीड़ित वातरोगियों के लिये अत्युत्तम मानी गयी है। कफप्रकृति वालों के जीर्ण वातरोग में यह औषधि दी जाती है। यह वातश्लैष्मिक ज्वर में भी लाभ दर्शाता है।

सूचना–कोष्ठबद्धता हो, तो पहले एरण्ड तैल से उदर की शुद्धि करना चाहिए। जिन रोगियों को वृक्कों द्वारा योग्य मूत्र शुद्धि न होती हो, बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होता हो, मस्तिष्क में उष्णता रहती हो, उन रोगियों को यह रस नहीं देना चाहिये।

३. बृहद् वातचिन्तामणि रस।

द्रव्य–सुवर्ण भस्म ३ भाग, रौप्य भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग, लोह भस्म ५ भाग, प्रवाल भस्म ३ भाग, मौक्तिक भस्म ३ भाग तथा रससिंदूर ७ भाग लें।

विधि–सबको मिला घीकुंवार के रस में ३ दिन तक खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली नागरबेल के पान में दिन में २ बार देवें। हिस्टीरिया पर जटामांसी का अर्क या हिस्टीरियानाशक फाण्ट के साथ। सन्निपात में तगरादि क्वाथ के साथ।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से वात रोग समूह तथा पित्ताश्रित वातरोग नष्ट होते हैं। वृद्ध मनुष्य भी तरुण पुरुष के समान स्फूर्ति और बलवाला बन जाता है। पित्त प्रधान वातविकार में यह उत्तम औषधि है। तत्काल अपना प्रभाव दर्शाती है। नव्य और जीर्ण रोग पर भी इसका विशेष उपयोग होता है। यह उत्कृष्ट वातप्रकोप शामक औषधि है।

यह रस महावातविध्वंसन के समान आशुकारी तीव्र प्रकोप में लाभ-दायक नहीं है। किन्तु तीव्र क्षोभ शमन होने पर तथा चिरकारी अवस्था में जीर्ण वात प्रकोप को नष्ट करने में अति हितकारक है। जब वातरोग में दाह, हृदय में घबराहट, बेचैनी, मस्तिष्क में उष्णता मुखपाक आदि प्रतीत होते हैं, तब पित्तवर्द्धक ताम्र भस्म, मल्ल या कुचिला प्रधान औषधियां लाभ नहीं पहुँचा सकती। ऐसी अवस्था में सूतशेखर, योगेन्द्र रस और बृहद्वात-चिन्तामणि प्रयुक्त होते हैं। इनमें से सूतशेखर का कार्य योगेन्द्र रस और बृहद्वात चिन्तामणि से भिन्न प्रकार का है। सूतशेखर प्रधान रूप से पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता को नष्ट करता है। और गौण रूप से पित्ताश्रित वातविकार को शमन करता है। योगेन्द्र रस और बृहद्वात चिन्तामणि वात-संस्थान पर मुख्य प्रभाव पहुँचाकर वातप्रकोप को शान्त करते हैं। दोनों रसायन वात केन्द्र को लाभ पहुँचाकर वातवाहिनियों में वातवहन कार्य व्यवस्थित करते हैं तथा साथ-साथ पित्त प्रकोप को भी दबाते हैं।

वक्तव्य–इन दोनों रसायनों की रचना विशेषांश में समान है। इनमें से बृहद्वात चिन्तामणि में मुक्ता, प्रवाल की मात्रा योगेन्द्र रस की अपेक्षा दूनी होने से विषप्रकोपज शारीरिक उत्ताप कुछ अधिक रहने पर विशेष लाभ दर्शाता है, तथा योगेन्द्र रस में सुवर्ण की मात्रा अधिक होने से वह मस्तिष्क और हृदय को बल देना और रक्त-प्रसादन करना, ये कार्य अधिकतर करता है।

विवेचन—अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) रोग विशेषत: युवतियों कोहोता है। इस रोग के प्रारम्भ में मनोवृत्ति, विवेकशक्ति और वातनाड़ियों में विकार उत्पन्न होता है। फिर जननेन्द्रिय (गर्भाशय आदि) में विकृति हो जाती है। कभी गर्भाशय और बीजाशय के विकार से मनोवृत्ति में विकृतावस्था आ जाती है। फिर अपतन्त्रक रोग उत्पन्न हो जाता है। **इस रोग में अति हास्य या अति रुदन, दीर्घ नि:श्वास, बीच-बीच में हास्य या रुदन, घबराहट, श्वासारोध, कण्ठावरोध, किसी-किसी को आमाशय में आध्मान आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।** रुग्णा गिर जाने पर भी उसे चारों ओर से व्यवहार ज्ञान रहता है किन्तु वह उस समय बोल नहीं सकती। गिर जाने पर हाथ पैरों में आक्षेप आता है। इस प्रकार के लक्षणयुक्त रोग में मस्तिष्क को बल देकर विकार के कारण रूप मानसिक विकृति दूर करने के लिये यह रसायन अति हितावह है। आवश्यकता पर इस रसायन के साथ कस्तूरी या अम्बर चौथाई रत्ती देने और ऊपर हिस्टीरियानाशक फाण्ट या जटामांसी का अर्क पिलाने से विशेष लाभ पहुँचता है।

सान्निपातिक ज्वरों में जब वातप्रकोप होकर मन्द-मन्द प्रलाप, तन्द्रा, नाड़ी में क्षीणता, हृदय में घबराहट, हाथ पैरों में कम्पन, प्रस्वेद अधिक आकर शरीर शीतल हो जाना आदि लक्षण प्रकट हों, तब इस रस का प्रयोग करने पर प्रलाप आदि सब लक्षण शमन हो जाते हैं। अनुपान तगरादि कषाय।

प्रसव होने पर आई हुई दुर्बलता को दूर करने और सूतिका रोग को नष्ट करने में यह शीघ्र लाभ पहुंचाता है। **वृद्धावस्था में वातवृद्धि होने और दुर्बलता आने पर यह रसायन जादू की तरह शक्ति प्रदान करता है।** बैठे-बैठे कार्य करने वाले व्यापारी वर्ग और कितनों को कमर में पीड़ा बनी रहती है। उनके लिए यह रस कटि स्थान की वातनाड़ियाँ और वातनाड़ी जाल (Ganglion) पर कार्य करके कटिवात को दूर कर देता है।

रक्त की न्यूनता तथा वातकेन्द्र और वातवाहिनियों की शिथिलता होने पर बार-बार चक्कर आना, भ्रम, क्वचित् प्रलाप, मानसिक विकृति और स्मृतिनाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर इस रस के उपयोग से रोगी थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो जाता है। **किन्तु शारीरिक उत्ताप ९९° से अधिक रहता हो, तो सूतशेखर, प्रवाल पिष्टी, कामदुधा आदि इस रस के साथ मिलाकर देना चाहिये।**

शराब सेवन करने वालों के चिरकारी वातरोग और जीर्ण पक्षाघात में अन्य औषधियों की अपेक्षा यह रस और योगेन्द्र रस विशेष अनुकूल रहते हैं। दोनों तत्काल अपना चमत्कार दर्शाते हैं। **इस रस में रौप्य भस्म होने से यह वृक्क स्थान और मस्तिष्क पर विशेष शामक असर पहुँचाता है। और योगेन्द्र रस रक्त प्रसादन कर तथा हृदय पर बल्य असर पहुँचा कर विशेष फल दर्शाता है।**

ग्रीष्म ऋतु तथा उष्ण देशों में और पित्तप्रधान प्रकृतिवालों को वातप्रकोप होकर मस्तिष्क में पीड़ा होना, बेचैनी, हाथ पैरों में भड़कन होना या झनझनाहट होना, कभी-कभी मन्द-मन्द शूल चलना, कमर में कुछ दर्द होना, बार-बार खट्टी डकारें आना, मुखपाक होना, अन्त्र में वायु की गुड़-गुड़ाहट होना, मलावरोध रहना, यकृत् का पित्तस्राव कम होने से अन्त्र में दुर्गन्ध आना आदि लक्षण प्रतीत होने पर यह रस अच्छा लाभ पहुँचाता है। **उपदंश के कीटाणु या सुजाक के कीटाणुओं के विषप्रकोपों से वातवाहिनियों की विकृति होकर नपुंसकता आई हो, तो इस रसायन से वातवाहिनियों का संकोच दूर होकर नपुंसकता की निवृत्ति हो जाती है।**

अनेकों को शुक्रक्षय होने पर रक्त की न्यूनता और वातप्रकोप होकर कमर, पिण्डली आदि स्थानों में नाड़ियाँ खिंचना, मन्द-मन्द शूल चलना, सामान्य वेदना होना, मूत्रमार्ग और शुक्रमार्ग में अतिदाह होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। **उनके लिये रसराज और बृहद् वातचिन्तामणि दोनों रस अमृत के सदृश उपकारक है। अग्निमांद्य और पाण्डुता अधिक हो, तो रसराज की अपेक्षा यह रस विशेष अनुकूल रहता है।**

शुक्र का दुरुपयोग होने से नपुंसकता आई हो, वह भी इस रस के सेवन से दूर होती है और शुक्रस्राव का भी दमन होता है।

विद्यार्थी वर्ग, वकील और अन्य मानसिक श्रम करने वालों के लिये यह महौषधि है। मानसिक श्रम अधिक करने पर ओज का क्षय होता है। फिर मस्तिष्क की निर्बलता, शिरदर्द, चक्कर आना, स्मरण रखने योग्य विषय विस्मृत हो जाना, निस्तेजना, आलस्य, अप्रसन्नता, हाथ पैरों की नसें खिंचना और अग्निमांद्य आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। वे सब लक्षण इस रस के सेवन से थोड़े ही दिनों में दूर होते है। मुखमण्डल प्रफुल्लित और तेजस्वी बनता है, शरीर और मन उत्साहित होते हैं तथा स्मरणशक्ति और विचारशक्ति सबल होती है। **अनुपान रूप से सारस्वतारिष्ट या चंडासव देना चाहिये।**

इस रस में मिलाये हुए द्रव्यों में से सुवर्ण भस्म सेन्द्रिय विषनाशक, वातकेन्द्रपोषक, हृद्य, रक्तप्रसादक और शुक्रवर्द्धक है। रौप्यभस्म मांस संस्थान और वातवाहिनियों की विकृति को दूर करती है। और हृदय को शक्ति प्रदान करती है। लोहभस्म रक्तपौष्टिक है, रक्ताणु और रक्ताभिसरण क्रिया दोनों को बढ़ाती है। प्रवाल और मौक्तिक विषघ्न, अस्थिबलवर्धक और पित्तप्रकोपशामक है। रससिंदूर रसायन, हृदयपौष्टिक, विषनाशक और वातहर है। **घीकुँवार आमाशय और अन्त्रस्थ विष को निर्विष बनाने में सहायता पहुँचाता है।**

४. बृहद्ब्राह्मी वटी।

द्रव्य—अभ्रकभस्म, संगेयशवपिष्टी, सुवर्ण के वर्क, अकीकपिष्टी, माणिक्य पिष्टी, प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी, कहरवापिष्टी और चन्द्रोदय, ये ९ औषधियां ६-६ माशे, जायफल, जावित्री, वंशलोचन, लौंग, कूठ, कालाजीरा, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची

के दाने, नागकेशर, अनीसून, सौंफ, धनियां, अकरकरा, असगन्ध, चित्रकमूल की छाल, कुलिंजन, रूमी मस्तंगी, शंखावली और श्वेतचन्दन का बुरादा ये २२ औषधियाँ ४-४ माशे, कस्तूरी, अम्बर, ब्राह्मी, निसोत, अगर और केशर ये ६ औषधियाँ १॥-१॥ तोले लें।

विधि–पहले केशर, कस्तूरी और अम्बर को खरल करें। फिर भस्म और पिष्टी पश्चात् सुवर्ण का एक-एक वर्क मिलाकर खरल करें। तत्पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला ब्राह्मी (जल नीम) के स्वरस में २ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य) [सि.यो.सं.]

मात्रा–१ से ४ गोली तक दिन में २ या ३ बार देवें।

अनुपान–(१) सन्निपात ज्वर में प्रलाप शमनार्थ तगरादि क्वाथ।

(२) अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) और आक्षेपक वात पर मांस्यादि क्वाथ।

(३) संतत ज्वर में शहद।

(४) विविध वातप्रकोप पर दशमूल क्वाथ।

(५) हृदय की निर्बलता पर खमीरेगावजवां।

(६) भ्रम, चक्कर पर द्राक्षादि चूर्ण।

(७) उन्माद, अपस्मार पर ब्राह्मीघृत या सारस्वतारिष्ट के साथ।

उपयोग–इस ब्राह्मी वटी के सेवन से मस्तिष्क, वातवाहिनियां और हृदय सबल बनते हैं, उदर में मलसंग्रह हो गया हो, तो वह दूर होता है और आम जल जाता है। इस हेतु से संधिवात, हिस्टीरिया, विषमज्वर और हृदय की निर्बलता पर सफलतापूर्वक व्यवहृत होती है।

हिस्टीरिया रोगिणी को यदि बार-बार हिस्टीरिया का दौरा होता हो, सामान्य वचनों से दु:ख पहुँचने पर बेहोशी आ जाती हो, हृदय में धड़कन बढ़ जाती हो और निरुत्साह करने वाले विचार बार-बार आते रहते हों, तब मुख्य औषधि के साथ अथवा स्वतन्त्र रूप से अकेली मानसकेन्द्र और हृदय को सबल बनाने के लिये इस वटी का सेवन कराया जाता है।

विवेचन–बृहद्ब्राह्मी वटी का उपयोग ज्वरावस्था में प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होने पर भी किया जाता है। वातपित्त प्रधान प्रलापावस्था में सूतशेखर, बृहद्कस्तूरी भैरव और बृहद् ब्राह्मी वटी उपकारक है। ये तीनों हृद्य औषधि हैं, किन्तु तीनों का उपयोग लक्षण भेद से पृथक होता है। शारीरिक उत्ताप १०२ डिग्री से १०४ डिग्री या अधिक हों, दाह, निद्रानाश, तृषा, शीर्षशूल, पीले पतले गरम गरम दस्त, अचेतावस्था में असम्बन्ध प्रलाप और सचेतावस्था में प्रलापशमन आदि लक्षण होने पर सूतशेखर विशेष लाभ पहुँचाता है। शारीरिक उत्ताप १०२ डिग्री या अधिक आक्षेप, दाँत भिंचना, पतले दस्त, नाड़ियों का खिंचाव और प्रबल प्रलाप होने पर बृहत् कस्तूरी भैरव सत्वर फलदायी है। शारीरिक उत्ताप १०१ डिग्री या कम, निद्रानाश, शक्तिपात, मानसिक व्याकुलता, उदासीनता, अन्त्र में आम, कृमि या दूषित मल का संग्रह होना, मललिप्त जिह्वा, मन्द-मन्द प्रलाप और मस्तिष्क में भारीपन आदि लक्षण होने पर उदर शोधन करके बृहद् ब्राह्मीवटी तगरादि कषाय के साथ देने पर सत्वर लाभ होता है।

विषम ज्वर अनेक दिनों तक रह जाने पर शारीरिक निर्बलता अधिक आई हो, तब रोग शामक मुख्य औषधि के साथ इस वटी का सेवन कराते रहने से रोग सत्वर शमन होकर बल की वृद्धि होती है।

५. पीतमृगांक रस।

द्रव्य–सफेद सोमल, हरताल, मन:शिला और फिटकरी चारों औषधियाँ १-१ तोले लें।

विधि–इनको जौकूट करें। फिर केले के खम्भे का रस और शिवलिङ्गी का रस २०-२० तोले के साथ क्रमश: खरलकर टिकिया बनाकर सुखा लेवें। पश्चात् छोटी हांडी में रख, ऊपर समान मुंहवाली हाँडी रख डमरूयन्त्र बनाकर दृढ संधिलेप करें। सूखने पर चूल्हे पर चढ़ा ६ घण्टे अग्नि देकर पुष्प उड़ा लेवें। यन्त्र स्वाङ्गशीतल होने पर पीला सत्व निकाल लेवें। *(र.चं.)*

वक्तव्य–रस चण्डाशुकार ने स्वर्ण वंग का उपनाम पीत मृगाङ्क दिया है, किन्तु वह सौम्य है, यह उग्र है।

मात्रा–१/१६ से १/४ रत्ती, १ से २ तोले घृत मिश्री के साथ दिन में एक बार भोजन कर लेने पर तुरन्त देना विशेष अनुकूल रहता है।

उपयोग–यह सत्व वातविकार, हिक्का, श्वासरोग, वातरक्त और कुष्ठ रोग का नाश करता है। यह औषध रसायन, उत्तेजक, सेन्द्रिय विषनाशक, कीटाणुनाशक और वातहर है।

फिरङ्ग रोग होने पर प्रारम्भ में उचित लक्ष्य न देने से उसका विष मांस आदि धातुओं में लीन हो जाता है। फिर वातविकार, पक्षाघात, अर्दित; कटिवात, कम्प, रक्तविकार, फोड़ा-फुन्सी, गुदशूक, नासाव्रण, तालुछिद्र, नाड़ीव्रण, उदरकृमि और कुष्ठ आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन उपद्रवों को दूर करने लिये मल्लप्रधान औषधि दी जाती है। उपदंशसूर्य, मल्लसिन्दूर, मल्लादि वटी, व्याधिहरण, अष्टमूर्ति रसायन, नवग्रह रस और यह पीतमृगांक ये सब उपकारक है। इनमें से मेदोवृद्धि और कफप्रधान प्रकृति वालों को मल्लप्रधान व्याधिहरण अथवा पीतमृगांक इतर औषधियों की अपेक्षा सत्वर फल दर्शाता है।

यह रस श्वास, मंदाग्नि, फिरंग, क्लीवता, मलेरिया ज्वर के वेग इत्यादि रोगों में उचित अनुपान से अत्यन्त लाभदायक है। उत्तेजक और बल्य है।

अनेक त्वचा के रोगों का नाश करता है।

सूचना-(१) भोजन में दूध भात या मट्ठा-भात तथा शीतल जल पथ्य रूप से देवें। उष्ण पदार्थों का त्याग करावें।

(२) यह सत्व वात और कफप्रकोपज रोगों पर हितावह है। पित्त प्रधान लक्षण दाह, नेत्र में लाली, अति प्रस्वेद आदि हों तो इस रस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(३) यह तीक्ष्ण औषध है। अतः इसे अकेला सेवन न करावें। फिटकरी की भस्म १ रत्ती या शामक औषधि के रूप में प्रवालपिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर सेवन करना चाहिये। *(श्री राधाकृष्ण वैद्य)*

(४) ज्वर अधिक हो, उस समय इस औषध का सेवन नहीं करना चाहिये। रक्तपित्त, अम्लपित्त या मूत्ररोग, दाह हो, तो भी इस रस का सेवन नहीं कराना चाहिये। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को या पित्त प्रधान ऋतु के हेतु से इस औषध के सेवन करने के पश्चात् ज्वर आ जाये, अथवा मुँह पर शोथ उपस्थित हो जाये, तो तुरन्त इसे बन्द कर देना चाहिये। केवल दूध का ही आहार करें। उष्णता प्रतीत हो तो घी की मात्रा बढ़ानी चाहिये।

६. स्पर्शवातारि रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद (रससिंदूर) ८ भाग, एरण्ड तैल में शुद्ध किया हुआ कुचिला १० भाग, शुद्ध गन्धक १२ भाग, कुटकी और त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) ३-३ भाग, भिलावा, चित्रकमूल, नागरमोथा, बच, असगन्ध, रेणुका (अभाव में निर्गुण्डी के बीज), शुद्ध बच्छनाग, कूठ, पीपलामूल, नागकेशर और लोहभस्म ये ११ औषधियाँ १-१ भाग तथा गुड २४ भाग लें।

विधि-पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर लोहभस्म, बच्छनाग, कुचिला और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण क्रमशः मिलाकर मर्दन करे। तत्पश्चात् गुड़ के साथ खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। इसे महायोगराज गुग्गुलु के समान काष्ठ मूसली से कूटकर तैयार करना चाहिये। *(र.र.स.)*

मात्रा-१ गोली से प्रारम्भ कर प्रकृति के अनुकूल रहे, उतने एक-एक कर (१२ गोली या न्यूनाधिक) तक बढ़ावें। दिन में दो समय निवाये जल से या मलावरोध होने पर त्रिफला चूर्ण से दें।

उपयोग-यह रस २-३ मास तक शान्ति से सेवन करने पर स्पर्शवात को नष्ट करता है। शरीर के भीतर बहुधा तोड़ने के समान पीड़ा और दाह हो, बाह्यत्वचा पर स्पर्श का बोध न होता हो, तथा स्थान-स्थान पर रक्तविकार के धब्बे देखने में आते हों, तब स्पर्श वात रोग कहलाता है। इस विकार पर यह रस प्रयोजित होता है। यह रस आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, कुष्ठ एवं उपदंश जन्य कुष्ठ रोग, चर्मरोग आदि रोगों पर भी लाभ दर्शाता है।

इस रस में लोहभस्म के स्थान पर कितने ही चिकित्सकों ने इन्द्रायण का मूल मिलाया है। इन्द्रायण का मूल रक्त शोधन में हितावह है। और लोह भस्म का पारद के साथ संयोग होने से कीटाणुनाशक, रक्ताणुवृद्धि और रक्ताभिसरण क्रिया- वृद्धि इन तीन कार्यों में अच्छी सहायता मिल जाती है। इस हेतु से हमने लोह भस्म मिलाना विशेष हितावह माना है। आवश्यकता पर इन्द्रायण मूल का उपयोग भी अनुपान रूप से होता है।

७. खंजनिकारि रस।

विधि-एरण्ड तैल से शुद्ध किये हुए कुचिले का कपड़छन चूर्ण, मल्लसिन्दूर (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड दूसरी विधि) और रजतभस्म तीनों समभाग मिला अर्जुन छाल के क्वाथ की ७ भावनायें देकर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)

मात्रा-१ से २ गोली, प्रातः सायं, गोदुग्ध या दशमूल क्वाथ से देवें।

उपयोग-यह रस उत्तेजक, वातनाड़ी पौष्टिक, हृद्य और कृमिनाशक है। अर्दित, खञ्जवात, कम्पवात, बहिरायाम, अन्तरायाम, कौब्ज, खल्ली, वातशूल और पुराने पक्षवध पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। इसके सेवन से मांसपेशियों और रक्तवाहिनियों की विकृति दूर होती है। वातवाहिनियां सबल बनती है। यदि उपदंश का विषरक्त में अवस्थित हो तो वह भी नष्ट हो जाता है। जीर्ण उपदंश के विष को नष्ट करने के लिए माजून चोपचीनी या अन्य रक्तशोधक के साथ खञ्जनिकारि रस देना चाहिये।

८. अर्दितारि रस।

विधि-केशर, एरण्ड तैल में शुद्ध किया हुआ कुचिला, हिंगुल, रौप्यभस्म, अकरकरा, जायफल, जावित्री और लौंग १-१ तोला, सोमल और कस्तूरी ३-३ माशे लेवें। सबको मिला ब्राह्मी (जल नीम) के क्वाथ में १२ घण्टे और अदरक के रस में १२ घण्टे खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा-१-१ गोली; प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ देवें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से अर्दित, खञ्जवात, पक्षाघात और कम्पवात आदि रोग दूर होते हैं। जीर्ण अर्दित और जीर्ण पक्षवध में विशेष उपकार दर्शाती है।

९. भल्लातकादि गुटिका।

द्रव्य-शुद्ध भिलावे ८ तोले, गुड़ ५ तोले, पीपलामूल, पीपल, अकरकरा, सोंठ और मालकांगनी ये सब १-१ तोला लें।

विधि-सब औषधियों को कूट, गुड़ में मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा-२ से ४ गोली तक; दिन में दो बार; जल के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी संधिवात, गठियावात, कटिवात और उदरवात को दूर करती है। इस वटी के साथ तैल के पदार्थों का सेवन अधिक अनुकूल रहता है। खटाई, शक्कर और घी वाला पदार्थ और दूध कम अनुकूल या प्रतिकूल रहते हैं। सुजाक आदि रोग से संधि जकड़ जाती है, उस पर भी यह वटी लाभ पहुँचाती है। मलावरोध रहता हो, तो त्रिफला का फाण्ट अनुपान रूप से देना चाहिये।

सूचना-शाक को छोंक देने में राई का उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा सारे शरीर में राई के समान फुन्सियाँ निकल आती हैं।

१०. वातहर गूगल।

द्रव्य-शुद्ध गूगल १० तोले, बीजाबोल ५ तोले, पीपलामूल ५ तोले और शुद्ध हिंगुल १। तोले लेवें।

विधि-सबको मिला घी लगा, कूटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से ४ गोली तक। दिन में ३ बार; अदरक के रस और शहद अथवा रास्नादि अर्क के साथ देवें।

उपयोग-इस गूगल के सेवन से थोड़े ही दिनों में कमर की वायु दूर हो जाती है। स्त्रियों के मासिक धर्म की शुद्धि न होती हो तो उसमें भी लाभ हो जाता है। एवं समस्त शरीर के वात रोगों का शमन हो जाता है, जीर्ण रोगों में शान्तिपूर्वक पथ्य पालन सह २-३ मास तक सेवन कराना चाहिये।

११. रसोनादि गूगल।

द्रव्य-शुद्ध गूगल १० तोले, लहसुन साफ किया हुआ ५ तोला, सोंठ कालीमिर्च, पीपल, रास्ना और एरंड के बीजों का मगज ये औषधियां २॥-२॥ तोले लें।

विधि-सबको मिला कूट, घी के साथ २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

सूचना-एरण्ड के मगज में से जिब्भी (पत्ती) निकाल देनी चाहिये। अन्यथा औषध सेवन से बेचैनी और उबाक होने लगती है।

उपयोग-इस गूगल की २ से ४ गोली दिन में ३ बार निवाये जल के साथ देते रहने से संधिवात; हाथ-पैर आदि अवयवों में बार-बार होने वाली वातज पीड़ा और उदरवात आदि विकार शमन हो जाते हैं।

कितने ही रोगियों को कुछ वातुल पदार्थ खाने, शीतकाल में बद्दल आने और वर्षा ऋतु आदि कारणों से कभी कभी एक अवयव में तो कभी दूसरे अवयव में वातप्रकोप जनित वेदना होती रहती है। उनके लिये यह गूगल हितावह है।

१२. अपतन्त्रकारि वटी।

द्रव्य-भुनी हींग १ तोला, कपूर १ तोला, गांजा ६ माशे, खुरासानी अजवायन और तगर (आसारूव) २-२ तोले लें।

विधि-सबके कपड़छन चूर्ण को मिला जटामाँसी के क्वाथ (फाण्ट) में १ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)

मात्रा-२-२ **गोली**, दिन में ३-४ बार मांस्यादि क्वाथ के साथ।

उपयोग-यह वटी अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) पर अच्छा लाभ पहुँचाती है। नये रोग और पुराने, दोनों पर हितकारक है।

१३. गृध्रसीहर गुटिका।

द्रव्य-महायोगराज गूगल ८ तोले, भुनी हींग २ तोले और जिब्भी निकाली हुई एरण्ड की मिंगी २ तोले।

विधि-इनको मिला रास्नादि क्वाथ में ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से ४ गोली तक। प्रातः सायं निवाये जल के साथ देते रहें या रास्नादि क्वाथ के साथ देवें। कब्ज हो, तो एरण्ड तैल के साथ देवें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से गृध्रसी वायु थोड़े ही दिनों में दूर हो जाता है। इस औषध के सेवन काल में घी और तैल वाले पदार्थों का सेवन अधिक अनुकूल रहता है।

१४. कारस्करादि गुटिका।

द्रव्य–एरण्ड तैल में शुद्ध किया कुचिला २० तोले, शुद्ध सिंगरफ ५ तोले, अकरकरा ५ तोले, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, जायफल और जावित्री २-२ तोले तथा लौंग, दालचीनी, पीपलामूल और केशर १-१ तोला लें।

विधि–सबको कूट कपड़छन चूर्ण करें फिर जायफल, कालीमिर्च और लौंग ५-५ तोले को ८ गुने जल में मिला अर्धावशेष क्वाथ करें। इस क्वाथ के साथ चूर्ण को १ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली। दिन में ३ बार जल या दूध के साथ देवें।

वक्तव्य–केवल वातनाड़ियों की दुर्बलता, आमाशय-दौर्बल्य, अग्निमांद्य और कोष्ठाश्रित दोषों को दूर करने के लिये कुचिला-मिश्रित औषधि भोजन के १ घण्टे बाद गर्म जल से देना विशेष लाभदायक है। शाखाश्रित दोषों में तथा सर्वाङ्ग वायु और मांसगत वायु के शमनार्थ भोजन से ३ घण्टे पहले उचित अनुपान कषाय, स्वरस या दूध के साथ देवें। *(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)*

उपयोग–इस वटी के सेवन से जीर्ण वातरोग नष्ट हो जाते हैं, शरीर में बल और रक्त की वृद्धि होती है, अन्त्र की परिचालन क्रिया में वृद्धि होने से मल-शुद्धि नियमित होती है, पतले दस्त होते हों, तो मल बंध जाता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, मन्दाग्नि, अजीर्ण, ग्रहणी और वीर्यविकार शमन होते हैं, तथा हाथ पैर और कमर का दर्द दूर होता है। यदि मांसपेशियां सूखती जाती हों तो वह विकृति भी दूर होती है। अर्दितवात, अर्धाङ्गवात, संधिवात, शिरोगतवात और उदरवात के शमन में यह औषधि अति हितावह है। देह के किसी भी भाग में वातवाहिनियों की विकृति होने पर यह वटी उसे सत्वर दूर करती है। संज्ञावह वातनाड़ियों की विकृति अर्थात् जिस स्थान पर स्पर्शजनित बोध न हो उस पर इसका प्रयोग नहीं होता। चेष्टा-नाड़ियों की विकृति में यह लाभदायक है।

इस वटी के उपयोग से उदरवात दूर होते हैं। जीर्ण कोष्ठबद्धता, अग्निमांद्य, उदरकृमि और अपचन आदि विकार दूर होते हैं। पचन-क्रिया सबल बनती है। आलस्य, अधिक निद्रा और मस्तिष्क की निर्बलता दूर होकर उत्साह की वृद्धि होती है।

पौष्टिक औषधि के साथ प्रयोग करने पर बल्य, कामोत्तेजक गुण दर्शाती है। स्वप्नदोष दूर होता है। स्मरणशक्ति और वीर्य की वृद्धि होती है। पुष्टि के लिये यह गुटिका प्रातःकाल और रात्रि को मिश्री मिले दूध के साथ सेवन करनी चाहिये।

१५. नागरादि गुटिका।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और पीपलामूल चारों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला कपड़छन चूर्ण करें। फिर शहद में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें और सोंठ के चूर्ण में डालते जायें।

उपयोग–२ से ४ गोली। दिन में २ या ३ बार सेवन कराने से हाथ-पैरों की नसें खिंचना, बांयटे आना, निद्रा न आना, ऐंठन, आमवृद्धि, उदर में वातसंचय रहना, क्षुधानाश और मुँह में चिपचिपापन रहना आदि विकारों को दूर करती है। यह सामान्य औषधि होने पर भी अच्छा लाभ पहुँचाती है।

यदि पैरों पर अधिक ऐंठन हों, तो जायफल को ४ गुने तिल तैल में उबाल कर उस तैल से मालिश करने पर सत्वर लाभ पहुँचता है। विसूचिका रोग की ऐंठन पर भी यह तैल लाभ पहुँचाता है।

कितने ही वृद्धों को रात्रि में निद्रा नहीं आती, उनको इस गुटिका से निद्रा आने लगती है और वातप्रकोप नहीं होता है।

१६. कूष्माण्ड अर्क।

द्रव्य एवं विधि–एक पेठा पक्का ५ सेर वजन का लेकर डण्ठल की जगह चाकू से काट, छेदकर उसमें से चम्मच से गर्भ, बीज आदि को चला देवें। उसमें २० तोले हीरा हींग भर; पूर्ववत् बन्द कर, कपड़ मिट्टी करके सुखा देवें। फिर उसका मुख ऊपर की तरफ रहे, उस तरह जमीन में दबा देवें। किसी को शंका हो कि जमीन में दबाने से पेठा सड़ जायेगा, तो उस शंका के निवारणार्थ कहना पड़ेगा कि, ऊपर की छाल भी जैसी की जैसी रहती है और भीतर का मगज रस रूप बन जाता है। एक मास के पश्चात् पेठे को निकाल सम्हालकर मुख पर से कपड़मिट्टी दूर कर, पैठे के मुँह को खोल, उसमें से लोहे के नलिका यन्त्र द्वारा अर्क निकाल, छानकर बोतलों में भर लेवें। यह अर्क २-३ वर्ष तक अच्छा रहता है। *(आ.नि.मा.)*

सूचना–पेठे के ऊपर लगभग ८-९ इञ्च मिट्टी आ जाये, उतना गहरा गड्ढा खोदना चाहिये। जिस जमीन में शुष्कता हो ऐसे स्थान पर पेठे को दबाना चाहिये। भूल से मुख भाग नीचे न रह जाये, यह सम्हालें, अन्यथा सब अर्क जमीन में चला जायेगा।

मात्रा–५ से १० बूंद। दिन में ३ बार २॥-२॥ तोले जल में मिलाकर पिलावें।

उपयोग–इस अर्क के सेवन से देह में अति उष्णता उत्पन्न होती है। समस्त वातरोग, कटिग्रह, सांधों सांधों में वेदना और पक्षाघात आदि का शमन हो जाता है, तथा समस्त वात कफ प्रधान रोगों में भी लाभदायक है।

१७. मांस्यादि क्वाथ।

द्रव्य–जटामांसी ८ तोले, असगन्ध २ तोले और खुरासानी अजवायन १ तोला लें।

विधि–सबको मिलाकर जौ कूट कर लें। *(स्व. पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा–१।-१। तोले, चूर्ण को १० तोले जल में मिला अर्धावशेष क्वाथ करें।

उपयोग–इस क्वाथ का उपयोग हिस्टीरिया, अपस्मार, रक्तचाप, आक्षेपक वात और बालकों के नृत्य वात (Chorea) पर अकेले या वृहद् वातचिन्तामणि, ब्राह्मीवटी, हिस्टीरियानाशक वटी, अपतन्त्रकारि वटी या सर्पगन्धा वटी के साथ होता है।

१८. त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु।

द्रव्य–लहसुन, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावरी, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ ये १२ औषधियाँ ४-४ तोले, शुद्ध गूगल ४८ तोले और गोघृत २४ तोले लेवें।

विधि–सब औषधियों के कपड़छन चूर्ण और गूगल को थोड़ा-थोड़ा गौघृत मिला कूटकर एक जीव बना लें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(बं.से.)*

मात्रा–२ से ४ गोली। दिन में ३ बार, रास्नादि क्वाथ या रास्नादि अर्क या रोगनाशक, अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह गूगल कटिग्रह, गृध्रसी, बाहु, पीठ, जानु (घुटने), पैर, संधि, हड्डी, मज्जा और स्नायुगत वात, हनुग्रह, और कुष्ठ आदि रोगों को दूर करता है। वातज और कफज रोग, हृद्रोग, योनिदोष, खञ्जवात और अस्थि-मज्जा आदि के विकारों का नाश करता है।

पक्षाघात की प्रारम्भिक अवस्था में दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराने पर थोड़े ही दिनों में रोग निर्मूल हो जाता है। यदि गृध्रसी आदि जीर्ण वात रोगों पर देना हो तो शान्तिपूर्वक ४-६ मास तक सेवन करना चाहिये।

१९. पञ्चामृतलोह गुग्गुलु।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्यभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्ण माक्षिक भस्म ४-४ तोले, लोहभस्म ८ तोले और शुद्ध गूगल २८ तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करके भस्में मिलावें। फिर लोहे की खरल में गूगल को थोड़ा-थोड़ा कड़वा तैल मिलाकर कूटें। गूगल नरम होने पर उसमें भस्मादि सब मिला ६ घण्टे तक कूटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार, दूध या सौंठ और एरण्ड मूल के क्वाथ अथवा असगन्ध के साथ दें।

उपयोग–इस रसायन का प्रयोग करने से मस्तिष्कगत वातविकार, मांसपेशियों में पीड़ा, गृध्रसी, अवबाहुक, कटिवात, संधिवात, आमवात आदि वातविकार नष्ट होते हैं।

जब मस्तिष्कगत वातकेन्द्र में और वातनाड़ियों में विकृति, रक्त की न्यूनता और आमानुबन्ध सह चिरकारी रोग हो या तीव्र क्षोभ वाली अवस्था शांत हो गई हो तब इस रसायन का उपयोग होता है। यह रसायन आम को जलाता है, रक्त का प्रसादन करता है तथा मस्तिष्क, हृदय, रक्त और रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों को सबल बनाता है। जिससे मस्तिष्क में शून्यता आ जाना, चक्कर आना, घबराहट, मानसिक बेचैनी, अर्दित और देह के विविध स्थानों में वातजनित वेदना होना आदि लक्षण दूर हो जाते हैं।

यह पञ्चामृत-लोह-गुग्गुलु वातपित्त मिले हुए वातप्रकोप या पित्त-प्रकृति वालों के उत्पन्न वातरोग पर व्यवहृत होता है। आयुर्वेद संग्रहकार ने **इसे मुख्य** मस्तिष्कगत विकार पर लिखा है, तथापि मस्तिष्क के अतिरिक्त गृध्रसी आदि पर भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

मैंने पञ्चामृत-लौह-गुग्गुलु का गृध्रसी; आमवात, सन्धिवात पर काफी प्रयोग किया है। यह रस आमवात में महारास्नादि **क्वाथ एवं एरण्डमूल क्वाथ** के साथ देने से आम विष को जलाता है, मलावरोध को दूर करता है, और संधि स्थानों की पीड़ा को शमन करता है, **तथा बलवर्धक**, आन्त्र शोधक एवं अग्नि-प्रदीपक है।

२०. रसोनपिण्ड।

द्रव्य व विधि–एक पक्का पेठा ५ सेर वजन का लेकर उसके डण्ठल की जगह चाकू से काट छेदकर भीतर से बीज आदि हो सके उतने निकाल देवें। फिर एक पोती लहशुन छिलका और बीच का अंकुर दूर किया हुआ ४० तोले लेकर उस पेठे के भीतर भर देवें। पश्चात् काटा हुआ डण्ठल ऊपर लगा कपड़मिट्टी करें। डण्ठल वाला भाग ऊपर ही रहना चाहिये। फिर गोबरी की अग्नि में पुटपाक रीति से पका लेवें। जब कपड़मिट्टी ऊपर से लाल प्रतीत होने लगे, तब पेठे को कूट (बीज निकाल) कर कल्क बना लें। पश्चात् कलई की हुई पीतल की कड़ाही में २० तोले तिल तैल डालकर गरम करें। उसमें छोंक रूप से हींग १ तोला तथा दालचीनी के छोटे-छोटे टुकड़े, जीरा, राई, और लौंग २॥-२॥ तोले डालें। फिर पेठे का कल्क डाल अच्छी तरह चलाकर पकावें। शीतल होने पर सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अकरकरा, दालचीनी, तेजपात, काला जीरा, अजवायन, पीपलामूल, धनियाँ और जीरा इन ११ औषधियों का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला तथा सैंधानमक ५ तोले (या कम ज्यादा) डालकर अमृतबान में भर लें। *(स्व. पं. श्री गोवर्धनजी छांगाणी भिषक्केसरी)*

मात्रा–६ माशे से २ तोले तक खिलाकर ऊपर वायविडङ्ग और एरण्ड मूल का क्वाथ पिलावें।

उपयोग–यह प्रयोग सब प्रकार के वात रोगों पर हितकारक है। सर्वाङ्ग वात, अर्धाङ्ग वात, अर्दित, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक, गृध्रसी, कटिवात, उदरवात, ऊरूस्तम्भ, उदरकृमि, कफप्रकोप, उदावर्त, अपचन, आमातिसार और आमवृद्धि आदि को दूर करता है। जीर्ण आमवात और संधि स्थान के शोथ पर भी यह योग लाभ पहुँचाता है। इसके सेवन से वातवाहिनियाँ, मांसपेशी और हृदय सबल बनते हैं, पेशाब साफ आता है, ज्वर रहता हो, तो दूर होता है, रक्तदबाव वृद्धि हुई हो, तो उसका ह्रास हो जाता है, तथा देह में पूयोत्पत्ति हुई हो, तो पूयकीटाणु नष्ट होते हैं।

पक्षाघात के रोगी को प्राय: सायं मल्लसिंदूर या व्याधिहरण सोमलयुक्त १/२ रत्ती और कस्तूरी १/४ को मिला अदरक के रस और शहद के साथ देते रहें और ऊपर इस रसोनपिण्ड में से २॥-२॥ तोले खिलाते रहने से पक्षाघात रोग सत्वर दूर हो जाता है। जिन रोगियों को शराब-सेवन से पक्षाघात हो गया हो, या जिनको पक्षाघात होने पर भी मस्तिष्क और कोष्ठ में उष्णता रहती हो, उनके लिये यह रसोनपिण्ड अति उपकारक है। यह रसोनपिण्ड रक्तचाप एवं रक्तचापजन्य अन्य विकारों में भी लाभ करता है।

२१. गुञ्जाभद्र रस।

द्रव्य–गोदुग्ध में शुद्ध की हुई सफेद चिरमी की अंकुर रहित गिरी, जयन्ती (अरण्डी) के मूल और नीम की निम्बोली की गिरी ६-६ तोले, शुद्ध पारद ३ तोले और शुद्ध गन्धक १२ तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों का महीन चूर्ण मिला मकोय, भांग, धतूरे के पान और नींबू के रस में क्रमश: १२-१२ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.त.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार, हींग और सैंधा नमक के साथ देवें। ऊपर शिलाजीत, गूगल मिला हुआ दशमूल क्वाथ पिलावें।

उपयोग–गुञ्जाभद्र रस उरुस्तम्भ (Paraplegia) पर व्यवहृत होता है। प्राचीन आचार्यों ने इस रस में जमालगोटा मिलाया है। शास्त्र-मर्यादा अनुसार ऊरुस्तम्भ में स्नेह, वमन, विरेचन और बस्तिद्वारा शोधन या रक्तमोक्षण नहीं कराया जाता। विकृत मेद या मज्जा द्रव्य के संचय को जलाना पड़ता है और नयी उत्पत्ति को रोकना पड़ता है। यद्यपि जमालगोटा परिणाम में कम होने से विरेचन नहीं करा सकता तथापि अन्त्र में उग्रता तो लाता ही है। बहुधा ऊरुस्तम्भ पीड़ितों की आंत शिथिल होती है। ऐसी अवस्था में जमालगोटा लाभ नहीं पहुँचा सकेगा। एवं जमालगोटा मिलाने पर औषधि लम्बे समय तक नहीं दे सकेंगे और ऊरुस्तम्भ की थोड़े ही दिनों में निवृत्ति नहीं होती। **इस हेतु से रसतंत्रसारकार ने उसे निकाल दिया है, वह उचित ही प्रतीत होता है।**

यदि ऊरुस्तम्भ की आशुकारी अवस्था हो और उदरशोधनार्थ जमालगोटा मिलाने की आवश्यकता हो, तो इस गुञ्जाभद्र रस के साथ इच्छाभेदी रस या नाराच रस मिलाकर उपयोग करने पर इच्छित लाभ मिल सकता है।

ऊरुस्तम्भ की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं। सुषुम्णाकाण्ड पर चोट लगना, सुषुम्णाकाण्ड प्रदाह, सुषुम्णाकाण्ड पर ग्रन्थि होना या विद्रधि होना, मदात्यय, मलेरिया, विषप्रकोप, पाण्डु, मस्तिष्कक्षत आदि। इनमें से सुषुम्णाकाण्ड प्रदाह या अन्य कारण से केन्द्र स्थान की शक्ति नष्ट न हो गई हो, तो लाभ पहुँचने की आशा रख सकते हैं।

चोट आदि कारणों से आशुकारी ऊरुस्तम्भ सम्प्राप्ति हुई हो, अथवा मलेरिया या अन्य विष प्रकोप होकर चिरकारी रोग की सम्प्राप्ति हुई हो, दोनों पर यह प्रयुक्त होता है। यह दारुण आशुकारी रोग की वेदना को तुरन्त दबा देता है। एवं चिरकारी रोग जो अति जीर्ण न हो गया हो, वह भी पथ्य पालन करने पर २-४ मास में दूर हो जाता है।

सूचना–स्नेह, स्वेद, उत्सादन, लेप और व्यायाम आदि का उपयोग रोग और लक्षण अनुसार करना चाहिये।

२२. काकतिन्दुक वटी।

द्रव्य–एरण्ड तैल में भूने हुए कुचिले ७ छटांक, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला और लोहबान के फूल १-१ छटांक लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्णकर नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरल करें (९ घण्टे हो जाने पर केशर ३ माशे और कपूर १ तोला मिला लेवें) फिर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में २ बार दूध, जल या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह काकतिन्दुक वटी उदरवात, बारम्बार उठनेवाला शूल, आध्मान, जीर्ण कटिवात, हाथ पैरों में झनझनाहट, शून्यता आना, कम्प, वात और कफ वृद्धि आदि को दूर करती है और अग्नि को प्रदीप्त करती है।

यह कुचले की गोलियों के नाम से प्रसिद्ध है। दूध के साथ सेवन करने पर शारीरिक शक्ति को बढ़ाती है। कामोत्तेजना कराती है और वीर्य को भी बढ़ाती है।

सूचंना–(१) शक्तिवर्द्धक मानकर ज्यादा मात्रा में नहीं लेनी चाहिये। एवं १५ दिन सेवन करके १ सप्ताह बन्द करें फिर आवश्यकता हो तो सेवन करें।

(२) वातपीड़ितों को चाहिये कि तेज खटाई न लेवें। नींबू, मट्ठा, टमाटर ले सकते हैं। अमचूर, इमली, सिरका आदि का त्याग करें।

२३. रसोन पाक।

द्रव्य–छिलके और बीच के अंकुर रहित शुद्ध लहशुन ६४ तोले को २५६ तोले दूध में मिलाकर खोआ बनावें। उसे ६४ तोले घी मिलाकर भूनें तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, नागकेशर, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, बायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, हाऊबेर, विधारा, पुष्करमूल (मीठा कूठ), अजवायन, लौंग, देवदारु, पुनर्नवा की जड़, गोखरू, नीम की अन्तर छाल, रास्ना, सोया, शतावर, कचूर, असगन्ध, कोंचबीज इन २८ औषधियों का चूर्ण १-१ तोला लें।

विधि–पश्चात् १२८ तोले शक्कर की चाशनी का खोआ और चूर्ण मिलाकर पाक बना लेवें।

मात्रा–४-४ तोले, प्रातः सायं देते रहें।

उपयोग–इस पाक के सेवन से सर्व प्रकार के वातरोग, अपस्मार, उरःक्षत, गुल्म, उदररोग, वमन, प्लीहावृद्धि, वृषणवृद्धि, कृमि, कोष्ठबद्धता, आनाह, शोथ, अग्निमांद्य, बलक्षय, हिक्का, श्वास, कास, अपतन्त्रक, धनुर्वात, अन्तरायाम, पक्षाघात, अपतानक, अर्दित, आक्षेपक, कुब्जवात, हनुग्रह, शिरोरोग विश्वाची, गृध्रसी, खल्लीवात, पङ्गुवात, संधिवात, आमवात, बधिरता और सम्पूर्ण प्रकार के शूलों का अति शीघ्र नाश होता है। यह पाक वातव्याधि रूपी हाथी को सिंह के समान नाश करता है एवं कफप्रकोपजनित विकारों को दूरकर बल और पुष्टि देता है। इस पाक का एक वर्ष तक सेवन करने से वात आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह पाक रक्तचाप में भी लाभदायक है।

२४. एरण्डपाक (वातारिपाक)।

द्रव्य–एरण्ड के बीज की गिरी (भीतर की जिह्वी निकाली हुई) ६४ तोले, गोदुग्ध ५१२ तोले, घी ४० तोले, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौंग, छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, असगन्ध, सोया, रास्ना, षड्गन्धा (घुड़बच), रेणुकबीज, शतावर, पुनर्नवा की जड़, काली निसोत, खस, जावित्री, जायफल, लोहभस्म, अभ्रकभस्म २-२ तोले, शक्कर २॥ सेर लेवें।

विधि–पहले एरण्ड मज्जा को ४० तोला दूध में भिगोकर शिला पर बारीक पीसकर मक्खन के समान बना लेवें। तत्पश्चात् शेष दूध में मिलाकर खोआ बना लेवें। खोआ बन जाने पर घृत में बादामी रङ्ग आने तक भूनें। इसके बाद उपरोक्त काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण और धात्वादि की भस्में मिलाकर खूब अच्छी तरह मिला लें। फिर शक्कर की चाशनी बना, कुछ शीतल होने पर औषधिमिश्रित खोआ मिलाकर चक्कियाँ बना लें। लड्डू बनाना हो, तो चाशनी गोलीबन्द करें।

मात्रा–२ से ४ तोला या बलाबल के अनुसार प्रातःकाल सेवन करें।

उपयोग–इस वातारि पाक के सेवन से ८० प्रकार के वातविकार, ४० प्रकार के उदररोग, अन्त्रवृद्धि, २० प्रकार के प्रमेह, ६० प्रकार के नाड़ीव्रण, १८ जाति के कुष्ठ, क्षय, ५ प्रकार के पाण्डु, ५ प्रकार के श्वास, ४ प्रकार के ग्रहणी रोग, दुष्टि रोग, गलग्रह और अनेक प्रकार के वातप्रकोपज विकार नष्ट होते हैं। यह पाक शुक्रल और रसायन है।

२५. चोपचीनी पाक।

द्रव्य–नयी चोपचीनी ४० तोला के चूर्ण को ४ सेर गोदुग्ध में पकाकर खोआ बनावें। फिर २०० तोले शक्कर की चाशनी मिलावें। साथ ही छोटी इलायची के दाने ४ तोले तथा लौंग, कपूर, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, गम्भारी के फल, जावित्री, मालती के फूल, कौंच, काकोली, कस्तूरी, सिंघाड़े, वंशलोचन, जटामांसी, तेजबल, जायफल, नीलोफर, विदारीकन्द, सफेद मूसली, शीतलमिर्च, शतावरी इन २४ औषधियों का कपड़छन चूर्ण दो-दो तोले तथा ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म दो-दो तोलें।

विधि–सबको मिलाकर दो दो तोले के लड्डू बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१-१ लड्डू दूध के साथ सेवन करें।

उपयोग–यह पाक बलवर्धक रसायन है। वातव्याधि, अति दारुण आम वात, अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, अपतानक, सर्व प्रकार के शिरोरोग, संधिपीड़ा, कटिग्रह, अरुचि, जुकाम, कास, श्वास, क्षय, धातुक्षीणता, बलक्षय, ओज-क्षय और सब प्रकार के उपदंश के उपद्रव आदि को नष्टकर देह को सबल और तेजस्वी बनाता है। इस पाक के सेवन काल में तेज वायु का सेवन नहीं करना चाहिये। दूध और मांस रस पथ्य है।

रक्तविकार और उपदंश के विष से पीड़ितों के विविध उपद्रव दूर कर शक्तिप्रदान करने के लिये यह पाक अति हितकारक है। इसका अनुभव श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी ने अनेक बार किया है।

२६. माजून कुचिला।

द्रव्य–शुद्ध कुचिला २० तोले, कालीमिर्च, श्वेतमिर्च, रूमीमस्तंगी, केशर, लौंग, दालचीनी, सफेद तोदरी, लाल तोदरी, चोपचीनी, शीतल

मिर्च, आंवला, छोटी इलायची के दाने, अजवायन, सफेद चन्दन, पीपल, वंशलोचन, सफेद मूसली, गावजवां, जायफल, अगर, शुद्ध बच्छनाभ, उदबिलसां, तेजपात, जटामांसी, सोया, सालममिश्री, कबाबा (तुम्बरू) ये २७ औषधियां १-१ तोला, सोने के वर्क और चांदी के वर्क २-२ माशे तथा शहद सबसे ६ गुना लेवें।

विधि–काष्ठादि औषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर वर्क और शहद मिलाकर माजून बना लेवें। *(पं. श्री गुरुशरणदास जी)*

मात्रा–१ से २ माशे, बकरी या गौ के दूध के साथ या निवाये जल से दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग–यह माजून वातप्रकोपज वेदना को नष्ट करता है। कलायखञ्ज गृध्रसी, सर्वाङ्गवात, पार्श्व वेदना आदि में पीड़ा को शमन करता है, हृदय को सबल बनाता है। उदरवात का निवारण करता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

सूचना–इस माजून में बच्छनाभ मिलाया है। यह वातहर और वेदनाशामक है। किन्तु उग्रविष होने से इस माजून की अधिक मात्रा नहीं देनी चाहिये।

यह माजून अति कड़वा है। इस हेतु से शहद के बदले में चूर्ण के समान शक्कर की चाशनी में मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना सकते है। मात्रा २-२ गोली।

२७. महामाष तैल।

द्रव्य–निम्न क्वाथ, कल्कादि, तिल तैल ४ सेर, दूध १६ सेर लें।

क्वाथ–उड़द ४ सेर (कपड़े की ढीली पोटली में बन्धा हुआ), दशमूल ६। सेर और बकरे का मांस १५० तोले (कपड़े की ढीली पोटली में बंधा हुआ) इन सबको ६४ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें।

कल्क–कोंचमूल, एरण्डमूल, सोया, सैंधानमक, बिडलवण, कालानमक, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, मजीठ, चव्य, चित्रकमूल, कायफल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, रास्ना, मुलहठी, सैंधानमक, देवदारू, गिलोय, कूठ, असगन्ध, बच और कचूर इन ३३ औषधियों को २-२ तोले मिला जल में पीसकर कल्क करें।

विधि–क्वाथ, कल्क, तिल का तैल ४ सेर और दूध १६ सेर मिलाकर यथा विधि तैल पाक करें। *(भै.र.)*

उपयोग–इस तैल के मर्दन से पक्षाघात, अर्दित, बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिर:शूल, त्रिदोषज तिमिर रोग, हाथ पैर, शिर और कण्ठ के कम्प और आक्षेप, कलायखञ्ज, पैर रह जाना, गृध्रसी और अवबाहुक आदि नाना प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं। इस तैल का व्यवहार, बस्ति, अभ्यंग, नस्य, कर्णपूरण और अक्षि पूरण (नेत्र में अञ्जन और नेत्र में तैल भरना), इन सब प्रकार से होता है। यह तैल सूखे हुए अङ्गों (हाथ पैर आदि) को भी पुष्ट करता है।

२८. सहचरादि तैल।

द्रव्य एवं विधि–मूलसहित पियावांसा का पञ्चाङ्ग ४०० तोले, दशमूल ४०० तोले, शतावर २०० तोले लें। सबको जौकूट कर ८९९२ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर पुन: चूल्हे पर चढ़ावें। उसमें खस, भुने हुए नख, कूठ, चन्दन, छोटी इलायची, ब्राह्मी (जल नीम), प्रियंगु, नलिंका (सुगन्धित पानड़ी) खस, नेत्रबाला, पत्थरफूल, रक्तचन्दन, जटामांसी, अगर, देवदारू, खुरासानी, अजवायन, सौंफ, शिलारस और तगर इन १९ औषधियों का ४-४ तोले का कल्क ५१२ तोले दूध और ५१२ तोले तिल तैल मिलाकर मन्दाग्नि से सिद्ध करें। *(अ.हृ.)*

मात्रा–१ से ६ माशे तक, दिन में दो बार।

उपयोग–इस तैल का उपयोग अन्त:प्रयोग (मुख से लेना) नस्य, बस्ति और मालिश आदि के लिये होता है। यह तैल विविध प्रकार के कष्टसाध्य वातरोग, कम्प, आक्षेप, गात्रस्तम्भ (अङ्ग जकड़ जाना), मांस-शोथ-युक्त वातरोग, गुल्म, उन्माद, पीनस और योनि रोग आदि को दूर करता है।

विवेचन–व्रण, प्रसवकाल में दुर्लक्ष्य और दूषित आहार के सेवन से विविध प्रकार के वाताक्षेप रोग उपस्थित होते हैं। किसी-किसी को झटके बार-बार आते रहते हैं। मलावरोध, ज्वर, घबराहट, कफप्रकोप, हड़फूटन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस विकार पर यह तैल पिलाया जाता है। इस तैल से सत्वर लाभ पहुंचता है। इस तरह कम्प रोग पर भी महायोगराज गूगल के साथ इस तैल का सेवन कराने परसत्वर गुण प्रकट होता है।

अति शीत लग जाने पर देह के विविध संधि स्थानों में जकड़ाहट आ जाती है। योग्य उपचार न होने पर कुछ दिन के पश्चात् कलायखञ्ज (Loco Motor ataxia) उपस्थित होता है। फिर चलने में अति कष्ट होना, वायु सहन न होना, पेशाब गँदला और थोड़ा होना; कोष्ठ-बद्धता; घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस रोग पर इस सहचरादितैल का पान कराया जाता है। जिससे कीटाणुनाश और आमविष का नाश होता है। एवं दिन में २ बार आरोग्यवर्द्धनी का सेवन कराने से पचनेन्द्रिय संस्थान निर्दोष होकर रोगवृद्धि में सहायक विष की उत्पत्ति का रोध हो जाता है. इस तरह १-२ मास तक चिकित्सा करने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है। कितने चिकित्सक पियावांसा, देवदारु और सोंठ के क्वाथ के साथ इस तैल का सेवन कराते हैं।

कम्प रोग पर सहचरादि तैल, महायोगराज गुग्गुलु और महावातविध्वंसन तीनों उपकारक है, किन्तु तीनों का कार्य भिन्न-भिन्न है। केवल वात-विकृति हो, वातवाहिनियों का स्तम्भ, शोष और आक्षेप हो तथा आम और कफ का संसर्ग अधिक न हो और स्नेहन की आवश्यकता हो, तो सहचरादि तैल देना चाहिये। अग्निमान्द्य और आम प्रकोप हो, तो महायोगराज गूगल और स्वेद-स्राव की आवश्यकता हो, तो महावात विध्वंसन रस दिया जाता है।

मानसिक आघात पहुँचने से वातप्रकोप बढ़ जाता है, फिर किसी-किसी को मस्तिष्क में वातसंचय होता है, निद्रानाश, बेचैनी, कण्ठ में शुष्कता, क्षुधानाश, थकावट, मन की अस्थिरता, मिर्चयुक्त भोजन करने पर जिह्वा पर चटका लगना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस रोग पर सहचरादि तैल १-१ माशे का सुबह और रात्रि का सेवन कराने, एवं नस्य देने तथा कान में डालते रहने से विकार शमन हो जाता है। यदि ऐसे आघात से अर्दित रोग हो गया हो (एक ओर का नेत्र बन्द न होता हो, बोलने, थूकने और निगलने आदि में कष्ट पहुँचता हो) तो वह भी इस तैल के मर्दन और सेवन से दूर हो जाता है।

२९. हिमसागर तैल।

द्रव्य–शतावर का रस, बिदारीकन्द का रस, पक्के पेठे का रस, आंवलों का स्वरस, सेमल की जड़ का क्वाथ, गोखरू पञ्चांग का क्वाथ, नारियल का जल, तिल तैल, केले के खम्भे का रस ये ९ औषधियाँ २-२ सेर और दूध ८ सेर लेवें। कल्क के लिये रक्तचन्दन, तगर, कूठ, मजीठ, धूपसरल, अगर, जटामांसी, मुरा (अभाव में तगर या कपूरकाचरी) छरीला, मुलहठी, देवदारु, नख, हरड़, पूतिका (जुन्देबेदस्तर), पोई के पत्ते, कुन्दरु, नलिका (अभाव में अडूसा की छाल), शतावर, लोध, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, सफेद चन्दन, गठिवन और कपूर इन ३१ औषधियों को १।-१। तोले लेवें।

विधि–सब औषधियों को पीस, कल्ककर, मिला मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। *(भै.र.)*

उपयोग–यह तैल उच्च स्थान या वायु के वेग से गिरने वाले, हाथी, घोड़ा, ऊँट और मकान पर से गिरने वाले, लँगड़े, पीठ से लाचार बने हुए, एक अङ्ग या सब अंग जिनके सूख गये हों, क्षत रोगी, क्षीणवीर्य वाले, अत्यन्त बढ़े हुए क्षय रोगी; हनुस्तम्भ रोगी, मन्यास्तम्भ वाले, दुर्बल, शीर्ष रोगी, जिह्वा जिनकी बढ़ गई हो, मिन्मिनाकर बोलने वाले, दाह से अत्यन्त पीड़ित, क्षीणदेह वाले और वातरोग से पीड़ित, इनके लिये अति हितावह है। जो रोग वातप्रकोप से या पित्तप्रकोप से उत्पन्न हुए हों, मस्तिष्क में उत्पन्न विकार और शाखाश्रित रोग हों, ये इस तैल के प्रभाव से शान्त हो जाते हैं।

जब वात रोग में हाथ पैरों में दाह या सारे शरीर में दाह हो तब यह अति उपकारक होता है।

३०. पञ्चगुण तैल।

द्रव्य व विधि–तिल तैल १ मन को कड़ाही में डालकर गरमकर फिर शीतल करें। पश्चात् गूगल, राल, गन्धाविरोजा, शिलारस, मोम, आँवला, बहेड़ा और हरड़ ये ८ औषधियाँ १।-१। सेर, नीम के पान और निर्गुण्डी ३॥।-३॥। सेर लें। इनमें से त्रिफला, नीम और निर्गुण्डी का कल्क करें। फिर कल्क, गूगलादि औषधियां, तैल और ४ मन जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तैल सिद्ध होने पर कड़ाही को उतार, तुरन्त तैल को छान १। सेर कपूर का चूर्ण मिला देवें। *(स्व. कविराज प्रतापसिंहजी)*

उपयोग–यह तैल वेदनाप्रधान वातव्याधि पर मालिश करने के लिये अति लाभदायक है, बहुत वर्षों से कविराज जी का परीक्षित है। चोट लगने पर इसके प्रयोग से दर्द और शोथ दूर हो जाते हैं।

इस तैल का उपयोग व्रणरोपणार्थ और पीड़ाशमनार्थ दो प्रकार से होता है। अत: हम इस तैल में से आधा तैल व्रणरोपणार्थ रख लेते हैं। शेष आधे तैल में शीतल होने पर नीलगिरी तैल और तार्पिन तैल १।-१। से मिला लेते हैं। नीलगिरी तैल (यूकेलिप्ट्स ऑयल) ओर तार्पिन तैल मिलाने से इस तैल की पीड़ाशामक शक्ति की वृद्धि हो जाती है।

वक्तव्य–इस तैल को अधिक पीड़ाशामक बनाने को २० सेर तैल में ५ तोले अफीम बारीक पीसकर डाल देवें और बर्तन को बन्द कर १५ दिन तक धूप में रखकर बाद में उपयोग में लेवें तो पीड़ाशामक शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

यह तैल शीतल होने पर मल्हम सदृश गाढ़ा हो जाता है। पतले (प्रवाही) तैल की आवश्यकता होने पर अग्नि पर या धूप में रख किञ्चित् निवाया कर लेना चाहिये।

व्रणरोपणार्थ इसका उपयोग करने के पहले व्रणों को नीम के क्वाथ से या त्रिफला के क्वाथ से धो, पोंछकर फिर इस तैल में भिगोई हुई पट्टी रख, ऊपर नागरबेल का पान रखकर बांध देते हैं। *(श्री स्व. राजवैद्य पं. रामचन्द्र जी)*

इस तैल का प्रयोग स्व. वैद्यराज गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर ने 'घाव तैल' के नाम से सफलतापूर्वक कई वर्षों तक किया था। उनके अनुभवानुसार निम्न भाषा में गुणधर्म दर्शाया है।

उपयोग–चोट लगने पर मांस कुचल जाना, चोट लगकर रक्तस्राव होना, माँस फटकर घाव हो जाना, पूय निकलना, व्रण रोपण न होना, जले हुये भाग में पूयोत्पत्ति हो जाना, छुरी, तलवार, कील, भाला आदि लगकर रक्तस्राव होना आदि आगन्तुक व्याधियों पर यह तैल आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। यह तैल रक्त प्रवाह को तत्काल बन्द करता है। व्रण को शुद्ध बनाता है, माँस को सड़ने से रोकता है,

नया मांस लाता है और व्रण को भर देता है।

अकस्मात् जल जाने पर इस तैल का प्रयोग करने से और शीतल जल का स्पर्श न कराने से उस स्थान पर त्वचा-मांस सड़कर पूय की उत्पत्ति नहीं होती, इतना ही नहीं लगाने के साथ बर्फ के समान शीतलता पहुँचाकर वेदना को १५ मिनट में शान्त कर देता है।

ग्रीष्म ऋतु में छोटे बच्चों के शिर या देह में छोटे-छोटे फोड़े होकर पक जाते हैं। फिर पूयस्राव होता रहता है, उस रोग पर दो-चार दिन तक लगाते रहने से फोड़े सूख जाते हैं; नये उत्पन्न नहीं होते और त्वचा स्वच्छ हो जाती है।

कर्णपाक होकर पूयस्राव होने पर इसकी बूंदे दिन में १-२ बार डालते रहने से पूयस्राव बन्द होता है और घावभर जाता है।

यह तैल ड्रेसिंग के लिए अति हितावह होने से विविध रोगों के ड्रेसिंग में अनेक औषधियों का कार्य कर देता है। यह डॉक्टरी आईडोफार्म, टिंचर आयोडिन, जिंक मलहम, बोरिक मलहम, कार्बोलिक एसिड, हाइड्रार्जिरी लोशन आदि औषधियों के स्थान पर काम देता है। यह उत्तम कीटाणुनाशक और व्रणरोपक है। लेखक का अनेक वर्षों का अनुभव है। लेखक ने इसका नाम "ड्रेसिंग का तैल" दिया है।

विचर्चिका, किट्टिभ, पामा आदि चर्म रोगों पर भी पंचगुण तैल उत्तम लाभ दर्शाता है। विचर्चिका (ब्यूची) स्थान को नीम के क्वाथ से धोकर वस्त्र से पोंछ, साफकर पंचगुण तैल में भीगे हुए कपड़े को हल्दी के चूर्ण में डाल दें। भलीभांति हल्दी कपड़े से लग जाने पर विचर्चिका स्थान पर रख ऊपर पट्टी बाँध देवें। इस प्रकार प्रतिदिन १ सप्ताह तक उपचार करने से विचर्चिका का पूयस्राव बन्द होकर त्वचा स्वच्छ हो जाती है।

सूचना—इस तैल का प्रयोग करने के पहले घाव को नीम, जल मिलाकर उबाले हुए जल या कार्बोलिक लोशन से धो लेना चाहिये।

घाव में मिट्टी, धूल, पत्थर, कांचादि कुछ भी शेष रह गया हो, तो उसे सम्हालपूर्वक निकाल डालना चाहिये।

पट्टी स्वच्छ कपड़े की होनी चाहिये। पट्टी बाँधने पर भी घाव में धूलादि मैल न चला जाये, यह सम्हालना चाहिए।

३१. रसोन सुरा।

द्रव्य—तेज पुरानी शराब ४ सेर, लहसुन (छिलके और अंकुर को निकाल पीसकर कल्क की हुई) २॥ सेर तथा पीपल, पीपलामूल, जीरा, मीठा कूठ चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और चव्य इन ८ औषधियों को १।-१। तोला लें।

विधि—सबको मिलाकर अमृतबान में भर दें। एक सप्ताह के पश्चात् छान कर बोतलों में भर लें। *(च.द.)*

मात्रा—१ माशे से १ तोले तक, प्रकृति और अभ्यास के अनुसार जल के साथ देवें।

उपयोग—यह सुरा वातविकार, आमवात, कृमिरोग, विसूचिका, कुष्ठ, क्षय, आनाह, गुल्म, अर्श, पाण्डु, प्लीहा और प्रमेह आदि को दूर करती है तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है।

३२. भल्लातकासव।

द्रव्य—टोपीरहित भिलावाँ ५ सेर, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल २५-२५ तोले, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची के दाने १२॥-१२॥ तोले, धायके फूल २५० तोले, गुड २५ सेर और उबाला हुआ जल १०० सेर लेवें।

विधि—भिलावे और अन्य औषधियों का जौकूट चूर्ण करें। फिर जल, गुड और सब औषधियां मिला, अमृतबान में भरकर मुख मुद्रा करें। १॥ मास बाद आसव परिपक्व होने पर निकालकर छान लेवें।

मात्रा—१-१ औंस, दिन में २ बार। समान जल के साथ।

उपयोग—भल्लातकासव उष्णवीर्य, शुक्रल, मधुर विपाकी और लघु है। वातरोग, शुष्कार्श, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, उदरकृमि, यकृत्‌विकृति, प्लीहावृद्धि, अग्निमांद्य, अपचन, अफारा, उदरवात, उदरशूल, कफकास, श्वासरोग, कुष्ठ और वातरक्त आदि रोगों को दूर करता है। यह वात और कफप्रधान रोगों में उपकारक है।

सूचना—धूप में ज्यादा घूमने वाले, पित्तप्रकोप से पीड़ित और शुष्क कास एवं पित्तप्रधान प्रकृति वालों को भल्लातक प्रधान औषधि नहीं दी जाती। एवं ग्रीष्म ऋतु में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

३३. अश्वगन्धादि क्वाथ।

द्रव्य—असगन्ध, गिलोय, शतावरी, दशमूल, खरैंटी, अडूसा की जड़, पुष्करमूल और अतीस इन ७ औषधियों को समभाग लें।

विधि—सबको मिला जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा—१-१ तोले का क्वाथ, प्रातः सायं २-२ रत्ती शिलाजीत मिलाकर ४० दिन तक पिलावें।

उपयोग—यह क्वाथ शुक्रक्षय और शुक्रक्षयज वातरोग को दूर करता है। बलवर्द्धक है। प्रमेह एवं वातरोगों में लाभदायक है। पथ्य-पालन और ब्रह्मचर्य सहित १-२ मास तक लेते रहने से लाभ पहुंचाता है।

सूचना—भोजन में दुग्ध अथवा मांस-रस लेते रहें। इमली, कच्ची कैरी आदि खटाई उपयोग में न लेवें। बीड़ी, सिगरेट और गरम गरम चाय आदि व्यसन का त्याग करें। लाल मिर्च एवं तले हुए पदार्थ कम सेवन करें।

३४. वातशूलान्तक योग।

(१) रेवतचीनी और कुंदरु को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। इसमें से थोड़े चूर्ण को जल में मिला गरम कर संधिपीड़ा, शूल और संधि शोथ पर लेप करने से पीड़ा सत्वर निवृत्त हो जाती है।

(२) शिलाजीत १ तोला, एलुवा ६ माशे, कपूर ३ माशे, अफीम १॥ माशे और एक अण्डे की जर्दी को मिला निवायाकर लेप लगा देने से वात-प्रकोपज अति भयंकर शूल, जीर्ण वेदना और दर्द दूर होते हैं। *(पं. रोशनलालजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य)*

(३) कुन्दरु गोंद २० तोले, आमाहल्दी, एलवा, मेथी और हालों ५-५ तोले तथा सज्जीखार, हीराबोल, मेदालकड़ी और डीकामाली २॥-२॥ तोले मिला कूटकर चूर्ण कर लेवें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को जल के साथ पीस गरमकर चोट से आई सूजन पर मोटा मोटा लेपकर देवें। फिर रुई चिपकाकर बांध देने से वेदनासह शोथ का शमन हो जाता है।

३५. पार्श्वशूलहर मलहम।

द्रव्य व विधि–सरसों का तैल २० तोले और देशी मोम ५ तोले मिलाकर गरम करें। फिर कड़ाही को नीचे उतार हिंगुल का चूर्ण १। तोला मिला कर लोहे की मूसली से घोटें। कुछ शीतल हो जाने पर तार्पिन तैल १० तोले, दालचीनी का तैल और नीलगिरी का तैल २॥-२॥ तोले और जमालगोटा का तैल (croton Oil) १ ड्राम डालें। अच्छी तरह घोट लेने से लाल रंग का मलहम बन जाता है। इसे चौड़े मुँह की शीशी में भर लेवें।

उपयोग–इसमें से थोड़ा मलहम निकाल शूल स्थान पर मालिश करें। फिर ऊपर नमक या बालुका की पोटली से सेक करने से शूल शमन हो जाता है।

सूचना–इसके हाथ आँखों को न लग जाय, यह अवश्य सम्हालें।

३६. धनुर्वातहर योग।

द्रव्य व विधि–काली तुलसी, ताजा लहसुन, अदरक, प्याज और पोदीना को मिला कूटकर २-२ तोले स्वरस निकाल १-१ घण्टे पर ३ बार पिलाने से धनुर्वात का आक्षेप तुरन्त शमन हो जाता है।

गोघृत गरमकर इस स्वरस को छोंक दें, फिर ४-४ कालीमिर्च खिलाकर ऊपर से घृतमिश्रित यह स्वरस पिलावें। यह मृगांक के समान आशु गुणकारी एवं बलदायक है।

३७. सन्धिवातहर योग।

द्रव्य व विधि–५ सेर या अधिक हरी ताजी कटेली के पञ्चाङ्ग को कूटकर हाँडी में भरें और मुख पर कपड़ा बाँध, ऊपर औंधा भगौना रख, सम्हालपूर्वक सन्धि स्थान में मुद्रा करें। फिर भगोनासह हांडी को लगभग तीन चौथाई जमीन में दबावें। भगोने को नीचे और हांडी के तल भाग को ऊपर रखें। फिर तीन घण्टे तक ऊपर अग्नि जलाने से अर्क भगोने में गिरेगा। इस अर्क को छानकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–१।-१। तोला (आध आध औंस) अर्क, दिन में ३ समय पिलावें।

उपयोग–संधिवात की पीड़ा दूर होती है। उदरपीड़ा, वातप्रकोप, अफारा और कफप्रकोप में भी यह अर्क अच्छा लाभ पहुँचाता है।

३८. अर्दितहर योग।

विधि–सरसों के तैल में उड़द के बड़े बना मक्खन के साथ खिलाते रहने पर अति बढ़ा हुआ तीक्ष्ण अर्दित रोग भी एक सप्ताह में शमन हो जाता है। नये रोग के लिये यह उत्तम उपाय है। रोग पुराना होने पर उतना लाभ नहीं पहुँचता। अधिक बड़े खाने से बद्धकोष्ठ होकर या अपाचित आम अन्त्र में शेष रहकर नया उपद्रव उपस्थित करता है। अतः अन्त्र को पहले एरण्डतैल से शुद्ध कर लेना चाहिये और पचन शक्ति के अनुसार बड़े खाने चाहिये एवं बड़े पचन होकर फिर क्षुधा न लगे, तब तक कुछ भी नहीं खाना चाहिये।

३९. लिक्विड सूची बूंटी का तरल सत्व (सूची मर्दन)

(Linimentum Belladonnae)

विधि–लिक्विड सूची बूंटी का तरल सत्व १० औंस, कपूर १ औंस, वाष्पजल २ औंस और सुरासार २० औंस तक लेवें। पहले कपूर को ६ औंस सुरासार में द्रव करें। फिर सबको मिलाकर २० औंस लिनिमेण्ट (मर्दन) तैयार करें। इसे २४ घण्टे रखकर फिर छान लेवें।

उपयोग–इस मर्दन का उपयोग वेदना के निवारणार्थ किया जाता है। वातज शूल और वेदनायुक्त रोगों में महोपकारक औषध है। गृध्रसी आदि वात रोगों में मर्दन करने से वेदना को दूर कर देता है। हृदयशूल में हृदय पर भी मर्दन किया जाता है। राजयक्ष्मा रोग में वक्षः प्रदेश की मांसपेशियों में उग्रता तथा त्वचा में स्पर्श-शक्ति की अधिकता होने पर इस मर्दन का उपयोग किया जाता है। एवं लेप भी लगाया जाता है। स्तनों में वेदना होने पर इसकी मालिश करने से सत्वर लाभ होता है।

४०. तार्पिन मर्दन।

(Linimentum Serebinthinae)

द्रव्य–तार्पिन तैल ६५ औंस, कपूर ५ औंस, मृदु साबुन (Soft Soap) ६॥ औंस और वाष्प जल २-२ औंस लें।

विधि–तार्पिन तैल में कर्पूर मिलावें। साबुन को जल में मिलावें। फिर दोनों को मिला घोटकर मर्दन बना लेवें। १०० भाग में कम हो उतना जल मिला लेवें।

उपयोग–यह मर्दन उत्तेजक, प्रत्युग्रतासाधक (counter iritant) और मर्म प्रदाहक (rubefacient) है। चिरकारीवातरोग, गृध्रसीशूल, कटिशूल, जीर्ण आमवात, संधिवात और वातरक्त में इस मर्दन का उपयोग होता है। सूतिका रोग में आक्षेप आने पर भी इसकी मालिश करायी जाती है।

यह मर्दन प्रत्युग्रता–साधक होने से जिस स्थान पर मर्दन किया जायेगा, उस सम्बन्ध वाले इतर भाग पर इसका फल प्रकाशित होता है। प्रत्युग्रता साधक का विशेष विचार औषध गुणधर्म विवेचन पृष्ठ २७०-२७२ में किया है।

४१. रम्य तैल।

विधि–१। सेर कुचिले के मोटे-मोटे टुकड़ों को २॥ सेर जल में ७ दिन भिगोकर दिन में सूर्य के ताप में रखें। फिर उसे पीतल की कलई की हुई कड़ाही में १० सेर तिल तैल के साथ मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। अग्नि अति मन्द देवें। जल का शोषण होकर तैल लाल रङ्ग का हो जाने पर कड़ाही को उतार कर तुरन्त तैल निकाल लेवें।

उपयोग–रम्य तैल का उपयोग अर्दित आदि वातरोग, शूल और पक्षाघात आदि रोगों में मर्दन करने के लिये किया जाता है।

४२. योगराज गुग्गुलु।

द्रव्य–सोंठ, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक, भुनी हींग, अजमोद, सरसों, दोनों जीरे, **रेणुका (निर्गुण्डी बीज)**, इन्द्रजौ, पाठा, विडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारङ्गी, बच, मूर्वा ये २० द्रव्य छः-छः माशे इन सबसे दूना त्रिफला (२० तोला) इन सबके बराबर गूगल ३० तोला लें।

विधि–सब द्रव्यों को कूटकर बारीक कपड़ छान चूर्ण बना लें फिर त्रिफला चूर्ण एवं शुद्ध गूगल मिलावें। सबका गुड़पाक बना गूगल शुद्ध कर लें; (शोधन विधि रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में सविस्तार वर्णित है) पश्चात् घृत दे देकर तीन दिन तक खूब कूटें। भली भाँति एक जीव हो जाने पर मटर के समान गोलियां बना लें।

मात्रा–२-२ गोली; दिन में २ बार।

अनुपान–वातरोगों में रास्नादि क्वाथ, पित्त रोगों में काकोल्यादि क्वाथ; कफ रोगों में आरग्वधादि क्वाथ; प्रमेह रोगों में दारुहल्दी का क्वाथ, पाण्डु रोग में गौमूत्र; मेदोवृद्धि में शहद; कुष्ठ रोग में नीम का क्वाथ; वातरक्त में गिलोय क्वाथ; शोथ एवं शूल रोगों में पीपल का क्वाथः मूषिका विष में पाटला का क्वाथ, तीव्र नेत्र पीड़ा में त्रिफला क्वाथ, सब प्रकार के उदररोगों में पुनर्नवादि क्वाथ।

उपयोग–सर्व प्रकार के वातरोग, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीविकार, प्रमेह, वातरक्त, नाभिशूल, भगन्दर, उदावर्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, उरोग्रह, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि, पुरुषों के धातुविकार तथा स्त्रियों के रजोविकृति ये सब इस योगराज गूगल के सेवन से निवृत्त हो जाते हैं। यह दिव्य औषधि है। यह योगराज गुग्गुल संतानदाता तथा वन्ध्याओं की विकृति नष्ट करने वाला भी है।

वक्तव्य–इस योगराज गुग्गुलु के पाठ में मतान्तर में कई भस्में मिली हुई हैं। उसके अनुसार भस्म मिला करके भी यह औषधि बनाई जाती है। **यह विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई है। उसे बृहद् योगराज गुग्गुलु नाम दिया गया है।**

४३. विषतिन्दुकादि वटी।

द्रव्य–शुद्ध कुचला, कालीमिर्च दोनों समभाग लें। *(वैद्य परमानन्दजी)*

विधि–दोनों को कूट छानकर नागरबेल के पान के रस में १२ घण्टे खरल करके मूंग के समान गोली बनावें।

मात्रा–१-२ गोली, दिन में ३ बार, जल के साथ दें। वातरोगों में नागरबेल के पान के साथ दें।

उपयोग–जीर्ण विषमज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण; उदरवात; उदरशूल; जीर्ण वातरोग; पागल कुत्ते का विष आदि रोगों को दूर करती है। इनके अतिरिक्त पक्षाघात; अर्दित; कम्पवात; गृध्रसी; आमाशय और पक्वाशय में वातप्रकोप तथा चेष्टा तन्तुओं (Motor nerves) की विकृति को दूर करती है।

मलावरोध; उदररोग; त्वचादोष, रक्तविकार आदि में पेट साफ करने के लिये उत्तम है। मांसाहारियों के लिये हितावह है।

सूचना–पित्तवृद्धि के कारण कभी-कभी वमन हो जाती है। फिर भी भय नहीं मानना चाहिए। बालक; सगर्भा व नाजुक प्रकृति वालों को यह गोली न दें।

(२०) आमवात

१. बृहद् सिंहनाद गुग्गुलु।

द्रव्य व विधि–त्रिफला के क्वाथ से शुद्ध किया हुआ गूगल ६४ तोले को सरसों का तैल मिला मिलाकर कूटे और कूट कूटकर तैल ६४ तोले मिला देवें। फिर सोंठ; कालीमिर्च; पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा; बायविडङ्ग, देवदारु गिलोय, चित्रकमूल, निसोत, दन्तीमूल, चव्य, जमीकन्द, मानकन्द शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक इन १८ औषधियों का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोले तथा १० तोले जमाल गोटे के बीजों की शुद्ध मींगी का चूर्ण मिला; कूट, त्रिफला क्वाथ में १२ घंटे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

वक्तव्य–मूल पाठ में १००० जमालगोटे की मींगी लिखी है। इतनी वर्तमान में सहन नहीं हो सकेगी; ऐसा मानकर मात्रा कम की है। पारद और गन्धक को मिला कज्जलीकर फिर प्रयोग में डालना चाहिये। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से ४ गोली, प्रातःकाल जल के साथ देवें।

उपयोग–यह गुग्गुलु आमवात, सन्धिवात, कम्पवात, घुटनों में दर्द, गृध्रसी आदि रोगों में लाभदायक है। आमवात के रोगियों के लिये यह औषधि आशीर्वाद के समान है। इनके सेवन से आमविष जल जाता है। आँतों में मल का संग्रह नहीं होता है और रोग के आक्रमण का दमन हो जाता है। आमवात के तीव्र विकार एवं जीर्ण विकार में भी यह औषधि हितकारक है।

२. अश्वगन्धादि गुग्गुलु।

द्रव्य–असगन्ध और शुद्ध गूगल ३०-३० तोले, एरण्ड बीज (छिलके और अन्तर्जिह्वारहित) १५ तोले, सज्जीखार (सोडाबाईकार्ब) और उसारेरेवन १०-१० तोले और सोंठ ५ तोले लेवें।

विधि–गूगल को एरण्ड तैल में मिलाकर कूटें। फिर एरण्ड गिरी का कल्क मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर कूटे और सबको एक जीव करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से ३ गोली, दिन में २ बार, महारास्नादि क्वाथ या निवाये जल से देवें।

सूचना–जिनको पहले पेचिश हो गयी हो, उनको मात्रा पहले बहुत कम देवे या न देवें। एवं सगर्भा को भी यह औषधि नहीं देनी चाहिये।

उपयोग–यह अश्वगन्धादि गुग्गुलु आमवात को दूर करने के लिए विशेष हितकर है। नूतन अवस्थाओं पर प्रयुक्त होता है। एवं जीर्ण अवस्था में भी मलावरोध होकर दर्द उठने पर दिया जाता है। यह मलावरोधसह दर्द को सत्वर दूर करता है।

आमवात रोग का विष धातुओं में लीन हो जाने पर बार-बार आजीवन दुःख पहुँचाता है। वर्षा ऋतु में या अपचन होने पर एवं मधुर व तीक्ष्ण पदार्थों के सेवन करने से आक्रमण करता है। मन्द ज्वर, मलावरोध, रात्रि में स्वेद आना, पीड़ा स्थान बदलते रहना, आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। ऐसे रोगियों को पूर्वरूप का भास होने पर यदि इस गूगल का सेवन कराया जाये तो रोगाक्रमण का दमन हो जाता है।

अश्वगन्धादि गुग्गुलु में उसारेरेवन (Cambogia) मिलाया है वह गार्सिनिया हैनबुरई (Garcinia Hanburyi) का गोंद है। चीन से यहाँ आता है। यह तीव्र विरेचक है। मात्रा १ से २॥ रत्ती की है। यह तत्काल उदरशुद्धि कराकर मल, कृमि कीटाणु और सेन्द्रिय विष को बाहर फेंक देता है। इस हेतु से आमवातज वेदना का दमन हो जाता है।

यद्यपि आमवात पर बृहद् सिंहनाद गुग्गुलु की योजना उदरशुद्धि के लिये होती है तथापि उसमें जमालगोटा है। जिनको जमालगोटा सहन नहीं होता या जो जमाल गोटा के सेवन के अधिकारी नहीं है। उनको उदरशोधनार्थ अश्वगन्धादि गुग्गुल दिया जाता है।

जिनको विरेचन द्रव्य सहन न हो सके या अन्त्र शुद्ध हैं, उनको उक्त दोनों औषधियां देने की आवश्यकता नहीं है। उनको ज्वर हो तो वातगजेन्द्रसिंह और ज्वर न हो तो आमवातेश्वर रस देना चाहिये।

आमवात के अतिरिक्त, मलावरोध, उदरवात, उदरकृमि और उदरशूल पर भी उदरशोधनार्थ यह दिया जाता है।

३. आमवातेश्वर रस।

द्रव्य–शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म २-२ तोले, शुद्ध पारद और लोह भस्म १-१ तोला लेवें।

विधि–पहले कज्जली बनाकर फिर भस्म मिलावें। पश्चात् क्रमशः एरण्ड पत्रों के रस की ७ भावनायें दें। पश्चात् पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) के क्वाथ की २० भावना देकर सूर्य के ताप में बार बार सुखावें। इसी तरह गिलोय स्वरस की १० भावना दें। तत्पश्चात् सब चूर्ण के समान सोहागे का फूला, सोहागे से आधा भाग विडलवण, कालीमिर्च और इमली का क्षार, दन्तीमूल १-१ तोला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला और लौंग ये ७ औषधियां ६-६ माशे मिलाकर मर्दन कर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–२ से ४ रत्ती, दिन में दो बार, २-३ माशे मक्खन या घी में मिलाकर। फिर ऊपर निर्गुण्डी का रस या एरण्डमूल का क्वाथ पिलावें।

स्वानुभव–आमवात रोग में महारास्नादि क्वाथ से आश्चर्यप्रद प्रभाव देखा गया है। अदरख स्वरस में आमवातेश्वर की १-२ रत्ती की मात्रा लेकर ऊपर क्वाथ पिलावें। मूत्र की कमी होने पर महारास्नादि कषाय में २ से ६ रत्ती तक यवक्षार मिलाकर पिलाने से ३-४ मात्रा में ही लाभ होता है। *(श्री राधाकृष्ण जी वैद्य)*

अनुपान—अजीर्ण में नींबू रस या सैंधानमक मिश्रित मट्ठा, गुल्म में सज्जीखार, घी अथवा सुहिंजने की छाल का स्वरस। आध्मान में भुनी हींग और घी। उदररोग और शोथ पर गोमूत्र या कुटकी का चूर्ण। मेदोवृद्धि में शहद मिश्रित जल और पाण्डुरोग में आंवले और पीपल का चूर्ण अनुपान रूप से मिला दें। अथवा रोगनाशक अन्य अनुपान की योजना करें। यह रस रोगनाशक अनुपान से सर्वथा हितकारी है।

उपयोग—इस आमवातेश्वर रस को विष्णु भगवान ने निर्माण किया है। यह रस अत्यन्त अग्निप्रदीपक और आमवात को उपद्रवसह नष्ट करने वाला है। स्थूल (मेदोवृद्धि वाले), मनुष्यों को कृश और कृश मनुष्यों को स्थूल (मोटा और सबल) बनाता है। उचित अनुपानों के साथ योजना करने पर यह रस पचन संस्थान की विकृति से उत्पन्न समस्त व्याधियों को नष्टकर देता है। यह रस साध्य और असाध्य, तीव्र और जीर्ण दारुण आमवात का जल्दी नाश करता है।

इस रस के सेवन करने वालों को (जीर्ण रोग में ज्वर न होने पर) गुरु और पौष्टिक अन्नपान, दूध, मांसरस आदि हितकर है। भोजन खूब पेट भर करना चाहिये। चरपरे, खट्टे और कडुवे रस को छोड़कर भोजन करें (आमप्रकोप से पीड़ित और आमवात के रोगी को विशेषत: मधुर पदार्थ का त्याग करना चाहिये)। किया हुआ भोजन सत्वर पच जाता है। अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये उसके समान दूसरी औषधि नहीं है। एवं यह गुल्म, अर्श, ग्रहणी, शोथ, पाण्डु और उदर रोग आदि का निवारण करता है।

विवेचन—यह रस क्षार-लवण प्रधान होने से आमाशय रस का स्राव बहुत करता है एवं ताम्र-पारद योग से यकृत्पित्त का स्राव भी अधिक कराता है। इस हेतु से अग्नि प्रदीप्त होती है; तथा मन्दाग्नि, आमवृद्धि, सेन्द्रिय विष और कीटाणु आदि से उत्पन्न रोग समूह जलकर नष्ट हो जाते हैं।

आयुर्वेद के मतानुसार विरुद्ध आहार-विहार आदि से उत्पन्न आमविष जब धमनियों में चारों और फैलता है, तब आमवात की उत्पत्ति होती है। डॉक्टरी मतानुसार आमवात कीटाणुजन्य होने पर भी एक प्रकार से विष की उत्पत्ति तो माननी ही पड़ती है। उस विष को आयुर्वेद ने आमविष संज्ञा दी है। आमविष को जलाने का कार्य इस रस द्वारा उत्तम रूप से होता है।

किन्तु आमवात की तीव्रावस्था में ज्वर १०२ डिग्री से १०६ डिग्री तक रहता है; जिसे आमवातिक ज्वर कहते हैं। बिच्छू के काटने के समान स्थान-स्थान पर पीड़ा होती हो, साँधों-साँधों में भयंकर दर्द होता हो, सन्धि स्थान जकड़ गये हों, प्रस्वेद अधिक आता हो पेशाब पीले-लाल रंग का और बहुत कम होता हो तथा ज्वरवृद्धि के हेतु से प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, ऐसी अवस्था में हो सके, उतने अधिक अंश में विष को बाहर फेंकने और जलाने वाली तथा पीड़ाशामक गुणयुक्त विरेचन प्रधान औषधि देनी चाहिये। **ऐसी तीव्रावस्था में बृहत् सिंहनाद गुग्गुलु अथवा आमवातप्रमथिनि (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड) निसोत के क्वाथ के साथ दी जाती है।**

उत्तान विकार नष्ट हो जाने के पश्चात् संधिस्थानों में लीन दोष को जलाने वाली तथा नूतन दोषोत्पत्ति को रोकने वाली, अग्निप्रदीपक औषधि की आवश्यकता होने पर रस हितकारक है। अत: आमवातेश्वर रस जीर्णावस्था में अधिक उपयोगी होता है। इस रस का कार्य आमाशय और अन्त्र में प्रमुख रूप से तथारक्त और रक्तवाहिनियों पर गौण रूप से होता है।

अग्नि मन्द होने पर उत्पन्न विविध प्रकार के रोग अजीर्ण, गुल्म, आध्मान, उदररोग, शोथ, मेदोवृद्धि, पाण्डु, आदि सब अग्निमांद्य रूप हेतु नष्ट होने से निवृत्त हो जाते हैं। अत: उन रोगों पर रोगानुसार अनुपान के साथ आमवातेश्वर का सेवन कराने से लाभ हो जाता है।

४. वातगजेन्द्रसिंह रस।

द्रव्य—अभ्रक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शतपुटी नागभस्म, सोहाग का फूला, दूध में भली भांति शुद्ध किया हुआ बच्छनाग, सैंधानमक, लौंग, भूनी हींग और जायफल ये १२ औषधियां १-१ तोला तथा त्रिसुगन्धि (दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) और जीरा ये ७ औषधियाँ ६-६ माशे लें।

विधि—पहले पारद, गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर भस्म, बच्छ नाग, सोहागे का फूला और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण क्रमश: मिला घी कुंवार के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। ***(भै.र.)***

मात्रा—१ से २ गोली, दिन में दो बार, दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ।

उपयोग—यह वातगजेन्द्रसिंह वातरोग के नाश के निमित्त कहा है। यह रसायन ८० प्रकार के वातरोगों, ४० प्रकार के पित्त रोगों तथा २० प्रकार के श्लेष्म रोगों को नष्ट करता है। अभिघातजन्य क्षीणता, अर्धाङ्ग में आई हुई क्षीणता, किसी व्याधि से उत्पन्न अशक्ति, वृद्धावस्था के हेतु से आई हुई निर्बलता, अधिक स्त्री समागम-जनित दुर्बलता, इनको यह वातगजेन्द्रसिंह दूर करता है। क्षीणेन्द्रिय, नष्टवीर्य और अग्निमांद्य वाले रोगियों के लिये यह रस वृष्य, ओजवर्द्धक, बल्य और रसायन रूप है। [redacted] यह रस स्वस्थ मनुष्य को सुख देता है। अर्थात् मानसिक प्रसन्नता प्रदान करता है। बल का ह्रास नहीं होने देता और रोगोत्पत्ति का भय नहीं रहता एवं यह रस रोगी मनुष्यों को रोग से मुक्तकर देता है। यह वातगजेन्द्रिसिंह अनेक रोगों का विनाशक है।

विवेचन—यह रस वातप्रकोपशामक, अन्त्रशोधक, शक्तिवर्धक और अग्निप्रदीपक है। महावातविध्वंसन और इस वातगजेन्द्रसिंह की मुख्य औषधियां समान है। इसमें बच्छनाग कम मिलाया है और भावना अन्त्रदोष शोधन कार्य के निमित्त केवल घीकुंवार की दी है। इस हेतु से महावातविध्वंसन तथा इसके कार्य और अधिकार में थोड़ा अन्तर हो जाता है।

महावातविध्वंसन का कार्य वातनाड़ियों और रक्तवाहिनियों पर प्रधान रूप से होता है, तथा उसमें बच्छनाग का परिमाण अत्यधिक होने से उसका उपयोग निर्बल हृदय वाले आमवात के रोगी पर नहीं होता। कारण आमवात में प्राय: हृदय पर आघात पहुँचता है और बच्छनाग भी हृदय की शिथिलता लाता है। यह दोष इस रस में नहीं है। इसमें बच्छनाग महावातविंध्वसन की अपेक्षा अति न्यून मात्रा में है तथा लोह भस्म, अभ्रक भस्म आदि हृदय पौष्टिक औषधियों का मिश्रण होने से यह आमवात पर निर्भयतापूर्वक व्यवहृत होता है। मूल ग्रन्थकार ने इस रसायन को आमवाताधिकार में ही लिखा है।

आमवात की तीव्रावस्था में ज्वर रहता है। कभी-कभी ज्वर १०२ डिग्री से १०६ डिग्री तक बढ़ जाता है। ऐसे समय पर हृदय को बाधा न पहुँचाते हुए रस-रक्तादि धातुओं में लीन आमविष को जलाकर ज्वर को उतारना चाहिये और औषधि विरेचन के साथ देनी चाहिये। तीव्र प्रकोप में दोष उत्तान रहने से उसे विरेचन द्वारा बाहर निकालना पड़ता है। अत: ऐसी अवस्था में इस रस के साथ सोंठ के क्वाथसह एरण्ड तैल या निसोत का क्वाथ देना चाहिये। एवं रोगी को केवल दूध पर या हल्के पेय पर रखना चाहिये।

जीर्ण विकार में रस-रक्तादि धातुओं के भीतर लीन हुए आमविष को जलाकर रक्तप्रसादन करना और पचनक्रिया को बढ़ाना, ये दो कार्य मुख्य रहते हैं। ये दो कार्य होने पर विकार दूर होता है और शक्ति बढ़ जाती है। मूल प्रयोगकार ने इस अवस्था में अनुपान रूप से दूध देने को कहा है, किन्तु कोष्ठबद्ध रहती हो, तो त्रिफला क्वाथ या रास्नादि क्वाथ एवं एरण्ड या अन्य अनुमोलन और पाचक अनुपान की योजना करनी चाहिये।

आमवात के अतिरिक्त आमृवद्धिसह उत्पन्न वातरोग की नूतनावस्था में महावातविध्वंसन रस जिनको न दे सकें, उन रोगियों को वातगजेन्द्रसिंह रास्नादि अर्क या अन्य शामक अनुपान के साथ दिया जाता है।

जीर्ण आमवात में आमवातेश्वर उपयोगी है। परन्तु उसमें क्षार अधिक है, तथा पंचकोल के क्वाथ की २० भावनायें देने से आमाशय और अन्त्र में पचनक्रिया बढ़ाना और संधिस्थानों में संचित दोष को जलाना, इन क्रियाओं की जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ आमवातेश्वर हितावह है, किन्तु देह की शक्ति बढ़ाना, पचन-क्रिया का संरक्षण करना, दोष की उत्पत्ति को रोकना उत्पन्न दोष को अधिक न बढ़ाते हुए जलाना इष्ट हो अथवा पित्तप्रधान प्रकृतिवालों की चिकित्सा करनी हो, वहाँ वातगजेन्द्रसिंह प्रयुक्त किया जाता है। अनेक रोगियों से तीव्र क्षारप्रधान औषध सहन नहीं होती। क्षार की तीव्रता के हेतु से रक्तस्राव होने लगता है, उनके लिये यह वातगजेन्द्रसिंह अधिक हितकारक है। रक्त में, रक्ताणुवृद्धि, मांस और वातसंस्थान के बल की वृद्धि, ये सब कार्य आमवातेश्वर की अपेक्षा वातगजेन्द्रसिंह से विशेषतर होते हैं।

यदि अन्त्र-विष, कृमि, आम और मल से पूर्ण हो, कोष्ठबद्धता हो, तो अनुपान दूध नहीं देना चाहिये। एरण्ड तैल या निसोत का क्वाथ आदि संशोधक अनुपान देना चाहिये। वातप्रकोप में कोष्ठ शुद्ध हो और तीव्र प्रकोप हो, तो रास्नादि अर्क या निर्गुण्डी स्वरस अनुपान रूप से देना चाहिये।

इस रस में बच्छनाग मिला है। बच्छनाग मूत्र और प्रस्वेद द्वारा विष को बाहर निकालता है, तथा ज्वर का शमन करता है, वेदना को तत्काल दबाता है। एवं शक्ति को बढ़ाता है। बच्छनाग में वातवाहिनियों के लिए साक्षात् सम्बन्ध से शामक, धमनियों के लिए परम्परागत शामक, वेदना-निवारक, स्पर्शहारक, स्वेदन और मूत्रल गुण हैं। यदि इसकी मात्रा शक्ति से अधिक हो जाये, तो हृदय और रक्तवाहिनियों को हानि पहुँचाता है। [redacted]

तीव्र आमावात में आमवातप्रमथिनी वटी भी हितकारक है, उसमें सोरा और अर्क मूलत्वक् आने से रक्तस्थ विष को बाहर निकालने में विशेष हितकारक है, तथापि ज्वर की प्रधानता होने पर इस रस में ज्वरघ्न औषध (बच्छनाग) की योग्य मात्रा और योग्य मिश्रण सह योजना की है। अत: ज्वर को दूर करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

५. आमवातारि वटी।

द्रव्य–सोंठ, एरण्ड की गुली (जिब्भी रहित), सनाय, मुनक्का तथा असगन्ध।

विधि–इन सबको बराबर लेकर मुनक्का में १-१ माशे की गोली बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, गर्म जल के साथ सुबह शाम दें।

उपयोग–भयंकर तीव्र आमवात तथा तज्जन्य ज्वर, गृध्रसी, विश्वाची दूर होते हैं एवं यह वटी कम मात्रा में प्रवाहिका और आमातिसार में भी उपयोगी है।

६. सिंहनाद गुग्गुलु।

द्रव्य–हरड़ १२ तोला, बहेड़ा १२ तोला, आंवला १२ तोला इनको जौकूट कर क्वाथ बनावें। यह छना हुआ क्वाथ १२ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, गूगल १२ तोला और एरण्ड का तैल १६ तोला, इन सबको दृढ़ लोह पात्र में पकावें और ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २-३ बार जल के साथ।

उपयोग–वात, पित्त और कफ से उत्पन्न होने वाली व्याधियां, खञ्जता, पंगुता, महादुर्जय श्वास, पाँच प्रकार के कास, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदर विकार तथा भयंकर आमवात और वलि, पलित को नष्ट करता है।

❑ ❑

(२०) वातरक्त

१. बृहद् वातरक्तान्तक लोह।

द्रव्य–लोहभस्म (सिंगरफ मारित) २ तोले, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मुक्तापिष्टी, अभ्रक भस्म, शुद्ध खपरिया (अभाव में जसद भस्म) और सुवर्ण-भस्म १-१ तोला तथा रसमाणिक्य (या शुद्ध हरताल) ६ माशे लें।

विधि–प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर हरताल का चूर्ण मिलावें, पश्चात् अन्य औषधियों को मिलाकर कुपीलु (लघुपीलु-खारीपीलु), मण्डूकपर्णी (यू.पी. में जिसे ब्राह्मी कहते हैं) और द्रोणपुष्पी के रस की ३-३ भावनाएँ देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।
(र.यो.सा.)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार। हरड़ के फाण्ट या हिम के साथ देवें। अथवा दूध या सिद्ध घृत के साथ देवें। आवश्यकता हो, तो आधे घण्टे पर शिलाजीत का सेवन करावें।

उपयोग–इस लोह के सेवन से निश्चयपूर्वक उपद्रवसह दारुण वातरक्त रोग नष्ट होता है। यह लोह गम्भीर और उत्तान वातरक्त, उपदंश, उग्र प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा कपाल, उदुम्बर, ऋष्यजिह्व, सिध्म, मण्डल-पुण्डरीक आदि कुष्ठ रोगों का नाशकर रक्त को विशुद्ध बनाता है। यह रसायन वर्ण को सुधारता है तथा बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है।

यह रसायन नये और पुराने वातरक्त के लिये अति लाभदायक है। इस रोग में संधि-स्थान कठोर और शोथयुक्त हो जाते हैं। प्रातःकाल लक्षण कम और रात्रि होने पर वेदना और लक्षण बढ़ जाते हैं। क्षुधा-वृद्धि, अफारा, अपचन, उदरशूल, किसी को वमन होना, तृषावृद्धि, कोष्ठबद्धता, फिर अतिसार, मूत्र का परिमाण घट जाना और लाल हो जाना, शारीरिक और मानसिक शक्ति का ह्रास, स्वभाव में उग्रता, किसी-किसी को श्वासकृच्छ्रता अथवा हृदय कम्प, निद्रानाश और शिरदर्द आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। फिर चर्मविकार होता है। पश्चात् वातरक्त की स्पष्ट प्रतीति होती है। इस विकार पर यह लोह लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

विवेचन–आशुकारी रोग में रात्रि के समय अंगुलियों की संधियों में अतिदाह होता है एवं रोग जीर्ण होने पर संधिस्थल विकृत हो जाते हैं। अनेक स्फोटकों की उत्पत्ति होती है। उनमें सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है, किन्तु उनमें पूय नहीं होता। इसके अतिरिक्त दृष्टिमांद्य, तृषा, ज्वर, पंगुता विसर्प, सिराओं का संकोच, प्रलाप, बेहोशी और मूर्च्छा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में इस लोह का सेवन लघुमंजिष्ठादि क्वाथ के साथ कराया जाता है और यवक्षार भी दिया जाता है।

अनेक बार शराबियों को वातरक्त हो जाता है, तब दाह, प्यास, निद्रानाश, व्याकुलता आदि लक्षण प्रबल होते हैं। शिरदर्द और प्रलाप भी होता है। उनके लिये यह रसायन अमृत के सदृश उपकारक है। अनुपान रूप से अमृताघृत दिया जाता है।

इस तरह इतर कारण से उत्पन्न वातरक्त में भी पित्तप्रकोप की प्रधानता हो तो वातरक्तान्तक लोह का सेवन कराना चाहिये। कब्ज अधिक हो, तो उसे दूर करने के लिये हरड़ की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। अथवा छोटी हरड़ या इतर विरेचक औषधि अथवा मञ्जिष्ठादि क्वाथ की योजना करनी चाहिये।

सब प्रकार के वातरक्त के हेतु से सन्धि स्थानों के भीतर सज्जीखार के समान क्षार (सोडियम यूरेट्स Sodium /Urates) का प्रवेश हो जाता है एवं रक्त में भी यूरिक एसिड की वृद्धि हो जाती है। फिर मूत्र के साथ वह कुछ-कुछ अंश में निकलता रहता है। इस क्षार को बाहर निकालने और नयी उत्पत्ति को रोकने की आवश्यकता रहती है। इन दोनों कार्यों की सिद्धि इस रसायन के सेवन से हो जाती है। तीव्रावस्था में क्षार को बाहर निकालने के उद्देश्य से तीव्र विरेचक और मूत्रल यवक्षार आदि अनुपान की योजना करने से क्षार सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। जिससे वेदना का ह्रास हो जाता है। यदि चिरकारी अवस्था है तो हरड़ आदि सारक और शिलातजु के समान सौम्य मूत्रल गुणयुक्त अनुपान विशेष हितकारक माना जाता है।

इस लोह का शांतिपूर्वक सेवन किया जाये, तो वातरक्त रोग और इसके उपद्रव निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं एवं इसके सेवन से रक्त का प्रसादन होने से विविध कुष्ठ, उपदंश और प्रमेह आदिव्याधियों को भी निवारण हो जाता है। पित्तज, वातज, कफज, द्वन्द्वज आदि सब प्रकार के नये कुष्ठ रोग पर भी यह लोह हितावह है।

२. वातरक्तान्तक रस।

द्रव्य–शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, लोहभस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल, अभ्रकभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल इन ८ औषधियों को १-१ तोला लें।

विधि–प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्में, मैनसिल, हरताल, शिलाजीत, गूगल आदि क्रमश: मिलावें। तत्पश्चात् सफेद कोयल, दारुहल्दी, बावची, चित्रकमूल, पुनर्नवा, देवदारु, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और बायविडङ्ग इन १३ औषधियों का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला मिला के त्रिफला और भाँगरे के रस में ३-३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। *(र.सा.सं.)*

वक्तव्य–रसरत्नाकर और भैषज्यरत्नावलीकार ने बावची के स्थान पर समुद्रफेन मिलाया है। समुद्रफेन की अपेक्षा बावची रक्तशोधक होने से विशेष हितकारिणी है, अत: हमने बावची मिलाई है। लेकिन छोटी बावची नहीं, किन्तु कलौंजी के समान काली और बड़ी जाति की, जिसको माली बावचा कहते हैं, उसे मिलावें।

मात्रा–२ से ४ गोली प्रात:काल लेवें। ऊपर से नीम के पत्र, पुष्प और अन्तर छाल के चूर्ण ३ माशे को घृत मिलाकर चाट लेवें।

उपयोग–यह वातरक्तान्तक रस वात विकार, साध्य और असाध्य, नूतन वातरक्त जो महाघोर और गम्भीर हो, जिसका विष सम्पूर्ण शरीर में फैल गया हो और विविध उपद्रवयुक्त हो, उनको नष्ट कर देता है।

यह रस विशेषत: आमप्रधान, कफप्रधान और द्वन्द्वज वातरक्त पर हितावह है। पित्तप्रकोप अधिक होने पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

सूचना–वातरक्त रोग से पीड़ितों के लिये माँस-सेवन का सर्वथा आग्रह पूर्वक निषेध करना चाहिये।

३. वज्र गुग्गुलु।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दन्तीमूल, चित्रकमूल, निशोथ, कचूर, बायविडंग, नागरमोथा, हल्दी, बावची, इन्द्रजौ, बच, अंकोल की छाल, कूठ और अमलतास की छाल ये १९ औषधियाँ ४-४ तोले, शुद्ध गूगल ७६ तोले, भिलावे का तैल ८ तोले, ताम्रभस्म और तालभस्म ४-४ तोले लें।

विधि–प्रथम गूगल में घी मिलाकर कूटें, फिर उसमें भिलावें का तैल मिला लेवें। पश्चात् शेष काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण कूटकर मिला देवें। *(र.र.)*

मात्रा–१ से १॥ माशा तक, दिन में दो बार, गोघृत के साथ देवें।

उपयोग–यह गूगल भयंकर बढ़े हुए अनेक उपद्रवों युक्त वातरक्त को दूर कर देता है तथा श्लीपद, शोथ, शूल, प्रमेह, मेद, कण्ठ के रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, कास, श्वास, अरुचि, जीर्ण ज्वर, आनाह आदि को नष्ट करता है। यह गूगल बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाता है एवं दुष्ट संग्रहणी, पाण्डु, कामला और हलीमक को भी नष्ट करता है।

इस गूगल में अन्त्र, त्वचा और रक्त के भीतर संगृहीत मल, आम और विष को बाहर निकालने, नयी उत्पत्ति को रोकने और रक्त-प्रसादन करने वाले द्रव्य मिलाये गये हैं। जिससे जिन रोगियों की पंचकर्म से शुद्धि न हो सकी हो, उनको बिना शुद्धि कराये ही इस गूगल का सेवन कराने से विविध उपद्रवयुक्त जीर्ण वातरक्त दूर हो जाता है। यह गूगल आम, मेद और कफ प्रधानरोगी के विशेष अनुकूल रहता है। पित्त प्रधान प्रकृति वालों और शुष्क देह वालों को नहीं देना चाहिये।

वक्तव्य–भिलावे का तैल पाताल-यन्त्र से निकालना चाहिये। इस गूगल के सेवन काल में तैल वाले पदार्थ पथ्य माने जाते हैं। यदि मात्रा बढ़ाने पर या औषध सहन न होने से कण्डू उत्पन्न हो जाये, तो थोड़े दिनों के लिये औषध बन्द कर दें और तैल प्रधान फल-बादाम, चिरौंजी, काजू, नारियल की गिरी आदि का सेवन करें और नारियल के तैल की मालिश करें। कण्डू शमन होने पर कम मात्रा में फिर से औषधि सेवन आरम्भ करें।

इस प्रयोग में ताम्र, ताल और भल्लातक तैल, ये तीन उग्र औषधियां होने से पथ्य का पालन आग्रह पूर्वक करना चाहिये। गरम-गरम भोजन, सूर्य और अग्नि का सेवन, अधिक मिर्च, खटाई, जलचर जीवों का माँस, दही, शराब, स्त्री सेवन, क्षार, तैल, नमक और बैंगन आदि का त्याग करना चाहिये।

४. गुडुच्यादि लोह।

द्रव्य–गिलोयसत्व, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने ये सब १-१ तोला और लोहभस्म १० तोले लें।

विधि–प्रथम काष्ठादि औषधियों को कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर सबको मिलाके गिलोय के स्वरस के साथ मर्दनकर सुखा लेवें। *(र.सा.सं.)*

मात्रा–२ से ४ रत्ती, दिन में २ बार २-२ तोले गिलोय के क्वाथ के साथ।

उपयोग–यह लोह अति बढ़े हुए जीर्ण वातरक्त को दाह आदि विकारों सह नष्ट कर देता है। शुष्क, निर्बल और पित्त-प्रधान प्रकृतिवालों के लिये यह विशेष अनुकूल है।

५. सिंहास्यादि क्वाथ।

द्रव्य–अड़ूसे की जड़, लघु पञ्चमूल की पांचों औषधियाँ, गिलोय, एरण्डमूल और गोखरू इन ९ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। (भै.र.)

मात्रा–२-२ तोले का क्वाथकर उसमें एरण्ड तैल २-२ तोले, भूनी हींग १ रत्ती और ४ रत्ती सैंधानमक मिलाकर प्रातःकाल पिलाते रहें।

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से वातरक्त रोग का शमन हो जाता है एवं आमवात, कटिशूल, मल, मूत्र का विबंध और अति बढ़ा हुआ वृक्क विकार दूर होता है।

६. अमृतादि घृत।

द्रव्य–गिलोय, मुलहठी, मुनक्का, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, खरैंटी, वासा पत्र, अमलतास का गूदा, पुनर्नवा, देवदारु, गोखरू, कुटकी, शतावर, पीपल, गम्भारी फल, रास्ना, तालमखाना, एरण्डमूल, विधारे की जड़, मोथा, नीलोफर उक्त २३ औषधियां समान प्रमाण में लें।

विधि–सबको मिलाके १६ तोले लेकर कूट के पत्थर पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क को १ प्रस्थ (६४ तोले) गोघृत, १ प्रस्थ आँवलों के स्वरस तथा त्रिगुण (३ प्रस्थ) जल में मिलाकर, यथाविधि, घृत सिद्ध कर लें।* *(भै.र.)*

मात्रा–१-१ तोला भोजन के साथ दिन में दो बार देवें।

उपयोग–इस घृत के सेवन से विविध दोष प्रकोप से उत्पन्न और रक्त में वातमिश्रित या प्रकुपित्त वातरक्त, उत्तान वातरक्त, गम्भीर वातरक्त, त्रिक, जंघा, उरू और जानु में पीड़ा करने वाला वातरक्त, कोष्टुशीर्ष, महाशूल दारुण आमवात, महारोग से पीड़ित की अतिशय दुस्तर वेदना, मूत्रकृच्छ्, उदावर्त, प्रमेह और विषम ज्वर आदि रोग जो वात, पित्त और कफ प्रकोप से उत्पन्न हुए हों, शान्त हो जाते हैं। इसका उपयोग सब समय में प्रातःकाल, रात्रि को, भोजन के प्रारम्भ, बीच या अन्त में होता है। इसका उपयोग सर्वदा करते रहने से वर्ण, आयु और बल की वृद्धि होती है।

यह घृत वातरक्त पर हितकारक है। नये रोग और पुराने में भी गुणदायक है। दही, मूली, शराब, क्षार, स्रवण, अम्लरस, अग्नि सेवन, अधिक मिर्च, सूर्य के ताप का अधिक सेवन और दिन में निद्रा लेना आदि का त्याग करें, तो लाभ सत्वर मिलता है। मधुर, वातशामक और कड़वे द्रव्य गुणदायक है। इस तरह पथ्य पालनसह इस घृत का सेवन अन्य मुख्य औषध के साथ सहायक रूप से कराया जाता है। कदाचित् रोगी ने अनेक तेज औषधि लेकर रोग को बढ़ा लिया हो, ऐसी अवस्था में केवल इस घृत का ही सेवन कराया जाता है। इसके योग से रोगविष और दुष्ट औषधि की उग्रता दोनों थोड़े ही दिनों में शान्त हो जाते हैं।

७. अमृता घृत।

द्रव्य–गिलोय ४०० तोले को २०४८ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान गिलोय का कल्क ३२ तोले, २५६ तोले दूध और १२८ तोले घी लें।

विधि–सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें। *(शा.सं.)*

मात्रा–१- तोला; दिन में २ बार।

उपयोग–यह घृत उत्तान (त्वचागत) वातरक्त और अवगाढ़ (मांस आदि धातुओं में लीन) वातरक्त सबका नाश करता है। वातरक्त में पित्त की प्रधानता हो, मन्दज्वर, दाह, शोष, शुष्क कास, प्रमेह, मूत्रकृच्छ् आदि लक्षण हों, उस पर यह हितकारक है।

८. शतावरी घृत (वातरक्त)।

द्रव्य–शतावर का कल्क ३२ तोले, शतावर का रस, दूध और गोघृत १२८-१२८ तोले लें।

विधि–सबको मिलाके मन्दाग्नि पर यथाविधि घृत सिद्ध करें। *(नि.र.)*

---

*मूलग्रन्थ के पाठ में कल्क, घृत और आमलक स्वरस एक एक भाग और जल ३ भाग लिखा है। सामान्य स्थिति में यही अनुपात रखना उचित है। -संशोधक

मात्रा–१-१ तोला, दिन में दो बार, भोजन के प्रारम्भ में।

उपयोग–यह घृत वातरक्त-नाशक उत्तम योग है। पित्त प्रधान लक्षणयुक्त शूल; अम्लपित्त, दाह, रक्तविकार और हृदय की निर्बलतासह वात रक्त में यह व्यवहृत होता है।

९. महारुद्र तैल

द्रव्य–पुनर्नवा, हल्दी, नीम की अन्तर छाल, बैंगन, अनार फल की छाल, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, दुर्गन्ध करञ्ज की जड़, अडूसे की जड़, निर्गुण्डी के पान, परवल के पत्ते, धतूरा का मूल, अपामार्ग का मूल, जयन्ती (अरणी) की जड़, दन्तीमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला ये १८ औषधियां ४-४ तोले, अशुद्ध बच्छनाग १६ तोले, सोंठ, मिर्च, पीपल २४-२४ तोले लेवें।

विधि–प्रथम उक्त द्रव्यों का कल्क बनाकर उसमें गिलोय का स्वरस या क्वाथ १०२४ तोले, जल, सरसों का तैल और वासापत्र का स्वरस २५६-२५६ तोले मिला के विधिपूर्वक तैल को सिद्ध करें। *(भै.र.)*

उपयोग–इस तैल की मालिश करने से नाना दोषयुक्त वातरक्त और अनेक प्रकार के कुष्ठ दूर होकर वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है तथा कृमि, दुष्ट व्रण, दाह, कण्डू, स्वेद न आना और अति प्रस्वेद आना आदि विकार भी नष्ट होते हैं।

१०. विषतिन्दुक तैल।

विधि–कुचिला २५६ तोले को कूट के १६ गुने जल में मिलाकर उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर डण्डे से खूब मसल के छान लेवें। फिर सुहिंजने की छाल का स्वरस (अभाव में क्वाथ), बड़हर के मूल का क्वाथ, काले धतूरे के पत्तों का रस, वरणा के पानों का रस, चित्रक के पानों का रस, निर्गुण्डी के पत्तों का रस, थूहर के पत्तों का रस, असगन्ध का क्वाथ, जयन्ती (अरणी) का क्वाथ या रस २५६-२५६ तोले मिलावें। एवं लहशुन, लोहबान, धूपसरल, मुलहठी, कूठ, सैंधानमक, चित्रकमूल, हल्दी और पीपल इन ९ औषधियों का कल्क ६४ तोले और तिलों का तैल ५१२ तोले मिलाकर तैल सिद्ध करें।

(भै.र.)

उपयोग–यह तैल अत्यन्त भयंकर और असाध्य वातरोगों को दूर करता है। इस तैल को प्रतिदिन मर्दन करने से सुप्तवात, १८ प्रकार के कुष्ठ, दोनों प्रकार के वातरक्त, देह की विवर्णता और त्वचा के सब प्रकार के विकार नष्ट हो जाते हैं।

जब त्वचा में शून्यता आ जाती है, सुई चुभाने पर वेदना नहीं होती है, ऐसे वातरोग, वातरक्त और शून्य कुष्ठ में मर्दन के लिये इस तैल का प्रयोग किया जाता है।

११. कैशोर गुग्गुलु।

द्रव्य–त्रिफला १९२ तोले, ताजा नीम गिलोय कूटी हुई ६४० तोले, भैंसा गूगल ६४ तोले लें।

प्रक्षेप द्रव्य–त्रिफला ८ तोले, नीम गिलोय ४ तोला, त्रिकटु ६ तोला, बायविडङ्ग ४ तोला, निशोथ १ तोला तथा दन्ती १ तोला लें।

विधि–गूगल को १ कपड़े में बांधकर कड़ाही में दोलायन्त्र विधि से लटका देवें। त्रिफला, गिलोय को जौकूट कर ४ गुने जल के साथ कड़ाही में भर कर काढ़ा करें। बार-बार कुलछी से चलाते रहे।

चौथाई क्वाथ शेष रहने पर पोटली में अवशिष्ट गूगल के कचरे को फेंक दे। और क्वाथ जल को छानकर कढ़ाही में भर लें। फिर पकावें। गाढ़ा होने तथा गूगल की सी गन्ध आने पर नीचे उतार लें। शीतल होने पर उसमें उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्यों को कूटकर कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला लें, इसमें गाय का घी मिलाकर कूटें और ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार दूध, यूष तथा रोगानुसार अनुपान के साथ।

अनुपान–वातरक्त रोग में मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ। नेत्र रोगों में वासादि क्वाथ से गुल्म रोग में वरुणादि क्वाथ से, व्रण तथा कुष्ठ रोग में खदिर क्वाथ से।

त्याज्य आहार विहार-खट्टे पदार्थ, अध्यशन, अजीर्ण में पुनः भोजन, मैथुन, परिश्रम, धूप, गर्मी, आग में तापना, मदिरा, क्रोध।

उपयोग–अनुपान भेद से अनेक व्याधियां व वात रोग नष्ट होते हैं। यह जीर्ण रक्तविकार प्रधान रोग पर तथा आमविषज विकारों पर उत्तम लाभप्रद है।

(२२) शूलरोग।

१. शूल गजकेसरी रस।

द्रव्य–शुद्ध कुचिला ८ तोले, पीपल, पीपलामूल, जवाखार, सैंधानमक, कालानमक, विडनमक और शुद्ध गन्धक १-१ तोला तथा भुनी हींग, सोहागे का फूला और अजवायन २-२ तोले लें।

विधि–सबका चूर्ण बना, मिला अदरक के रस में ३ दिन खरलकर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–२-२ गोली गुनगुने पानी के साथ।

उपयोग–इस रस के सेवन से वातज, कफज, आमज और त्रिदोषज शूल नष्ट होते हैं। इस औषधि के सेवन से आमाशय और अन्त्र की पुर:सरण-क्रिया बलवान् बनकर शूल का शमन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस औषधि से हृदय और वातवाहनाड़ियाँ भी सबल होती है।

२. शूलहर वटी।

द्रव्य एवं विधि–सुवर्ण वंग के क्षार को १२ घण्टे अदरख के रस में खरल करें। फिर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुवर्ण वंग में डालते जावें। जिससे गोलियों के चारों ओर सुवर्ण वंग लगकर गोलियां सुवर्ण के सदृश हो जायेंगी। सुवर्ण वंग में न डालना हो, तो सोंठ के चूर्ण में डालना चाहिए।

मात्रा–इन गोलियों में से २-२ गोली निगलवाकर एक दो घूंट जल पिलावें।

उपयोग–इस रस के सेवन से अपचन से उत्पन्न उदरशूल दूर हो जाता है।

३. शतावरी मण्डूर।

द्रव्य–मण्डूर भस्म, शतावरी का स्वरस, दही और दूध प्रत्येक ३२-३२ तोले और गोघृत १६ तोले लेवें।

विधि–सबको मिला के मन्दाग्नि पर पिण्ड सदृश हो, तब तक पाक करें। फिर शीतल होने पर अमृतबान या खुले मुँह की बोतल में भर लेवें।

मात्रा–इसमें से ४-४ रत्ती भोजन के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में लेवें।

उपयोग–इस मण्डूर से वातज और पित्तज परिणाम शूल नष्ट हो जाता है।

इस मण्डूर के साथ नागरमोथा, पीपल, जीरा, धनियाँ, बड़ी हरड़, दालचीनी और छोटी इलायची का चूर्ण ३-३ माशे अनुपान रूप में मिला लेने से सत्वर लाभ होता है।

४. लोहगुग्गुलु।

द्रव्य–हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बायविडंग, पुष्करमूल, बच, चित्रकमूल और मुलहठी ये १२ औषधियाँ ४-४ तोले; लोहभस्म और शुद्ध गूगल ३२-३२ तोले लेवें।

विधि–सबको यथाविधि मिला के घृत डालकर अच्छी रीति से कूट के ४८ तोले शहद मिलाकर रख लें।

मात्रा–१-१ माशा, गुनगुने जल के साथ सेवन करें।

उपयोग–इसके सेवन से परिणाम शूल और अन्य सब प्रकार के उदरशूल नष्ट हो जाते हैं एवं यह गूगल पाण्डु, कामला, हलीमक, दु:साध्य आमवात, शोथ और जीर्ण विषम ज्वर को भी नष्ट करता है तथा वातवहनाड़ियों की विकृतिजन्य जीर्ण शूल और व्रणजनित शूल में भी हितकर है।

५. नारिकेल लवण।

विधि–जल भरे हुए पक्के नारियल के ऊपर से थोड़े भाग को काटकर उसमें २० तोले सैंधानमक भरें। फिर कटे हुए भाग से पुन: मुख को बन्द कर सारे नारियल पर कपड़ मिट्टी करें। कपड़ मिट्टी इस तरह सावधानीपूर्वक करें कि ऊपर का हिस्सा ऊपर को ही रहे। फिर सुखा के ५ सेर गोबरी के भीतर गजपुट में फूंक देवें। स्वाङ्गशीतल होने पर जले हुए खोपरे सह नमक को निकालकर पीस लेवें।

(भै.र.)

मात्रा–आधे से १ माशे तक, दिन में २ बार। परिणाम शूल में पीपल के चूर्ण के साथ। अम्लपित्त पर नारियल के जल के साथ तथा वृक्कशूल में चन्दनासव के साथ देना चाहिये।

उपयोग–इस लवण के उपयोग से परिणामशूल जनित पीड़ा दूर होती है तथा अम्लपित्त रोग में पित्त की अम्लता और उग्रता का ह्रास होकर वमन कम होने लगती है। धीरे-धीरे कुछ दिनों में पित्त (आमाशय रस) की विकृति दूर होकर अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

वृक्क शूल का तीव्र प्रकोप शान्त होने पर इस लवण को दिन में २ या ३ बार चन्दनासव के साथ देते रहने से कुछ दिनों में रक्त के भीतर विद्यमान अश्मरी उत्पादक द्रव्य का निवारण हो जाता है तथा नयी उत्पत्ति रुक जाती है एवं शर्करा और सिकता टूटकर वृक्कशूल की निवृत्ति हो जाती है। त्रिदोषज गुल्म रोग में उदर वेदना बराबर होती रहती है। गुल्म पत्थर के समान प्रतीत होता है जो दबाने पर चारों ओर सरकता है। ऊपर में दबाने पर वेदना होती है। गुल्म के हेतु से मलावरोध बना रहता है। कुछ दिनों के बाद उदरशूल बढ़ जाता है, उस समय उदर में दाह भी होता है। ऐसे लक्षण युक्त गुल्म पर यह नारिकेल लवण उत्तम औषधि है। नारिकेल लवण, शंख भस्म और हिंग्वष्टक चूर्ण को मिलाकर नींबू के रस के साथ दिन में ४-६ समय देते रहने से शूलसह गुल्म निवृत्त हो जाता है। मल शुद्धि के लिये रात्रि को ३-३ माशे त्रिफला देते रहे।

६. धात्रीलोह।

द्रव्य—आंवले का चूर्ण ३२ तोले, लोहभस्म १६ तोले, मुलहठी का सत्व ८ तोले लें।

विधि—तीनों को मिलाके ७ दिन तक गिलोय के क्वाथ की भावना देके मर्दनकर सूर्य के ताप में सुखावें। *(र.र.)*

वक्तव्य—लोहभस्म १६ तोले के स्थान पर मण्डूरभस्म ८ तोले ही मिलावें और मात्रा १ से २ माशे दें तो लाभ अधिक पहुँचता है।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशे तक घी और शहद के साथ दिन में २ या ३ बार लें। इसे भोजन के आधे घण्टे पहले लेने से आमाशय के पित्त की उग्रता और वातप्रकोप शान्त होते हैं। भोजन के बीच में लेने पर मलावरोध दूर होता है और आहार विदग्ध नहीं होकर दाह की उत्पत्ति नहीं होती। भोजन के अन्त में सेवन करने पर अन्नपान जनित दोष, जरत्पित्त, उदरशूल, परिणामशूल आदि पर लाभ पहुँचता है।

उपयोग—यह लोह अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डु और कामला रोग में हितावह है। कफपित्त प्रकोपज व्याधियों पर इसका सेवन कराया जाता है। यह रक्त का प्रसादन करता है। इससे चक्षु की देखने की शक्ति बढ़ जाती है तथा अकाल में शिर के बालों का सफेद होना रुक जाता है।

७. पार्श्वशूल हर योग।

द्रव्य—रससिंदूर १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला और श्रृङ्गभस्म ६ तोले लें।

विधि—मिलाकर खरल कर लेवें।

मात्रा—४ रत्ती गोघृत और शहद के साथ २-२ घण्टे पर २-२ बार लें।

उपयोग—तीव्र पार्श्वशूल, हृदयशूल और छाती में होने वाली वेदना शान्त हो जाती हैं।

८. पित्ताशयशूलहर योग

विधि—तालमखाने के पञ्चाङ्ग की राख में से बनाया हुआ क्षार ४ से ८ रत्ती को शीतल जल के साथ एक-डेढ़ घण्टे पर २-३ बार देने पर भयंकर शूल और वमन आदि लक्षणोंयुक्त पित्ताशय की अश्मरी का नाश होता है। यह क्षार अश्मरी कण को पिघलाकर निकाल देता है। शूल शमन हो जाने पर इस क्षार को दिन में ३ बार घी के साथ कुछ दिनों तक देते रहने से पित्ताश्मरी की उत्पत्ति में प्रतिबन्ध हो जाता है तथा पित्ताशय में उत्पन्न अश्मरी गल जाती है।

९. उदरशूलहर योग।

(१) सुहिंजने का गोंद १-२ माशे लेकर उसका अग्नि पर फूला बनाके चूर्णकर शक्कर मिलाकर खिला देने से तत्काल शूल नष्ट हो जाता है। रोगी को शीतल जल या शीतल पेय देना चाहिये।

(२) नीलगिरी तैल की ५ बूंदों को १-२ माशे शक्कर के साथ मिलाकर खिला देने से उदरशूल, उबाक, वमन, उदरवायु, अपचन, थोड़े-थोड़े दस्त लगना और हैजा आदि रोग दूर हो जाते हैं। आवश्यकतानुसार १-१ घण्टे पर ३-४ बार यह तैल दिया जाता है।

(३) सागवान के बीजों के १-१॥ माशे चूर्ण को गुड़ के साथ मिलाके निवाये जल से देने पर उदरशूल, गुल्म, घबराहट और उबाक दूर हो जाते हैं। कुछ चिकित्सक साग के १ बीज को जल में घिसकर जल मिलाकर पिलाते हैं।

(४) सत्यानाशी के १॥ माशे बीज और जवाखार ३ रत्ती या नारिकेल लवण ४ रत्ती को मिलाकर जल के साथ दे देने से उदरशूल, मलावरोध और बेचैनी आदि दूर होते हैं।

(५) छोटी कटेली पंचांग का पाताल यन्त्र से अर्क निकालकर आध-आध तोला जल मिलाकर दिन में ३ बार देने से उदरशूल, हृदयशूल और संधिशूल आदि सब दूर होते हैं। यह अर्क कफ गुल्म पर भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

(६) छिल्के निकाली हुई राई, गुड़ और नमक को घीकुंवार के रस में खरलकर लेप लगाने से उदरशूल और संधिशूल दूर होते हैं एवं यह श्वास प्रकोप में फुफ्फुस पर और वमन बन्द करने के लिए आमाशय पर लेपार्थ प्रयुक्त होता है।

सूचना-वेदना के शान्त होने पर पट्टी निकालकर वहाँ तैल वाला हाथ लगा देवें।

(७) शुद्ध कुचिले के २ रत्ती चूर्ण को गुड़ के स.थ मिलाकर जल के साथ देने से वातप्रकोपज और कफप्रकोपज शूल शान्त हो जाते हैं।

(८) आक की चोफूली और अजवायन को समान प्रमाण में मिला के दोनों के समान गुड़ डालकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाके सुखाकर जल के साथ देने से उदरशूल, अफारा, अपचन और कफप्रकोप दूर होते हैं।

१०. लवणाद्य चूर्ण।

द्रव्य–समुद्रनमक, सैंधानमक, सांभर नमक, कालानमक, काँच लवण, सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब), नौसादर, सोहागे का फूला, आक का क्षार और जवाखार इन १० औषधियों को ५-५ तोले तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अजवायन, जीरा, दीलचीनी और छोटी इलायची इन १० औषधियों को २॥-२॥ तोले और छिल्के रहित लहसुन २५ तोले और नींबू २५ नग लें।

विधि–प्रथम लवण और काष्ठादि औषधियों को कूट के कपड़छन चूर्ण करें। फिर लहसुन को नींबू के रस में खरलकर उसमें शेष सब चूर्ण मिलाके सूखा चूर्ण बना लेवें।

मात्रा–२ से ३ माशे, दिन में २ या ३ बार निवाये जल या नींबू के साथ देवें।

उपयोग–यह लवणाद्य चूर्ण सब प्रकार के वातज और कफप्रकोपज शूल, अपचन, आध्मान, मलावरोध और उदरकृमि को दूर करता है और अग्नि को प्रदीप्त करता है।

कतिपय चिकित्सक समुद्रनमक आदि १० औषधियों के चूर्ण को ही नींबू के जल में मिलाकर पिलाते हैं। उससे अपचन और अपचनजनित व्यथा तुरन्त दूर होती है।

११. सामुद्राद्य चूर्ण (शूल)

द्रव्य–समुद्रनमक, सैंधानमक, सज्जीखार, यवक्षार, कालानमंक, सांभरनमक, काच लवण, दन्तीमूल, लोहभस्म, मण्डूर भस्म, निसोत और जमीकन्द इन १२ औषधियों को समभाग लें।

विधि–प्रथम सबका चूर्णकर उसमें दही, गोमूत्र और दूध तीनों, ४-४ गुने मिलाकर मन्दाग्नि पर पकाकर द्रवांश को जला देवें। फिर शुष्क द्रव्य को खरलकर बोतल में भर लेवें। *(यो.र.)*

मात्रा–१॥ से ३ माशे तक, दिन में २ बार या आवश्यकता पर गुनगुने जल के साथ देवें। आमाशय रस कम हो तो भोजन के आधे घण्टे पहले देवें। आमाशय रस अधिक खट्टा होता हो तो भोजन के २-२॥ घण्टे बाद देना चाहिये।

उपयोग–यह सामुद्राद्य चूर्ण नाभिशूल, पार्श्वशूल, गुल्म, प्लीहा, परिणामशूल, अन्तर्विद्रधि, अष्ठीला, कफवात प्रधान शूल, अन्नद्रव शूल, अजीर्ण और ग्रहणी रोग को दूर करता है। शूलों के लिये इससे श्रेष्ठ दूसरी औषधि नहीं है।

विवेचन–यह सामुद्राद्य चूर्ण आमाशय और अन्त्र दोनों स्थानों पर पचन कार्य करता है। अपचनावस्था में यह तुरन्त लाभ पहुँचाता है। आमविष को नष्ट करके प्रकृति को स्वस्थ बनाता है। अम्लपित्त, क्षत आदि हेतु से आमाशय में खट्टा रस बढ़ जाने पर क्षारीय बनाता है। ऐसी अवस्था में भोजन के पश्चात् इसका प्रयोग किया जाता है। यह अन्नद्रव शूल, परिणामशूल अफारा, उदरवात आमप्रकोप, कृमि और आमविष को नष्ट करता है।

आमाशय रस का स्राव कम होने पर अग्नि मन्द हो जाती है। भोजन का पचन कम होता है और देर से भी होता है। इसके अतिरिक्त उदर में वायु का संग्रह होना, मलावरोध, आमप्रकोप आदि लक्षण भी उपस्थित होते हैं। ऐसे विकारों में भोजन के आध घण्टे पहले इसे दिया जाता है।

यह चूर्ण आमाशय के समान अन्त्र की पचन क्रिया को भी बढ़ाता है। तथा यकृत पित्त का स्राव भी अधिक एवं नियमित कराता है, जिससे अन्त्र में पचन-क्रिया सरलता पूर्वक होती है।

❑ ❑

(२३) गुल्म रोग।

१. नाराच रस (गुल्म)

द्रव्य–ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल इन १० औषधियों को **समभाग** लें।

विधि–प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करें। फिर ताम्रभस्म, जमालगोटा और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर मर्दन कर लेवें। (र.र.)

मात्रा–२ से ४ रत्ती, प्रातःकाल सोहागे के फूले के चूर्ण २ से ४ रत्ती और शहद के साथ दें तथा ऊपर निवाया जल पिलावें।

उपयोग–यह रसायन तीव्र विरेचक है। गुल्म ओर उदररोग दूर करने में अति हितावह है। जब आमाशय की पचन-क्रिया मन्द होकर आम और कफ की वृद्धि हो गई हो, यकृतपित्त का स्राव बहुत कम होता हो, इस हेतु के कफप्रधान गुल्म या कफोदर की प्राप्ति हुई हो, तब इस रस के सेवन से जल के सदृश पतले दस्त लगकर अन्त्रविकृति, कफ और आम सब निकल जाते हैं। फिर आमाशय, यकृत् और अन्त्र का व्यापार सबल हो जाता है। इस हेतु से कफज गुल्म और कफोदर शान्त हो जाते है। इनके अतिरिक्त कृमिरोग, प्लीहावृद्धि, अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला और आनाह रोग में भी यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

२. गुल्महर रस।

विधि–अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध गन्धक १-१ तोला तथा सोहागे का फूला, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल का चूर्ण २-२ तोले लेकर मिला लेवें।

मात्रा–१-१ माशा, दिन में ३ समय मक्खन या गोघृत और शहद के साथ।

उपयोग–इस रस से थोड़े ही दिनों में दाह, मन्दाग्नि, पाण्डुता और निर्बलता आदि लक्षणोंसह गुल्मरोग दूर होकर शरीर सुदृढ़ बन जाता है। यह पित्त और कफगुल्म रोग की उत्तम औषधि है।

३. अभयादि वटी।

द्रव्य–हरड़, कालीमिर्च, पीपल, सोहागे का फूला प्रत्येक २-२ तोले और धतूरे के शुद्ध बीज ८ तोले लेवें।

विधि–सबको कूट के कपड़छन चूर्णकर थूहर के दूध में मिलाके रबड़ी जैसा बनावें। फिर गरमकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, ४-४ माशे हरड़ के चूर्ण के साथ रोज सुबह निवाये जल के साथ देते रहें। विरेचन हो जाने पर गरम करके शीतल किया हुआ जल पिलावें।

उपयोग–इस अभयादि वटी के सेवन से गुल्म, जीर्णज्वर, पाण्डु, प्लीहा, अष्ठीला, उदररोग, रक्तपित्त, अम्लपित्त और सब प्रकार के अजीर्ण रोग निवृत होते हैं।

यह वटी अन्त्रगत आम, विष, मल, कृमि, कीटाणु आदि को दूर करती है, रक्त में विद्यमान, लीन विष को जलाती है और शनैःशनै गुल्म का निवारण करती है।

४. वचादि चूर्ण

द्रव्य–बच २ तोले, हरड़ ३ तोले, विडलवण ६ तोले, सोंठ ४ तोले, भुनी हींग १ तोला, कूठ ८ तोले, चित्रकमूल ७ तोले और अजवायन ५ तोले लें।

विधि–सबका कपड़छन चूर्ण कर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–३-३ माशे, दिन में २ बार शराब या निवाये जल से देवें।

उपयोग–यह वचादि चूर्ण गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, अर्श, श्वास कास और ग्रहणी रोग को दूर करके पाचकाग्नि को प्रदीप्त करता है।

५. दन्ती-हरीतकी।

द्रव्य एवं विधि–बड़ी हरड़ साबुत, दन्तीमूल का जौकूट चूर्ण और चित्रक मूल का जौकूट चूर्ण, तीनों १००-१०० तोले को, २०४८ तोले जल में मिला के उबालकर अष्टमांश क्वाथ करें। फिर हरड़ को निकाल के जल को छान लेवें। पश्चात् क्वाथ को पुन: उबालें। लगभग १। सेर जल रहने पर १०० तोले गुड मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी करें। उष्णता कम होने पर उबाली हुई हड़, निशोथ का चूर्ण १६ तोले, तिल तैल १६ तोले, पीपल ओर सोंठ का चूर्ण २-२ तोले मिलावें। शीतल हो जाने पर १६ तोले शहद तथा दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने और नागकेशर १-१ तोला डालें।

मात्रा–रोज सुबह २-२ तोले लेह चाटें और १ हरड़ खायें। भोजन में भात और माँस रस (या उड़द की दाल) अथवा खिचड़ी लेवें।

उपयोग–यह दन्ती-हरीतकी गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डु, अरुचि, हृदरोग, ग्रहणी, कामला, विषमज्वर, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि और आनाह आदि रोगों का नाश करती है।

दन्ती-हरीतकी उत्तम उदरशोधक, दीपन और पाचन है। कृमि-कीटाणुओं का नाश करती है, गुल्म को शनै:शनै काटती है। आम, मल, विष को बाहर फेंकती है और पचन क्रिया को बढ़ाती है। पथ्य पालनसह एकाध मास तक इसका सेवन करने पर गुल्म की निवृत्ति हो जाती है।

६. पञ्चानन रस (रक्त गुल्म।)

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, पीपल अमलतासका गूदा इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर उसमें शेष औषधियों को मिलाके १२ घन्टे तक थूहर के दूध में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१-१ गोली रोज सुबह आंवले के पत्रों या इमली के पत्रों के रस के साथ देवें। बेचैनी हो तो आंवलों के हिम या नींबू का रस तथा जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग–पञ्चानन रस नये रक्त गुल्म को निवृत्त करता है। जो रक्तगुल्म बहुत पुराना न हो गया हो, रुग्णा में विरेचन की उग्रता सहन करने की शक्ति हो, जिसे पहले पेचिश न हुई हो, अम्लपित्त से जो पीड़ित न हो और जो दहीभात और मट्ठे पर रह सकती हो, उसे १ मास तक पञ्चानन रस का सेवन कराने से गुल्म में से रक्तस्राव होकर सब विकार निकल जाता है।

७. दन्त्यादि गुटिका।

द्रव्य–दन्तीमूल, हींग, जवाखार, कड़वी तुम्बी के बीज, पीपल और गुड़ इन ६ औषधियों को समभाग में लें।

विधि–सबको कूटकर थूहर के दूध में १२ घण्टे तक खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, प्रतिदिन सुबह जल के साथ देवें।

उपयोग–दन्त्यादि गुटिका निर्बल स्त्रियों के रक्क्तगुल्म का नाश करती है। जो पञ्चानन रस की उग्रता को सहन नहीं कर सकती, उनको दन्त्यादिगुटिका दी जाती है। इस वटी के सेवन काल में भी दही भात पर रुग्णा को रखना पड़ता है। पथ्यपालन सह सेवन करने पर १-२ मास तक योनिद्वार से रक्त और माँस के छिछड़े गिर कर गुल्म जाता है।

(२४) हृद्रोग।

१. शङ्कर वटी।

द्रव्य–शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, लोह भस्म ३ तोले और शतपुटी नाग भस्म २ तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्में मिला के मकोय, चित्रकमूल, अदरक, जयन्ती, अरणी, वासा, बेलछाल और अर्जुनछाल इन ७ द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ के साथ १-१ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार शहद, दूध या जल के साथ देवें। रोग जीर्ण हो तो १ रत्ती तथा नया हो तो २ रत्ती दें।

उपयोग–इस वटी के उपयोग से फुफ्फुस की व्याधियाँ, हृदय के रोग, जीर्णज्वर, २० प्रकार के घोर प्रमेह, कास, श्वास, आमवात और दुस्तर संग्रहणी आदि दूर होते हैं। यह वटी अति बलवर्द्धक और पौष्टिक है।

यह वटी हृद्रोग के नाशके निमित्त कही है। यह रसायन लोहप्रधान होने से रक्त का प्रसादन और वृद्धि करता है तथा रक्ताभिसरण क्रिया को भी सबल बनाता है। दूसरी इस प्रयोग में सीसा भस्म मिलाई है। यह रस, रक्त आदि धातुओं को शनैः शनैः पुष्ट करती है। अतः इस रस से रक्तवृद्धि और मांस की पुष्टि होती है। जिससे हृदय सुदृढ़ होकर उसकी शिथिलता और धड़कन आदि विकारों की निवृत्ति होती है।

विवेचन–आमातिसार, मोतीझरा और संग्रहणी आदि रोगों की निवृत्ति होने पर हृदय आदि इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है। रक्ताभिसरण क्रिया और नाड़ी की गति मन्द हो जाती है। थोड़े परिश्रम और उष्ण पदार्थ के सेवन से धड़कन बढ़ जाती है तथा श्वास भर जाता है। पचन क्रिया मन्द हो जाती है। मुख निस्तेज और हाथ पैरों पर रात्रि को कुछ शोथ भासता है। ऐसे लक्षणयुक्त हृद् रोग पर यह शंकर वटी लाभदायक है। एक मास तक इसका सेवन करने पर सब इन्द्रियाँ सबल हो जाती है।

आमवात होने पर प्रायः हृदय को धक्का पहुँच जाता है। आमवात भी वर्षाऋतु में आक्रमण करता रहता है। इस आमवात को और हृदय की शिथिलता को यह शंकर वटी दूर कर देती है। इसे कम मात्रा में २-३ मास तक अर्जुनारिष्ट के साथ सेवन करना चाहिये। रोगी को मधुर पदार्थ कम सेवन कराना चाहिये और बासी, बिगड़े हुए फल और अन्न का त्याग कराना चाहिये। कदाच हृदय या हृदयावरण पर शोथ आया हो तो वह भी दूर हो जाता है।

प्रबल रक्तातिसार, रक्तार्श या आगन्तुक घाव लग कर अति रक्तस्राव होकर रोग शमन हो जाने पर देह में रक्त की कमी रहती है। नाड़ी निर्बल होने पर भी गति तेज भासती है। मुखमण्डल निस्तेज प्रतीत होती है। थोड़ा चलने, जोर से बोलने, तेज आवाज वाले स्थान में खड़े रहने और गरम भोजन आदि का सेवन करने आदि कारणों से हृदय में वेदना होती है। इस हृदय-विकार को यह शंकर वटी थोड़े ही दिनों में दूर करती है और देह को सबल बनाती है।

आमाशय और यकृत् के निर्बल होने पर पचन-क्रिया मन्द हो जाती है। ऐसी स्थिति में अधिक भोजन, देर से पचने वाला भोजन, बार-बार भोजन और अपथ्य का सेवन करते रहने पर प्रमेह रोग की संप्राप्ति हो जाती है। यह रोग जीर्ण होने पर हृदय भी निर्बल बन जाता है। पचन-विकार, प्रमेह और हृदय रोग इन तीनों के लिये शंकर वटी उपकारक है। अनुपान रूप से चविकासव का सेवन विशेष लाभप्रद है। पथ्य का आग्रहपूर्वक पालन कराना चाहिये।

फुफ्फुस-संस्थान निर्बल होने पर किसी-किसी को धूप में फिरने, शीत लग जाने, बद्दल आने अथवा अपचन होने प तमक श्वास का दौरा हो जाता है। यह दौरा बार-बार होता रहता है। विशेष दौरा रात्रि के समय होता है। इस रोग में फुफ्फुस के अतिरिक्त हृदय और पचन संस्थान भी निर्बल हो जाते हैं। इन तीनों को सबल बनाकर जीर्ण तमक श्वास को दूर करने के लिये कम मात्रा में शंकर वटी का सेवन दीर्घकाल तक करना चाहिये। कफ अधिक हो, तो अनुपान रूप से वासकासव और पचन-क्रिया अधिक मन्द हो तो पिप्पल्याद्यासव देना चाहिये।

२. चिन्तामणि रस (हृदय)।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, वङ्गभस्म और शु. शिलाजीत १-१ तोला, सुवर्ण के वर्क (या भस्म) ३ माशे और चाँदी के वर्क (या भस्म) ६ माशे लें।

विधि–पहले कज्जली कर फिर भस्म और शिलाजीत मिला के चित्रकमूल के क्वाथ और भांगरे के स्वरस की १-१ भावना देवें। फिर अर्जुनछाल के क्वाथ की ७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

विशेष–इस रस में हम १ तोला मोतीपिष्टी भी मिलाते हैं।

मात्रा—१ से २ रत्ती, दिन में २ बार गेहूँ के क्वाथ, अर्जुन क्षीर, बलाघृत या खरैंटी के मूल के क्वाथ के साथ या च्यवनप्राशावलेह के साथ।

उपयोग—चिन्तामणि रस हृदय के समग्र रोगों पर हितावह है। इसके अतिरिक्त फुफ्फुस-संस्थान के रोग, प्रमेह, श्वास, कास आदि को दूर करता है तथा देह को सबल और पुष्ट बनाता है।

हृदयेन्द्रिय की निर्बलता से उत्पन्न हृदयस्पन्दन वृद्धि (धड़कन), हृदय के पर्दे की विकृति, धमनी-सिराकी विक्रियासह हृदय वेपन (Fibriliation), हत्खण्ड प्रसारण (Cardiac dilatation), हृदय की मांसपेशी की वृद्धि, (Cardiac hypertrophy); हृदयवृद्धि से उत्पन्न श्वास या क्षुद्र श्वास (हाँफ), हृदयेन्द्रिय का शोथ, धमनी की दीवारों की विकृति होने से उनमें से रक्तवारि टपकना आदि पर यह व्यवहृत होता है। इस रस का मुख्य गुण हृदय और धमनी को बल प्रदान करने का है।

अर्जुन क्षीर—अर्जुन की छाल का जौकूट चूर्ण १ तोला, गोदुग्ध और जल १६-१६ तोले मिला के मन्दाग्नि पर दुग्धावशेष क्वाथ कर १ तोला मिश्री और थोड़ा इलायची का चूर्ण मिलाकर उपयोग में लेवें।

३. पंचसार रस।

द्रव्य एवं विधि—आंवलासार गन्धक को घी में मिला के तपा तपाकर ७ बार आंवलों के रस में बुझावें। इस तरह शुद्ध गन्धक ४० तोले और शुद्ध पारद ४० तोले की यथाविधि कज्जली करें। पश्चात् आँवलों के पत्तों के रस, मुलहठी, पिण्डखजूर और मुनक्का के क्वाथ में क्रमश: १-१ दिन खरलकर सुखा के चूर्ण बना लेवें। *(र.च.)*

मात्रा—२-२ रत्ती, दिन में २ बार भोजन के आध घण्टे पहले, आंवले के शर्बत के साथ देवें या सुबह-शाम शक्कर-मिश्रित आंवलों के चूर्ण के साथ देकर ऊपर-दूध पिलावें।

उपयोग—यह पञ्चसार रस निर्भय, पित्तशामक और हृद्य कज्जली योग है। आमाशय की पित्त विकृति होकर उदावर्त होने (गैस बनने) पर हृदय को धक्का पहुँचता रहता है। ऐसे विकार में हृदय में भारीपन, दाह, व्याकुलता, तृषा, कण्ठशोष, स्वेदाधिक्य, गरम-गरम डकार आना आदि अम्लपित्त से मिलते जुलते लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग को आयुर्वेद में पैत्तिक हृद्रोग कहते हैं। इस प्रकार में जब तक मूल कारण रूप उदावर्त दूर नहीं होता, तब तक हृदयरोग का शमन नहीं होता। अत: यह रस आमाशय पर कार्यकारी होने से उदावर्तसह हृदयरोग को दूर करता है।

वक्तव्य—जब गैस उठकर हृदय को तीव्र आघात पहुँचा रही हो तब ऐसी अवस्था में दवाउलमुश्क या इतर कस्तूरी प्रधान हृद्य औषधि देकर वेग का तुरन्त दमन करना चाहिये।

४. बलाद्य घृत।

द्रव्य व विधि—खरैंटी का मूल, गंगेरन की छाल और अर्जुन छाल तीनों को २-२ सेर लेके जौकूट चूर्णकर १६ गुने जल में चतुर्थांशावशेष क्वाथ करें। फिर छानकर क्वाथ को कलई किये हुए बरतन में भर कर चूल्हें पर चढ़ावें। उसमें गौघृत ३ सेर तथा मुलहठी का कल्क ६० तोले मिलाकर मंदाग्नि पर पाक करें। घृत सिद्ध होने पर नीचे उतार के तुरन्त छान लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा—१ से २ तोले तक, दिन में २ बार मिश्री के साथ सुबह शाम देकर, ऊपर से दूध पिलावें या दोनों समय भोजन के साथ देवें।

उपयोग—यह घृत हृद्रोग, हृदयशूल, हृदय में क्षत, उर:क्षत, रक्तपित्त, वातज शुष्क कास, वातरक्त और पित्तप्रकोपज रोगों को दूर करता है।

५. जवाहर मोहरा।

द्रव्य-(प्रथम विधि)—माणिक्य, पन्ना और मोती की पिष्टियाँ २-२ तोले, प्रवालपिष्टी, शृङ्गभस्म और संगेयशव पिष्टी ४-४ तोले, कहरवा पिष्टी २ तोले, सोना और चांदी के वर्क ६-६ माशे, दरियाई नारियल का चूर्ण ४ तोले, आबरेशम कतरा हुआ और जदवार का चूर्ण २-२ तोले तथा कस्तूरी और अम्बर १-१ तोले लें।

विधि—पहले सब पिष्टियों और भस्मों को मिला लें। फिर १-१ वर्क तत्पश्चात् दरियाई नारियल आदि ३ औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर १४ दिन गुलाबजल में खरल करें। १५वें दिन कस्तूरी और अम्बर मिला के गुलाबजल में ६ घण्टे खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लें। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ या ३ बार शहद तथा खमीरे गावजवां अम्बरी (पाठ रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में छपा है) ४ माशे के साथ देवें। ऊपर दूध या केवड़े या गावजवां के फूल का अर्क पिलावें।

उपयोग–जवाहर मोहरा उत्तम हृदय-पौष्टिक और मस्तिष्क-पौष्टिक योग है। हृदय की घबराहट, हृदय की कमजोरी से थोड़ा-सा चलने पर दम भर जाना, दिल धड़कना, निस्तेजता, स्मरणशक्ति का कम हो जाना, कुविचार आते रहना थोड़ा सा विचार करने पर मस्तिष्क थक जाना, थोड़ा-सा विरोध होने पर मस्तिष्क का उत्तेजित या गरम हो जाना आदि विकृति पर जवाहर मोहरा केवड़े या गावजवां के अर्क या दूध के साथ दिया जाता है।

सन्निपात, मानसिक आघात, अति रजःस्राव, आगन्तुक आघात या वमन, विरेचन आदि होकर शक्तिपात हो जाना आदि प्रसङ्गों में जवाहर मोहरा तत्काल जीवन-शक्ति की रक्षा करने में सहायक होता है।

विवेचन–महाधमनी या हार्दिक धमनी की रक्ताभिसरण क्रिया में प्रतिबन्ध होने पर हृदय शूल चलता है। जिससे रोगी अति व्याकुल हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रथम शूल को तुरन्त शमन करने, फिर हृदय को सबल बनाने और भावी आक्रमण की उत्पत्ति को रोकने के लिये औषध व्यवस्था करना पड़ती है। तीव्रावस्था (आक्रमणावस्था) का शमन होने पर यह जवाहर मोहरा दिया जाता है। इससे हृदय बलवान् बन जाता है। भावी आक्रमण भीति टल जाती है। जब तक हृदय सबल न हो, तब तक रोगी को पूर्ण आराम करना चाहिये।

मुद्दतीज्वर, विषमज्वर अथवा मोतीझरे के कई दिनों तक रह जाने पर हृदय निर्बल हो जाता है तथा उसकी गति तेज हो जाती है, निद्रा का ह्रास हो जाता है एवं पचनक्रिया भी मन्द हो जाती है। देह निर्बल व कृश हो जाती है। ऐसे रोगी को जवाहर मोहरे का सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में अच्छा लाभ पहुंच जाता है।

बार-बार १॥-२ वर्ष के भीतर सन्तानोत्पत्ति होने पर माता कमजोर हो जाती है और संतान भी कमजोर होती है। इनके संरक्षणार्थ जवाहर मोहरा और प्रवाल पिष्टी का सेवन कराना चाहिये। अन्यथा माता हृदय रोग से पीड़ित हो जायेगी और भावी सन्तानों का हृदय भी कमजोर रह जायेगा।

द्रव्य (द्वितीय विधि)–अकीक पीला ३ माशे, अकीक लाल ३ माशे, अकीक सफेद ३ माशे, मोती बरसाई ३ माशे, नीलम ३ माशे, माणिक्य लाल ३ माशे, संगेयशव ९ माशे, मापाये शुतर अर्बी ३ माशे, हजरूलतीस (पत्थरबेर) ६ माशे, राजावर्त मसगुल ३ माशे, कहरवा ३ माशे, बुशद ३ माशे, पिरोजा ३ माशे, पन्ना ३ माशे, प्रवालशाखा ३ माशे, माणिक्य पीला ३ माशे, दरियाई नारियल ९ माशे, सोने के वर्क ३ माशे, चांदी के वर्क १२ माशे, वंशलोचन ३ माशे, कस्तूरी ३ माशे, अम्बर ३ माशे, मोमियाई ३ माशे, जहरमोहरा खताई ९ माशे, जदवार खताई ६ माशे। *(श्री अमरचन्दजी पनपालिया)*

विधि–प्रथम उक्त द्रव्यों की यथा योग्य पिष्टियाँ और भस्में बनाके एकत्र कर लें फिर उनमें एक-एक सुवर्ण वर्क डालते हुए घोटें। पश्चात् चांदी के वर्क भी मिलाके घोटें। वंशलोचन चूर्ण एवं दरियाई नारियल आदि का भी कपड़छन चूर्ण मिलाके १४ दिन तक गुलाबजल में खरल करें। १५ वें दिन कस्तूरी और अम्बर मिला के गुलाबजल में ६ घण्टे खरलकर आधी आधी रत्ती की गोलियां बनाके छाया शुष्क कर शीशी में भर दें।

मात्रा–१-२ गोली, दिन में २ या ३ बार, शहद के साथ।

उपयोग–इस जवाहर मोहरा का उपयोग मृत्यु मुख में पड़े हुए कई रोगियों पर किया है। कभी असफल नहीं हुआ है। इसके प्रयोग से थोड़े ही समय में चेतना आ जाती है। फिर २-४ दिन तक जवाहर मोहरा चालू रखने पर निर्बलता दूर हो जाती है। रोगी प्रसन्नता से वार्तालाप करता है एवं रोगनाशक औषध अपना कार्य करने लगती है।

इसके अतिरिक्त हृदय-विकार और मानसिक निर्बलता, व्याकुलता बनी रहना, बुद्धि-भ्रम आदि पर भी आशु फलदायी विदित हुआ है।

६. याकूती।

द्रव्य–माणिक्यपिष्टी, पन्नापिष्टी, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, कहरवापिष्टी, पूर्णचन्द्रोदय, सुवर्ण के वर्क, अम्बर, कस्तूरी, कतरा हुआ आबरेशम और केशर इन ११ औषधियों को २-२ तोले तथा बहमन सफेद, बहमन लाल, जायफल, लौंग और सफेद मिर्च १-१ तोला लें।

विधि–प्रथम चन्द्रोदय के साथ सुवर्ण के वर्क १-१ मिलाकर खरल करें। फिर सब पिष्टियों और अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला के गुलाबजल में २१ दिन तक खरल करें। २२वें दिन अम्बर, कस्तूरी मिला के गुलाबजल में ६ घण्टे खरलकर आधी-आधी रत्ती की गोलियां बना लेवें। यह प्रयोग स्वर्गवासी वैद्य श्री तिलकचन्द ताराचन्द से श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य को मिला था। *(सि.यो.सं.)*

मात्रा–१ से २ गोली, पोदीने के स्वरस या रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २ बार।

उपयोग–यह याकूती सन्निपात ज्वर आदि विकारों में नाड़ी की क्षीणता, देह शीतल हो जाना, स्वेदाधिक्य आदि लक्षणों तथा हृदय की दुर्बलता, थोड़ा चलने पर दम भर जाना और हृदयस्पंदन बढ़ जाना आदि लक्षणों को दूर करने के लिये व्यवहृत होती है।

इस याकूती को सन्निपात में सेवन कराने पर तत्काल नाड़ी सबल बनती है, घबराहट दूर होती है, तन्द्रा और मानसिक विकृति दूर होती है। वात और पित्त प्रकोपज सन्निपात में इसका प्रयोग होता है।

विवेचन–हृदयेन्द्रिय निर्बल बनने, विविध रोगों से रक्त को योग्य पोषण न मिलने और मस्तिष्कगत हृदयकेन्द्र विकृत हो जाने से हृदय-क्रिया अव्यवस्थित (cardiac neurosis) हो जाती है। इनमें यदि हृदयेन्द्रिय या पर्दे पर शोथ न आया हो तो यह याकूती का सेवन कराने से क्रिया नियमित हो जाती है। फिर हृदयवेपन (Heart palpitation), हृदयस्पन्धन के ताल में अनियमितता (Teachycardia) या अस्वाभाविक हृत्स्पन्दन वृद्धि (Arrhythmia) तथा इनसे उत्पन्न पचनक्रिया विकार, उदर में वातसंग्रह, निस्तेजता, दम भर जाना आदि लक्षण इससे दूर हो जाते हैं।

अति मानसिक श्रम से मस्तिष्क निर्बल बन जाता है। फिर स्मरणशक्ति का ह्रास, आलस्य, मन में विविध कल्पना आती रहना, मानसिक व्याकुलता बनी रहना, निस्तेजना, शारीरिक कृशता, अग्निमान्द्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उन पर यह याकूती अच्छा लाभ पहुँचाती है।

शुक्रका दीर्घकाल तक दुरुपयोग करने पर शुक्रक्षय हो जाता है। मुखमण्डल का श्याम और निस्तेज हो जाना, शरीर शुष्क हो जाना, मन का क्रोधी और संशयी बन जाना, कोई भी कार्य करने का उत्साह न रहना, आलस्य, अग्निमान्द्य, वीर्य अति पतला हो जाना, किसी स्त्री का चित्र सामने आने, पैरों की आवाज सुनने या स्मरण होने पर शुक्रस्राव हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे विकार पर ब्रह्मचर्यपालन सहित इस याकूती का सेवन कराया जाये तो देह सबल और तेजस्वी बन जाती है। अनुपान दूध।

७. हृदयपौष्टिक चूर्ण।

द्रव्य–प्रवाल पिष्टी, लाल फिटकरी का फूला, कहरवा पिष्टी, नागरमोथा और पोदीना १०॥-१०॥ माशे, जटामांसी ३॥ माशे, मुक्तापिष्टी ३॥ माशे, जराबन्द मुदहरिंज और दरुनज अकरबी १॥-1॥ माशे, कस्तूरी ६ रत्ती और मिश्री सबके समान लें।

विधि–सबको पीसकर मिला लेवें।

मात्रा–१॥ से २ माशे, चूर्ण को तुरबुद (सफेद निशोथ) के क्वाथ के साथ दिन में २ या ३ बार देवें।

सूचना–जिस रोगी को मल की प्रवृत्ति हो अर्थात् पहले ही पतले दस्त होते हों अथवा अति क्षीण एवं शोधन करने के योग्य न हो, उनके लिये निशोथ के क्वाथ के स्थान पर मीठे अनार का स्वरस अथवा गोदुग्ध का अनुपान हितावह है।

उपयोग–यह चूर्ण पित्तप्रकोप और वातविकृति से उत्पन्न हृद्रोग को दूर करता है।

८. हृद्य चूर्ण।

प्रथम विधि–डिजीटेलिस के पान, प्रवालपिष्टी और अकीक भस्म तीनों को समभाग मिलाकर खरल कर लें। इसमें से १-१ रत्ती चूर्ण को शहद के साथ २-२ घण्टे पर दिन में २-३ बार देने से हृदय की धड़कन शान्त हो जाती है।

द्वितीय विधि–डिजिटेलिस पत्र चूर्ण १ भाग और श्रृङ्गभस्म २ भाग मिलाकर ३ घण्टे तक खरलकर लेवें। इसमें से १-१ रत्ती चूर्ण को शहद के साथ दें।

उपयोग–हृदय की दुर्बलता, धड़कन तथा नाड़ी का वेगाधिक्य दूर होते हैं। हृद्रोगों में उपद्रवरूप सर्वाङ्ग शोथ हो तब आरोग्यवर्द्धिनी के साथ मिलाकर इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

जीर्णकास में कफ चिपचिपा और अधिक गिरता हो, साथ में हृदय की दुर्बलता हो तो इसमें सूखे जंगली प्याज (वनपलाण्डु) का चूर्ण १-१ रत्ती मिलाकर प्रयोग करें। यदि रोगी को हल्लास और वान्ति भी हों, तो इसका प्रयोग कुछ दिन के लिये बन्द करें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

सूचना–डिजिटेलिस को एलोपैथिक कोष में एक क्षुप जाति का पौधा लिखा है। इसका चूर्ण, एक्सट्रेक्ट और टिंक्चर आदि के रूप में व्यवहार होता है। यह मूत्रल, हृद्य, विशेषकर हृदयरोगजन्य शोथ, जलोदर आदि रोगों की अवस्था में चमत्कारी गुण दिखाता है। किन्तु जिस रोगी की हृद्गति पहले ही न्यून हो, उनको देना निषेध लिखा है। यदि देना आवश्यक ही हो तो कुचिले के साथ देना चाहिये। दूसरी बात यह है कि इसका विशेष गुण देखने पर भी दीर्घकाल तक इसका सतत सेवन कदापि नहीं करना चाहिये। आवश्यकतानुसार १ या २ सप्ताह तक सेवन करके १ सप्ताह के लिये बन्द कर देना चाहिये। इस विधि से अधिक समय तक भी प्रयोग हो सकता है।

(२५) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात।

१. सूर्यावर्त्त क्षार।

द्रव्य एवं विधि-२॥ सेर जल जिसमें आ जाये उतनी बड़ी १ मिट्टी की हांडी लेकर उसके आधे भाग में हाथी दाँत का चूर्ण दबाकर भरें। फिर उस पर आधा सेर कलमीसोरा रखें। पश्चात् उसके ऊपर हाथी दाँत का चूर्ण भरकर ढक्कन लगाके खुले मैदान में जलती हुई अंगीठी पर रखें। शनैः शनैः हाथी दांत जलने लगता है। जिससे उसमें से दुर्गन्धयुक्त धुआँ निकलने लगेगा, साथ-साथ सोरा फूलने लगता है, जिससे बड़ी-बड़ी आवाजें होती रहती है। उस समय ऐसा भास होता है कि हांडी फूट गई। किन्तु हांडी नहीं फूटती और सोरा भी नहीं उड़ता। इस तरह हाथी दांत पूर्णांश में जल जाने पर धुआँ निकलना बन्द हो जाता है। फिर हांडी को उतार लेवें। ऊपर से हाथी दांत की भस्म को अलग निकाल लेवें और तले में बैठे सोरे को निकालकर पीस लेवें। *(आ.नि.मा.)*

वक्तव्य-हाथी दांत की भस्म को पृथक् रखकर खरल में पीस के प्रदर (सोम) और अस्थिस्राव में काम लेवें। यह पूयमेह में लाभकारी है तथा लोमनाश में, भी अपूर्व काम करती है। *(श्री. राधाकृष्ण वैद्य)*

मात्रा-२ से ४ रत्ती, जल के साथ देवें।

उपयोग-यह क्षार मूत्र-दाह को दूर करता है एवं उरःक्षत आदि में दाहसह कास को दूर करने में उपयोगी है।

इस क्षार को ताजी गोभी के पत्ते के २ तोले स्वरस में मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्रता दूर हो जाती है। उतने से सत्वर लाभ न हो सके, तो एक बैंत के ४-५ इञ्च के टुकड़े को एक सिरे से जला के दूसरे सिरे से सिगरेट के समान धूम्रपान कराने पर तुरन्त पेशाब आ जाता है।

२. श्वेत पर्पटी।

द्रव्य-सोरा ४० तोले, फिटकरी का चूर्ण १० तोले और नौसादर चूर्ण २॥ तोले लें।

विधि-सबको मिला के मिट्टी की कड़ाही में डालकर गरम करें। द्रव होने पर गीले गोबर के चोकोर चबूतरे पर रखे हुए तथा घी लगायें (चोपड़े) हुए केले के हरे पत्ते पर डाल देवें और ऊपर तुरन्त दूसरा पान रखकर लकड़ी के तख्ते से या थाली के पैंदे से दबा दें। शीतल होने पर पर्पटी को लेके कूटकर कपड़छन कर लें।

मात्रा-४ से ८ रत्ती, सुबह १ बार या आवश्यकता पर किसी भी समय शीतल जल या कच्चे नारियल के जल अथवा १ रत्ती कपूर को जल में मिलाकर उसके साथ देवें। आधे कच्चे दुग्ध और आधे पानी की लस्सी का अनुपान भी श्रेष्ठ होता है।

उपयोग-श्वेत पर्पटी मूत्रकृच्छ्र में अति लाभदायक है। वह मूत्रल, स्वेदल और वातानुलोमक है। वह मूत्राघात और अश्मरी में अनुपान रूप से व्यवहृत होती है एवं अम्लपित्त, अपचन और अफारा में भी सरलतापूर्वक दी जाती है। और मधुमेह रोगी के मूत्र में अम्ल विष की मात्रा बढ़ने पर श्वेत पर्पटी का उपयोग किया जाता है।

इस पर्पटी में सोरा के साथ फिटकरी और नौसादर मिलाने से अम्लतानाशक गुण की वृद्धि और मूत्रल गुण की सत्वर प्राप्ति होती है। फिटकरी के हेतु से स्थानिक (मूत्राशय, आमाशय और अन्त्र की) शिथिलता दूर होती है। नौसादर तीक्ष्ण, मूत्रल, सारक, रजोनिःसारक, पाचन, आध्मान तथा वायु (गैस) का नाशक एवं व्रणविदारक और उदरवातहर है। सोरा मूत्रल, तीक्ष्ण, पित्त-निःसारक, क्षारनाशक और अग्निप्रदीपक है। आर्त्तव और मूत्र को भली प्रकार साफ लाता है।

३. तारकेश्वर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, यवक्षार, गोखरू, हरड़, बहेड़ा जवासा ये १० औषधियां १-१ तोला लेवें।

विधि-प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला के मर्दन कर एक जीव करें। फिर पेठे का रस, तृणपञ्चमूल (कुश, काश, शर, दर्भ और ईख) का क्वाथ और छोटे गोखरू के क्वाथ में क्रम पूर्वक ३-३ रोज मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। *(भै.र.)*

मात्रा-१-१ गोली, प्रातःकाल शहद, उशीरासव अथवा पके हुए गूलर के फलों के चूर्ण और शहद के साथ।

उपयोग-इस तारकेश्वर रस का उपयोग आचार्यों ने सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों पर लिखा है। नूतन और जीर्ण दोनों अवस्थाओं में यह रस प्रयुक्त होता है। यदि जीर्णावस्था में जिन रोगियों का वृक्क-अश्मरी आदि हेतु से योग्य कार्य नहीं करता हो, उन रोगियों को पाण्डुता, निद्रानाश, मानसिक निर्बलता, हृदय-विकृति, अग्निमान्द्य, चक्कर आना और मलावरोध आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसे बढ़े हुए रोग में संयम सह योग्य अनुपान के साथ इस रस का सेवन कराया जाये, तो रोग का दमन हो जाता है।

विवेचन-यह रस हृदय और श्वसन संस्थान के लिए पौष्टिक है। हृदयावरोध, हृदय की धड़कन, निस्तेजता, चलने फिरने से थकावट

होना एवं चक्कर आना, किसी कार्य में मन नहीं लगना आदि पर यह रस हितकारक है तथा शुक्रक्षयजन्य हृदय की निर्बलता को भी दूर कर हृदय को पुष्ट बनाता है।

सूचना-(१) यदि मद्यपान या धूम्रपान का व्यसन हो, तो त्याग देना चाहिये। यकृत् निर्बल हो तो घृत, तैल, शक्कर, चावल और खटाई का सेवन कम करना चाहिये। पहले सुजाक हो गया हो तो पूयमेहघ्न चिकित्सा भी साथ साथ करनी चाहिये। रक्त में मूत्र विष का संचय अधिक हो गया हो तो स्वेद लाकर विष को बाहर निकाल देना चाहिये।

(२) इस पर बकरी का दूध और ईख पथ्य है। यकृत् सबल है तो शक्कर भी पथ्य मानी जाती है।

४. गोक्षुरादि घृत।

द्रव्य एवं विधि-गोखरू, एरण्ड की जड़, कुश, कास, शर, दर्भ, ईख, शतावरी और कसेरू इन ९ औषधियों का स्वरस (अभाव में क्वाथ) २-२ सेर और गोघृत १ सेर मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। घृतावशेष रहने पर छान लेवें। फिर कांच के या कलईदार बर्तन में भरकर रख देवें।

मात्रा-१-१ तोला, सुबह शाम शहद या मिश्री मिले दूध के साथ।

उपयोग-यह गोक्षुरादि घृत मूत्रकृच्छ्र व मूत्रमार्ग की रुकावट के कारण से बार-बार पेशाब आता हो, मूत्राघात, बहुमूत्र, मूत्रातिसार और २० प्रकार के प्रमेह, बद्धकोष्ठ और निर्बलता आदि में अच्छा लाभदायक है। गोक्षुरादि घृत मूत्र-संस्थान को सबल बनाता है। मूत्र मार्ग में उपस्थित प्रतिबन्ध को दूर करता है। यदि पित्तोत्पत्ति की रचना दूषित होने से अश्मरी कणों का निर्माण होता हो, तो उस पर भी लाभ पहुँचाता है। इस घृत का उपयोग विशेषत: वातज, पित्तज, वातपित्तज और अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र पर होता है। नूतन रोग में इस घृत का सेवन सहायक औषधि रूप से भोजन के साथ और जीर्ण रोगों में मुख्य औषधि रूप से करया जाता है। आवश्यकतानुसार तारकेश्वर रस, वरुणाद्य लोह या अन्य औषधि का साथ-साथ सेवन कराने पर शीघ्र लाभ मिलता है।

५. शतावरी घृत (मूत्रकृच्छ्र)।

द्रव्य व विधि-शतावरी, काश, कुश, गोखरू, विदारीकन्द, ईख के मूल; आँवला इन ७ औषधियों को समभाग मिला के जल के साथ पीसकर कल्क करें। फिर कल्क ४ सेर, गोघृत १६ सेर और जल ८० सेर (या शतावरी आदि औषधियों का क्वाथ) मिलाकर मन्दाग्नि द्वारा घृत सिद्ध करें। फिर तुरन्त कड़ाही को उतार कर घृत को छान लेवें और कांच, चीनी मिट्टी या कलईदार बरतन में भर लेवें।

(*भै.र., वं.से.*)

मात्रा-१-१ तोला, सुबह शाम शहद और मिश्री के साथ देवें।

उपयोग-यह शतावरी घृत दारुण मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रमेह, स्त्रियों के गर्भाशय विकार, पुरुषों के धातु-संबंधी विकार, रक्तपित्त, रक्तस्राव और सोम रोग को दूर करता है और शरीर को पुष्ट बनाता है।

विवेचन-मूत्राशय अथवा मूत्र प्रसेक-नलिका में विकृति होने या मूत्र मार्ग में अश्मरी आदि प्रतिबन्ध होने पर मूत्रकृच्छ्र की उत्पत्ति होती है। इस रोग में मूत्रोत्पत्ति नियमित होती रहती है। किन्तु मूत्राघात में नहीं होती। यह दोनों विकारों में भेद है। इस विकार में मूत्र कष्ट से उतरता रहता है और रोगी को बार-बार पेशाब करने जाना पड़ता है। इस मूत्रकृच्छ्र रोग में वातज, पित्तज, कफज आदि प्रकार हैं। इनमें पित्तज प्रकोप होने पर शीत वीर्य उपचार किया जाता है। यह घृत शीत वीर्य है; अत: पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र पर अधिक लाभ पहुँचाता है। बहुधा आमाशय के पित्त की उग्रता का दमन होने और मूत्राशय पर शामक असर पहुंचाने पर मूत्रकृच्छ्र का शमन होता है अत: इस घृत के साथ मूत्रदाहान्तक चूर्ण मिला दिया जाये, तो लाभ सत्वर होता है।

मूत्रकृच्छ्र रोग में घृत की अपेक्षा क्वाथ का प्रयोग अधिक होता है। क्वाथ से शीघ्र लाभ पहुँचता है। फिर भी अति निर्बल और शुष्क देह वाले अनेक उपद्रव युक्त जीर्ण रोगियों और वयोवृद्धों को क्वाथ की अपेक्षा घृत अधिक अनुकूल रहता है। ऐसा कतिपय रोगियों में अनुभव हुआ है। अनेक रोगियों को घृत का सेवन भोजन के साथ कराने पर मूत्रकृच्छ्र का कष्ट कम होता है।

वृद्धावस्था आने पर कितनेक मनुष्यों की पौरुषग्रन्थि (Prostate Gland) बढ़ जाती है। उनको बार-बार मूत्र त्याग होता रहता है। वृद्धावस्था के हेतु से शल्य चिकित्सा भी नहीं करा सकते। उनको इस घृत का सेवन कराने पर शनै: शनै: लाभ पहुँचता है।

इस घृत में शतावरी, गोखरू और विदारीकन्द इन शुक्रवर्द्धक औषधियों का संमिश्रण होने से यह शुक्रमेह पर भी लाभदायक है। वीर्य की उष्णता और पतलापन पर तथा वीर्य स्वप्न दोष द्वारा बार बार निकलता हो, ऐसे शुक्रमेह और उससे उत्पन्न विकारों में इस घृत से अच्छा लाभ होते देखा गया है।

सूचना-मूत्रकृच्छ्र रोग की उत्पत्ति में अति मद्यपान, अति धूम्रपान, घृतजन्य अपचन होने पर दिनों तक घृत का अधिक सेवन करना, तीक्ष्ण वीर्य औषधि का सेवन और अश्मरी-कण आदि की उत्पत्ति हेतु है। यदि मूल कारण शराब, तमाखू या अधिक घृत सेवन आदि हों, तो उन्हें आग्रहपूर्वक छोड़ देना चाहिये अन्यथा अति हितावह औषधि भी कार्य नहीं कर सकेगी।

जिनको मूत्रकृच्छ्र की उत्पत्ति अपचन में घृत सेवन के हेतु से हुई हो और जिन रोगियों के यकृत् का पित्तस्राव बहुम कम होता हो, उनको शतावर्यादि घृत के स्थान पर शतावर्यादि क्वाथ अधिक अनुकूल रहता है भोजन में घृत, तैल, शक्कर और चावल का सेवन कम करा देना चाहिये।

शतावरी घृत शीतवीर्य होने से रक्तपित्त, नासा-रक्तस्राव, रक्तमूत्र, गर्भाशय में उग्रता पहुँचाने से उत्पन्न श्वेत प्रदर आदि पर हितावह है।

६. मूत्रकृच्छ्रान्तक योग।

(१) मकई के रेशे १ तोले का ३२ तोले जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर इसे छानकर ३ भाग करके २-२ घण्टे पर १-१ भाग देने से रुका हुआ पेशाब साफ आ जाता है। मूत्रकृचछ्, अश्मरी, वातश्लेष्म ज्वर और जलोदर रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। ज्वरावस्था में इसके प्रयोग से पेशाब होकर उदर नरम हो जाता है। और ज्वर का भी शमन हो जाता है।

(२) बैंत की लकड़ी को जल या चावलों के धोवन के साथ ६ माशे घिसकर पिलाने से पेशाब साफ आ जाता है। अथवा ६ इञ्च बेंत के टुकड़े के एक भाग को जला के बीड़ी के समान धुआँ पिलाने से पेशाब तुरन्त उतरने लग जाता है।

(३) ज्वाद (खट्टासी) १ रत्ती, केशर १ रत्ती और छोटी इलायची के दाने २ रत्ती मिलाकर जल के साथ देने से दाहसह मूत्रावरोध दूर हो जाता है।

(२६) अश्मरी।

१. सर्वतोभद्रा वटी।

द्रव्य-सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गन्धक और सुवर्णमाक्षिक भस्म इन ७ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर ३ दिन वरणा की छाल के क्वाथ में मर्दनकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (*र.यो.सा.*)

मात्रा-१-१ गोली, वरणा के क्वाथ या वीरतर्वादि क्वाथ (रसतन्त्रसार) प्रथम खण्ड लिखित के साथ देवें। तीव्र शूल के समय दो-दो घण्टे पर ३ बार देवें। अन्य दिनों में दिन में २ या ३ बार १ मास तक देते रहें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से वृक्क और बस्ति में विद्यमान अश्मरी टूट-टूटकर निकल जाती है। वृक्कशूल और बस्तिशूल नष्ट होते हैं एवं वीर्य की वृद्धि होती है।

सूचना-यदि इस वटी में डाली जाने वाली सुवर्ण भस्म को कलमी सोरा और कांटेदार चौलाई के साथ बनाई हो तथा अभ्रक भस्म में कलमीशोरा मिले हुए बथुए के स्वरस की १० भावनायें दी हों और अनुपान वरणा छाल और तृण पञ्चमूल के क्वाथ का हो, तो यह वटी विशेष लाभ पहुँचाती है।

२. पाषाणभेदी रस।

द्रव्य व विधि-शुद्ध पारद १० तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लेके कज्जली करें। फिर इसे श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, वासा और सफेद कोयल (गोकर्णी) के स्वरस में ३-३ दिन खरलकर एक गोला (पेड़ा बना लेवें।) पश्चात् इसे शराव सम्पुट में रखकर भाण्डपुट देवें। अर्थात् एक बड़ी हांडी में चारों ओर छोटे-छोटे छिद्रक तुष (धानकी भूसी) भर, उसके बीच शराव सम्पुट को रखकर अग्नि देवें। स्वांगशीतल होने पर निकाल लेवें। (र.र.स.)

मात्रा-२ से ४ रत्ती तक प्रातःकाल एक समय देवें। ऊपर गोपाल ककड़ी (पपैया-पपीता) की जड़ का चूर्ण १ तोला खिलाकर १०-२० तोले कुलथी का यूष पिलावें। शाम को गोखरू और गम्भारी की जड़ की छाल का क्वाथ पिलाते रहें अथवा दोनों समय पपीता और कुलथी का यूष देते रहें।

उपयोग-यह प्रयोग अश्मरी-नाशक है। इस रसायन का सेवन पथ्यसह धैर्यपूर्वक १-२ मास तक करने से वृक्क और मूत्राशय की असाध्य पथरी भी टूट-टूटकर निकल जाती है। कभी अश्मरी के बड़े अणु टूटकर निकलने पर भयंकर शूल चलता है। उस दिन शूल के समय भी इस रसायन का सेवन गोपाल कर्कटी मूल के साथ करना चाहिये एवं शूल स्थान पर हींग को जल में मिला के निवाया कर लेप करना चाहिये। मूल ग्रन्थकार लिखते हैं कि, इस रसायन का ३-६ माशे गोखरू के चूर्ण के साथ देकर ऊपर भेड़ का दूध पिलाते रहें, तो पथरी कट-कटकर निकलजाती है।

जिन रोगियों को रात्रि में बार-बार पेशाब के लिये उठना पड़ता हो, उनको रात्रि में गोखरू चूर्ण के साथ इस रसायन का सेवन कराने में बाधा नहीं है। बार-बार निद्रा भंग होती हो, तो यह रस एक ही समय देना चाहिये।

३. वृक्कशूलान्तक वटी।

द्रव्य–कालानमक, सज्जीखार, नौसादर, यवक्षार, सोहागे का फूला, हींग, अकरकरा और पीपरमेण्ट के फूल इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि–पीपरमेण्ट को छोड़ शेष औषधियों को कपड़छन चूर्ण करें। फिर घीकुंवार के रस में खरल करें। अच्छी तरह पिसाई होने पर पीपरमेंट मिला के ५-१० मिनट खरलकर १-१ माशे की गोलियाँ बनावें और गीली-गीली गोलियों को बोतल में सोडा बाई कार्ब के भीतर डालते जाने से बोतल में सोडा लगने से सूख जाती है। *(श्री. पं. रामगोपालजी रावत)*

मात्रा–१-१ गोली, जल के साथ दिन में २ बार।

उपयोग–यह वृक्कशूलान्तमक वटी वृक्कशूल को तुरन्त शान्त करती है और वृक्क में रही अश्मरी को तोड़ तोड़कर १ सप्ताह में निकाल देती है। आमाशय की अश्मरी को भी निकाल देती है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है। ऑपरेशन कराने की इच्छावाले अनेक रोगियों के इस वटी के सेवन से रोगमुक्त होने के उदाहरण मिले हैं।

सूचना–तमाखू के व्यसनी को चाहिये कि तमाखू छोड़ देवें या हो सके उतनी कम कर देवें।

४. एलादि चूर्ण (अश्मरी)।

द्रव्य–छोटी इलायची के दाने, पाषाण भेद, शुद्ध शिलाजीत और पीपल चारों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर चूर्ण करें। *(च.द.)*

मात्रा–१॥ माशा, १ रत्ती केशर मिलाकर चावलों के धोवन या कुलथी के यूष के साथ देवें। तीव्र दर्द होने पर गुड़ के जल के साथ २-२ घण्टे पर देते रहें।

उपयोग–यह एलादि चूर्ण वृक्कस्थान और मूत्राशय में रही हुई अश्मरी का भेदन कर निकाल देता है। अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में भी यह दिया जाता है।

सूचना–रोगी को पीने के लिये कुसुम्भ के बीज ५ तोले और शक्कर १० तोले को २ सेर शीतल जल में मिला लेवें। फिर उसमें से थोड़ा-थोड़ा जल आवश्यकतानुसार पिलाते रहें।

५. बृहद् वरुणादि क्वाथ।

द्रव्य–वरना की छाल, सोंठ, गोखरू, मूसली और कुथली १-१ तोला तथा कुशादि पंचतृण मूल ५ तोले लें।

विधि–सबको मिलाके जौकूट चूर्ण करें। *(भै.र.)*

मात्रा–इस चूर्ण में से ६ तोले को ९६ तोले जल में उबालकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर ३ हिस्से करके श्वेत पर्पटी या जवाखार १, २ या ३ बार २-२ घण्टे पर पिलावें।

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से वृक्क स्थान का भयंकर शूल और उस हेतु से उत्पन्न वमन आदि उपद्रव, मूत्रकृच्छ्र, लिंगशूल, बस्तिशूल आदि दूर हो जाते हैं।

६. अश्मरीहर कषाय।

द्रव्य–पाषाणभेद, सागौन के फल, पपीते (एरण्ड ककड़ी) की जड़, शतावर, गोखरू, वरना की छाल, कुश के मूल, कास के मूल, चावल-धान के मूल, पुनर्नवा, गिलोय, चिचड़े के मूल, (गु. पंडोलानां मूल) और खीराककड़ी के बीज, इन १३ औषधियों को १-१ तोला तथा जटामांसी और खुरासानी अजवायन के बीज (या पान) २-२ तोले लेवें।

विधि–सबको मिलाके जौकूट चूर्ण कर लेवें। *(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा–१ तोले चूर्ण को १६ तोले जल में मिलाके चतुर्थांश क्वाथ कर, छान के उसमें ५ रत्ती शिलाजीत या १० रत्ती क्षार पर्पटी या जवाखार मिलाकर पिला देवें। आवश्यकतानुसार २-२ घण्टे पर दो या तीन बार देवें। इस क्वाथ के साथ मूली के रस से की हुई हजरूलयहूद की भस्म देने से विशेष लाभ होता है।

उपयोग–यह कषाय अश्मरी, शर्करा, कंकड़ी, सिकता (रेती) तथा उससे होने वाले वृक्कशूल और उदरशूल में व्यवहृत होता है।

वक्तव्य–अश्मरी के रोगी को वृक्कशूल तथा मूत्राशय शूल होने पर यवमण्ड (२ तोले जौ को ६४ तोले जल में मिलाके चतुर्थांश जल शेष रहने पर छाना हुआ जल), कच्चे नारियल का जल, ईख का तुरन्त निकाला हुआ रस तथा लौकी, पेठा, ककड़ी, मकोय की पत्ती, पुनर्नवा के पान, कासनी के पान आदि मूत्रल द्रव्यों का शाक एवं कमर तक गरम जल में बैठना (अवगाह स्वेद) आदि हितकारक है।

७. अश्मरीनाशक योग।

(१) नारियल के फूल (सूखे) ३ माशे को चटनी की तरह जल के साथ मिलाकर पीसें। फिर इस चटनी और १ माशे जवाखार या केले के क्षार को २० तोले शीतल जल में मिलाके छानकर पिला देने से वृक्क और बस्ति में विद्यमान अश्मरी कण जल्दी निकलकर तीव्र वेदना और वमन आदि उपद्रवों का शमन हो जाता है। *(भै.र.)*

सूचना-नारियल के वृक्ष के मस्तक में चारों ओर लम्बी-लम्बी जेल निकलती है। उसमें दो प्रकार के फूल लगते हैं। स्त्री पुष्प और पुंपुष्प। स्त्री पुष्प आकार में बड़े होते है और वे ही फलरूप बन जाते हैं। पुंपुष्प अनेक लगते हैं। इनकी आकृति धान की खील के समान होती है। ये पुष्प कुछ दिनों में झड़ जाते हैं। ये ही इस प्रयोग में लिये जाते हैं।

(२) पेठे के रस या लाल पक्के कद्दू के १-१ औंस रस में नारिकेल लवण या सेंधानमक ३-३ माशे मिलाकर दिन में २ या ३ बार देते रहने से अश्मरी टूट-टूट कर निकल जाती है तथा मूत्रकृच्छ्र बूंद-बूंद पेशाब टपकना और दाह आदि लक्षण दूर हो जाते हैं। कभी-कभी यह प्रयोग एकाध मास तक चालू रखना पड़ता है।

(३) केले के खम्भे के रस या नारियल के ३-४ औंस जल में सोरा १-१ माशा मिलाकर दिन में २ बार देते रहने से अश्मरीकरण निकल जाते हैं और पेशाब साफ आ जाता है।

(४) चन्द्रप्रभा वटी २-२ रत्ती तथा यवक्षार २-२ रत्ती को प्रातः सायं शहद के साथ देवें। दोपहर को दो बजे और रात्रि को सोते समय नारिकेल पुष्प चूर्ण ३ माशे तथा यवक्षार ६ रत्ती मिलाकर जल के साथ देवें तथा दोनों समय भोजन के बाद चन्दनासव १-१। तोला, नारिकेल लवण ६-६ रत्ती और १।-१। तोला जल मिलाकर देते रहे। *(कविराज उपेन्द्रनाथ दासजी)*

इस व्यवस्था के अनुसार १५ दिन तक औषध सेवन कराने पर वृक्क स्थान और मूत्राशय की पथरी के कण थोड़े दिनों में निकलकर अश्मरी नष्ट हो जाती है। इस औषध प्रयोग से पथरी गलती है, टूटती है तथा सरलता से निकल जाती है। शस्त्र-चिकित्सा के योग्य अनेक रोगियों को इस प्रयोग व्यवस्था द्वारा थोड़े ही दिनों में लाभ होते देखा गया है।

(५) २ रत्ती एलवा को मुनक्का के भीतर रखकर निगल जाने से थोड़े ही समय में वृक्क शूल का शमन हो जाता है।

(६) मकई के भुट्टे की डोंडी और पुरानी सुपारी को चिलम में रखकर धूम्रपान करने से वृक्कशूल की तीव्रता तत्काल निवृत्त हो जाती है।

८. पाषाणभेदादि घृत।

द्रव्य व विधि-पाषाणभेद, बड़े बकुल (मोलसरी) के पुष्प, अपामार्ग का मूल, सिरहटा (अश्मन्तक-मराठी में आपटा), शतावर, ब्राह्मी, अतिबला (कंघी, पेटारी), श्योनाक, खस, केतकी की जटा, वृक्षादनी (बन्दाक), सागोन के फल, छोटी कटेली, रोहिष घास, गोखरू, जव, कुलथ, बेर, वरणा की छाल और निर्मली के फल इन २० औषधियों को १६-१६ तोले लेकर यवकूट कर ८ गुने जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर क्वाथ को छानकर गौ या बकरी के २ सेर घी तथा उषर (रेह मिट्टी), सैंधानमक, शिलाजीत, हींग, लाल कासीस, हरी कासीस और तुत्थक (खपरिया) इन ७ वस्तुओं के ४-४ तोले कल्क में मिलाकर घृत सिद्ध करें। *(अ.हृ.)*

मात्रा-६ माशे से २ तोले तक, भोजन के प्रारम्भ में (दो तीन ग्रास के साथ) दिन में दो बार।

उपयोग-इस घृत के सेवन से वातप्रकोपज अश्मरी, बस्ति स्थान में शूल, पेशाब में रेती जाना आदि विकार १-२ मास में दूर हो जाते हैं। रोग अति पुराना होने पर और अश्मरी अति कठोर अथवा सुपारी से बड़ी होने पर औषधि का सत्वर प्रभाव नहीं हो सकता।

सूचना-इस घृत के सेवन काल में हजरूल यहूदादि चूर्ण या हजरूल-यहूद की पिष्टी, शिलाजीत और कलमीसोरा ६-६ रत्ती प्रातः सायं देते रहना चाहिये तथा भोजन में द्विदल धान्य बिल्कुल नहीं देना चाहिये।

भोजन में कुसुम्भ, पुनर्नवा, चौलाई, ककड़ी, मूली इनमें से किसी का शाक दिया जाये तो विशेष हितकारक है। तीव्र प्रकोप में केवल दूध पर रखना चाहिये।

प्रमेह

१. चन्द्रकला वटी।

द्रव्य व विधि-छोटी इलायची के दाने, कपूर, शिलाजीत, आंवला, जायफल, केशर, मोचरस, रससिन्दूर, वंग भस्म और लोहभस्म इन १० औषधियों को समभाग में मिला के गिलोय स्वरस और सेमल की छाल के क्वाथ से ३-३ दिन तक खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(*आ.सं.*)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार शहद के साथ देवें। ऊपर से शुद्ध पानी या त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा इन ६ द्रव्यों का क्वाथ पिलावें।

उपयोग-यह रसायन सब प्रकार के प्रमेहों पर लाभदायक है। यह विशेषत: शुक्रमेह या स्वप्नदोष पर व्यवहृत होता है।

२. प्रमेहान्तक रस।

द्रव्य-वंगभस्म, शतपुटी नागभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोहभस्म, रससिंदूर, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला और यशदभस्म इन १२ औषधियों को १-१ तोले लें।

विधि-सबको खरल में महीन पीसकर हंसराज के रस में ३ दिन खरल कर सुखावें। फिर आतशी शीशी में भरके बालुका यन्त्र में रखकर ६ घण्टे अग्नि देने से औषध पक कर एक पिण्ड बन जायेगा। उसे स्वांग शीतल होने पर निकालकर पीस लेवें।

प्रक्षेप द्रव्य-पश्चात् उसमें कपूर, केशर, दालचीनी, नागकेशर, तेजपात, छोटी इलायची के दाने, सफेद चन्दन, जायफल, जावित्री इन ९ औषधियों के चूर्ण को समभाग मिलाके मर्दन कर मिश्रण बना लेवें। फिर कंदूरी के पान (बिम्बीपत्र) के स्वरस में ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखा लेवें।

(*र.यो.सा.*)

मात्रा-१ से २ गोली तक शहद तथा त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी और नागरमोथा इन ६ औषधियों के क्वाथ के साथ अथवा मक्खन मिश्री के साथ सेवन करें।

उपयोग-इस रसायन से सब प्रकार के पुराने प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। रोगानुसार अनुपान के साथ इस रसायन का सेवन कराने से सब रोगों को यह दूर करता है। शरीर पुष्ट होता है। बल की वृद्धि होती है। कान्ति दिव्य होती है। बिम्बी पत्र के रस की भावना देने से मधु (शक्कर) के ह्रास कराने के गुण की वृद्धि होती है। इस हेतु से मधुमेह और इक्षुमेह पर भी यह सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है।

३. विलासिनीवल्लभ रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ तोला तथा धतूरे के शुद्ध बीज २ तोले लें।

विधि-सबको मिला के खरलकर पाताल यन्त्र से निकाले हुए धतूरे के फलों के रस (तैल) के साथ ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

(*र.चं.*)

वक्तव्य-रसयोग सागर, रसचण्डांशु और भैषज्य रत्नावली ग्रन्थ में इस रसायन का नाम कामिनीमदविधूनन रस रखा है। इस तरह इस रसायन को कामिनीदर्पघ्न और कामदेव रस इन नामों से भी पुकारा जाता है।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार दूध या शक्कर के शर्बत के साथ देवें।

उपयोग-इस रस के सेवन से जीर्ण प्रमेह रोग, पेशाब में वीर्य जाना, स्वप्नदोष और शीघ्र पतन आदि दूर होते हैं। वीर्य और स्तम्भन शक्ति की वृद्धि होती है।

सूचना-अति शुष्क देहवालों को एवं अति मन्द अग्निवालों को यह रसायन नहीं देना चाहिये। धतूरा आमाशय आदि के स्राव को कम कराता है, जिससे पचन-क्रिया अधिक मन्द हो जाती है।

४. बृहत् हरिशंकर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सुवर्णभस्म, वंगभस्म और सुवर्णमाक्षिकभस्म इन ६ औषधियों को समभाग लें।

विधि-प्रथम कज्जली कर आँवले के स्वरस में ७ दिन तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। (*र.सा.सं.*)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ समय दें। अनुपान आँवलों का रस, गिलोय का स्वरस, त्रिफला और शहद, हल्दी और मिश्री या मिश्री और शहद अथवा रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ दें।

उपयोग-यह रसायन कफज, पित्तज और वातज, सब प्रकार के प्रमेहों को नि:सन्देह नष्ट करता है। पचन क्रिया बढ़ाता है। शुक्र को गाढ़ा करता है तथा शरीर को निरोग और पुष्ट बनाता है।

५. प्रमेहकुञ्जर केशरी।

द्रव्य–सुवर्णभस्म १ तोला, यशदभस्म २ तोले, लोहभस्म ३ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले तथा वंगभस्म, रससिंदूर और अमृतासत्व ५-५ तोले लें।

विधि–सबको मिलाके सफेद मूसली के क्वाथ, केले के खम्भे के रस, सेमल की छाल के क्वाथ और गोखरू के क्वाथ, इन सबकी ३-३ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २-३ बार शहद के साथ देवें। फिर ऊपर आँवले और गोखरू का क्वाथ कर पिलावें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से २ मास में सब प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं। रात्रि में सोने के समय हरड़ के क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाते रहना चाहिये और पथ्य का पालन करना चाहिये। अति जीर्ण प्रमेह रोग को भी यह रसायन जड़ मूल से नष्ट कर देता है। सब प्रमेहों पर लाभ पहुँचाता है।

अश्मरी में इस रसायन के सेवन के साथ बिजौरे की जड़ गरम करके शीतल किये हुए जल में घिसकर पिलाते रहे एवं इस रसायन को मूत्रकृच्छ्र तथा गर्भिणी के शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अतिसार में बायविडंग और पाषाणभेद के चूर्ण के साथ देवें।

सूचना–इस रस में उपरोक्त विधि से गिलोय और लोध की भी भावना देने पर प्रमेह के लिये बहुत गुणकारी हो जाता है।

६. मेहमुद्गर रस।

द्रव्य–रसोंत, बिडनमक, देवदारु, बेलगिरी, गोखरू, अनार की छाल, चिरायता, पीपलामूल, सोंठ कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला और निसोंत इन १५ औषधियों को १-१ तोले, लोहभस्म १५ तोले और शुद्ध गूगल ४ तोले लें।

विधि–गूगल को छोड़ शेष काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। गूगल में घी मिलाकर कूटें। फिर उसमें कूट-कूटकर भस्म और चूर्ण सब मिलाके २-२ रत्ती की गोलियां बना देवें। यदि आंवला और गोखरू को समभाग में लेके क्वाथ कर ३ भावनायें देकर गोलियाँ बाँधे तो विशेष लाभ पहुँचाता है। (र.चं.)

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में दो बार बकरी के दूध से या त्रिफला, दारुहल्दी, देवदारु और नागरमोथे के क्वाथ से देवें।

उपयोग–यह रसायन २० प्रकार के प्रमेह, हलीमक, अश्मरी, कामला, पाण्डु, मूत्राघात, अरुचि, अर्श, व्रण, कुष्ठ, वातरक्त और भगन्दर आदि रोगों को दूर करता है। प्रमेह रोग वाले को पाण्डु और अर्श विकार हो, तब यह रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

७. मधुमेहहर योग।

द्रव्य–शुद्ध अफीम १॥ तोला तथा धतूरे के शुद्ध बीज, अभ्रकभस्म और मकरध्वज ६-६ माशे लें।

विधि–सबको मिलाकर खरल करें।

मात्रा–इसमें से आध-आध रत्ती दिन में दो बार गोदुग्ध या गुडमार के अर्क के साथ सेवन कराते रहने से मधुमेह दूर हो जाता है।

सूचना–यदि इसकी गोलियाँ बनाना हों, तो धतूरे के रस में ३ दिन खरल करके आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बना लेने से विशेष लाभ पहुँचता है।

८. मधुमेहदर्पहारी।

द्रव्य व विधि–अफीम और शुद्ध शिलाजीत को सम प्रमाण में मिलाके अदरक के रस की २१ भावनायें देकर, आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(औ.गु.ध.शा.)*

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार गुड़मार के अर्क, धारोष्ण गोदुग्ध या जल के साथ देवें।

गुड़मार अर्क–गुड़मार ६० तोले, जटामाँसी १० तोले और नागरमोथा १० तोले लेके यवकूट कर ८ सेर जल में रात्रि को भिगो दें। फिर दूसरे दिन आधा या पौन अर्क खींच लेवें।

उपयोग–यह रस मधुमेह पर तत्काल लाभ पहुँचाता है। अफीम और शिलाजीत के संयोग से इक्षुमेह में उत्तम लाभ पहुँचता है। अफीम तिक्तरस प्रधान और वातशामक औषधि है तथा वह स्तम्भक, प्रारम्भ में उत्तेजक, फिर अवसादक या ग्लानि उत्पादक, वेदनाशामक, मदोत्पादक, निद्राप्रद, वाजीकरण स्वेदोत्पादक, शोथघ्न और श्लेष्मनाशक है। अफीम का रासायनिक पृथक्करण करने पर उसमें से मार्फिन (Morphine), कोडिन (codeien), एपोमार्फिन और नार्कोटिन (Narcotine) आदि विविध प्रभावशाली द्रव्य मिलते हैं, किन्तु अफीम को जैसी की वैसी ही उपयोग में लेनी, इस दृष्टि से आयुर्वेदीय कल्प सुविधाजनक है। विशेष विचार करने पर अफीम विचित्र गुणसमूहयुक्त औषधि है।

इस औषध में शिलाजीत है, अतः यह दोषघ्न व रसायन है तथा धातु परिपोषण क्रम को व्यवस्थित करती है एवं इसमें अदरक की भावना देने से पाचकाग्नि और धातुओं से संबंध वाली अग्नि को बढ़ाने का कार्य सम्यक् प्रकार से होता है। जिससे स्वेद अधिक आता है।

विवेचन-मधुमेहदर्पहारी का कार्य इक्षुमेह और मधुमेह, इन दोनों में मूत्र के साथ जाने वाली शक्कर को कम करने का है। यह कार्य अफीम और शिलाजीत के संयोग से उत्तम प्रकार से होता है। मधुमेह में मधु नियमन डॉक्टरी मतानुसार इन्सुलिन (Insulin) नामक द्रव्य से होता है, किन्तु इसकी अपेक्षा भी मधु-नियमन अत्यधिक परिमाण में इस रस द्वारा होता है। अधिक बार और और अधिक मात्रा में पेशाब होने पर ही इस औषध का उत्तम उपयोग होता है। मधुमेह रोग दीर्घकाल का हो जोने पर, उसी हेतु से प्रमेह पिटिका उत्पन्न होने पर इस औषध को अधिक मात्रा में प्रयुक्त करनी चाहिये। अशक्ति, बार-बार पेशाब होना, पेशाब अधिक उतरना, शारीरिक और मानसिक उत्साह का क्षय, अंगों में कुछ वेदना बनी रहना, जलपान की इच्छा अधिक रहना आदि लक्षण होने पर मधुमेह दर्पहारी का अवश्य प्रयोग करना चाहिये। इससे मन प्रसन्न रहता है और उत्साह बढ़ने लगता है; परन्तु इस बात को लक्ष्य में रखना चाहिये कि इसमें अफीम होने से पहले उत्तेजना बढ़ती है फिर कुछ समय के पश्चात् अवसादकता आने लगती है। उस समय शरीर निर्बल बन जाता है। अतः कम मात्रा में ही इसका प्रयोग करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि, इसका व्यसन हो जाने की भीति है।

अधिक मात्रा की आवश्यकता हो तो रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में लिखी हुई मधुमेहनाशक जातिफलादि वटी या महावातराज रस लेना चाहिये। अथवा मधुमेह दर्पहारी के साथ पूर्णचन्द्रोदय का भी सेवन करते रहना चाहिये।

मधुमेह दर्पहारी देने पर थोड़े ही दिनों में तृषा का ह्रास होता है। जिससे मूत्र का परिमाण कम हो जाता है और मूत्रत्याग की संख्या का ह्रास हो जाता है। इसके अतिरिक्त मूत्र में से मधु (शक्कर) की मात्रा भी न्यून हो जाती है।

मूत्रातिसार में बहुमूत्र आदि लक्षण होने पर यह मधुमेहदर्पहारी उत्तम कार्य करता है। मधुमेहदर्पहारी देने का प्रारम्भ होने पर कुछ-कुछ प्रस्वेद आने लगता है। जिससे मूत्र द्वारा निकलने वाले विष का कुछ अंश प्रस्वेद द्वारा निकल जाता है। इस हेतु से भी मूत्र में मधु का परिमाण कम भास्ता है।

सहस्रार (मगज) और वातवाहिनियाँ, इन पर इस औषध का कार्य एक विशिष्ट प्रकार का होता है। अर्थात् पहले किञ्चित् उत्तेजना आती है, फिर एक प्रकार की प्रसन्नता और शान्ति का अनुभव होता है। यह शान्ति अफीम रहित औषध से नहीं मिलती। इस हेतु से मधुमेह या इतर प्रमेह में सहसा भीति लगना, छाती में आघात पहुँचने के सदृश भासना, हाथ पैर गल जाना, हाथ पैरों में कम्प होना, कुछ विचार करने का प्रसंग आने पर मानसिक व्याकुलता होना, स्वस्थ निद्रा न मिलना, बीच-बीच में कितनीक बार मानसिक धक्का लगकर जाग-जाना आदि लक्षण होने पर अफीम प्रधान औषधि अति हितावह मानी जाती है।

मधुमेह के जीर्ण हो जाने से या वृद्धावस्था में मधुमेह उत्पन्न हो जाने से बेचैनी, धैर्यनाश और चिन्ता आदि लक्षण होने पर मधुमेहदर्पहारी से उत्तम लाभ पहुँचता है।

क्वचित् किसी विलक्षण आघात के हेतु से मधुमेह हो जाता हैं। जैसे सट्टा या व्यापार में हानि अथवा चोरी, डाका, अग्निप्रकोप आदि से धन नाश हो जाने, कर्ज हो जाने अथवा मानहानि या कीर्तिनाश होने की आपत्ति आने पर मधुमेह हो जाता है। ऐसे मधुमेह पर यह औषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अफीम के गुण दोष-अफीम से अन्तःस्राव कम होता है, किन्तु प्रस्वेद अधिक मात्रा में आने लगता है तथा स्तन्य (दूध) की मात्रा भी कम नहीं होती। श्लेष्मल त्वचा शुष्क हो जाती है। आमाशय का रसस्राव कम हो जाने से अन्त्र का स्राव भी कम हो जाता है। क्षुधा कम हो जाती है। पचन विकृति होती है। हृदय की क्रिया सुधरती है। धमनियों में रक्तवहन उत्तम प्रकार से होता है। प्रारम्भ में आध पौन घण्टे के लिये नाड़ी का दबाव (Tension) बढ़ता है। जिससे नाड़ी सबल भासती है। फिर क्षीण हो जाती है। मगज में तरी आती है। मन शान्त बनता है। अधिक मात्रा सेवन करने पर नशा आ जाता है। निद्रा स्वस्थ आती है, किन्तु इससे अच्छा लगेगा, ऐसा नहीं होता। कण्ठ सुन्न हो जाता है। दर्द होने लगता है। थकावट आ जाती है। मानसिक बेचैनी सी भासती है। पचन शक्ति का ह्रास हो जाता है। तथा मलावरोध हो जाता है। अफीम के ये सब गुण धर्म इस स्थान पर विस्तार से लिखने का कारण यह है कि इसमें विद्यमान दोषों को लक्ष्य में रखकर औषध योजना करनी चाहिये।

सूचना-जिन रोगियों को कब्ज अधिक रहती हो, उनको यह औषधि नहीं देनी चाहिये एवं इस औषध की ज्यादा मात्रा भी नहीं देनी चाहिये।

(औ.गु.शा. के आधार से)

जिसके रूधिर में शक्कर अधिक बढ़ गई हो, मूत्र की मात्रा पहले से ही न्यून हो, उस रोगी को यह औषधि न दी जाये तो अच्छा।

९. शिलाजत्वादि वटी।

द्रव्य (प्रथम विधि)-शुद्ध शिलाजीत ५ तोले, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म, वंगभस्म १-१ तोला तथा अम्बर ६ माशे लें।

विधि–सबको मिलाके त्रिजात के क्वाथ में ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१-१ गोली, रात्रि को कपूर १/२ रत्ती और खुरासानी अजवायन ४ रत्ती के साथ देवें। ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग–यह वटी शुक्रस्राव और स्वप्नदोष को दूर करती है। पेशाब में धातु जाती हो, उसे रोक देती है। हृदय को सबल बनाती है। स्मरण शक्ति को बढ़ाती है। पाण्डु, कफवृद्धि, स्वप्नदोष, हृदय निर्बलता, रक्त न्यूनता आदि में लाभ पहुँचाती है।

द्रव्य (दूसरी विधि)–शुद्ध शिलाजीत, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, शुद्ध गूगल और सोहागे का फूला इन सबको समभाग मिलाकर काले भांगरे के रस में ३ दिन तक खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा–१-१ गोली, दिन में दो बार, मीठे जल के तालाब में होने वाली शैवाल के जल के साथ।

उपयोग–यह वटी शुक्रस्राव और स्वप्नदोष के लिये अति हितकारक है। पित्तप्रधान प्रकृति वाले तथा अति स्त्रीसमागम और शराब आदि के सेवन से जिनके शरीर में अधिक उष्णता रहती हो मस्तिष्क निर्बल हो गया हो, स्त्री का दर्शन होते ही शुक्रपात हो जाता हो, शारीरिक कृशता, अग्निमान्द्य, उदर में भारीपन, जीर्ण वातप्रकोप, निद्रा कम आना, मस्तिष्क में उष्णता आदि लक्षण प्रतीत होते हों, उनके लिये यह वटी हितावह है। इस वटी के सेवन से पेशाब में धातु जाना, वीर्य का पतलापन, स्वप्नदोष, स्मरणशक्ति की कमी और हृदय की निर्बलता आदि दूर होकर बल, वीर्य और उत्साह की वृद्धि होती है। जीर्ण रोग में कम मात्रा में शान्तिपूर्वक २-४ मास तक सेवन करना चाहिये।

द्रव्य (तीसरी विधि)–शुद्ध शिलाजीत २० तोले, निम्बपत्रादि सत्व २० तोले, त्रिवंग २॥ तोले और अभ्रक भस्म १॥ तोले लें। शिलाजीत और भस्म को पहले मिलावें। फिर निम्बपत्रादि सत्व मिला के थोड़े जल से खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

निम्बपत्रादि सत्व–नीम के कोमल पान और बेल के पानों को समान वजन में लें। फिर धोकर चटनी की तरह पीसें। पश्चात् कपड़े पर मसलकर छान लें, जो सत्व नीचे निकल आवे, उसे छाया में सुखा लेवें। कितनेक चिकित्सकों ने इसकी २-२ रत्ती की गोलियां बनायी है और "इक्षुमेहारि" संज्ञा दी है।

मात्रा–२ से ३ गोली, दिन में ३ बार गुडमार के अर्क से अथवा सुबह-शाम गोदुग्ध से और दोपहर को जल से।

उपयोग–यह वटी मधुमेह, इक्षुमेह और बहुमूत्र में लाभदायक है। इस वटी के सेवन से मूत्रधारण शक्ति बढ़ जाती है। रक्त में विषोत्पत्ति कम होती है। फिर निर्बलता, श्यामता और उदासीनता शनैः शनैः दूर होकर मुख-मण्डल तेजस्वी और प्रसन्न बन जाता है।

विवेचन–वृद्धावस्था में पौरुष ग्रन्थि (Prostate Gland) प्रायः बढ़ जाती है। अधिक बढ़ने पर मूत्रत्याग में प्रतिबन्ध करती है। ऐसी स्थिति में शिलाजत्वादि वटी देते रहने से मूत्रावरोध दूर होता है।

मधुमेह के रोगियों को चोट लग जाने से या अन्य हेतु से उत्पन्न व्रण जल्दी नहीं भरता। अनेकों के व्रण खूब फैल जाते हैं। फिर मांस सड़ता है, पूय निकलता रहता है और भयंकर दुर्गन्ध आती रहती है। ऐसे व्रणों को भरने और मूलहेतु रूप मधुमेह को दूर करने के लिये यह शिलाजत्वादि वटी अति हितकर है। व्रण वालों को अनुपान रूप से निम्बपत्रादि सत्व १-१ माशा और गौदुग्ध देना चाहिये।

मधुमेह में विष अति बढ़ जाने पर प्रमेहपिटिका (अदीठ Carbuncle) उत्पन्न हो जाती है। यह अति घातक हैं। उसमें से मांस सड़ा हुआ निकालकर बाह्य उपचार करना चाहिये तथा इस शिलाजत्वादि वटी का सेवन निम्बपत्रादि सत्व और लोध्रासव के साथ करना चाहिये। इस तरह १-२ मास तक सेवन कराने पर शक्कर दूर होती है और अदीठ में भी लाभ हो जाता है।

१०. लोह शिलाजतु वटी।

द्रव्य–शुद्ध शिलाजीत ८ तोले, लोह भस्म २ तोले, अभ्रक भस्म १ तोला, वंग भस्म १/२ तोला लें।

विधि–तीनों भस्मों को खरल में मिलाकर शुद्ध व आर्द्र शिलाजीत डालकर घोटें। फिर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा–१ से २ रत्ती या १-२ गोली, दिन में २ बार दूध के साथ दें।

उपयोग–इस वटी के प्रतिदिन १-२ माह तक सेवन करने से प्रमेह, शुक्रस्राव, स्वप्नदोष, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य आदि विकार दूर होते हैं।

अति स्त्री संभोग–जन्य अथवा बचपन की कुटेवों के कारण उत्पन्न वीर्य दौर्बल्य एवं इन्द्रिय-शैथिल्य दोष में यह वटी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इस वटी के सेवन-काल में मलावरोध न रहे इस विषय पर पूरा लक्ष्य देना चाहिये। कब्ज बनी रहने पर यह उतना अच्छा लाभ नहीं पहुँचाती।

११. प्रमेहान्तक चूर्ण।

द्रव्य (प्रथम विधि)–तालमखाने ५ तोले, गिलोयसत्व और जायफल २॥-२॥ तोले तथा मिश्री १० तोले लें।

विधि–तालमखाना और जायफल को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। मिश्री का पृथक् चूर्ण करें। फिर सबको मिलाके खरल में मर्दन कर अच्छे डाटवाली शीशी में भर लेवें।

मात्रा–३ माशे से १ तोला, २-२ रत्ती प्रवाल पिष्टी मिलाकर दिन में १ या २ बार गोदुग्ध के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण सब प्रकार के प्रमेह, विशेषतः कफज और पित्तज प्रमेहों में लाभदायक है। यह चूर्ण वृक्कों को शक्ति देता है, रक्त में रहे हुए विष को रूपान्तरित करता है और मूत्र की वृद्धि कराकर शेष रहे दोष को जल्दी निकाल देता है। परिणाम में वृक्क, मूत्राशय और मूत्रनलिका आदि अवयवों की श्लैष्मिककला का प्रदाह दूर होकर मूत्र में वीर्य, श्लेष्मा, पित्त और क्षार जाना बन्द हो जाता है। यह चूर्ण वीर्य को शीतल और गाढ़ा बनाता है तथा मूत्राशय की उष्णता को शान्त करता है। जिससे स्वप्नदोष भी रुक जाता है।

सूचना–इस चूर्ण को मुँह में डालकर ऊपर दूध पीने से चूर्ण तालु में चिपक जाता है। एवं दूध में डालने से दूध चिपचिपा और गाढ़ा हो जाता है। इस हेतु से कितनेक मनुष्य इसे नहीं ले सकते। इस चूर्ण और प्रवाल पिष्टी को मिलाके ५ तोले दूध में डाल के थोड़ा चलाकर तुरन्त पी लेवें। फिर शेष दूध धीरे-धीरे पीवें। इस तरह चूर्ण का सेवन करते रहने से निश्चित लाभ हो जाता है।

पचन क्रिया अच्छी हो तो मात्रा १ तोला ले सकते हैं। वरना ६ माशे या ३ माशे पाचन क्रिया के अनुरूप लेते रहें। शक्ति से अधिक मात्रा लेने पर या दूध पाचन शक्ति से अधिक लेने पर योग्य लाभ नहीं मिलता।

मैदा, शक्कर और गुड़ वाले पदार्थ कम खाने चाहिये। रात्रि को भोजन हल्का और थोड़ा करना चाहिये। तेज खटाई, अधिक मिर्च, गरम चाय, बीड़ी, सिगरेट आदि को छोड़ देना चाहिये।

प्रातःकाल और सायंकाल १-२ मील या अधिक घूमते रहने से जल्दी लाभ पहुँचता है।

द्रव्य-(द्वितीय विधि)–शतावर, कच्चे सिंघाड़े, खैर का गोंद, छोटी इलायची के दाने, गोखरू, बीजकन्द, तालमखाने, मेदा लकड़ी, सेमल का गोंद, पलाश का गोंद, बबूल को गोंद, गिलोयसत्व और काहू के बीज, इन १३ औषधियों को समभाग मिलाकर कूट के कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–४ से ६ माशे, समान मिश्री मिलाकर दिन में बार दूध या जल के साथ सेवन करें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से पित्त प्रकोपज प्रमेह १ मास में नष्ट हो जाता है तथा वृक्क और मूत्राशय सबल बनते हैं। यह चूर्ण रक्त में रहे हुए विष को नियमित रूप से बाहर निकालता रहता है जिससे मूत्रविकार, अग्निमांद्य, आलस्य, साँधे-साँधे में दर्द होना ये सब दूर होते हैं। शरीर में बल-वीर्य की वृद्धि होती है और मुख मण्डल तेजस्वी बन जाता है।

वक्तव्य–प्रमेह रोगी को घूमना, व्यायाम और लघु भोजन का सेवन करना चाहिये।

१२. मधुमेह दमन चूर्ण।

द्रव्य–गुडमार ८ तोले, बिनोले की मींगी ४ तोले, जामुन की गुठलियों की मींगी ४ तोले, सूखे बिल्वपत्र ६ तोले तथा शुष्क निम्बपत्र २ तोले लें।

विधि–सबको कूट पीस-कपड़छन चूर्ण बनाकर शीशी में भर लें।

मात्रा–२ से ३ माशे तक, जल के साथ दिन में २ समय सेवन करें।

उपयोग–इसके सेवन से मधुमेह रोग के कारण उत्पन्न होती रहने वाली शर्करा पर अति शीघ्र काबू हो जाता है, चाहे वह शर्करा केवल मूत्र में ही उत्पन्न हुई हो अथवा उसकी उपस्थिति रक्तान्तर्गत भी हो गई हो। इसके अतिरिक्त यह अग्न्याशय और यकृत् के विकारों को दूरकर मधुमेह का दमन भी करती है।

सूचना–यदि वसन्त कुसुमाकर रस के सहपान रूप से इस चूर्ण का प्रयोग किया जाये तो मधुमेह रोग में निश्चित लाभ होने की आशा है।

१३. बृहच्छतावर्य्यादि चूर्ण।

द्रव्य–शतावर, गोखरू, कौंच के बीज की गिरी, गंगेरन की छाल, खरैंटी की छाल, तालमखाना, सफेद मूसली, उटंगन के बीज, ऊंटकटारे के मूल की छाल, बीजबन्द, समुद्रशोष, कमरकस, सूखा सिंघाड़ा, गिलोयसत्व, सेमल के मूल की छाल और आंवले इन १६ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला के कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–४ से ६ माशे, समान मिश्री मिलाकर दिन में दो बार देवें।

उपयोग-इस चूर्ण का २१ दिन तक सेवन करने से प्रमेह, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष और अधिक शुक्रपात से आई हुई निर्बलता दूर होकर वीर्य शीतल, निरोगी व गाढ़ा बन जाता है।

१४. प्रमेहान्तक कषाय।

द्रव्य-दारुहल्दी, हल्दी, देवदारु, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, रक्तचन्दन, खस, शतावर, जवासा, लोध, पाठा और गोखरू इन १५ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा-४-४ तोले चूर्ण को ६४ तोले जल में भिगोकर चतुर्थांश क्वाथ कर फिर २ हिस्से कर सुबह और रात्रि में ६-६ माशे शहद मिलाकर पिलावें।

उपयोग-यह क्वाथ विविध प्रमेहों पर हितकारक है। यह अकेला या अन्य रसायनों के साथ अनुपान रूप से व्यवहृत होता है।

१५. प्रमेहहर योग।

(१) त्रिफला का कपड़छन चूर्ण आधा तोला और हल्दी (पिसी हुई) १॥ माशे को १ तोले शहद के साथ मिलाकर प्रातःकाल चाट लेवें। इस तरह २-४ मास तक पथ्य-पालनसह सेवन करते रहने से अति जीर्ण प्रमेह रोग भी निवृत्त हो जाता है। साथ-साथ अग्निमांद्य, मलावरोध, रक्तविकार, मेदोवृद्धि और कफप्रकोप आदि सब दूर हो जाते हैं। यह औषधि सामान्य होने पर भी अत्युत्तम है। इस योग से असाध्य माने गये प्रमेह भी दूर किये गये हैं।

(२) वंगभस्म २ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती और हल्दी ४ रत्ती, इन तीनों को मिलाकर ६-६ माशे शहद के साथ दिन में दो बार देते रहें। ऊपर गिलोय का स्वरस ४ तोले और शहद १ तोला मिलाकर पिलाते रहें। इस योग से १ मास में विविध प्रमेहों की निवृत्ति हो जाती है।

(३) आंवला और हल्दी १-१ तोला मिला के एक काँच के ग्लास में २० तोले जल में डालकर रात्रि में भिगो देवें। सुबह औषधि को मसलकर जल को छान लेवें। फिर १ माशा गिलोय सत्व को ६ माशे शहद में मिलाके चाटकर ऊपर वह जल पी लेवें। इस तरह २१ दिन तक प्रयोग करने से प्रमेह रोग दूर हो जाता है।

(४) सूर्यपुटी प्रवाल भस्म, शुक्तिभस्म, वराटिका भस्म और अमृतासत्व ३-३ तोले और सोनागेरू ६ माशे लें। सबको खरलकर अच्छी तरह मिला लेवें। इसमें से २ से ४ रत्ती दवा को शहद और घी के साथ मिलाकर दिन में २ या ३ बार देते रहने और रात्रि को सोने के समय त्रिफला ६ माशे, हल्दी १ माशा और मिश्री ६ माशे मिलाकर शहद या जल के साथ देते रहने से जीर्ण प्रमेह भी १-२ मास में दूर हो जाते हैं।

(४) वंगभस्म और प्रवालपिष्टी १-१ तोला, सुवर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे और जहरमोहरा पिष्टी १ तोल मिलाकर मिश्रण बना लें। इसमें से ४-४ रत्ती दवा को प्रातःसायं मिश्री मिले हुए दूध या च्यवनप्राशावलेह अथवा मोसम्बी के रस और मिश्री के साथ दें। इस योग को थोड़े दिन सेवन कराने पर स्वप्नदोष, पेशाब में जलन, आलस्य, निरुत्साह आदि दोष दूर हो जाते हैं।

(६) १ मन बड़ के पत्तों को जल से धोकर १ मन जल मिलाकर उबालें। पत्ते नरम पड़ने पर उतार के मसलकर जल को छान लेवें। इस जल को अग्नि पर चढ़ाकर रबड़ी जैसा पाक करें। फिर उसमें प्रवालपिष्टी १ तोला, वंशलोचन २ तोले, ईसबगोल की भूसी २ तोले, इमली के फल की गिरी १ तोला और बहुफली ४ तोले का कपड़छन चूर्ण मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(हकीम उत्तमचन्दजी)

उपयोग-२ से ४ गोली दिन में २ बार मिश्री मिले हुए दूध के साथ देते रहने से वीर्य की उष्णता, पेशाब में धातु जाना, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन और मूत्रविकार आदि दोष निवृत्त होकर वीर्य निर्दोष और गाढ़ा बनता है।

(७) सोमल, अफीम और हिंगुल, तीनों को समभाग मिलाकर बड़के दूध से ६ घण्टे तक खरलकर सरसों के समान गोलियाँ बना लेवें। इसमें से दो-दो गोलियाँ दिन में दो बार एक तोला घी या ४ तोले मलाई अथवा २० तोले गोदुग्ध के साथ सेवन करते रहने से १ मास में कफ प्रधान प्रमेह दूर हो जाते हैं एवं वातप्रकोपज विकार पर भी यह औषध अति हितकारक है। उदरवात, संधिवात, वातवाहिनियों की निर्बलता आदि पर भी अच्छा असर पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त शीघ्र पतन और स्वप्नदोष को दूरकर वीर्य को सबल बनाता है और देह को पुष्ट बनाता है। इस रसायन की मात्रा २ से ४ गोली तक धीरे-धीरे बढ़ावें। १५ दिन सेवन करके एक सप्ताह के लिए बन्द कर

दें। फिर सेवन करना प्रारम्भ करें। यदि उष्णता अधिक प्रतीत हो, तो घी और दूध का सेवन बढ़ावें और मात्रा कुछ कम करें। इस रसायन का प्रयोग पित्त प्रधान प्रकृतिवालों को हितकर नहीं है। फिर भी सेवन कराना हो, तो प्रवाल पिष्टी और अमृतासत्व के साथ सेवन कराना चाहिये।

१६. प्रमेहमिहिर तैल।

विधि–सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, कूठ, असगन्ध, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, भांरगी, चव्य, धनिया, इन्द्रजौ, पूतिकरंज के बीज, अगर, तेजपात, हरड़ बहेड़ा, आँवला, नलिका (सुगन्धित द्रव्य, अभाव में खश) नेत्रबाला, खरैंटी, कंघी, मजीठ, धूपसरल, कमल, लोध्र, सौंफ, बच, कालाजीरा, खस, जायफल, वासा और तगर इन ४१ औषधियों को १-१ तोला लेकर कल्क करें। फिर इस कल्क को तिल तैल १२८ तोले, शतावर का रस १२८ तोले, लाख का रस ५१२ तोले, दही का जल ५१२ तोले और दूध १२८ तोले में मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। *(भै.र.)*

लाक्षारस–लाख को ४ गुने जल में मिलाकर गरम करें। जल गरम होने पर दसवां हिस्सा लोध, दसवां हिस्सा सज्जीखार और थोड़े बेर के पत्ते डालने से लाख का रस हो जाता है। अथवा सोहागा मिलाने पर भी रस हो जाता है। फिर इस रस को कपड़े से छानकर तैल में मिलाना चाहिये।

उपयोग–इस प्रमेहमिहिर तैल की मालिश से वातज व्याधियाँ नष्ट होती है। इस तरह मेदोगत, मज्जागत, जीर्ण वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज सब प्रकार के जीर्ण विषम ज्वर निवृत्त होते हैं। यह तैल क्षीणेन्द्रिय व्यक्तियों के लिये और ध्वजभंग (नपुंसकता) में विशेष लाभदायक हैं। एवं दाह, पित्त प्रकोप, प्यास, छर्दि, मुखशोष २० प्रकार के प्रमेह आदि रोग इसके मर्दन से नि:सन्देह नष्ट हो जाते हैं।

१७. श्रेष्ठादि वटी।

द्रव्य–त्रिफला ८ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, हल्दी, गुड़मार, कपूर, वंग-भस्म, निम्बत्वक्, गूगल और आंवला इन ७ औषधियों को २-२ तोले लेवें।

विधि–इन सबको कूट के कपड़छन चूर्णकर गुड़मार पान और गूलर की छाल के क्वाथ की ७-७ भावना देवें।

(स्व. राजवैद्य पं. श्री रामचन्द्र जी)

मात्रा–४ से ८ रत्ती, दिन में दो बार गुड़मार के क्वाथ के साथ।

उपयोग–पित्तज और कफज प्रमेह, मधुमेह और तज्जन्य प्रमेहपिटिका आदि उपद्रवों पर रामबाण है। इसका उपयोग अनेक वर्षों से हम कर रहे हैं।

१८ अभयादि कषाय।

द्रव्य व विधि–हरड़, आंवला, देवदारु, धनिगा, सोंठ, काली मुनक्का, सारिवा, बेलपत्र, कड़वी नाही और पोदीना के पान, इन १० औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–१-१ तोले का क्वाथकर दिन में ३ बार देते रहें।

उपयोग–यह क्वाथ मूल भैषज्यरत्नावली का है। इसमें आवश्यकतानुसार ३ औषधियाँ बढ़ा ली हैं। यह अग्न्याशय (Pancrease) की निर्बलता और विकृति को दूर करता है तथा मधुमेह और इक्षुमेह में मूत्र में जाने वाली शक्कर को थोड़े ही दिनों में कम करता है। शारीरिक निर्बलता बढ़ जाने और ५-७% शक्कर हो जाने पर यह क्वाथ वसन्तकुसुमाकर, नाग भस्म, प्रमेह-गजकेसरी या अन्य औषधियों के साथ अनुपान रूप से व्यवहृत किया जाता है।

(२८) बहुमूत्र।

१. बृहत् सोमनाथ रस।

द्रव्य एवं विधि-हिंगुलोत्थ पारद को पारिभद्र के रस में ७ दिन मर्दन करें। गन्धक को मूषाकानी के रस में ७ बार शुद्ध करें। फिर दोनों को ४-४ तोले लेकर कज्जली करें। उसमें ८ तोले लोहभस्म मिलाकर १ दिन घी कुंवार के रस में खरल करें। फिर अभ्रक भस्म, वंग भस्म, रजत भस्म, शुद्ध खर्पर (यशद भस्म), सुवर्ण माक्षिक भस्म और सुवर्णभस्म इन ६ औषधियों को २-२ तोले मिलाकर १ दिन घीकुंवार के रस में तथा १ दिन मण्डूक पर्णी (हरिद्वार की ब्राह्मी) के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।(*र.सा.सं.*)

मात्रा-१ से २ गोली, शहद, पक्का केला, आँवलों का रस और शहद अथवा बृहद् धात्री घृत के साथ दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग-बृहत् सोमनाथ रस वातज, पित्तज और कफज, सब प्रकार के सोमरोग (पूयवृक्कज मूत्राशय प्रदाह), बहुमूत्र (बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होना), मूत्रातिसार (Polyuria), मूत्रकृच्छ्, दारुण मूत्राघात, मधुमेह, हस्तिमेह, (मूत्रसंग्रह होना फिर त्याग हो जाना) (Enuresis), **इक्षुमेह** (Glycosuria) और लालामेह आदि सब प्रमेहों को दूर करता है। इस रस का विधान मूलग्रन्थकार ने मूत्रसंस्थान के रोगों पर किया है। सोमरोग की उत्पत्ति मूत्राशय प्रदाह (Cystitis) होने पर होती है। मूत्राशय प्रदाह में प्रारम्भ में प्राय: आशुकारी अवस्था होती है। उस समय कष्टप्रद तीव्र सोमरोग, मूत्रकृच्छ्र, बस्ति स्थान में मन्द-मन्द वेदना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर जीर्णावस्था में मूत्रनिग्रह का अभाव, मुखतालु में शोष और अति दुर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग की दोनों अवस्थाओं में यह रस प्रयुक्त होता है। आशुकारी अवस्था में मूत्राशय शोधनार्थ सारिवा फाण्ट या प्रदाह शमनार्थ शामक अनुपान देना चाहिये। चिरकारी अवस्था में सारिवासव और शिलाजतु इस रस के साथ मिला देना, विशेष लाभदायक है।

मूत्राशय प्रदाह में मूत्र धारण शक्ति नष्ट हो जाने से अनिच्छापूर्वक सतत बून्द-बून्द मूत्रस्राव होता रहता हो, साथ में मूत्रदाह, पीलापन और दुर्गन्ध भी हो तो, बृहत् सोमनाथ रस गोखरू और शीतल मिर्च के क्वाथ से (शहद मिलाकर) दिया जाता है। ऐसे रोगियों को भोजन में घृत, तैल आदि पदार्थ कम खाने चाहिये। पूयमेहज तीव्र व्यथा हो, तो कुछ दिन केवल दूध पर ही रखना चाहिये एवं उत्तर बस्ति आदि स्थानिक उपचार भी करना चाहिये।

यह रस यकृत् और अग्न्याशय के लिए शक्तिवर्द्धक होने से इसका उपयोग मधुमेह और इक्षुमेह में शक्कर कम कराने, रक्त आदि धातुगत लीन विष को जलाने और शक्ति संरक्षणार्थ उत्तम होता है। अधिक तृषा लगती हो, उसे यह रस कम करा देता है और मस्तिष्क को भी शान्त बनाता है। मधुमेह के रोगी को पथ्य का आग्रहपूर्वक पालन कराना चाहिये। अनुपान चविकासव।

मधुमेह के अतिरिक्त वातज, पित्तज और कफज, प्रमेहों पर यह रस उपकारक है। प्रमेह रोगों में पथ्य पालन हो, तो ही लाभ पहुँचता है। वातज मेह में अश्वगन्धारिष्ट या दशमूलारिष्ट और शेष मेहों पर लोध्रासव अनुपान रूप से देना चाहिये। पचनक्रिया मन्द होने पर चविकासव दें।

२. सोमनाथ रस।

द्रव्य-लोहभस्म २ तोले, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की छाल; खस, छोटे गोखरू, बायविडंग, जीरा, पाठा, आंवला, अनारदाना, सोहागे का फूला, सफेद चन्दन का बुरादा, शुद्ध गूगल, लोध, साल का बुरादा, अर्जुन की छाल और रसौंत, इन २१ औषधियों को १-१ तोला लेवें।

विधि-प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करके मिलावें। गूगल को बकरी का दूध मिला मिलाकर अच्छी तरह कूटें। शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। फिर कज्जली के साथ लोहभस्म और चूर्ण मिलाकर एक जीव करें। पश्चात् गूगल को बकरी के दूध में मिलाकर १२ घण्टे तक खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (*र.सा.सं.*)

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार सुबह तथा रात्रि में पक्के केले और शहद मिले आंवलों के रस या लोध्रासव के साथ देवें।

उपयोग-सोमनाथ रस सोमरोग, दारुण प्रदर रोग, त्रिदोषज योनिशूल, मेढ्रशूल और बहुमूत्र आदि जननसंस्थान और मूत्रसंस्थान के रोगों को दूर करता है।

विवेचन-सोमरोग मूत्रसंस्थान का और प्रदर प्रजनन संस्थान का रोग है। सोमका मूल मूत्राशय में और प्रदरका मूल गर्भाशय, बीजाशय अथवा भग-प्रणालिका में होता है। सोमरोग के प्रारम्भ में बहुधा मूत्राशय प्रदाह होता है। उस समय मूत्राशय में दाह, मूत्रमार्ग में वेदना और कष्टसह मूत्रत्याग, ये लक्षण होते हैं। फिर रोग जीर्ण होने पर जलसदृश स्राव होता रहता है। वेदना प्राय: नहीं होती, मूत्रधारण शक्ति का ह्रास हो जाता है और रुग्णा शनै: शनै: निर्बल और दीन हो जाती है। इस चिरकारी अवस्था में इस रस का प्रयोग होता है।

श्वेतप्रदर रोग जीर्ण बनने पर स्राव अधिक गाढ़ा, सफेद, चिपचिपा तथा जल के समान गिरता रहता है फिर रोग दृढ बनने से रुग्णा अधिक निर्बल बन जाती है। उस अवस्था में भी सोमनाथ रस को दार्व्याद्य क्वाथ के साथ देते रहने से एकाध मास में लाभ हो जाता है।

हस्तिमेह की संप्राप्ति का कारण मूत्राशय की वातनाड़ियों का विकृत होना माना जाता है। इस रोग में मूत्राशय में मूत्र संग्रह होता है। फिर जाग्रत या स्वप्न में स्वयमेव असावधानी में ही निकल जाता है। मूत्र में कुछ लसीका (Albumin) भी जाती है। इस रोग पर सोमनाथ रस का सेवन एक दो मास तक कराने पर लाभ पहुँच जाता है।

३. वैक्रान्त वसन्तकुसुमाकर।

द्रव्य-वैक्रान्त भस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म, अभ्रकभस्म, मुक्तापिष्टी और प्रवाल पिष्टी २-२ तोले, वंगभस्म ३ तोले और रससिन्दूर ४ तोले लेवें।

विधि-सबको मिलाके नींबू के रस, गोदुग्ध खस के क्वाथ, वासामूल के क्वाथ और ईख के रस की क्रमशः ७-७ भावनायें देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (*आ.सं.*)

मात्रा-१ से २ गोली, शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह वसंतकुसुमाकर सोमरोग, मूत्रातिसार, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, तृषा, दाह, तालुशोष, अजीर्ण, ज्वर, श्वास, क्षयरोग, कृशता आदि सबको दूर करता है एवं बृंहण, बल्य, वृष्य और रसायन गुण की प्राप्ति कराता है। ग्रन्थकार गुण वर्णन के अन्त में लिखते हैं कि इस रस से श्रेष्ठ अन्य कोई भी रसायन नहीं है-"नातः परतरं किञ्चिद्रसायनमिहेष्यते।"

यह रस उत्तम कीटाणुनाशक, बल्य और मस्तिष्कपोषक है। आचार्यों ने इस रस का निर्माण अस्थिपञ्जरवत् बनी हुई रुग्णाओं के अति जीर्ण सोमरोग के लिये किया है। जब रोग अत्यधिक बढ़ जाता है, तब उठने-बैठने की शक्ति भी मारी जाती है। रुग्णा अति पराधीन हो जाती है। मूत्राशय प्रदाह अत्यधिक हो जोने से मूत्रमार्ग से सतत रसस्राव होता रहता है। घण्टे-घण्टे पर कपड़ा बदलना पड़ता है। रुग्णाओं को यदि पूयमेह न हुआ हो, वृक्क कार्य यथोचित हो रहा हो; तो यह रस थोड़े ही दिनों में रक्त, अन्त्र और बस्तिगत सेन्द्रिय विष, कीटाणु और कृमियों को नाशकर मूत्राशय प्रदाह को दूर करता है। फिर तृषा, शोष आदि सर्व लक्षण दूर हो जाते हैं और रुग्णा थोड़े ही समय में स्वस्थ और सबल बन जाती है।

जिस उदकमेह (बहुमूत्र) पीड़ित रोगी को अफीम का सेवन नहीं करा सकते, उसे बहुमूत्रान्तक रस या हेमनाथ रस नहीं दे सकते। उसे वृक्कक्रिया नियमित होने पर यह वसंतकुसुमाकर दिया जाता है। यह रस सेन्द्रिय विष को नष्टकर रोग को दूर कर देता है।

४. बहुमूत्रान्तक रस।

विधि-रससिन्दूर, लोहभस्म, वंगभस्म, अफीमसार, गूलर के बीज, बेल छाल और पीली चमेली के फूल इन ७ औषधियों को समभाग मिलाके गूलर के फलों के रस में ३ दिन खरल करके आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(र.चं.)

वक्तव्य-(१) अफीम को जल में घोल के छानकर फिर जल को उबाल लेने पर वह शुद्ध बन जाती है। इस प्रकार से शुद्ध करने में आधी रह जाती है। छानने के समय कपड़े पर बहुत कचरा रह जाता है।

(२) मूलग्रन्थ में "वंगाहिफेनसारकौ" ऐसा शब्द है। सारक का अर्थ किसी ने लोहभस्म और किसी ग्रन्थकार ने जमालगोटा किया है किन्तु हमने अहिफेन का सारभाग यह अर्थ ग्रहण किया। इसी तरह 'सुरप्रिया' का अर्थ तुलसी और शीतल मिर्च किया है।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार गूलर के फलों के रस, नारियल के जल या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। जिनको तृषा अधिक लगती हो, उनको निम्न फाण्ट पिलाते रहें।

सारिवादि फाण्ट-तृषा अधिक लगती हो, उसे कम कराने के लिये सारिवा, मुलहठी, मुनक्का, दर्भ, चीड़ का बुरादा, रक्तचन्दन, हरड़ और महुए के फूल इन ८ औषधियों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। इसमें से रोज रात्रि में १० तोले चूर्ण को उबलते हुए ८० तोले जल में डाल देवें। सुबह छानकर थोड़ा-थोड़ा पीते रहें।

मूल ग्रन्थकार ने शक्ति संरक्षण को लक्ष्य में रखकर मांसप्रधान भोजन और गेहूँ के आटे की रोटी खाने का विधान किया है। यदि मांस देना हो, तो केवल शोरबा देवें। हमारे अनुभवानुसार जौ+चने की रोटी विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। तले हुए पदार्थ, तैल, तेज खटाई, गुड़, शक्कर तथा अम्ल-विपाकी होने से चावल और पचने में भारी होने से माँस हानि पहुँचाते हैं।

उपयोग-बहुमूत्रान्तक रस बहुमूत्र (उदकमेह Diabetes insipidus) और उससे उत्पन्न तृषाधिक्य आदि सब उपद्रवों को भी दूर करता है।

यह रस अहिफेन प्रधान है। अहिफेन वातकेन्द्र और वातवाहिनियों की उग्रता का दमन एवं तृषा का ह्रास करती है और यकृत् का भी नियंत्रण करती है। इस हेतु से यह रस शर्करा की उत्पत्ति और बढ़ी हुई तृषा का ह्रास करता है।

मधुमेह और उदकमेह आदि जिन विकारों में तृषा-वृद्धि होती है और तालुशोष होता है, उन सब विकारों में मूत्र परिमाण बढ़ जाता है। उनसबका दमन तृषा को मर्यादित बनाने पर ही होता है। अतः उन सब पर यह रस व्यवहृत होता है।

विवेचन-बहुमूत्र के दो अर्थ होते हैं। बहुत समय तक थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग होना और बहु परिमाण में मूत्रस्राव होना। यह रस इन दोनों प्रकार के बहुमूत्रों पर लाभ पहुँचाता है।

मूलग्रन्थकार की औषध योजना की दृष्टि से विचार किया जाये, तो इस रस की योजना उदकमेह पर उत्तम होती है। उदकमेह में मूत्र

स्वच्छ, अति परिमाण में, वर्णहीन, जलसदृश और शक्कर रहित होता है। २४ घण्टे में ६-७ बार मूत्रत्याग करना पड़ता है। इस रोग में तृषा अधिक लगती है। यह तृषा अफीम, गूलर रस और सारिवा आदि द्रव्यों के योग से कम हो जाती है। बहुमूत्रान्तक रस में प्रदाहहर गुण होने से यह मूत्राशयप्रदाहज सोम (बहुमूत्र) रोग में भी लाभ पहुँचा देता है। किन्तु इस प्रकार का रोग पूयमेहज हो या पूयवृक्कज हो, तो इस रस की अपेक्षा बृहत्सोमनाथ रस का उपयोग विशेष फलदायी होता है।

वक्तव्य-रोगी को मलावरोध न हो, इस बात का ध्यान रखते हुये औषधि की मात्रा देनी चाहिये। अन्यथा व्याकुलता बढ़ जाती है। यदि कब्ज हो जाये, तो सनाय पत्ती और छोटी हरड़ का चूर्ण या क्वाथ पिलाकर उदरशुद्धि करा लेनी चाहिये या कम अफीम वाले हेमनाथ रस का सेवन कराना चाहिये।

इस बहुमूत्रान्तक रस में रससिन्दूर रसायन, कीटाणुनाशक और विषहर है। लोहभस्म रसायन, रक्तवर्द्धक, पित्तकफघ्न और मूत्रसंस्थान को सबल बनाने वाली है। वंगभस्म शुक्राशय की पोषक, कफघ्न और मूत्रसंस्थान की दोषनाशक है।

गूलरफल शीतल, ग्राही, सेन्द्रिय विषघ्न, तृषाशामक, रक्तप्रसादक, मधुमेह नाशक, प्रमेहघ्न और रक्तप्रदर शामक है।

गूलर में अनेक दिव्य गुण होते हैं। यह रक्तस्राव को बन्द करता है। मधुमेह में मधु की उत्पत्ति का दमन करता है। सुजाक में गूलर के ४-४ तोले रस में जीरा और मिश्री मिलाकर पिलाया जाता है। गूलर के पत्तों के रस में भी सुजाक नाशक गुण हैं।

महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन ने गूलर के पत्तों के रस का घन (Extract) बनाकर उपयोग किया था। उसका नाम 'उदुम्बर पत्रसार' रखा गया। उन्हें इससे जो लाभ मिला, उसे अपने व्याख्यान में कलकत्ता की आयुर्वेदिक सभा के समक्ष निम्न रूप से पढ़कर सुनाया था। मांस के भीतर दर्द, अवयव मुड़ जाना, मूढ़मार, व्रणक्षत, रक्तवाहिनी कटकर रक्तस्राव होना, क्षयज ग्रन्थियाँ, श्लीपद, दुष्टक्षत, न भरने वाले व्रण, नेत्ररोग, नाड़ीव्रण, विद्रधि, भगन्दर, कण्ठ में क्षत, सुजाक, जिह्वा का मांसक्षय, कर्णपाक, नासिका व्रण, अग्निदग्धव्रण और शीत आदि से हाथ पैर फट जाना आदि व्याधियों में वह बाह्योपचार रूप से प्रयुक्त होता है। जीर्ण आमातिसार, पेचिश और अजीर्ण में खिलाने के लिये भी उपयोगी है। इसके अतिरिक्त सुजाक, मधुमेह, पित्तप्रकोप और जीर्ण ज्वर आदि पर भी उदुम्बर पत्रसार को खिलाकर परीक्षा की गई है।

बेल की छाल रसायन, बुद्धिवर्धक, सेन्द्रिय विषघ्न और प्रदाहशामक है। सुश्रुताचार्य ने मेधायुष्कामीय अध्याय में कल्परूप से बिल्वमूल के क्वाथ का सेवन सुवर्ण भस्म के साथ एक वर्ष तक कराने का विधान किया है।

चमेली के फूल कफपित्तजित्, व्रणरोपक, कीटाणुनाशक, विषहर और रक्तशोधक है।

५. बहुमूत्रघ्न रस।

द्रव्य-बीजबन्द, तालमखाना, मुलहठी का सत्व, वंशलोचन, शुद्ध विरोजा, सालम मिश्री, शुक्तिभस्म, प्रवाल भस्म, बहेड़े की गिरी, हरड़ की गिरी, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची के दाने और वंगभस्म इन १३ औषधियों का समभाग लें।

विधि-प्रथम काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। फिर सबको मिलाकर शहद के साथ ३ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(सि.भै.म.)*

मात्रा-४-४ गोली, दिन में ३ बार जल के साथ देवें।

उपयोग-यह रस बहुमूत्र को दूर करता है। सुजाक या अन्य हेतु से मूत्रप्रसेक नलिका में प्रदाह हो जाने पर मूत्र बूंद-बूंद टपकता रहता है। उसे दूर करने के लिये यह रसायन उपयोगी है। जीर्ण रोग में कुछ दिनों तक शान्तिपूर्वक सेवन करना चाहिये। मधुमेह या अन्य रोगों में बहुत ज्यादा मूत्र उतरता हो, तब इस रसायन से अधिक लाभ नहीं पहुँचता। उसके लिये तो यकृत् पर कार्यकारी तृषाशामक गुणयुक्त तथा वातसंस्थान के क्षोभ की शामक औषधि देनी चाहिये। इसके लिये बहुमूत्रान्तक रस की योजना हिताहवह है।

सूचना-अधिक स्नेह, भारी भोजन, चावल, खटाई, ठण्डाई, मट्ठा; अधिक मिर्च, कब्ज करने वाले पदार्थ आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। अधिक घृत से (घृत का पचन होने पर) भी बूंद-बूंद पेशाब आने से कष्ट बढ़ जाता है।

६. मूत्रदाहान्तक चूर्ण।

विधि-प्रवालपिष्टी २० तोले, अमृतासत्व ४० तोले, संगेयहूद पिष्टी ६० तोले और सोनागेरू ८० तोले मिला के चन्दनादि अर्क (चन्दन, गुलाब, केवड़ा और कमल पुष्प के अर्क) में ७ दिन तक मर्दन करें।

सूचना-सोनागेरू के समान शीतल चीनी भी मिलाई जाय तो विशेष लाभप्रद है।

मात्रा-२ से ४ रत्ती, दिन में ३ बार चन्दनादि अर्क के साथ दें।

उपयोग-यह चूर्ण मूत्रदाह और बूंद-बूंद मूत्र टपकने को सत्वर दूर करता है। मूत्रकृच्छ्र, उग्र औषध आदि का सेवन, यकृत्, मूत्राशय और मूत्रनलिका में दाह एवं अधिक घी और अन्य अपथ्य पदार्थों के सेवन आदि कारणों से तथा पूयमेह आदि रोगों में पेशाब बूंद-बूंद निकलता है और दाह भी होता है। तब इस औषधि के सेवन से वे दूर हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप में अधिक भ्रमण करने और मिर्च आदि का सेवन होने पर पेशाब में जलन होने लगती है। उसके लिये यह औषधि अमृत के समान उपकार करती है।

विवेचन–वृक्क और उपवृक्क में शोथ आजाने से देह में से मूत्र विष जितना निकलना चाहिये उतना न निकलता हो तथा मुख, पैर, वृषण और समस्त शरीर पर शोथ आ गया हो, अग्नि अति मन्द हो गई हो, हृदयगति शिथिल तथा पेशाब थोड़ा और लाल या पीला होता हो, तब इस मूत्रदाहान्तक चूर्ण को १ रत्ती तथा हरीत की रसायन और बकुल बीज २-२ रत्ती को मिलाकर आंवलों के मुरब्बे के साथ दिन में ४ बार देते रहने से थोड़े ही दिनों में वृक्क आदि अवयव सबल बन जाते हैं और शोथ निवृत्त हो जाता है। रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिये।

हृदय की विकृति होने पर सर्वांग शोथ उत्पन्न होता है। इस शोथ का प्रारम्भ पैरों और हाथों से होता है। फिर सर्वांग में फैल जाता है। साथ में घबराहट, श्वास, कास, हृदय की धड़कन आदि होते हैं। इस विकार में मूत्रशुद्धि योग्य न होने पर शोथ सत्वर बढ़ जाता है। इस रोग में मूत्रदाहान्तक चूर्ण २-२ रत्ती और हृद्य चूर्ण (डिजिटेलिस के पान) १/२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि क्वाथ के साथ दिन में ४ बार देते रहना चाहिये। यदि मलावरोध हो, तो रसायन हरीतकी भी मिला देनी चाहिये।

पूयमेह की तीव्रावस्था में प्रमेहान्तक वटी (नं. १) या अन्य औषध देकर प्रकोप की तीव्र अवस्था को शान्त करना चाहिये। फिर चिरकारी अवस्था में जब मन्द-मन्द पीड़ा होती हो, तब इस चूर्ण का प्रयोग गोक्षुरादि गूगल के साथ कराने से लीन विष नष्ट हो जाता है और स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

पूयमेह की तीव्रावस्था में पेशाब में पूय न हो, किन्तु पेशाब में जलन होती हो और पूयपरिमाण कम हो गया हो, तो मूत्रदाहान्तक चूर्ण २ रत्ती, सुवर्णमाक्षिक भस्म और चन्द्रकला रस आधी-आधी रत्ती तथा खुरासानी अजवायन २ रत्ती मिलाकर दिया जाता है।

फिरंग के विषप्रकोप से वातरक्त के उत्पन्न होने पर हाथ और विशेषत: पैरों के अंगुष्ठों पर शोथ आ जाता है तथा शोथ स्थान लाल-काला भासता है। अंगुली से दबाने पर वेदना होती है तथा उसमें जलन भी होती रहती है। शोथ स्थान और सम्पूर्ण पैरों पर प्रस्वेद आता रहता है। फिर शोथ बढ़ता जाता है। शारीरिक ऊष्मा १०१ डिग्री हो जाती है। विषसंचय अधिक होने पर ज्वर १०३ डिग्री तक पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था में मूत्रदाहान्तक चूर्ण और शिलाजीत को काली सारिवा, मजीठ, गिलोय और आंवले के फाण्ट के साथ दिन में दो बार देने तथा रात्रि को उदरशुद्धि के लिये कुमार्यासव देने से विकार थोड़े ही दिनों में शान्त हो जाता है।

शीतला होने पर रक्त में विषोत्पत्ति होती है, क्वचित् यह विष शीतला शमन होने पर भी शेष रह जाता है। फिर सर्वांग में कण्डु, सर्वांग शोथ, पेशाब में लसीका (Albumin) का जाना, पेशाब लाल हो जाना और वमन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस स्थिति में मूत्रदाहान्तक चूर्ण, गोरोचन मिश्रण और सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर शहद के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन में ४ या अधिक बार देते रहने पर विष और विषजन्य सर्व उपद्रव थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं। साथ में वमन अधिक हो, तब तक नींबू के छिलके की राख ४-४ रत्ती तथा पेशाब द्वारा जल और विष को बाहर निकालने के लिए श्वेतपर्पटी १-१ माशा थोड़े जल के साथ देते रहना चाहिये एवं रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिये।

विसूचिका रोग की तीव्रावस्था में पेशाब विशेषत: नहीं होता। किन्तु रोगबल कम हो जाने पर पेशाब की उत्पत्ति होने लगती है। कभी वृक्क पर विष का असर अधिक पहुँच जाने पर मूत्राघात (वृक्क संन्यास) हो जाता है। फिर रक्त में मूत्रविष वृद्धि होने पर जब वह मस्तिष्क में पहुँच जाता है, तब काटना, मारना, बूम मारना, कपड़े फाड़ना आदि उन्माद जैसे लक्षण उतपन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में सूतशेखर देने के अतिरिक्त मूत्रदाहान्तक चूर्ण, गोक्षुरादि गूगल दिन में ३ बार देने से वृक्कविकार दूर होकर मूत्रोत्पत्ति होने लगती है। आवश्यकता हो तो नारायण तैल को निवाया कर हाथ-पैर पर मर्दन करके सेक करें।

आफरा, मलावरोध आदि कारणों से कितनेक रोगियों के वृक्क भी योग्य कार्य नहीं कर सकते। फिर मूत्रविष रक्त में बढ़ जाता है। छाती में दाह, असम्बद्ध प्रलाप, शुष्क पैत्तिक कास और निद्रानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन रोगों पर मूत्रदाहान्तक चूर्ण, मुक्तापिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिलाकर दिन में ३ बार अनार शर्बत के साथ देते रहने से प्रकृति स्वस्थ हो जाती है।

(२९) प्रमेह पिड़िका

१. सारिवादि लोह।

द्रव्य–काली अनन्तमूल, नील, रास्ना, गिलोय, छोटी इलायची के दाने, चित्रकमूल, मानकन्द, सूरण; शंखिनी (चोरपुष्पी), निसोत, शुद्ध भिलावा और हरड़ इन १२ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर सबके समान लोह भस्म मिलाकर बोतल में भर लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–२ से ४ रत्ती; दिन में २ बार सारिवासव या भृंगराजासव के साथ देवें।

उपयोग–सारिवादि लोह प्रमेह पिड़िका, वातरक्त, अर्शरोग और त्वचा रोगों को दूर करता है। इसका सेवन पथ्य पालनसह १-२ मास तक करना चाहिये।

२. प्रमेहपिटिकाहर योग।

नाही कन्द (Corallocarpus Epigeous) के चूर्ण ४ से ६ रत्ती को गुड़ में मिलाके गोलियाँ बनाकररोगी को निगलवाकर शीतल जल पिला देने से आध घण्टे में दस्त और वमन होने लगती है किसी-किसी को ५-७ दस्त और वमन होते हैं। इस तरह दोनों मार्ग का संशोधन होता है तथा रक्त में विद्यमान विष निकल जाता है। इसी कन्द को जल में घिसकर प्रमेह पिटिका (अदीठ आदि सब प्रकार के प्रमेहजनित फोड़ों) पर लेप करते हरने से मात्र ३ दिन के भीतर शराविका, कच्छपिका, विद्रधि आदि भंयकर बढ़े हुए फोड़े गल जाते हैं।

इसके अतिरिक्त इस कन्द के लेप से श्लीपद, गलगण्ड, कण्ठमाला और रसौली आदि भी ३ दिन में दूर हो जाते हैं। मेदोवृद्धि को यह कन्द नष्ट करता है। अण्डकोष-वृद्धि को यह दूर तो कर देता है; किन्तु एक सप्ताह के पश्चात् पुनः जल या मेद भर जाती है। इसलिये अण्डकोष वृद्धि में इसके लेप लगाने के पश्चात् उस वृद्धि के मिट जाने पर अण्डकोश में टिञ्चर आयोडीन का सूचिका भरण करा लेने से स्थाई लाभ हो सकता है। *(आ.नि.मा.)*

वक्तव्य–इस कन्द के सेवन करने पर बेसन, शक्कर, गुड़, तेल, मिर्च, खटाई और हींग का त्यागकर देना चाहिये। मिर्च, हींग आदि का छोंक देने पर उसकी वास से रोगी का कण्ठरोध हो जाता है जिससे वह बोलने में असमर्थ हो जाता है।

सूचना–यदि रोगी दस्त लगने और वमन होने से घबरा जाये और निर्बल हो जाये तो २ तोले घी को निवाया कर इलायची के दाने १० नग को पीस के उसमें मिलाकर पिला देवें। जिससे दस्त और वमन तुरन्त बन्द हो जायेंगे तथा कण्ठ भी खुल जायेगा।

३ दिन या जितने दिन तक इस कन्द का उपयोग करें, उतने ही दिन तक प्रयोग बन्द करने के पश्चात् भी तैल आदि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। आग्रहपूर्वक पथ्य पालन करना चाहिये।

(३०) मेदोरोग।

१. त्रिमूर्तिरस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, गन्धक और लोहभस्म तीनों को समान प्रमाण में ले लें।

विधि–प्रथम कज्जली करके लोहभस्म मिलाकर निर्गुण्डी के पत्तों के रस और सफेद मूसली के क्वाथ के साथ १-१ दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(यो.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली, ३ माशे लोध के चूर्ण और ६ माशे शहद के साथ देवें। फिर ऊपर से षडूषण (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और कालीमिर्च), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), पांचों नमक (सैंधानमक, सांभरनमक, समुद्रनमक, काँचनमक, कालानमक) और बावची के बीज, इन सबको समान प्रमाण में मिलाके कूटकर कपड़छन चूर्ण कर लें। फिर इसे ६-६ माशे की मात्रा में थोड़े जल के साथ देते रहें।

उपयोग–इस रसायन का उपयोग मेद, शोथ, अग्निमांद्य और आमवात को दूर करने के लिये होता है। यह रसायन पचनेन्द्रिय से सम्बन्ध वाली वातवाहिनियों और पचन क्रिया करने वाले अवयवों को सबल बनाता है। इस रसायन के साथ षडूषणादि चूर्ण का संयोग होने से आमाशय रस की उत्पत्ति सत्वर बढ़ जाती है। आम और मेद जलने लगता है। रक्त के भीतर और त्वचा से सम्बन्ध वाले मेदाणु गलने लगते हैं। आमाशय और अन्त्र में उत्पन्न सेन्द्रिय विष या कीटाणु नष्ट होने लगते हैं। मलशुद्धि नियमित होने लगती है तथा वातवाहिनियाँ सबल बनकर पचनेन्द्रिय संस्थान को सबल बना देती है। फिर पचन क्रिया बलवान् होने पर मेद, मेदजनित शोथ (स्फीति) और आम वात सहज में ही दूर हो जाते हैं।

विवेचन–मेदोवृद्धि में जो मेद हैं, वह देह को मोटा तो बना देती है, किन्तु देह का पोषण नहीं करती, विपरीत देह के बल का शोषण करती है। कारण, इस रोग की उत्पत्ति रक्तवाहिनियों की दीवार की कठोरता और रक्त की निर्बलता के हेतु से अथवा बालग्रैवेयक ग्रन्थि (Thysmus Gland) के विकार से होती है। यह मेद दूषित होती है। मेदोरोग अधिक बढ़ने पर परिश्रम से श्वास भर जाता है,

क्षुधा, तृषा का वेग सहन नहीं होता, शारीरिक परिश्रम करने से मन घबराता है; शरीर भाररूप भासता है; उदर मोटा हो जाता है; मेद जलने से देह पर चिकना प्रस्वेद आता है। प्रस्वेद में दुर्गन्ध भी अधिक होती है; निद्रा अधिक सताती है, वायु का मार्ग मेद से रुक जाने के कारण उदर में वायु का विचरण सम्यक् नहीं होता, अनेक बार उदर में वायु भरी है, ऐसा भासता है और मन में व्याकुलता बनी रहती है। ऐसी स्थिति में इस रसायन का सेवन अति हितावह है। ३-४ मास तक पथ्यपालन पूर्वक औषध का सेवन किया जाये तो रक्त सबल बनने पर लाभ हो जाता है।

इस प्रयोग में कज्जली रसायन, जन्तुघ्न और कोष्ठस्थ दोषनाशक है। लोह भस्म रक्ताणुवर्धक, रक्तप्रसादक, बल्य, रसायन और दीपन पाचन है। निर्गुण्डी वात पर हितकारी होने से वातवाहिनियों को सबल बनाती है। षडूषण दीपन, पाचन, मेदोहर और यकृत् बलवर्द्धक है। त्रिफला, पाचक, उदर-शोधक और रसायन है। पञ्चलवण पाचक, मेदोहर और आमवातनाशक है। बावची कीटाणुनाशक, मेदोहर और कफ-शोधक तथा लोह अन्त्रशक्ति वर्धक और विषहर एवं शहद मेदोहर और रसायन है।

सूचना-घी, शक्कर, चावल और देर से पचने वाले स्निग्ध द्रव्यों का सेवन कम करें। हो सके उतना शारीरिक श्रम लेवें। प्रकृति विरोधी आहार का त्याग करें।

२. मेदोहर गुग्गुलु।

द्रव्य-सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला और बायविडंग, इन ९ औषधियों को १-१ भाग लेवें।

विधि-सबके समान शुद्ध गुग्गुलु लें। गूगल को थोड़ा-थोड़ा एरण्ड तैल मिला मिलाकर कूटें। लगभग गूगल से चौथाई तैल उसमें लगाना चाहिए।

अच्छी तरह मुलायम होने पर शेष नव औषधियों का कपड़छन चूर्ण थोड़ा-थोड़ा मिलाकर कूटें। सब चूर्ण एक जीव हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। इस औषधि को योगरत्नाकर आदि कितनेक ग्रन्थकारों ने नवक गुग्गुलु की संज्ञा दी है।

मात्रा-२ से ४ गोली, दिन में २ बार, गोमूत्र या निवाये जल से लेवें।

उपयोग-मेदोहर गूगल मेदोरोग, कफप्रकोपज व्याधियों और आमवात को दूर करता है। यह गूगल मेद को जलाता है, पचन-क्रिया को बढ़ाता है और नयी मेदोत्पत्ति को रोकता है। मेदोविकृति को दूर करने के लिये यह निर्भय उत्तम औषधि है। इसका सेवन ४-६ मास तक करना चाहिये। यह श्लीपद में भी हितावह है।

सूचना-इसके सेवनकाल में अधिक घी, अधिक शक्कर, अधिक चावल और प्रकृति के अनुकूल आहार का त्याग कराना चाहिये और हो सके उतना शारीरिक परिश्रम कराना चाहिये।

(३१) उदर रोग।

१. यकृत्प्लीहारि लोह।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मैनसिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, सोहागे का फूला और शिलाजीत, इन ९ औषधियों को १-१ तोला तथा ताम्रभस्म २ तोले लें।

विधि-पहले कज्जली करें, फिर भस्में और मैनसिल मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों को मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् दन्तीमूल, निसोत, चित्रकमूल, निर्गुण्डी, मूलपा पत्र, त्रिकटु, अदरक और भांगरा के रस या क्वाथ (प्रत्येक को भाव्य औषध के बराबर-बराबर लेकर) की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा-१-१ गोली, रोगोचित अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-इस लोह के प्रयोग से जीर्ण, एक दोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज प्लीहा और यकृत् की वृद्धि, आठों प्रकार के उदररोग, ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ हलीमक, अग्निमांद्य और अरुचि आदि व्याधियां नष्ट हो जाती हैं।

विवेचन-यह रसायन यकृत और प्लीहा पर मुख्य लाभ पहुँचाता है। इस हेतु से इसका नाम यकृत्प्लीहारि लोह रखा है। ताम्र, लोह और पारद का प्रभाव यकृत् और प्लीहा पर विशेष पड़ता है एवं जमालगोटा, दन्तीमूल और निसोत भी यकृत विरेचक है। मैनसिल कीटाणुनाशक, दोषघ्न, लेखन, रक्तविकारहर और सारक है। सुहागा कीटाणुनाशक, दुर्गन्धहर और पाचक है। अभ्रक भस्म मांस और वातवाहिनियों के लिए पौष्टिक होने से यकृत् प्लीहा को बलवान् बनाती है। शिलाजीत रसायन, दोषनाशक और योगवाही है। भांगरे से जमालगोटे और ताम्र की उष्णता और दोष का दमन होता है। चित्रकमूल, त्रिकटु, निर्गुण्डी और अदरक पाचक, अग्निप्रदीपक और यकृत्प्लीहा के दोष के नाशक हैं।

पारद, मनःशिला, जमालगोटा, ताम्रभस्म आदि के संयोग से आमाशय और अन्त्र में रहे हुए आमविष और कीटाणु देह से बाहर निकल

जाते हैं तथा शेष जल जाते हैं। इस तरह आमाशय और अन्त्र की शुद्धि हो जाने से ज्वर का निग्रह होता है। उदररोग और शोथ का नाश हो जाता है तथा अग्नि प्रज्वलित होती है, फिर भोजन में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

लोह और ताम्र के योग से यकृत् का कार्य नियमित होकर कामला की निवृत्ति हो जाती है एवं लोह, पारद आदि से रक्त संशोधन हो जाने और रक्त की वृद्धि हो जाने से पाण्डु और हलीमक की भी निवृत्ति हो जाती है।

विविध प्रकार के विषमज्वर आदि कारणों से यकृद्विकार और प्लीहावृद्धि हो जाती है। फिर पाण्डुता, मन्द जीर्ण ज्वर, अग्निमान्द्य, मूत्र में पीलापन, नाड़ी की गति मन्द होना और मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी स्थिति में यह यकृत्प्लीहारि लोह अच्छा लाभ पहुँचाता है। उदर-शोधन करके ज्वर को जल्दी निवृत्त करता है तथा रक्त प्रसादन कर प्लीहा वृद्धि का सत्वर ह्रास कराता है। यह औषधि त्रिकटु और शहद, रोहितारिष्ट या जल के साथ दी जाती है।

प्लीहोदर होने पर भगवान् धन्वन्तरि के कथनानुसार मन्द ज्वर, अग्निमांद्य, कफप्रकोप, पित्तविकार, बल का ह्रास और पाण्डुता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं–''मन्दज्वराग्नि कफपित्तलिंगै रुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः'' प्लीहा की अति वृद्धि हो जाने पर यह उदरगुहा और उरोगुहा के अनेक अवयवों को स्थान भ्रष्ट कर देती है। वमन होना, मलमूत्र में रक्त निकलना और रोग बढ़ने पर यकृत् की वृद्धि हो जाना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इन लक्षणों से युक्त प्लीहोदर पर यह यकृतप्लीहारि लोह अति लाभदायक है। शान्तिपूर्वक औषध कुछ समय तक पथ्यसह सेवन करनी चाहिये। भोजन में दीपन औषधि मिला हुआ यूष देना चाहिये।

वक्तव्य–गुड़ या शक्कर नहीं देनी चाहिये। अनेक रोगियों को गुड़ शक्कर के सेवन से ज्वर बढ़ जाता है।

प्लीहोदर और प्लीहावृद्धि पर पिप्पल्यादि लोह (चि.त. प्रदीप द्वितीय खण्ड) भी हितावह है। किन्तु आमाशय और अन्त्रदूषित हो तथा बद्धकोष्ठ बना रहता हो, तब पिप्पल्यादि लोह से सम्यक् लाभ नहीं मिल सकता। ऐसी अवस्था में यह यकृत्प्लीहारि लोह ही लाभदायक माना जाता है।

विबंधयुक्त यकृद्दाल्युदर होने पर अतिशय यकृद्वृद्धि, कभी-कभी यकृत् का नाभि तक चला जाना, कामला, कण्डु, ज्वर, प्लीहावृद्धि, मन्द नाड़ी, ज्वर बना रहना, नाक, मुंह, मसूड़े और गुदा से रक्तस्राव आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि यह रोग प्रथमावस्था में है, तो यकृत्प्लीहारि लोह के सेवन से निवृत्त हो जाता है। भोजन में शक्कर रहित दूध केवल दिया जाये, तो लाभ सत्वर होता है। यदि रक्तस्राव अत्यधिक होने लग गया हो और अति क्षीणता आ गई हो तो फिर इस औषधि से लाभ होने की आशा कम रहती है।

सूचना–इस यकृद्दाल्युदर रोग में प्रबल उत्तेजक औषधि बहुधा नहीं दी जाती। इस बात को लक्ष्य में रखकर यकृत्प्लीहारि लोह देना चाहिये। यह औषधि भी कुछ अंश में उत्तेजक है। अतः मात्रा अधिक न दें।

त्रिफला कषाय अनुपान रूप से देवें। आमाशय, अन्त्र आदि का शोधन हो जाने पर यकृत्प्लीहारि लोह का सेवन न करके चिकित्सातत्वप्रदीप द्वितीय खण्ड में लिखे हुये यकृदरि लोह का सेवन शान्तिपूर्वक कराते रहना चाहिये।

यदि उपदंशजनित यकृद्दाल्युदर है, तो उसमें इस लोह की अपेक्षा सोमलप्रधान औषधि विशेष गुणदायक मानी जाती है।

विशीर्णतायुक्त यकृद्दाल्युदर के प्रारम्भ में यकृत दृढ़ और कठिन होता है। रोग सबल बन जाने पर यकृद्वृद्धि, कामला, कृशता, ज्वर, अति प्रस्वेद, मूर्च्छा, भ्रम, अतिसार, प्रलाप, उदर पर नसें नीली, लाल भासना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस रोग में विरेचन द्वारा रक्तदबाव जल्दी कम कराना चाहिये। इस रोग में हृदय की भी विकृति हो जाती है। यदि हृदय को अधिक हानि न पहुँची हो, तो यकृत्प्लीहारि लोह त्रिफला क्वाथ के साथ देने से लाभ हो जाता है। रक्तदबाव कम होने पर यकृदरि लोह के साथ प्रवाल पञ्चामृत जैसी पित्तशामक औषधि देनी चाहिये।

कभी-कभी शराबियों को यकृद्दाल्युदर हो जाता है, तब यकृत् में भारीपन, प्रातःकाल खट्टी वमन होना, अफारा, क्षुधानाश, कोष्ठबद्धता, मुखमण्डल पर अति निस्तेजता, हृदय में विकृति और क्षीणता आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ऐसे रोगियों को यकृत्प्लीहारि लोह त्रिफला कषाय के साथ देने से यकृत् का भारीपन दूर होता है, उदर की शुद्धि होती है और रोग का बढ़ना रुक जाता है। उदरशुद्धि, यकृत् का हल्कापन और रक्तदबाव का ह्रास होने पर यकृदरि लोह का सेवन कम मात्रा में दीर्घकाल तक कराना चाहिये।

२. नाराच रस (उदर)।

द्रव्य-शुद्ध पारद, सुहागे का फूला, कालीमिर्च, तीनों १-१ तोला, शुद्ध गन्धक, पीपल, सोंठ, तीनों २-२ तोले और शुद्ध जमालगोटा ९ तोले लें।

विधि–सबको मिला के ६ घण्टे जल (दन्तीमूल के क्वाथ) के साथ खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। (*र.यो.सा.*)

मात्रा–१-१ गोली, प्रातःकाल में निवाये जल से देवें।

उपयोग–यह नाराच रस गुल्म, प्लीहोदर, मलावरोध और नव ज्वर को दूर करता है। अफारा, उदावर्त, बद्धकोष्ठ, बद्धकोष्ठ से उत्पन्न श्वित्र आदि कुष्ठ, रक्तविकार और त्वचारोग भी इसके सेवन से दूर हो जाते हैं।

वक्तव्य–गुल्म रोग में लिखे हुए नाराच रस की अपेक्षा यह नाराच रस अधिक विरेचन कराने वाला है। अतः इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

३. उदररोगारि रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुक्ति भस्म, विशुद्ध नीले थोथे की भस्म, जमालगोटे के शुद्ध बीज, पीपल और अमलतास की फली की गुदा, इन ६ औषधियों को समभाग मिलाकर थूहर के दूध में ६ घण्टे तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (र.चं.)

मात्रा–१ से २ गोली तक, प्रातःकाल इमली के फलों के रस के साथ।

पथ्य–विरेचन लग जाने पर दही भात। नमक बिल्कुल न देवें।

उपयोग–यह रस तीव्र विरेचन कराके जलोदर को दूर करता है। स्त्रियों के जलोदर (बीजकोष के जलोदर) को भी निवृत्त करता है, ऐसा मूल ग्रन्थकार का लेख है।

इस रस का विशेष उपयोग यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि से उत्पन्न तथा कफ प्रधान जलोदर में होता है। कफज जलोदर के साथ उदरशूल और मलावरोध होने पर यह रस तुरन्त लाभ पहुँचा सकता है। इस रस के प्रयोग से तीव्र विरेचन होता है जिससे अन्त्र या मल मार्ग का प्रतिबन्ध दूर हो जाता है एवं दस्त में जल विशेष रूप से निकल जाता है। इस हेतु से उदर्य्याकला या बीजकोष अथवा जिस-जिस स्थान पर जल संगृहीत हो, वहाँ से जल रक्त में आकर्षित हो जाता है।

यकृद्विकृति से उत्पन्न जलोदर या सर्वांग शोथ में यदि हृदय और वृक्क स्थान की क्रिया में विशेष विकृति न हुई हो, मूत्रोत्पत्ति करने में वृक्क समर्थ हों फिर भी सारे शरीर में निस्तेजता, पाण्डुता, मुंह और हाथ पर कुछ स्फीति, मूत्र में पीलापन, जिह्वा पर मैल की तह आ जाना, क्षुधानाश, नाड़ी की मंदता आदि लक्षण उपस्थित हों और कोष्ठबद्धता अत्यधिक हो, तो इस रसायन को प्रयुक्त करना चाहिए।

स्त्रियों के बीजकोष में जल भर जाने से जलोदर (Ovarian dropsy) बन जाता है। इसका विचार डाक्टरी मतानुसार चि.त.प्र. द्वितीय खण्ड में किया गया है। इस विकार में एक कोषमय व्याधि हो, तो इस विरेचन से लाभ पहुँच सकता है।

४. रोहितक लोह।

द्रव्य–रोहितक (रोहिड़े) की अन्तर छाल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आंवला, बायविडंग, नागरमोथा और चित्रकमूल इन १० औषधियों का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला तथा लोहभस्म १० तोले मिलाके रोहितक आदि औषधियों के क्वाथ की ३ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (*र.सा.सं.*)

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार शरफोंका के मूल के क्वाथ, दूध, मट्ठे या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह लोह प्लीहावृद्धि, अग्रमांस (बढ़ा हुआ मांस) और यकृद्वृद्धि, को नाश करने में अत्युत्तम औषधि है। रोहितक में कृमिघ्न, व्रणनाशक, नेत्ररोगहर, विषशामक और रक्त प्रसादन गुण भी होते हैं।

लोह भस्म में बढ़ी हुई प्लीहा का ह्रास, यकृत् के बल की वृद्धि करना और रक्ताणुओं की वृद्धि का गुण है। उसके साथ रोहितक का संयोग होने से प्लीहावृद्धि के शमन का कार्य बहुत जल्दी होता है। त्रिकटु, त्रिफला और त्रिमद का प्रभाव आमाशय, यकृत और अन्त्र पर विशेष पड़ता है। यह सब द्रव्य विकार की निवृत्ति करके पाचन क्रिया को सुधारते है एवं यकृत्प्लीहावृद्धि आदि के ह्रास कराने में सहायक होते हैं।

५. पाशुपत रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, लोहभस्म ३ तोले तथा शुद्ध बच्छनाभ ६ तोले लें। धतूरे के बीज की काली राख ३२ भाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौंग और छोटी इलायची के दाने ३-३ तोले, जायफल, जावित्री, सैंधानमक, सांभरनमक, समुद्रनमक, कालानमक, बिडनमक, थूहर का क्षार, अर्कक्षार, एरण्ड क्षार, इमली का क्षार, अपामार्ग क्षार और पीपलवृक्ष की छाल का क्षार, इन १३ औषधियों को ६-६ माशे तथा हरड़, जवाखार, सज्जीखार, भूनी हींग, जीरा, सुहागे का फूला इन ६ औषधियों को १-१ तोला लें।

विधि–प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर लोहभस्म और बच्छनाभ क्रमशः मिलाकर चित्रकमूल के क्वाथ के साथ १ दिन खरल करें। इन सबको मिला के कपड़छन चूर्ण करें। फिर पारद मिश्रण के साथ चूर्ण मिला के नींबू के रस में १२ घण्टे तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। (*र.सा.सं.*)

मात्रा–१-१ गोली, भोजन कर लेने पर दिन में दो बार दें।

अनुपान-उदर रोग में मूसली (मूली) का रस। अतिसार में मोचरस। ग्रहणी में सैंधानमक मिलाया हुआ मट्ठा, शूल में कालानमक, **पीपल और** सोंठ का चूर्ण। अर्श में मट्ठा। राजयक्ष्मा में ६४ प्रहरी पीपल। वातजनित रोग में सोंठ और संचर नमक, पित्तज रोग में धनिया, **मिश्री तथा** कफज रोग में शहद, पीपल।

उपयोग-पाशुपत रस उदर रोग (वातोदर और कफोदर) में तुरन्त प्रभाव दर्शाता है। यह अग्निप्रदीपक, आमपाचक और हृद्य है। विसूचिका को निवृत्त कर देता है। उदररोग, अतिसार, ग्रहणी, शूल, अर्श तथा राजयक्ष्मा जन्य अग्निमान्द्य तथा वातज, पित्तज और श्लेष्मज विकारों को तुरन्त ही नष्ट कर देता है।

यह रसायन आमाशय रस की वृद्धि तथा यकृत्पित्त का स्राव अधिक कराता है एवं कीटाणुओं का नाश करता है। क्षार दीपन, पाचन क्रिया बढ़ाता है तथा धतूरे के बीज की राख कीटाणुओं का नाश और अन्त्र के संशोधन का उत्तम कार्य करती है। इस हेतु से इस रसायन के सेवन से पचनक्रिया प्रबल बन जाती है। फिर अग्निमान्द्य, अपचन तथा अपचन से उत्पन्न अतिसार, विसूचिका, शूल, उदर में भारीपन और उदरवात आदि शमन हो जाते हैं। वात और कफजनित विकारों में इसका उपयोग हितकारक है। पित्तप्रकोपज विकारों में इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। पित्तशमनार्थ प्रवालपञ्चामृत, वराटिकाभस्म, शंखभस्म आदि का प्रयोग किया जाये, तो वह विशेष लाभदायक माना जायेगा।

वातज और कफज अपचन को निवृत्त करने के लिये पाशुपत रस अति प्रभावशाली औषध है। इसमें इसका अनेक बार उपयोग करके लाभ उठाया है।

६. प्लीहार्णव रस।

द्रव्य-नींबू के रस से शोधित हिंगुल, शुद्ध गन्धक, सुहागे का फूला, अभ्रक भस्म और शुद्ध बच्छनाभ, इन सबको ४-४ तोले एवं पीपल और कालीमिर्च २-२ तोले लें।

विधि-इन सबको मिला के निर्गुण्डी के पान के स्वरस में ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। (र.चं.)

मात्रा-१-१ गोली, दिन में २ बार निर्गुण्डी के पान के रस एवं १ तोले शरपुंखा के मूल के क्वाथ और और शहद के साथ देवें।

उपयोग-यह रसायन ६ प्रकार की प्लीहावृद्धि को ज्वर, अग्निमांद्य, कास, श्वास, वान्ति, चक्कर आना आदि लक्षणों सह शान्त करता है। जब प्लीहा बहुत बढ़ जाती है, तब ज्वर बना रहता है, अग्नि मन्द हो जाती है, कफवृद्धि होकर श्वास-कास उपस्थित होते हैं, मुखमण्डल निस्तेज और शुष्क भासता है। मलावरोध बना रहता है, भोजन करने पर उदर में भारीपन आ जाता है, किसी भी कार्य के लिए मन में उत्साह नहीं होता, शीतकाल में शीत अधिक लगती है। ऐसे लक्षणों के प्रतीत होने पर वटी का सेवन शान्तिपूर्वक पथ्यपालन सह एक दो मास तक कराने पर पुन: स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

सूचना-शीतल वायु, शीतल जल, गुड़, शक्कर वाले पदार्थ और देर से पचने वाले पदार्थों को छुड़वा देना चाहिये। ज्वरावस्था में स्नान नहीं कराना चाहिये। मलावरोध हो, तो कुमार्यासव या अन्य सारक औषधि देकर उदरशुद्धि कराते रहना चाहिये।

७. भल्लातक मोदक

द्रव्य-भिलावा, हरड़ और कालाजीरा तीनों को समभाग लें।

विधि-सबको कूटकर सबके समान गुड़ मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। भिलावे को कूटने के समय बिना खोपरे का तैल लगाये हाथ नहीं लगाना चाहिये।

मात्रा-२ से ४ गोली तक दिन में २ समय।

उपयोग-प्रतिदिन देते रहने से दारुण प्लीहोदर भी एक सप्ताह में नष्ट हो जाता है।

८. पिप्पल्याद्य लोह।

द्रव्य-पीपलामूल, चित्रकमूल, अभ्रक भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बायविडंग, चित्रकमूल, नागरमोथा, कचूर, सैंधानमक इन १४ औषधियों को १-१ तोला और लोह भस्म सबके समान (१४ तोला) लेवें।

विधि-काष्ठादि औषधियों को कपड़छन चूर्णकर लोह भस्म के साथ खरल कर लेवें।

मात्रा-४-४ रत्ती, दिन में २ बार, शहद के साथ दें।

उपयोग-समस्त उदररोग, प्लीहोदर और नये रोग नष्ट हो जाते हैं।

९. यकृदरि लोह।

द्रव्य–लोह भस्म, अभ्रक भस्म दोनों २-२ तोले, ताम्र भस्म १ तोला, बिजौरे के जड़ की छाल ४ तोले और मृग चर्म की भस्म ४ तोले लें।

विधि–इन सबको मिला के बिजौरे के रस के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–२-२ गोली, दिन में २ समय दें।

उपयोग–यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, कामला, हलीमक, कास, श्वास, ज्वर और वातज गुल्म आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा बल, वर्ण और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

१०. यकृच्छूलविनाशिनी वटी।

द्रव्य–नौसादर १ तोला, सैंधानमक २ तोले, तालमखाना, रोहितक की छाल, अजवायन और चित्रकमूल की छाल ये चारों १०-१० तोले लें।

विधि–सबको मिला के कूटकर कपड़छन चूर्णकर दुर्गन्ध वाले करञ्ज के पानों के स्वरस में २ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार २ तोले करेले के रस के साथ देवें।

उपयोग–यह वटी यकृत् में होने वाले शूल, यकृद्वृद्धि, गुल्म, प्लीहोदर को नष्ट करती है। करेले के रस में देने से प्रायः वान्ति होकर विष निकल जाता है और पित्ताशय में अश्मरीकरण हों, तो ये आगे सरक जाते हैं। फिर वेदना निवृत्त हो जाती है, किन्तु अति निर्बल शरीर हो, तो करेले का रस कम देवें या निवाये जल के साथ दें।

११. यकृद्विकारहरी वटी।

द्रव्य–कुटकी २० तोले, नौसादर १० तोले, कालानमक और सैंधानमक ४-४ तोले और हींग २ तोले लें।

विधि–सबको मिलाके गोमूत्र, चित्रकमूल के क्वाथ और घीकुंवार के रस की क्रमशः तीन तीन भावनाएं देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(श्री वैद्य गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर)*

मात्रा–२-२ गोली, दिन में २ या ३ बार, निवाये जल या कुमार्यासव के साथ।

उपयोग–यह वटी यकृत् और प्लीहावृद्धि तथा गुल्म आदि को दूर करती है। यकृत् की वृद्धि होने पर जब पचन क्रिया योग्य काम नहीं करती और यकृत् पर दबाने से दर्द होता है तथा कब्ज रहती है, तब इस वटी का सेवन कराया जाता है।

१२. प्लीहारि वटिका।

द्रव्य–एलुवा, अभ्रकभस्म, शुद्ध कासीस और लहशुन की गिरी, इन चारों को ८-८ तोले लें।

विधि–द्रोण पुष्पी के रस में १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(भै.रं.)*

वक्तव्य–हम इस वटिका में क्विनाइन सल्फास ४ तोले मिला लेते हैं। क्विनाइन मिलाने से यह वटी अत्यधिक गुणकारी हो जाती है।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार जल के साथ देवें।

उपयोग–इस वटी के सेवन से ज्वर के साथ प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, मन्द-मन्द ज्वर, उदरशूल, गुल्म, अग्निमांद्य, शोथ, कास, श्वास, तृषा, दाह, शीत लगना, वान्ति, चक्कर आना आदि विकार दूर होते हैं।

१३. कासीसाद्य वटी (उदर)।

द्रव्य–शुद्ध कासीस १ तोला, भुनी हींग २ तोले और रेवतचीनी ४ तोले लें।

विधि–सबको मिलाके लहशुन के रस में ६ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में दो बार द्राक्षासव, रोहितकारिष्ट या लहशुन के रस के साथ सेवन करावें।

उपयोग–इस वटी के उपयोग से यकृत्प्लीहावृद्धि, आम प्रकोप, छोटे उदर कृमि, मलावरोध, अग्निमान्द्य, मन्द ज्वर आदि दूर होते हैं। यकृत् सबल बनकर अपना कार्य नियमित करने लगता है। यह यकृत् और प्लीहा के विकारों के लिए महौषध है।

१४. अग्निप्रभा वटी।

द्रव्य–सैंधानमक, नौसादर, यवक्षार, विड़नमक और रससिन्दूर को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर पटोलमूल के क्वाथ के साथ १ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (भै.र.)

मात्रा–२ से ४ गोली, प्रातःकाल तालमखाने के जल के साथ देवें। यकृत् या पित्ताशय के शूल पर अनुपान करेले के एक पान का रस देना चाहिये।

उपयोग–इस वटी के सेवन से यकृत् और प्लीहा के महान् घोर रोग दूर होते हैं। जिन रोगियों को ज्वर और अधिक मलावरोध न रहता हो, उनके लिये यह हितावह है। तालमखाने का जल अनुपान रूप से देने से क्षार द्वारा अन्त्र की श्लैष्मिक कला को हानि नहीं पहुँचती एवं अन्त्र शुद्धि में सहायता मिल जाती है। यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, यकृच्छूल आदि रोगों को दूर करने में यह वटी अति उपकारक है।

१५. प्लीहोदरारि चूर्ण।

द्रव्य–इन्द्रायण के फल ५ तोले, कड़वी जीरी (काली जीरी), आमाहल्दी और सैंधानमक २०-२० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर कूट के कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ४ रत्ती, सुबह जल के साथ देवें या छोटी मात्रा में दो या तीन बार देवें।

उपयोग–यह चूर्ण प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, कोष्ठबद्धता, आमसंग्रह, उदर रोग, शोथ, कफप्रकोप और उदरकृमि को दूर करता है। इस चूर्ण की मात्रा अधिक होने पर उदर में दर्द होकर पतले जल जैसे दस्त लगते हैं।

बालकों के डब्बा रोग में यह चूर्ण गोरोचन के साथ मिलाकर दिया जाता है। इसके सेवन से आध्मान, कफ की घर-घर आवाज, कोष्ठबद्धता, घबराहट और ज्वर दूर होते हैं। केवल उदरशोधनार्थ देना हो, तो रात्रि में सोने के समय माता के दूध के साथ आधी रत्ती दिया जाता है।

१६. सामुद्राद्य चूर्ण (उदर रोग)।

द्रव्य–समुद्रनमक, कालानमक, सैंधानमक, जवाखार, अजमोद, छोटी पीपल, चित्रकमूल, सोंठ, भुनी हींग और काचलवण, सबको बराबर लें।

विधि–सबको मिलाकर कूट के कपड़छन चूर्ण कर लें।

मात्रा–३ से ४ माशे, दिन में २ बार घी के साथ मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास के साथ खायें।

उपयोग–यह सामुद्राद्य चूर्ण वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातप्रकोप, ग्रहणी विकार सब प्रकार के दुष्ट अर्श, मलावरोध, पाण्डु और भगंदर आदि को दूर करता है।

विवेचन–विशेषत: जब आमाशय का पाचक रस (Gastric Juice) कम परिमाण में और निर्बल उत्पन्न होता है, तब वातप्रधान उदररोग, वातज गुल्म, अफारा आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। ऐसी विकृति होने पर सामुद्राद्य चूर्ण का सेवन कराने से आमाशय रस और यकृत् पित्त दोनों का स्राव बढ़ जाता है, जिससे पचन क्रिया सबल होकर वातोदर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

सूचना–असमय पर भोजन, अधिक उपवास, अधिक द्विदल धान्य, तले हुए पदार्थ, पचने में भारी भोजन, गरम-गरम चाय और सिगरेट आदि का सेवन, मानसिक चिन्ता, रात्रि का जागरण ये सब रोगवर्द्धक है। इन सबका हो सके उतना त्याग कर देना चाहिए।

१७. बड़वानल क्षार।

द्रव्य एवं विधि–हींग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, हल्दी दारुहल्दी भिलावा, सुहिंजने के बीज, कुटकी, चव्य, बच ओर सोंठ इन १६ औषधियों को समभाग लेके कूटकर जौकूट चूर्ण करें। फिर पञ्चलवण (पांचों नमक) को चूर्ण के समान करके मिलाकर एक हांडी में भरें। पश्चात् शराव सम्पुट कर संधिलेप करें। इसे चूल्हे पर चढ़ाकर ३ घण्टे तक अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर क्षार निकालकर पीस लेवें।

मात्रा–१॥ से ३ माशे, अनुपान-शराब, कांजी या निवाये जल के साथ दिन में दो बार देवें।

उपयोग–यह बड़वानल क्षार उदररोग, गुल्म और उदरशूल का नाश करता है। इसका सेवन विशेषकर भोजन के आधे घण्टे पहले कराया जाता है। यदि अपचन हो तो किसी भी समय यह क्षार दिया जा सकता है।

बड़वानलक्षार दीपन, पाचन, सारक, वातहर, कीटाणुनाशक, शूलहर और आम विषघ्न है। जीर्ण मलावरोध और वातप्रकोपज उदर विकार आदि रोगों पर प्रयुक्त होता है। यह क्षार-निर्भय और उत्तम औषधि है। आमाशय पित्त की उत्पत्ति कम होने से अग्नि मन्द हो, तो शराब या काँजी के साथ तथा जीर्ण मलावरोध हो, तो निवाये जल के साथ दिया जाता है। यदि कफवृद्धि हो, तो अदरक के रस और शहद के साथ देना हितकर है।

१८. हपुषाद्य चूर्ण।

द्रव्य–हाउबेर, सत्यानाशी की जड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, नीलिनी (काला दाना), त्रायमाण, सातला (सेहुँड), निसोंत, कालीमिर्च, बच, सैंधानमक और पीपल, इन १४ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–२ से ४ माशे तक प्रातःकाल में अनारदाने के रस, त्रिफला के फाण्ट, मांसरस, गोमूत्र या निवाये जल के साथ देते रहें।

उपयोग--यह हपुषाद्य चूर्ण विरेचन, दीपन, पाचन, आमविष तथा कीटाणु का नाशक, कृमिघ्न, रक्तशोधक और कफघ्न है। सब प्रकार के उदर रोग, श्वित्र, कुष्ठ, अजीर्ण, देह की शिथिलता, विषमाग्नि, शोथ, अर्श, पाण्डु, कामला और हलीमक आदि रोगों को दूर करता है।

जिन रोगों की उत्पत्ति उदरस्थ मल, आम, पूय, विष, कीटाणु या कृमि से होती है, उन सब रोगों पर यह हपुषाद्य चूर्ण निर्भयरूप से प्रयुक्त होता है। जिन रोगियों को अतिसार या पेचिश हो गया हो या जिनके अन्त्र में प्रदाह हो, उनको यह चूर्ण देना हो, तो बहुत कम मात्रा में सावधानीपूर्वक देना चाहिये।

अनुपान–आमाशय की पचनक्रिया सदोष हो, तो अनुपान अनारदाने का रस, अन्त्रशिथिल हो तो त्रिफला का हिम या फाण्ट, पचन संस्थान में क्षत हो और शारीरिक निर्बलता अधिक हो तो मांस रस, कृमि या कीटाणु प्रकोपज विकृति हो तो गोमूत्र की योजना करनी चाहिये। सामान्य रूप से अनुपान निवाया जल है। सहायक अनुपान की योजना होने पर औषधि सत्वर लाभ दर्शाती है।

सूचना–उदररोग और पचन संस्थान की अन्य विकृति वाले रोगी को लघु पथ्य देना चाहिये। देर से पचन होने वाले भोजन, अपथ्य भोजन और अधिक भोजन का त्याग करना चाहिये। शक्कर, गुड़ आदि मधुर पदार्थ कम देवें या न देवें। एवं गरम गरम चाय, सिगरेट, शराब आदि का व्यसन हो, तो छुडा देना चाहिये।

१९. उदरशूलहर वटी।

द्रव्य–करञ्जबीज की मींगी १८ तोले, कच्ची हींग ३ तोले, शुद्ध हिंगुल १ तोला, शंखभस्म २ तोले और गुड़ ८ तोले लें।

विधि–प्रथम करञ्ज की मींगी का बारीक चूर्ण बना लें। फिर हींग व शंखभस्म मिलावें। पश्चात् शुद्ध हिंगुल को बारीक पीस के मिलाकर घोट लें। फिर सबके मिश्रित चूर्ण में गोलियाँ बनने योग्य गुड की चाशनी डालकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा–१ से २ रत्ती या १ से २ गोली तक जल के साथ।

उपयोग–उदरशूल, अग्निमांद्य, उदावर्त्त, मलावरोध, गुल्म, शूल, आध्मान, आनाह, शिरदर्द आदि विकारों पर हितकर है।

२०. प्लीहारि अर्क।

द्रव्य–घीकुंवार का रस ४ सेर, मूली का रस २ सेर, कसीस (Ferri Sulph) ४० तोले, पाँचों नमक मिलाकर ५० तोले, सुहागे का फूला, चित्रकमूल और अजवायन २०-२० तोले, नौसादर और फिटकरी का फूला १०-१० तोले लें।

विधि–सबको मिला के अमृतबान में भरकर १५ दिन रहने देवें फिर छानकर बोतलों में भरें।

मात्रा–१-१ ड्राम, दिन में २ बार, प्रातः तथा रात्रि में ५-५ तोले निवाये जल के साथ।

उपयोग–यह प्लीहारि अर्क बहुत बढ़ी हुई प्लीहा को भी २१ दिन सेवन करने पर कम कर देता है एवं जीर्ण ज्वर, मन्दाग्नि, यकृद्वृद्धि, पाण्डुता, उदर कृमि और मलावरोध को भी दूर करता है। पित्ताशय में पथरी होने पर वहाँ शूल चलता हो, तो उसे भी दूर करता है।

२१. चित्रकादि वटी।

द्रव्य–चित्रकमूल की छाल, पीपलामूल, जवाखार, पाँचों लवण, त्रिकटु, भुनी हींग, अजमोद तथा चव्य ये १४ द्रव्य प्रत्येक समान भाग।

विधि–सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर बिजोरे नींबू या दाड़िम के रस में खरल कर मटर बराबर वटी बनावें।

मात्रा–२ से ४ गोली, जल से दिन में ३ बार।

उपयोग–आमदोषनाशक तथा अग्निप्रदीपक है। उदावर्त (गैस) को नष्ट करती है।

❑ ❑

(३२) शोथ रोग।

१. शोथारि लोह।

द्रव्य व विधि–लोह भस्म, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और यवक्षार इन ५ औषधियों को समभाग मिलाकर खरल कर लेवें। (*भै.र.*)

मात्रा–४-४ रत्ती, दिन में २ बार त्रिफला के हिम या फाण्ट के साथ सेवन करावें।

उपयोग–यह शोथारि लोह वातज, पित्तज और कफज आदि सब प्रकार के शोथ रोग को दूर करता है। यह लोह नये और पुराने बढ़े हुए शोथरोग में भी निर्भयरूप से प्रयुक्त होता है। लक्षणानुरोध से इसमें दूसरी औषधि भी मिला सकते हैं।

विवेचन–वातज शोथ को दिवाबली कहा है, अत: यह हृदयविकृतिजन्य माना जाता है। कफज शोथ को रात्रिबली कहा है, अत: इसे वृक्क विकारज माना गया है। पित्तजशोथ यकृद्विकारज होता है। हृदयविकृति से सर्वांग शोथ हो, उसकी अपेक्षा यकृद् या वृक्क विकार से होने वाला शोथ अधिक दु:खदायी और अमंगलकारक होता है। वृक्क विकारज शोथ मुख-पर से नीचे की ओर फैलता है। फिर अधिक बढ़ने पर उदर्य्याकला में रक्त-रस का संग्रह कराता है। किसी-किसी रोगी के फुफ्फुसावरण को भी दूषित करता है। फुफ्फुसावरण में रससंग्रह होने पर रोग असाध्य या कष्ट साध्य बन जाता है। पूयमय चिरकारी वृक्कप्रदाह (Chronic suppurative nephritis) जीर्ण होने पर सारे शरीर पर सूजन फैल जाती है। वह दिन में भी कम नहीं होती। आंखें गड्ढे में घुस जाती है। फिर उदर, हाथ, पैर आदि पर भी बहुत शोथ आ जाता है। रोगी दिन-प्रतिदिन अशक्त होता जाता है। इसमें विशेषत: मूत्रोत्पत्ति में न्यूनता होती है और मलावरोध भी रहता है। परिणाम में, रक्त में विष संगृहीत होता है और मल में से भी विष रक्त में आकर्षित होता रहता है। इस विष प्रकोप के हेतु से शिर: शूल, अरुचि, वान्ति, क्षुधानाश आदि के साथ कईयों को शीत ज्वर के लक्षण भी प्रतीत होते हैं।

मूत्र-परीक्षा करने पर उसमें पूयकीटाणु, लसीका (एल्ब्युमिन) और रक्त भी मिलते हैं। मूत्रोत्पत्ति बहुत कम होती है और निर्बलता आने पर स्वेद भी बहुत कम होता है। इस हेतु से उत्तरोत्तर कष्ट बढ़ता जाता है। ऐसे रोग में पूय कीटाणुओं को दूर करके फिर कम मात्रा में १-२ मास तक शोथारि लोह का सेवन कराया जाय तो रोगी का जीवन बच जाता है।

यदि रोगी को कब्ज न हो, अफीम सहन हो सके और रोगी केवल दूध पर रह सके, तो शोथारि लोह के साथ दुग्ध वटी का सेवन कराया जाता है।

कफ प्रकोप हो, तो शोथारि लोह के साथ शृंगभस्म और बहुत कम मात्रा में बंगभस्म (पूय कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये) भी मिला देनी चाहिये।

वक्तव्य-(१) इस रोग में आवश्कतानुसार स्वेदद्वारा विष बाहर निकलवाते रहें और पुनर्नवा का सेवन कराते रहें, तो लाभ जल्दी पहुँचने की सम्भावना है।

(२) यदि रोगी को शराब या तमाखू का व्यसन हो, तो छुड़ा देना चाहिये।

(३) मूत्र विरेचन या तीव्र मूत्रल औषधि नहीं देनी चाहिये।

(४) रोगी को दूध, मधुर या मधुराम्ल फलों के रस, शाकाहार या भात पर रखना चाहिये। नमक का पूर्ण रूप से त्याग करा देना चाहिये। पोषक द्रव्य (प्रथिन=प्रोटीन) बन्द या हो सके उतना कम करा देना चाहिये।

(५) मलावरोध हो, तो गोमूत्र की बस्ति या ग्लिसरीन की पिचकारी देकर उदर शुद्धि कराते रहना चाहिये या त्रिफला की मात्रा बढ़ाना चाहिये। गोमूत्र का सेवन भी हितावह है।

(६) यदि वृक्क पर शोथ हो, तो अलसी की पुल्टिस बांधनी चाहिये।

२. पुनर्नवाष्टक कषाय।

द्रव्य व विधि-पुनर्नवा की जड़, नीम की अन्तर छाल, पटोल पत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और हरड़, इन ८ औषधियों को समभाग मिला के यवकूट कर लें। (*वं.से.*)

मात्रा-२ से ४ तोले का क्वाथ कर दो हिस्से करें। प्रात:काल में एक हिस्सा पिलावें एवं दूसरा हिस्सा शीशी में रहने दें। इसका सेवन सायंकाल में करावें।

उपयोग-पुनर्नवाष्टक कषाय उत्तम मूत्रजनक तथा शोथनाशक औषधि है। वृक्क-द्रोणियों (Glomeruli) के भीतर जो उपांग आलसी हो गये हों, उनको प्रेरणा देकर मूत्रोत्पत्ति में सहायता देता है। इस हेतु से इस क्वाथ के सेवन से सर्वांग शोथ और उदर रोग का निवारण होता है तथा लक्षण रूप या उपद्रव रूप से उत्पन्न कास, शूल, श्वास और पाण्डु भी नष्ट हो जाते हैं। विशेषत: यह क्वाथ मण्डूर भस्म

के साथ अनुपान रूप से दिया जाता है। उरस्तोय में सञ्चित जल को कम करने के लिये भी यह कषाय व्यवहृत होता है।

यह क्वाथ शोथ रोग की उत्तम और निर्भय औषधि है। यह मूत्र को साफ लाता है एवं कोष्ठबद्धता को भी दूर करता है। ज्वरयुक्त शोथ और ज्वररहित शोथ, मूत्ररोग और लक्षण रूप शोथ, सब में यह व्यवहृत होता है। निर्बल व्यक्ति को मात्रा कम देनी चाहिये।

सूचना-क्रूर कोष्ठ वालों को इस कषाय के साथ १।-१॥ माशा कुटकी का चूर्ण भी सुबह को देते रहना चाहिये।

३. मूत्रल कषाय।

द्रव्य व विधि-पुनर्नवामूल, ईख का मूल, कुश का मूल, कास का मूल, छोटे गोखरू, सौंफ, धनियाँ, सागौन के फल, मकोय, कासनी के बीज, ककड़ी (खीरा) का मगज, गिलोय, पाषाद भेद, काकनुज और कमल के फूल, इन १५ औषधियों १-१ तोला मिलाकर जौ कूट कर लेवें। *(स्व. श्री. पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा-२-२ तोले चूर्ण को १६ तोले जल में मिला के चतुर्थांश क्वाथ करके छान लें। फिर शिलाजीत या श्वेत पर्पटी ४ रत्ती से १ माशा तक मिलाकर पिला दें। इस तरह दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग-इस क्वाथ का उपयोग वृक्क विकार जनित शोथ पर होता है। इस विकार में मूत्र में एल्ब्यूमिन का जाना, मुख पर प्रथम शोथ आना, शोथ जीर्ण होने पर रक्तवाहिनियों का विकृत होना और हृदय निर्बल होना, पेशाब बहुत कम उतरना, रोगी निस्तेज और स्थूल हो जाना तथा विशेषत: मुख मण्डल, कटि देश, वृषण और मूत्रेन्द्रिय पर सत्वर और विलक्षण शोथ आना, ये लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस पर यह क्वाथ विशेष लाभ पहुँचाता है।

कभी कभी मूत्रग्रन्थि की बाह्य अंश (Renal cortex) शीर्ण होने पर हृदय और रक्तवाहिनियों में भी विकृति आ जाती है। फिर शोथ उत्पन्न होता है। यह शोथ दोनों पैरों से आरम्भ होता है। प्रारम्भ में मुखमण्डल आक्रान्त नहीं होता। इस प्रकार में भी विकार वृक्क से उत्पन्न होता है। इस पर भी यह कषाय लाभ पहुँचाता है। इसमें पुनर्नवा मण्डूर के साथ यह देना विशेष हितावह माना जायेगा।

कमर और पेट में अश्मरी जनित शूल चलता हो तो इस क्वाथ के साथ जटामांसी २ भाग (१५ तोल में २ तोले) और खुरासानी अजवायन के बीज या पान १ भाग मिलाकर उपयोग करना चाहिये। साथ में हजरूल यहूद भस्म ४ से ८ रत्ती देवें तो सत्वर लाभ होता है।

४. पुनर्नवादि कल्प।

द्रव्य एवं विधि-पुनर्नवा का मूल, कुटकी, दारुहल्दी, सारिवा (सुगन्ध वाला) और मजीठ इन ५ औषधियों को १-१ सेर मिला के कूटकर मोटा मोटा चूर्ण करें। फिर रात्रि को ४० सेर जल में भिगो देवें। सुबह मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मसलकर छान लेवें। इस बचे हुए क्वाथ द्रव्य को पुन: २० सेर जल मिलाकर उबालें। १० सेर रहने पर नीचे उतार के मसल कर छान लेवें। इन दोनों क्वाथों को मिला के कड़ाही में डालकर उबालें। सावधानीपूर्वक चलाते हुए इसका घन बनावें। शर्बत जैसा गाढ़ा बनने पर इसमें ३० तोले शक्कर मिलाकर अवलेह बना लेवें। *(श्री गुणे शास्त्री)*

मात्रा-३-३ माशे, १-१ औंस जल मिलाकर दिन में ३-४ बार पिलावें।

उपयोग-पुनर्नवादि कल्प मूत्रल, यकृत्प्लीहावृद्धिहर और शोथहर है। यकृत् प्लीहावृद्धिसह सर्वांग शोथ में यह हितावह है।

५. शोथहर योग।

कच्ची फिटकरी ८ तोले और मधुमण्डूर भस्म १ तोला मिलाकर खरल कर लेवें। इसमें से बालक को १ रत्ती और बड़े मनुष्य को ४ से १२ रत्ती तक दिन में २ बार २१ बार छाने हुए गोमूत्र के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में पाण्डु, हाथ, पैर, उदर और मुखमण्डल पर शोथ, अपचन, मलावरोध और अरुचि आदि विकार दूर हो जाते हैं। यकृत्प्लीहा बढ़ गये हों और मन्द-मन्द ज्वर रहता हो, वे भी निवृत्त हो जाते हैं।

सूचना-रोगी को दूध या (ज्वर न हो तो) दूध भात पर रखना चाहिये।

(३३) श्लीपद।

१. श्लीपदारि लोह।

द्रव्य एवं विधि–हरड़ बहेड़ा, आंवला, मुण्डलोह भस्म, कान्तलोह भस्म और शुद्ध शिलाजीत इन सबको समभाग मिला त्रिफला के क्वाथ में ७ दिन तक मर्दनकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार त्रिफला के फाण्ट के साथ।

उपयोग–इस लोह का शान्तिपूर्वक ४-६ मास तक पथ्य पालनसह उपयोग करने पर बढ़ा हुआ पुराना और नया श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है।

२. सिद्धगन्धक।

विधि–आंवलासार गन्धक १ सेर और पातालयन्त्र से निकाला हुआ भल्लातक तैल १० तोले मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालकर मन्दाग्नि देकर रस करें। रस होने पर ४ सेर दूध में इसको डाल देवें। १५-२० मिनट बाद दूध को अलग कर गन्धक को निकाल लें। पुनः १० तोले भल्लातक तैल में गन्धक का रस करें और दूध में डाल देवें। इस तरह ३ बार शुद्धि करें। फिर गाय के दूध, चातुर्जात, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, भांगरा और अदरक इन औषधियों के रस या क्वाथ की ८-८ भावनायें (सब मिलाकर ६४ भावना) देकर फिर सिद्ध गन्धक बना लेवें। *(श्री गुणे शास्त्री)*

सूचना–भल्लातक तैल का धुआँ मुख अथवा शरीर के किसी भाग को न लगे यह सावधानी रखनी चाहिये। अन्यथा उस स्थान पर सूजन आ जायेगी।

मात्रा–२ से ४ रत्ती, दिन में १ बार सुबह तुलसी के रस और शहद के साथ लेवें। आवश्यकतानुसार तालभस्म, लोहभस्म और अभ्रक भस्म चौथाई-चौथाई रत्ती मिला लेवें।

उपयोग–यह रसायन कफप्रधान प्रकृतिवालों के लिए उत्तम कृमिघ्न और रक्तप्रसादक है। श्लीपद, जीर्ण ब्यूची, महाकुष्ठ, वातरक्त, जीर्ण फिरंग और जीर्ण सुजाक आदि रोगों पर प्रयुक्त होता है।

श्लीपद रोग के कृमि (Fileria) अति दुःखदायी होते हैं। ये जल्दी नहीं मरते। रोग जीर्ण होने पर पीड़ित स्थान अति स्थूल हो जाता है। उसके नीचे रस संग्रहीत होता है और रक्तवाहिनियाँ मोटी बन जाती है। कितनेक रोगियों को बार-बार ज्वर आ जाता है। इस रोग पर पथ्यपालनसह ४-८ मास तक केवल इस रसायन का सेवन कराया जाता है। अथवा नित्यानन्द रस के साथ देने से लाभ हो जाता है। आवश्यकतानुसार स्थानिक उपचार रूप से गर्जन तैल की मालिश करते रहना चाहिये।

श्लीपद के अतिरिक्त कुष्ठ आदि रोगों के कीटाणु भी इस रसायन के सेवन से नष्ठ हो जाते हैं। इस हेतु से कुष्ठ रोग की औषधि के साथ इसे मिला दिया जाता है।

सूचना–इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में दिये हुए गन्धक रसायन के उपयोग के अन्त में दी हुई सूचनायें भी देख लेवें।

श्लीपद में अजवायन के बीज या पान १ भाग मिलाकर उपयोग करना चाहिये। साथ में हजरूल यहूद की भस्म (या पिष्टी) ४-८ रत्ती देवें, तो लाभ सत्वर होता है।

३. श्लीपदगजकेसरी।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध बच्छनाभ, अजवायन, शुद्ध पारद, चित्रकमूल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनसिल, सुहागे का फूला और शुद्ध जमालगोटा।

विधि–११ औषधियों को समभाग लेके प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करें। फिर उसमें मैनसिल, बच्छनाभ, जमालगोटा और सुहागा क्रमशः मिलावें। पश्चात् शेष औषधियों को कपड़छन चूर्ण मिलाकर भांगरा, गोखरू, नींबू और अदरक के रस की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से ३ रत्ती, दिन में २ बार निवाये जल से देवें।

उपयोग–श्लीपदगजकेशरी श्लीपद और प्लीहावृद्धि को दूर करता है। श्लीपद और प्लीहावृद्धि के साथ उत्पन्न ज्वर और अन्य रोग भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

❑ ❑

(३४) वृद्धिरोग।

१. वृद्धिनाशक रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ५-५ तोले तथा सुवर्णमाक्षिक भस्म १० तोले लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करके फिर माक्षिक भस्म मिलावें। फिर एरण्ड तैल से १ दिन और हरड़ के क्वाथ से ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में दो बार देवें।

अनुपान–कर्णस्फोटा (कनफुटी-कानफोड़ी) का रस, बलातैल, चने का क्वाथ, यवक्षार या एरण्ड तैल मिला हुआ हरड़ का क्वाथ।

वक्तव्य–कर्णस्फोटा को मराठी में कनफुटी, कानफोड़ी। गुजराती में करोलियों। काठियावाड़ में कागडालियों। बंगाल में लताफटकी, नयाफटकी, तमिल में कोटावन, मुद्दकोट्टन। तेलुगु में ज्योतिष्मति, तिगे और लेटिन में कार्डियोस्पर्मक हेलिकेबम् (Cardiospermum Halicabulm) कहते हैं। यह वर्षायु और बहु वर्षायु वनस्पति है। शाखायें पतली और कोमल होती है। पान त्रिकोणाकार, शिखर भाग में अति तीक्ष्ण और आधार स्थान में सकड़े होते हैं। फूल सफेद, ३ से ४४ मिलीमीटर (लगभग १/८ इञ्च) लम्बे और थोड़े फूलों के छत्राकार तुर्रे आते हैं। बीज चिकने ४ से ६ मि.मी. व्यास के गोलाकार, काले, सूक्ष्म, सफेद, हृदयाकार और उपकवच वाले होते हैं।

उपयोग–यह रसायन वृषणवृद्धि और अन्त्रवृद्धि का नाश करता है। शान्तिपूर्वक दीर्घकाल तक सेवन करना चाहिये। कोष्ठबद्धता हो, तो हरड़ का क्वाथ या एरण्ड तैल का अनुपान रूप से उपयोग करना चाहिये। मूत्रशुद्धि न होती हो, तो यवक्षार मिश्रित हरड़ का क्वाथ लेना चाहिये ऐसे समय में कानफोड़ी क्वाथ विशेष हितावह है।

२. वृद्धिहरी वटिका।

द्रव्य–कुन्दरु गोंद, कांटे वाले करंज के सेके हुए फलों का मगज और काला नमक ४-४ तोले, इन्द्रजौ, बायविडंग, छिलका निकाला हुआ लहशुन, इन्द्रायण की जड़, अजमोद और रूमी मस्तंगी ये ६ औषधियां २-२ तोले, भुनी हींग और डीकामाली (नाड़ी हिंगु) १-१ तोला लें।

विधि–सबके कपड़छन चूर्ण को घीकुंवार के रस में १ दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में ३ बार जल के साथ।

उपयोग–यह वटिका वातज और कफज वृद्धिरोग, कृमि विकार और उदरपीड़ा को निवृत्त करती है।

३. वृद्धिहर लेप।

(१) एरण्ड के बीज की गिरी,रास्ना, एलुआ, गूगल, कुन्दरू, कालीमिर्च और पुनर्नवा, इन ७ औषधियों को समभाग मिला के जल के साथ पीसकर पतला कल्क तैयार करें। इसे थोड़ा गर्मकर लेवें, फिर वृषण पर से बालों को दूरकर लेप लगा देवें। इस तरह दिन में दो समय लेप करने से नया वृषण शोथ ३-४ दिन में ही दूर हो जाता है।

सूचना–गरम जल में कपड़ा भिगो के सावधानीपूर्वक पहले के लेप को धोके फिर स्वच्छ कपड़े से पोंछकर नया लेप लगाना चाहिये।

(२) शिला रस को तमाखू के ताजे पान पर लगाकर गरम करें। फिर अण्डकोष पर से बालों को साफकर पान को बाँध देवें। ऊपर से लंगोट बांध लेवें। इस तरह १ सप्ताह तक दिन में दो बार करते रहने से, वृषणावरण में भरा जुआ जल सूख जाता है तथा वृषणशोथ निवृत हो जाता है और वेदना शान्त हो जाती है।

सूचना–तमाखू के व्यसनी को तमाखू के पान का उपयोग करना चाहिये। दूसरों को उबाक आकर वमन हो जाती है एवं वमन होने पर लाभ जल्दी होता है, परन्तु कितनेक रोगी घबरा जाते हैं। अत: निर्बल मन वालों को नागरबेल के पान पर शिलारस लगाकर बांधना चाहिये।

(३) खाने की तमाखू ५ तोले और मुलतानी मिट्टी ५ तोले को सुबह भिगो के शाम को मल छानकर पकावें तथा रात्रि में लेप करें। किन्तु पानी न पिलावें। प्यास अधिक होती हो तो दूध अथवा घी बारम्बार पिलाने से वृषण वृद्धि दूर होती है।

(४) फुलसन (विदियासन) के बीजों को रात्रि के समय शराब में भिगोकर प्रात: पत्थर पर पीस के पकाकर उपरोक्त विधि से लेप करें। यह सत्वर लाभकारी है। *(पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)*

(५) मन:शिला, जायफल और जावित्री को गोदुग्ध में पीसकर लेप करें और ऊपर एरण्ड पत्र रखकर लंगोट बांधने से १ सप्ताह में नया वृषण वृद्धि रोग शान्त हो जाता है।

(६) दशांगलेप २ तोले और उदुम्बर सार ६ माशे को मिला के निर्गुण्डी के रस में पीसकर वृषण पर लेप करने से शोथ और वेदना दोनों शान्त हो जाती हैं। *(स्व. पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

वक्तव्य–वृद्धिरोग में मल-मूत्र साफ लाने तथा वायु को अनुलोमन करने वाले आहार और औषध का उपयोग करना चाहिये।

श्लीपद और वृद्धि रोग दोनों की उत्पत्ति फाइलेरिया नामक कीटाणु से होने से डाक्टरी में वृद्धि रोग का अन्तर्भाव श्लीपद (Elephantiasis) में किया गया है। उपचार और पथ्यापथ्य दोनों के लिये अनेक अंश में समान माना गया है।

(३४) गण्डमाला (Scrofula), गलगण्ड (Goitre)

१. गण्डमालाहर योग।

(१) शिरीष बीज की गिरी का चूर्ण २० तोले, कचनार छाल चूर्ण १० तोले और शहद ६० तोले लेवें। तीनों को मिलाकर के १० दिन तक रहने देवें, फिर निकाल के रोज प्रात: सांय १-१ तोला सेवन करें। *(कविराज पं. हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति)*

सूचना-प्रात: और सायंकाल में कुछ भी खाने या पीने के पहले औषध सेवन करावें और ऊपर से वक्ष्यमाण गण्डमालाहर अर्क पिलाते रहें।

(२) काञ्चनार गूगल २ माशे, प्रवाल पञ्चामृत ४ रत्ती और सुवर्ण भस्म १/४ रत्ती मिलाके उसके २ हिस्से कर सुबह शाम देवें। अनुपान रूप से कचनार छाल, बरने की छाल, गोरखमुण्डी और खैर की छाल या खैर की लकड़ी का बुरादा समभाग लेकर २-२ तोले का क्वाथ करके पिलाते रहें, तथा गूगल, गन्धक और रसोत तीनों को जल में पीसकर लेप करते रहने से नया गण्डमाला रोग १-१॥ मास में दूर हो जाता है। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

(३) वातरोग में लिखे हुए पञ्चामृत लोहगुग्गुलु का सेवन अमृतप्राशावलेह के साथ प्रात: सायं कराते रहने से नये गण्डमाला और गलगण्ड रोग में अच्छा लाभ होता है।

(४) रसकपूर १ तोला, भिलावा, अजवायन और गुड़ २-२ तोले मिला के कूटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर मट्ठे के साथ १-१ गोली निगलवाते रहने से गण्डमाला रोग दूर हो जाता है।

(५) एक १०-१२ वर्ष के बच्चे की ग्रीवा में ३-४ गांठें थीं; मन्दज्वर बना रहता था और शारीरिक वजन क्रमश: घटता जाता था। डॉक्टरों ने गले का क्षय (T.B.) बताया था। पर उसे प्रात: सायं २-२ माशे सुदर्शन चूर्ण और १-१ तोले बछड़े का गोमूत्र ६ मास तक देने से सब गांठे जल गई और ज्वर का शमन होकर रोगी सबल और पुष्ट हो गया। *(स्व. राजवैद्य पं. श्री रामचन्द्रजी)*

(६) छोटे बालक को गण्डमाला होने पर अपामार्ग के मूल के छोटे-छोटे टुकड़ों की माला बनाकर गले में पहना देने से भी गिल्टियां २-३ मास में दूर हो जाती है। *(कविराज पं. हरदयाल जी, वैद्यवाचस्पति)*

२. गण्डमालाहर अर्क।

द्रव्य-पुनर्नवामूल २ सेर, मुण्डी और बरना की छाल १-१ सेर और जल २० सेर लेवें।

विधि-तीनों औषधियों को जौकूटकर जल में भिगो देवें। २४ घण्टे के पश्चात् नलिका यन्त्र द्वारा ५ से ७ सेर तक अर्क निकाल लेवें। यदि कचनार की छाल भी १ सेर मिला दी जाये तो अच्छा रहेगा। *(कविराज पं. हरदयालजी, वैद्यवास्पति)*

उपयोग-गण्डमालाहर योग के सेवन के साथ यह अर्क नित्य ५-५ तोले दिन में दो बार पिलाते रहने से ४०-४५ दिन में गण्डमाला और अपची दूर हो जाती है।

सूचना-रोग अति जीर्ण हो जाने पर लाभ होने की आशा कम रहती है। दही, मट्ठा, दूध, उड़द, खटाई, पक्का भोजन और अन्य कफकारक पदार्थों का त्यागकर देना चाहिये।

यदि रोगी को ज्वर भी आता हो तो सुदर्शन चूर्ण ८२ सेर, सारिवा ८१ सेर, गिलोय ८॥ सेर, सबको जौकूट चूर्ण करके ८५ सेर जल में भिगोकर ८५ सेर अर्क खेंच लेवें।

मात्रा और उपयोग-५-५ तोले अर्क में समान भाग गण्डमालाहार अर्क मिलाकर प्रात: सांय पिलाते रहने से ज्वर सहित गण्डमाला नष्ट हो जाती है।

३. गण्डमालान्तक लेप।

विधि-एक कली वाले साफ छिलके रहित ५ तोले लहशुन को खरल में पीसकर ४ तोले वैसलीन मिलाकर ३ घण्टे खरलकर मिश्रण बना लेवें। *(कविराज पं. हरदयाल जी, वैद्यवाचस्पति)*

उपयोग-गण्डमाला की गिल्टी के आकार की कपड़े की गोल चिकती काटके उस पर लेप लगाकर ग्रन्थि पर चिपका देवें। फिर ऊपर कपड़े की पट्टी बाँध देवें। इस चिकत्ती और पट्टी को दिन में दो बार बदल देवें। यदि असयम में औषधिसह पट्टी उस स्थान से हट जाये, तो उसे निकाल उसी समय नयी औषधि वाली पट्टी बाँध देवें।

यह औषध गण्डमाला की प्रारम्भावस्था में अति हितकारक है। १५-२० दिन तक रोज पट्टी बांधते रहने से लाभ होने लगता है। प्रारम्भ में ग्रन्थि में मृदुता आती है, फिर ग्रन्थि में संगृहीत दूषित रस पतला होकर रक्त में लीन होने लगता है। पश्चात् २-३ मास में ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं।

सूचना-इस औषध के उपयोग काल में ऊपर लिखा हुआ गण्डमालाहर योग अथवा गण्डमालाकण्डन रस (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड) का सेवन कराते रहना चाहिये।

४. गलगण्डहरलेप।

(१) सफेद चन्दन और आँवले को लेकर चन्दन के समान जल में घिसें। फिर थोड़ी गिले अरमानी मिलाकर लेप करें। वह लेप दिन में ३-४ बार करते रहने से नया गलगण्ड (Goitre) रोग थोड़े ही दिनों में दूर हो जाता है।

(२) मिरच्याकन्द के रस में सोनागेरू मिलाकर लेप करने से गलगण्ड और गण्डमाल की गांठ बिखर जाती है।

(३) एरण्डमूल और पलाशमूल को चाँवलों के धोवन में घिसकर लेप करते रहने से गलगण्ड मिट जाता है।

(४) रक्तचन्दन, लोध, पीलू और दारुहल्दी को जल में घिसकर बार-बार लेप करते रहने से नया गलगण्ड बैठ जाता है।

(५) हरताल को गोमूत्र में घिसकर लेप करने से गलगण्ड दूर हो जाता है।

५. अपचीहर मलहम।

द्रव्य-राल, गन्धाबिरोजा और गूगल १-१ सेर, मोम ४० तोले और तिल तेल ३॥ सेर लें।

विधि-प्रथम १०-१५ सेर जल आ सके, उतनी बड़ी कलई की हुई पीतल की कड़ाही लेके उसमें तैल को गरम करें। फिर उसमें राल डालकर चलावें। १-२ मिनट बार गन्धाबिरोजा, गूगल और मोम क्रमशः डाले। सब मिल जाने पर तुरन्त कड़ाही को नीचे उतारकर मलहम को कपड़े से छान लेवें (देरी करने पर छन नहीं सकेगी)। फिर ५-१० मिनट बाद गरम-गरम को ही बोतलों में भर लेवें।

उपयोग-फूटी हुई अपची और दूसरे पूयप्रधान व्रणों का शोधन और रोपण करने के लिए इस मलहम की पट्टी लगाई जाती है।

६. गुग्गुलुपञ्चतिक्त घृत (पञ्चतिक्तकघृत गुग्गुलु)।

द्रव्य व विधि-नीम की छाल, गिलोय, अडूसा, परवल के पान, छोटी कटेली, गोरखमुण्डी, वरना की छाल, कचनार की छाल, निर्गुण्डी मूल, नागरमोथा, अमलतास की छाल और सुहिंजने की छाल, इन १२ औषधियों को ४०-४० तोले लेवें। सबको जौकूटकर २०४८ तोले जल में मिलाकर अष्टमाँश क्वाथ करें। फिर इसे छानकर चूल्हे पर चढ़ावें। उसमें त्रिफला के साथ शुद्ध किया हुआ गूगल २० तोले, घी १२८ तोले तथा पाठा, बायविडंग, देवदारु, गजपीपल, सज्जीखार, जवाखार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, मालकाँगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, अजमोद, चित्रकमूल, कुटकी, भिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, हरड़, बहेड़ा, आँवला और अजवायन इन २६ औषधियों के १-१ तोले का कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करें। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)*

वक्तव्य-चक्रदत्त और भैषज्य रत्नावली में कुष्ठाधिकार के भीतर इस प्रयोग का मूलपाठ है। इस पाठ में आचार्यजी ने आवश्यक समझकर कुछ द्रव्य बढ़ा दिये हैं।

मात्रा-आध से १ तोला, प्रातःसायं गोदुग्ध के साथ।

उपयोग-यह घृत प्रबल वातरोग, संधिगत, अस्थिगत और मज्जागत वातप्रकोप, कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगंदर, गण्डमाला, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वासरोग, पीनस, कास, शोष, हृद्रोग, पाण्डु, गलरोग, विद्रधि और वातरक्त आदि दोषों में हितावह है। यह घृत नई और पुरानी तथा अधिक बढ़ी हुई उपद्रवयुक्त गण्डमाला, अस्थिक्षय, भगन्दर और प्रमेहपिटिका आदि पर विशेष व्यवहृत होता है।

७. कण्ठमालाहर मलहम।

द्रव्य-चिरौंजी, खसखस और धनियाँ २०-२० तोले, आम की गुठली की गिरी ५ नग, शुक्ति पिष्टी २ तोला, सिंगरफ, नीलाथोथा और मुर्दासंग १-१ तोला, मोरी बूंटी १ सेर*इन्द्रजौ ५ तोला, कालासर्प (जो इसके निमित्त न मारा हो) + १ नग लेवें।

विधि-प्रथम सब औषधियों को जौकूट कर इन्हें १ हाँडी में आधी नीचे और आधी ऊपर रखें। बीच में सर्प को रखें। पश्चात् उसका सम्पुट करके गजपुट की अग्नि दें। शीतल होने पर पीसकर रख लें।

(स्वामी श्री सोमतीर्थजी महाराज)

उपयोग-उक्त चूर्ण को शतधौत घृत में मिलाकर मलहम बना लें। पहले गाँठ या जख्म को नीम के क्वाथ से धोकर फिर इस मलहम को लगावें।

नोट-इस योग में कृष्ण सर्प होने से सम्पुट निर्जन स्थान में लगावें। मलहम अन्य बहुजन स्थान में न लगने पावे, इसका पूर्ण ध्यान रखें। मलहम लगाके हस्त को तुरन्त जन्तुघ्न विलयन से धो लें।

---

* मोरी बूंटी एक कन्द है। कांगड़ा जिले में इसको छिलहिठा कहते हैं। पंजाब में छल्लीसांप की बूंटी भी कहते हैं। श्रावण में जमती है। भाद्रपद के अन्त में पत्ते सूख जाते हैं। श्रावण मास में इसके क्षुप का तना चीतल सर्प के समान भासता है। कंद बाहर पड़ा रहने पर अपने आप अंकुर निकल आता है।

\+ मरे हुए सर्प कमेटी वालों से अनायास ही मिल जाते हैं। मरवाना नहीं चाहिये। भारतीय सभ्यता जीवमात्र के प्रति अहिंसा का उपदेश करती है।

९. कण्ठमालहर लेह।

द्रव्य–सिरस के बीज ४० तोले, मकोयबीज ५ तोले, चिरायता ५ तोले, छोटी इलायची के दाने ५ तोले, बड़ी इलायची के दाने १ तोलो, दालचीनी २ तोले, पीपल बड़ी ५ तोले, सोंठ ५ तोले, सौंफ २॥ तोले, कत्था २॥ तोले, सफेद मिर्च २ तोले, रसोंत १ तोला, छाया में सुखाये हुए नागरबेल के पान ५ तोले लें।

विधि–सबको कूट के कपड़छन चूर्ण करें। फिर उसमें दूना शहद मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखकर मुख बन्द करके ४० दिन तक जमीन में गाड़ दें। पश्चात् अवलेह को निकालकर उपयोग में लेवें।

मात्रा–१ से ३ माशे तक, बकरी या गौ दूध से दिन में २ बार देते रहें।

उपयोग–इस लेह का और उपर्युक्त मलहम का उपयोग ३-४ मास तक करने पर कण्ठमाल दूर हो जाती है। हजारों रोगियों पर परीक्षा की है।

(स्वामी श्री सोमतीर्थजी महाराज)

❑ ❑

(३६) व्रण-विद्रधि-अर्बुद।

१. व्रणान्तक गुग्गुलु।

द्रव्य–सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, खरैंटी, असगन्ध, प्रसारणी, मजीठ, अर्जुनछाल, मुलहठी, देवदारु, पुनर्नवा इन १३ औषधियों को २-२ तोले, शुद्ध शिलाजीत १६ तोले तथा अस्थि शृंखलिका (हड़जोड़ी) के स्वरस में शुद्ध किया हुआ कणगूगल १३२ तोले लें।

विधि–प्रथम काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण कर उसमें भस्में मिला देवें। पश्चात् शुद्ध शिलाजतु और गूगल का पानी या त्रिफला क्वाथ में घोल बनाकर सबको अच्छी प्रकार घोट के या कूटके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली, माँसरस या जीवनीय गण के क्वाथ के साथ।

जीवनीय गण–ऋद्धि और वृद्धि, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्‌गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी, ये १२ औषधियाँ कही है। यह गण वयःस्थापक है।

उपयोग–इस गूगल के सेवन से पूय, रक्त और अस्थि, बह बहकर निकलते हों, ऐसे दुष्टव्रण, भग्न, विश्लिष्ट सन्धियाँ और अस्थिभग्न आदि व्याधियाँ निवृत्त हो जाती है।

२. व्रणापहारी रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनःशिला और शुद्ध हरताल २-२ भाग तथा गूगल सबके समान लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें तथा गूगल को घी या करंज का तैल डालकर खूब कूटें। फिर कज्जली में मनःशिला और शुद्ध हरताल को मिलाकर खरल करें पश्चात् इन्हें गूगल के साथ कूटकर मिलावें। फिर त्रिफला के क्वाथ से ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली, त्रिफला क्वाथ अथवा मंजिष्ठादि अर्क या अन्य रोगानुसार अनुपान से दिन में दो बार देवें।

उपयोग–यह रसायन व्रण, दुष्टव्रण, नाड़ीव्रण और भगन्दर को नष्ट करता है। मेदे प्रकृति और कफप्रकृति वालों को नूतन एवं जीर्ण रोगों में हितावह है।

३. व्रणरोपण रस।

द्रव्य–शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और शुद्ध अफीम, तीनों को समभाग लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करके उसमें अफीम मिलावें ओर ३ दिन तक नींबू के रस में मर्दन करें। पश्चात् घीकुँवार का रस, नरमूत्र (बकरे का मूत्र); चित्रकमूल का क्वाथ, सैंधानमक का जल (१-१६), काले नमक का जल (१-१६), इन सबके साथ ७-७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार शहद; गूगल अथवा जल के साथ।

उपयोग–यह व्रणरोपण रस समस्त व्रण, सद्योजात व्रण, मकड़ी के विषजनित व्रण, भगन्दर, गांठ और गण्डमाल आदि को नष्ट करता है।

पथ्य–सफेद चांवल, मूंग, गेहूँ और घी देवें। नमक न देवें। इस रसायन में अफीम है, अतः मात्रा अधिक न देवें।

४. व्रणान्तक रस।

द्रव्य-शुद्ध सफेद सोमल १ भाग, शुद्ध सिंगरफ २ भाग, सफेद कत्था ३ भाग लें।

विधि-सबको मिला के अदरक के रस में ३ दिन खरल करके, सरसों के समान गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से ३ गोली, घी के साथ दिन में २ बार।

उपयोग-इस व्रणान्तक रस के सेवन से व्रण जल्दी सूख कर भर जाते हैं। उपदंश, रक्तविकार और अन्य कितनेक रोगों में व्रण हो जाने पर वे सत्वर नहीं भरते तथा नाड़ीव्रण होने पर वर्षों तक दु:ख पहुँचता है। इन पर इस रसायन का सेवन कराने से सत्वर लाभ हो जाता है।

सूचना-भोजन में घी अधिक लें। ६ मास तक मूंग, करेला, कूष्माण्ड, गुड़ और केला नहीं खिलाना चाहिये।

उपदंश-जन्य व्रण पर यह विशेष गुणकारी है।

५. महास्नेह।

द्रव्य-सूअर की चर्बी २० तोला, घृत २० तोला, तैल मीठा १० तोला, मोम ४ तोला और कपूर १ तोला लें।

विधि-प्रथम एक कढ़ाई में मोम को पिघला लें, पश्चात् उसमें चर्बी, घृत तथा तिल्ली का तैल क्रमश: डालते हुए हिलाते जायें। जब सह स्नेह द्रव्य मिलकर एक जीव हो जायें तब कड़ाही को नीचे उतार कर स्वल्प शीतल होने पर उसमें कपूर का बारीक चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर हिला दें। फिर सबको १ बड़ी शीशी में या छोटी छोटी शीशियों में भर दें।

मात्रा-यह सेवन की अपेक्षा मर्दन करने में उपयुक्त रहता है।

उपयोग-अस्थिशूल अर्थात् हड्डियों में शूल चलना, आघातजन्य शूल, मांसपेशी पतली हो जाना, हड्डी सूखना तथा हाथ पैरों की कृशता (पतलापन) होना; किसी स्थान पर वातजन्य शूल या शोथ होना आदि रोगों में उन-उन स्थानों पर मालिश करने से उन विकारों की शान्ति होती है।

यदि वराह वसा असली व ताजा हो तो हस्तमैथुनादि कुप्रवृत्तियों से उत्पन्न लिंग शैथिल्य, पतलेपन एवं छुटपन पर भी लम्बे समय तक तिला के समान प्रयोग करने पर अच्छा फल प्रदर्शित करता है। इससे अन्य तिलाओं के समान इन्द्रिय पर फुंसियाँ व ललाई आदि होने का भी भय नहीं रहता। *(वैद्य श्री बद्रीनारायण शर्मा)*

६. विडंगारिष्ट।

द्रव्य व विधि-बायविडंग, पीपलामूल, रास्ना, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलवालुक (अभाव में कूठ या नेत्रबाला) और आंवला इन ८ औषधियों के जौकूट चूर्ण ६४-६४ तोले को ८१९२ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश (२०४८ तोले) जल शेष रहने पर पात्र को उतारकर छान लें। क्वाथ शीतल होने पर शहद १२०० तोले, धाय के फूल ८० तोले, त्रिजात (दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची के दाने) ८ तोले, प्रियंगु, कचनार की छाल और लोध ४-४ तोले तथा त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च और पीपल) ३२ तोले का चूर्ण मिला मुखमुद्रा कर १ मास रहने देवें। आसव परिपक्व होने पर छान कर बोतलों में भर लेवें। *(शा.सं.)*

वक्तव्य-मूलग्रन्थ में बायविडंग आदि औषधियाँ २०-२० तोले लिखी है एवं क्वाथ का जल १०२४ तोले शेष रखने का लिखा है। परन्तु यह भूल परम्परागत नकल करने वालों की हुई होगी, ऐसा मानकर हमने सुधार किया है। क्वाथ द्रव्य अल्प होने से अरिष्ट यथेष्ट बलवान् नहीं बन सकेगा।

मात्रा-१। से २॥ तोले, दिन में दो बार जल मिलाकर देवें।

उपयोग-यह अरिष्ट दीपन, पाचन, ग्राही, कीटाणुनाशक ओर अन्त्र संशोधक है। मूलग्रन्थकार ने नये उत्पन्न होने वाले अन्तर्विद्रधि आदि विकारों के प्रतिबन्ध के लिये इस अरिष्ट का निर्माण किया है। यह अरिष्ट आमाशय और अन्त्र में स्थित सेन्द्रिव विष का रूपान्तर करा देता है। कीटाणुओं को नष्ट करता है तथा पचनक्रिया को बढ़ा देता है। इस हेतु से रस और रक्त की शुद्धि हो जाती है। परिणाम में विद्रधि की उत्पत्ति में रुकावट आ जाती है एवं भगन्दर, गण्डमाला का बल भी घट जाता है। पचनक्रिया बढ़ जाने के हेतु से दूषित आम, मेद नहीं बनता और वातप्रकोप नहीं होता। जिससे कीटाणुजन्य उरुस्तम्भ, प्रमेह, हनुस्तम्भ और प्रत्यष्ठीला रोग दूर हो जाते हैं।

उदरकृमि पर भी यह विडंगारिष्ट लाभदायक है। यह अरिष्ट छोटे कृमियों को नष्ट कर देता है। एवं बड़े कृमियों की उत्पत्ति को रोकने में हितावह है। बड़े कृमियों को कृमिनाशक औषध और विरेचन द्वारा निकालकर फिर इस विडंगारिष्ट का सेवन कराया जाये तो अन्त्र और रक्त में रहे हुए कृमिजन्य विष और अण्डे नष्ट हो जाते हैं। अन्त्र निर्दोष होकर सत्वर सबल बन जाती है। फिर कृमि रोगी की अथवा कृमिजन्य पाण्डु, उदरशूल, अतिसार, वमन, हृद्रोग, शिरदर्द आदि की पुन: उत्पत्ति नहीं हो पाती।

७. हरड़ पाक।

द्रव्य-हरड़, सनाय, छोटी हरड़, मिश्री, मजीठ और घी प्रत्येक १०-१० तोले तथा कालीमुनक्का २० तोले लेवें।

विधि-मुनक्का को धोकर बीज निकाल देवें। शेष औषधियों को कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। मुनक्का को पीसकर कल्क करें। फिर शेष चूर्ण और घी मिलाकर मर्दन करें। एक जीव होने पर अमृतबान में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा-३-३ माशे, दिन में दो बार सेवन करें।

उपयोग-इस पाक के सेवन से व्रण-विद्रधि का विष, विस्फोटक की उष्णता, उसके हेतु से उत्पन्न शिर:शूल और त्वचापर की पिड़िकाएँ आदि दूर होती है। रक्त का प्रसादन होता है, उदरशुद्धि होती है तथा मस्तिष्क शान्त बनता है।

८. अन्तर्विद्रधिहर योग।

(१) पथ्या, गुग्गुलु ४-४ रत्ती, एरण्ड मूल के २-२ तोले क्वाथ के साथ दिन में ३ बार देते रहने से अन्तर्विद्रधि २-३ दिन में ही ऊपर आ जाती है।

वक्तव्य-(१) भोजन में हींग, चना, शक्कर और रोगी के स्वभाव से प्रतिकूल वस्तु बन्दकर देनी चाहिये।

(अ) चमड़ी में खिंचाव हो, ऐसा कोई लेप न लगावें।

(आ) जलौका लगाकर दूषित रक्त निकालने का प्रयत्न न करें।

(इ) गूलर या सिरस के पानों का गरम किया हुआ कल्क बार-बार बांधते रहें।

(ई) विद्रधि में असह्य वेदना होने पर काली द्राक्षा (बीज रहित) को पीस हल्दी या कुमकुम भुरभुराकर पट्टी बांधने पर वह सरलता से फूटकर पूय बाहर निकलने लगता है। फिर लेप को लगाने से घाव शुद्ध होकर रोपण होने लगता है। यदि घाव शुद्ध हो जाने पर भी न भरता हो तो अन्य रोपण मलहम का प्रयोग करें।

(२) सुहिंजने की छाल के क्वाथ की ७ भावनायें दी हुई कज्जली २-२ रत्ती को दिन में २ बार प्रात:सायं शहद के साथ देकर फिर सुहिंजने की छाल का स्वरस २-२ तोले पिलाते रहने से देह के भीतर किसी भी स्थान में उत्पन्न विद्रधि यदि आमावस्था में है, तो उसका निवारण हो जाता है। इस तरह उपान्त्रप्रदाह, यकृत्प्रदाह, प्लीहाप्रदाह, अन्त्रप्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह आदि अन्तरिन्द्रिय के विकारों पर भी यह प्रयोग हितावह सिद्ध हुआ है।

ताजी छाल न मिलने पर सुहिंजने की सूखी छाल का कषाय बनाकर उपयोग में लिया जाता है। सुहिंजने की छाल के क्वाथ में गेहूँ के आटे की पुल्टिस बनाकर विद्रधि स्थान पर बांधते रहने से बाहर से भी विष का शोषण होने लगता है। हो सके, तो सुहिंजने की छाल मिला उबाला हुआ जल पीने को देना चाहिये। एवं रोगी को केवल दूध पर रखना चाहिये। दूध को भी सुहिंजने की छाल का चूर्ण और ४ गुना जल मिला क्षीरपाक विधि से पका (दुग्धावशेष) कर पिलाते रहना विशेष हितावह है। आवश्यकता पर अधिक ज्वर और घबराहट रहने पर ब्राह्मी वटी या कस्तूरी भैरव रस भी देते रहना चाहिये।

सुहिंजने के समान वरना के क्वाथ की ७ भावनायें देकर कज्जली का उपयोग करने से भी अन्तर्विद्रधि का प्रसादन हो जाता है।

९. दशांग उपनाह (पुल्टिस)।

द्रव्य-दशांग लेप का चूर्ण १ तोला, शहद १ तोला, सूखा चूना (बुझाया हुआ) १ तोला, कूटी हुई अलसी ५ तोले लें।

विधि-पहले दशाँग लेप में घी और शहद मिला दें। फिर कूटी हुई अलसी मिला जल डालकर रबड़ी जैसा पतला प्रवाही कर मन्दाग्नि पर पकावें। उसको पकाने के समय चम्मच से चलाते रहें। नीचे उतारने के पश्चात् उष्णता थोड़ी कम होने पर चूना मिला लेवें। तत्पश्चात् एक तख्ते पर साफ कपड़ा बिछा उस पर चम्मच से इसको फैला दें। व्रण शोथ पर घी वाला हाथ लगाकर सहन हो सके उतना गरम होने पर बाँध देवें।

उपयोग-यह पुल्टिस पकने वाले फोड़े को जल्दी पकाकर फोड़ देती है। यदि शोथ से पाक की क्रिया आरम्भ न हुई हो, तो उसे यह बैठा देती है। जिस व्रणशोथ में सुई चुभाने के समान पीड़ा होती रहती है; वह भी इसके पक जाता है। ऐसे पकनेवाले फोड़े पर पुल्टिस २-२ घण्टे पर बदलनी चाहिये। जिस फोड़े में दर्द न हो उस पर ३-३ घण्टे पर पुल्टिस बदलें तो काम चल सकेगा।

व्रण फूट जाने पर भी जब तक पूय निकलता रहे, तब तक (२-३ दिन) इस पुल्टिस को बांधने से व्रण जल्दी शुद्ध हो जाता है।

१०. क्षारादि उपनाह।

द्रव्य-सांभरनमक ३ माशे, लोटिया सज्जी ३ माशे, हल्दी १ माशे, घी ६ माशे और कूटी हुई अलसी या बाजरी का आटा २ तोला लें।

विधि-सबको मिला जल डालकर पतला करें। फिर मंदाग्नि पर पका, कपड़े पर फैलाकर पुल्टिस बना लेवें। पके फोड़े पर सहन हो सके उतना गरम बांध देने से आधे या एक घण्टे में वह फूट जाता है।

सूचना-इस पुल्टिस का उपयोग कच्चे फोड़े पर न करें।

११. आगन्तुक क्षतान्तक लेप।

द्रव्य व विधि–एरण्ड तैल के नीचे की गाद, गुड, नमक, हल्दी और शिर के बाल, सबको मिला लोहे की कड़छी में डालकर गरम करें। फिर कपड़े पर डाल सहन हो उतना गरम चिपका देवें। इस तरह दिन में एक या दो बार लेप लगाते रहने से ३-४ दिन में चोट वाले भाग में जिस स्थान पर शोथ आया है; उस स्थान के भीतर रूझ आ जाती है और बाहर की त्वचा सफेद मृत हो जाती है। फिर शनैःशनैः वह त्वचा निकल जाती है और विकार बिल्कुल दूर हो जाता है। *(आ.नि.मा.)*

सूचना–मृत त्वचा जब तक स्वयमेव दूर न हो तब तक खैंचकर या काट कर न निकालें। अन्यथा भीतर की कोमल, लाल त्वचा पक जावेगी। यदि अन्तस्त्वचा में पूयोत्पत्ति हुई हो या जल भर गया हो तो कैंची से थोड़ा काटकर या छिद्रकर पूय या जल को निकाल दें। पर त्वचा को न निकालें।

१२. निर्गुण्डी तैल।

द्रव्य व विधि–सम्हालू की ताजी जड़ (शाखा) और ताजे पत्तों को कूट यन्त्र विधान से निकाला हुआ स्वरस २ सेर और तिल तैल २ सेर मिला यथा विधि तैल सिद्ध करें। *(च.सं.)*

वक्तव्य–मूल ग्रन्थ में 'समं तैलम्' वचन होने से टीकाकार चक्रपाणिने समान स्वरस लेने का विधान किया है, किन्तु और आचार्यों ने निर्गुण्डी स्वरस ४ गुना लेने को लिखा है।

उपयोग–इस तैल के बाह्य और आभ्यन्तर प्रयोग से नाड़ी व्रण का शोधन होता है। कुष्ठ, पामा, अपची, विविध प्रकार के स्फोट और सबप्रकारके व्रण दूर होते हैं, तथा वातविकार का भी निवारण हो जाता है। इस तैल से गण्डमाला, कान का नासूर, कफप्रकोपज व्याधियों और विविध वात रोगों पर अच्छा लाभ पहुँचता है।

कान में पूय होने पर जल्दी योग्य सम्हाल न ली जाये तो रोग दृढ हो जाता है; फिर वर्षों तक नहीं जाता। ऐसे पुराने कर्ण रोग पर इस तैल का प्रयोग करने से १-२ मास में नाड़ी व्रण दूर हो जाता है।

वातरोग पर इसकी मालिश कराई जाती है। कम्पवात, साँधों की पीड़ा, वातज शूल आदि में इस तैल को निवाया कर मालिश करने तथा १-१ माशा दिन में २ बार पिलाते रहने से थोड़े ही दिनों में वातविकार दूर हो जाता है।

फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरणशोथ, उदर्य्याकला का शोथ, तीव्र आमवात में संधिशोथ, सुजाकजनित वृषणशोथ, इन सब स्थानों के शोथ में निर्गुण्डी के क्वाथ का पान और इस तैल को निवाया कर बाह्य उपयोग में लेते रहने से सब प्रकार के शोथ दूर होते हैं।

स्वानुभव–यह तैल वात के अनेक रोगों को दूर करता है। वंध्या स्त्री को गर्भधारण कराता है। यह वातप्रकोप के कारण जिन इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हुई हो, उनके व्यापार को पुनः संचालन करता है। यह वैद्य के पास हर समय में रहने योग्य सफल योग है। जिस तरह डॉक्टरी में टिंचर आयोडीन से विविध कार्य सम्पन्न होते हैं उसी तरह इस तैल का उपयोग अति व्यापक रूप से अनेक रोगों पर होता है। यह तैल स्थावर-जंगम विष, कीट विष (जो विशेष उग्र न हों), दूषी विष, कौटिल्य विष और वैकृत्विषों का शमनकर मनुष्य में नवजीवन का संचार करता है। यह सहस्रानुभूत सिद्ध और दिव्य प्रयोग है। *(पं. श्री राधाकृष्णजी द्विवेदी)*

१३. व्रणशोधन तैल।

द्रव्य व विधि–कड़वे निम्ब के पान साफ किये हुए १२८ तोले, हल्दी और निसोत की छाल ६४-६४ तोले लें। फिर इन्हें ७२ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें और छानकर पुनः चूल्हे पर चढ़ावें। इसमें तिल का कल्क ६४ तोले और तिल तैल ८४॥ सेर मिलाकर मन्दाग्नि से तैल सिद्ध करें।

उपयोग–इस तैल के उपयोग से व्रणों का जल्दी शोधन होता है। सामान्य व्रण, सड़े हुए दुष्ट व्रण, नाड़ीव्रण, भयंकर वेदना, शोथ और ज्वर सह व्रण प्रकोप, इन सबका शोधन कर पूय को बाहर खींच लेने के लिये इस तैल का फोहा रखा जाता है। पहले नीम के पान और त्रिफला के उबाले हुए जल से व्रण को धोकर फिर इस तैल का फोहा उस पर रखकर उसके ऊपर शहद की पट्टी रखें और व्रण पर पट्टी बांधे। इस तरह पट्टी बांधते रहने से अति गहरे व्रण भी थोड़े ही दिनों में शुद्ध होकर भर जाते हैं।

नाड़ीव्रण में इस बाह्य उपचार के साथ बंगभस्म और शृंग भस्म मिलाकर पुनर्नवादि क्वाथ या मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ इसे देते रहने से विषनिवृत्ति, रक्तप्रसादन एवं शोधन और रोपण कार्य त्वरित होते हैं।

विवेचन–नूतन दुष्ट व्रण अधिक गहरा हो जाने से ज्वर भी रहता है। ज्वर १०० डिग्री से कम न हो ऐसी अवस्था में यह तैल १-२ माशे रात्रि के आधे घण्टे पहले पिलाते रहने और महायोगराज गूगल १-१ रत्ती तथा चिरायता, चन्दन, सोंठ, अमृता सत्व, आंवला और नागरमोथा सबका कपड़छन चूर्ण ६-६ रत्ती मिलाकर शहद के साथ दिन में ३ समय देते रहने से थोड़े ही दिनों में व्याधि नष्ट हो जाती है।

छोटे बालकों की माता के स्तन कभी कभी पक जाते हैं। फिर उसमें से पूयस्राव होता रहता है। तीव्रशूल चलता है, कान पर शोथ आ जाता है और कुछ दिन व्यतीत होने पर गहरा घाव हो जाता है। तब इस शोधन तैल का फोहा बार-बार लगाते रहने से तथा कुटकी, मंजीठ, सारिवा, नागरमोथा, पाठा और पटोलपत्र का चूर्ण २-२ माशे दिन में ३ बार देते रहने से स्तनों के व्रण थोड़े ही दिनों में भर जाते हैं।

मधुमेह के विष से उत्पन्न प्रमेहपिड़िका, अलजी और प्रमेहविरहित अलजी होने पर भयंकर वेदना और जलन होती है। इसका वर्ण काला-लाल होता है और इसके चारों ओर छोटी-छोटी फुन्सियां हो जाती हैं। इनका पाक होने पर ज्वर तीव्र रूप से रहने लगता है। फूट जाने पर गहरा घाव हो जाता है। तब इसमें इस शोधन तैल का फाया रखने और दिन में दो बार स्वच्छ करते रहने से घाव थोड़े ही दिनों में भर जाता है। इस बाह्य उपचार के साथ उदर सेवनार्थ औषध भी देते रहने से विशेष लाभ पहुंचता है। सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी और गिलोयसत्व को शहद के साथ दिन में दो बार देवें। सुबह को कालीसारिवा और परवल के पान १-१ माशे का क्वाथ करके माक्षिक मिश्रण के साथ देते रहने से विष का शमन होकर जल्दी लाभ पहुँचता है।

स्वानुभव-एक वयोवृद्ध मधुमेही को कमर के चौथे मण के पास व्रण हुआ था वह ४ इञ्च लम्बा और ४ इञ्च गहरा था। पेशाब में ५ से ७ प्रति सहस्र शर्करा जाती थी। पहले डॉक्टरी उपचार करने पर अच्छा न हुआ। तब उसका आयुर्वेदिक उपचार श्री पं. गुणेशास्त्री से कराया गया, उसे शर्करा कम करने के लिये उदरसेवनार्थ औषध देने के साथ इस व्रणशोधन तैल से व्रणचिकित्सा प्रारम्भ की। परिणाम में ४८ दिन में वह व्रण भर गया और पेशाब में शक्कर जाना भी समाप्त हो गया।

एक युवक रोगी को मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग में निरुद्धप्रकाश (Phimosis) रोग हुआ। उस रोग में शिश्नमणि के ऊपर की त्वचा तंग हो जाती थी, जिससे पेशाब करने में रुकावट होती थी। उसकी शस्त्र चिकित्सा कराकर डाक्टरी औषधि से व्रण धावन, शोधन २४ दिन करने पर भी लाभ नहीं हुआ तब आयुर्वेदीय पद्धति से चिकित्सा प्रारम्भ की। जिस घाव पर इस व्रणशोधन तैल की पट्टी लगाई जाती थी वह १३ दिन के भीतर पूर्णत: भर गया।

एक युवा मनुष्य को पत्थर की खान में सुरंग से उड़े हुए पत्थर के लगने से दाहिने पैर पर गहरी चोट लगी। उसे २० मील दूर से औषधालय में लाया गया। इस व्रणशोधन तेल की पट्टी से ११ दिन में लाभ हो गया।

एक अंधी वयोवृद्धा स्त्री के पैर पर से चूने की गाड़ी निकल जाने से बाँये पैर का चूरा हो गया। उस पैर को घुटने के पास डाक्टरों ने काट दिया। और शस्त्र चिकित्सा करने के तीसरे दिन पट्टी खोली। पैर के टांके नहीं लग सकते थे। रुग्णा निर्बल वृद्ध और कृश होने से भी पैर को अधिक काटना आशक्य था। इस हेतु से उसका उपचार आयुर्वेदीय पद्धति से इस शोधन तैल द्वारा प्रारम्भ किया। घाव अति सड़ा हुआ होने पर भी इसी तैल से २॥ मास में वह भर गया।

१४. इरिमेदादि तैल।

द्रव्य व विधि-अरिमेद (दुर्गन्धवाले खैर की) छाल ४०० तोले को २०४८ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर इसमें तिल तैल १२८ तोले तथा अरिमेद की छाल, लौंग, गेरू, काला अगर, पद्माख, मजीठ, लोध, मुलहठी, लाख, बड़की जटा, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कर्पूर, शीतल मिर्च, कत्था, पतंग, धाय के फूल, छोटी इलायची के दाने, नागकेशर, कायफल इन २१ औषधियों के १-१ तोले का कल्क मिलाकर मंदाग्नि पर तैल सिद्ध करें। *(शा.सं.)*

सूचना-कर्पूर दो तोले को हम तैल छानने पर मिलाते हैं, पहले नहीं मिलाते हैं।

उपयोग-यह तैल मूल ग्रन्थकार ने मुखरोग पर लिखा है। मुखरोग पर यह जितना लाभदायक है, उतना या उससे भी अधिक उपयोगी यह व्रणों के रोपणार्थ है।

व्रण शुद्ध होने पर चाहे जितना गहरा हो, इस तैल की पट्टी से शीघ्र भर जाता है। निर्बल रक्त वाले वृद्ध मनुष्यों के व्रण, जो जल्दी नहीं भरते, वे भी इसके प्रयोग से सत्वर भर जाते हैं।

कितने ही रोगियों को उदर, ज़ंघा आदि प्रदेश में गहरी विद्रधि हो जाती है। जिसकी शस्त्र चिकित्सा क्लोरोफार्म सुंघाकर की जाती है। ऐसे घावों पर पहले कुछ दिनों तक व्रणशोधन तैल का और फिर इस इरिमेदादि तैल का अनेक बार श्री वैद्यराज गुणे शास्त्री ने उपयोग किया है और पूर्ण सफलता मिली है।

स्वानुभव-एक १९ वर्ष का नवयुवक साइकिल से गिरकर बेहोश हो गया। उसे आयुर्वेद रुग्णालय में पहुँचाया गया। उसकी अर्ध बेहोशावस्था में जख्म पर टांके लगा दिये। उसके मुख और हाथ पर बुरी तरह चोटे आयीं। मुखण्डल पर ७-८ टांके लगाये गये। उसके लिए प्रारम्भ से ही इस रोपण तैल का उपयोग किया था। २५ दिन में रोगी के सब घाव अच्छे हो गये।

इस तरह यह इरिमेदादि तैल व्रणों का रोपण करने में उत्तम कार्य करता है। इसी गुण से अहमदनगर के आयुर्वेद महाविद्यालय में इसे ''रोपण-तैल'' संज्ञा दी है।

१५. लाल मलहम।

द्रव्य व विधि–गन्धाविरोजा ४० तोले और हिंगुल १ तोला लें। पहले गन्धाविरोजे को कड़ाही में डाल मन्दाग्नि देकर पिघलावें। बीच बीच में १-२ बूंद चाकू से निकाल जल पर डालें और अंगुलियों से दबाकर देखें कि मलहम का पाक हो गया है या नहीं? पाक हो जाने पर कड़ाही को उतारकर तुरन्त कपड़े से द्रव को छान लें। इसमें हिंगुल थोड़ा थोड़ा करके डाल दें और मलहम शीतल न हो, तब तक किसी वस्तु से चलाते रहें। यदि चलाया नहीं जायेगा, तो हिंगुल भारी होने से तले में बैठ जायेगा।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

उपयोग–यह मलहम शोधन (व्रणों को शुद्ध करने वाला), रोपण (व्रणों को भरने वाला), वेदनाहर है। पार्श्वशूल (उरस्तोय प्लूरिसी) या अन्य स्थानों की वेदना पर इसके लेप से लाभ हो जाता है।

सूचना–इस मलहम को जिस स्थान पर लगाना हो उस स्थान के बराबर मोटे कपड़े की पट्टी काटें। फिर एक छुरी को गरमकर उससे मलहम निकालकर पट्टी पर फैलावें। इस पट्टी को व्रणशोथ स्थान पर बांधें; परन्तु इसके पहले उस स्थान के बालों को उस्तरे से साफ कर दें। अन्यथा पट्टी हटाने के सयम बाल खिचेंगे। यदि कुछ बाल रह गये हों और खिंचते हों तो तार्पिन तैल की कुछ बूंदे डालकर पट्टी को आसानी से हटा दें। पट्टी बांधने पर उस पर कागज चिपका देवें जिससे गन्धाविरोजा बाहर न निकलें।

१६. हरा मलहम।

द्रव्य–गन्धाविरोजा ४० तोले, जंगाल, साबुन और पत्थर के कोयले २-२ तोले, पापड़खार २ तोले लें।

विधि–पहले गन्धाविरोजा को मन्दाग्नि पर गरम करें। मलहम के योग्य बनने पर कपड़े से छानकर शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला लें। मलहम शीतल होने तक उसको हिलाते रहें। *(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

उपयोग–यह मलहम व्रणों का शोधन करने वाला, भरने वाला तथा फोड़ों को पकाकर फोड़ने वाला (विदारक) है। यदि व्रणशोथ पक जाने पर भी न फूटता हो, इसकी पट्टी बाँधने से वह जल्दी फूट जाता है। इसके अतिरिक्त 'ओरियंटल सोर' जिसको 'अकबरी फोड़ा' कहते हैं और वह १ वर्ष की अवधि के बिना नहीं मिटता, उस पर ३ महीने तक इस मलहम की पट्टी बाँधने से अवश्य आराम होते देखा गया है।*

१७. काला मलहम।

विधि–तिल तैल १ सेर को एक कड़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ावें। तैल गरम होने पर आध सेर सिन्दूर डाल, लोहे की कलछी से चलाते रहें। छींटे न उछले यह सम्हालें। उफाण आकर तैल चूल्हे में न गिर जाये वह भी देखते रहें। उफाण न आये इसके लिए कड़ाही ४-६ गुनी बड़ी रखनी चाहिये और पंखा भी तैयार रहना चाहिये। सिन्दूर का पाक मन्दाग्नि पर करें। सिन्दूर का रंग काला होने पर कड़ाही को नीचे उतार मलहम के २-४ बूंद जल में डालकर देखें कि गोली बनती है या नहीं? यदि मलहम फैल जाता है तो मलहम कच्चा माना जायेगा और मलहम जल में डूब जाता है तो मलहम कड़क माना जावेगा। खरपाक हो जाने पर मलहम लाभदायक नहीं रहता। योग्य पाक होने पर ही मलहम लाभ पहुँचाता है। इस मलहम को पुनः मन्दाग्नि पर चढ़ा, प्रवाही कर उसमें सूखा गन्धाविरोजा ४ सेर थोड़ा थोड़ा करके डालकर, अच्छी तरह चलाते रहें। सब विरोजा अच्छी तहर मिल जाने पर कड़ाही को नीचे उतार, उष्णता कुछ कम होने पर १० तोले कपूर मिला लेवें।

उपयोग–इस मलहम की पट्टी लगाने से सब प्रकार के व्रण, विद्रधि दूर हो जाते हैं। यह मलहम उत्तम व्रणशोधक और व्रण-रोपक है। पुराने और नये सब प्रकार के व्रणों पर लाभदायक है।

स्त्रियों के स्तन पकते हों तो उस पर इस मलहम की पट्टी लगाने से पूय निकल जायेगा और घाव भर जायेगा। यदि स्तन में दूध बार बार आता रहता हो तो रबर के दुग्धाकर्षक यन्त्र (Breast pump) द्वारा दूध को निकालते रहना चाहिये। व्रण और नाड़ी व्रण के मुख पर थोथ हो तो उस समय किसी भी प्रकार का मलहम उन पर नहीं लगाना चाहिये। धतूरे के पानों के कल्क की पट्टी बाँधे। इससे दो तीन रोज में शोथ दूर हो जायेगा।

१८. श्वेत मलहम।

द्रव्य–कपूर, सफेद राल, मुर्दासंग, मोम १-१ तोला और घी ५ तोला लें।

---

* गौ का या भैंस का (ताजा) गोबर दिन में ४-५ बार बदल-बदल कर बांधने से ओरियन्टल सोर २ से ४ दिन में अच्छा हो जाता है। फिर नीम तैल की पिचकारी लगाकर ऊपर इस मलहम की पट्टी बाँधे। कदाचित् नाड़ीव्रण में ऊपर विकार रह जाता है और बीच में घाव भरने लगता है तो ऐसे समय पर हिंगुल को जल में पीसकर, दर्द हो वहाँ से लेकर नाड़ीव्रण के मुख तक लेप करते रहें और फिर उस हिंगुल पर इस मलहम की पट्टी बांधते रहें, तो नाड़ीव्रण भर जाता है। नाड़ीव्रण के रोगी को त्रिफला गूगल खाने के लिये भी देते रहना चाहिये।

विधि–प्रथम घी को गरमकर उसमें मोम डाल दें, फिर कपूर आदि का चूर्ण डालकर लकड़ी से हिलाकर मिला दें और तुरन्त थाली में डाल दें, फिर १०० बार जल से धो लेवें। *(र.सा.)*

उपयोग–यह मलहम अति सड़े हुए घावों का शोधन करके रोपण कर देता है। जहरबाद (Oriental sore) जैसे विषयुक्त फोड़े इस मलहम से अच्छे हो गये हैं।

यदि घाव हड्डी तक पहुँच गया हो तो उस हड्डी के ऊपर मनुष्य की जलाई हुई हड्डी का कपड़छन चूर्ण भुराभुराकर, फिर मलहम की पट्टी बाँध देने से घाव भर जाता है। यह मनुष्यों के अतिरिक्त गौ, घोड़ा, ऊंट आदि पशुओं के भयंकर बढ़े हुए घावों को भी भर देता है। जिस पशु के घाव पर मलहम लगाना हो उसके लिये उसी की जाति के पशु की जलाई हुई हड्डी का चूर्ण भुरभुराना चाहिये।

१९. जन्तुघ्न मलहम।

द्रव्य–सत्यानाशी पञ्चांग का स्वरस ४ सेर, निम्बपत्र का रस ४ सेर, जल मिलाकर बनाया हुआ शमीपत्र का क्वाथ ४ सेर और इन तीनों का कल्क ४० तोले तथा करञ्ज का तैल ४ सेर लें।

विधि–सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें। फिर मोम २० तोले मिलाकर छान लेवें। पश्चात् ५ तोले कपूर मिला लेवें।

उपयोग–इस मलहम का उपयोग जहरी फोड़े और जहरी जन्तुओं के विष से अधिक फैलने वाले फोड़े (जिनका विष जहाँ जहाँ लगे, वहीं फोड़े हो जाते हैं, ऐसे फोड़े) तथा नाड़ीव्रण पर विशेष होता है। यह कीटाणुओं का नाश करता है तथा व्रण को शुद्ध कर जल्दी भर देता है। यह मलहम अति निर्भय और उत्तम है।

२०. क्षतारि मलहम।

द्रव्य–सफेद कत्था २ तोले, कपूर १ तोला और सिंदूर ६ माशे लेवें।

विधि–तीनों को पीसकर धोये हुए घी अथवा वेसलीन ५ तोले में मिलाकर मलहम बना लेवें।

उपयोग–यह मलहम सरलता से तैयार हो सकता है और सब प्रकार के फूटे हुए फोड़े, अग्नि से जले हुए घाव, खुजली के पीले फोड़े और उपदंश के घाव आदि को मिटाता है। रुधिर और पूयस्राव होते रहने वाले व्रणों को जल्दी शोधन कर भर देता है। फालों में जो जलन होती है, वह इस मलहम के लगाने पर तत्काल शान्त हो जाती है। यदि अर्श के मस्सों में वेदना हो रही हो तो इस मलहम के लगाने से तुरन्त शान्ति आ जाती है। यह मलहम सामान्य द्रव्यों से बना है तथापि बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

२१. निम्बादि मलहम।

द्रव्य एवं विधि–नीम की निम्बौली के १ सेर तैल को लोहे की कड़ाही में डालकर गरम करें। गरम होने पर २० तोले राल और ५ तोले गंधाविरोजा डालें। अच्छी तरह मिल जाने पर कड़ाही को उतार, तत्काल जल की भरी हुई बाल्टी में डाल देवें। मलहम कड़ाही में लगा रहे उसे भी खुरचकर उसी जल में डाल दें, २-५ मिनट बाद जल पर तैरती हुई मलहम को निकाल मजबूत कपड़े में रखकर दबावें। जिससे सारभाग बाहर निकल आवेगा और किट्ट कपड़े में रह जायेगा। इस मलहम को १-१ सेर जल डालकर १०० बार धोवें। फिर मिट्टी के पात्र में भर देवें। यह मलहम सफेद, चिकना और शीतल होता है। *(र.सा.)*

उपयोग–अग्नि से जले हुए भाग पर चाहे जितनी जलन होती हो, चर्म चाहे जितना अधिक जल गया हो, वहाँ इस मलहम को लगाते ही वेदना शान्त हो जाती है और थोड़े ही दिनों में रोगी स्वस्थ हो जाता है। यह मलहम घावों पर भी लगाने में उपयोगी है। किसी स्थान पर दाह होता हो तो यह मलहम लगाने के साथ ही तत्काल शान्ति हो जाती है।

व्रण कैसा भी सड़ा हुआ हो, इस मलहम से साफ होकर भर जाता है। इस मलहम में विशेषता यह है कि यह शोधन और रोपण, दोनों क्रिया सम्यक् प्रकार से सत्वर कर देता है।

२२. सुदर्शन मलहम।

द्रव्य–सिंदूर, सेलखड़ी, राल तीनों १-१ तोला; सफेद कत्था और रस कर्पूर २-२ तोले और घी २८ तोले लेवें।

विधि–सिंदूरादि ५ औषधियों को खरलकर घी मिला लेवें। फिर उसमें जल मिलाकर २१ बार धो लेवें। फिर सब जल निकाल, काँच या चीनी मिट्टी के बर्तन में भर लेवें। *(वैद्य अनन्तनारायण जी टिकेकर)*

उपयोग–सुदर्शन मलहम विद्रधियों को शुद्ध करके भर देता है। अति सड़े गले घाव वाले रोगियों को जो डॉक्टरों से असाध्य कहकर छोड़े हुए थे उनको भी इस मलहम के लगाते रहने से लाभ हो गया। विद्युत, घृत, तैल, तेजाब या शक्कर आदि की चाशनी के गिरने से शरीर जल जाना, पशुओं के दाँत, नख, सींग के आघात से बने हुए गहरे घाव, बद, दूषित शस्त्र लगने से हुये गहरे घाव और सम्हाल न करने से घावों का दूषित हो जाना आदि पूयप्रधान व्रिदधि और बिना पूयवाले घावों पर यह मलहम आश्चर्यकारक लाभ पहुँचाता है।

२३. पूतिहर मलहम।

द्रव्य–कपूर १ तोला; साफ चूना (पान में खाने के लिये भिगोया हुआ) ३ माशे और ताजा मक्खन २॥ तोले लें।

विधि–तीनों को मिलाकर एक जीव करें तथा शीशी में भर लें।

उपयोग–पूतिहर मलहम दुर्गन्धमय, सड़े हुये और कीड़ों से भरे हुए व्रण, विद्रधि पर लगाया जाता है। इस मलहम के प्रभाव से ५-१० मिनट में कीड़े बाहर निकलने और मरने लग जाते हैं। ४-६ दिन तक लगाते रहने पर गहरे क्षतों का भी शोधन हो जाता है। मनुष्यों के समान पशुओं के क्षतों पर भी यह प्रयुक्त होता है।

२४. उदुम्बरपत्रसार।

विधि–गूलर की पत्ती ताजी; अच्छी पुष्ट साफ की हुई १० सेर लेवें और उसे जल से धोकर ऊखल मूसल से कूट; १ मन जल में मिला कलईदार बर्तन में डालकर मंदाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उसे छान लेवें। फिर ५ तोले सुहागे का फूला मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें और गूलर के डण्डे से चलाते रहें। चलाते-चलाते जब डण्डे पर रस चिपकने लगे; तब कड़ाही को उतार सार को कलईदार थाल में डाल उस पर मलमल का टुकड़ा बांधकर धूप में सुखालें। लेह जैसा होने पर अमृतबान में भर लें।

(स्व. महा. पं. गणनाथ सेन; सरस्वती)

उपयोग–यह सार उत्तम शोथविम्लापन (कच्चे व्रण शोथ को बैठाने वाला) व्रणरोपण और रक्तस्रावरोधक है। व्रणशोथ की प्रारम्भावस्था में इस सार को चौगुने जल में मिला, कपड़ा भिगोकर बाँधने और थोड़े-थोड़े समय पर उस जल को डालकर पट्टी को तर रखने से वेदना दूर हो जाती है और शोथ का शमन हो जाता है। दुष्ट क्षत और न भरने वाले व्रण पर भी यह लाभ पहुँचाता है। पूयवाले व्रणों को धोने के लिये उबलते हुए जल में सार मिला कर उपयोग किया जाता है। स्त्रियों के स्तन पर शोथ आ जाये, तो इसका लेप भी किया जाता है। इस तरह श्लीपद और वृषण वृद्धि पर भी इसका लेप किया जाता है। मूढ़मार, अवयव मुड़ जाने और रक्तवाहिनी कटकर रक्तस्राव होने पर इसके प्रयोग से सत्वर लाभ हो जाता है।

विशेष–मुखपाक में कुल्ले कराने के लिये तथा सुजाक, स्त्रियों के योनिमार्ग के क्षत और प्रदर में उत्तर बस्ति देने के लिये यह सार उपयोगी है। ६४ गुने जल में मिलाने पर यह व्यवहृत होता है। इस तरह नेत्राभिष्यन्द में इस प्रवाही की बूंदे नेत्र में डालने और गाढ़े द्रव्य का चारों ओर लेप करने से सत्वर लाभ पहुँचता है। यह नाड़ीव्रण, अग्निदग्ध व्रण, विद्रधि, भगन्दर; शीत आदि से हाथ पैर फटना आदि रोगों पर बाह्योपचार में प्रयुक्त होता है।

रक्तार्श, रक्तप्रदर, सुजाक, मधुमेह, मांसशोष (Atrophy), मांसक्षय, जीर्ण आमातिसार, प्रवाहिका और जीर्णज्वर आदि में इसका अन्त: प्रयोग कराया जाता है। ३ से ६ माशे तक इस सार को ३-४ तोले जल में मिलाकर दिन में ३ बार पिलाया जाता है। जीर्ण सुजाक रोग में इस जल में जीरा, मिश्री मिलाकर पिलाने पर विशेष लाभ होता है।

२५. मधूच्छिष्टाद्य घृत।

द्रव्य–मोम, मुलहठी, लोध, राल, मजीठ, सफेद चन्दन और मूर्वा ४-४ तोले और गोघृत ६४ तोले लेवें।

विधि–पहले मुलहठी, लोध, मजीठ, चन्दन और मूर्वा का कल्क करें। फिर कलईदार पीतल की कड़ाही में कल्क, घृत और २५६ तोले जल मिलाकर मन्दाग्नि पर घृत पाक करें। पश्चात् कड़ाही को नीचे उतार द्रव को छान, राल और मोम मिला पुनः पिघलाकर छान लेवें। *(वं.से.)*

उपयोग–यह अग्निदग्ध व्रणों पर लगाने के लिये अत्युपयोगी योग है। इसके लगाते रहने से थोड़े ही दिनों में व्रण भर जाता है और ऊपर की त्वचा पूर्व अवस्था में आ जाती है।

सूचना–जले हुए भागों पर शीतल जल नहीं लगना चाहिये। उनको धोने के लिये गरम जल का उपयोग करें। यदि रोगी **विशेष** जल गया हो तो उसका भोजन बन्द कर दूध; मोसम्बी का रस, अनार का रस और अन्य फल आदि पर उसे रखना चाहिये।

यदि किसी अंग विशेष का अग्नि, विद्युत या अन्य कारण से जल जाने के पश्चात् व्रण न भरता हो तो इस घृत के लेप से असाध्य व्रण भी भर जाता है।

२६. तुगाक्षीर्यादि लेप।

द्रव्य व विधि–वंशलोचन, प्लक्ष (पाखर) की छाल, रक्तचन्दन, गेरु और गिलोय को समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर दूध में मिला कल्क कर धोया हुआ घी मिला लेवें। *(शा.सं.)*

उपयोग–इस लेप के प्रयोग से अग्नि, तेल और घृत से जले हुए व्रण शुद्ध होकर भर जाते हैं। विद्युत् और तेजाब से जले हुए अंगों पर भी यह लेप हितकारक है।

उबलता हुआ तैल या घी हाथ-पैर पर गिर जाने से उस भाग में भयंकर जलन होती है, तब शीतोष्ण उपचार करने का शास्त्र में लिखा है, अर्थात् घी, तैल लगाकर अग्नि से सेंके। किन्तु जलन अधिक होने पर तत्काल शमन करने के लिये घीकुंवार का रस लगावें या आलू को चटनी की तरह पीसकर उस पर लगावें। अथवा काली सारिवा और कमल के फूलों के चूर्ण का उबाले हुए जल में कल्क बनाकर पतला लेप करें। सूखने पर उसे हटाकर फिर दूसरी, तीसरी बार इसका लेप करें। उपचार में देर होने पर दाह शमन होकर छाले हो जाते हैं। उन छालों को विशुद्ध सुई से फोड़कर जल निकाल डालें, त्वचा को रहने देवें अन्यथा लाभ होने में देर होती है। जल निकाल देने पर यह तुगाक्षीर्यादि लेप लगावें। किसी स्थान पर क्लेदस्राव होता हो, वहाँ पर इसका शुष्क चूर्ण ही भुरभुराते रहें।

रोगी को ज्वर भी हो तो बाह्य प्रयोग के साथ महाज्वरांकुश, प्रवाल पिष्टी और अमृता सत्व का सेवन कराते रहने से ज्वरसह व्रण में सत्वर लाभ हो जाता है। अधिक जले हुए रोगी को हो सके तब तक केवल दूध पर रखना चाहिये। मलहम से त्वचा जो नयी आती है, वह सवर्ण ही आती है।

सूचना–अग्निदग्ध व्रण पर शीतल जल नहीं लगना चाहिये। गरम जल में फोहा भिगोकर व्रण को धोवें। यह चूर्ण धोये घी में मिलाकर पित्त प्रधान व्रणों पर लगाया जाता है। इससे भी व्रण शोधन और व्रणरोपण, दोनों कार्य होते हैं।

२७. व्रणकुठार मिश्रण।

प्रथम विधि–वाष्पोदक (उड़ा हुआ पानी) ६० तोले को एक बोतल में भरके उसमें ६ रत्ती उत्तम कर्पूर डाल, मजबूत डाट लगाकर, लकड़ी के तख्ते पर एक सप्ताह तक खुले स्थान में रख दें; ताकि दिन में कड़ी धूप और रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश उस पर पड़ता रहे। कर्पूर गल जाता है। यदि कुछ कण रह जाये तो कोई हानि नहीं। बाद में पिसी हुई फिटकरी १२॥ तोले और उत्तम नीलाथोथा २॥ तोले जो सफेद न हुआ हो, उपरोक्त कर्पूरोदक में डालकर २४ घण्टे पड़ा रखें और अच्छे शुद्ध वस्त्र से छानकर दूसरी बोतल में भर लें।

उपयोग–जो व्रण ऊपर से सफेद हो, लेखन क्रिया की आवश्यकता हो, दुर्गन्धयुक्त पूयस्राव होता हो, उसको नीम के पत्ते अथवा गूलर की छाल के सुखोष्ण क्वाथ के जल से धोकर, इसका फोहा भर कर उस पर चुपड़ दें। इसके द्वारा हाइड्रोजन पर ऑक्साइड से भी अधिक उग्र जन्तुघ्न एवं लेखन क्रिया होती है एवं थोड़े समय में ही व्रण की सफेदी मिटकर वहां पर लाल अंकुरोद्भव हो जाता है। फिर इस क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती। इसके बाद अन्य व्रणरोपण मलहम लगा सकते हैं। यदि किसी मलहम से व्रण भरता न दीखे तो व्रण कुठार मिश्रण द्वितीय विधि का प्रयोग करें।

द्वितीय विधि–११ छटांक वाष्प जल (अभाव में उबाला हुआ कूपोदक जो अच्छी तरह उबालने पर १ सेर का १४ छटांक रहा हो उस) में १ छटाँक प्रथम विधि वाला व्रण कुठार मिला, हिलाकर बोतल में भर लें। इसका फोहा व्रण पर लगाकर प्रातः सायं पट्टी बाँध दें। इससे जन्तुघ्न क्रिया के साथ-साथ व्रण रोपण भी होता है। उपदंशजन्य व्रण एवं प्लेग आदि की ग्रन्थि पककर फूट जाने के बाद भी बने रहने वाले विषाक्त व्रण आदि अनेक व्रणों का यह नाश करता है।

आँखों के पलक के दाने, रोहे (Trachoma) में व्रणकुठार प्रथम विधि का छोटा सा फोहा भरकर पलक को उलटकर दानों के ऊपर हलके हाथ से लगाने से दो तीन बार में ही दाने मिट जाते हैं।

नेत्राभिष्यंद (आंख दुखने) के लिये व्रण कुठार द्वितीय विधि से समान भाग उत्तम गुलाब का अर्क मिलाने से नेत्रबिन्दु बन जाता है। गरम पानी २० तोले में ४ रत्ती टंकण क्षार अथवा बोरिक एसिड डाल उस गरम जल में विशुद्ध रूई को भिगोकर आँखों पर सेक करें और आँखों के पलक को उलटकर भीतर स्थित दूषित पूय (मवाद) को सुखोष्ण जल (इसी बोरिक लोशन) से धोवें और रूई के फोहे से पोंछ लें। इस प्रकार साफ किये हुए नेत्रों में ४-४ बूंदें इस नेत्र बिन्दु की प्रातः सायं डालने से आँख का दुखना मिट जाता है। इसी भाँति कान बहना एवं नासूर आदि पुराने व्रणों को मिटाने के लिये आवश्यकतानुसार प्रथम अथवा द्वितीय विधि के व्रणकुठार की २-४ बूंदें भीतर प्रवेश करा दें। रोगानुसार एक या चार सप्ताह तक प्रयोग करने से पुराने व्रण, नासूर, भंगदर, सुजाक आदि में चमत्कारी गुण दिखाता है। यह हमारा बहुत वर्षों का अनुभूत है। सामान्य खर्च की दवा विधिपूर्वक बनाकर उपयोग में लाने से ज्यादा कीमती दवा का कार्य करती है।

(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्र जी शर्मा)

२८. व्रणकुठार तैल।

विधि–ताजी स्वर्णक्षीरी के पंचाँग को विशुद्ध जल से धो, कूट, निचोड़कर, उसका रस निकाल लें। उस स्वरस में चतुर्थांश सरसों का उत्तम तैल मिलाकर मंदाग्नि से पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान, नितारकर बोतल में भर लेवें।

उपयोग–इस तैल के प्रयोग से साधारण एवं गंभीर व्रण, नाड़ीव्रण (नासूर), क्षयजन्य और अस्थिपर्यन्त व्रण नाश होते हैं। यह हमारा शतशोऽनुभूत है। व्रण का बहुत छोटा छिद्र हो और तैल नहीं जा सकता हो तो गरम जल से उबाली (स्टरलाइज) हुई इंजेक्शन की घिसकर मोथरी की हुई सुई और पिचकारी द्वारा व्रण की अन्तिम परिधि तक तैल पहुँचाने की कोशिश करनी चाहिये। क्षयजन्य व्रण, जो अस्थि पर्यन्त पहुँच जाता है और जिससे हड्डी की झिल्ली एवं हड्डी के ऊपर का भाग गलकर उसके टुकड़े-टुकड़े बाहर निकल जाते है, उस पर इस तैल का प्रयोग करने से चिरस्थायी लाभ हो जाता है।

(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा)

२९. आगन्तुक क्षतहर योग।

(१) अपामार्ग के पत्तों का स्वरस निकाल, उसमें क्षत स्थान को डुबाने से अथवा उस स्वरस में रुई या कपड़े को भिगोकर क्षत स्थान पर रख देने से रक्तस्राव बंद हो जाता है।

(२) रक्त बंद हो जाने पर क्षत में मुलहठी का कपड़छन चूर्ण भर देवें। फिर कपूर गोघृत में मिलाकर क्षत के चारों ओर लगा देवें। ऊपर नागरबेल का पान, कागज या कपड़ा बांध देने से घाव सत्वर भर जाता है।

(३) पर्णबीज (तुख्मेहैयात हेमसागर, कनाड़ी में कांगुसले, मराठी में घावमारी Kalanchoe pinnata) के पत्तों का स्वरस क्षत स्थान पर निचोड़ देवें। फिर पत्तों का कल्क कर बांध देवें तो घाव बिना पके अच्छा हो जाता है।

(४) बबूल के निर्धूम, अर्ध जले हुए कोयले को पीस तिल तैल में मिलाकर उस तैल में रुई डुबो, क्षत स्थान पर उसको रखकर पट्टी बाँध देने से घाव भर जाता है और पक नहीं सकता। छुरी, चाकू आदि शस्त्रों के घाव के लिए यह सरल और निर्भय प्रयोग है।

(५) अरणी के पान को पीस घी में भूनकर बाँध देने से क्षत भर जाता है।

(६) रामशर (अपूर्व्वदण्ड, गुजराती-पानबाजरियुं), जलाशय में १-१॥ फीट जल में होता है। इसकी ऊँचाई लगभग ५-६ फीट होती है, पत्ते बाजरी के पत्तों के समान होते हैं, एवं ऊपर डोडी भी बाजरी के समान ही लगती है, इन डोडियों को जला, राख तैल में मिलाकर लगा देने से घाव भर जाता है। इन डोडियों के भीतर जो रुई है, वह निकाल घाव में भरकर पट्टी बाँध देने से भी घाव जल्दी भर जाता है। यह रामशर घाव के लिए उत्तम औषधि है।

(७) पूर्व लिखित निर्गुण्डी तैल आगन्तुक क्षत की प्रत्येक दशा में अप्रतिम लाभ करता है। ***(पं. श्री राधाकृष्णजी द्विवेदी)***

(८) कभी वर्षा-ऋतु में छोटे ग्राम वालों को गले हुए कांटे चुभ जाते हैं और निकालने पर टूट जाते हैं, पूरे नहीं निकल सकते। उनके लिये अपामार्ग के ३ पान को ३ माशे गुड़ मिलाकर ३ दिन तक सुबह खा लेने पर चुभे हुए कांटे गल जाते हैं और पीड़ा दूर हो जाती है।

(९) कांटा माँस में घुस जाता है, और फिर कुछ अंश टूटकर भीतर रह जाता है, उसके लिये घाव के मुख पर आक का दूध लगाने से दूसरे दिन कांटा सरलता से बाहर निकल जाता है।

(१०) एक प्रकार का दुष्ट व्रण देखने में आता है। प्रथम वह एक फुन्सी के रूप में उत्पन्न होता है, परन्तु धीरे-धीरे गोल घाव का रूप धारण कर लेता है। जिस पर एक प्रकार का सफेद चिकना और अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त पदार्थ जम जाता है और हर समय दुर्गन्ध युक्त स्राव निकलता रहता हैं। अनेक उपचार करने पर भी इसका शोधन नहीं होता। इसके लिये निम्न प्रयोग अति उत्तम सिद्ध हुआ है।

शोधन-शलाका पर रुई लगा, उसे कारबोलिक एसिड (Carbolic Acid) में भिगोकर घाव पर लगावें। इससे घाव के ऊपर जमा सफेद दुष्ट पदार्थ ऊपर आ जायेगा, उसको सम्हालपूर्वक रुई से पोंछ लें। एक बार लगाने से ही जो रोगी दूसरों के सहारे आया था, स्वतः अकेला चला जायेगा। इस प्रकार यह तीन चार दिन (घाव के लाल होने तक) ही लगावें। घाव की सफेदी हटकर लाल हो जाना, इसके पूर्ण या शोधन हो जाने का लक्षण है।

रोपण-इसके बाद रोपण तैल, निर्गुण्डी तैल या अन्य रोपण उपचार करने से घाव शीघ्र अच्छा हो जाता है।

(११) शिरीष (सिरस) वृक्ष के मूल में १ गज गहरा खड्डा खोदने पर मूल पर से रुई जैसी मृदु छाल निकलती है। उसे निकाल सुखा कपड़छन चूर्ण करके बोतल में भर दें। तलवार, छुरी आदि के घाव लगने पर रुधिर स्राव हो रहा हो, तब इस चूर्ण को दबा देने से तत्काल रक्तस्राव बन्द हो जाता है। फिर पट्टी बाँध देने पर एक ही पट्टी से घाव भर जाता है।

देह के किसी भी भाग में शस्त्र, लकड़ी, कांच या कांटा आदि लगने के पश्चात् यदि वहां वेदना होकर पाक होने लगे, तो वहां से चमड़ी को नहीं काटना चाहिये। अन्यथा और चमड़ी विकृत होने लगती है। पुनः पुनः कतरते रहने पर व्रण अधिक दृढ़ होता जाता है, व्रण भीतर से पकता जाता है और वेदना भी बढ़ती जाती है। अतः पाक के आरम्भ में ही गुड़, नमक, हल्दी, सिर के बाल (या ऊन की राख) औरदेशी एरण्ड तैल को मिला लोहे की कुड़छी में डाल अग्नि पर पकावें। फिर कपड़े पर इसको डाल पोटली बना कर पीड़ित स्थान पर चोये देवें। जब सहन हो सके उतना गरम रहे, तब उसे बांध देवें। यह पट्टी रोज दो बार नयी बांधते रहने से शोथ उतर जायेगा और भीतर से रोपण-क्रिया होकर फिर ऊपर की त्वचा मृत होकर सफेद हो जायेगी। किन्तु उसे प्रमादवश काट न डालें। अन्यथा भीतर की कोमल त्वचा फिर पकने लगेगी। यह स्वयमेव दूर हो जायेगी।

यदि पीड़ित स्थान के भीतर पूय या जल संगृहीत हो गया हो, तो विशुद्ध शलाका, सुई या कैंची से उसमें थोड़ा छिद्रकर देवें, किन्तु त्वचा को निकाल न डालें। फिर गुड़, नमक, हल्दी और एरण्ड तैल को पकाकर पट्टी बांध देवें। इस पट्टी से हजारों रोगियों को लाभ पहुंच चुका है।

३०. चोटहर योग।

(१) प्याज और थोड़ी-सी हल्दी को लेकर पत्थर पर पीसकर पोटली बाँधे। फिर एक कटोरी में थोड़ा सरसों का तैल गरम करें। फिर उसमें पोटली डुबो सहन हो सके उतनी गरम रहने पर इसके सेक करें। शीतल होने पर बार-बार तैल में डुबोते रहें और सेक करते रहें। इस तरह आधे घण्टे तक सेककर फिर प्याज के कल्क को बांध देने से आघात जनित पीड़ा दूर होती है।

(२) हल्दी और नमक को सत्यानाशी के रस में मिला, गरमकर सूजन पर लगा देने से सूजन और वेदना दोनों दूर होती है।

३१. हरीतक्यादि कषाय।

द्रव्य व विधि-हरड़, बच, सोंठ, निसोत की छाल, सनायपत्ती, छोटी इलायची, बड़ी इलायची और लोंग, इन ८ औषधियों को समभाग मिला जौकूट चूर्ण करें।

उपयोग-२॥-२॥ तोले द्रव्य का क्वाथकर दिन में दो समय पिलाते रहने से कास और ज्वर सहित ब्रघ्न (बदगांठ) रोग का शमन हो जाता है। कषाय पिलाने के साथ आवश्यकता पर गाँठ पर, बाह्योपचार भी करना चाहिये। इसलिये पहले गांठ पर से, बालों को साफ कर फिर बड़ के दूध का लेप करते रहें। इस तरह गांठ जल्दी बैठ जाती है। यदि गाँठ पकने लगे और उसमें शूल के समान वेदना होती हो तो जल या दूध में गेहूँ के आटे की पुल्टिस बनाकर बांधते रहें। पुल्टिस को २-२ घण्टे में बदलते रहने से गांठ जल्दी पककर फूट जाती है।

३२. दन्तीमूलादि लेप।

द्रव्य-दन्तीमूल, चित्रकमूल की छाल, सेहुण्ड का दूध, आक का दूध, गुड़, भिलावे की मज्जा (गोडम्बी), कासीस और सैंधानमक, इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-शुष्क औषधियों के कपड़छन चूर्ण के साथ आक और सेहुण्ड का दूध (थोड़ा जल) मिलाकर कल्क करें और फिर गुड़ मिलाकर गरमकर लेप बना लें।

(यो.र.)

उपयोग-इसके १-२ लेप लगाने से ही (४-६ घण्टे में) पकी विद्रधि फूट जाती है। किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता और सत्वर कार्य हो जाता है। देह के किसी भी स्थान की पक्व विद्रधि पर इस प्रयोग को उपयोग में ला सकते हैं। बालक और डरपोक, निर्बल स्त्रियों के लिये भी यह लेप निर्भय और अनुभूत योग है। *(श्री पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी)*

सूचना-यह लेप नेत्रों के न लग जाये इतनी सावधानी अवश्य रखें।

३३. सवर्णकर योग।

(१) कपूरकाचरी १ माशा, हल्दी २ माशा, हरी मेहन्दी १० तोले और तिल ५ तोले मिला पीसकर लेप करें। इसको व्रणस्थान पर या गांठ नष्ट होने के बाद रहे शेष चिह्न पर लेप करके पट्टी बांधते रहने से एक सप्ताह में त्वचा पूर्ववत् सवर्ण बन जाती है। इस लेप से कुष्ठ के दाग (सिध्म) भी दूर होते हैं, ऐसा अनुभव में आया है।

(२) सफेद चन्दन, प्रियंगु, आम की गुठली की गिरी, नागकेशर, मजीठ और रसौंत को नीरोगी गौ के गोबर के रस में घिसकर लेप करने से त्वचा पूर्ववत् बन जाती है।

(च.सं.)

३४. शोथहर गुटिका।

द्रव्य-छोटी हरड़ और आंवले का कपड़छन चूर्ण १-१ सेर, कलमीशोरा २० तोले और नीलाथोथा १० तोले लें।

विधि-हरड़, आंवले और सोरे को मिला नीले थोथे का जल मिलाकर गोला बनाकर १ दिन रहने देवें और फिर कूटकर शिखराकार गोलियाँ बना लेवें।

(आ.नि.मा.)

सूचना-नीलेथोथे में इतना जल मिलावें जिससे कि गोलियां कठोर और बजनदार बन सकें। भूल से ज्यादा जल मिला दिया जायेगा तो गोलियाँ नरम और हल्के वजन की बनेंगी। वे पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकेंगी। कठोर गोली देर से घिसती है, किन्तु अच्छा कार्य करती है।

उपयोग-यह शोथहर गुटिका आगन्तुक शोथ, चोट लगने, मुड़ने, टूटने, जन्तुओं के दंश और दबाव आदि से उत्पन्न शोथ, रससंग्रहज शोथ और वातप्रकोपज शोथ को दूर करने में अच्छा लाभ पहुँचाती है। आवश्यकता अनुसार जल में घिसकर दिन में ३-४ बार लेप लगाया जाता है।

इसके अतिरिक्त संधिशोथ, संधिपीड़ा, कर्णशोथ, कर्णार्श जनित वेदना, मसूड़े पर सूजन, कंठ या गाल पर सूजन अथवा शरीर के किसी भी भाग पर सूजन आने पर यह लेप लगाया जाता है। कर्णार्श की पीड़ा में बाहर लेप लगाया जाता है और उसके भीतर भी इसका लेप किया जाता है जिससे अर्श कटकर पीड़ा का निवारण हो जाता है।

३५. अर्क लोहबान।

विधि–लोहबान ५ तोले, रसोंत ५ तोले और नेफ्थायुक्त विकृतिकृत सुरासार ६० तोले को मिलाकर बोतल में भरकर रख देवें। दिन में २-३ बार बोतल को हिलाते रहें। ८वें दिन कपड़े से छानकर बोतल में भर लेवें।

उपयोग–किसी स्थान में चाकू आदि से चोट लग जाने पर तुरन्त अर्क लोहबान की पट्टी बांधने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है, वेदना शान्त हो जाती है, घाव नहीं पकता और थोड़े ही समय में घाव अच्छी तरह मिल जाता है। अधिक गहरा घावलगा हो तो रोज अर्क की थोड़ी थोड़ी बूंदे पट्टी पर डाल लें। विशेषत: घाव का रोपण हो जाने पर वह पट्टी खोली जाती है।

३६. अर्क रेवतचीनी।

विधि–रेवतचीनी (Rheumemodi) या अर्चा (Rheum webblanum) १० तोले के जौकूट चूर्ण को ६० तोले विकृतिकृत (नेफ्थायुक्त) सुरासार में डाल देवें। रोज २-३ बार शीशी को हिलाते रहें। ८ दिन बाद कपड़े से छान ५ तोले शिलाजीत मिला, अच्छी तरह हिलाकर पुन: कपड़े से छानकर बोतल में भर लेवें। *(श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

उपयोग–किसी भी स्थान में चोट लग जाना, चाकू आदि का घाव लग जाना, वात कफज शोथ, नये तुरन्त उत्पन्न हुए फोड़े-फुन्सी, इन सब पर यह अर्क लगाने से तुरन्त लाभ हो जाता है।

सूचना–(१) घाव में मिट्टी आदि घुस गयी हों, तो उसे पहले मेथिलेटेड स्पिरिट, शराब, कार्बोलिक धावन या गरम किये हुये जल से धोकर साफ कर लेना चाहिये। अन्यथा घाव पक जाता है।

(२) दूषित शस्त्र का घाव लग गया हो तो कृष्ण धावन से उसे धो लेना चाहिये।

३७. कैंसरगजकेशरी वटी।

द्रव्य–वज्रभस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म १२ तोले, रससिन्दूर (द्विगुण) ४८ तोले, रसकपूर ४८ तोले, ताम्रभस्म ९२ तोले, श्वेतमिर्च १४० तोले, लौंग ७२ तोले, अभ्रकभस्म १००० पुटी ४ तोले, पन्नापिष्टी १॥ तोले।

विधि–रससिन्दूर व रसकर्पूर को प्रथम घोटकर बारीक करें फिर भस्में मिलावें तथा घोट लें, लौंग तथा मिर्च का अलग कपड़छन चूर्ण करके मिश्रित कर घोट लें। फिर भेड़ के दूध की भावना देकर ३ दिन तक घोटें, फिर १-२/१-२ रत्ती की गोलियां बना लें। पहले इस वटी का कैन्सरनाशक वटी नाम रखा था। *(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)*

मात्रा–१ से २ गोली पर्यन्त, दिन में २ या ३ बार।

अनुपान–गोली लेने से पूर्व मुंह में घी चुपड़ लें, फिर गोली को निगलकर गाय का दूध पीलें। या गोलियों को केप्सूल में रख निगलकर गोदुग्ध पीवें।

उपयोग–यह वटी हीराभस्म व सुवर्णभस्म प्रधान बनती है। हीराभस्म के अनन्त गुण हैं। यह कैन्सर (कर्कटार्बुद) रोग की प्रथम अवस्था में उपयोगी सिद्ध हुई है। द्वितीय अवस्था में योग्य पथ्य व संयम से सेवन करने पर लाभ दर्शाती है किन्तु तृतीय या जीर्ण रोगावस्था में इसका प्रभाव अल्प होता है।

इसे नाड़ीव्रण, भगन्दर, दुष्टव्रण, मृतांगताकोथ आदि में भी उपयोगी समझा गया है। अभी इस वटी के रोगियों पर प्रयोगानुभव किये जा रहे हैं।

३८. लाक्षादि गुग्गुलु।

द्रव्य व विधि–लाख, हड़सिंघार, अर्जुन की छाल, असगन्ध तथा गंगेरन इन सबका बारीक चूर्ण और इन सबका बारीक चूर्ण और इन सबके बराबर शुद्ध गूगल मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से ४ गोली, जल के साथ या दूध के साथ। दिन में ३ बार।

उपयोग–टूटी हुई हड्डी या स्थान से हटी हड्डी को स्थान पर बैठा देने के पश्चात् शेष रही हुई पीड़ा नष्ट होकर हड्डी जुड़ जाती है।

❑ ❑

(३७) भंगदर।

१. भगन्दरहर रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक ४ तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर ३ दिन घीकुँवार के रस में मर्दन कर ताम्रभस्म और लोहभस्म ६-६ तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर पुनः घीकुँवार के रस में घोटकर पेड़ा बनाकर उस पर एरण्ड के पत्ते लपेट दें। उसे हाँडी में राख के भीतर दबाकर ६ घण्टे स्वेदन करें। पश्चात् उसे निकाल ७ दिन तक नींबू के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, पुनर्नवारिष्ट अथवा आंवले के रस या आंवले के मुरब्बे के साथ देवें।

उपयोग–इस रस का सेवन पथ्यपालन पूर्वक ४-६ मास तक धैर्य सहित करने पर भगन्दर और नाड़ीव्रण नष्ट होते हैं।

यह औषधि कफ प्रकृति वाले रोगी, जिन की पचन क्रिया सदोष हो तथा मूत्रोत्पत्ति योग्य न होती हो उसके लिये हितावह है। इसके सेवन से पचन क्रिया सुधरती है, रस में से रक्त बनाने का कार्य सम्यक् प्रकार से होने लगता है, रक्त का प्रसादन होता है तथा मूत्रशुद्धि होती है एवं पूयोत्पत्ति बन्द होकर भगंदर नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त शरीर के किसी भी स्थान के नाड़ी व्रण, विद्रधि, कफ प्रधान गौण कुष्ठ आदि रोगों पर भी यह लाभ पहुँचाता है।

२. नारायण रस।

द्रव्य–शुद्ध हिंगुल, फिटकरी का फूला, रसोंत, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध गूगल, शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सैंधानमक, अतीस, चव्य, शरफों का की जड़, बायविडंग, अजवायन, गजपीपल, कालीमिर्च, अर्कमूलत्वक्, बरने की छाल, राल और हरड़ इन २१ द्रव्यों को समभाग लें।

विधि–पहले पारद, गन्धक की कज्जली कर हिंगुल, मनःशिला, ताम्र और लोह भस्म मिलावें। राल और गूगल को सरसों के तैल में कूटकर मुलायम मक्खन सदृश बना लेवें। शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् राल गूगल मिश्रण के साथ पहले भस्म और फिर शेष चूर्ण मिलावें। उसे सरसों (या करंज) का तैल मिलाकर लोहे की खरल में कूटकर एक जीव बना १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इस रसायन को कितने ही ग्रन्थकारों ने व्रणगजांकुश और किसी ने दरदवटी संज्ञा दी है। *(र.च.)*

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में २ बार, मंजिष्ठादि क्वाथ या अन्य रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–इस रस के सेवन से नाड़ीव्रण, भयंकर पूयस्रावयुक्त व्रण, गण्डमाला, विचर्चिका, जीर्ण दुष्टव्रण, फिरंगज उपद्रव, दाद, कान से पूय आना, शिरोरोग, श्लीपद, हाथ पैर का फटना और दुःसाध्य भगन्दर आदि रोग नष्ट होते हैं।

३. भगन्दरनाशक योग।

(१) चोपचीनी, मिश्री और गोघृत ३२-३२ तोले तथा लोह भस्म और मनःशिला ४-४ माशे लें। सबको मिलाकर ३-३ तोले के लड्डू बना लेवें। इनमें से १-१ लड्डू प्रातःकाल और रात्रि को दुग्ध के साथ सेवन कराने से भगन्दर, जीर्ण उपदंशज उपद्रवरूप नाड़ीव्रण, रक्तविकार और कुष्ठ आदि रोग १ मास में दूर होते हैं।

(२) बालहरीतकी योग–नीलाथोथे का फूला १ तोला और छोटी हरड़ का चूर्ण १६ तोले मिला नींबू के रस में ७ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। इनमें से १-१ गोली सुबह, शीतल जल (या नींबू मिले जल) के साथ २१ दिन तक सेवन कराने पर उपदंश रोग, उपदंश के विकार रूप नाड़ीव्रण, भगन्दर, दुष्टव्रण आदि रोग निवृत्त होते हैं। बाहर धोने के लिये धावन (Lotion) चूर्ण और मलहम रूप (कज्जली मिलाकर) भी लगाने के लिए इस वटी का उपयोग लाभदायक है। *(यो.र)*

वक्तव्य–इस वटी का उपयोग हमने अनेक बार कण्डू रोग पर किया है और उससे परिणाम संतोषप्रद मिला है।

(३) अतिबला (कंघी) के पत्तों को पीस, थोड़ा गुड़ मिला, पुल्टिस बनाकर बाँधते रहने और योग्य औषधि का सेवन करते रहने से कुछ दिनों में भगंदर दूर हो जाता है।

(४) भाँगरे को पीस पुल्टिस बनाके बांधते रहने पर थोड़े ही दिनों में भगंदर शुद्ध होकर भर जाता है।

(५) ऊंट की हड्डी को जल में घिसकर लेप करते रहने पर भी भगन्दर भर जाता है।

४. सप्तविंशतिको गुग्गुलु।

द्रव्य–त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, बायविडंग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, इलायची, पीपलामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बरू, पोखरमूल, चव्य, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, बिडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सैंधानमक, गजपीपल, इन २७ औषधियों को समभाग मिला, चूर्ण बनाकर इन सबके वजन से दूना शुद्ध गूगल मिलाकर १/२-१/२ माशे की गोली बनावें।

मात्रा-१ से ४ गोली, शहद से दिन में ३ बार।

उपयोग-कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदय का शूल, पसलियों का शूल, कुक्षि तथा बस्ति और गुदा की पीड़ा, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमिरोग को नष्ट करता है। जीर्ण ज्वरी तथा यक्ष्मी के लिये हितकारी है। आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद आदि रोगों को नष्ट करता है। इसमें वात, पित्त, कफ तीनों दोषों में से विकृत हुए को प्रकृतिस्थ बनाने का, आमविष जलाने का तथा पचनेन्द्रिय को बल देने का उत्तम गुण है। इस हेतु से उक्त सब रोगों के मूल रूप पचनेन्द्रिय संस्थान को व्यवस्थित करके सब रोगों पर लाभ पहुंचाता है।

❑ ❑

(३८) फिरंग

१. उपदंशकुठार वटी।

द्रव्य-मुर्दासंग और कूठ १-१ तोला तथा नीलाथोथा ६ माशे लें।

प्रथम विधि-सबको मिला ६ घण्टे अदरक के रस में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। *(वृ.नि.र.)*

मात्रा-१ से २ गोली, प्रातः सांय अदरक के रस के साथ देवें।

उपयोग-इस वटी का सेवन कराने से एक सप्ताह के भीतर उपदंश रोग दूर हो जाता है। उपदंश के लिये यह सरल, निर्भय और उत्तम उपाय है। यह वटी नये और पुराने फिरंग रोग में भी व्यवहृत होती है।

सूचना-मीठे और खट्टे पदार्थ, मांस, दूध और कूष्माण्ड का त्याग कराना चाहिये। (कितने ही चिकित्सक आम का अचार अवश्य देते हैं, जिससे नीलेथोथे की वान्ति कराने की शक्ति शान्त हो जाती है।)

द्वितीय विधि-रस कपूर १ तोला और मुलतानी मिट्टी ४ तोले को मिला जल के साथ खरलकर आध आध रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा-२-२ गोली; प्रति दिन, प्रातःकाल एक बार निगलवा देवें। फिर ऊपर ५ तोले इमली को ४० तोले जल में मसलकर तुरन्त निकाल, बिना छाने पिला देवें। इस तरह प्यास लगने पर इमली का जल १ दिन में ३-४ सेर तक पिलाते रहें।

इमली का जल पीने से रोगी को बेचैनी नहीं होती। दन्तहर्ष नहीं होता एवं संधिस्थानों में या हड्डियों में भी बाधा नहीं पहुँचती।

उपयोग-इस रसायन के प्रयोग से नया उपदंश रोग जिसमें घाव फैल गया हो, नासूर हो गये हों, रोग ने तीव्र रूप धारण कर लिया हो, वह भी दूर हो जाता है। अधिक से अधिक २१ दिन तक गोलियां देनी पड़ती हैं। २१ दिन के सेवन से उपदंश रोग, उपदंशजनित रक्तविकार, नाड़ीव्रण आदि दूर होकर शरीर स्वस्थ, सबल और तेजस्वी बन जाता है।

सूचना-(१) औषध सेवन बन्द करने के २१ दिन तक प्रतिदिन नीम के २१ पत्तों को जल के साथ पीस छानकर पिलाते रहना चाहिये।

(२) औषध सेवन काल में और नीम पत्र सेवन काल में अर्थात् ४२ दिन तक दूध, मीठे पदार्थ और घी बिल्कुल नहीं खाना चाहिये। दूध पीने से कम्प वात और गुड़, शक्कर खाने से स्वरभंग हो जाता है।

(३) कदाच रोगी को उपदंश के हेतु से विस्फोटक भी हो गया हो तो औषध सेवन के साथ चिरौंजी को जल में पीसकर शरीर पर मर्दन करावें अथवा पलाश के पत्ते की डण्डियों को जला राख कर तांबे के बर्तन में डाल, दही मिला, ताम्बे के लोटे से घोटें फिर शरीर पर मालिश करावें। सूख जाने पर स्नान कराने से विस्फोटक दूर हो जाते हैं।

२. नीलकण्ठ रस।

द्रव्य-(प्रथम विधि)- शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नीले थोथे का फूला, फिटकरी का फूला, छोटी हरड़, आंवला, बड़ी हरड़ और मुर्दासंग, ये सब समभाग लेवें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों को कपड़छन चूर्ण मिला नींबू के आधसेर रस के साथ खरल करें। रस थोड़ा-थोड़ा मिलाते जायें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में दो बार, भोजन कर लेने पर तुरन्त घी में लपेट कर निगला देवें।

उपयोग-इस वटी के सेवन से १४ दिन के भीतर उपदंश रोग दूर हो जाता है। हींग, बेसन और लालमिर्च न खायें। तैल अधिक सेवन करने से उबाक नहीं होती और बेचैनी भी नहीं रहती। भोजन करके जल बहुत ज्यादा न पीवे, कम से कम पीवें। आध या एक घण्टे बाद आवश्यक जल पीने से उबाक या बेचैनी नहीं होती। औषध सरलता से पचन होकर जल्दी लाभ पहुँचाती है।

द्वितीय विधि-नीले थोथे का फूला १ तोला लेकर एक सेर नींबू के रस के साथ पचन करावें। थोड़ा रस मिलाकर मर्दन करते रहें। सब रस शोषण हो जाने पर आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(आ.नि.)*

मात्रा-क्रमशः १ से १० गोली तक। पहिले दिन सुबह एक गोली निगल लेवें। दूसरे दिन दो। तीसरे दिन तीन। इस तरह उबाक और बैचेनी न हो तब तक बढ़ावें। वमन हो जोने के पश्चात् दूसरे दिन से एक-एक गोली कम करावें।

उपयोग-इस रसायन के सेवन से १४ दिन के भीतर उपदंश रोग की निवृत्ति हो जाती है। भोजन में गेहूँ की रोटी, घी और मिश्री देवें। वमन होने पर वमन को रोकने के लिये छिलके रहित भुने चने खिलावें।

३. मल्लादि पुष्प।

द्रव्य-सफेद सोमल, सिंगरफ, रसकपूर और दालचिकना, चारों १-१ तोले लें।

विधि-सबको मिला ब्राण्डी में खरलकर टिकिया बना छोटी हाँडी में भर डमरुयन्त्र बना चूल्हे पर ६ घण्टे मंद-मंद अग्नि देकर पुष्प उड़ा लेवें। ऊपर की हाँडी पर गीला वस्त्र बार-बार बदलते रहें। फिर यंत्र स्वांग शीतल होने पर पुष्प को निकाल लेवें। यदि पुष्प कम उड़े हों तो फिर इसी विधि से उड़ा लेवें।

वक्तव्य-मल्लादि पुष्प और उपदंश दावानल दोनों उग्र महाविष है। दोनों के प्रयोगों की विधि और उपयोग विशेषांश में समान है। उपदंश दावानल में हरताल, मैनसिल और नीलाथोथा मिलाने से यह अधिक उग्र बन गया है।

मात्रा-१ से २ चावल, मुनक्का में रखकर निगलवा देवें। पुष्प दांतों को लगने पर दाँत गिर जाते हैं। अतः पुष्प को केप्सूल या मुनक्का में रखकर निगलवाना चाहिये।

उपयोग-यह रसायन उपदंश रोग दूर करने के लिये उत्तम है। नये और पुराने विकार में लाभ पहुँचाता है। इसके सेवन से उपदंश रोग तथा उसके उपद्रव रूप संधिवात, नाड़ीव्रण, विद्रधि, पक्षाघात, गुदशूक, रक्तविकार, तालुव्रण, अस्थिगतव्रण, वातनाड़ियों की विकृति, कफप्रकोप, नेत्रप्रदाह और मस्तिष्क विकार आदि रोग थोड़े ही दिन में दूर हो जाते हैं तथा देह निरोग ओर पुष्ट हो जाती है।

४. भैरव रस।

विधि-शुद्ध पारद १०० रत्ती और मिश्री ३०० रत्ती मिलाकर लोहे की खरल में नीम के डण्डे से एक प्रहर तक घोटें। फिर सफेद कत्था १०० रत्ती मिला कज्जली कर, थोड़ा जल मिलाकर २० गोली बना लेवें। *(र.सा.सं.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में ३ बार गेहूँ के आटे के हलवे में रखकर ३ दिन तक निगलवा देवें। फिर चौथे दिन से रोज सुबह १-१ गोली ११ दिन तक देते रहें। अनुपान रूप से मंजिष्ठदि अर्क ५-५ तोला पिला देवें।

उपयोग-यह रसायन नूतन फिरंग रोग का नाश करने में सौम्य और श्रेष्ठ है। फिरंग रोग पुराना होने पर देह जर्जर एवं मरणासन्न के समान हो जाती है। किसी किसी के सारे शरीर की त्वचा शुष्क होकर मुरझा जाती है। शरीर में से भयंकर दुर्गन्ध आती है, दाह होता रहता है, मक्खियाँ भिनभिनाती है, निद्रा नहीं आती, थूँक चिपचिपा पीले रंग का और पूय के समान बन जाता है, जिह्वा लाल-लाल भासती है, शौच शुद्धि नहीं होती और देह निस्तेज हो जाती है। इस अवस्था में न्यूसल्वरसन (नं. ६०६) के इंजेक्शन भी नहीं दे सकते। यदि रोगी नियम पालनपूर्वक सेवन करें तो यह औषधि जीवन बचा सकती है।

वक्तव्य-इस रसायन के सेवन काल में जलपान और जलस्पर्श बिल्कुल बन्द है। तृषा लगने पर ईख का रस या मीठे अनार का रस पिलावें। शौच जाने पर गरम जल से शुद्धि करें फिर तुरन्त कपड़े से पौंछ लेवें। १४ दिन तक कमरे में से बाहर न निकलें। तेजवायु, अग्नि सेवन और सूर्य के ताप का त्याग करें।

इस तरह दृढ़तापूर्वक पथ्य और नियमों का पालन करने पर भी भैरव रस के सेवन से अनेक रोगियों को मुखपाक हो जाता है। इसलिये कई विद्वान् चिकित्सक इस प्रयोग का सेवन कराना इष्ट नहीं मानते।

इसके सेवन का प्रारम्भ विशेषतः शीतकाल या वर्षाऋतु में कराना चाहिये। अति आवश्यकता पर अन्य ऋतु में भी करा सकते हैं।

पथ्य-भोजन-दूध या दूधभात अथवा जंगल के पशुओं के मांस का रस। लवण और अम्ल पदार्थ का निषेध है। इस तरह दिन में निद्रा, रात्रि में जागरण, व्यायाम और स्त्री समागम का भीत्याग करावें। भोजन कर लेने पर कर्पूर मिला हुआ ताम्बूल खिलावें। इस औषध के सेवन से मुँह आ जाता है। इसके लिये पञ्चवल्कल के क्वाथ से बार-बार कुल्ले कराते रहें, पान खिलायें। खदिरादि वटी मुँह में रखें या चमेली (जाती) के पान चबावें। १४ दिन पूरे होने पर गरम जल से स्नान करावें।

इस तरह पथ्य पालन कराते रहने से शरीर स्वस्थ हो जाता है। मंजिष्ठादि अर्क के हेतु से दिन में २-३ दस्त होते हैं। एक सप्ताह बाद दाह शमन, निद्रा की उत्पत्ति (किन्तु मुखपाक की वृद्धि) आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। दो सप्ताह पूरे होने पर क्षुधा प्रदीप्त हो जाती

है। फिर आवश्यकता रहे तो आरोग्यवर्द्धिनी सुबह शाम मंजिष्ठादि अर्क के साथ देते रहने से थोड़े ही समय में मुखमण्डल तेजस्वी बन जाता है।

५. सवीरमल्ल पुष्प।

द्रव्य–रसकर्पूर और सोमल ९-९ तोले, कर्पूर २ तोले लेवें।

विधि–सबको मिला डमरूयंत्र में भर, अच्छी तरह संधि लेप कर सुखाकर चूल्हे पर चढ़ा ४ घण्टे मंद और मध्यम अग्नि देकर पुष्प उड़ा लेवें। फिर यंत्र के स्वाँगशीतल होने पर उसे खोल, ऊपर की हांडी में लगे हुए पुष्पों को निकाल बोतल में भर लेवें।

मात्रा–१/४ से १/२ रत्ती तक मुनक्का या केप्सूल में रखकर निगलवा देवें। ७ दिन तक, दिन में १ बार सुबह ही दें।

उपयोग–यह सवीरमल्ल पुष्प फिरंग रोग को दूर करने में उत्तम औषधि है। नये और पुराने रोग सबको यह नष्ट करता है।

सूचना–इस पुष्प के सेवनकाल में दूध, दही और इनसे बने हुए पदार्थ खटाई और नमक नहीं खिलाना चाहिये। रोगी शक्कर मिले हुए दलिया या हलवा खाकर रह जाये तो सत्वर लाभ हो जाता है।

६. सवीर वटी (केशरादि वटी)।

द्रव्य–शुद्ध सवीर (रसकर्पूर), केशर, लौंग, श्वेतचन्दन, प्रत्येक ४-४ तोले और कस्तूरी ६ माशे लें।

विधि–पहले रसकर्पूर को खरल करें। फिर केशर कस्तूरी मिलाकर नागरबेल के पान के रस में खरल करें। पश्चात् लौंग और चन्दन का चूर्ण मिला नागरबेल के पान के रस में १ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–१ से २ गोली, प्रातः सांय निगलवाकर ऊपर से गरम करके शीतल किया हुआ, मिश्री मिला गोदुग्ध पिलावें।

उपयोग–यह वटी फिरंग और उसके विष से उत्पन्न विविध विकार, मांसगत व्रण, नेत्रव्रण, अर्बुद, भगंदर, ग्रन्थि, जड़ता, तंद्रा, संधिवात और वातनाड़ियों की विकृति होकर पक्षवध या कलायखंज के समान लक्षण उत्पन्न होना आदिविकारों पर अच्छा लाभ पहुँचाती है। निर्बल हृदय और अति नाजुक प्रकृतिवालों को रसकर्पूर के अन्य योग देने की अपेक्षा यह वटी विशेष हितावह है।

पथ्य–इस रसायन के सेवन करने के समय में खटाई, मिर्च, हींग, राई आदि गरम मसाले तथा बैंगन, सरसों, मूली और एरण्ड खरबूजा का शाक नहीं खिलाना चाहिये।

७. उपदंशदावानल।

द्रव्य–शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हरताल, शुद्ध सोमल, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध रसकपूर, दारचिकना और नीलाथोथा, ये ७ औषधियां ५-५ तोले लें।

विधि–ब्रॉंडी अथवा जलाने पर जलजाय ऐसी तेज शराब में १२ घण्टे खरलकर टिकिया बनावें। फिर मिट्टी की छोटी-छोटी दो हाँडियाँ समान मुखवाली लें। इनके मुँह को पत्थर पर जल डाल के घिसकर चिकनाबना लें फिर एक हांडी पर दृढ़ कपड़ मिट्टी करें। उस कपड़ मिट्टी की हुई हांडी में इस रसायन की टिकिया रख, ऊपर दूसरी हांडी औंधी रख दोनों के मुखों को मिलाकर मुखमुद्रा करें। सूखने पर डमरूयंत्र को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे बेर की लकड़ी की मन्द आँच ४ पहर तक देवें। बार बार ऊपर गीला कपड़ा बदलते रहें। स्वांग शीतल होने पर ऊपर की हांडी में लगा हुआ पुष्प निकाल पुनः नीचे रही हुई औषधि में मिला कर शराब के साथ खरल करके पुष्प को उड़ावें। इस तरह ७ बार करें। अन्तिम समय में उड़े हुए पुष्पों और नीचे की औषधि को अलग-अलग शीशी में भर लेवें। हाँडी में नीचे के भाग में रही हुई औषधि को पुनर्नवा के रस में ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–पुष्प १ से २ चावल तक, केप्सूल, घी मक्खन या हलवे में रख कर रोज प्रातःकाल निगलवा दें। इस तरह ७, १४ या २१ दिन तक देवें। गोलियों का सेवन कराना हो तो १-१ गोली निगलवायें। फिर ऊपर पुनर्नवा का कल्क या स्वरस १ तोला २१ दिन तक पिलावें। फिर थोड़ा घी चटा देवें।

सूचना–(१) पुष्प दांतों को लग जाने पर दांत गिर जाते हैं। अतः इन को निगलवा दें।

(२) अपथ्य सेवन करने वालों और अधिक कोमल प्रकृतिवालों को यह अथवा अन्य उग्र औषधि न दी जाये, तो अच्छा है। यदि इसे देना पड़े तो सम्हालपूर्वक कम मात्रा में देवें।

(३) वृक्कों में या मूत्राशय में क्षत होने से मूत्र के साथ पूय आता हो, तो पारद अथवा मल्ल प्रधान औषधि नहीं देनी चाहिये।

(४) उपदंश रोगी को अपथ्य अथवा अन्य कारणवश उपदंश दावानल के सेवन से ज्वर, मुख पर शोथ, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जायें तो १-२ दिन उलंघन करा, फिर पथ्य पालनसह उपदंशहर कषाय और गन्धक रसायन का सेवन कराना चाहिये।

उपयोग–यह रसायन उपदंश सूर्य की अपेक्षा अधिक उग्र है। यह कष्टसाध्य उपदंश रोग को दूर कर देता है। भोजन में केवल गेहूँ + चने की रोटी, घी शक्कर के साथ दें और कुछ भी न देवें। कदाच कब्ज रहे तो निम्न विरेचक क्वाथ साथ देवें।

विरेचक क्वाथ–गुलाब के फूल, काली मुनक्का और सनाय तीनों २-२ तोले मिलाके कूटकर ४० तोले जल में औटाकर १० तोले शेष रहने पर रात्रि को सोते समय पिला देवें। इससे सुबह तक २-३ दस्त आ जायेंगे। आवश्यकता पर इस क्वाथ का व्यवहार करें।

उपदंश रोग के उपद्रव नाड़ीव्रण, गुदशूक, बद आदि चाहे जितने बढ़ गये हों, रक्त चाहे जितना दूषित हो गया हो, इन विकारों पर इसके सेवन से उपदंश का निवारण होकर पुरुषत्व की प्राप्ति हो जाती है।

विशेष–अर्श के मस्से को नष्ट करने के लिये सीसे की सलाई को मक्खन से चिकनी कर इस उपदंश दावानल पुष्प पर फिरावें और जितनी औषधि लग जाये, उतनी को मस्से पर दिन में एक समय लगावें। ४-५ दिन तक लगाने से मस्से फूल जाते हैं। फिर खट्टी छाछ में गेहूँ के दलिये को पका पुल्टिस बनाकर बांधने से सब मस्से चेनताहीन मृत समान हो जायेंगे। पश्चात् उन्हें कैंची से काट दें अथवा स्वयमेव कुछ दिनों में निर्जीव होकर गिर जायेंगे।

उक्त औषधि की गोलियों का प्रयोग कण्ठमाला के रोगों पर करने से २१ दिन में रोग निवृत्त हो जाता है। एवं ये गोलियां नपुंसकता पर देने से पुरुषत्व की प्राप्ति हो जाती है।

८. उपदंशवनकुठार।

द्रव्य–जमालगोटा और एरण्ड बीज की गिरी ७-७ नग, टोपी उतारे हुए ताजे भिलावे ५ नग, पुराना गुड़ १॥ तोला, काले तिल १ तोला और दारचिकना १ माशा लेवें।

विधि–पहले भिलावे और तिलों को मिलाकर भिलावे का अंश मालूम न हो, तब तक कूटें। एरण्डबीज और जमालगोटे को मिलाकर कूटें। दारचिकने को १ प्रहर तक खरल में मर्दन करें। फिर सबको मिलावें। अच्छी तरह मिल जाने पर गुड़ डालकर कूटें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–३ माशे दवा को प्रातःकाल दही की मलाई के भीतर लपेट कर निगल जायें। ऊपर एक तोला दही और खा लेवें।

उपयोग–यह उपदंशवनकुठार उपदंश के लिये कुठाररूप है। इस रसायन के सेवन से बहुधा २-३ दस्तें होती है। जिनको दस्ते हो जाती हैं, वे जल्दी अच्छे हो जाते हैं। जिनको दस्तें न हो उनको पूर्वोक्त उपदंशदावानल रस के प्रकरण में लिखा हुआ विरेचन क्वाथ दें। फिर अच्छी तरह भूख लगने पर चाहे मूंग की दाल और चावल की खिचड़ी, सैंधा नमक या घी मिलाकर खायें अथवा गेहूँ + चने की रोटी या गेहूँ की रोटी घी-शक्कर से खायें। इसके साथ नमक न लेवें।

२१ दिन तक इस तरह औषधि सेवन करने पर दुःसाध्य उपदंश रोग अच्छा हो जाता है। जिसका शरीर एकदम काला पड़ गया है अथवा सर्वांग में दद्रु-जाल छा गया हो और सारे शरीर पर खुजली चलती हो, चकत्ते हो गये हों, अथवा कुष्ठ से सारी देह जलने लगीहो, तो भी ४९ दिन तक इसके सेवन से रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जिसके शरीर में बहुत समय का विष शेष रह गया हो अथवा जिसको कृत्रिम विष खिलाया गया हो, उसके सब उपद्रव इसरसायन के सेवन से दूर हो जाते हैं। यह रस स्व. पं. हरिप्रपन्नजी का हजारों बार अजमाया हुआ है।

सूचना–यह रसायन युवा मनुष्यों को ही देना चाहिये।

जिन रोगियों का शरीर एक दम जीर्ण, शीर्ण हो गया हो, उनको और वृद्धों को यह रसायन अथवा विरेचन प्रधान भिलावा मिश्रित अन्य रस नहीं देना चाहिये। अनधिकारी को देने से तथा रक्ताल्पतासे किसी किसी की देह पर छाले हो जाते हैं। फिर वे फैलने लगते हैं और उनका मांस सड़ने लगता है। ऐसा होने पर रोगी और परिचारक आदि सब घबड़ा उठते हैं। जिससे वैद्य को औषधजनित विकारशान्ति करने का मौका नहीं मिलता।

भिलावा उग्र रसायन द्रव्य है। ~~उग्र रसायन द्रव्य एक दम बालुशून्य आदमी को देने से परिणाम हानिकर होता~~ है। कदाचित्तरुण व्यक्ति को भिलावायुक्त औषध से कुछ उपद्रव हो जाये। जैसे कि दाह, खुजली, चक्कर आना आदि उपस्थित हों तो वैद्य को घबड़ाना नहीं चाहिये। उसी समयअजवायन का धुँआ सर्वांग में देना बहुत उपकारक होता है। यदि इससे भी किसी को शान्ति न हो तो चौलाई के रस और मूली के रस को इकट्ठाकर शहद और तिल तैल मिलाकर सारे देह पर मालिस करनी चाहिये। इस तरह नारियल का तैल भी भिलावे के दोष के शमनार्थ उत्तम है। *(श्री हरिप्रपन्नजी)*

इस विधि से सेवन काल में भल्लातक की दृष्टि से पथ्यपालन कराना चाहिये। शांतभाव से छाया में रहें, घी अधिक खायें, तेज मिर्च, धूप, धुआँ, अग्नि, क्रोधादि से भी दृढ़तापूर्वक बचें। *(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)*

९. उपदंशहर कषाय।

द्रव्य–नीम की अंतरछाल, इन्द्रायण की जड़, कचनार की छाल, बबूल की कोमल (बीज रहित) फली, छोटी कटेली की जड़ अथवा

पंचांग, प्रत्येक १०-१० तोले और गुड़ पुराना (२-३ वर्ष का) ३० तोले लें।

विधि-सबको कूट पीस, किसी कलईदार या मिट्टी के पात्र में ५ सेर जल डालकर इसे २४ घण्टे भिगोकर पकावें। अष्टमांश जल शेष रहने पर छानकर बोतल में भरें।

मात्रा-उपदंश के रोगी को नित्य २ औंस (५ तोले) प्रात: पिलावें। सुजाक के रोगी को १ औंस कषाय और १ ओंस शीतल जल मिलाकर पिलावें।

उपयोग-यह कषाय नूतन, उपद्रव रहित उपदंश या अत्यन्त बढ़े हुए सुजाक को नष्ट करता है।

पथ्य-खिचड़ी और घी (अधिक) दें। इससे नित्य ३-४ विरेचन होते हैं, इसके द्वारा पित्त के विषैले परमाणु नष्ट होकर रक्त शुद्ध होता है। यदि उक्त मात्रा से ३-४ विरेचन न हों तो मात्रा और बढ़ावें। यदि विरेचन अधिक हो तो मात्रा कुछ घटावें। अधिक विरेचन आवे तो १ दिन औषधि न लेवें। इस प्रकार प्रयोग करने पर नूतन रोग १ सप्ताह में निर्मूल होता है।

यदि उपदंश रोग पराकाष्ठा को पहुंच गया हो तो एक सप्ताह औषध लेकर दूसरे सप्ताह में छोड़ दें। पुन: आरम्भ करें। इस प्रकार ३-४ सप्ताह में पूर्ण लाभ हो जाता है। यह प्रयोग नूतन उपदंश पर अमृत समान है और सुजाक (पूयमेह) के रोगी को सेवन कराने पर मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात ओर मूत्रनलिकाप्रदाह आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। पथ्य प्रत्येक अवस्था में पूर्ववत् पालन करें। यह प्रयोग अनेक बार का अनुभव सिद्ध है।

पाठान्तर-कई अनुभवी वैद्यों से इस प्रयोग में बकायन की छाल, ऊंट-कटारा की जड़; बेर की जड़ और सिरस की छाल ५-५ तोले डालने की सम्पति मिली है। तथापि उक्त प्रयोग बराबर काम करता है। १ सप्ताह की औषधि एक बार में बनावें। इसका अरिष्ठ बनाकर देखा गया तो इससे वैसा प्रभाव नहीं मिला, अत: कषाय ही ठीक रहता है। *(श्री पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी)*

वक्तव्य-रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में ऊपर के क्वाथ में बकायन की छाल अधिक मिलायी-है और विधि में कुछ अन्तर है। इस स्थान में जो प्रयोग विधि दी है, वह श्री पं. राधाकृष्ण जी द्विवेदी की अनुभूत है। अत: आशा है कि पाठक विशेष श्रद्धापूर्वक औषध कर सकेंगे।

१०. उपदंशहर चूर्ण।

द्रव्य-पीली कौड़ी की राख, पुरानी सुपारी के कोयले, सफेदा, सेलखड़ी, मुर्दासंग, कपूर और सफेद कत्था ये ७ औषधियां १-१ तोला और नीला थोथा १ माशा लेवें।

विधि-सबको मिलाके खरलकर बोतल में भर लेवें।

उपयोग-इस उपदंशहर चूर्ण को उपदंशज व्रण पर थोड़ा सा दबा देने अथवा दुगुने धोये हुये घृत में मिलाके मलहम बनाकर चकती लगाने से उपदंश रोग की निवृत्ति हो जाती है।

११. विमर्दित नील धावन।

द्रव्य-नीलाथोथा १ तोला, फिटकरी २ तोले और कर्पूर २ तोले लें।

विधि-इन सबको पृथक्-पृथक् पीसकर बोतल में भरकर जल बना लेवें। फिर इस जल में २०० तोले वाष्पजल मिला लेने पर विमर्दित नील धावन तैयार होता है। *(आ.नि.मा.)*

उपयोग-उपदंशजनित लिंगशोथ होने पर इस नील धावन की २-४ बूंदें डालें अथवा फोहा रखें और सुपारी पर सूजन न हो तो पिचकारी लगावें। इस औषध से दाह होता है। वह सहन न हो सके तो और जल मिला लेना चाहिये। यह धावन सड़े हुए घावों को धोने के लिये भी उपयोगी है। मन्द प्रवाही बनाकर नेत्र में भी इसकी बूँदें डाली जाती हैं।

१२. उपदंशहर धूम।

द्रव्य (प्रथम विधि)-हिंगुल ६ माशे, सोहागा, अकलकरा और मोम १०-१० माशे लेवें।

विधि-पहले मोम को गलाकर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण डालकर बेर की गुठली के समान गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

उपयोग-प्रात:काल चिलम में बबूल (नीम) के कोयलों की अग्नि पर एक गोली रखकर धूम्रपान करने से उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। भोजन में जौ की रोटी और घी नमक नहीं खाना चाहिये। रात्रि को नागरबेल का पान खिलावें। इस तरह १४ दिन तक पथ्य पालन करने पर फिरंग रोग का निवारण हो जाता है।

सूचना-धूम्रपान करने के पश्चात् १० सेर शीतल जल लेकर रोगी को धीरे-धीरे कुल्ले करने को कहें। कुल्ले कर लेने से बहुत विष निकल जाता है और दाँतों को भी बाधा नहीं पहुँचती।

(द्वितीय विधि)–हिंगुल आधा तोला और अकरकरा २ तोले को मिलाकर चूर्ण बना लेवें। फिर इसकी १४ मात्रा बना लेवें।

उपयोग–रोगी को प्रात: सांय दिन में दो बार कपड़ा ओढाकर १-१ पुड़ी को अंगारों पर डालकर धुआँ लेने से ३ से ७ दिन के भीतर उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। ७ दिन तक भोजन में मात्र गेहूँ की रोटी और घी देवें। फिर ७ दिन तक गेहूँ की रोटी शक्कर और घी देवें। बाद में इच्छानुसार भोजन करें। कितने ही चिकित्सक दो तोले तमाखू भी इस धूम में मिला लेते हैं। तमाखू के व्यसनी के लिये तमाखू मिला लेना हितकर है।

वक्तव्य–मुख, नाक, नेत्र और कान को न ढकें।

१३. उपदंशहर वटिका।

द्रव्य व विधि–सत्यानाशी के मूल की छाल, छोटी इलायची के दाने, सफेद कत्था, तीनों को समभाग मिला के सत्यानाशी के रस में ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर लौंग के चूर्ण में डालते जायें।

मात्रा–२-२ रत्ती, दिन में ३ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह उपदंशहर वटी नये उपदंश रोग पर अच्छा काम देती है। थोड़े ही दिनों में रोग दूर हो जाता है। रोगी को भोजन में मात्र दूध भात देना चाहिये।

१४. रक्तशोधक अर्क।

द्रव्य–चोपचीनी, चिरायता, गोरखमुण्डी, सारिवा, उशवा, उन्नाव, मजीठ, गिलोय, नीम की अन्तरछाल और पित्तपापड़ा इन १० औषधियों को १०-१० तोले लें।

प्रथम विधि–सबको जौकुट चूर्ण करें। फिर १० सेर जल में शाम को भिगो देवें। दूसरे दिन बकयन्त्र द्वारा ५ सेर अर्क खेंच लेवें। (वैद्य अर्जुनसिंहजी)

मात्रा–आध-आध औंस अर्क को समान जल में मिलाकर दिन में ३ बार देवें। विशेषत: उक्त अर्क में ५ तोले सज्जी खार मिलाने पर अच्छा प्रभावी होता है।

उपयोग–यह अर्क मूत्रल, कीटाणुनाशक, विषघ्न और उत्तम रक्तशोधक है। इसके सेवन से जीर्ण फिरंग रोग, सुजाक या अन्य हेतु से होने वाले रक्तविकार, त्वचा पर लाल, काले धब्बे, संधिवात, फोड़े, फुन्सी, कुष्ठ, वातरक्त, गलगण्ड (Goitre), शीतपित्त आदि रोग थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

धमनियों की दीवार कठोर (Arterio Sclerosis) होने से रक्तदबाव वृद्धि होती हो तो उसे भी यह अर्क कम करता है।

सूचना–रोगी को चाहिये कि नमक का त्याग करें। यदि रोगी गेहूँ + चने की रोटी, घी, दूध और शक्कर सेवन करके रह जाये तो जल्दी लाभ पहुँचता है।

द्रव्य (द्वितीय विधि)–चोपचीनी, उशवा, काली अनन्तमूल, सनाय, सौंफ, हरड़ का छिलका, गोरख मुण्डी, बीज निकाले हुए उन्नाव, गुलाब के फूल, इन्द्रायन की जड़ छोटे बेर की जड़ की छाल, मजीठ, रक्तचन्दन और असगन्ध इन १४ औषधियों को १-१ तोले और लोंग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने और केशर ३-३ माशे लेवें।

विधि–सबको कूट लेवें। फिर ८ गुने जल में मिलाकर बकयन्त्र द्वारा अर्क निकाल लेवें। अथवा चतुर्थांश क्वाथकर उसका क्वाथ से चौथा हिस्सा शहद मिलाकर बोतल में भर लेवें।

वक्तव्य–अर्क निकालने के समय केशर को कपड़े में बाँध पोटली बनाकर अर्क निकालने की नली के पास लटका देवें। जिससे अर्क में केशर के गुण, गन्ध, रंग और स्वाद आ जाते हैं।

मात्रा–१-१ औंस अर्क, दिन में दो बार पिलाते रहें।

उपयोग–इस अर्क के सेवन से विविध रक्तविकार दूर होते हैं। उपदंश, सुजाक, कुष्ठ, दूषित पारद के सेवन का विष, मकड़ी आदि जन्तुओं से उत्पन्न रक्तदोष, अपथ्यजनित विकार, जीर्ण त्वचा रोग, पुराने सड़े हुए घाव, जीर्ण कोष्ठबद्धता और अग्निमांद्य आदि दूर होकर शरीर स्वस्थ और तेजस्वी बनता है।

❑ ❑

(३९) पूयमेह

१. कन्दर्प रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल भस्म, सुवर्ण भस्म, सोनागेरु, वैक्रान्त भस्म, रौप्य भस्म, शंख भस्म और मोती भस्म इन ९ औषधियों को समभाग लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष भस्म आदि मिलाकर बड़ के अंकुरों के क्वाथ की ७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१-१ गोली को त्रिफला क्वाथ, तुलसी का स्वरस, अर्जुन छाल के क्वाथ, बबूल के पत्तों के स्वरस या शीतल मिर्च का क्वाथ इनमें से किसी एक के साथ दिन में ३ बार देवें। रोगानुकूल अनुपान के साथ सेवन करावें।

उपयोग–इस कन्दर्प रस के सेवन से औपसर्गिक मेह (सुजाक) जनित विष और तज्जन्य कीटाणु नष्ट होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

२. औपसर्गिक मेह हर मिश्रण।

द्रव्य–रौप्यभस्म १ तोला, प्रवालपिष्टी २ तोले और अमृतासत्व ४ तोले लें।

विधि–इन सबको खरल में मिला लेवें।

मात्रा–४ से ८ रत्ती तक, दिन में २-३ बार, मलाई के साथ लेवें।

उपयोग–इस मिश्रण के सेवन से पूयमेहजनित जीर्ण विकार दूर होते हैं। सुजाक के हेतु से उत्पन्न मूत्रप्रसेक-नलिका में प्रदाह, पेशाब करने के समय जलन होना, बूंद बूंद मूत्र टपकना, कुछ कुछ पूय आना, सांधों सांधों में दर्द होना, नेत्र दृष्टि निर्बल हो जाना, स्वप्नदोष, शुक्र की उष्णता, शुक्र का पतलापन और मन्द-मन्द ज्वर बना रहना आदि विकार थोड़े ही दिनों में दूर हो जाते हैं।

३. औपसर्गिक मेहहर योग।

(१) गीला गन्धाविरोजा २० तोले को एक कपड़े की पोटली में बांधें। फिर एक बड़ी हाँडी में ४ सेर गोमूत्र भर उसमें दोलायन्त्र विधि से विरोजे को पकावें। चतुर्थांश गोमूत्र रहने पर हांडी को उतार विरोजे को निकाल लेवें। पश्चात् एक परात में डाल २१ बार शीतल जल मिला मिलाकर धोंवे। बाद में छोटी इलायची के दाने और मिश्री ५-५ तोले मिला लेवें।

उपयोग–३ से ६ माशे, प्रातःकाल कच्चे दूध के साथ सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में नया सुजाक रोग दूर हो जाता है। रोग प्रबल होने पर औषधि संध्या को भी दूसरी बार देनी चाहिये।

सूचना–(१) इस औषध के सेवन काल में खटाई, गुड़, तैल, लालमिर्च और गरिष्ठ व तैल घी में पके भोजन का त्याग कर देना चाहिये। ब्रह्मचर्य का दृढतापूर्वक पालन करना चाहिये। रसतन्त्रसार में कहे हुए मूत्रशोधक क्वाथ की पिचकारी से मूत्रनलिका को दिन में २-३ बार धोते रहना चाहिये।

(२) पलाश मूल का अर्क और गिलोय का स्वरस १-१ तोला, शहद ६ माशे और मिश्री ३ माशे मिलाकर सुबह और इसी तरह शाम को भी लेवें। १५-२० दिन लेने पर जो नया सुजाक विशेष नहीं फैला है, वह दूर हो जाता है। एवं यह जीर्ण सुजाक के लीन विष को भी जलाकर नष्ट कर देता है।

(३) लाल मिर्च के बीजों को कूटकर कपड़छन चूर्ण कर लें। इसमें से दिन में २-३ बार ४ से ६ माशे चूर्ण को जल के साथ पीसठण्डाई की तरह छानकर पिलाते रहने से एक सप्ताह में नया सुजाक शान्त हो जाता है। यह निर्भय, सरल और उत्तम उपाय है।

(४) देशी, लाल, मोटी, सूखी मिर्च ५ तोले तथा हरी दूब और खस १-१ तोला लेवें। मिर्च के डंठलों को तोड़ दें और भीतर से बीज निकाल दें। फिर मिर्च को १ सेर जल में मिला के मिट्टी या कांच के बर्तन में रात्रि में भिगो देवें। सुबह मिर्चों को मसलकर खूब धोवें। जब तक जल साफ न निकले, तब तक धोते रहना चाहिये। फिर तीनों औषधियों को मिलाके सिला पर लोढ़ी से चटनी की भांति पीसें। पश्चात् ताजे आध सेर दही में मिलाकर रोगी को पिला देवें।

प्रातःकाल पुनः मिर्च को जल में भिगो दें। फिर सायंकाल को उपरोक्त विधि से घोल तैयार पर पिला देवें। इस तरह दोनों समय देते रहने से थोड़े ही दिनों में भयंकर बढ़ा हुआ सुजाक रोग निवृत्त हो जाता है।

यह औषध अत्यन्त साधारणसी ज्ञात होती है और इसकी मात्रा भी अत्यधिक प्रतीत होती है। परन्तु यह हमारा हजारों बार का परीक्षित प्रयोग है। *(श्री डॉ. रामजीवजी त्रिपाठी)*

डॉक्टर साहब इस औषध के सेवन के साथ तीसरे दिन पर सोल्यूशन ट्राइप फ्लेविन (solution Trypa Flavin) १० सी.सी. का इंजेक्शन सिरा द्वारा (Intravenous) देते रहते हैं। इस इञ्जेक्शन से मलमूत्र शुद्ध होने पर पुनः सूचीवेध करते हैं। यदि यह सूचीवेध क्रिया न की जाये तो रोग के शमन में कुछ दिन अधिक लगते हैं।

सूचना–इस रोग में मूत्र प्रसेक नलिका पूयपूर्ण बनी रहती है। इस हेतु से दिन में २-३ बार उसे धोते रहना चाहिये। अन्यथा भीतर शोथ और घाव बढ़ जायेंगे फिर दोनों ओर की वंक्षणीय ग्रन्थियों (Inguinal Glands) का प्रदाह (Gonorrheal Bubo) गुदद्वार में वेदना, पौरुष ग्रन्थि का प्रदाह (Prostatitis) और मूत्रकृच्छ्रता आदि विविध उपद्रव (Complications) उपस्थित हो जायेंगे। अतः कांच की पिचकारी से निम्न कषाय द्वारा धोते रहना चाहिये।

मूत्रशोधक कषाय–हरड़, बहेड़ा, आँवला, फिटकरी का फूला, सोहागे का फूला, रसोंत ये ६ औषधियाँ २-२ तोले, नीलाथोथा और कपूर १-१ तोला, अफीम ६ माशे तथा जल २ सेर लेवें। पहले त्रिफला को कूट के जल में उबालें। जल उबलने पर फिटकरी और सोहागे को मिलावें, फिर अच्छी तरह उबल जाने पर बरतन को उतार लेवें। रसोंत को थोड़े अलग जल में मिलावें, उसमें नीलाथोथा और कपूर को पीसकर मिला देवें। पश्चात् सबको छान के मिलाकर बड़ी बोतल में भर लेवें।

इस कषाय में से थोड़ा-थोड़ा निकालके उससे २-२ पिचकारी दिन में ३ समय मूत्रनलिका में लगाते रहने से वहां का संगृहीत पूय दूर हो जाता है। प्रदाह शमन होता, घाव भर जाता है और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। केवल तीन रोज में ही यह औषध अपना चमत्कार दर्शा देती है और थोड़े ही दिनों में सुजाक रोग को दूर कर देती है। *(श्री डॉ. रामजीवन जी त्रिपाठी)*

इस धोने की क्रिया के साथ डॉक्टर साहब डॉक्टरी यन्त्र द्वारा सेक की क्रिया भी करते रहते हैं। सामान्य रीति से एक बर्तन में निवाया जल भर कर उसमें मूत्रेन्द्रिय को प्रातः सायं १०-१० मिनट डुबोई रखने से भी अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

४. पूयमेहहर गुटिका।

द्रव्य (प्रथम विधि)–५ तोले हिंगुल तथा सूखा गन्धाविरोजा, कुन्दरु, रुमीमस्तंगी और भैंसागूगल १०-१० तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर कूटें। फिर किञ्चित् जल मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाके सेलखड़ी के चूर्ण में डालते जायें। जिससे गोलियां एक दूसरे से लगकर न मिल सके।

उपयोग–२ से ४ गोली, जल के साथ दिन में ३ बार देते रहने से ५-७ दिन में सुजाक दूर हो जाता है। जीर्ण रोग में प्रातः सायं २-२ गोली एक मास तक सेवन करानी चाहिये।

द्वितीय विधि–गन्धाविरोजा, लोहबान, रूमी मस्तंगी और भैंसागूगल, इन सबको समभाग मिलाके थोड़ी बूंदें जल की डाल के खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें और उन्हें सेलखड़ी के चूर्ण में डालते जायें। *(आ.नि.सा.)*

मात्रा–२-२ गोली, दिन में ३ बार, जल के साथ दें।

उपयोग–यह गुटिका नये और पुराने पूयमेह को दूर करती है। मूत्रदाह और मूत्र में पूय आना, ये दोनों उपद्रव २-३ दिन में ही शान्त हो जाते हैं।

इस औषध के सेवन से नूतन रोग में थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है परन्तु जीर्ण रोगों में कभी-कभी ४-६ मास तक सेवन कराया जाता है।

५. वंग योग।

द्रव्य व विधि–शुद्ध वंग और शुद्ध यशद २-२ तोले, इनको मिट्टी के पात्र में डालकर अग्नि पर गला लें। जब ये द्रव हो जायें,

तब इन्हें खरल में रखे हुए २ तोले शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद में डालकर तत्काल ही ४ प्रहर तक सतत घोटें। जब भली प्रकार मिश्रण बन जाये, तब टेनिक एसिड (माजूफल का सत्व) ८ तोले मिलाकर पुन: ४ प्रहर तक खरल करके शीशी में भर लें।

मात्रा–२-२ रत्ती, प्रात:, सायं मक्खन के साथ दें।

पथ्य–गाय अथवा बकरी का दूध, जौकी धानी का दलिया या मात्र चावल देवें। एक सप्ताह से २ सप्ताह पर्यन्त इसका सेवन करें। फिर इसको बन्दकर २ सप्ताह तक निम्नलिखित चन्दनादि तैल योग २०-२० बूंदें प्रात: सायं जल के साथ देवें।

चन्दनादि तैल योग–असली चन्दन का तैल १ तोला, तैल बालसम कोपैबा (Balsam Copaiba) १ तोला, क्युबेब आइल १ तोला, इन तीनों को चीनी के खरल में डालकर फिर लाइकर पोटास थोड़ा-थोड़ा डालते जायें और घोटते जायें। घुटते घुटते सफेद रंग का इमलसन बन जाये तब पोटास डालना बन्द करें। तत्पश्चात् शीशी में भर कर रखें।

उपयोग–ये उपरोक्त दोनों प्रयोग अजमेर के यशस्वी चिकित्सक स्वामी गणेशानन्द जी के अनुभूत है। इनके द्वारा पुराने सुजाक के उपद्रव रूप मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र में बिना केथिटर के लगाये सरलता से मूत्र उतर कर लाभ होता देखा गया है।

(४०) कुष्ठ।

१. कुष्ठहर रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद २ तोले, हरताल पुष्प, छोटी पीपल और धतूरे के शुद्ध बीज ३-३ तोले, शुद्ध बच्छनाभ १॥ तोला और कालीमिर्च ४ तोले लें।

विधि–पहले पारद व हरताल को मिलाकर एक जीव करें, फिर वत्सनाभ विष मिलावें। तत्पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर निम्बमद (नीम का स्वयं स्रुतजल) धतूरे के पान और अदरक के रस के साथ १२-१२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार, मंजिष्ठादि अर्क या खदिरारिष्ट या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह कुष्ठहर रस, कीटाणुनाशक, रक्तप्रसादन, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, वातशामक और कफघ्न है। यह वात-कफ प्रधान सब कुष्ठों को दूर करता है।

विवेचन–गलित्कुष्ठ बढ़ने पर हाथ पैर की अंगुलियों के पर्व और कान, नाक, अदि अवयव गलने लगते हैं। उनमें से रस व खून टपकता रहता है। मांस आदि धातुओं की अपक्रान्ति होकर सड़ने और गलने लगते हैं। देह में से स्वेदस्राव अधिक होता है। उसमें से सड़ी हुई अवस्था को तुरन्त रोक देने और उपस्थित विकार को जला देने की आवश्यकता है। ये दोनों कार्य कुष्ठहर रस सफलतापूर्वक कर देता है एवं पथ्यपालनसह सेवन करने पर एक दो मास में देह को स्वस्थ और हरताल सदृश तेजस्वी बना देता है।

यदि इसको अपक्रान्तिकाल में ज्वर भी आ जाता हो तो उसे भी यह दूर कर देता है। मलावरोध रहता हो तो लघु मंजिष्ठादि क्वाथ या अन्य उदर शोधक अनुपान देना चाहिये इसमें प्रधान औषधि हरताल पुष्प है। उसके साथ विष का रासायनिक संमिश्रण होता है। जिससे यह कुष्ठ कीटाणुओं के अतिरिक्त पूयोत्पादक कीटाणुओं का नाश करके पूय को सुखा देता है और नयी उत्पत्ति को बन्द कराता है। इस हेतु से पूय प्रधान रोग-नाड़ीव्रण, भंगदर, विद्रधि, फूटा हुआ अर्बुद, अपची, राजयक्ष्मा में पूय प्रधान कफस्राव और सुजाक आदि रोगों पर यह सफलतापूर्वक व्यवहृत होता है।

सुजाक रोग की उत्पत्ति एक ओर उभरे हुए गोल और दूसरी ओर समान गोनोकोकस कीटाणुओं (Neisseria Gonorrhoeae) के संक्रमण से होती है। इस रोग में मूत्रप्रसैक नलिका का प्रदाह होकर क्षत हो जाता है। मूत्र त्याग में भयंकर जलन होती है। इस आशुकारी अवस्था में ही यह रस शहद या शक्कर के साथ दिन में २ बार प्रयुक्त करने पर पूयप्रदाह, क्षत और जलन आदि को नष्ट करके ३-४ दिन में ही रोग को दूर कर देता है। रोगारम्भ हुए १५ दिन हो जाने से कीटाणु विष रक्तादि धातुओं में प्रविष्ट हो गया हो, तो गन्धक रसायन ४-६ रत्ती इस रस के साथ देने पर रक्त प्रसादन क्रिया साथ-साथ होती है। यदि सुजाक रोग जीर्ण हो गया हो, तो कुष्ठ कुठार और गन्धक रसायन मिश्रण चौथाई मात्रा में १-२ मास तक देते रहने पर धातुओं में लीन विष को जलाकर देह को नीरोगी बना देता है।

नाड़ी व्रण, भगन्दर आदि विकार फिरंग के उपद्रव रूप हो या स्वतंत्र उत्पन्न हुये हों, तो दोनों प्रकारों पर यह रस चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है। अन्तर्विद्रधि, व्रण अथवा अर्बुद होने पर अथवा वृक्क स्थान में क्षत होने पर उसमें से पूय रक्त में शोषित होती है। ऐसी अवस्था में कितने ही रोगियों को पूयज्वर (Pyaemia) हो जाता है। उसमें दिन में १-२ बार मलेरिया के समान शीत लगना और फिर स्वेद आकर उत्ताप कम हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस अवस्था में मुख्य रोग की औषधि के साथ-साथ कुष्ठकुठार की योजना करने से ज्वरघ्न, पूयहर गुण दर्शाकर लाभ पहुँचाता है।

२. स्वर्णक्षीरी रस।

द्रव्य व विधि-सत्यानाशी की जड़ २० तोले को दोलायन्त्र से ३२० तोले मट्ठे में उबालें। फिर धोकर ३२० तोले दूध में दोलायंत्र विधि से पाचन करें। मट्ठा और दूध हांडी में थोड़े-थोड़े परिमाण में डालें। मट्ठा या दूध जैसे-जैसे जलते जायें, वैसे-वैसे डालते रहें। दूध गाढ़ा हो जाने पर सत्यानाशी को निकाल, धो, कुचलकर छाया में सुखा देवें। फिर कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् यह चर्ण् २० तोले, कालीमिर्च ८ तोले और रससिन्दूर ४ तोले मिलाकर मर्दनकर लेवें। *(शा.सं.)*

मात्रा-२ से ४ माशे, तक मंजिष्ठादि क्वाथ या जल के साथ प्रातःकाल देवें और सहन हो सके तो रात्रि को भी देवें।

उपयोग-यह रसायन रक्तशोधक और कीटाणुनाशक है। इस रस का २-४ मास तक श्रद्धासह सेवन करने पर सुप्त (संज्ञा शून्य) कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

३. गलत् कुष्ठारि रस।

द्रव्य-सोमल, रसकपूर, सिंगरफ और दारचिकना १-१ तोला और जमालगोटा (ऊपर से छिलके और भीतर से जिब्बी निकाले हुए) ४ तोले लेवें।

विधि-सबको खरल में मिलाकर दो अण्डों की जरदी डालकर मर्दन करें। बाद में एनमेल (लोहे सफेदी लगे हुए) के बर्तन में डाल के निर्धूम उपलों की मन्द अग्नि पर चढ़ाकर लकड़ी से चलाते रहें। जरदी पककर तैल छूटने लगे, तब पात्र को उतार लें। शीतल होने पर औषधि को खुले मँह की मजबूत डाट वाली शीशी में लेवें। *(स्व. जगदानन्द गिरिजी)*

मात्रा-१ रत्ती, प्रातःकाल केप्सूल में या १० साल के पुराने गुड़ के साथ अथवा २-४ मुनक्कों में रखकर निगलवा देवें। दांत को नहीं लगनी चाहियें।

सूचना-इस औषधि के सेवन से पहले रोगी को निम्न विरेचन (मुंजिस) देना चाहिये।

मुञ्जिस-गुलाब के फूल और कूटी सौंफ १०-१० तोले को मिलाकर ५ सेर जल के साथ उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार के मसलकर छान लेवें। इस जल में से आधे जल को रहने दें और आधे जल में ३ छटांक चावल डाल के पकाकर पतले चावल बना लेवें। इसमें मुनक्का, कालीमिर्च, शक्कर और घी मिलाकर खा लेवें। शाम को शेष जल में उपरोक्त विधि से चावल बनाकर सेवन करें। ४-६ रोज में उदर नरम हो जाने पर सुबह उपरोक्त औषधि लेवें। शाम को नमकीन खिचड़ी बिना घी मिलायें खायें। उस दिन भोजन एक ही समय दिया जायेगा। पुनः दो दिन तक उपरोक्त विधि से मुञ्जिस के क्वाथ में बनाये हुए मीठें चावल खावें। चौथे रोज औषधि लेवें। इस तरह ४-७ समय औषधि लेने से सब प्रकार के गलत् कुष्ठ, दुष्ट नाडीव्रण, भगन्दर, अस्थिक्षय (Bone T.B. हड्डी का सड़ना) और विद्रधि आदि दूर होते हैं।

उपयोग-विशेषकर यह रसायन उपदंशज गलत् कुष्ठ, उपदंशजनित रक्तविकार, न सूखने वाली पूयमय विद्रधि आदि को २१ दिन के भीतर सुखाकर दूर करता है। यह गलत् कुष्ठ के घाव को बहुत जल्दी सुखाता है।

कान, नाक, अंगुलियां, आदि गल गये हों, देह बिल्कुल सड़ गया हो, स्थान-स्थान से रस चूता रहता हो, मक्खियाँ भिनभिना रही हों, देह में से मुर्दे के समान दुर्गन्ध निकलने के हेतु से दूसरे व्यक्ति के पास भी न आ सकते हों और रोगी भयंकर कष्ट भोग रहा हो, ऐसी घातक परिस्थिति वाले अनेक रोगियों को इस रसायन ने जीवन दान दिया है। यह स्व. स्वामी जगदानन्दजी का परीक्षित प्रयोग है।

सूचना-अनेक रोगी ४ रत्ती तक मात्रा सहन कर लेते हैं। ऐसा प्रयोगदाता का कथन है। अधिक मात्रा से किसी को हानि न पहुँच जाये, इस विचार से हमने मात्रा कम लिखी है।

औषध सेवन काल में पहले घी नहीं देना चाहिये। मुञ्जिस के दिनों में तो देना ही पड़ता है, किन्तु अनेक रोगियों को जब दाह बहुत बढ़ जाता है, तब घी कुछ अंश में देना ही पड़ता है। जब तक दाह अधिक न बढ़े, तब तक घी न देवें। मुञ्जिस के दिनों में ५ से ३० तोले तक घी खिलाना पड़ता है। क्योंकि जुलाब से पूर्व कोष्ठ को स्निग्ध करने के लिये स्नेहपान की आवश्यकता होती है। अत: चावल, मूंग की खिचड़ी और घृत पाचन शक्ति के अनुसार देते रहना चाहिये। परन्तु जुलाब के दिन घृत देना वर्ज्य है। कुष्ठकुठार रस का एक पाठ रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड में दिया है। वह भी गलत्कुष्ठ के ऊपर हितकारक है। उसकी अपेक्षा यह अति तीव्र है। इसका प्रयोग अति सावधानीपूर्वक, पथ्य पालन सह करना चाहिये।

४. वीरचण्डेश्वर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाभ, लोह भस्म, बावची, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की अन्तर छाल, चित्रकमूल और गिलोय, इन ११ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर लोह भस्म, बच्छनाभ और शेष औषधियों को कपड़छन चूर्ण क्रमश: मिलाके भांगरे के स्वरस और बावची के क्वाथ से ३-३ दिन मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.रा.सु.)*

मात्रा-१ गोली या अधिक गोलियाँ रोगी और रोग के बलानुसार जल के साथ दें।

उपयोग-यह वीरचण्डेश्वर रस ऋष्यजिह्वक और इतर सब कुष्ठों का नाश करता है। एक मास में ऋष्यजिह्वक और ६ मास में समस्त कुष्ठों का नाश करता है।

ऋष्यजिह्वक की गणना सप्त महाकुष्ठों में की है। यह कुष्ठ वातपित्त प्रधान होता है। यह कठिन, किरानों पर लाल, मध्य में काले रंग का वेदनायुक्त और गाय की जिह्वा के समान खुरदरा होता है। इस कुष्ठ पर इस वीरचण्डेश्वर का अच्छा उपयोग होता है।

ऋष्यजिह्वक (Lupus Erythematosus) प्राय: बड़ी आयु में होता है। प्रारम्भ में लाल या नीलाभ रक्त, क्षत किञ्चित् उन्नत और किनारेयुक्त होता है। यह प्राय: नाक, गाल, कान और कण्ठ पर होता है। यह कील के सदृश मोटे शिरवाले, छोटे-छोटे शृंग सदृश कठोर छिल्कों से आच्छादित रहता है। इसमें कभी व्रणोत्पत्ति और पाक नहीं होता है। नीचे-नीचे गति करता है और बीच में आच्छादन को शुष्क बनाता जाता है। यह अति दीर्घकाल स्थायी रोग है इस रोग पर वीरचण्डेश्वर रस का सेवन करने पर लाभ पहुँचता है, नमक के त्याग और पथ्यपालनसह प्रयोग होने पर बहुत जल्दी लाभ हो जाता है।

वीरचण्डेश्वर रस बावची के साथ श्वेत कुष्ठ पर भी दिया जाता है।

सूचना-(१) मलावरोध रहता हो, तो उसे दूर करने के लिये उचित लक्ष्य देना चाहिये अथवा आरोग्यवर्द्धिनी नं. २ का सेवन करना चाहिये।

(२) आरोग्यवर्द्धिनी और वीरचण्डेश्वर दोनों कुष्ठों पर हितकारक है। आरोग्यवर्द्धिनी में ताम्र और कुटकी है। अनेकों से ताम्र और कुटकी सहन नहीं होती। उसके लिये लोह और बच्छनाभ प्रधान यह वीरचण्डेश्वर हितावह है इसमें बच्छनाभ होने से कम मात्रा में अधिक काल तक देना चाहिये। अधिक मात्रा देने से बच्छनाभ के हानिकर लक्षण उपस्थित होते हैं।

५. अहिवध रस।

द्रव्य-शुद्ध गन्धक ६४ तोले, शुद्ध पारद या वनौषधि से मारित ताम्रभस्म और नागभस्म ३२-३२ तोले लें।

विधि-सबको मिलाकर खरल करें। फिर उसमें १२ तोले कज्जली मिलाके बड़े पक्के घड़े में डाल, ढक्कन लगा, संधि स्थान पर गुड + चूने की पट्टी से अच्छी तरह बन्द करें। फिर चूल्हे पर चढ़ा ३६ घण्टे तक मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल लेवें। (मूल ग्रन्थकार ने ताम्र और सीसे का पतरा लेने को लिखा है किन्तु ताम्र और नाग के अपक्व रहकर मारक प्रभाव हो जाने का भय रहता है और भस्म से अधिक गुण मिलेगा, ऐसा मानकर हमने भस्म मिलाई है।)

फिर बलवान् अति पुष्ट, युवा, काले नाग को क्लोरोफार्म सुंघाकर उस के उदर (मुँह) में ३२ तोले ताल चूर्ण भरें। ऊपर ४ तोले बच्छनाभ का चूर्ण भरें पश्चात् पुन: ३२ तोले हरताल भरकर मुँह को बन्द करें। १। मन जल रह सके वैसे बड़े घड़े के भीतर गुड + चूने का लेप

करें। सूखने पर ४ तोले बचछनाभ चूर्ण तथा बावची, भिलावा और इद्रजौ का चूर्ण ६४-६४ तोले बिछा दें। फिर सांप को चक्री सदृश बनाकर रखें। ऊपर और थूहर की छोटी प्रशाखायें और घीकुंवार का गूदा ६४-६४ तोले डाल, ढक्कन लगा गुड+चूने से अच्छी तरह मुख बन्द करें। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ा १ प्रहर तक चावल पकाने सदृश मन्दाग्नि दें। फिर १० प्रहर तक तेज अग्नि और अन्त में १ प्रहर तक मन्दाग्नि देवें।

स्वांग शीतल होने पर लोहे की कड़ाही में १९२ तोले घी के साथ उक्त सर्प भस्म को डाल चूल्हे पर चढ़ाकर तेज अग्नि देवें। अच्छी तरह घृतादिका पाक होने पर फिटकरी का फूला और सोहागे का फूला ८-८ तोले मिला उस में से थोड़ा-थोड़ा चूर्ण ३-४ बार डाल कुड़छी से चलाते रहने से कड़ाही के भीतर अग्नि लगकर सब घी जल जायेगा।

स्वांग शीतल होने पर ताम्र भस्म मिश्रण मिलाने से अहिवध रस सिद्ध होता है। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-आध से २ रत्ती; ७ दिन तक कालीमिर्च के चूर्ण और घृत के साथ दिन में १ या २ बार दें। मात्रा क्रमशः २ रत्ती तक बढ़ावें।

सूचना-(१) भोजन में नमक रहित जौ का दलिया (घी शक्कर मिला सकते हैं) लेवें। नमक बिना न चल सके तो थोड़ा सैंधानमक लेवें।

(२) पूरा लाभ न हुआ हो तो १५ दिन बाद पुनः दूसरी बार सेवन करें।

उपयोग-यह अहिवध रस असाध्य गलत् कुष्ठ और तीनों दोषों से उत्पन्न सारे शरीर में व्याप्त प्रबल कुष्ठ को भी दूर करता है। इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा को भी यह नष्ट करता है। स्व. वैद्यराज हरि प्रपन्नजजी ने अनेक रोगियों को यह रस देकर जीवनदान दिया था। वे औषध देने के पहले संशोधन क्रिया द्वारा शरीर की शुद्धि करा लेते थे।

६. तालकेश्वर रस।

द्रव्य (प्रथम विधि)-हरताल पुष्प, ताम्र भस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध पारद, भिलावे के तैल से शुद्ध किया हुआ गन्धक, सुवर्ण भस्म, लोहभस्म, शुद्ध बच्छनाभ, इन ८ औषधियों को २-२ तोले और अभ्रक भस्म १६ तोले लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर हरताल, मैनसिल, बच्छनाभ और भस्में क्रमशः मिलाके ३ दिन नींबू के रस में खरल करके पेड़ा बनावें। इसे सुखा कर दृढ शराव संपुट कर २ सेर गोबरी के चूरे में फूंक देवें स्वांग शीतल होने पर निकाल के पीसकर बोतलों में भर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ रत्ती, दिन में १ बार, रोगहर अनुपान के साथ।

उपयोग-इस तालकेश्वर रस का सेवन पथ्य पालनसह ६ मास तक करने पर सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रहणी, कामला, पाण्डु, क्षय, कास, गुल्म और शूलरोग भी दूर हो जाते हैं।

पथ्य दूध, मट्ठा, थोड़ा घी, भात और चौलाई आदि के शाक आदि। चना, गेहूँ, जौ आदि भी अनेक विकारों में पथ्य माने जाते हैं।

जिन कुष्ठ रोगियों को ज्वर, कफवृद्धि, मेदो वृद्धि, वातप्रकोप, पाण्डु ओर प्रमेह आदि विकार हों, या पहले फिरंग रोग हो गया हो अथवा शारीरिक भार घटता जाता हो, उन रोगियों के लिये रसायन अच्छा लाभ पहुँचाता है।

विवेचन-मण्डल कुष्ठ (Lupus Vulgaris) रोग बाल्यावस्था या युवावस्था में हो जाता है, यह क्षय कीटाणुजन्य रोग है। इस रोग में मण्डल (मृदुगांठे) बनते हैं। इन मण्डलों पर शलाका चुभोने पर गड्ढे होते हैं। मण्डल रक्ताभ पीत होते हैं। मण्डल लगभग गोल होते हैं। ये मण्डल व्रणों में रूपान्तरित होते हैं या इनका कोथ होता है। प्रारम्भावस्था में ज्वर आता है। फिर श्लैष्मिक कला द्वारा तीव्र गति से क्षेत्र को दूषित करता है। यह रोग हथेली, पैरों के तल और गुह्य भाग पर बहुधा नहीं होता है। हाथ पैरों में कृत्रिम श्लीपद की प्राप्ति कराता है। यह तालकेश्वर रस आंवला और बावची के क्वाथ के साथ इस रोग पर व्यवहृत होता है।

काकणक-(गलत् कुष्ठ-Leprosy) रोग के प्रारम्भ में संस्थान और रसादि धातुओं में विकृति होती है। फिर शीत कम्प सह ज्वर आता है। किसी को लाल ददौरे (उदुम्बर कुष्ठ) और किसी को रसमय फुन्सियां होती हैं। पश्चात् शून्य धब्बों से युक्त कापाल कुष्ठ (Anesthetic Leprosy), त्वचाक्षय और केशहीनता अथवा मृदु या कठोर ग्रन्थियाँ होकर शोषित होती है अथवा व्रणों में रूपान्तरित होती हैं। फिर मुखमण्डल स्फीत और विकराल बनता है। अनेकों के देह में से अति स्वेदस्राव होता रहता है। ऐसी विविध अवस्थायें व्यतीत होने पर पर्व आदि गलने

लगते हैं। इसकी अन्तिमावस्था में भी यदि पहले पञ्चकर्म करा लिया जाये और पथ्य का दृढतापूर्वक पालन कराया जाये तो तालकेश्वर रस लाभ पहुँचा सकता है।

द्रव्य (द्वितीय विधि)–शुद्ध हरताल, सुवर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध पारा और सोहागे का फूला ४-४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले तथा ताम्रभस्म ८ तोले लें।

विधि–पारद गन्धक की कज्जली कर, हरताल का कपड़छन चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। फिर शेष औषधियां मिला नीम के पत्तों के स्वरस की भावना दें। फिर गोला बना सूर्य के ताप में सुखा, शराव सम्पुट कर, गजपुट के भीतर गड्ढा खोद कर उसमें सम्पुट रखकर मिट्टी से अच्छी प्रकार दबा, ऊपर ५ सेर गोबरी की अग्नि देवें। स्वांगशीतल होने पर निकाल, पुनः उसी तरह भावना देकर, गजपुट के नीचे गड्ढे (भूधरयंत्र) में रख अग्नि देवें। इस तरह ६ पुट देवें। पश्चात् १६ तोले लोहभस्म (सोमल और हरताल मारित) तथा सब औषधियों के वजन का ३०वाँ हिस्सा शुद्ध बच्छनाभ मिला नीम के पत्तों के स्वरस में ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(वै.सा.सं.)*

मात्रा–१ से २ गोली; भैंस के घी के साथ देवें अथवा बावची का चूर्ण १ तोला, घृत १ तोला तथा शहद २ तोले मिलाकर, उसके साथ देवें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं। यह रसायन शून्य कुष्ठ और गलत्कुष्ठ में भी अपना प्रभाव सत्वर दर्शाता है।

७. बाकुच्यादि चूर्ण।

द्रव्य–बड़ी बावची और त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला तीनों मिलाकर) ४०-४० तोले, बायविडंग के तण्डुल (गिरी) ८ तोले, शुद्ध शिलाजीत १४ तोले, शुद्ध पक्के भिलावे १०० नग, पुष्करमूल ४ तोले, लोह भस्म १२ तोले, फिटकरी का फूला २ तोले तथा तेजपात, नागरमोथा, पीपल, मुलहठी, चित्रकमूल, पीपलामूल, नागकेशर, बड़ की छाल, कालीमिर्च और केशर, इन १० औषधियों को १-१ तोला लें।

विधि–सबको कूठ कपड़छन चूर्ण करें। फिर सबके समान मिश्री मिला लेवें। (मिश्री सेवन काल में मिलाने में सुविधा अधिक रहती है, इसलिये हम पहले मिश्री नहीं मिलाते।) *(ग.नि.)*

मात्रा–मिश्री सहित ६ माशे से १ तोला तक जल के साथ देवें। भोजन में आँवले मिश्रित मूंग का यूष नमक रहित दें, तो बहुत जल्दी लाभ पहुँचाता है।

उपयोग–यह चूर्ण समस्त कुष्ठ के नाश के लिए उत्तम है। इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ, ६ प्रकार के बढ़े हुए अर्श, श्वेत कुष्ठ, आठ प्रकार के उदररोग, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, कण्ठ विकार, सब प्रकार के प्रमेह, उन्माद, ज्वर, नेत्ररोग, नासारोग, पांच प्रकार के गुल्म, ८० प्रकार के वातरोग, पित्तप्रकोप से उत्पन्न ४० रोग और २० प्रकार के कफरोग आदि दुष्ट व्याधियों का विनाश होता है। मनुष्य तेजस्वी और गौर वर्ण का हो जाता है। १०० वर्ष तक जीवित रहने की क्षमता पैदा होती है। जीर्ण एवं कठिन रोगों में इसका सेवन ३ से ६ मास तक करने से रोग निवारण हो जाता है तथा युवती के मद को हरने में सबल और हृष्ट-पुष्ट बना देता है।

विवेचन–आमाशयपित्त अधिक अम्ल और उग्र हो गया हो तथा यकृत् भी निर्बल हो, पश्चात् अम्ल विपाक प्रधान भोजन चावल, दही, मट्ठा आदि का सेवन किया जाये तो उससे उत्पन्न रस भी दूषित ही होगा, उसमें स्थित अम्लता तथा आमविष का रसद्वारा शोषण रक्त में होने पर रक्त भी अम्ल और आमविषयुक्त बन जाता है। ऐसे विकृत रुधिर से पोषण प्राप्त करने वाली त्वचा में विकृति आ जाती है। परिणाम में देह के विभिन्न भागों पर श्वित्र के सफेद दाग, श्वित्र की सम्प्राप्ति होने पर दीपन, पाचन, यकृद बलवर्द्धक, विषघ्न, रक्तप्रसादक, कीटाणुनाशक और अपक्रान्तिहर गुणयुक्त औषधि सेवन करायी जाती है। ये सब गुण इस बाकुच्यादि चूर्ण में है। अतः पथ्य पालनसह इस चूर्ण का सेवन कराने पर दृढ़, जीर्ण श्वित्ररोग २-४ मास में दूर हो जाता है।

इस चूर्ण का सेवन धैर्य और श्रद्धासह करने से सफेद कुष्ठ के दाग (ल्यूकोडर्मा) नये और पुराने तथा समस्त शरीर में दृढ़ बने हुए विकार नष्ट हो जाते हैं। ६ माशे से १ तोला मात्रा अधिक भासती है। परन्तु सहन हो सके तो कम नहीं करना चाहिये।

सूचना-कुष्ठ रोग की उत्पत्ति विशेषतः कृमि प्रकोप से होती है। यदि कोष्ठ शूल, शीर्षशूल, ज्वर और तृषा लक्षण हो और रात्रि को कष्ट अधिक होता हो तो कृमि या विष जनित रक्तविकार मानकर इस औषध के सेवन काल में विडंगारिष्ट और खदिरारिष्ट दोनों को मात्रानुसार मिला, समान भाग जल मिश्रणकर दिन में दो बार भोजन करने के अनन्तर देते रहना चाहिये।

८. श्वित्रारि योग।

(१) बड़ी बावची के चूर्ण १ सेर को असन वृक्ष और खैर की छाल के क्वाथ की ७-७ भावनायें देकर सुखा लेवें। फिर हरड़ और चित्रकमूल की छाल १-१ सेर, शहद और घी ये दोनों २-२ सेर तथा लोहभस्म ८ तोले मिलाकर चाटण बना लेवें। *(भा.भै.र.)*

मात्रा-२ से ३ माशे, दिन में एक या दो बार देवें।

उपयोग-यह योग जीर्ण दृढ़ श्वित्रकुष्ठ के लिये उत्तम है। मन्दाग्नि और कोष्ठबद्धतायुक्त कुष्ठ रोगी के लिये लाभदायक है। इसके सेवन से कोष्ठाग्नि प्रदीप्त होती है, आम, कृमि और कीटाणु नष्ट होते हैं, अन्त्र निर्दोष बनती है। तथा रक्त प्रसादन होकर श्वित्ररोग दूर हो जाता है। इस योग के साथ गन्धक रसायन का भी उचित मात्रा में सेवन कराया जाये तो लाभ शीघ्र मिलता है।

(२) शुद्ध गन्धक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, भांगरा, भिलावा और नीम की निम्बोली की गिरी, इन सबको कूट कपड़छन चूर्णकर, भांगरे के रस में ३ दिन खरलकर सुखा, चूर्ण बना लेवें या १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भा.भै.र.)*

मात्रा-२ से ३ रत्ती, रात्रि को अथवा दिन में २ बार, घी शक्कर के साथ।

उपयोग-यह सफेद कोढ़ (Leukoderma) को सत्वर दूर करता है। वात और कफ प्रधान प्रकृति वाले जिनका यकृत् निर्बल होने से योग्य पित्त स्राव नहीं होता हो, मलावरोध, उदरकृमि, अग्निमांद्य, अर्श आदि लक्षण भी साथ में रहते हों, उनके लिये यह हितकारक है।

वक्तव्य-इस योग के वेगकाल में जमीकन्द, दूध, बैंगन, मछली, मांस और खट्टे शाकों का त्याग करना चाहिये।

९. श्वित्रारि रस।

द्रव्य व विधि-कसीस, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक, तीनों को ५-५ तोले मिला कज्जली कर तुलसी के स्वरस में ३ दिन खरल करके पेड़ा बनावें। फिर छाया में सुखा नीचे ऊपर चांगेरी (अम्लोनिया) का कल्क रख दृढ़ शराव संपुट करें। फिर ५ सेर गोबरी की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल खरल में घोटकर शीशियों में भर लें। *(र.र.सं.)*

मात्रा-१ रत्ती से प्रारम्भ करके ४ रत्ती तक बढ़ावें।

अनुपान-शहद और घी, दही और घी, मक्खन, आंवलों का रस, अदरक का रस, तिन्दुक फल या केला।

उपयोग-यह रसायन श्वित्ररोग (Leukoderma) के लिये अति लाभदायक है। आम की अधिकता और कफ की प्रधानता वाले रोगियों के लिये यह उपयोगी है। इस रसायन के साथ निम्बपत्र, हल्दी, पीपल और बावची का चूर्ण बनाकर ३-३ माशे दोपहर को भोजन कर लेने पर तुरन्त लेते रहने, तथा ऊपर दूध पीना विशेष लाभदायक है। बाहर लगाने के लिये महातिक्त घृत में बावची का चूर्ण मिलाकर उपयोग में लेना चाहिये।

वक्तव्य-औषध प्रारम्भ करने के पहले वमन, विरेचन आदि शोधन से शुद्धकर लेने पर सत्वर योग्य लाभ मिलता है।

१०. भल्लातक अवलेह।

प्रथम विधि-ताजे मोटे वृन्तरहित, साबुत १ सेर भिलावों को २० सेर जल में डालकर मन्दाग्नि से पकावें। चतुर्थांश जल रहने पर जल को फेंक दें। फिर भिलावों को ८४ सेर दूध में डालकर पकावें। चतुर्थांश दूध शेष रहने पर दूध को अलगकर भिलावों को निकाल लें। उसे २० तोले गोघृत में मन्दाग्नि पर भूने। फिर शिला पर मक्खन के सदृश बारीक पीसें। उसमें बंगभस्म, रससिंदूर, सुवर्णभस्म तीनों ७॥-७॥ माशे मिलावें। दालचीनी, वंशलोचन, मेहंदी के फूल और २१ बार गोमूत्र में बुझाया हुआ मैनशिल १।-१। तोला, रतनजोत, लौंग, केशर, सोंफ, दालचीनी, जावित्री, २॥-२॥ तोले, सफेद चन्दन का चूर्ण ५ तोले, कस्तूरी ७॥ माशे, छोटी इलायची के दाने, भोजपत्र, तेजपात,

सोंठ, पीपल, कांकडासिंगी, मेंढ़ासिंगी, छोटी हरड़, बड़ी हरड़, आंवला, कालाजीरा, सफेदजीरा, कालीजीरी, कालीमिर्च, धनियां और तिल, ये १६ औषधियां १।-१। तोले लें। इन सबका कपड़छन चूर्ण कर मिलावें। फिर गरमकर झाग निकालकर, साफ किया हुआ शहद २ सेर मिला अमृतबान में भर ७ दिन तक धान्यराशि में दबा देवें। पश्चात् निकालकर उपयोग में लेवें। *(र.यो.सा.)*

वक्तव्य-जो दूध निकाल दिया है, उसका खोवा बना, घी में भून, शक्कर मिलाकर पाक बना लेने पर कुष्ठ, वातरक्त, अर्श, वातरोग और श्वास आदि व्याधियों पर लाभ पहुँचाता है। इस पाक में उग्रता रह जाने से मात्रा की वृद्धि होने पर कण्डू उत्पन्न होती है। वह तैल का सेवन और मर्दन कराने पर शमन हो जाती है।

मात्रा-६-६ माशे, प्रातःकाल में देवें।

उपयोग-यह पाक (अवलेह) वातरक्त, गलत्कुष्ठ (जिसमें हड्डी, पैर और हाथों के नख गल गये हों तथा दाह ओर पिड़िकाओं से युक्त हो), पामा, स्फोट, विचर्चिका, किट्टिभ (Dry Eczema), कण्डू, प्रचण्ड दाहयुक्त कुष्ठ, शुक्र और रजो दोष, भयंकर वातरोग, नेत्ररोग, मस्तिष्क विकार, श्वास और कास आदि को नष्ट करता है।

यह अवलेह रसयोगसागर का परीक्षित उत्तम योग है। वातरक्त, कुष्ठ, पक्षवध और अर्श आदि रोग पर अति लाभदायक है। वात और कफप्रधान प्रकृति वालों को दिया जाता है। इसका सेवन शीतकाल में कराने से उष्णता नहीं दर्शाता। उष्णकाल में तथा पित्तप्रकृति वालों के अनुकूल नहीं रहता।

अपथ्य-सूर्य का ताप और अग्नि का सेवन, धूम्रपान, अति गरम चाय, गरम दूध, गरम-गरम भोजन, गरम जल से स्नान, अधिक मिर्च, अधिक खटाई और अधिक नमक का सेवन नहीं करना चाहिये।

द्वितीय विधि-नीम की अन्तर छाल, सफेद सारिवा, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, बावची, धमासा, बच, खैरसार, रक्तचन्दन, पाठा, सोंठ, कचूर, भारंगी, वासा, चिरायता, कूड़े की छाल, काली सारिवा, इन्द्रायण की जड़, मूर्वा, बायविडंग अतीस, चित्रकमूल, हस्तकर्ण (पलास की छाल), गिलोय, बकायन की छाल, कड़वे परवल, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, अमलतास का गूदा, सतौने की छाल, शिरीष की छाल, जिब्बी रहित लाल चिरमी, मजीठ, कलिहारी, रास्ना, करञ्ज की छाल, सफेद साँठी की जड़, शुद्ध जमालगोटा, विजयसार, भांगरा, पियावांसा, इन ४८ औषधियों को ८-८ तोले लेकर जोकूट चूर्ण करें। फिर २०४८ तोले जल में मिलाकर क्वाथ करें। अष्टमांश जल (२५६ तोले) शेष रहने पर उतारकर कपड़े से छान लें। पश्चात् १००० भिलावों को २०४८ तोले जल में मिलाकर उबालें, चौथा हिस्सा (५१२ तोले) जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। भिलावों को क्वाथ करने के समय वाष्प न लगे, यह सम्हालना चाहिये। इन दोनों क्वाथों को मिलाकर चूल्हे पर चढ़ावें। आधा जल शेष रहने पर ४०० तोले गुड डालकर पाक करें। इस पास में १००० भिलावे की गिरी (गोडम्बी) पीसकर मिला दें तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, बायविडंग, चित्रकमूल, सैंधानमक, सफेद चन्दन, कूठ, अजवायन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और छोटी इलायची, इन १७ औषधियों का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अवलेह बना लेवें। *(यो.र.)*

सूचना-भिलावों का क्वाथ करते समय शरीर पर वाष्प नहीं लगनी चाहिये, और गरम-गरम को हाथ में मसलता नहीं चाहिये। ठण्डा होने पर मसले। यदि गरम को मसलना हो तो पहले हाथों को खोपरे के तैल से चुपड़ लेवें। अगर गरम-गरम भिलावों को ही बिना नारियल तैल के लगाये मसला जायेगा अथवा क्वाथ करते समय धुआं लग जायेगा, तो विस्फोटक व्रण हो जायेंगे। सुरक्षा इसी में है कि गरम को मसला न जावे।

मात्रा-६ माशें से १ तोला तक, दिन में दो बार देवें। फिर ऊपर गिलोय का क्वाथ या दूध पिलावें। भोजन में नमकीन, खट्टे और चरपरे पदार्थों को सेवन नहीं कराना चाहिये।

उपयोग-इस अवलेह के सेवन से श्वित्र और औदुम्बर कुष्ठ, दाह, ऋष्य जिह्वक कुष्ठ, काकणक कुष्ठ, पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदलकुष्ठ, विस्फोटक, रक्तमण्डल, कण्डू, कापालिक कुश्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, ६ प्रकार के अर्श, पाण्डु रोग, व्रणविकार, कृमि, रक्तपित्त, उदावर्त, कास, श्वास, भगन्दर, पालित्य (बाल सफेद हो जाना) और दुस्तर आमवात आदि नष्ट होते हैं।

यह अवलेह कुष्ठ आदि रोगों के नाशार्थ अति हितावह है। यदि रोगी को इस अवलेह के सेवन के साथ रसकर्पूर और नीलाथोथा चौथाई-चौथाई रत्ती मुनक्का में डालकर निगलवा देवें तो अधिक गुण करता है।

११. महातिक्तक घृत।

विधि–सतौना की छाल, अतीस, अमलतास का गूदा, कुटकी, पाठा, नागरमोथा, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कड़वे परवल के पत्ते, नीम की अन्तर छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, रक्तचन्दन, पीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण की जड़, शतावरी, काली सारिवा, इन्द्रजौ, अड़ूसे की जड़ की छाल, धमासा, मूर्वामूल, गिलोय, चिरायता, मुलहठी और त्रायमाण ये ३१ औषधियां १-१ तोला लें।

विधि–इनका कल्क करें। फिर कल्क और कल्क से ४ गुना घी घृत से दूना आवलों का रस या क्वाथ तथा घी से ७ गुना जल लें। सबको मिला मन्दाग्नि पर चढ़ाकर घृत सिद्ध करें।

मात्रा–आधे से १ तोला तक, दिन में दो बार दें।

उपयोग–इस महातिक्तक घृत का सेवन करने से रक्त और पित्तप्रधान कुष्ठ, रक्तार्श, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डु, हृद्रोग, गुल्म, पिड़िकायें, रक्तप्रदर, गण्डमाला आदि रोग तथा सैंकड़ों प्रयोगों के सेवन से भी अच्छी न होने वाली घोर व्याधियां नष्ट होती हैं।

वक्तव्य–पहले कुष्ठ और वातरक्त के रोगी को संशोधनों द्वारा दोषमुक्त करावें एवं शिराव्यध आदि द्वारा दूषित स्थान में से रक्त निकालें, फिर आभ्यन्तर संशमन चिकित्सा आरम्भ करने पर प्रकृति और समयानुरूप इस महातिक्तक घृत का सेवन कराया जाये, तो सब प्रकार के साध्य कुष्ठ और वातरक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य लिखते हैं कि जो रोगी इस घृत का सेवन न कर सके, उसे कल्क के द्रव्यों का क्वाथ करके पिलावें। अथवा निम्नानुसार महातिक्तासव तैयार करके सेवन करावें।

उक्त कल्क द्रव्यों के समान (३१) तोले खैर की लकड़ी का बुरादा मिला, जौ कूटकर चौगुने जल में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर कपड़े से छान क्वाथ से आधी चीनी तथा ३२वाँ हिस्सा पृथक् अनन्तमूल और धाय के फूल का चूर्ण मिला अमृतबान या सागौन के पीपे में भरकर १ मास रख दें। १ मास के पश्चात् आसव पक जाने पर छान लेवें। इसकी मात्रा ४ तोले है। समान जल मिलाकर दिन में दो बार सेवन करावें।

श्वित्र कुष्ठ में इस घृत के साथ बावची का चूर्ण मिलाकर मालिश करते रहने से बाहर से भी लाभ पहुँचता है।

१२. महाखदिरादि घृत।

द्रव्य–काले खैर की अन्तरछाल या लकड़ी का बुरादा २००० तोले, शीशम की अन्तर छाल या बुरादा ४०० तोले, असन (बिजयसार) की छाल ४०० तोले तथा करंज की छाल, नीम की अन्तर छाल, बैंत, पित्तपापड़ा, कुड़े की छाल, वासामूल की छाल, बायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, अमलतास का गूदा, गिलोय, हरड़ बहेड़ा, आंवला, निसोत, सतौने की छाल, ये १६ औषधियां २००-२०० तोले लें।

विधि–इन सबको जौकूट चूर्ण कर २० द्रोण (२०४८० तोले) जल में मिलाकर पाक करें। जब आठवां भाग (२॥ द्रोण २५६० तोले) जल शेष रहे, तब उतार कर छान लें। फिर आंवलों का रस और गोघृत ५१२-५१२ तोले मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। इस घृत के पाक समय में महातिक्तक घृत में कही हुई प्रत्येक ४-४ तोले औषधियों का कल्क मिलावें। पाक होने पर कड़ाही को उतार तुरन्त घी निकाल लेवें। *(च.सं.)*

मात्रा–आधे से १ तोला तक, दिन में दो बार दें।

उपयोग–इस घृत के पान और मर्दन करने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। दद्रु, पामा, विचर्चिका आदि रक्त व चर्म विकारों में शान्ति मिलती है।

१३. गलत्कुष्ठहर योग।

बड़ी चंपा (इसको बड़ी करेर और कहीं-कहीं गुलचीनी भी कहते हैं। यह समान पत्ते वाली किन्तु कई प्रकार के सफेद, पीले, लाल, गुलाबी, नींबूआ रंग के फूल वाली होती है) की ताजा छाल १ तोला लेकर ११ या १५ काली मिर्च मिला खूब बारीक ठण्डाई की तरह सिल पर पीस ८-१० तोले जल में घोल छानकर प्रात: पिलावें। इसके सेवन से किञ्चित् हल्लास (मिचलाहट) प्रतीत होता है, पुन: वमन विरेचन होते हैं। ये वेग कम होने पर गेहूँ+चने की रोटी या हरीरा अथवा कोमल प्रकृति के रोगी को मूंग की दाल और पुराने चावल की खिचड़ी दें, घी अधिक से अधिक मिलावें। इसी प्रकार सायंकाल को भोजन करें। इसके अतिरिक्त सर्व पदार्थ वर्जित है। औषधि एक ही समय प्रात: देना उचित है। इस औषधि के सेवन से क्षुधा अति प्रदीप्त होती है तथा पाचन क्रिया भी बहुत बढ़ जाती है। घृत १५ तोले से ४० तोले तक दैनिक पच जाता है। घृत की बहुलता से औषधि की शक्ति बढ़ती है। एवं इसी से शरीर शुद्ध होकर कान्तिवान् तेजस्वी बन जाता है।

वक्तव्य-शरीर के ऊर्ध्व भाग में यदि दोषों का प्राबल्य है, तो इसकी छाल (जड़ की ओर से ऊपर की ओर को छील कर उतारें) के सेवन से विशेषतया वमन होती है और विकार निकल जाता है। यदि शरीर के अधोभाग में दोषों का प्राबल्य है, तो ऊपर की ओर से जड़ की ओर छाल को काटकर ग्रहण करें, जिससे विरेचन अधिक होते हैं। यदि सर्वांग में दोष प्राबल्य हो, तो ऊर्ध्व और अध: दोनों प्रकार से ग्रहण किये हुए का सेवन करें, इससे वमन-विरेचन दोनों होते हैं।

इसके पञ्चांग से तैल सिद्धकर व्रणों पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। इससे बनाई हुई रौप्यभस्म अत्यन्त गुणकारी होती है। यह शतशोऽनुभूत प्रयोग हैं। *(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)*

१४. मदयन्त्यादि चूर्ण।

विधि-छाया में सुखाए हुए मेंहदी के बीज या पत्तों का कपड़छन चूर्ण १० तोले, भांगरे के रस में शुद्ध किया गन्धक ५ तोले मिला ३ घण्टे खरल करें। *(श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-१ से २ माशे, दिन में २-३ बार, जल या सारिवादि हिम के साथ देवें।

उपयोग-यह चूर्ण कण्डू (खुजली), पामा (Scabies), कच्छू (Dhobieitch) और फोड़े, फुन्सी आदि रोगों को दूर करता है।

१५. सारिवादि हिम।

विधि-अनन्तमूल, उशबा, चोपचीनी, मजीठ, गिलोय, धमासा, रक्त चन्दन, गुलबनफसा, खस, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल और शंखाहुली ये १४ औषधियां समभाग मिलाकर चूर्ण करें। *(श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-१ तोले चूर्ण को रात्रि को ६ तोले गरम जल में चीनी मिट्टी या कांच के बरतन में भिगो दें। सुबह मसल छान कर पिला दें। फिर उसी में ५ तोले गरम जल डालकर रख दें। शाम को मसल छानकर पिलावें।

उपयोग-यह हिम सर्व प्रकार के रक्तविकार, कण्डू, पामा, हाथ पैरों में दाह, अम्लपित्त, जीर्ण ज्वर तथा पित्त और रक्तदुष्टिजन्य सब रोगों में लाभदायक है।

१६. तुवरक तैल योग।

विधि-तुवरक तैल (Oil Hydnocarpus) को एक कड़ाही में डालकर अति मन्द अग्नि देकर उसमें रहे हुए जल को जला डालें। फिर कपड़े से छान ३ गुने खैर के बुरादे या खैर की छाल के क्वाथ में मिला, पकाकर तैल सिद्ध करें। फिर तैल को बोतल में भर १५ दिन तक कण्डों के चूर्ण में दबाकर रख दें। आवश्यकता पर उपयोग में लेवें। *(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकामजी आचार्य)*

मात्रा-प्रात: सांय दिन में दो बार, ५ बूंद बढ़ावें। इस तरह सहन हो सके उतनी मात्रा बढ़ावें। मात्रा अधिक होने पर चक्कर आता है, जी मिचलाता है और वमन होती है, तब इस तैल की मात्रा घटा दें।

अनुपान-गौ का ताजा मक्खन या दूध की मलाई।

उपयोग- यह तैल कीटाणुनाशक, वेदनाहर, रक्तशोधक और व्रणरोपण है। सब प्रकार के महाकुष्ठों पर व्यवहृत होता है। यह वातरक्त, क्षय, कण्ठमाल, जीर्ण संधिवात, अस्थिव्रण, नाड़ीव्रण, जीर्ण फुफ्फुसशोथ आदि पर लाभदायक है। अतः सेवन के अतिरिक्त स्नान करने के पश्चात् इसका अभ्यंग भी कराया जाता है। इस तरह ६ मास या कुछ अधिक समय तक पथ्यपालन सह प्रयोग करने से रोगी स्वस्थ हो जाता है। इस तेल में कपड़ा भिगोकर व्रण पर बांधने से व्रण शीघ्र भरता है। पामा, कण्डू आदि पर भी यह तैल लगाया जाता है।

पथ्य-रोगी प्रातः सायं केवल दूध लें। दोपहर को मोसम्बी, मीठे नींबू, मीठा अनार, सेव, केला, मीठा अंगूर आदि मीठे फल लें। दूध और फलों के बीच ३ घण्टे से अधिक अन्तर रखें। इस तरह पथ्यपालन हो सके तो लाभ सत्वर मिलता है। कदाच यह पथ्यपालन न हो सके तो पुराने चावल का भात तथा जौ या गेहूँ की रोटी थोड़ा घी लगाई हुई को दूध के साथ लेवें। अम्ल, लवण और कटुरस वाले (चरपरे) पदार्थ निषिद्ध हैं। यह तैल पीताभ या पिंगल पीताभ (brownish yellow) अथवा कुछ पाण्डुवर्ण का होता है। शीतल मद्यार्क में नहीं पिघलता। गरम मद्यार्क में सरलता से पिघल जाता है। इसका उपयोग अन्तर, बाह्य दोनों रीति से होता है। त्वचा पर मालिस करने पर उस स्थान की रक्ताभिसरण क्रिया में वृद्धि होती है और वातनाड़ियों में उत्तेजना आती है। डॉक्टरी में कुष्ठ रोग के लिये यह उत्तम औषधि मानी गई है। यदि इसका प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया जायेगा, तो रक्तकण विनाश, वृक्कों में उग्रता, मूत्र में रक्तरञ्जक की प्राप्ति (Haemoglobinuria), क्षुधानाश, हृल्लास, और वान्ति आदि उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त शिरदर्द, व्याकुलता, ज्वर, निद्रानाश, उदरपीड़ा और दाह आदि भी न्यूनाधिक अंश में उत्पन्न होते हैं। अतः इसका प्रयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

वर्तमान में इस तैल का प्रयोग मांसपेशियों में अन्तक्षेपण रूप से होता है। विशेषतः यह प्रयोग मद्यार्कलवण रूप से और अम्ल रूप (Ethyl esters of Hydnocarpic and chaulmoogric acids) से होता है। क्योंकि ये औषधियां कम प्रदाहक हैं।

१७. बाकुची योग।

विधि-बावची के बीजों का प्रयोग श्वित्र (गौण कुष्ठ) पर होता है। पहले दिन ५ दाने से प्रारम्भ कर प्रतिदिन १-१ दाना बढ़ाकर २१ पर्यन्त बढ़ावें। फिर १-१ दाना घटावें। इस तरह १ मास में एक आवृत्ति पूरी होती है। आवश्यकतानुसार रोग शमन होने तक इस तरह अनेक आवृत्ति करें (या २१ दाने होने पर उतनी मात्रा में ही रोज सुबह शीतल जल से निगलते रहें।) साथ-साथ केवल बावची तैल अथवा बावची और तुवरक का तैल श्वित्र पर लगाते रहें। *(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

तुवरक तैल २ भाग, बावची का तैल और चन्दन का तैल १-१ भाग मिलाकर लगाने पर कण्डू, पामा और विचर्चिका में भी लाभ होता है।

पथ्यापथ्य-रोगी को अम्ल, लवण और कटु रस (चरपरे पदार्थ) का त्याग करना चाहिये। चावल, जौ या गेहूँ की रोटी; बिना खटाई, नमक और गरम मसाला डाले मूंग के यूष और मीठे फलों पर रहकर औषध प्रयोग करें।

१८. पथ्या भल्लातक मोदक।

द्रव्य-वजनी लम्बी काबुली हरड़ की छाल, तुषरहित काले तिल, पुराना गुड़ और भिलावा इन सबको समभाग लें।

विधि-सबको मिला खरल में बत्ते से कूट १॥-१॥ माशे के मोदक बना लेवें। *(अ.ह.)*

वक्तव्य-भिलावे का तैल हाथ को न लग जाये, इसलिये हाथ पर नारियल का तैल लगाकर कूटें।

मात्रा-१-१ मोदक भोजन के बीच में थोड़ा घी मिलाकर दिन में दो बार दें।

उपयोग-यह मोदक तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, स्वेदल, सारक, यकृदुत्तेजक, वातवाहिनियों का उत्तेजक, रक्ताभिसरणवर्द्धक और रसायन है। कुष्ठ, व्रण, विद्रधि, गण्डमाला, अर्श, मलावरोध, आध्मान, उदरकृमि, उदशूल, आमवृद्धि अपचन, वातरोग, गृध्रसी, नयापक्षवध, अर्दित, आम वात, कफप्रकोप, मेदोवृद्धि, ग्रहणी, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, श्वासरोग और हृदय की शिथिलता आदि विकारों को दूर करता है।

सब प्रकार के कुष्ठरोगों की उत्पत्ति विशेषतः मलावरोध और फिर उदर कृमि की वृद्धि होने पर होती है। पहले विष अन्त्र में से रक्त में प्रवेश करता है, फिर त्वचा और अन्य धातुओं में पहुँचकर कुष्ठ की उत्पत्ति करता है। कुष्ठ रोग में वातप्रधान, पित्तप्रधान, कफप्रधान आदि

भेद होते हैं। इनमें से वातप्रधान, कफप्रधान, या द्वन्द्वज कुष्ठ हो, दोनों वृक्क अपना कार्य अच्छी तरह करते हों, मज्जाधातु में विशेष विकृति न हुई हो तो इस मोदक का सेवन पथ्य पालनसह २-४ मास तक कराने पर व्याधि शान्त हो जाती है। यदि रोग पित्तप्रधान हो, यकृत् से पित्त का स्राव अत्यधिक होता हो, उस पर इस मोदक का सेवन नहीं कराना चाहिये।

यह मोदक पुराने त्वचा रोगों (उपकुष्ठ) पर अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। दादरोग पुराना होने पर उसके कीटाणु गहराई में प्रवेश कर जाते हैं। फिर अधिकाधिक फैलते जाते हैं, त्वचा बिल्कुल शुष्क हो जाती है, खुजाने पर त्वचा के अणु निकलते रहते हैं। ऐसी अवस्था में केवल बाह्योपचार करने मात्र से कार्य सिद्धि नहीं होती। बाह्योपचार से कीटाणु मूर्च्छित हो जायें या उपरिस्तर पर रहे हुए नष्ट हो जायें, तो भी भीतर वाले जीवित रह जाते हैं। जो थोड़े ही दिनों में फिर विष को ऊपर तक पहुँचा देते हैं। अतः उस अवस्था में बाह्योपचार के साथ इस पथ्याभल्लातक मोदक का सेवन कराने पर सच्चा लाभ हो जाता है। बाहर लेपार्थ कपीला, बायविडंग और बावची १-१ तोले और मनःशिला ३ माशे को मट्ठे के साथ मिलाकर लगाते रहें।

दद्रु के समान अन्य ब्यूची आदि जीर्ण कुष्ठ रोगों में भी उदर सेवनार्थ औषधि देनी चाहिये। केवल बाह्य तीव्र कुष्ठघ्न लेप ही प्रयोग किया जाये तो लाभ न होते हुए रोग विशेष दृढ हो जाता है। यदि बाह्योपचार के साथ इस मोदक का सेवन कराया जाये, तो लाभ सत्वर पहुँचता है। एवं द्रदु, ब्यूची, कण्डू आदि रोग दूर होने पर भी जब तक त्वचा मुलायम, सुन्दर कान्ति युक्त न हो जाये, तब तक चर्मरोगनाशक तैल या अन्य तैल ही हर रोज मालिश करते रहना चाहिये।

शास्त्र मर्यादानुसार कुष्ठ रोग में गुड़ और तिल अपथ्य माने जाते हैं। कारण गुड़ उदरकृमि को परिपुष्ठ बनाता है और तिल से अभिष्यंद वृद्धि होकर मार्गावरोध होकर रस, रक्त की दुष्टि होती है। एवं भिलावा त्वचा के छिद्रों द्वारा बाहर निकलने के समय विनिमय क्रिया की वृद्धि करा अधिक प्रस्वेद लाता है। फिर त्वचा को शुष्क बनाता है। जिससे शुष्क त्वचा वालों को भिलावा नहीं दिया जाता। तथापि भिलावे का संयोग तिल के साथ होने से त्वचा में शुष्कता नहीं आती। गुड़ के संयोग में भिलावे की दाहक शक्ति का दमन होता, स्रोतोवरोध दूर होता है। उदर के कृमियों में भिलावे का तैल सरलतापूर्वक पहुँचकर उनको नष्ट कर सकता है। इस तरह हरड़ का संयोग होने से रस-रक्तादि धातुओं के भीतर दीपन, पाचन क्रिया सरलता से होती है, आम के पाचन में सुविधा मिल जाती है। इस तरह कुष्ठविष और कुष्ठ के कीटाणुओं को दूर करने में इन चारों द्रव्यों का संयोग अति गुणवर्द्धक होता है।

इस मोदक में प्रधान औषध भिलावा होने से इसकी विशेष क्रिया आमाशय, यकृत् और गुद नलिका पर होती है। यकृत् में रक्ताभिसरण क्रिया की वृद्धि हो जाने से गुदनलिका में रक्त का दबाव कम हो जाता है; जिससे गुदा में फूली हुई शिरायें (अर्श के मस्से) आकुंचित हो जाती हैं। एवं इन औषधियों में दीपन आमपाचन और सारक गुण होने से मलावरोध दूर होता है। परिणाम में रोग निर्मूल हो जाता है। वातज अर्श के लिये यह योग विशेष हितावह माना जाता है।

मुख पर बाहर से शीतल वायु का आघात लग जाने पर अनेक बार अकस्मात् अर्दितरोग की उत्पत्ति हो जाती है। फिर मुख टेढ़ा हो जाता है; वातवाहिनियां खिंच जाती है, नेत्र की पुतली स्थान भ्रष्ट हो जाने से दृष्टि टेढ़ी हो जाती है, कईयों का मुख ठीक नहीं खुल सकता, नाक की घ्राण शक्ति तथा जिह्वा के एक ओर स्वाद में विलक्षणता आ जाती हैं, मांसपेशियां, आक्रांत हो जाती है, कभी कण्ठ में भी आघात पहुँच जाता है। शिरदर्द, स्मरण शक्ति का लोप, मानसिक विकृति चक्कर आना आदि लक्षण भी प्रतीत होते हैं। यदि इस विकार में मस्तिष्कस्थ केन्द्र स्थान की विकृति न हुई हों, केवल वातवाहिनियां प्रभावित हुई हों और नूतनावस्था में ही योग्य उपचार प्रारम्भ हो जाये तो लाभ हो जाता है। यदि रोग अति प्रबल वेगयुक्त न हो, तो इस मोदक का सेवन छोटी मात्रा में दिन में ४ बार कराने तथा निवाये माषादि तैल का मर्दन और सेक कराने से थोड़े ही दिनों में मांसपेशियों का गतिभ्रंश दूर होकर व्याधि नष्ट हो जाती है। इस विकार वाले को शराब आदि उत्तेजक आहार नहीं देना चाहिये। तथा शीत से भलीभांति संरक्षण करना चाहिये। इस मोदक के साथ नवजीवन रस या मल्लसिंदूर (नं. २) का सेवन कराना विशेष हितकारक है।

आमवात का रोग नया हो, ज्वर मर्यादित हो, वेदना विशेष न हो, मूत्र में अधिक लाली न हो, रोगी युवा और सबल हो, तो इस मोदक का सेवन कुछ समय तक कराने से आमवात का शमन हो जाता है और लीन विष भी नष्ट हो जाता है। इस विकार का विष रह जाने से शक्कर, गुड़ खाने से या शीतल वायु लगने पर आजीवन बार बार त्रास पहुंचता रहता है। अतः शान्तिपूर्वक पथ्यपालन सह कुछ

काल तक इसका सेवन करने से भावी भय दूर हो जाता है।

सूचना–मांसाहारियों से भिलावा बहुधा सहन नहीं होता। अत: उनको सम्हालपूर्वक देवें। इस योग के सेवन के साथ मिर्च, मसाले एवं पित्तकारक आहार का सेवन नहीं कराना चाहिये।

पेशाबलाल हो जाये और मूत्र का परिमाण अति कम हो जाये, तो इस मोदक को ४ दिन बन्द कर दें क्योंकि भिलावे का सतत व अधिक मात्रा में सेवन करने से मूत्र का परिमाण घट जाता है, ऐसा होने पर नारियल का जल पिलावें। प्रकृतिस्थ होने पर फिर कम मात्रा में प्रारम्भ करें।

१९. विडंग तण्डुल रसायन।

विधि–बायविडंग को १० मिनट तक जल में भिगो, निकालकर छाया में सुखा देवें। फिर ऊखल में कूटकर छिल्कों को अलग करें। सार भाग तण्डुलों को कूटकर चूर्ण करें और अच्छी मुलहठी को ऊपर ऊपर से छील कूटकर चूर्ण करें। दोनों चूर्णों को मिला समभाग खरलकर बोतल में भर लें। *(सु.सं.)*

मात्रा–६ माशे से १ तोला तक, रोज सुबह शहद के साथ लेवें।

अनुपान–रक्तविकार और रक्तपित्तप्रधान अर्शपीड़ितों को शीतल जल, वातज अर्श प्रकोप होने पर मधु मिला हुआ भिलावे का क्वाथ, कृमिप्रकोपज पित्तविकार में मधुयुक्त द्राक्षा-क्वाथ, कृमिप्रकोपज वातविकार में मधुमिश्रित आमलों का रस वातरक्तप्रकोप में गुडूची क्वाथ। फिर प्रकृति और रोग लक्षण के अनुसार अनुपान में थोड़ा अन्तर कर लें।

भोजन–औषधि का पाचन हो जाने पर आँवला मिश्रित, अच्छी तरह गोघृत मिला हुआ, लवणरहित मुद्ग यूष, दिन में १ या २ बार।

उपयोग–यह रसायन अति प्रबल रक्तविकार, अर्श, कुष्ठ, वातरक्त, फिरंगज उपद्रव, सुजाक के उपद्रव, कृमि विकार और रक्तपित्त आदि को दूर करता है। ग्रहण धारण शक्ति की वृद्धि होती है और आयु बढ़ती है। जो रोगी दृढ़ मनोबल वाला है, धूम्रपानादि व्यसन से मुक्त है, लवण को छोड़ सकता है, उसके लिये यह हितकर है।*

इस प्रयोग से कष्ट साध्य रक्तविकारजन्य रोग दूर होते हैं। किसी भी कष्ट साध्य रोग पर उपयोग करने से लाभ होता है और रोग का नाश होता है। इसका प्रयोग करने के पहले रोगी को स्नेहन, वमन और विरेचन आदि पञ्चकर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि करना विशेष हितावह है।

२०. मणिभद्र योग।

द्रव्य–बायविडंग की गिरी, आंवले और हरड़ तीनों ४-४ तोले, निसोत की छाल १२ तोले, गुड, पुराना २४ तोले लें।

विधि–औषधियों के कपड़छन चूर्ण को गुड में मिलाकर ३-३ माशे के मोदक बना लेवें। *(अ.हृ.)*

मात्रा–१ से २ मोदक, जल के साथ सेवन करें।

उपयोग–यह योग उदरशोधनार्थ अति हितकारक है। कुष्ठ, श्वित्र, श्वास, कास, उदररोग, अर्श, प्रमेह, प्लीहावृद्धि, गन्थि, उदरशूल, कृमि और गुल्मादि रोग की उत्पत्ति और वृद्धि, अन्त्र में मल, आम और कीटाणुओं के संग्रह से होती है। अत: मलसंग्रहजनित कुष्ठ आदि रोगों में इस योग का सेवन अति लाभदायक है।

चक्रदत्त, बंगसेन, भैषज्य रत्नावली और गदनिग्रह आदि ग्रन्थकारों ने इस योग को अर्श प्रकरण में लिखा है। एवं क्षय, भयंकर जलोदर आदि पर भी गुणकारक दर्शाया है। कुष्ठ आदि रोगों में जिनको मलावरोध रहता हो, उनके लिये आवश्यकता पर इसका उपयोग किया जाता है। कुष्ठ और जलोदर में अति कोष्ठबद्धता होने पर ४ मोदक या अधिक देने में भी हानि होने का भय नहीं है। अत: मात्रा मर्यादित होनी

---

* यह प्रयोग वसन्त ऋतु में सेवन करने का है। अत: इसे 'वसन्तवृत्त' कहते हैं। जिस मनुष्य की इच्छा सामान्य रीति से प्रति वर्ष इसको प्रयोग में लाने की हो, उसको वसन्त ऋतु में सेवन कराना चाहिये। कारण कि वसन्त ऋतु के पहले कफ की वृद्धि होकर कफसंचय होता है। और उस दोष को निकालने के लिये वसन्त ऋतु में प्रयोग करना हितावह है। यदि अन्य ऋतु में भी किसी कुष्ठ रोगादि पर प्रयोग करने की आवश्यकता हो, तो अन्य ऋतु में भी सेवन करने में कोई हानि नहीं।

चाहिये। यदि रोगियों को लवण का सेवन छुड़ा दिया जाये या भोजन में किञ्चित् सैंधानमक से काम चला लिया जाये, तो लाभ जल्दी होने की आशा है।

२१. श्वेत करवीराद्य तैल।

द्रव्य–सफेद कनेर की जड़ की छाल और बच्छनाभ १६-१६ तोले मिला गोमूत्र में पीसकर कल्क करें। फिर कल्क, सरसों का तैल १२८ तोले और गोमूत्र ५१२ तोले लें।

विधि–सबको मिला मन्दाग्नि पर पाक करें। पाक होने पर कड़ाही को नीचे उतार तुरन्त तैल निकाल लें।

उपयोग–इस तैल का मर्दन करने से चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट (Pemphigus), कृमि और किट्टिभ कुष्ठ (Dry Eczema) का नाश होता है।

२२. बृहन्मरिचादि तैल।

द्रव्य–कालीमिर्च, निसोत, दन्तीमूल, आक का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, रक्तचन्दन, इन्द्रायण की जड़, कनेर की छाल, हरताल, मैनसिल, चित्रकमूल, कलिहारी, चव्य, बायविडंग, पँवाड के बीज, सिरस की छाल, कुड़े की छाल, नीम की अन्तर छाल, सतौने की छाल, थूहर का दूध, गिलोय, अमलतास की छाल, वृक्ष करञ्ज की छाल, नागरमोथा, खैर की छाल, पीपल, बच और मालकांगनीये ३३ औषधियाँ ४-४ तोले और बच्छनाभ ८ तोले लें।

विधि–सबको गोमूत्र में पीसकर कल्क करें, फिर कल्क सरसों का तैल ५१२ तोले और जल २०४८ तोले मिलाकर मदाग्नि से तैल सिद्ध करें। *(यो.र.)*

उपयोग–इस तैल को कुष्ठ के व्रण, पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू, विस्फोटक, वली, पलित, छाया, नीली (Blue Navus), और व्यंग आदि व्याधियों पर लगाने और मर्दन कराने से वे नष्ट हो जाती है, तथा सुकुमारता की प्राप्ति होती है। जिस कन्या को इस तैल का नस्य कराया जाता है, वह अत्यन्त वृद्धा हो जाने पर भी उसके स्तन शिथिल नहीं होते। यदि बैल, घोड़ा और हाथी वातरोग से पीड़ित हो जायें, तो वे भी इसका मर्दन कराने से नीरोग हो जाते हैं।

२३. महासिंदूराद्य तैल।

विधि–सिन्दूर, रक्तचन्दन, जटामांसी, बायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्माख, कूठ, मजीठ, खैर की छाल, चमेली, आक की जड़, निसोत, नीम की अन्तर छाल, बड़े करञ्ज के फलों की गिरी, बच्छनाभ, कृष्णवेत्रक (काले वेंत की जड़), जोध, पंवाड़ के बीज, इन २१ औषधियों को ५-५ तोले मिला जल से पीसकर कल्क करें। फिर कल्क से चार गुना सरसों का तैल और तैल से चार गुना जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। ***(च.द.)***

उपयोग–इस तैल की मालिश से रक्त और पित्तप्रकोप से उत्पन्न समस्त कुष्ठ, पामा, विचर्चिका (Weeping Eczema), कण्डू, विसर्प आदि व्याधियां नष्ट होती हैं।

२४. चर्मदलारि तैल।

विधि–शीशम की पक्की लकड़ी, जो भीतर से काली हो, उसका बुरादा ३ सेर, नारियल का कपाल (खोपरे के ऊपर का छिलका) बावची के बीज, भिलावा ये तीनों १-१ सेर, चित्रकमूल की छाल, नौसादार, चोक (सत्यानाशी की जड़),ये तीनों ४०-४० तोले तथा गन्धक और मैनसिल २०-२० तोले लेवें। इन सब औषधियों का जौकूट चूर्ण कर पाताल यन्त्र विधि से तैल निकाल लेवें। इस तरह निकाला हुआ १ सेर तैल लेवें, फिर संखिया, नीलाथोथा, दारचिकना, इन तीनों को ५-५ तोले पीसकर उक्त १० तोले तैल में मिलाकर मर्दन करें। पश्चात् शेष ७० तोले तैल में मिला लेवें। ***(कविराज पं. हरदयालजी वैद्य वाचस्पति)***

उपयोग–इस तैल का प्रयोग करने के समय बोतल को हिला लेवें। फिर थोड़ा निकाल निवाया कर पीड़ित स्थान पर मर्दन करें। इस तरह दिन में ५-७ समय मर्दन करते रहने से, भयंकर चर्मदल का भी विनाश हो जाता है। चर्मदल (Erythema Nedosum) के लिये यह दिव्य औषध है।

सूचना–(१) चर्मदल और मोटा हो जाने से उस स्थान के रोमकूप बहुधा कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में औषधि का बाह्य प्रयोग विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकता। अत: पहले ८-१० दिन तक ईसबगोल की पुल्टिस बांधकर उस रुग्ण स्थान को मृदु बना लेवें। फिर इस तैल का प्रयोग करने पर औषधि भीतर प्रवेश कर प्रस्वेद को बाहर निकाल कर रोग को दूर कर सकती है।

(२) इस तैल के प्रयोग के साथ रक्तप्रसादन हेतु और नूतन रोगोत्पत्ति के दमनार्थ पथ्यपालनसह गन्धक रसायन, मञ्जिष्ठादि क्वाथ, (या अर्क), मञ्जिष्ठादि तालसिन्दूर अथवा अन्य प्रकृति के अनुकूल औषधि का सेवन भी कराना चाहिये।

२५. दद्रुहर लेप

द्रव्य–छना हुआ गीला विरोजा १० तोले, दण्डागन्धक ५ तोले, चौकिया सोहागा १। तोला और राल १। तोला लें।

विधि–पहले बिरोजा और गन्धक को मिला कड़ाही में डाल चूल्हे पर चढ़ाकर रस करें। लोहे की सलाई से चलाते रहे। दोनों मिल जाने पर सोहागा और राल का चूर्ण डालकर तुरन्त कड़ाही को नीचे उतार पत्थर की शिला पर डाल देवें और औषधि गरम रहते रहते बत्तियाँ बना लेवें। कारण औषधि शीतल हो जाने पर कड़ी हो जाती है और फिर बत्तियां नहीं बन पाती।

उपयोग–इस बत्ती को पत्थर पर जल के साथ घिसकर दिन में दो तीन बार लेप करते रहने से २-३ दिन में दाद मिट जाता है।

२६. गुलाबी मल्हम।

द्रव्य–पुष्पांजन (सफेदा-जिंक ऑक्साइड) सिंदूर, कपूर और चन्दन का तैल १-१ तोला, रसकपूर ६ माशे, और धोया हुआ घी या वैसलीन १० तोले लेवें।

विधि–सबको मिलाकर मलहम बना लेवें। *(श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

उपयोग–यह मलहम दाद, खाज, पामा, अग्निदग्ध स्थान और अर्श के मस्से पर लगाने से वेदना और रोग की निवृत्ति करता है।

२७. करञ्जतैलादि मलहम।

द्रव्य–करञ्ज तैल, मोम और शहद १०-१० तोले, कालीमिर्च और काली-जीरी का चूर्ण ५-५ तोले, नीलेथोथे का फूला २॥ तोले और कपूर १। तोले लेवें।

विधि–पहले तैल और मोम मिलाकर गरम करें। फिर कड़ाही को उतार उष्णता कम होने पर औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। पश्चात् शहद मिलाकर डिब्बों में भर लेवें।

उपयोग–इस मलहम की पट्टी लगाने से सूखा और द्रव्ययुक्त ब्यूची रोग (Weeping Eczema) दाद तथा खुजली आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

२८. पारदादि चूर्ण (कुष्ठ)।

द्रव्य–पारद १ तोला, गन्धक २ तोले, मुद्रासंग १ तोला, कपूर १ तोला, कालीमिर्च २ तोले, नीलेथोथे का फूला ६ माशे और सेलखड़ी का चूर्ण १० तोले लेवें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली बना फिर मुर्दासंग, कालीमिर्च और नीलाथोथा मिलावें। पश्चात् कपूर के साथ मर्दन करें। सबके अन्त में सेलखड़ी मिलावें।

उपयोग–इस चूर्ण में से ६ माशे चूर्ण को २ तोले सरसों के तैल के साथ मिला, ताम्बे या पीतल के भगोने में खरल करें, फिर सारे शरीर पर मर्दन करें। एक घन्टे पश्चात् निवाये जल से स्नान करें। इस तरह ३ दिन तक करने से खुजली दूर होती है। खुजली के पीले फालों (पामा) पर लगाने के लिये चूर्ण को मक्खन में मिला लेना चाहिये। इसी चूर्ण के प्रयोग से ३ दिन में ही कण्डू और पामा दूर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त जो फोड़े फूट गये हों, उन पर सूखा चूर्ण दबा देने से फोड़े भर जाते हैं। कर्णस्राव में १-१ रत्ती चूर्ण फूंक देने से पूय स्राव जल्दी बन्द हो जाता है।

२९. पामाहर मलहम।

द्रव्य–रूई निकाले हुए कपास के खाली फलों को जला, राखकर कपड़े से छान लेवें। यह भस्म १० तोले, कपूर और नीलाथोथा ३-३ माशे, धतूरे के पान २॥ तोले तिल तैल १० तोले और मोम ६ माशे लेवें।

विधि–पहले तैल में पत्तों को भूनकर तैल को छान लेवें। फिर चूल्हे पर चढ़ा मोम मिलावें। पश्चात् उतार कुछ शीतल होने पर और नीला थोथा मिलावें, फिर कपास के फलों की राख मिलाकर मलहम बना लेवें।

उपयोग–यह मलहम कुछ जलन करता है, किन्तु इसके लेप से सब प्रकार के पामा, कच्छू और असाध्य ब्यूची एक सप्ताह में दूर हो जाती है। एवं खुजली आदि को भी सत्वर दूर करता है। सूखी खुजली और शीत-पित्त में इस मलहम को गरमकर ४ गुना तिल का तैल मिलाकर मालिश कराने से लाभ हो जाता है।

३०. विपादिकाहर मलहम।

द्रव्य–(प्रथम विधि)-जीवन्ती (डोडी शाक) के मूल, मजीठ, दारु हल्दी और कपीला १६-१६ तोले तथा नीलाथोथा ४ तोले मिला, जल में पीसकर कल्क करें। फिर कल्क, गोघृत १२८ तोले, तिल तैल १२८ तोले, गोदुग्ध २५६ तोले और जल १०२४ तोले मिलाकर मंदाग्नि पर पाक करें, फिर स्नेह को कपड़े से छान, पुनः थोड़ा गरमकर राल और मोम ३२-३२ तोले मिलाकर मलहम बना लेवें।

उपयोग–इस मलहम को लगाते रहने से विपादिका (हाथ पैर की त्वचा फटना), चर्मकुष्ठ (Hypertrophy of the skin), एककुष्ठ (ichthyosis) किटिभ और अलसक आदि कुष्ठ नष्ट होते हैं।

विपादिका रोग चाहे जितना पुराना हो, त्वचा फटकर रक्त आता हो, चाहे पूयोत्पत्ति हो जाने से कण्डू, वेदना स्पर्शासहत्व और शोथ आदि लक्षण हो, इन सब लक्षणों सह रोग को दूर कर देता है। अधिक शोथ और शूल होने पर गेहूँ के आटे की पुल्टिस बांधकर (पुल्टिस में ४-४ रत्ती खुरासानी अजवायन का चूर्ण मिलाकर) शोथ व शूल को कम कराना चाहिये। फिर इस मलहमका उपयोग करने पर सत्वर लाभ पहुँचाता है। रोग जीर्ण होने पर साथ-साथ अरोग्यवर्द्धनीवटी को त्रिफला के फाण्ट के साथ रोज सुबह सेवन कराते रहने से विशेष लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य–स्थानिक रक्त विकृति अधिक हो, तो जलौ का द्वारा रक्त खिंचवा कर दोष को निकाल देना चाहिये।

इस मलहम को १०० बार जल से धोकर अग्निदग्ध व्रण, कण्डू, पामा और अर्श के मस्से पर लगाया जाता है। अग्निदग्ध व्रण पर लगाने से वेदना शान्त होती है और घाव सत्वर भर जाता है।

द्रव्य–(द्वितीय विधि)-लेनोलीन (ऊन का तैल) १ औंस, एसिड बोरिक (टंकणाम्ल) ३० ग्रेन, एसिड सेलिसिलिक १५ ग्रेन लें। तीनों को मिला वाष्प पर गरम करके मिश्रण बना लेवें। फिर उसमें जैसमिन (मालती) तैल १५ बूंदे मिला लेवें।

उपयोग–रात्रि को अच्छी तरह पैरों को धो साफ पोंछकर यह मलहम लगा लेवें। सुबह साबुन और निवाये जल से धो देवें। इस तरह करने पर वर्षों से फटे हुए पैर भी ४-६ दिन में दरार रहित और मुलायम बन जाते हैं।

३१. कण्डूनाशक योग।

द्रव्य व विधि–दण्डागंधक, दालचीनी और कालानमक तीनों १-१ तोला मिलावें। फिर १०० तोले सरसों के तैल में मिलाकर घोटें। रोगी को सूर्य के ताप में बैठाकर उस तैल से सारे शरीर पर मालिश करें। २-३ घन्टे तक या सहन हो सके तब तक धूप में बैठावें। जिससे प्रस्वेद आकर विष बाहर निकल जाता है, फिर आध घन्टे तक छाया में विश्रान्ति लेवें। पश्चात् आँवलों का चूर्ण शरीर पर रगड़कर निवाये जल से स्नान करावें। इस प्रयोग से एक या दो दिन में खुजली चली जाती है।

सूचना–कुछ दिनों तक नमक मिर्च कम कर देवें। इस योग का आरम्भ होने पर ३ दिन तक तो भोजन हल्का करें, नमक-मिर्च बिल्कुल न लेवें या केवल दूध पर रहें। अधिक दिनों तक भी यदि पथ्य रखा जायेगा तो स्थायी लाभ मिल सकेगा।

३२. कण्डूनाशक तैल।

द्रव्य–पारद और द्विगुण गंधक मिलाकर की हुई कज्जली २० तोले, नीले थोथे का फूला १ तोला, कालीमिर्च का कल्क ४० तोले, सरसों का तैल २ सेर और धतूरे के पत्तों का रस ८ सेर लेवें।

विधि–सबको मिला मंदाग्नि पर चढ़ाकर तैल पाक करें। धतूरे का रस जल जाने पर ऊपर से तैल को निकाल लें। फिर खरल या किसी दूसरे पात्र में तल भाग में बचे हुये औषधियों के किट्ट का मर्दन करें। पश्चात् उसमें थोड़ा-थोड़ा तैल मिलाकर सबको एक रस बना छानकर बोतलों में भर देवें।

उपयोग–इस तैल का उपयोग करने के समय बोतल को हिलाकर थोड़ा तैल कटोरी में निकाल लें। उसमें से मालिश करने से एक सप्ताह में असाध्य गजचर्म, कण्डू, दाद, कुष्ठरोग, संधिवात आदि विकार नष्ट हो जाते हैं और त्वचा मुलायम बन जाती है।

सूचना–रोगी को तैल लगाने के पश्चात् निर्वात स्थान में बैठाकर स्वेद देवें। त्रिफला, बायविडंग और अजवायन डालकर उबाले हुए जल की वाष्प देवें। प्रस्वेद आ जाने के आध घन्टे बाद साबुन लगाकर निवाये जल से स्नान करावें।

(द्वितीय विधि)–पारद और द्विगुण गन्धक मिलाकर की हुई कज्जली ३ तोले, कालीमिर्च, कपूर और मुर्दासंग एक-एक तोला तथा कपीला ६ तोले मिलाकर मर्दन करें। फिर २० तोले सरसों के तैल में मिला लें।

उपयोग–इस तैल की सारे शरीर पर मालिश करावें। एक घन्टे बाद त्रिफला, बायविडंग और अजवायन डालकर उबाले हुए जल से साबुन लगाकर स्नान करावें। इस तरह ३-४ दिन करने से खुजली बिल्कुल चली जाती है और रात्रि को शांति से निद्रा आ जाती है। अधिक कोष्टबद्धता होने पर विरेचन देकर उदर शुद्धि भी करानी चाहिये।

(तृतीय विधि)–सत्यानाशी के मूल १ सेर को कूट, जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। फिर यह कल्क, सत्यानाशी का रस ४ सेर और १ सेर तिल तैल मिला मंदाग्नि से पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर उतार कर तुरन्त छान लेवें।

उपयोग–इस तैल की मालिश कराने से खुजली दूर हो जाती है।

३३. गन्धक का मलहम।

(Ung. Sulphuris)

विधि–गन्धक पुष्प (sulphur Sublimatum) १ भाग को ९ भाग वेसलीन में मिलाकर मलहम बना लेवें।

उपयोग—यह मलहम कीटाणुनाशक है। पामा और कण्डूप्रधान चर्म रोगों पर यह लगाया जाता है या मर्दन किया जाता है। ब्यूची में भी कण्डू अधिक होने पर प्रयुक्त होता है।

पारद सेवन जनित रक्तविकार होने पर गन्धक रसायन या शुद्ध गन्धक का अन्तः सेवन कराया जाता है। तथा इस मलहम की मालिश करायी जाती है।

३४. पाण्डेय उद्वर्त्तन*।

द्रव्य—हल्दी, चिरौंजी, पोस्त के दाने, चक्रमर्द (पुंवाड) के बीज, गुलाब के फूल, सोनागेरु (या गिले अरमनी), करंज की गुद्दी, लाल चन्दन, चमेली की पत्ती २-२ तोले, खस १ तोला तथा पीली सरसों १० तोला लें।

विधि—इन सबको कूटकर चूर्ण करें।

वक्तव्य—करञ्ज दो प्रकार के होते हैं। एक का फल गोल तथा दूसरे का चपटा होता है। गोल फल वाले करञ्ज का गुल्म होता है और फली पर तथा सर्वांग में कांटे होते हैं। चपटे बीज वाले का वृक्ष ५०, ६० फीट ऊँचा होता है। उसे हिन्दी में डिठोहरी और बंगाल में डहरकरञ्ज कहते हैं। इस प्रयोग में डिठोहरी के फलों की गिरी लेना चाहिये।

उक्त चूर्ण में से आवश्यकतानुसार लेकर गाय के दूध के साथ सिल पर चटनी सदृश पीसें, फिर थोड़ा सा दूध पुनः मिलाकर पकावें। पकते पकते जब उद्धर्त्तन योग्य हो जाये तब किंचित् गर्म रहते ही शरीर के रुग्ण भाग पर मलकर छुड़ा दें। व्याधि की उग्रावस्था में और अधिक जीर्णावस्था में गोदुग्ध के स्थान पर गोमूत्र का प्रयोग करना विशेष हितावह माना जाता है।

उपयोग—यह उद्वर्त्तन चर्मरोग की चमत्कारिक दवा है। इसके लेप से किसी भी प्रकार का दाह या जलन नहीं होती एवं इससे सूखी व तर, दोनों प्रकार की खुजलियाँ, त्वचा की खुश्की, फटन व चुनचुनाहट आदि, उपद्रव सत्वर आराम हो जाते हैं। इससे शीतपित्त के फफोलों पर भी लाभ होता है। (शीतपित्त के रोगी को एक एक छटांक चिरौंजी भी खिलाते रहना चाहिए) इसके अतिरिक्त त्वचा के भीतर रहने वाले तथा लसीका पोषित कुछ कीटाणु तथा अन्यान्य चर्म रोगों के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं।

विवेचन—क्षुद्र कुष्ठों में से जिनमें देह के विविध अंगों पर श्वेतदाग, रक्तदाग या श्याम दाग उत्पन्न होते हैं या ब्यूची, पामा, दाद के समान विकृति होती है, इन सबका अन्तर्भाव डॉक्टरी में चर्म रोगों के भीतर किया है। ये रोग बहुधा संस्पर्शज है। इन रोगों की संप्राप्ति डॉक्टरी मतानुसार विविध कीटाणुओं के संक्रमण से होती है। रेल, मोटर आदि के प्रवास में बैठने के स्थान पर रहे हुए कीटाणुओं द्वारा, दूसरों के दूषित वस्त्रों के स्पर्श तथा होटल आदि में बिना साफ किये हुए पात्रों में भोजन या पेय पदार्थों का सेवन करने पर होती है। यदि चर्म रोग, भोजन आदि पदार्थों में मिले हुए कीटाणुओं से प्राप्त हुआ हो, या बाहर से प्रवेशित कीटाणु अन्तस्त्वचा के निम्न स्तर में प्रविष्ट हो गये हों, या रोग जीर्ण हो गया हो और दृढ़ मलावरोध भी रहता हो, तो इस उद्वर्त्तन के प्रयोग के साथ साथ आरोग्यवर्धनी या मंजिष्ठादि तालसिन्दूर आदि कीटाणुनाशक औषधि का भी अन्तःसेवन करना चाहिये।

अधिक अग्नि सेवन, अति गरम-गरम जल से बार-बार स्नान करना, सूर्य के ताप में अधिक दिनों तक भ्रमण करना, घृत तैल आदि स्निग्ध पदार्थों का अति सेवन होने या विविध कीटाणुओं का आक्रमण होने पर पित्त प्रकोप होना आदि कारणों से त्वचा शुष्क हो जाती है। उस पर इस उद्वर्त्तन को दुग्ध के साथ मिलाकर के लेप मर्दन करने से सत्वर लाभ पहुँचता है। त्वचा मुलायम और स्निग्ध बनती है एवं त्वचागत रक्ताभिसरण क्रिया प्रबल होकर त्वचा तेजस्वी भी बन जाती है। शुष्क त्वचा पर प्रयोग करने पर सुगन्धित तैल भी थोड़ा मिलाना हो, तो वह भी सहायक होता है। ***(श्री वैद्य माधवप्रसाद जी पाण्डेय वैद्यभूषण)***

❑❑

(४१) शीतपित्त।

१. शीतपित्तभञ्जन रस।

द्रव्य—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कासीसभस्म, ताम्रभस्म, ये चारों औषधियां २-२ तोले लें।

विधि—पहले कज्जली करें फिर भस्में मिलावें। पश्चात् भांगरा और सरफों का के रस या क्वाथ के साथ ७-७ दिन खरलकर गोला बनाकर सूर्य के ताप में सुखावें। तत्पश्चात् शराव संपुट कर दृढ़ कपड़मिट्टी करें। फिर संपुट को सुखा कुक्कुटपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर भांगरा और सरफोंका के रस में १-१ दिन मर्दन कर पुनः अग्नि देवें। इस तरह ३ दिन कुक्कुटपुट देवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा—२-२ रत्ती को ६-६ माशे गुड़ के साथ दिन में दो बार देवें।

उपयोग—शीतपित्तभञ्जन रस शीतपित्त आदि रोगों को बहुत जल्दी दूरकर देता है। एवं यह कुष्ठ और वातरक्त में भी लाभदायक है।

*उद्वर्त्तन=उबटन

विवेचन—शीतपित्त की उत्पत्ति विशेषत: विविध रोग विष, उदरकृमिविष, कीटाणुजन्य विष, औषधविष, मलावरोधज विष अथवागरम गरम उत्तेजक पेय चाय आदि पीने के पश्चात् आमाशयपित्त (Gastric juice) के साथ मिलकर रक्त में शोषण होने पर होती है। यदि पित्त शोषित होने से शीतपित्त के ददोरे निकलते हैं तो वे बहुधा प्रात: सायं या रात्रि के समय, शीतल वायु से स्पर्श याशीतल जल से स्नान करने पर निकलते हैं। विषप्रकोपज शीत पित्त के लिए समय और शीतल जलवायु स्पर्श आदि बाह्य सहायक साधन की आवश्यकता नहीं है' उक्त कारणों में से किसी कारण से शीतपित्त रोग होने पर यह शीतपित्तभञ्जन रस सेवन कराया जाता है और थोड़े ही दिनों में वह रोग को शान्त कर देता है। यदि मूल कारण कृमि या कीटाणु हों तो गन्धक रसायन मिला लेने से शीघ्र लाभ पहुँचता है।

कई बार मनुष्य उत्तेजक पेय अत्यधिक मात्रा में पीते रहते हैं और उस कारण को दूर करने की ओर लक्ष्य नहीं देते हैं। फिर शीतपित्त रोग दृढ हो जाता है, और जल्दी दूर नहीं होता। इन रोगियों को नियमित त्रिफला आदि अन्त:सेवनार्थ दिया जाये और उनका व्यसन छुड़वा दें, तथा पथ्यपालनपूर्वक शीतपित्तभञ्जन रस का सेवन करावें तो रोग नि:सन्देह दूर हो जाता है।

कई रोगी तीव्र औषधियों के अन्त:क्षेपक (इन्जेक्शन) द्वारा रोग दबा देने के लिये प्रयत्न करते है, मन और जिह्वा को वश में नहीं रख सकते। जिससे रोग का मूल विष रक्त में से मांस, मेद आदि धातुओं में लीन हो जाता है। ऐसे रोगियों को पित्ती कई महीनों या वर्षों तक संताप देती रहती है। वे भी व्यसन का त्याग कर पथ्यपालनसह और श्रद्धासह शीतपित्तभञ्जन रस और गन्धक रसायन का सेवन करें तो उनको भी लाभ पहुँच जाता है।

कुष्ठ और वातरक्त की उत्पत्ति भी रक्त में विष और क्षार संग्रह होने पर होती है। इस कारण से कुष्ठ और वातरक्त भी शीतपित्तभञ्जन रस के सेवन से दूर हो जाते हैं। कुष्ठ के रोगियों को मंजिष्ठादि क्वाथ और वातरक्त के रोगियों को गिलोय स्वरस या शतावरी और गोखरू के क्वाथ के साथ शीतपित्तभञ्जन रस दिया जाता है। यदि वातरक्त पीड़ित के सांधे जकड़े गये हों, तो चन्द्रप्रभा वटी और पुनर्नवाष्टक क्वाथ का भी साथ-साथ सेवन करना चाहिये।

शीतपित्तभञ्जन रस में कज्जली रक्तशोधन, विषशमन और जन्तुघ्न गुण के लिए मिलायी है। कासीस दोष को सुखाती है और वेग को शान्त करती है। ताम्रभस्म यकृत पित्त के स्राव को बढ़ाती है। जिससे आमाशयपित्त रूपान्तरित होकर लाभ पहुँचाता है। इनके अतिरिक्त इनमें भांगरा और सरफोंका की भावना का योग कराया है। जो कि रोगशमन में अति उपयोगी मानी गई है।

सूचना—शीतपित्त आदि से पीड़ित रोगियों को चाहिये, कि शीतल जल से स्नान, शीतल वायु का सेवन, जागरण, गुरु अन्न, कब्ज करने वाले पदार्थ, गरम-गरम पेय (चाय आदि), गरम गरम भोजन, अम्ल रस और विदाही भोजन से सावधानीपूर्वक बचते रहें।

कतिपय रोगियों को दूध पीने पर शीतपित्त निकल आता है। उनको दूध का त्याग कर देना चाहिये। शीतपित्त के रोगी को कब्ज रहता हो, तो नियमित सारक औषधि देकर उदर को शुद्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

२. आर्द्रक खण्ड।

द्रव्य—अदरक ६४ तोले, गोघृत ३२ तोले, गोदुग्ध २५६ तोले, शक्कर १२८ तोले, पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च, सोंठ, चित्रकमूल की छाल, बायविडंग, नागरमोथा, नागकेशर, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, तेजपात और शठी (मेदाकचूर) प्रत्येक ४-४ तोले लेवें।

विधि—पहले अदरक के कल्क को घी में भूने, उसे दूध का खोवा करके मिलावें। फिर शक्कर की चाशनी कर उसमें खोया और शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर पाक बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा—६-६ माशे; दिन में १ या दो बार।

उपयोग—यह खण्ड शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, कास, श्वास, अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त, शोथ, कण्डू, कृमि आदि रोगों को नष्ट करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है, बल वीर्य की वृद्धि करता है तथा शरीर को पुष्ट बनाता है। यह खण्ड कफप्रधान और मेद प्रधान प्रकृति वालों के लिये अति हितकारक है। यह आम को जल्दी जला डालता है। आमप्रधान जीर्ण ग्रहणी रोगी और अग्निमांद्य वाले रोगी को शीतकाल में सेवन कराने पर उनकी पाचनक्रिया को बहुत बढ़ा देता है।

३. बृहत् हरिद्रा खण्ड।

द्रव्य—हल्दी का चूर्ण, निसोत की छाल का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण १६-१६ तोले, मिश्री २ सेर तथा दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोद, चित्रकमूल की छाल, कुटकी, जीरा, पीपल, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने, बायविड़ंग, गिलोय, वासा के मूल की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, धनिया, लौहभस्म और ताम्र भस्म ये २३ औषधियां ६-६ माशे लेवें।

विधि—मिश्री की चाशनी करके शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर घी चुपड़े हुए थाल में जमा देवें।

मात्रा—३ से ६ माशे, दिन में दो बार, निवाये जल के साथ।

उपयोग—यह हरिद्राखण्ड शीतपित्त, उदर्द, कोठ, कण्डू, पामा, विचर्चिका, जीर्ण ज्वर, कृमि, पाण्डु और शोथ आदि रोगों का नाश करता है।

यह पाक उत्तम रक्तप्रसादक दीपन, पाचन, सारक, आमनाशक, यकृद्बल्य और विषहर औषध है। यदि शीतपित्त के रोग में इस खण्ड का सेवन करने पर भी मलावरोध रहे, तो साथ में पंचसकार या मंजिष्ठादि चूर्ण का सेवन भी कराना चाहिये। कितने ही रोगियों को पतले दस्त लगते हों या उष्णता रहती हो, तो यह खण्ड सहन नहीं होता। उनको निम्न हरिद्रा खण्ड देना चाहिये।

४. हरिद्रा खण्ड।

द्रव्य–हल्दी ३२ तोले, घी २४ तोले, दूध ५१२ तोले, शक्कर २००० तोले तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, तेजपात, छोटी इलायची, दालचीनी, बायविडंग, निसोत, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागकेशर, नागरमोथा और लोभस्म ४-४ तोले।

विधि–पहले हल्दी के चूर्ण को दूध में मिलाकर खोवा बनावें, फिर उसे घी में भूने। पश्चात् शक्कर की चाश्नी करें। उसमें खोवा तथा शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर पाक बना लेवें।

मात्रा–६-६ माशे, दिन में दो बार दें।

उपयोग–इस खण्ड के सेवन से शीतपित्त, कण्डू, विस्फोटक, दद्रु, दूर होते जाते हैं। शीतपित्त, उदर्द और कोठ रोग नष्ट होते हैं। और देह में सुन्दरता आ जाती है। यह शीतपित्त और कण्डू रोग की उत्तम औषधि है।

❑❑

(४२) अम्लपित्त

१. सितामण्डूर।

द्रव्य–अग्नि पर तपा-तपाकर २१ बार गोमूत्र में बुझाया हुआ मण्डूर २० तोले, शक्कर १ सेर, घी २ सेर और गोदुग्ध ४ सेर लेवें।

विधि–मण्डूर को घी और दूध में मिला चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि पर पकावें। रबड़ी के समान गाढ़ा होने पर शक्कर मिलाकर पाक करें।

प्रक्षेप–निवाया रहने पर सोंठ, कालीमिर्च, मुलहठी, छोटी इलायची के दाने, धमासा, बायविडंग की गिरी, हरड़ बहेड़ा आंवला, कूठ और लौंग, इन १२ औषधियों का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोले मिलावें। शीतल होने पर शहद ३२ तोले मिलाकर अमृतबान में भर लेवें। *(भै. र.)*

मात्रा–२ माशे से प्रारम्भ करके ६ माशे तक बढ़ावें। दिन में २ बार भोजन के आरम्भ में लेवें और ऊपर शीतल किया हुआ गोदुग्ध पीवें।

उपयोग–यह सितामण्डूर अम्लपित्तनाशक उत्तम औषधि मानी गई है। असाध्य अम्लपित्त, आमाशय में शूल (Gastraigia) खट्टी और उष्ण वमन, अनाह, मूर्च्छा, प्रमेह, रक्तविकार, वातविकार और पित्तप्रकोप को नष्ट करता है। यदि रोगी भोजन, शराब, धूम्रपान और सूर्य का ताप का सेवन आदि अपथ्य आहार-विहार का त्याग करके इसका सेवन करें और दुग्धाहार भी करें तो बहुत जल्दी लाभ पहुँचाता है।

विवेचन–आमाशय प्रदाह, आमाशय की दीवार में क्षत, पित्ताश्मरी, चिरकारी पित्ताशयप्रदाह, जीर्ण उपान्त्रप्रदाह आदि कारणों से आमाशयिक रस में अम्लता की वृद्धि (Hyperchlorhydria) हो जाती है, उसे अम्लपित्त कहते है। उक्त कारणों में से पित्ताश्मरी और जीर्ण उपान्त्रप्रदाह पर यह मण्डूर कार्य नहीं कर सकता। शेष कारण होने पर यह सितामण्डूर उपकारक है। सितामण्डूर के सेवन से आमाशय प्रदाह और चिरकारी पित्ताशयप्रदाह शान्त हो जाते हो जाते हैं और आमाशय का क्षत भर जाता है। फिर अम्लपित्त के लक्षण और उपद्रव-उबाक़, वमन, उदरशूल, खट्टी डकारें, आनाह, रक्तविकार, पित्त प्रकोप, और मूर्च्छा आदि नष्ट हो जाते हैं।

यदि पित्ताश्मरी और जीर्ण उपान्त्रप्रदाह (appendicitis) के मुख्य उपचार के साथ सितामण्डूर का सेवन कराया जाये तो अम्लपित्त रोग मूल कारण सह नष्ट हो जाता है।

२. सुधानिधि रस।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, बड़ी इलायची, पीपलामूल और नागकेशर इन ६ औषधियों को समभाग लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करके भस्म मिलावें, फिर काष्ठादि औषधियों का चूर्ण मिला जीरे के क्वाथ के साथ १ दिन खरल करें। पश्चात् १ हांडी में भर के दृढ़ कपड़ मिट्टी कर चूल्हे पर चढ़ा ६ घन्टे तक मन्द तुषाग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर बोतल में भर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–२-२ रत्ती, दिन में ३ बार प्रात: काल तथा दोपहर और रात्रि को भोजन के पहले शक्कर और शहद के साथ देवें।

उपयोग–सुधानिधि रस आमाशयस्थ पित्त की उग्रता का दमन करता है। जिससे अम्लपित्त शमन होता है। नये और पुराने रोग में भी यह रस उपयोगी है।

३. पित्तान्तक रस।

द्रव्य—जायफल, जावित्री, जटामांसी, कूठ, तालीसपत्र, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म, ये औषधियां १-१ तोला और रौप्य भस्म (वनस्पतिमारित) ८ तोले लेवें।

विधि—सबको मिला (आंवलों के रस में) ७ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

वक्तव्य—सुवर्णमाक्षिक के स्थान में सुवर्ण की योजना करने पर वह अधिक कार्यकारी बनता है। उसे आचार्यों ने 'महापित्तान्तक रस' संज्ञा दी है।

मात्रा—१ से २ गोली, दिन में २ बार, आंवलों के शर्बत या मिश्री मिले गिलोय के स्वरस के साथ देवें।

उपयोग—पित्तान्तक रस सर्व पित्तरोग नाशक है। यह कोष्ठाश्रित पित्तप्रकोप (आमाशय आदि पचनसंस्थान का पित्त विकृत होना) शाखाश्रित (रक्त आदि धातु और त्वचादि धातुगत पित्त की विकृति होना), पैत्तिक शूल, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, हलीमक, अर्श, चक्कर आना और वमन आदि विकारों को तत्काल नाशकर देता है।

यह रसायन शामक और आमाशय की पित्तोत्पत्ति पर कार्यकारी है। आमाशय रस (Gastric Juice) में लवणाम्ल की उत्पत्ति अधिक होती हो, उसे यह कम कराता है। जिससे पित्त के हेतु से उत्पन्न होने वाले शूल, पाण्डु, वमन और भ्रम आदि का शमन हो जाता है।

वक्तव्य—तमाखू, गरम-गरम चाय, अति मिर्च, अति नमक और शराब का व्यसन हो, तो छोड़ देना चाहिये। भोजन के २० मिनट पहले नींबू का रस शक्कर और जल मिलाकर पी लेने से पित्तोत्पत्ति के ह्रास होने में सहायता मिल जाती है।

४. पानीयभक्त वटी।

द्रव्य—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, निसोत और चित्रकमूल ये ९ औषधियाँ ४-४ तोले, पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले, लोहभस्म, अभ्रक भस्म और बायविडंग ८-८ तोले लें।

विधि—पहले कज्जली कर भस्म मिलावें। फिर काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला, त्रिफला के क्वाथ में १ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। ***(भै. र.)***

मात्रा—२ से ४ रत्ती, दिन में २ बार मटठा, जल या रोगाशामक अनुपान से देवें।

उपयोग—पानीयभक्त वटी अम्लपित्त, उदरशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, श्वास, कास, कुष्ठ और ग्रहणी विकार आदि को नष्ट करती है।

यह वटी विशेषत: जीर्ण अम्लपित्तरोग, जिसमें अन्त्र के भीतर क्षत हो जाने से उदरशूल, गुदा में पीड़ा और जलन आदि उपद्रव हुए हों, उन पर विशेष कार्य करती है। आमाशय में क्षत होने पर शूल चलता हो अथवा प्रकृतिभेद से आमाशय पित्त की उत्पत्ति अत्यधिक होती हो, तो उसे कम कराने के उद्देश्य से भोजन के २० मिनट पहले मट्ठे के साथ ऊर्ध्व अम्लपित्त में भी देना पड़ता है। (हो सके तब तक ऊर्ध्व अम्लपित्त के रोगी को तक्र नहीं देना चाहिये। इसमें नारियल का जल विशेष अनुकूल रहता है।)

अम्लपित्त रोग में उपद्रवरूप से उत्पन्न श्वास, कास और कुष्ठ (श्वित्र) भी पानीयभक्त वटी और अविपत्तिकर चूर्ण के सेवन से दूर हो जाते हैं। दाह अधिक हो, तो कामदुधा रस साथ में मिला देना चाहिये।

५. बृहन्नारिकेल खण्ड।

द्रव्य व विधि—शिला पर बारीक पिसा हुआ या कद्दूकस पर घिसा हुआ जलवाला नारियल ६४ तोले और छिल्के बीजो से रहित पेठे की गिरी के टुकड़े १२८ तोले लेवें। सबको १६ तोले गोघृत में भूनें। पश्चात् २५६ तोले गोदुग्ध और १२८ तोले बूरा मिला, चूल्हे पर चढ़ा, मन्द मन्द अग्नि से पकावें। फिर शीतल होने पर छोटी इलायची के दाने, धनियां, आंवले, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, खस, नेत्रबाला, सफेद चन्दन, किशमिश, सिंघाड़े, कसेरू, दालचीनी, तेजपात और भीमसेनी कपूर, इन १४ औषधियों का चूर्ण २-२ तोले मिलाकर अवलेह बना लेवें।

मात्रा—१ से २ तोले, प्रात: काल और सायंकाल नियमित सेवन करते रहें।

उपयोग—बृहन्नारिकेल खण्ड अम्लपित्त, मंद ज्वर, पित्तप्रकोप, रक्तपित्त, अरुचि, वातरक्त, तृषा, दाह, पाण्डु रोग, कामला, क्षय और परिणाम शूल आदि को नष्ट करता है। धातुओं को पुष्ट करता है, कामोत्तेजना उत्पन्न करता है, शान्त निद्रा लाता है तथा बल की वृद्धि करता है।

सूर्य के ताप में अधिक दिनों तक फिरना, ज्वर आदि रोग, शराब या अत्यधिक तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन आदि कारणों से आमाशयस्थ पित्त उग्र बन जाता है। फिर किसी को मंद ज्वर रहता है, किसी को अरुचि, तृषा, दाह, पाण्डु आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उन नूतन मंद रोगों में इस खण्ड का सेवन कराने पर लाभ हो जाता है।

६. बृहत् पिप्पलीखण्ड।

द्रव्य–छोटी पीपल का चूर्ण १६ तोले, गोघृत ३२ तोले, मिश्री ६४ तोले, शतावरी का रस ३२ तोले, आंवलों का स्वरस ६४ तोले ओर गोदुग्ध १२८ तोले लें।

विधि–पीपल को दूध में मिलाकर उबालें और अच्छी तरह चलाकर खोवा बनावें। फिर उसमें घी मिलाकर भूनें। शतावरी और आँवलों के रस को मिलाकर उबालें। स्वरस कम होने पर मिश्री मिलाकर अवलेह के सदृश चासनी बनाकर कुछ शीतल होने पर खोवा मिला लें।

प्रक्षेप–फिर छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, तेजपात, हरड़, कालाजीरा, धनियां, नागरमोथा, वंशलोचन ओर आंवलें, इन ९ औषधियां का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला और जीरा, मीठा कूठ, सोंठ, नागकेशर, जायफल और कालीमिर्च का चूर्ण ६-६ माशे मिलावें। शीतल होने पर शहद ८ तोले मिला देवें।

मात्रा–१ से २ तोले दिन में २ बार सुबह और रात्रि को देवें।

उपयोग–बृहत् पिप्पली खण्ड अम्पपित्त उबाक, अरुचि, वमन, श्वास, कास, क्षय आदि रोगों को दूर करता है। आमाशय पित्तविकृति और वातप्रकोप को दूर कर अग्नि प्रदीप्त कराता है और हृदय को बल देता है।

पुराने अम्लपित्त में आमाशयिक पित्त की उग्रता का ह्रास कराने, आमाशय प्रदाह को शान्त कराने, रोग बल की वृद्धि को रोकने और शक्ति देने के लिये इस पाक का सेवन कराया जाता है। आमाशय में क्षत हों, तो उसे मिटाता है तथा नाड़ियों को बल देता है।

६. अम्लपित्तान्तक चूर्ण।

प्रथम विधि–अरणी की काली राख और कालीमिर्च ५-५ तोले तथा देशी शक्कर १० तोले लेकर सबको यथा विधि मिला लेवें।

(वैद्यनिधि अर्जुनसिंहजी वर्मा)

मात्रा–२ से ४ माशे, दिन में २ बार, जल से देवें।

उपयोग–यह प्रयोग अम्लपित्त के लिये सौम्य, निर्भय और अति उपकारक है। जीर्ण रोग में भी लाभ पहुँचाता है। इस प्रयोग का वर्माजी ने सैकड़ों रोगियों पर अनुभव किया है।

(द्वितीय विधि)–काला अनन्तमूल, आंवला, छोटी इलायची के दाने, खस, सफेद चन्दन, मुलहठी, कमल के फूल, धनियां, पीपल, प्रियंगु, जटामांसी और नागरमोथा, इन १२ औषधियों को समभाग मिलावें। फिर सबके समान मिश्री लेकर कूट छानकर शीशी में भर लें।

मात्रा–३ से ६ माशे, दिन में दो बार, जल के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण अम्लपित्त, दाह, खट्टी डकार आना, मुखपाक, वान्ति आदि पर हितकारक है।

तृतीय विधि–गोरख इमली के गर्भ (बीज रहित) का चूर्ण १० तोले, जीरा २॥ तोले और मिश्री १२॥ तोले लेवें। कूट छानकर शीशी में भर लें।

मात्रा–३-३ माशे, दिन में दो बार, सुबह शाम जल के साथ देवें।

उपयोग–यह चूर्ण अम्लपित्त, भोजन कर लेने पर थोड़े समय में वान्ति हो जाना, कण्ठ में दाह, छाती में जलन, शिर में दर्द, सगर्भा की वमन, घबराहट, प्रदर, रक्तातिसार और पेचिश आदि को दूर करता है।

चतुर्थ विधि–सोरा ८ तोले और नौसादर १ तोला लेकर चूर्ण कर लेवें।

मात्रा–४ से ६ रत्ती, दिन में २ बार, सुबह रात्रि को जल में मिलाकर पिला देवें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से आमाशय के पित्त का रूपान्तर होता है अम्लपित्त, छाती में जलन, खट्टी डकार और अपचन आदि दूर होते हैं। नये विकार में यह चूर्ण हितकारक है। इसका उपयोग अधिक दिनों तक नहीं कराना चाहिये।

विवेचन–जब आमाशय पित्त अधिक उग्र और मात्रा में भी अधिक उत्पन्न होता रहता है तथा आमाशय-प्रदाह भी बढ़ जाता है, तब खट्टी वमन होती रहती है, हृल्लास (उबाक) आती रहती है और व्याकुलता भी बनी रहती है, ऐसी अवस्था में लक्षणों को तुरन्त दबा देने और शान्ति देने के लिये इस चूर्ण का सेवन कराया जाता है। रोग के समूल नाश हेतु सुधानिधि रस आदि की योजना करनी चाहिये।

रक्त के भीतर अम्लता बढ़ जाने पर सांधे जकड़ जाते हैं और कभी-कभी शीत लग जाने पर दर्द भी होने लगता है। यह चूर्ण रक्त की अम्लता जकड़ाहट आदि वेदना को दूर करने के लिए भी हितावह है।

❑❑

(४३) विसर्प

१. कासीसादि वटी (विसर्प)।

द्रव्य–कासीम भस्म, चित्रकमूल, पाठा, गिलोय, रक्तचंदन, रसौंत, धतूरे के शुद्ध बीज, नागरमोथा इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबके बारीक चूर्ण को विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) के स्वरस में २ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। ***(भै.र.)***

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार, अदरक के रस और शहद के साथ दें।

उपयोग–इस वटी के उपयोग से दु:साध्य विसर्प और उसके लक्षणरूप आमज्वर, दाह, व्याकुलता आदि लक्षण नष्ट हो जाते हैं।

२. मुक्तामिश्रण।

द्रव्य–मुक्तापिष्टी और रससिंदूर १-१ रत्ती,, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती और गिलोय सत्व ४ रत्ती।

विधि–इन सबको मिलाकर २ पुड़ियाँ बनावें।

उपयोग–सुबह शाम शहद के साथ सेवन करावें और ऊपर निम्नलिखित पटोलादि क्वाथ पिलावें, तो ज्वर, दाह और वेदनायुक्त विसर्प रोग निवृत्त हो जाता है।

वक्तव्य–कभी-कभी व्रण-विद्रधि द्वारा कीटाणुओं का रक्त में प्रवेश होकर विसर्प की संप्राप्ति होती है। उसमें शोथ, ज्वर शिरदर्द, **बद्धकोष्ठ** और वेदना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे विकार वाले विसर्प में पहले जलौका लगाकर रक्तमोक्षण करना चाहिये। फिर इस मुक्तामिश्रण का प्रयोग करने पर लाभ हो जाता है।

३. पटोलादि क्वाथ।

द्रव्य–परवल के पत्ते, गिलोय, चिरायता, अडूसा के पत्ते, नीम की अन्तर छाल, पित्तपापड़ा, खैर की छाल और नागरमोथा, इन ८ औषधियों को समभाग लेवें।

रक्तचंदन, पीपल की छाल, गेरू, गिले अरमानी, चौलाई का रस, गुलाबजल, दशांग लेप आदि कीटाणुनाशक औषधियों का उपयोग हितावह है।

विसर्प के दमनार्थ कीटाणुनाशक धावन से सुबह शाम पोछते रहना चाहिये। एवं रक्त और उदरशोधनार्थ अर्क गन्धक रसायन आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये।

विधि–सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। ***(भै. र.)***

मात्रा–२-२ तोले चूर्ण को १६ गुने जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ कर दिन में दो बार पिलाते रहें।

उपयोग–इस क्वाथ के सेवन से ज्वर सहित विसर्प और विस्फोटक निवृत्त हो जाते हैं। यदि रोगी को कब्ज भी हो तो क्वाथ में कुटकी और त्रायमाण मिला देने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

४. विसर्पहर तैल।

प्रथम विधि–पादपवृक्ष (पाँगरा) को लेकर कल्क करें। (किंवा पत्ते छाल और मूल ही पर्याप्त है।) फिर चौगुने नारियल के तैल में यथा-विधि कल्क डालकर तैल सिद्धकर, कल्क को भी तैल में ही रगड़ दें।

वक्तव्य–हिन्दी और मराठी में पांगरा संस्कृत में पारिभद्र, बहुपुष्प। गुजराती में पाण्डेरवों। बंगाली में पलिता मंदार। तैलंगी में वारिजम् और लेटिन में एरीथ्रिना इण्डिका (Erythrina. indica) कहते हैं। यह पादपसंज्ञा का वृक्ष वरुण से मिलता जुलता होता है। उसकी उपजाति की कल्पना पुष्पों के रंग से होती है। वसन्त ऋतु में पूरा पतझड़ होकर वृक्ष लकड़ी मात्र रह जाता है। फिर फूल आते हैं। ये फूल श्वेत, लाल, पीले होने से तीन प्रकार के होते हैं। श्वेत फूल वाला विशेष गुणवान् है। उसे आन्ध्र भाषा में तिल्लवारिजम् कहते हैं।

उपयोग–इस तैल को विसर्प पर लगाने से चमत्कारी लाभ होता है। चाहे सैकड़ों प्रयोगों से सफलता न मिली हो, ऐसे अत्यन्त बढ़े हुए विसर्प पर भी यह तैल आश्चर्यप्रद लाभ कर देता है। छोटे बच्चे, जिनका एक अंग या सर्वांग सड़ जाता है। उसे प्राय: स्त्रियाँ परछायां, पल्ले की बीमारी या छूत की बीमारी कहती हैं, उसमें स्पर्शजन्य व्रण हो जाते हैं। उस पर यह प्रयोग जादू सा प्रभाव दिखाता है। यह अनेक वर्षों का अनुभव सिद्ध योग है।

---

* विसर्प रोगी को घृत और तैल खाने को न देवें। एवं अशुद्ध और अपक्व घृत तैल का मर्दन या लेप भी न करें। तैल या वेसलीन वाले मल्हम का भी उपयोग नहीं कराना चाहिये। अन्यथा यह रोग अधिक फैसला है।

रक्तचंदन, पीपल की छाल, गेरू, गिले अरमानी, चौलाई का रस, गुलाबजल, दशांग लेप आदि कीटाणुनाशक औषधियों का उपयोग हितावह है।

विसर्प के दमनार्थ कीटाणुनाशक धावन से सुबह शाम पोछते रहना चाहिये। एवं रक्त और उदरशोधनार्थ अर्क गन्धक रसायन आदि औषधियों का उपयोग करना चाहिये।

अत्यन्त दाह और उष्णतापूर्ण विसर्प अथवा किसी भी प्रकार के पित्तरक्त प्रकोप पर इस पांगरा की छाल का रस १-२ तोला गौदुग्ध में मिला मिश्री के साथ (या छाल का चूर्ण घी शक्कर के साथ) देने से ३-४ मात्रा में ही अपरिमित लाभ दर्शाता है।

(श्री पण्डित राधाकृष्णजी द्विवेदी)

द्वितीय विधि–नीम की निम्बौली का विशुद्ध तैल २-२ बूंद केपसूल में भरकर निगलवा देने से तथा उसी तैल को विसर्प पर लगाने से तत्काल लाभ हो जाता है।

❑❑

(४४) मसूरिका।

१. वसन्तसुन्दर रस।

द्रव्य–सुवर्णमाक्षिक भस्म, रौप्यभस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन और सौंठ इन ५ औषधियाँ को समभाग लें।

विधि–सबको मिला ३ दिन सिरस के क्वाथ की भावना देकर आधा-आधा रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ या ३ बार दूध के साथ देवें।

उपयोग–इस रस के सेवन से उपद्रव सह मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है। शीतला पीड़ित रोगियों के लिये वसन्तसुन्दर अति हितावह औषध है। जिस तरह शीतल वायु से पीड़ित वृक्ष वसन्तऋतु का आगमन होने पर प्रफुल्लित हो जाता है, उसी तरह वसन्तसुन्दर का प्रयोग होने पर मसूरिका से पीड़ित रोगी नवजीवन को प्राप्त कर लेता है।

सूचना–दिन में निद्रा, सुरापान, तैल और मछली के सेवन को दृढ़ता पूर्वक त्याग करना चाहिये। नमक, मिर्च, खटाई आदि भी हानिकार है। नमक खाने पर अधिक कण्डू उत्पन्न होती है, फिर खुजाने से फफोले फूट जाते हैं और वहाँ पर दाग रह जाते हैं। नमक का त्याग करा देना चाहिये, ज्वर अधिक हो और मसूरिका में विविध उपद्रव उत्पन्न हुए हों, तो रोगी को केवल दूध पर रखना विशेष हितकारक माना जाता है।

२. शीतलाशामक वटी।

द्रव्य–ब्राह्मी, कालीमिर्च, हंसराज, तुलसी के पान २-२ तोले और गोरोचन ३ माशे लेवें।

विधि–सबको मिला तुलसी के रस में १२ घन्टे खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लें। *(श्री वैद्यगोपालजी कुंवरजी ठक्कर)*

मात्रा–१ से २ गोली, ४-४ घन्टे पर, दिन में ३ बार तुलसी के रस के साथ।

उपयोग–इस वटी का सेवन कराने से शीतला और रोमान्तिका के दाने जल्दी बाहर निकल आते हैं।

३. गोरोचन मिश्रण।

द्रव्य–गोरोचन १ तोला, प्रवालपिष्टी, श्रृंगभस्म और अमृतासत्व २-२ तोले तथा सोनागेरू ३ माशे लें।

विधि–सबको मिलाकर खरल में घोट लेवें।

मात्रा–१ से ३ रत्ती, दिन में ३ बार शहद या तुलसी के रस से दें।

उपयोग–यह मिश्रण मसूरिका आदि रोगों के विष को नष्ट करने में अद्वितीय है और बिगड़े हुए मसूरिका आदि के रोगी भी इसके सेवन से बच गये हैं।

४. मसूरिकान्तक रस।

द्रव्य–षड्गुण बलिजारित रससिन्दूर ५ तोले, कलौंजी ५ तोले और बड़े पक्के रुद्राक्ष १० तोले लें।

विधि–सबको मिला करेले के फलों के रस की १ भावना, ब्राह्मी, (यथार्थ में मंडूकपर्णी) के स्वरस या क्वाथ की २ भावनायें और सिरस के स्वरस की एक भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–बालक को आधे से एक रत्ती और युवा को २ से ३ रत्ती दिन में ४-६ बार, गंगाजल में घिसकर पिलावें।

उपयोग–यह मसूरिकान्तक रस सब प्रकार के अति बढ़े हुए मसूरिका रोग को भी दूर करता है। यदि शीतला के आरम्भ से ही इसका सेवन कराया जाये तों विष का शमन होकर रोग सत्वर निवृत्त हो जाता है, यह रसायन अनेक वर्षों का परीक्षित है।

(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)

५. इन्दुकला वटी।

द्रव्य–शुद्ध शिलाजीत, लोह भस्म और सुवर्ण भस्म तीनों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला वनतुलसी के रस में ३ दिन खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार, उदर साफ हो तो द्राक्षादि क्वाथ और मलावरोध हो तो निम्बादि क्वाथ से देवें।

उपयोग–इन्दुकला वटी मसूरिका, विस्फोटक, लोहित ज्वर और सब प्रकार के व्रणों को दूर करती है।

विवेचन–नव्य चिकित्सकों के अन्वेषण से विदित हुआ है कि मसूरिका कीटाणुजन्य रोग है। कीटाणुविष बढ़ने पर ज्वर वृद्धि होती है, फिर मांस आदि धातुओं को हानि पहुंचने लगती है, मांस का कोथ होने लगता है। इस तरह विष विलीन होने पर शीतलता रोग गंभीर रूप धारण कर लेता है। शारीरिक उत्ताप १०२ डिग्री से १०४ डिग्री तक बना रहना, तीव्रनाड़ी, तृषावृद्धि, बार-बार प्रलाप और शक्तिपात आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस प्रकार की प्रबल घातक अवस्था में भी इन्दुकला वटी बिल्कुल निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से जीवन की रक्षा हो जाती है।

शिलाजीत अपक्रान्तिनाशक, प्रदाहहर, अन्तरोत्पन्न पिड़िका का नाशक है। लोह रक्त प्रसादन, सेन्द्रिय विषहर और बल्य है। सुवर्ण मस्तिष्क शोधन, कीटाणु नाशक और हृद्य है। वनतुलसी ज्वरघ्न, मूत्रजनन और वातशामक गुण दर्शाती है।

सूचना–जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलावे। देह पोषाणार्थ आवश्यकता हो उतने थोड़े परिमाण में दूध देते रहें। प्रलापावस्था और शक्तिपातावस्था में दूध भी न दिया जाये तो अच्छा।

६. मसूरिकान्तक वटिका।

प्रथम विधि–रुद्राक्ष, नागार्जुनी (छोटी दूधेली), करेला, हुलहुल, हल्दी, निम्ब की निम्बोली की गिरि, बेलवृक्ष के कांटे में से किन्हीं ३ द्रव्यों को अष्टमांश कालीमिर्च के साथ जल में पीसकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, जल या मूलद्रव्यों के स्वरस से, दिन में ३ बार सेवन करावें।

उपयोग–यह वटी मसूरिका में शीघ्र लाभ दर्शाती है। एवं ऋतुदोष से जब मसूरिका जनपदव्यापी भयंकर रूप धारण कर लेती है, या कुटुम्ब या घर में किसी को शीतला निकली हो, तो उस समय घर के सब छोटे, बड़े बालकों के संरक्षणार्थ एक सप्ताह तक पथ्यपूर्वक इस वटिका का सेवन कराया जाये, तो इसका प्रभाव ६ मास तक रहता है। अर्थात् रक्त में रोगनिरोध शक्ति उत्पन्न हो जाने से इतने समय तक शीतला निकलने का भय नहीं रहता। पुन: सेवन कराया जाये, तो सेवन करने वाले मसूरिका के आक्रमण से बच जाते हैं। कदाच संसर्ग दोष से रोग हो जाये जो भी विशेष कष्ट नहीं होता। सरलता से विष शमन होकर रोग निवृत्त हो जाता है। मसूरिका की चिकित्सा में सैकड़ों बार प्रयोग करके सफलता प्राप्त की है।

चिकित्सा काल में ऋतु, आयु, प्रकृति, रोगबल आदि के अनुरूप अनुपान पथ्य और जलपान आदि की व्यवस्था करनी चाहिये। यथा-उष्णकाल में शीतल जल, शीतकाल में गरम करके शीतल किया हुआ जल और शरद् ऋतु में ताजा कूपोदक, गेहूँ, चना, गुड़, मिश्री, तिल-गुड़ तिल-खण्ड की गजक आदि पथ्य देवें। धूपन प्रयोग, नेत्र रक्षा प्रयोग और विशेष अवस्था में तान्त्रिक प्रयोग भी किये जाते हैं। इस वटिका से एक लक्ष से अधिक रोगियों की चिकित्सा करके अनुभव प्राप्त किया है। (श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)

द्वितीय विधि–बहेड़े की मञ्जा १-१ तोला तथा हल्दी २ तोले सबको मिला हुलहुल, छोटी दूधेली (नागार्जुनी) और ब्राह्मी के स्वरस की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। शीतकाल में ६ माशे रससिन्दूर में यह योग ८ तोले मिलाया जाये तो अधिक और सत्वर लाभ करता है।

मात्रा–१-१ गोली ६-६ घन्टे पर दिन में २-३ बार देते रहने से मसूरिका रोग उपद्रव सह नष्ट हो जाता है।

(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)

७. एलाद्यरिष्ट।

द्रव्य–छोटी इलायची २०० तोले, वासा के मूल की छाल ८० तोले, मजीठ, इन्द्र जौ, दन्तीमूल, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलहठी, सिरस, खैर की छाल (या लकड़ी या बुरादा), अर्जुन छाल, चिरायता, नीम की अन्तर छाल, चित्रकमूल की छाल, कूठ और सौंफ ये १७ औषधियां ४०-४० तोले लें।

विधि–सबको मिला जौकूट करें। फिर २०५ सेर जल में मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करें। जब २५॥ सेर जल शेष रहे, तब उतारकर छान लें।

वक्तव्य–छोटी इलायची के छिलके विषनाशक और रक्तशोधक है। अत: छिलकों को फैंकना नहीं चाहिये। किन्तु क्वाथ करते समय इनको अवश्य मिला लेना चाहिये। इनसे औषधि योग में गुण-वृद्धि होती है। हम छोटी इलायची को चौगुने जल में मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करते हैं। शेष औषधियों को अलग १५२ सेर जल में उबालकर २१ सेर शेष रखते हैं। फिर दोनों जल को मिला लेते हैं।

प्रक्षेप–धाय के फूल ३४ तोले, शहद १२०० तोले, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, जटामाँसी, मुरामांसी (तगर), नागरमोथा, छरीला, सफेद सारिवा, कृष्ण सारिवा इन १५ औषधियों के ४-४ तोले चूर्ण को उक्त क्वाथ में मिला, पात्र में भर मुखमुद्राकर एक मास तक रहने देवें। परिपक्व होने पर छानकर बोतलों में भर लेवें।

मात्रा–१। से २॥ तोले, दिन में दो बार समान जल मिलाकर देवें।

उपयोग–इसके सेवन से विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोटक (फोड़े), विषम ज्वर, नाड़ीव्रण दुष्टव्रण, कास, श्वास, भगन्दर, उपदंश और प्रमेहपिड़िका आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह अरिष्ट शीतवीर्य, मूत्रल, दीपन-पाचन, रक्तप्रसादन, विषघ्न और बल्य है। इसके सेवन से मूत्रोत्पत्ति कुछ अधिक होती है तथा रक्त में संगृहीत विष पेशाब द्वारा बाहर निकल जाता है। यह यकृत्पित्तस्राव की वृद्धि करा अन्त्र में रहे हुए आमविष और कीटाणुओं को नष्ट करता है।

विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, प्रमेहपिड़िका आदि अनेक व्याधियों की उत्पत्ति रक्त में कीटाणु या विष वृद्धि होने पर होती है। एवं इन रोगों की वृद्धि भी विषप्रकोप से ही होती है। यह अरिष्ट इन रोगों की उत्पत्ति और वृद्धि कराने वाले मूल विष को ही बाहर निकाल देता है और नयी उत्पत्ति को रोक देता है। जिससे ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

एलाद्यरिष्ट के सेवन से ज्वरजनित दाह और धातुशोष से उत्पन्न दाह का शमन होता है। मसूरिका रोग में नेत्र का संरक्षण होता है, घबराहट दूर होकर मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। मसूरिका की सर्व अवस्थाओं में बालक और बड़ों के लिये यह हितावह है। मुख्य औषधि के साथ यह अनुपान रूप से दिया जाता है। जिन व्यक्तियों को उपदंश और सुजाक होते हैं, उनमें से कितने ही व्यक्तियों के रक्त में लीन विष अंश में रह जाता है। फिर उस विष के हेतु से उनकी सन्तानों की देह में भी कुछ-कुछ उपद्रव होते रहते हैं। ऐसे अपदंश, सुजाक पीड़ित माता-पिता की सन्तानों को और अति निर्बल बच्चों को शीतला होने पर विशेष सम्हाल न रखी जाये, तो रोग भयंकर रूप धारण कर लेता है। अत: ऐसे रोगियों को शीतला (रोमान्तिका या विसर्प आदि) रोग प्रारम्भ होते ही इसका प्रतिदिन नियमित सेवन कराया जाये, तो रोग सरलता से निवृत्त हो जाता है।

८. द्राक्षादि क्वाथ।

द्रव्य–मुनक्का, गम्भीरी, पिण्डखजूर, पटोलपत्र, निम्बपत्र, वासापत्र।, खील, आंवला और धमासा ये ९ औषधियां समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर जौकूट करें।

मात्रा–४ तोले का क्वाथकर ३ विभाग करें। सुबह, दोपहर और रात्रि को ४-४ माशे मिश्री मिलाकर पिलावें।

उपयोग–यह क्वाथ शीतला रोग को दूर करता है। जब आमविष अधिक उत्पन्न हो गया हो और तृषाधिक्य, दाह, स्वेदाधिक्य और व्याकुलता अधिक प्रतीत होती हों, तब यह क्वाथ व्यवहृत होता है।

९. निम्बादि क्वाथ।

द्रव्य–नीम की अन्तरछाल, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल के पान, कुटकी, अडूसा, धमासा, आंवला, खस, सफेद चन्दन और रक्तचन्दन इन ११ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

सूचना–दस्त पतले होते हों, तो कुटकी न मिलावें।

मात्रा–३ तोले क्वाथकर ३ भाग बना, दिन में ३ बार, ४-४ माशे शक्कर मिलाकर पिलावें।

उपयोग–निम्बादि क्वाथ ज्वरहर, रक्तप्रसादन, मलावरोध नाशक तथा आमविषघ्न होने से मसूरिका में अधिक उपयोगी है। ज्वराधिक्य, दाह, तृषा व्याकुलता, शिरदर्द, मलावरोध, मूत्र में अधिक पीलापन और जलन आदि लक्षणसह पित्तज मसूरिका को बहुत जल्दी दूर करता है।

❑❑

(४५) क्षुद्ररोग।

१. क्षुद्रारोगहर योग।

(१) **दारुणक**–सर्प की केंचुली को ३४ गुने तिल तैल में मिलाकर गरम करने पर वह मिल जाती है। इस तैल की शिर पर मालिश कराते रहने से थोड़े ही दिनों में कण्डू, फुन्सी प्रकोप से बाल गिरना आदि विकार दूर होते हैं। बालों को रोज रीठे के जल से धोते रहना चाहिये।

(२) **दारुणक**–भैंस के सींगो को जलाकर राख करें। धुआँ निकल जाने पर बरतन ढक देने से काली राख होती है। उस राख को ४ गुने तैल में मिलाकर शिर पर लगा देने से सब कृमि मरकर दारुणक रोग दूर हो जाता है।

(३) **दारुणक**–कनेर की छाल, कांटेदार करंज की मूल (या छाल), निम्बपत्र और चमेली के पान, सब १०-१० तोले, चित्रकमूल ५ तोले और तिल तैल २ सेर लेवें। सब वस्तुओं को मिला जल के साथ चटनी की तरह पीस लेवें। फिर तैल, यह चटनी और ८ सेर

जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जल जाने पर कड़ाही को नीचे उतारकर तुरन्त तैल का मर्दन कराते रहने से दारुणक नष्ट हो जाता है।

(४) **दारुणक**–आम की गुठली की गिरी और छोटी हरड़ दोनों को समभाग लें। दूध में घिसकर शिर पर लगाते रहने से दारुणक रोग दूर हो जाता है। इस रोग को नव्य चिकित्सकों ने कीटाणुजन्य माना है। इस रोग में शिर में छोटी-छोटी फुन्सियां होती है, खुजली चलती रहती है, बाल शुष्क और निस्तेज बन जाते हैं, और कुछ-कुछ वेदना भी होती है। दिन में २-३ बार लेप करते रहने और शिर को नियमित धाते रहने से थोड़े ही दिनों में कीटाणु नष्ट होकर रोग निवृत्त हो जाता है।

(५) **कुनख** (चिप्प)–सोहागे को जल में घिसकर लेप करते रहने से थोड़े ही दिनों में नख की विकृति दूर होकर नख स्वाभाविक बन जाते हैं।

(६) **मुखपिड़िका**–सेमल के कांटों को दूध में चटनी की तरह पीसकर दिन में ३-४ बार लेप करते रहने से मुख पिड़िकायें दूर हो जाती है।

(७) **व्यंग**–मुख पर काला या नीला दाग होने पर जायफल को दूध में घिसकर लेप करते रहने और रोज सुबह शाम सरसों के तैल की मालिश करने या उद्वर्तन लगाते रहने से थोड़े ही दिनों में मुखमण्डल नीरोग और तेजस्वी बन जाता है।

२. किंशुकादि तैल।

द्रव्य–पलाश के फूल, रक्तचन्दन, लाख, मजीठ, मुलहठी, कुसुंम, खस, पद्माख, नीलकमल, बड़ की जटा, पाकड़ की मूल, कमलकेशर, मेहंदी, हल्दी, दारुहल्दी और अनन्तमूल ये १६ औषधियां ४-४ तोले लें।

विधि–सबको लेकर जौकूट चूर्ण करें फिर २५६ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान के तिल तैल १६ तोले, बकरी का दूध ३२ तोले तथा मजीठ, मुलहठी, लाख, पतंग और केशर १-१ तोले का कल्क मिला, मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध करें।

[सि.यो.सं.] (श्री पं. यादव जी त्रिकमजी आचार्य)

उपयोग–इस तैल की मालिश मुँह पर करते रहने से मुँह की फुन्सियाँ, काले दाग आदि दूर होकर मुखमण्डल तेजस्वी बन जाता है।

(४६) मुखरोग।

१. दन्तरक्षक मञ्जन।

द्रव्य–तेजपात ८ तोले, अकरकरा, कालीमिर्च, लौंग, सौंठ और फिटकरी का फूला २-२ तोले, बादाम के छिलके और बबूल की छाल १६-१६ तोले, भुना नीलाथोथा, सैंधव नमक, कत्था, कबाबचीनी और साँभरनमक १-१ तोला, चाकमिट्टी धोयी हुई ४८ तोले, लवंग का तैल, केम्फारेडीन, पीपरमेंट का तैल और सत अजवायन १-१ माशा तथा नीलगिरि १॥ माशा लेवें।

विधि–तेजपात, बादाम के छिलके, बबूल की छाल को जौकूट कर कड़ाही में डालकर अग्नि देकर सेक-सेककर कूटते रहें और छानते जाये। इस प्रकार खूब तपाकर बारीक कपड़े में छाने। फिर चाकमिट्टी और अन्य द्रव्यों को छानकर मिला दें। पश्चात् द्रव द्रव्यों को मिला, खरलकर शीशी में बन्द कर लें। ***(श्री पं. राधाकृष्णजी द्विवेदी)***

उपयोग–यह दन्त मंजन दाँत, डाढ़ और मसूड़ों के दर्द को दूर करता है। रोज उपयोग करते रहने से दांत दृढ़, उज्वल और स्वच्छ बने रहते हैं।

२. रक्त मंजन।

प्रथम विधि–कुंदरु ४० तोले, सोनागेरू १० तोले मिला, कूट कर कपड़छन चूर्ण बना लेवें। ***(आ.नि.मा.)***

उपयोग–इस मंजन में से २-३ रत्ती लेकर रुई में लपेट सूजे हुए मसूड़े पर दबा देने से एक ही दिन में मसूड़े फूटकर दर्द कम हो जाता है।

द्वितीय विधि–हीरादोखी गोंद (दमउलखबीन), शीतलमिर्च, छोटी इलायची, छोटी हरड़, फिटकरी का फूला, कत्था सफेद, सेलखड़ी, सफेदा और कपूर ये ९ औषधियां १-१ तोला और सोनागेरू ९ तोले लें। फिर सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें।

उपयोग–इस मंजन में से १-२ माशे जीभ पर रखकर मुँह में चारों ओर फिराकर लार टपकाते रहने से जिह्वा फट जाना, मुखपाक, दाढ़ में वेदना आदि विकार दूर हो जाते हैं।

सूचना–लार टपक जाने पर जल से कुल्ले कर लेवें।

३. कृष्ण मंजन।

द्रव्य–बबूल के कोयले २ सेर, बीजाबोल, कुंदरू, लोंग, तुम्बरू, फिटकरी का फूला १०-१० तोले, कपूर और बोरिक एसिड २०-२० तोले लेवें।

विधि–कोयले, लौंग, तुम्बरू, फिटकरी, बोरिक एसिड को मिलाकर खरल करें। फिर बीजाबोल, कुंदरू और कपूर क्रमशः मिलाकर मिश्रण कर लेवें। फिर आध औंस पिपरमेन्ट तैल मिलाकर अच्छे डाटवाली बोतलों में तुरन्त भर लेवें।

उपयोग–इस कृष्णमंजन का उपयोग हमेशा नियमित करते रहने से पूय आना, रक्तस्राव, दाँतों में वेदना, दांत हिलना आदि विकार दूर होते हैं। यदि दाढ़ या दांत में शूल चलता हो तो १-२ रत्ती मञ्जन को रुई में लपेटकर पीड़ित स्थान पर दबा देने से शून शमन हो जाता है। यह मंजन पायोरिया पीड़ित व्यक्तियों के लिये अति हितावह है।

सूचना–(१) जिनको तमाखू का व्यसन हो, वे इस मंजन के साथ तमाखू मिला करके भी उपयोग कर सकते हैं।

(२) इस मंजन में मुख्य औषधि बबूल के कोयले हैं और इसमें क्षार होता है, जो मुख में उपस्थित कफ, हानिकर अम्लता और कीटाणु आदि को नष्ट कर देता है। अगर बबूल के कोयले को बारीक पीसकर सूक्ष्म नहीं किया जायेगा, तो मोटे अणु रहकर दाँतों को घिस डालते हैं इसके अतिरिक्त कोयला अघुलनशील द्रव्य है, और इसके छोटे-छोटे कण दांतों की संधियों के बीच में फंस जाते हैं। फिर उन पर भोजन के पदार्थों से सूक्ष्मांश चिपक जाता है और सड़ाँध होने लगती है।

४. दन्तशूलहर मञ्जन।

द्रव्य–(प्रथम विधि) कुचिला, तमाखू के डण्ठल, भिलावा, मांगरोली या सिंगापुरी सुपारी, हरड़, मोलसरी की छाल, माजूफल, लोध, अकरकरा और लौंग, ये १० औषधियाँ २०-२० तोले, शुद्ध खड़ियामिट्टी १०० तोले, सैंधानमक, १५ ताले, छोटी इलायची के दाने और सोनागेरु ५-५ तोले लेवें।

विधि–पहले कुचिला, तमाखू और भिलावें को जलावें। धुआँ निकल जाने पर ढंक देने से काले कोयले हो जायेंगे। फिर सब औषधियों को कूट कपड़छन चूर्ण कर लेवें।

उपयोग–यह दंतशूलहर मंजन निर्बल और विकारी दाँतों के लिये अच्छा है। शूल चलता हो, तो उसका शमन हो जाता है और मसूढ़े बलवान बनते हैं। पूय निकलता हो तो बन्द हो जाता है। और दाँत उज्जवल हो जाते हैं। इसका उपयोग नियमित रीति से दिन में १ से २ बार सुबह और रात्रि को करते रहना चाहिये।

द्वितीय विधि–कपूर, हींग, बच और दालचीनी चारों को समभाग मिलाकर कपड़छन चूर्ण बना लेवें।

उपयोग–थोड़ा-सा चूर्ण कपड़े में बांध दाँतों के बीच में दबा लेने से कृमि नष्ट होकर दाढ़ और दाँतों का शूल उसी समय शान्त हो जाता है।

तीसरी विधि–रत्नज्योति (दन्ती भेद) का दूध १० तोला और सफेद कत्था २० तोले मिला, तश्तरी में फैलाकर छाया में सुखावें। फिर पीस के चूर्ण कर बोतल में भर लेवें।

उपयोग–इस मञ्जन का नित्यप्रति उपयोग करते रहने पर हिलते हुए दाँत दृढ़ होते हैं और वेदना शान्त हो जाती है।

५. खदिरादि तैल।

द्रव्य–खैर की छाल और बकुल की छाल २००-२०० तोले को जौकूट कर २०४८ तोले जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर खैर की छाल, लौंग, सोनागेरू, अगर, पद्माख, मजीठ, लोध, मुलहठी, लाख, बड़ की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, शीतल मिर्च, अकरकरा, पतंग, धाय के फूल, छोटी इलायची के दाने, नागकेशर और कायफल की छाल, इन २० द्रव्यों को १-१ तोला लेकर कल्क करें। पश्चात् कल्क, क्वाथ और १२८ तोले तिल तैल को मिला, कलईदार बर्तन में डाल मन्दाग्नि पर पाक करें और खैर के डन्डे से चलाते रहें। तैल सिद्ध होने पर कपूर १ तोला मिला कपड़े से छान कर तुरन्त बोतलों में भरे। ***(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी, आचार्य)***

उपयोग–इस तैल के प्रयोग से मुखपाक, मसूढ़ों का पाक और उनमें से पूय निकलना, दाँतों का सड़ना, दाँतों में छिद्र होना, दाँतों में कृमि होना, दाँत काले मृतप्राय हो जाना, मुँह से दुर्गन्ध निकलना तथा जिह्वा, तालु और ओष्ठ आदि के सर्व रोग नष्ट होते हैं। पायोरिया में इस तैल के कुल्ले धारण करने पर लाभ होता है।

६. बकुलाद्य तैल (पायोरिया प्रहार)।

द्रव्य–मौलसिरी के फल, लोधपठानी, हाड़जोड़, (संस्कृत में अस्थिसंधान वज्रवल्ली, तैलंगी में नल्लेडा, मराठी में कांडवेल और लेटिन में विटिस क्वाँड्रेन गुलेरिस) (Vitis Quadrangularis) कहते हैं। यह हाड़जोड़ दुग्धरहित, चारधारीवाली, ४-५ इंच पर गांठवाली और पत्रवाली होती है। पियावासा, अमलतास की छाल, बबूल की छाल, शालवृक्ष की छाल और दुर्गन्ध खैर (तै. मुरकी तुम्मा), ये ८ औषधियां १०-१० तोले, विजयसार का बुरादा २० तोले तथा तिल तैल (या सरसों का तैल) ८२ सेर लेवें।

विधि–पहली २ औषधियों का कल्क करें। शेष औषधियों का यथविधि कषाय करें फिर सबको मिलाकर तैल सिद्ध करें।

(पं. श्री राधाकृष्णा जी द्विवेदी)

उपयोग–इस तैल को रुई की फूरेरी से रात्रि केसमय लगावें। बढ़ें हुए दोषों में इस तैल में से ५ तोले को गरम करके शीतल किये हुए उत्तम सरसों के तैल ३५ तोले में मिलाकर प्रात: काल गंडूष कराने से अनेक दन्तरोगों (दन्तपूय, पायोरिया, करालरोग, दन्तपुप्पुट) का नाश करता है। दन्तपूय (पायोरिया) रोग बढ़ने पर एलोपैथी वालों ने इसे असाध्य माना है, उसे नष्ट करने में यह अद्वितीय योग है। यह २० वर्षों का अनुभूत प्रयोग है। पायोरिया की चिकित्सा में पथ्य पेय होना चाहिये तथा भोजनोत्तर भृङ्गराजासव पिलाना चाहिये। इस रोग में मंजन, दन्तघर्षण और दतौन नहीं करना चाहिये।

७. सौभाग्य प्रवाही

द्रव्य–फिटकरी का फूला और मुलहठी १।-१। तोला, सोहागे का फूला २॥ तोले और मिश्री २० तोले लेवें।

विधि–मिश्री का शर्बत बनाकर शीतल होने पर इसमें तीनों औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला लेवें। **(वैद्य श्री रविकान्त जी)**

वक्तव्य–सोहागे के फूले के स्थान पर एसिड बोरिक और मिश्री के बदले ग्लिसरीन मिलाने पर योग विशेष लाभदायक बनता है।

उपयोग–इस प्रवाही में रुई की फुरेरी डुबोकर मुँह और कण्ठ में फिराने से मुखक्षत, मुँह के छाले, गल ग्रन्थिविकार, उपजिह्वा (कोए) की शिथिलता जिह्वा फट जाना आदि विकार दूर होते हैं।

८. मुखपाकहर योग।

(१) सफेद कत्था ५ तोले, छोटी इलायची छिलके सहित और शीतल चीनी २॥-२॥ तोले, कपूर ६ माशे तथा सेलखड़ी १० तोले लेवें। सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। यह चूर्ण दाह युक्त जिह्वा के क्षत, मुख पाक आदि को दूर करता है। इस चूर्ण में से दिन में ८, १० या अधिकबार चुटकी भर मुँह में डालें। मुंह में थूक इकट्ठा होने पर बाहर निकाल डाले॥ इस तरह इसका प्रयोग करने पर मुखपाक जल्दी निवृत्त हो जाता है।

वक्तव्य–यदि मुखपाक चिरकाल से हो और आमाशय विकृतिजन्य हो, तो स्वादिष्ट विरेचन, मंजिष्ठादि चूर्ण, गुलकन्द या इतर मृदुविरेचन देकर शुद्धि कराते रहना चाहिये। एवं साथ-साथ कामदुधा, प्रवालपिष्टी, शत पत्र्यादि चूर्ण या सारिवादि हिम जैसी सौम्य और आमाशयिक रस की तीव्रता को शान्त करने वाली औषधि भी सेवन करानी चाहिये।

पूयप्रधान जीर्ण मुखपाक हो, तो इस योग में ६ माशे नीले थोथे का फूला मिला देना विशेष हितावह माना जायेगा। नीलाथोथा वामक है। अत: थूक कण्ठ से नीचे न चला जाये, इसका ध्यान रखना चाहिये।

यह चूर्ण मुखपाक के अतिरिक्त शरीर के किसी भी भाग में फूटे हुए व्रणों पर भुर-भुराया जाता है, धोये घी के साथ मिलाकर लगाया जाता है। एवं अग्निदग्ध व्रण पर भी लाभदायक है।

(२) नीलेथोथे का फूला, चिरमी के पत्ते, इलायची के छिलके, तीनों आध-आध रत्ती, कत्था व चूना लगे हुए पान में डालकर खावें और चबा-चबाकर थूकते जायें। थोड़ी देर बाद १०-२० कुल्ले करें। इस तरह दिन में २ या ३ समय कुल्ले करने से मुँह के नये छाले मिट जाते हैं।

सूचना–थूंक को गले के नीचे न जाने दें। अन्यथा वमन हो जायेगी।

(३) उदुम्बर पत्रसार को जल में मिलाकर कुल्ले कराने और खदिर तैल लगाने से लाभ होता है।

(४) माजूफल का सत्व (Tannic acid) २ रत्ती को १ तोले शहद में मिलाकर लगावें।

(५) साबूदाना २॥ तोले को दूध ८। तोला और पानी ८। तोला डालकर खूब उबालें पश्चात् ठण्डा होने पर इससे कुल्ले करें।

९. दन्तशूलहर योग।

(१) ताजी या सूखी लाल मिर्च एक नग में से बीज निकाल के जल मिला पीसकर उसके रस को छान लें। जिस और की दाढ़ में दर्द हो उसी ओर के कान में इसकी किञ्चत निवायाकर चार पांच बूंदे डालने से तत्काल डाढ़ का दर्द शान्त हो जाता है। यदि कान में दाह हो तो लाल खांड या शक्कर एक दो रत्ती डाल देवें।

(२) छोटे कटेली के फल का चूर्ण कर बीड़ी में डालकर पिलाने से दन्तकृमि तत्काल मर जाते हैं। हिलते हुए दाँत की पीड़ा, मसूड़े फूलना और सूजन आना ये सब विकार शान्त हो जाते हैं।

(३) रोगी को धूप में सुलाकर कान में तिल तैल डालें। २ मिनट बाद तैल को निकाल सुअरासेम (खड्गशिम्बी) के पानों का रस कान में निचोड़े। फिर १ मिनट में ही दांत-दाढ़ के सब जीवित कीड़े कान के मार्ग से बाहर निकल आते हैं और वेदना का शमन हो जाता है फिर आमाहल्दी, लोध और बीजाबोल का लेप कर देने से मसूढे की सूजन दूर हो जाती है।

(४) तमाखू, अफीम, कपूर और बीजाबोल, चारों को समभाग मिला जल में पीस आध-आध रत्ती की गोलियां बना लें। दांत और दाढ़ का दर्द होने पर उसके गड्ढे में एक गोली रखने पर तत्काल दर्द दूर हो जाता है। मुँह में जो थूक आ जाये, उसे बाहर थूंक देवें। आवश्यकता पर दूसरी ओर तीसरी बार गोली रखी जा सकती है।

(५) इन्द्रजौ (कूड़ा) के पत्ते चबा-चबाकर थूंके। २-३ बार में पीड़ा शान्त हो जाती है।

(६) सहोड़ा (शाखोट) की छाल का मञ्जन करें या इसकी दतौन कराने से मसूड़ों के रोग शीघ्र शान्त होते हैं।

१०. खदिरादि वटी।

द्रव्य–खैरसार १० तोले, कपूर, चिकनी सुपारी, जायफल, शीतलमिर्च व छोटी इलायची २-२ तोला लें। *(वृन्द)*

विधि–सबको कूट पीस बारीक चूर्ण बना, जल मिला चने प्रमाण गोली बनावें।

उपयोग–मुख पाक, गलरोग, कास तथा स्वरभंग को दूर कर दांतों को दृढ़ बनाती है।

❑❑

(४७) कर्ण रोग।

१. कर्णरोगहर रस।

द्रव्य–अभ्रक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध गधक, ताम्र भस्म और बकरे के मूत्र में २१ दिन तक खरल किया हुआ पारद, इन पाँच औषधियों को समभाग लें।

विधि–पहले पारद गन्धक की कज्जली करें। फिर भस्म मिला त्रिफला के क्वाथ और अदरक के स्वरस में ३-३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१ से २ गोली अदरक या तुलसी के रस के साथ, दिन में दो बार।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से सब प्रकार के कर्णरोगों की निवृत्ति होती है। कान में गूंज होना, कर्णशूल, कर्णपाक और बधिरता आदि रोगों पर यह रस लाभदायक है।

सूचना–दही, खटाई, गुड़, शक्कर, पक्का भोजन, शीतल वायु का सेवन, शीतल जल से स्नान, जोर से बोलना और स्त्री समागम आदि अपथ्य आहार विहारों का त्याग करना चाहिये।

२. निशा तैल।

द्रव्य–सरसों का तैल १ सेर, धतूरे के पानों का स्वरस ४ सेर, हल्दी ८ तोले और गन्धक ८ तोले लें।

विधि–हल्दी और गन्धक को पीसकर धतूरे के साथ कल्क करें। फिर सबको मिला मन्दाग्नि पर यथाविधि तैल सिद्ध करें।

वक्तव्य–इस तैल का नाम रसरत्नाकर ग्रन्थ में गंधकादि तैल रखा है।

उपयोग–इस तैल की ४-४ बूंदे कान में डालते रहने से १०-१५ दिनों में कान का नाड़ीव्रण दूर हो जाता है।

सूचना–शीतल जल से स्नान करना, शक्कर-गुड़ अधिक खाना, कान को शीतल वायु लगना, ये सब हानिकारक हैं।

तैल डालने से पहले रुई की फुरेरी से पोंछ लेना चाहिये। बाहर पीप लगा हो, तो उसे त्रिफला क्वाथ के गरम जल या कार्बोलिक लोशन में कपड़ा भिगोकर पोंछ लेना चाहिये। बार-बार कान को धोना नहीं चाहिये।

२. कुम्भी तैल।

द्रव्य–जल कुंभी का कल्क १६ तोले, तिल तैल ३४ तोले और जलकुम्भी का स्वरस २५६ तोले लेवें।

टिप्पणी–जलकुम्भी (सं. आकाशमूली) ब. टोका, पाना। ले पिस्टिया स्ट्रेटियोटस (Pistia Stratiotes) जो जल पर फैलने वाल ीस्कधरहित वनस्पति है। इसके पान १ से ४ इञ्च तक लम्बे और विविध चौड़ाई वाले होते हैं। मूल सादा सफेद तन्तुओं वाला होता है। कलिक (Spathe) लगभग आध इञ्च लम्बी और सफेद होती है।

विधि–सबको मिला मन्दाग्नि देकर तैल सिद्ध करें। फिर कपड़े से छानकर बोतल में भर लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

उपयोग–इस तैल को डालने से कान का दर्द, पीप आना, नाड़ीव्रण, आदि दूर होते हैं। तैल डालने के पहले कान को साफ कर लेना चाहिये।

४. कर्ण पाकहर योग।

(१) लोहे की एक कुड़छी को अग्नि में तपाकर लाल करें। फिर उसमें १-२ माशे भैंसा गूगल डालें। और तुरन्त उलटी चिलम से ऊपर से ढंक दें। चिलम के ऊपर के हिस्से को कान में लगा दें। जिससे सब धुंआ कान में चला जाये। इस रीति से प्रातः सायं दिन में दो बार एक सप्ताह तक प्रयोग करने से कर्णपाक और वेदना शान्त हो जाते हैं। ३-३ वर्ष के पुराने रोगियों को भी इस सरल प्रयोग से लाभ हो जाने के उदारण मिले हैं।

(२) कटेली के बीजों को तपाकर खूब लाल की हुई लोहे की कुड़छी में डाल, उस पर चिलम रख कान के भीतर धुआँ देने से कान में कीड़े हो गए हों, तो वे तुरन्त बाहर निकल जाते हैं। फिर वेदना शान्त हो जाती है और कान में से पूय निकलता हो, तो वह भी सरलता से दूर हो जाता है।

(३) शुद्ध तार्पिन के तैल की ४-४ बूंदे प्रातः सायं कान में डालते रहने से पूयस्राव बन्द हो जाता है। कान के नाड़ी व्रण के पुराने रोगियों को भी इस प्रयोग से लाभ होता है।

(४) निर्गुण्डी के पान का कल्क १० तोले, तिल तैल ४० तोले और निर्गुण्डी का स्वरस (या क्वाथ) २ सेर मिला मंदाग्नि पर तैल सिद्ध करें। इस तैल के प्रयोग से असाध्य कर्णपाक भी दूर होता है। जिनके कान में भयंकर दुर्गन्ध युक्त पीला पूय दिन रात निकलता रहता हो, जो सैकड़ों औषधोपचार से अच्छे न हुये हों, वे इस तैल के प्रयोग से अच्छे हो गये हैं। ***(कविराज उपेन्द्रनाथ जी)***

सूचना–कान को धोने के लिये भीतर जल नहीं डालना चाहिये। त्रिफला के क्वाथ या कार्बोलिक लोशन में कपड़ा या रूई भिगोकर बाहर जहाँ जहाँ पूय लगा हो, वहां इससे पोंछ देना चाहिये। कान के भीतर इससे धोने की आवश्यकता नहीं है।

इस तैल का विशेष गुणधर्म व्रण-विद्रधि पर लिखे हुए "निर्गुण्डी तैल" के उपयोग में दर्शाया है।

(५) जंगली सूरण (जमीकंद) की डण्डी का रस पुटपाक विधि से निकालकर कान में डालने से बहुत पुराने कर्णस्राव का भी निवारण होता है।

(६) मनुष्य की हड्डी को ४ गुने तिल तैल में उबाल लें। तैल अच्छी तरह पक जाने पर छान लेवें। इस तैल में से २-२ बूंदे रात्रि में कान में डालने से पूयस्राव दूर हो जाता है।

(७) नर-कपालास्थि की भली-भांति मुलायम भस्म कर निर्गुण्डी तैल के साथ मिला, कर्णपाक में व्यवहार करने पर अप्रतिम लाभकारी है। इसका प्रयोग नाड़ीव्रण आदि में भी होता है जो यथा स्थान वर्णित है। ***(पं. श्री राधाकृष्ण जी द्विवेदी)***

(८) मोम १ माशा, गूगल २ रत्ती और कपूर १ रत्ती को मिला गोली करके फिर लोह के तवे को तपाके लालकर उस पर इसको रखें। फिर तुरन्त ऊपर चिलम से इस गोली को ढंककर ऊपर कान लगा दें। जिससे धुआँ कान में चला जाये। इस प्रयोग से कर्णशूल का तुरन्त शमन हो जाता है।

५. कर्ण शूलहर योग।

(१) अफीम का अर्क (Tinct. Opii) और ग्लिसरीन समभाग मिला लें। इसमें से २-४ बूंदे कान में डालने से कर्णशूल का शमन हो जाता है।

(२) सूची बूटी का अर्क (Tinct. Belladona)१ भाग और ग्लिसरीन ४ भाग मिला लेवें। इसमें से २-४ बूंदे दिन में दो बार कान में डालने से कर्णशूल दूर होता है।

❑❑

(४८) नासा रोग।

१. प्रतिश्यायहर वटिका।

द्रव्य–कालीमिर्च, लौंग, बहेड़ा का छिलका, शीरखिस्त देशी और तुलसीपत्र इन ५ औषधियों को १६-१६ तोले लें।

विधि–शीरखिस्त को छोड़ शेष वस्तुओं को कूट कपड़छन चूर्ण कर फिर शीरखिस्त को मिला लेवें। पश्चात् बबूल की ताजी छाल १ सेर को ४ गुने जल में क्वाथकर चतुर्थांश रहने पर उतारकर छान के थोड़ा थोड़ा मिलाकर १२ घन्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। ***(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी)***

मात्रा–१ से २ गोली, निवाये दूध से दिन में दो या तीन बार देवें।

उपयोग–यह वटी नये जुकाम और मंद ज्वर के लिये रामबाण है। कब्ज हो, तो उसे भी दूर करती है। बिल्कुल निर्भय, उत्तम और सस्ती औषधि है। हम अनेक वर्षो से इसका उपयोग कर रहे हैं।

२. प्रतिश्याय नाशक अवलेह।

द्रव्य—उस्तखद्दूस ५ तोले, गावजवाँ, हुबुल्लास, धनियां तीनों १०-१० तोले, तुख्म काहू २० तोले, खसखस के डोडे और खुरासानी अजवायन ३०-३० तोले, खसखस ४० तोले तथा मिश्री २० तोले लें।

विधि—पहले मिश्री के अतिरिक्त सब औषधियों को कूट ४ सेर जल में मिलाकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर नीचे उतार मसकर छान लें। उसे चूल्हे पर चढ़ा मिश्री मिलाकर चाशनी तैयार करें। पश्चात् गुलाब के फूल, धनियां, सत मुलहठी, कतीरागोंद, बबूल का गोंद, पीपल और कालीमिर्च, ये ७ औषधियां ५-५ तोले मिलाकर अवलेह बना लेवें। ***(हकीम श्री उत्तमचन्दजी)***

मात्रा—९-९ माशे अवलेह को अर्क गावजवाँ या जल के साथ मिला दिन में दो बार सेवन कराने से जुकाम और नजला दूर हो जाते हैं। १० वर्ष का पुराना रोग भी इस औषधि के सेवन से दूर हो गया है।

३. नासाकृमिहर नस्य।

द्रव्य—(प्रथम विधि) एलुवा, कड़वी तमाखू, बायविडंग, देवदाली के फल और शद्धु हींग, सब एक-एक तोला लेवें।

विधि—सबको कपड़छन चूर्ण कर जंगली तमाखू के स्वरस की १० भावनायें दें। पश्चात् सुखाकर इसका कपड़छन चूर्ण कर लें। ***(पं. श्री महेन्द्रनाथ जी शास्त्री, वैद्यवाचस्पति)***

उपयोग—इस चूर्ण का नस्य देने से नाक में से कीड़े गिरने लगते हैं। एक दो दिन में ये सब कृमि निकल जाते हैं। फिर नाक में से दुर्गन्ध आना भी बन्द हो जाता है।

द्वितीय विधि—कपूर को समभाग विशुद्ध तार्पिन के तैल में मिला लेने से थोड़े समय में ही वह द्रव बन जायेगा। इसमें से ४-४ बूंदे प्रात: सायं नाक में डालते रहने से २-३ दिन में ही पीनस, पूतिनस्य, कृमिज शिरोरोग आदि दूर हो जाते हैं। ***(श्री उदयलालजी महात्मा)***

जिनका मुँह और शिर फूला हुआ था और नाक में से दुर्गन्धयुक्त रक्तपूययुक्त स्राव होता था और पौन-पौन इञ्च के लम्बे कृमि सैकड़ों की संख्या में गिरते थे, ऐसे कई रोगी इस योग से स्वस्थ हो गये हैं।

तृतीय विधि—हिंगोट (इंगुदी) के फल के बारीक चूर्ण का नस्य कराने से सफेद या लाल कीड़े जो मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हों, वे सब गिर जाते हैं।

४. शिखरी तैल।

द्रव्य—रसोई घर का धुँआं, पीपल, देवदारू, दारुहल्दी, जवाखार, करंज की छाल, सैंधानमक और अपामार्ग के बीज प्रत्येक २-२ तोले लें।

विधि—सबका कल्क करें। कल्क को ३४ तोले तैल और २५६ तोले जल में मिलाकर तैल सिद्ध करें। ***(बृ.मा.)***

उपयोग—नाक के भीतर उत्पन्न मस्से पर इस तैल की फुरेरी लगाने से कुछ दिनों में मस्से जल जाते हैं। A Spray

५. नासार्शनाशक लेप।

विधि—नौसादर और सज्जीखार (सोडा कार्बोनेट) दोनों ४-४ तोले, नीलाथोथा १ तोला और शहद ३६ तोले मिला खरलकर मिश्रण बना लेवें।

उपयोग—रुई की बत्ती इस मिश्रण में भिगोकर नाक के भीतर रोज दिन में रखें। उग्रता अधिक पहुँचने पर उसमें धोया घी लगावें और जब उग्रता शमन हो तब यह लेप रखना फिर चालू करें। इस तरह यह लेप रखते रहने से कुछ दिनों में अर्श नष्ट हो जायेगा।

६. नासारोगहर योग।

कभी-कभी पत्थर, पेंसिल, लकड़ी आदि नाक में घुस जाने या कफ सूखकर श्वासोच्छ्वास बन्द हो जाने पर अति घबराहट उत्पन्न होती है। उसे दूर कर श्वसन क्रिया चालू कराने के लिये कायफल का चूर्ण आधी रत्ती तक सुंघाने से १०-१२ छींके आकर नाक में प्रविष्ट वस्तु और कफ निकलकर मार्ग मुक्त हो जाता है।

आधा शीशी पर भी यह चूर्ण सुंघाया जाता है। इस चूर्ण को ज्यादा नहीं सुंघाना चाहिये। अन्यथा अधिक छींके आकर नाक में से रक्तस्राव होने लगता है। रक्तस्राव होने लगे तो घृत या तैल सुंघा देना चाहिये।

७. व्योषादि वटी।

द्रव्य—सोंठ, मिर्च, पीपल, अम्लवेत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रक, जीरा तथा इमली का गूदा ये प्रत्येक ६-६ माशे और गुड़ २० तोले लेकर, सबका बारीक कपड़छन चूर्ण करें और इमली को अलग कूट लें फिर गुड़ मिला मसलकर एक जीव करें। फिर मटर के बराबर गोली बनावें। यदि गुड़ कठोर हो तो चाशनी बनाकर मिलावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में ५-७ बार मुँह में रखकर रस चूंसे। या निवाये जल से लेवें।

उपयोग—प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, कास, अरुचि, स्वरभंग आदि में उपयोगी है।

(४९) नेत्र रोग।

१. सप्तामृत लोह।

द्रव्य–मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आँवला और लोहभस्म १०-१० तोले लें।

विधि–इन पांचों औषधियों को मिलाकर खरलकर लें। प्रथम काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण करें लोहभस्म मिलाकर घोटें और शीशी में भर लें। ***(च.द.)***

मात्रा–१ माशे औषधि को ३ माशे घी और ६ माशे शहद के साथ मिलाकर दिन में २ बार सेवन करें। ऊपर गोदुग्ध पीवें।

उपयोग–यह सप्तामृत लोह उत्तम रसायन है। इसके सेवन से किसी भी प्रकार की हानि का भय नहीं है। पथ्य-पालनसह प्रयोग करने पर वमन, तिमिर, परिणामशूल, अम्लपित्त, ज्वर, ग्लानि, आनाह, मूत्राघात और शोथ आदि विकार दूर होते हैं और नेत्र की ज्योति बढ़ती है। नेत्र की निर्बलता दूर करने के लिये यह सरल और उत्तम औषधि है।

वक्तव्य–यह योग सौम्य और श्रेष्ठ है। वात, पित्त और कफ तीनों प्रकृति वालों के लिये हितावह है। कम मात्रा में पथ्यपालन सह इसका १ वर्ष तक सेवन किया जाये तो रस, रक्त आदि सब धातुओं को सबल बनाकर देह हो तेजस्वी बना देता है। यह शनै:शनै: पचनक्रिया को सुधारता है, मस्तिष्क, नेत्र, कान, नाक, कण्ठ आदि इन्द्रियों को बल प्रदान करता है और आयु को बढ़ाता है। यह योग रसायन होने से समस्त देह के लिये हितकारक है, तथापि इसका उपयोग नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए अधिक होता है।

जिनके नेत्रों में दाह होता हो, खाज आती हो, दृष्टि मन्द हो गई हो, लाली रहती हो या रतौंधी हो अथवा मोतियाबिन्द का बनना आरम्भ हो रहा हो, उन सबके लिये यह सप्तामृत लोह अति हितावह है। यह किसी रोगी को चाहे लाभ न पहुँचा सके, किन्तु हानि कभी नहीं पहुँचता।

रोगी को चाहिये कि रोगानुसार पथ्य का पालन करें और आवश्यक बाह्य उपचार भी करता रहे। तमाखू आदि का व्यसन हो तो उसे छोड़ दें और अधिक कब्ज न रहने दें।

कई आचार्यों ने सप्तामृत लोह को परिणामशूल पर विशेष लाभप्रद मानकर परिणामशूल प्रकारण में लिखा है।

सूचना–मोतियाबिन्द के रोगी को चाहिये कि धूप में अधिक न जाये और तेज बत्ती के प्रकाश में न रहे। नेत्र को तीव्र प्रकाश लगता रहेगा तो रोग दब नहीं सकेगा।

इस योग का उपयोग रसायन रूप से भी होता है। रसायन विधि से लेना हो तो हरड़, बहेड़ा, आंवला और मुलहठी, चारों १।।-१॥ माशे और लोहभस्म २ रत्ती लेवें। फिर घी ३ माशे और शहद १ तोला मिलाकर सुबह लेते रहें। कुछ समय लेने पर मलावरोध, अग्निमांद्य, रक्तविकृति, श्वास, कास, आमप्रकोप, कफवृद्धि, उदरकृमि, वातविकार और शारीरिक निर्बलता आदि रोग दूर होते हैं और शनै: शनै देह सबल, पुष्ट और तेजस्वी होता है।

इस रसायन को रसेन्द्रसार संग्रहकार ने '**तिमिरहर-लोह**' संज्ञा दी है और गुण वर्णन में लिखा है कि यह लोह योग तिमिर रोग को उस प्रकार दूर करता है, जिस प्रकार चन्द्रमा अन्धकार को 'लोहं तिमिरिकं हन्ति सुधांशुस्तिमिरं यथा।'

२. कुकूणकनाशक बिन्दु।

द्रव्य–रसकपूर और सैंधानमक १-१ माशा, कपूर ४ रत्ती और नीला थोथा २ रत्ती लें।

विधि–सबको पीस के एक शीशी में भरकर फिर गुलाबजल २० तोले मिलाके १ दिन रहने देवें। दूसरे दिन फिल्टर पेपर से छान लेवें।

उपयोग–इसमें से १-२ बूंद प्रात: सांय डालते रहने से २-४ दिन में ही कुकूणक (रोहे) दूर होते हैं। इस औषध से एक मिनट तक कुछ जलन होती है। जलन से भय न मानें, तो अच्छा लाभ होता है।

३. पोथकीहर अञ्जन।

प्रथम विधि–एरण्ड फलों की गिरी निकालकर उनका तैल निकालें। तैल निकालने की विधि रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह प्रथम खण्ड में लिखी है। उस नितरे हुए साफ तैल में से १ सेर तैल लेकर मन्दाग्नि पर उबाले। उबलने पर नीले थोथे ४ तोले का बारीक चूर्ण डालकर आध घन्टे तक मन्दाग्नि देते रहें। फिर कड़ाही के स्वांग शीतल होने पर तैल को छान लेवें।

उपयोग–इस तैल के अञ्जन से चिरकारी जीर्ण रोहे दूर होते हैं। पलक के नीचे के दाने, शिरदर्द, सफेदी और नेत्र से जल गिरते रहना आदि दोष शान्त होते हैं। यह अति सौम्य औषधि है। किसी को भी हानि नहीं पहुंचाती।

द्वितीय विधि–समुद्रफेन को सुरमे के सदृश बारीक पीस के शहद में मिला लें। फिर प्रात: सांय अञ्जन करते रहने से बालकों और बड़े मनुष्यों के रोहे दूर हो जाते हैं।

तृतीय विधि–(रोहो पर रगड़ा) फिटकरी की भस्म* चाकसू के शुद्ध बीज + यशद की भस्म, अफीम, लोध, छोटी इलायची के बीज, इन ६ औषधियों को १-१ तोला और गोघृत ६ तोले लेवें। सबको ताम्र की कड़ाही में नीम के डण्डे से खूब घोटकर अञ्जन तैयार कर लेवें। ***(श्री पं. जाहर सिंह जी आयुर्वेदाचार्य)***

उपयोग–इसका अंजन करने से रोहे, नेत्रों की लाली और अश्रु स्राव दूर होते हैं, विशेषत: इसका अंजन रात्रि को सोते समय किया जाता है।

वक्तव्य–गुजरात काठियावाड़ में चाकसू मगज में थोड़ा सैंधानमक मिला कर रात्रि में आंखों में आधे-आधे रत्ती डालकर पट्टी बांध देते हैं। ५-७ मिनट जलन होती है। किन्तु यह निर्दोष और उत्तम प्रयोग है। गुजरात का यह घरेलू प्रयोग है। बच्चों के लिये भी यह प्रयुक्त होता है।

सूचना-प्रात:काल नेत्रों को कीटाणुनाशकधावन, बोरिक धावन या त्रिफला फाण्ट या रसकपूर के धावन (१ रत्ती रसकपूर और ५० तोला जल मिलाकर बनाया हुआ धावन) से धो देना चाहिये।

४. काला नेत्राञ्जन।

द्रव्य–काले सुरमे २० तोले का कपड़छन चूर्ण, बहेड़े की गिरी २ तोले, वराटिका भस्म, मौक्तिक पिष्टी और मन:शिला १-१ तोला लें।

विधि-सबको मिला कर खरल कर लें फिर नीलाथोथा १ तोला लेकर ४० तोले जल में मिला लेवें। इसको थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खरल करें, फिर २॥ सेर गुलाबजल मिला कर खरल करें। गुलाबजल में २ तोले कपूर मिला लेवें। गुलाबजल समाप्त होके नेत्रांजन के सूख जाने पर बोतल में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

उपयोग–इस नेत्रांजन का अंजन करने से नेत्र के फूले, मांसवृद्धि, कुकूणक, तिमिर और नेत्रव्रण आदि रोग दूर हो जाते हैं। यदि सलाई को प्रथम बबूलादिस्वरस में डुबोकर फिर इस अञ्जन को उस पर लगाकर नेत्रों में अंजन किया जाये, तो लाभ अधिक होता है। यह अनेक वर्षों का परीक्षित उत्तम प्रयोग है।

बबूलादि स्वरस का पाठ रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड में दिया है।

५. काजल।

प्रथम विधि–एरण्ड तैल की बत्ती दीपक में रख कर जलावें। फिर दीपक पर औंधा तवा रखकर ४ तोले काजल इकट्ठा करें। फिर नीले थोथे का फूला और फिटकरी का फूला ६-६ माशे लें। बच और आंवला १-१ तोले को जलाकर कोयले करें। पश्चात् सबको मिला उसमें ४ तोले गोघृत मिलाकर १ दिन तक मर्दन करें। दूसरे दिन खरल में १० तोले जल मिलाकर फिर मर्दन करे। जल मैला होने पर निकाल डालें और पुन: नया डालें। इस तरह जब तक मैला जल निकले, तब तक निकालते रहें। साफ जल निकलने पर १ तोला कपूर मिलाके खूब मर्दन कर खुले मुँह की शीशी में इसे भर लें। *(आ.नि.मा.)*

उपयोग-इस काजल के अंजन से नेत्रज्योति बढ़ जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियों और बालकों के चक्षु में नित्यप्रति डालने के लिये यह उपयोगी है। इसके अञ्जन से नेत्रों में से मैल दूर हो जाता है, गर्मी नहीं बढ़कर शीतलता बनी रहती है तथा नेत्र निर्मल और तेजस्वी रहते हैं। यद्यपि इस काजल में नीलाथोथा आदि दाहक पदार्थ मिलाये हैं तथापि जल से धोने से वे सब निकल जाते हैं। केवल उनका प्राभाविक गुण रह जाता है।

द्वितीय विधि–फिटकरी का फूला ४ तोले और छोटी इलायची छिलके छह तोले लें। दोनों को मिलाके कूटकर कपड़छन चूर्ण कर इसमें १६ तोले गोघृत मिलावें। फिर हाथ से बनाये हुए स्वदेशी मोटे कागज पर यह घृत मिश्रित चूर्ण लगावें और नली के समान बनाकर गोल लपेट लेवे। इस तरह जितने कागज हों, सबको पृथक् पृथक् लपेट देवें, फिर १-१ कागज को चिमटे से पकड़कर एक सिरे से जलावें। उसमें से जो घी टपके, उसे ताम्बे की कटोरी में इकट्ठा करते जायें। राख भी उसमें गिरती रहेगी। इस तरह सब कागजों को जला दें। फिर राख मिश्रित घी को खरल में डाल ८ घण्टे तक घोटें। यदि घी अधिक जल जाने से काजल शुष्क हो गया हो, तो थोड़ा गोघृत और मिला लेवें। अच्छी तरह मिश्रण बन जाने पर उसे डिब्बे में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

वक्तव्य–हम कागज के स्थान पर ४ तोले रूई मिलाके पीतल या लोहे की चालनी रखकर जलाते हैं। जिससे कुछ घी नीचे टपक जाता है और ऊपर काली राख रह जाती है। इन दोनों को मिलाकर काजल बना लेते हैं।

फिटकरी की भस्म विधि-फिटकरी के चूर्ण को गोघृत में मिला रबड़ी जैसा बना के लोहे की कड़ाही या तवे में रखकर चूल्हे पर चढ़ावें। अग्नि तीव्र दें और कुड़छी से चलाते रहें। जब घी जलकर कालीभस्म बन जाये तब अग्नि पर से उतार लेवें।

* **चाकसू शोधन विधि**-चाकसू के बीजों को नीम के रस में एक प्रहर तक दौलायन्त्र में उबालकर शुद्ध करें। फिर ऊपर से छिल्के को दूर कर भीतर से मीगी निकाल लेवें अथवा मट्ठे में १२ घण्टे भिगो, निकालकर उपयोग में लेवें।

उपयोग–इस काजल में से थोड़ा सा अंगुली पर लगाके कुकूणक पर और पूयस्राव होने वाले नेत्रों में प्रतिदिन एक या दो बार अंजन करते रहने से थोड़े ही दिनों में नेत्र निर्मल बन जाते हैं। नेत्रपाक पर यह काजल अत्यन्त हितावह सिद्ध हुआ है।

६. श्वेत नेत्राञ्जन।

द्रव्य–यशद पुष्प (जिंक ऑक्साइड) ५ तोले, मिश्री २॥ तोले, बोरिक एसिड १० तोले और कपूर आधा तोले लेवें।

विधि–सबको मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें।

उपयोग–यह नेत्रांजन अभिष्यन्द (आंख आना), नेत्र की लाली, रतौंधी, जल गिरना, मांसवृद्धि आदि पर उपयोगी है। सुबह और रात्रि में अथवा केवल रात्रि में सोने के समय नेत्रों में डालते रहने से नेत्र रोग दूर होकर दृष्टि स्वच्छ हो जाती है।

७. नागाद्यञ्जन।

द्रव्य–शुद्ध शीशा ३० भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध ताम्र और शुद्ध हरताल २-२ भाग, शुद्ध बंग १ भाग तथा सुरमा (काला) ३ भाग लें।

विधि–इन सबको मिला अन्धमूषा में बन्दकर १२ घण्टे तक तीव्राग्नि देकर पकावें। फिर स्वांगशीतल होने पर औषध को निकाल, ७ दिन खरलकर नेत्राञ्जन बना लें। *(अ.हृ.)*

उपयोग–यह अञ्जन तिमिर रोग पर लाभदायक है। श्री वाग्भट्टाचार्य लिखते हैं कि 'तिमिरान्तकरं लोके द्वितीय इव भास्कर:' अर्थात् तिमिर रूप अन्धकार को नष्ट करने में यह अञ्जन सूर्य के समान है। इस अञ्जन से नेत्रविकार कटकर या दोष पतला होकर नष्ट हो जाता है और नेत्र निर्दोष बन जाते हैं।

८. नागार्जुनी वर्त्ति।

द्रव्य–हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक, मुलहठी, नीले थोथे का फूला, रसोंत, प्रपौण्डरीक (कमल गट्टे की गिरी), बायविडंग, लोध और ताम्रभस्म इन १४ औषधियों को समभाग लें।

विधि–सबको मिला तगर के फाण्ट में खरलकर बत्तियां बना लेवें। यह प्रयोग २००० वर्ष पहले नागार्जुन ने पटना शहर में बनाया था। *(र.का.)*

उपयोग–यह वर्ति तिमिररोग और जालों को दूर करती है। स्त्री के दूध में घिसकर लगाने से नया नेत्रपाक (आंखों का दुखना) अवश्य नष्ट हो जाता है। इसे पलाश (टेसू) के फूलों के स्वरस में घिसकर अञ्जन कराने से पिल्लरोग (नेत्र गीले गीले रहना), फूले और लाली का निवारण होता है। लोध के क्वाथ में घिस के इसका अञ्जन कराने से जल्दी उत्पन्न होने वाला नया तिमिर रोग निवृत्त होता है। इस वर्ति को बकरे के मूत्र में घिसकर नेत्र में लगा कर नेत्र को बन्द करा देवें। और थोड़ी देर बाद शान्ति से नेत्र खुलवायें तो नेत्र स्वच्छ होकर तिमिर रोग दूर हो जाता है।

इस नागार्जुनीवर्तिका प्रयोग आन्तरिक भी कराया जाता है। जीर्ण शीतपित्त, कोष्ठप्रदाह, कीटाणुओं से उत्पन्न अपचन और आमातिसार पर सफलतापूर्वक सेवन कराते रहते हैं। मात्रा एवं अनुपान निम्न प्रकार से है–

मात्रा–१ से २ रत्ती, जल मिले हुए नींबू रस अथवा तक्र के साथ देते हैं।

९. अधिमन्थहर योग।

(१) कड़वी जीरी ६ माशे से १ तोले को कूटके समान गुड़ मिलाकर खिलाके ऊपर से जल पिला देवें। थोड़े ही समय में मस्तिष्क में प्रस्वेद आ जाता है। फिर नेत्रों का दबाव, नेत्रशूल और मस्तिष्क शूल शान्त हो जाता है।

(२) पीपल वृक्ष पर होने वाले बांदे को जल के साथ पीस के पुल्टिस बना कर बांध देने से शिर:शूल और अधिमन्थ (आंखों में शूल चलना) दूर हो जाते हैं।

(३) निर्गुण्डी के पानों को जल में उबाल के पीसकर शिर पर बांध देने से अधिमन्थ और शिर वेदना निवृत्त होती है।

(४) षड्बिन्दु तैल, नारायण तैल या केशर मिला हुआ गोघृत सुंघाने से नेत्र की पीड़ा शान्त हो जाती है।

(५) संशोधन वटी (वमन आदि शोधन प्रकरणोक्त) खिलावें और देवदाली के फलों का रस या इसके सूखे फलों को पानी में भिगोकर अच्छी तरह पीस के निचोड़े हुए जल की २-२ बूंदें नाक में टपकावें; जलन होने पर घी सुंघावें। इससे भयंकर अधिमन्थ की पीड़ा भी शान्त हो जाती है।

१०. कण्डूहर अञ्जन।

विधि–शुद्ध एरण्ड तैल १ सेर को पीतल की कड़ाही में उबालें। उफाण आने पर नीले थोथे का चूर्ण ४ तोले डालें। फिर १५-२० मिनट उबालकर उतार लेवें और बोतल में भर लेवें।

उपयोग-इस तैल का प्रातःसायं अञ्जन करते रहने से आँखों की कण्डू दूर होती है। यह तैल नेत्र ज्योतिवर्द्धक, अभिष्यन्दहर और नेत्रकृमि नाशक है। इस तैल से नेत्र शीतल और तेजस्वी बनते हैं। बरौंनी (पलकों) के गिरे हुए बाल फिर से नये आ जाते हैं।

११. नेत्ररक्षक बिन्दु।

द्रव्य (प्रथम विधि)-वाष्पजल (या वर्षा का जल) ४ सेर, फिटकरी, यशद का फूला (जिंक ऑक्साइड), बोरिक एसिड, तीनों १॥-१॥ तोले और सेलखड़ी १ तोला लेवें।

विधि-सबको मिलाकर अमृतबान में भरें। २० दिन तक रोज काँच की शलाका से इसे दिन में २-३ बार चला देवें। फिर फिल्टर पेपर से छानकर शुद्ध गन्धक १॥ माशा मिलाकर एक सप्ताह सूर्य के ताप में रखें। फिर ४ औंस गुलाबजल मिलाकर छान लेवें।

(वैद्य श्री जेष्ठाराम निर्भयराम मणियार)

उपयोग-यह नेत्रबिन्दु नेत्र के समग्र रोगों पर लाभदायक है। दिन में २ बार नेत्र में बूंदे डालते रहने से अभिष्यन्द (आंख आना), नेत्र की लाली, कण्डू, दाह, अश्रु स्राव, प्रकाश की असहनशीलता और कुकूणक आदि रोग दूर होते हैं।

द्वितीय विधि-१ बोतल गुलाबजल या वाष्पजल में १॥ माशा कपूर डाल डाट लगाकर १ सप्ताह तक सूर्य के ताप में रख देवें। फिर उसमें ६ माशे कच्ची लाल फिटकरी तथा १॥ माशा नीला थोथा मिलाकर फिल्टर पेपर से छान लेवें।

(स्व. श्री पं. राजवैद्य रामचन्द्रजी शर्मा)

उपयोग-इस बिन्दु को दिन में २ बार नेत्र में डालते रहने से नेत्राभिष्यन्द, कुकूणक, मांसवृद्धि, नेत्रक्षत, कण्डू, नेत्रस्राव, शुक्र (फूला) आदि रोग दूर होते हैं।

सूचना-(१) मांसवृद्धि को दूर करने और दूषित घाव का शोधन करने के लिये नीला थोथा ३ माशा मिलाना चाहिये।

(२) यदि शुक्ल मण्डल पर क्षत हों तो नेत्रबिन्दु डालने के २-४ मिनट बाद गुलाबजल या त्रिफला के फाण्ट से नेत्र को धो लेना चाहिये। अन्यथा नीले थोथे के संयोग से शुक्लमण्डल की तेजी कम होती है और फिटकरी के हेतु से अधिक शुष्कता आती है।

१२. नेत्राभिष्यन्दहर योग।

(१) अमरूद की ताजी पत्ती २॥ तोले और २ रत्ती फिटकरी को मिला पीसकर पुल्टिस बना लेवें। फिर स्वच्छ पतले कपड़े की पट्टी के भीतर दो स्थानों पर इसको रखकर दोनों नेत्रों पर बांध देवें। पट्टी बहुत कसकर न बांधे, साथ ही अधिक ढीली भी न रखें। पट्टी रात्रि को बांधे और उसे सुबह खोल देवें। सुबह बांधें तो दोपहर को खोल डालें। इस तरह ३-४ बार पट्टी बांधने से नेत्र की भयंकर लाली भी दूर हो जाती है। *(श्री पं. विश्वनाथजी द्विवेदी आयुर्वेद शास्त्राचार्य)*

सूचना-इस औषध की पट्टी के उपयोग के साथ यदि नेत्रों में रसतंत्रसार प्रथम खण्डोक्त रसांजनादि लेप लगाते रहें तो प्रदाह बहुत जल्दी शान्त हो जाता है।

(२) नमक, सरसों का तैल और कांजी को मिलाके कांसी के बरतन में नीम के डण्डे से मर्दन करें। सब मिल जाने पर इसमें बकरी-का दूध मिलावें और निर्धूम गोबरी की अग्नि पर तपावें; निवाया रहने पर नेत्रों पर लेप करने से अभिष्यन्द, अधिमन्थ, नेत्रशूल, शोथ आदि विकार दूर होते हैं।

(३) १ माशा फिटकरी को २ तोले जल में मिलावें। फिर इसमें रूई के दो फोहे बनाकर भिगोवें। ५-१० मिनट बाद फोहे के दो हथेलियों के बीच दबाकर जल निचोड़ देवें और फिर पूड़ी के समान इस फोहे को घी में तलकर नेत्र पर बांध देने से नेत्र की लाली, दाह, शूल और वेदना दूर हो जाती है।

(४) २० तोले लाल फिटकरी को एक मिट्टी की खेलड़ी में डालकर अग्नि पर द्रव करें। पश्चात् इस द्रव के बीच में ३ माशा अफीम का चूर्ण डाल फिटकरी का फूला होकर भस्म बन जाये तब तक इसको अग्नि पर रखें। बाद में उतारकर बारीक पीस के चूर्ण कर लेवें। इनमें से थोड़ा थोड़ा गुलाब जल के साथ आँखों में अञ्जन करने से नेत्रों की लाली, शूल और वेदना आदि विकार सत्वर दूर हो जाते हैं।

(स्व. राजवैद्य पं. श्रीरामचन्द्रजी शर्मा)

१३. धान्यकावलेह।

द्रव्य-धनिये का मगज २४ तोले, चांदी के वर्क १ तोला, छोटी इलायची के दाने २ तोले और गुलकन्द ४० तोले लें।

विधि-धनिये को मूसल से कूटकर ऊपर से छिलके निकाल देवें और मगज मात्र लेवें। उस मगज में छोटी इलायची के दानों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर उसमें चांदी के वर्क मिलाकर खरल करें। पश्चात् गुलकंद मिला अच्छी तरह मसलकर अमृतबान में भर लेवें।

मात्रा-२ से ३ तोले, रात्रि को सोने के आध घण्टे पहले खिलावें।

उपयोग-यह अवलेह नेत्ररोगी के लिये अति हितकारक है। जिनके नेत्रों में लाली बनी रहती हो, या बार बार नेत्र आ जाते हों,

जल गिरता रहता हो या कुकूणक हो गये हों, उनको यह अवलेह दिया जाता है। इसके सेवन से आमविष नष्ट होता है, पचनक्रिया सुधरती है और उदरशुद्धि भी होती रहती है। फिर उष्णता शान्त होती है, नेत्र-ज्योति सबल बनती है तथा मस्तिष्क शान्त हो जाता है।

सूचना-मद्यपान, सिगरेट, बीड़ी आदि का धूम्रपान, सूर्य के ताप में अधिक भ्रमण, गरम गरम चाय, अधिक मिर्च और दाहक पदार्थों का सेवन, ये सब मस्तिष्क में उष्णता पहुँचाते हैं, इनका सेवन हो सके उतने परिमाण में बन्द करना चाहिये।

१४. हब्बे अयारिज।

द्रव्य-अयारिज फैंकरा (मस्तिष्क रोग के भीतर पाठ देखें) और निसोत की छाल ३॥-३॥ तोले, कालादाना, शुद्ध गारीकून (अर्थात् हल्का गारीकून देखकर तारकी चलनी में हल्के हाथ में घिसें और इसमें से जो तंतु ऊपर रहे हों, उनको न लेवें, नीचे जो आटा गिरता है उसे लेवें)। सौंप, रूमी, १॥-१॥ तोले और इन्द्रायण फल का गूदा १ तोला लेवें।

विधि-सबको मिला जल में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(स्व. वैद्यराज पं. श्री रामचन्द्रजी शर्मा)*

मात्रा-३ से ६ माशे, गोलियों को रात्रि में सोते समय १ बार में शहद में लपेटकर सौंफ के अर्क के साथ निगल लेवें। गोलियां अनेक हो जाती है अत: १० या २०-२० करके निगलनी चाहिये। फिर जैसी सुविधा हो, ले सकते हैं।

उपयोग-यह प्रयोग साम नेत्र विकार और ऊर्ध्वजत्रुगत शिरोरोगों में अति उपयोगी है। पित्त प्रकोप और मलावरोध को भी दूर करता है। नेत्रशूल (अधिमन्थ) बहुधा व्याधि साम होती है। उस समय इसे देने से उदरशुद्धि हो जाती है, तथा स्वेद आकर और अन्य प्रकार से मस्तिष्क और नेत्र में से द्रव पदार्थ का दबाव कम करा देता है। अधिमन्थ (चाहे आशुकारी हो या चिरकारी) में नेत्रान्तरिक दबाव को कम कराने के लिये यह विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है। हम इन गोलियों को खिलाने के पश्चात् दूसरे दिन से ६ माशे कलौंजी को १ तोला गुड़ में मिलाकर दिन में २ बार देते है, जिससे अनेकों का अधिमन्थज दबाव कम होकर उनके नेत्र बच गये हैं।

सूचना-यदि उदर में मल हो और रक्तदब्राववृद्धि दूर न हुई हो, तो ४-८ दिन तक या जब तक यह शान्त न हो तब तक रोग या रोगी के बलानुसार इन गोलियों का सेवन कराना चाहिये तथा भोजन हल्का (लाल मिर्च, अधिक लवण, मिठाई, राई सिरका आदि तीक्ष्ण पदार्थों से रहित सत्वरपचन हो ऐसा) देते रहना चाहिये।

यदि वृक्क विकार से नेत्रान्तर दबाव वृद्धि हुई हो, तो सारे शरीर में से स्वेद अधिक निकल जाये, ऐसा प्रबन्ध भी करना चाहिये।

१५. पोथकीहर लेप।

द्रव्य-रसोंत, लोध पठानी और अमलतास की फली का गूदा २०-२० तोला और अफीम ५ तोले लें।

विधि-पहले रसोंत, लोध और अमलतास को जल मिलाकर खूब घोटें। फिर अफीम मिलाकर घोट लेवें। एक जीव हो जाने पर कांसी के बरतन में भरकर एक रात्रि तक रहने देवें। प्रात:काल निकालकर खुले मुँह की बोतल या चीनी मिट्टी की बोतल में भर लेवें। *(पं. श्री नाहरसिंहजी आयुर्वेदाचार्य)*

उपयोग-जो रोहे बड़े हो गये हो, अनेक औषधोपचार से न मिटे हों, उनके लिये यह औषधि हितकारक है। पहले पलक को उलटकर रसकपूर के धावन से धो देवें। फिर कलमीसोरे की नोक से दानों को फोड़ दें और बोरिक धावन से धोकर साफ कर देवें। पश्चात् पलकों के ऊपर उपरोक्त लेप को निवायाकर लगा देवें। दो चार दिन तक लेप करते रहने से रोहों के विष का नाश हो जाता है। फिर पोथकीहर लेप को कुछ दिनों या महीनों तक आवश्यकतानुसार लगाते रहना चाहिये।

(५०) शिरोरोग।

१. शिरोरोगहर रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, चारों १-१ तोला, सुवर्णभस्म और दारचिकना ३-३ माशे लें।

विधि-सबको मिला कज्जलीकर भाँगरे के रस में ३ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियाँ बनाकर सूर्य के तेज ताप में सुखा लेवें। *(भै.र.)*

उपयोग-१ गोली प्रात:काल निगलकर ऊपर जलेबी, पेड़ा या मलाई मिश्री खिलावें। अथवा मिश्री मिला हुआ दूध पिलावें। पुनः एक दिन छोड़कर १ गोली देवें। इस तरह ३-४ या अधिक गोलियाँ देने से सब प्रकार के भयंकर शिर:शूल नष्ट हो जाते हैं। जब शिर:शूल नष्ट हो जाये तब भी कुछ दिनों तक इस रसायन का सेवन करने पर पुनः शूलोत्पत्ति होने की संभावना नहीं रहती।

२. शिर:शूलादिवज्र रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और निसोत ४-४ तोले, शुद्ध गूगल १६ तोले, मिलित त्रिफला चूर्ण ८ तोले, कूठ, मुलहठी, पीपल, सोंठ, गोखरू, बायविडंग ये ६ औषधियां १-१ तोला तथा दशमूल (मिला हुआ) १० तोले लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें, फिर भस्म मिलावें, गूगल को घी में कूटकर तथा काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करके मिलावें। पश्चात् दशमूल क्वाथ के साथ ३ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। *(भै.र.)*

वक्तव्य-श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य के मतानुसार इस रसायन को भाँगरे के रस की ३ भावनायें भी दी जायें, तो गुण अधिक करेगा।

मात्रा-१ से २ गोली; दिन में दो या तीन बार; बकरी के दूध, गौ के दूध, शहद या पथ्यादि क्वाथ के साथ देवें।

उपयोग-यह शिर:शूलादिवज्र रस वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और त्रिदोषज शिरदर्द को तत्काल इस तरह नष्ट करता है जिस तरह वज्र छोड़ने से असुरों का तत्काल नाश हुआ था। यह एक दोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज; सब प्रकार के शिर:शूल का शमन करता है।

तीव्र शिर:शूल पर आधा रत्ती गांजे को गुड़ या मुनक्का में रख निगल जाने से वेदना शान्त हो जाती है। फिर इस रस का प्रयोग करने से मूल हेतु को यह नष्ट कर देता है, जिससे पुन: शिर:शूल नहीं उठता। तीव्र शूल पर शिर: शूलादिवज्र रस को श्रृङ्गभस्म और गोदन्ती भस्म के साथ मिलाकर देना विशेष हितकारक है। यदि कब्ज हो तो पथ्यादि क्वाथ का सेवन भी करना चाहिए; मस्तिष्क में शुष्कता हो और बार-बार शूल चलता हो, तो केशर और मिश्री को निवाये घी में मिलाकर नस्य भी कराना चाहिये। दोनों नासापुटों में ४-४ बूँदें विशुद्ध घी की डालनी चाहिये।

३. मिहिरोदय रस।

द्रव्य-लोहभस्म, अभ्रक भस्म, सुवर्णभस्म, प्रवाल भस्म और राजावर्त भस्म ये ५ औषधियाँ १-१ तोला तथा रससिन्दूर २ तोले लें।

विधि-सबको मिला एरण्डमूल और जटामांसी के क्वाथ में ३-३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। (आ.भि.)

मात्रा-१-१ गोली, दिन में दो या तीन बार, पथ्यादि क्वाथ या हरड़ के क्वाथ या रोगानुसार अनुपान के साथ देने से शिर:शूल का निवारण हो जाता है।

विविध शिरदर्द पर विभिन्न अनुपान-

सूर्य के तापजन्य शिरदर्द पर गुलाब और केवड़ा का शर्बत।

अधिक मानसिक श्रम से उत्पन्न शिरदर्द पर च्यवनप्राशावलेह या धमासा का क्वाथ।

अपस्मार, हिस्टीरिया, कम्पजनित शिरदर्द पर कस्तूरी और शहद या जटामांसी का अर्क।

मस्तिष्क में कृमिजन्य, शिरदर्द पर तृणकांतमणि (कहेरवा) पिष्टी।

गर्भाशय विकार जनित शिरदर्द पर शर्बत वनप्सा।

जीर्ण अपचनजनित शिरदर्द पर शहद पीपल।

नये अपचन से उत्पन्न शिरदर्द पर सोंठ और लवण मिश्रित हरड़ का क्वाथ।

सूर्यावर्त्त और अर्धावभेदक शिरदर्द पर मक्खन मिश्री, पेड़ा या जलेबी आदि।

तीव्र शिरदर्द पर आध रत्ती गांजा और १ माशा गुड़ या मिश्री।

उपदंशज शिरदर्द पर गन्धक रसायन या चोपचिन्यादि चूर्ण।

शुक्रक्षयज या रजोनाशज शिरदर्द पर वङ्गभस्म और शतावर्य्यादि चूर्ण।

वातजन्य मृदुवेदना होने पर दशमूलारिष्ट।

ज्वरसह शिरदर्द पर रक्त चन्दन, धनियां, मोथा, गिलोय और सोंठ का क्वाथ।

मस्तिष्क में रक्तवृद्धि जनित शिरदर्द पर विरेचन कराना चाहिये।

उपयोग-**यह रसायन अर्धावभेदक, अनन्तवात, सूर्यावर्त्त, एकदोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज साध्य और असाध्य सब प्रकार के शिरोरोगों** को नि:संदेह दूर करता है, वातकेन्द्र और वातवाहिनियां आदि वातसंस्थान, पित्तविकार, रक्ताधिक्य, रक्त की न्यूनता, कफप्रकोप **आदि विविध** विकार से उत्पन्न शूलरोग और उपद्रव या लक्षण रूप से उत्पन्न शिरदर्द को नष्ट करने में यह उपकारक है।

वक्तव्य-शिरदर्द में तीव्र और मन्द, ऐसे दो भेद हैं। अनेक बार यह केवल मानसिक परिश्रम या क्रोध आदि जन्य **मानसिक आघात** के हेतु से उत्पन्न होजाता है। इसके अतिरिक्त रक्त में से सेन्द्रिय विषवृद्धि या शुद्ध रक्त में दूषित रक्त मिल जाना, रुधिर की **न्यूनता, वातरक्त,** मधुमेह, विषमज्वर, उपदंश, सूर्य के ताप आदि का सेवन, तमाखू, शराब, सीसा आदि के विष का रक्त में प्रवेश, मृगी, **हिस्टीरिया, कम्प** आदिवातविकार, नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्त आदि की पीड़ा से प्रतिफलित पीड़ा, अजीर्णजनित, गर्भाशय आदि जननेन्द्रिय की **वेदनाजनित तथा** मस्तिष्क में विद्रधि, व्रण, प्रदाह आदि स्थानिक विकार इत्यादि अनेक हेतु जनित शिरदर्द हो जाता है।

अर्धावभेदक (Migraine) होने पर आधे भाग में स्पन्दनशील वेदना, अपचन, कोष्ठबद्धता और विषप्रकोप में भाररूप **मृदु भाव से वेदना**, वातवहनाड़ियों की शक्ति का क्षय (Neurasthenia) होने पर दबाव या बांधकर निचोड़ने के सदृश पीड़ा, **मस्तिष्क में मलात्पत्ति या**

रक्त की न्यूनता होने पर जलने के समान दर्द, हिस्टीरिया, मृगी और वातनाड़ियों के विविध विकार (Neurosis) में शूल चुभाने के सदृश वेदना होती है।

स्त्रियों के बीजाशय के विकारजनित वेदना बहुधा सम्मुख कपाल में मन्द मन्द होती है।

मस्तिष्क में वेदना होने पर कभी हाथ पैर आदि शीतल और मस्तिष्क उष्ण हो जाता है, क्वाचित् इससे विपरीत होता है। किसी रोगी की नाड़ी तेज किसी की मन्द, सामान्यत: क्षुधानाश होना, किन्तु क्वाचित् क्षुधावृद्धि और भोजन कर लेने पर शिरदर्द का शमन हो जाना, कभी मूत्र के परिमाण की वृद्धि, कभी ह्रास, ऐसे लक्षण होते हैं। यदि कर्ण, नासिका, नेत्र, दाँत आदि की तीव्र पीड़ा से शिरदर्द होता है तो मूल कारण को दूर किये बिना सच्ची शान्ति नहीं मिलती।

कान, नाक या नेत्र में से कभी पूय का प्रवेश मस्तिष्क में होता है, तब भयंकर शिर:शूल होता है, वह पीड़ा सतत बनी रहती है। रोगी को निद्रा भी नहीं आ सकती। ऐसे समय पर कर्णपाक हो तो कान के चारों ओर या पीछे जहाँ पीड़ा हो वहां पर गरम जल से २-३ अहोरात्र सेक करना पड़ता है। इस तरह नाक के विकार से शिरदर्द उत्पन्न हुआ हो, तो दोनों नासारन्ध्रों में निवाया षड्बिन्दु तैल ६-६ घण्टे पर २-३ बार डालना चाहिये। और कपाल पर शिर:शूलान्तक बाम की मालिश करानी चाहिये। इस प्रकार बाह्य उपचार के साथ शिरोरोगहर रस या इस रस का सेवन चन्दनादि कषाय के साथ कराने से सत्वर लाभ पहुँचता है।

यदि मूल हेतु नेत्रस्थ पूय हो, तो नेत्रों को त्रिफला जल से धोकर, रक्त नेत्राञ्जन और बबूलादि स्वरस का अञ्जन करना चाहिये और साथ साथ इस रस का सेवन कराने से मस्तिष्कगत विष निवृत्त होता है और मस्तिष्क का संरक्षण होता है। एवं दांत या दाढ़ के शूल से मस्तिष्क पीड़ा होती हो तो दन्तदोषहर मञ्जन के उपचार के साथ मिहिरोदय रस का सेवन कराने से मस्तिष्कगत विषविकार और मस्तिष्क की निर्बलता सरलता से दूर होती है।

ऊर्ध्वजत्रुगत अवयव या इन्द्रियों के तीव्र विकार कारणों से शीत लगना, सेन्द्रिय विषप्रकोप, अपचन, सूर्य का ताप, मस्तिष्क का अधिक श्रम, जागरण या हिस्टीरिया जनित शिरदर्द हो, तो इस रस का उपयोग अधिक होता है। वातप्रकोपज विकार में शामक असर पहुँचकर तीव्रता को दबा और वेग को कम कराकर शिरदर्द को शान्त कर देना, यह गुण इस औषधि में निहित है। यह रसायन वातकेन्द्र और वातनाड़ियों की शिथिलता, रक्त की न्यूनता, मस्तिष्क की उष्णता, सेन्द्रिय विष प्रकोप आदि को दूर करता है। इसी हेतु से अर्धावभेदक, अनन्तवात, सूर्यावर्त्त, शंखवात आदि शिरोवेदनाओं में इसके सेवन से लाभ होता है। इस रस के सेवन के साथ केशर और मिश्री को गोघृत (४-८ बूंदें निवाये) में मिलाकर नस्य देने से लाभ सत्वर पहुँचता है।

प्रमेहजन्य शिरदर्द हो, तो सफेद चन्दन, रक्त चन्दन, खस, मुनक्का, गिलाय, मुलहठी और आंवलों का क्वाथ अनुपान रूप से देना चाहिये। विविध प्रमेहों में विशेषत: रक्त में विष संगृहीत होता है और मस्तिष्क-केन्द्र दूषित होता है, तथा पचनेन्द्रिय संस्थान के कार्य में विकृति होती है। इन सब स्थानों पर यह लाभ पहुंचाकर तथा रक्त प्रसादन करके शिरदर्द को नष्ट कर देता है।

मस्तिष्क में मलसंग्रह व मूत्रविषजन्य विकृति और मस्तिष्क की निर्बलता पर चन्दनादि क्वाथ अनुपान रूप से देने से भी लाभ सत्वर होता है।

विवेचन-इस रसायन मे मिली हुई लोहभस्म रक्त और रक्तभिसरण संस्थान पर लाभ पहुँचाती है और पित्त कफज प्रकोप का निवारण करती है। अभ्रक भस्म वातसंस्थान विकृति और मांस की शिथिलता पर अधिक प्रभावशाली है। यह अपस्मार, उन्माद, मानसिक निर्बलता आदि से उत्पन्न विकारों को दूर करती है। सुवर्णभस्म सेन्द्रिय विष या इतर विष आदि से रक्त दूषित होने पर रक्तप्रसादन करके मस्तिष्क पर शामक असर पहुँचाकर वेदना का निवारण करती है। प्रवाल और राजावर्त उष्णता को शान्त करते हैं, विष को दूर करते हैं और मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाते हैं। रससिंदूर कीटाणुनाशक , कफघ्न और उत्तेजक है। एरण्डमूल और जटामांसी वेदना शामक है।

वक्तव्य-एक प्रकार का सूर्यावर्त मलेरिया के रोगाणुओं से उत्पन्न होता है और यह भी सूर्य चढ़ने पर बढ़ता है और घटने पर घटता है। इसको स्थानीय ज्वर समझना चाहिये। इसमें घृतयुक्त मिष्ठान्न पदार्थ जलेबी आदि बृहंण चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि इससे रोग बढ़ जाता है। अत: ऐसे रोगी को २ रत्ती क्विनाइन रात्रि में सोते समय और २ रत्ती प्रात:काल सूर्योदय से पहले देवें। इसी भांति इसे रोगारम्भ से २ घण्टे पूर्व देवें। इस प्रकार ३ मात्रा लेने पर शिरदर्द एक दिन में ही रुक जाता है। कदाचित् एक दिन में न रुके, तो इसी भांति दूसरे दिन देने से निश्चय यह रोग नष्ट हो जाता है। यदि उदरशुद्धि नहीं होगी तो दवा का असर भी पूर्णतया न होगा। अत: कोष्ठशुद्धि के लिये त्रिफला चूर्ण अथवा स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण की १-२ मात्रा ले लेनी चाहिये। *(स्व. श्री वैद्यराज पं. रामचन्द्रजी)*

४. अर्कपत्र योग।

द्रव्य व विधि-आक के एक नये निकले हुए अंकुर को ६ माशे गुड़ के भीतर रखकर गोली बना लेवें। फिर सूर्योदय के २ घण्टे पहले रोगी को निगलवा देने से (न निगल सके तो चबा लेने से) सूर्यावर्त्त (सूर्योदय होने पर प्रारम्भ होने वाला शिरदर्द) एक ही दिन में दूर हो जाता है। यदि शिरदर्द कुछ शेष रह गया हो, तो दूसरे दिन फिर एक गोली खिला देवें। आवश्यकता पर तीसरे दिन भी दे सकते

हैं।अगर नई कोपलें न मिले तो, अर्क दुग्ध की एक या दो बिन्दु इसी भांति गुड़ के साथ दे दें।

सूचना-गुड़ को कम ज्यादा कर सकते हैं। गुड़ अच्छी तरह लिपट सके उतना होना चाहिये।

५. सिद्धामृत रस।

द्रव्य व विधि-फिटकरी का फूला ३ भाग और सोनागेरू एक भाग मिलाकर खरल कर लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ माशा, प्रातःकाल, गरमकर ठण्डे किये हुए गोदुग्ध के साथ देवें।

उपयोग-इस औषध के सेवन से शिरोभ्रम (चक्कर आना), शिरोरोग, अम्लपित्त और पित्त प्रकोपज समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

सूचना-इस रस के सेवनकाल में पित्तवर्धक पदार्थ, खटाई, लालमिर्च तैल, शराब, धूम्रपान आदि का त्याग कर देना चाहिये। अग्नि और सूर्य के ताप का सेवन भी नहीं करना चाहिये।

६. पथ्यादि क्वाथ।

विधि-हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, गिलोय, चिरायता और नीम की अन्तर छाल इन ७ द्रव्यों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। *(यो.र.)*

मात्रा-दो दो तोले का क्वाथ कर ६-६ माशे गुड़ मिलाकर दिन में २ या ३ बार दें।

उपयोग-यह क्वाथ विविध प्रकार के आम और मलावरोध सह **शिरःशूल, भ्रू, शंख, कर्ण और नेत्रगत शूल और अर्धावभेदक को तत्काल दूर करता है।**

यह क्वाथ दीपन, पाचन, शूलहर और ज्वरघ्न है। यह क्वाथ अकेला या रौप्यभस्म अथवा गोदंती भस्म और विविध रसों के साथ अनुपान रूप से व्यवहृत होता है। सामान्य रूप से **गोदन्ती भस्म १ माशा और १ माशा मिश्री के साथ तीव्र विकार में दिया जाता है।**

सूचना-यह पथ्यादि क्वाथ जयपुर जिले और बीकानेर जिले में विषम ज्वर और जीर्ण ज्वर पर विशेष प्रयुक्त होता है। पित्तप्रकृति वालों को तथा सगर्भा स्त्रियों को अनेक बार क्विनाइन आदि तीव्र औषधियों का सेवन नहीं कराया जाता, उनको सौम्य औषधि दी जाती है। एवं क्विनाइन देने से जिनको ज्वर विशेष प्रकपित हुआ हो, नाक से रक्तस्राव: **मूत्रावरोध और बधिरता आदि उपद्रव उपस्थित हुए हों, उनको यह पथ्यादि क्वाथ आशीर्वाद के समान उपकारक होता है।** इसके सेवन से २-४ दिन में ही उपद्रवों सह ज्वर निवृत्त हो जाता है। इसका उपयोग सफलतापूर्वक सैकड़ों रोगियों पर किया है।

इनके अतिरिक्त अर्धावभेदक, सूर्यावर्त आदि शिरोरोगों पर भी यह अच्छा लाभ पहुँचाता है। **पचनसंस्थान में विकृति के कारण जब शिरदर्द होता रहता हो, तब यह क्वाथ आशीर्वाद के समान सिद्ध माना गया है।**

७. चन्दनादि कषाय।

द्रव्य-श्वेत चंदन, रक्त चंदन, मूर्वा, काली निसोथ, सफेद निसोथ, हल्दी, दारुहल्दी, लाख, वंशलोचन, सोनागेरू, जीवंती, शतावर, असगंध, बच, पीपल, काकोली, जीवक और ऋषभक इन १८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा-२-२ तोले का क्वाथ बनाके छान कर पिलावें।

उपयोग-इस कषाय का उपयोग अकेला और अनुपान रूप से विविध प्रकार के शिरदर्द पर होता है। जब कफ, आम, विष या पूय का प्रवेश मस्तिष्क में होता है, तब इस कषाय का उपयोग विशेष हितावह है।

एस्प्रिन आदि विदेशी तीव्र औषधियाँ लेकर हारे हुए अनेक रोगियों को इस सामान्य औषधि से अच्छा लाभ होता है। **यह अति सफल औषधि है।**

८. वह्निभास्कर रस।

द्रव्य-सुवर्णभस्म, अभ्रक भस्म, वैक्रांत भस्म और रजत भस्म, ये चारों ६-६ माशे, लौह भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सुवर्णमाक्षिक भस्म २-२ तोले लें।

विधि-पारद गन्धक की कज्जली कर फिर भस्में मिला, लाल चित्रक और ब्राह्मी के क्वाथ की ७-७ भावनाएँ देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। (र.यो.सा.)

मात्रा-१ से २ गोली; दिन में २ बार; गोखरू, काली अनन्तमूल और छोटी इलायची के फाण्ट के साथ देवें।

उपयोग-इस रस का सेवन शीर्षाम्बु रोग की प्रथमवास्था में लाभ पहुँचा देता है। यह रस शीर्षाम्बु रोग के समान मस्तिष्क और मस्तिष्क आवरण के अन्य रोगों को भी जैसे अग्नि घास को जलाती है, **उस तरह नष्ट कर देता है।**

सूचना-यदि इस रस के २१ दिन के सेवन से **मस्तिष्कावरण में सञ्चित रस का शोषण न होने लगे तो** शस्त्र चिकित्सा **द्वारा** जल को निकाल लेना चाहिये।

कभी कभी शीतल वायु, प्रखर ताप या कीटाणु विष आदि से मस्तिष्कगत वातनाडी केन्द्र में विकृति हो जाती है या वातनाडी प्रदाह हो जाता है। फिर रोगी को धनुर्वात या पक्षाघात के प्राथमिक असर सदृश चिह्न (signs) प्रतीत होते हैं और कम्प होने लगता है। उस अवस्था में इस रस का सेवन कराने पर प्रदाह दूर होकर सर्व उपद्रव शमन होते हैं। यदि उक्त लक्षणों के साथ ज्वर १०१ डिग्री से अधिक हो, तो लक्ष्मीनारायण रस का प्रयोग करना चाहिये। फिर ज्वर निवृत्त होने पर वातप्रकोप हों, तो यह रस देना चाहिये।

९. शिर:शूलहर तैल।

द्रव्य-कपूर, नीलगिरी तैल, नींबू का तैल, लेवण्डर का तैल और सन्तरे का तैल १-१ औंस और सरसों का तैल (मूर्च्छित किया हुआ) १० औंस लें।

विधि-पहले सरसों के तैल को अलग रखें। शेष तैलों मे कपूर मिला देवें। कपूर मिल जाने पर सरसों का तैल डालकर बोतल को अच्छी तरह हिला लेवें।

सरसों के तैल मूर्च्छन विधि रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खंड में तैल प्रकरण के आरम्भ में देखें।

उपयोग-शिर:शूल और नेत्रशूल चलने पर रोगी के नाक में इस तैल की दो दो बूंदे डाल दें और जोर से श्वास लेने को कहें। तैल डालने के लिये तकिये पर मस्तक को झुका दें। जिससे तैल मस्तिष्क में सरलता से पहुँच जाये। दर्द अधिक हो तो प्रात:सायं दिन में दो बार तैल डालें। १०-१५ दिन तक तैल डालने से वर्षों का शूल निवृत्त हो जाता है।

किसी के मस्तिष्क में कृमि पड़ जाते हैं फिर भयंकर दर्द होता है। नासिका से रक्त गिरता रहता है। ऐसा हो, तो तृणकान्तमणि पिष्टी (कहरवा पिष्टी) भी ४-४ रत्ती दिन में ३ बार जल के साथ देते रहना चाहिये। जिससे नासिका से सब कीड़े निकल कर ३-४ दिन में ही मस्तिष्क हलका हो जाता है।

१०. मस्तिष्क बलवर्द्धक चूर्ण।

द्रव्य-शुद्ध कौंच ४० तोले, शुद्ध सफेद गुञ्जा १० तोले, * वंशलोचन, बिहदाने, रूमी मस्तंगी और गिलोय सत्व ५-५ तोले, सफेद मूसली, शतावर, तालमखाना, बड़े गोखरू, बादाम की गिरी (छिल्के रहित) और पिस्ते (भी छिल्के रहित), २॥-२॥ तोले, पीपल, पीपलामूल, छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, जायफल और जावित्री १-१ तोला, अभ्रक भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल पिष्टी, त्रिवंग भस्म और केशर ६-६ माशे लेवें।

विधि-काष्ठौषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें, केशर को अलग पीस लेवें। फिर चूर्ण, केशर और भस्म आदि मिलाकर खरल कर लेवें। केशर सबके बाद में मिलाकर शीशी में भर लेवें।

मात्रा-२ से ३ माशे तक। दिन में २ बार, सुबह रात्रि को समान घी-शक्कर मिलाकर खिलावें। ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग-यह चूर्ण मगज की शक्ति को बढ़ा देता है। अधिक मानसिक परिश्रम, विद्याध्ययन अथवा निर्बलता से मस्तिष्क में दर्द रहता हो, तो उसे दूर करता है, स्मरणशक्ति बढ़ाता है, शरीर को पुष्ट करता है और स्फूर्ति लाता है। विद्यार्थियों और मस्तिष्क द्वारा श्रम करने वालों के लिये अति हितावह है।

११. हरितक्यादि चाटण।

द्रव्य-बड़ी हरड़, छोटी हरड़, बीज निकाली हुई काली मुनक्का, सनाय, मजीठ, मिश्री, घी और शहद, इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-पहले मुनक्का को पीस, मिश्री और शहद मिला लेवें। फिर शेष औषधियों के कपड़छन चूर्ण को घी के साथ मिला मुनक्का के कल्क के साथ खरलकर लेवें।

मात्रा-२ से ४ माशे तक, प्रात: रात्रि को देते रहें। अनुपान निवाया दूध या पानी।

उपयोग-यह चाटण मस्तिष्क शूल, मस्तिष्क में भारीपन, मस्क्ि में उष्णता, गर्मी के हेतु से होने वाली फुन्सियां और फोड़े विस्फोटक, मलावरोध आदि में हितावह है। शिरदर्द में कब्ज को दूर करने और मस्तिष्क को शान्त बनाने के लिये यह चाटण निर्भयता से छोटे बड़े सबों को दिया जाता है।

१२. शिरोऽर्त्तिहर नस्य।

(१) सोंठ, कालीमिर्च, पीपल ६-६ माशे, बच्छनाभ ३ माशे और पीपल की छाल १॥ तोले लें। सबको मिलाकर अच्छी तरह खरल

+ कौंच के बीजों को ४ गुने जल और ४ गुने दूध में उबालें। दूध रबड़ी जैसा हो जाने पर कौंच को निकाल लेवें। फिर छिल्के निकाल बीजों को धोकर सुखा देवें। दूध का खोवा बना लेने पर वह भी बलवर्द्धक होता है।

* चिरमी को ३ घण्टे तक दोलायन्त्र में दूध में उबाल लेवें। फिर धोकर ऊपर से छिल्के और भीतर से जिब्भी निकालकर सुखा देवें।

करके मिलाकर छान लेवें। इसमें से एक एक रत्ती चूर्ण दोनों नासपुटों द्वारा सुंघाने से शिरदर्द (कपाल में वेदना होना) तुरन्त बन्द हो जाता है। *(रं.चं.)*

यदि पित्ताधिक्य से शिर:शूल हो, तो उपरोक्त नस्य में से बच्छनाभ के स्थान पर गुलबनप्शा, छिल्केसह छोटी इलाचयी और कपूर मिला देवें। *(संशोधक)*

(२) जमालगोटा जिब्भी छिल्के रहित २० तोले और कपूर ४० तोले मिलाकर खरल करें। फिर बोतल में भर बालुकायुक्त पाताल यंत्र से तैल निकाल लेवें। इस तैल को अच्छे डाट वाली शीशी में भर लेवें। बालुकायुक्त पाताल यन्त्र की विधि रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड के परिभाषा प्रकरण में लिखी है। इस शीशी के डाट को हटाकर सुंघाने पर शिरदर्द तत्काल दूर हो जाता है।

(३) छोटी पीपल और सैंधानमक को समभाग आक के दूध के साथ ३ दिन तक खरलकर सुखा चूर्ण बना लेवें। इसमें से १/४ या १/६ रत्ती दोनों नासाछिद्रों से सुंघाने से ५-१० छींकें आकर और कफ निकलकर शिरदर्द शान्त हो जाता है।

सूचना-बहुत छींके आने से वेदना हो जाये तो घृत सुंघावें।

१३. शिरोरोगहर योग।

(१) जमालगोटे के बीजों को पत्थर पर जल के साथ घिस फिर सलाई से कपाल पर भ्रूभाग के ऊपर दर्द वाले स्थान पर एक सीधी रेखा रूप से लगावें। ५-७ मिनट में शिरदर्द शान्त होने पर उसे पोंछकर घी की अगुंली लगा लें।

(२) कालीमिर्च को खूब बारीक पीस गुड़ मिला मटर के सदृश गोलियां बनाकर २ से ४ गोली दिन में ३ बार निवाये जल के साथ देने से शिरदर्द, कण्ठशोष, मुँह का बेस्वादुपन, हाथ-पैरों की नसें खिंचना, अपचन, उदरवात, उदरशूल, मस्तिष्क का भारीपन और प्रतिश्याय आदि दूर होते हैं।

१४. अर्धावभेदकहर योग।

विधि-उस्तखद्दूस ६ माशे, धनियां ३ माशे, कालीमिर्च २ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती और अभ्रक भस्म १ रत्ती, इन सबको अच्छी तरह मिला लें।

मात्रा-उपरोक्त १-१ मात्रा प्रात: मध्याह्न और सांयकाल को दिन में ३ बार दूध के साथ देने से एक ही दिन में आधा शीशी रोग दूर हो जाता है।

१५. अर्धावभेदकहर नस्य।

बंदाल (देवदाली) के फल के भीतर की जाली १ माशे को १ तोला जल में रात्रि को भिगोवें। प्रात:काल मसलकर छान लेवें। इस जल में से ५-७ बूंद जिधर शिरदर्द हो उस ओर के नासापुट में डालें। बून्दें डालने के लिये रोगी को सीधा लेटा देवें। शिर को नीचा और नासिका को ऊँची रखें, जिससे जल सरलतापूर्वक मस्तिष्क की ओर जा सके।

इसके सुंघाने से मस्तिष्क और नासिका में भारीपन मालूम पड़ता है, किन्तु थोड़ी ही देर में नाक से जल का बहना प्रारम्भ हो जाता है, धीरे-धीरे बहुत सा तरल कफ निकल जाता है। परिणाम में आधा शीशी दूर हो जाती है।

सूचना-यदि अधिक जल या तेज जल का नस्य दिया जायेगा, तो जलस्राव अधिक होगा और नासिका की श्लैष्मिक कला में प्रदाह हो जायेगा। ऐसा हो जाये तो गोघृत का नस्य कराना चाहिये।

क्वचित् किसी को रक्तस्राव होने लगता है और चक्कर आने लगते हैं। ऐसा होने पर गोघृत का नस्य देकर रोगी को लिटा देना चाहिये। आधे घण्टे बाद गरम करके ठण्डा किया हुआ मिश्री मिला दूध पिलाना चाहिये।

(२) नकछिलकनी का चूर्ण या कायफल का चूर्ण आध रत्ती सुंघाने से छींकें आकर दोष बाहर निकल जाता है और आधा शीशी मिट जाती है।

(३) भिगोये हुये चूने और नौसादर को मसलकर सुंघाने से आधा शीशी रोग का शमन हो जाता है।

(४) जिस ओर शिर दुखता हो, उसके दूसरी ओर के नाक में अगस्त्य के पानों के रस की थोड़ी बूंदें डालें। पीड़ा अधिक होगी तो दूसरे दिन दर्द कम होगा। तीसरे दिन दर्द सदा के लिये दूर हो जायेगा।

(५) मस्तिष्क में पूय और कृमि होने पर शिरदर्द अथवा आधा शीशी की पीड़ा हो रही हो, तो सरसों का तैल ७ भाग और तार्पिन तैल १ भाग मिला ४-६ बूंदें नाक में ड्रापर से डालकर मुंह को नीचा कर देने पर नाक में से कृमि गिरने लगाते हैं, पूय और रक्त भी आता है। सब निकल जाने पर शिरदर्द, कपाल पर शोथ, श्वासोच्छ्स में दुर्गन्ध और ज्वर आदि लक्षण दूर हो जाते हैं।

सूचना-रोगी को तृणकान्तमणि पिष्टी या कैशोर गुग्गुलु का १-२ मास तक सेवन कराना चाहिये।

(६) रीठे के छिलकों को रात्रि में जल में भिगो देवें। फिर प्रात:काल मसल छानकर ऊपर कही हुई विधि से जल की ५-७ बूंदें नासिका में डालने से दर्द का निवारण हो जाता है। इस औषधि से कफ आकर्षित होकर बाहर निकल जाता है। प्रथम योग के समान इस

योग में भी सावधानी की आवश्यकता है। अन्यथा श्लैष्मिककला में प्रदाह हो जाता है।

(७) श्वासकुठार रस और प्रवाल पिष्टी समभाग मिलाकर दिन में २-३ बार नस्य कराने से सूर्यावर्त और अर्धावभेदक दूर होते हैं।

१६. अयारिज फैंकरा।

विधि-जटामांसी, दालचीनी, अगर, हब्बेबिल्सां, तज (दालचीनी), रूमीमस्तंगी, नेत्रबाला, केशर और एलुवा, इन ९ औषधियों को समभाग मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। *(कराबादीन जुलाई)*

मात्रा-१॥से ३ माशे, दिन में २ बार या रात्रि को ३ माशे जल के साथ देवें।

उपयोग-यह चूर्ण मस्तिष्कगत (ऊर्ध्व जत्रुगत सामदोष) विकार को शमन या उसे अधोगत करने में अच्छा उपयोगी है। विशेषकर मस्तिष्क में कफ या द्रववृद्धि हो, तो उसका कर्षण कर बाहर निकालता है और लीन द्रव को जला डालता है। मस्तिष्क पीड़ा, अर्धावभेद, ऊर्ध्ववात, अर्दित, बांयटे आना, जिह्वा का लड़खड़ाना आदि रोगों पर लाभदायक है।

इसका उपयोग स्वतंत्र रूप से अथवा विशेषकर हब्बे अयारिज या अन्य शिरोरोगों और उन्माद आदि रोगों की औषधियों के मिश्रणों में आता है। जो सामरोगों को भी शमन करता है।

१७. विश्वविलास तैल।

द्रव्य-काले तिलों को तैल ७ सेर, तथा नख, खस, छरीला, सफेद चन्दन, तगर, अगर और जटामांसी ये औषधियां ५-५ तोले लेवें।

विधि-पहले तैल को खूब गरम करें। झाग रहित होने पर उतार कर २-२॥ तोले सांभरनमक डाल देवें, शीतल होने पर गाद नीचे जम जायेगी और ऊपर का तैल स्वच्छ जल सदृश पतला होने पर नितारकर अमृतबान या टीन के बर्तन में भरकर उपरोक्त वस्तुओं का जौकूट चूर्ण डाल दें। पश्चात् मुखमुद्रा करके ७ रोज तक धूप में रखें। रोज २-४ बार अमृतबान को हिला लेवें। यदि सुगन्ध और रंग मिलाना हों, तो आठवें दिन तैल को निकालकर छान लें। बाद में हरा रंग (Oil Colour/Green) १ तोला तथा विशेष सुगन्ध के लिये जैसमिन (Jasmine) १/२ औंस मिलाकर बोतलों में भर लेवें।

उपयोग-यह तैल मस्तिष्क पर मर्दन करने के लिये अति हितकारक है। इस तैल में चिपचिपापन या गाढ़ापन न रहने से त्वचा के छिद्रो और बालों में जल्दी प्रवेश कर जाता है। यह विद्यार्थी वर्ग और मस्तिष्क से श्रम लेने वालों के लिये अति हितावह है। यह मस्तिष्क की उष्णता को शान्तकर मगज को सबल और मन को प्रसन्न बनाता है। कितनी ही स्त्रियों के बाल उष्णता के हेतु से गिरते रहते है और अधिक नहीं बढ़ते एवं मुख निस्तेज रहता है; ऐसी अनेक स्त्रियों को इस तैल के उपयोग से लाभ हो गया है। इसका उपयोग नित्य करते रहने से मगज सबल रहता है, असमय पर बाल सफेद नहीं होते तथा मुख्मण्डल तेजस्वी रहता है। इसकी सारे शरीर पर मालिश करने से त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है। इस तैल का अनेक वर्षों से प्रयोग किया जा रहा है।

१८. ब्राह्मी आंवला केश तैल।

दव्य-सूखे आंवले आध सेर तथा सूखी ब्राह्मी १ पाव लेकर २० सेर जल में रात को भिगों दें और सुबह चूल्हे पर चढ़ाकर पकावें। जब जल सूखकर चौथाई अर्थात् ४-५ सेर रह जाये तो उतार लें और ठण्डा होने पर मसलकर छान लें। ताजा आंवले उत्तम रहते हैं, यदि आंवले ताजा मिल जाये तो ४-५ सेर लेकर कूट लें और उनमें थोड़ा जल डालकर रस निकाल लें, जो कि ४-५ सेर हो जाना चाहिये। इसी तरह से हरी ब्राह्मी भी एक सेर लेकर उसको पानी का छींटा देकर कूट लें और एक सेर निकाल लें। इसमें काली तिल्ली का तैल १ सेर, नीबूं के हरे पत्ते १ पाव को कूटकर तथा निम्न औषधियां जौकूट करके मिला दें। औषधियां निम्नलिखित हैं-

प्रक्षेप-बड़ी इलायची, छरीला, तालीसपत्र, जटामांसी, सफेद चन्दन का बुरादा, नागरमोथा, खस, अगर, तगर, गुलाब के फूल, कपूर काचरी, मेहंदी के पत्ते, भांगरा, पानड़ी ये १४ औषधियां प्रत्येक १-१ तोला लें। यदि इनमें से कोई एकाध चीज न मिले तो उसे छोड़ दें और शेष को मिलाकर पकने के लिये चूल्हे पर चढ़ा दें।

वक्तव्य-१. लकड़ी की हल्की आंच दें। पत्थर के कोयलों पर न पकावें।

२. बरतन कलईदार पीतल या तांबे का लें। लोहे की कड़ाही में रंग काला हो जायेगा।

३. बरतन को ढक्कन से बन्द रखें। दाल-सब्जी बनाते समय पतीली पर ढक्कन रख दिया जाता है, ठीक वैसा ही ढक्कन बरतन पर रखें।

४. पानी आधा जलने पर इसको उतारकर रख लें और दो रात अध पका ही पड़ा रहने दें।

५. तीसरे दिन इसको फिर पकाकर तैल सिद्ध कर लें। तैल पकने से उसमें से इतनी खुशबू उठेगी कि सारे घर में फैल जायेगी। रंग तोते के पंख जैसा बहुत सुंदर हरा आ जायेगा।

६. जब पानी खतम होने पर आवे तो आंच बहुत हल्की कर दें और कोयला पर एक बूंद इस तैल की डालें। यदि तिड़तिड़ आवाज करे तो समझ लो अभी तक तैल सिद्ध नहीं हुआ और यदि फक से जल जाये तो समझ लें कि तैल सिद्ध हो गया है और देरन कर

फौरन आग पर से उतार लें। देरी करने पर तैल जलने लगेगा और इसके सब गुण नष्ट हो जायेंगे।

उपयोग–यह ब्राह्मी आंवला केश तैल मस्तिष्क को ठण्डा रखता है और बालों को काले व लम्बे एवं मुलायम भी बनाता है।

१९. अकसीर दिमाग तैल।

द्रव्य–उत्तम नवीन बादाम का तैल एवं चमेली का तैल, गुलाब का तैल, खोपरे का तैल और रूह खस २० बूंद, रूह केवड़ा ५ बूंद, रूहगुलाब १० बूंद, संदल का तैल ५ बूंद लें।

विधि–इन सबको सम्मिश्रणकर हरे रंग की शीशी में भर, लकड़ी के तख्ते पर सूर्य की धूप और चन्द्रमा की चाँदनी में ४ रोज तक रखने से तैल तैयार हो जायेगा। *(स्व. श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा)*

उपयोग–इसके शिर पर लगाने से मस्तिष्क की क्षीणता एवं गर्मी से होने वाला शिरदर्द, दाह आंखों के सामने अंधेरा या चक्कर आना नेत्र का दाह, जूं, लीक का जमना और बालों का झड़ना आदि रोग मिटते हैं। यह अत्यन्त मनोहर और सुगन्धित भी है। इसके निरन्तर सेवन से असमय पर बाल पकना और बाल झड़ना आदि भी रुक जाते हैं।

सूचना–मस्तिष्क की क्षीणता से होने वाले शिरदर्द में मस्तिष्क पोषक बादाम एवं मगज आदि द्वारा बनाये हुए बृंहण योग ही लाभकारी है। पथ्यादि क्वाथ नहीं। बद्धकोष्ठ से होने वाले शिरदर्द में कोष्ठ शुद्धिकर प्रयोग विरेचन आदि से ही लाभ होता है। नेत्र क्षीणता से होने वाले शिदर्द में, नेत्र पोषक योग एवं चश्मा आदि से लगाने से ही लाभ होता है। स्त्रियों के मासिक धर्म की खराबी से होने वाला शिरदर्द में रजोविकार मिटाना वांछनीय है। ज्वरादि रोग विशेष के कारण होने वाला शिरदर्द उपद्रव रूप में होते हुए भी मूल रोग का हेतु होता है। अत: मूलव्याधि की चिकित्सा भी साथ-साथ अनिवार्य होती है।

२०. श्यामकेश तैल।

द्रव्य–मीठा तैल १०० सेर, शिकाकाई तीन पाव, आंवला रस ३ सेर, बड़ी हरड़ १। सेर, भांगरा रस २॥ सेर, सुगन्ध ब्राह्मी आवंला २॥ सेर लें।

विधि–ब्राह्मी आंवला आदि तैलों की विधि जो रं.तं. सां. (प्र.खं.) में दी है, तदनुसार तैल पाककर शीशियों में भर लेना चाहिये।

उपयोग–इसे शिर में लगाते रहने से कुछ समय में बालों का पकना और सफेद होना, बाल झड़ना आदि तथा शिर में छोटी छोटी फुंसिया (अरुंषिका) होकर केशभूमि कठोर होना, फुंसियां होकर खुजली चलना आदि विकारों में लाभ होता है।

बालों को मूल विशुद्ध रक्त जल (blood-Plasma) मिलता रहे तो केश प्राकृतिक श्याम और चमकीले रहते हैं। गर्भाशय या पचन संस्थान आदि से विष निकल निकलकर रक्त में सम्मिलित होता रहे तो रक्त में उपस्थित केशरंजक वर्ण द्रव्य की हानि होती है, वह रक्त जल कुछ गाढ़ा बन जाता है। जिससे केशों को रक्तजल और केशरंजक द्रव्य कम मिलते हैं। परिणाम में केश श्वेत व निस्तेज बनने लगते हैं। ऐसी अवस्था में श्यामकेश तैल का शिर पर मर्दन होता रहे, मर्दन न हो सके तो प्रतिदिन लगाते रहें तो भी केशों की जड़ों में उत्तेजना व शक्ति प्रदान करता है।

नोट–धूम्रपान, फिरंग, सुजाक आदि का विष रक्त को दूषित करता है, इसके अतिरिक्त सुगन्धित (सेंटेड) खनिज तैलों का लम्बे अरसे तक उपयोग करते रहने से भी केशमूल शिथिल व सफेद हो जाते हैं और बाल झड़ते व सफेद होते रहते हैं। पथ्य पालनसह इस तैल का उपयोग करने से विशेष लाभ मिल सकेगा।

(५१) स्त्री रोग

१. वैक्रान्त योग।

द्रव्य–वैक्रान्त भस्म, पुखराज पिष्टी, माणिक्य पिष्टी, अकीक पिष्टी, कपूर, जावित्री, ये औषधियाँ २-२ तोले, पन्नापिष्टी, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, जहरमोहरा खताई पिष्टी और जदवार ये औषधियाँ ४-४ तोले लें। केशर १ तोला, अम्बर १/२ तोला, कस्तूरी १/४ तोला लें।

विधि–पहले भस्म और पिष्टी मिलाकर खरल करें फिर जावित्री मिलावें। उस मिश्रण को शतावरी के स्वरस में ३ दिन खरल करें। फिर केशर को अर्क केवड़ा में ३ घण्टा खरलकर अम्बर, कपूर और कस्तूरी को उसके साथ मिला लेवें। पश्चात् इन सबके मिश्रण को भस्मों के साथ मिला ३ घण्टे तक अर्क केवड़े में खरलकर लेवें। फिर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, सुबह एवं रात्रि को, दूध या रोगनाशक अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–यह वैक्रान्त योग स्त्रियों का परम मित्र है। सौभाग्यवती स्त्रियों और कुमारिकाओं के लिये तो आशीर्वादरूप ही है। प्रजनन संस्थान और समग्र देह के लिए पौष्टिक, रसायन, शीतवीर्य, वातपत्ति शामक और विषघ्न योग है। सगर्भा, प्रसूता, बंध्या और प्रदरपीड़िता सबों के लिये सौम्य और निर्भय प्रयोग है। इस योग के सेवन से गर्भाशय और बीजाशय के रोग और निर्बलता एकाध मास में दूर हो जाती

है। स्वास्थ्य वृद्धि तथा बल, स्फूर्ति और संतान की प्रप्ति होती है। इसे हजारों स्त्रियों को देकर अनुभव प्राप्त किया गया है।

सूचना–यदि जीर्ण प्रदररोग हो, तो प्रदर रोग की मुख्य औषधि को भी साथ में सेवन कराना चाहिये। यदि गर्भाशय में शस्त्र चिकित्सा साध्य विकृति हो, तो पहले उसे दूर करना चाहिये।

२. हीरक रसायन।

द्रव्य–हीराभस्म १ माशा, पन्ना २ माशे, माणिक्य भस्म ३ माशे, पुखराज भस्म ४ माशे, नीलम भस्म ५ माशे, वैडूर्य भस्म ६ माशे, **गोमेदमणि** (अकीक) भस्म ७ माशे, चन्द्रकान्त (स्फटिक) मणि भस्म ८ माशे, प्रवाल भस्म ९ माशे, वैक्रान्त भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म और **रौप्यमाक्षिक** भस्म, ४॥-४॥ माशे और समभाग शुद्ध पारद गन्धक की कज्जली १७५॥ माशे (१४ तोले ७॥ माशे) लेवें।

विधि–सबको यथाविधि मिला खरलकर एक जीव करें। फिर बकरी का दूध, बांझ ककोड़े का कन्द, लाल और पीली गोरखमुण्डी, **हंसराज** और नीलोफर, इन सबके द्रवों में १-१ दिन खरलकर ४ गोले बना, सुखाकर ४ पात्रों में रखकर शराव संपुट करें। फिर इसे कुक्कुट पुट देवें। गंधक का अंश शेष रहा हो तो घीकुंवार के रस में खरलकर गोला बनाकर फिर से कुक्कुटपुट देवें। स्वांग शीतल होने पर निकाल पीसकर बोतल में रख लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा–१-१ रत्ती, दिन में १ या २ बार, रोगानुरूप अनुपान के साथ दें।

उपयोग–यह हीरक रसायन सगर्भा, प्रसूता, बंध्या, योनिरोग, रक्त गुल्म और प्रदर से पीड़ित स्त्रियों के लिये अत्यन्त हितकारक है। राजयक्ष्मा को भी दूर करता है। यदि स्त्री समागम के १ घण्टे पहले इसका सेवन किया जाये तो अति स्तम्भन होता है।

३. लक्ष्मणा लोह।

द्रव्य–लक्ष्मणा पञ्चांग अथवा जड़ ४०० तोले, अशोकछाल, कुश की जड़, महुए का (फूल) गर्भ (मगज), मुलहठी, खरेंटी की जड़, पाठा और बेलगिरी, (फल मज्जा) ये ७ औषधियां ४-४ तोले तथा लोहभस्म सबके समान लें।

विधि–पहले लक्ष्मणा को जौकूट कर ८ गुने जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ कर मसल छान पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर घन बनावें। काष्ठादि औषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् घन चूर्ण और सबके समान लोहभस्म मिला मर्दनकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(भै.र.)*

मात्रा–१ से २ गोली, जल, अशोकारिष्ट या रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २ बार देवें।

उपयोग–यह लोह स्त्रियों की गर्भाशय विकृति को नष्ट करता है। गर्भाशय प्रदाह, मासिक धर्म समय पर न आना, मासिक धर्म आने के समय कष्ट होना, मासिक धर्म बहुत कम आना, मासिक धर्म में नीला, काला, पीला या दुर्गन्धयुक्त रक्त आना, गर्भाशय में शूल चलना, गर्भाशय में भारीपन बना रहना आदि विकार दूर होकर गर्भाशय शुद्ध बन जाता है तथा गर्भाशय विकार से उत्पन्न पाण्डुता, दृष्टिमांद्य, शिरदर्द, कटिपीड़ा आदि भी निवृत्त होकर शरीर सबल और सुन्दर बन जाता है। यह योग संतानोत्पत्तिकारक भी माना गया है।

४. शोणितार्गल रस।

द्रव्य–लोहभस्म, अभ्रक भस्म, यशद भस्म, रसोंत, फिटकरी का फूला, प्रत्येक १-१ तोला, रससिंदूर, रक्तचन्दन, सोनागेरू और पीपल की लाख २-२ तोले लें।

विधि–रसोंत के अतिरिक्त सब औषधियों को खरल में मिला रसोंत के जल के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(वैद्यक चि.सा., लेखक वैद्य श्री गोपालजी कुँवर जी ठक्कूर)*

मात्रा–१ से २ गोली, उशीरासव या जल के साथ दिन में दो बार।

उपयोग–यह रसायन रक्तार्श, रक्तप्रदर, रक्तातिसार आदि विकारों में रक्तस्राव को बन्द करने और शक्ति का संरक्षण करने के लिये उपयोगी है। इस रसायन के सेवन से रक्तवाहिनियां, अन्त्र और गर्भाशय आदि स्थानों की उष्णता का शमन होकर रक्तस्राव बन्द होता है। इस हेतु से इसके प्रयोग से दूषित रक्त रुक कर भविष्य में हानि पहुंचने की आशंका नहीं रहती। यह औषधि निर्भय है।

अति रजस्राव होने पर शोणितार्गल रस को बबूल की कच्ची फली के चूर्ण और मिश्री के साथ दिन में ३ बार देवें और ऊपर लोध्रासव पिलावें तो सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

५. सौभाग्यादि गुटिका।

द्रव्य–सोहागे का फूला, भुनी हींग और कासीस १-१ तोला, अजवायन २ तोले, कालीमिर्च ३ तोले और एलुवा ५ तोले लेवें।

विधि–सबको मिला घीकुँवार के रस में ६ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। *(हकीम श्री उत्तमचन्दजी)*

मात्रा–१ से ४ गोली, निवाये जल या अर्क सौंफ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग–मासिक धर्म में कष्ट होना, मासिक धर्म समय पर न होना, मासिक धर्म की विकृति से शिरदर्द, नेत्र की निर्बलता और कमर

में पीड़ा रहना आदि विकार होने पर दो दो गोली निवाये जल के साथ रात्रि को सेवन कराते रहने से १-२ मास में मासिक धर्म की शुद्धि हो जाती है।

अपचन रहता हो तो १-१ गोली, भोजन कर लेने पर देने से पचनक्रिया सुधर जाती है। मलावरोध, उदरशूल में दो से चार गोली अर्क सौंफ के साथ देने से मल की शुद्धि होती है और उदरशूल का निवारण होता है। इसके अतिरिक्त गुल्म, आध्मान का भी नाश करती है। परन्तु इसके सेवन से दस्त अधिक हो जायें तो मात्रा कम कर दें अथवा कुछ दिनों के लिये इसका सेवन बन्द कर देना चाहिये।

६. रजोदोषहरी वटी।

विधि-मुश्क तरामसी, रेवन्दचीनी, तगर, तुख्म हरमल, सातर, सौंफ, अनीसून, तुख्म कर्फस, अजखर (नरसलमूल), सोया, हमामा और बांस की जड़ ये ११ द्रव्य १०-१० तोले और उलटकंबल के मूल ४० तोले मिला, जौ कूटकर चौगुने जल में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर मन्दग्नि पर पकावें। जब कुड़छी को लगने लगे तब नीचे उतारकर धूप में सुखावे। गोली बनाने योग्य हो जावे जब उसमें कूठ का चूर्ण २ तोले, जावशीर २ तोले हीरा बोल ३ तोला और जुन्देवेदस्तर १ तोला मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(सि.यो.सं.)

मात्रा-४-४ गोली, प्रातःसायं जल से देवें। रजोदर्शन के समय में निम्न क्वाथ से देवें।

रजोदोषहर क्वाथ-अजखर, मुश्क तरामशी, अनीसून, अबहल, ककड़ी का मगज, गोखरू बांस की जड़ या पत्ती और हंसराज, सब ६-६ माशे लेकर २० तोले जल में पका, ५ तोले जल शेष रहने पर कपड़े से छान १ तोला गुड़ मिलाकर पिलावें।

उपयोग-यह वटी स्त्रियों के मासिक धर्म की विकृति, रजस्राव योग्य न होने से उसे समय भयंकर शूल चलना, रक्त थोड़ा काला-पीला, झागवाला गिरना और इस विकार के हेतु से नेत्र की निर्बलता, मस्तिष्क में वेदना, शरीरिक आशक्ति, आलस्य, मानसिक अस्वास्थ्य आदि को दूरकर उनके स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनानी है।

सूचना-इसके साथ खुरासानी अजवायन १ मात्रा में १ से २ रत्ती तक क्वाथ या चूर्ण रूप में देने से वेदना शामक गुण विशेष बढ़ जाता है।

(संशोधक)

७. बोलादि वटी।

द्रव्य-बीजाबोल (मुरमुकी) १० तोले, सोहागे का फूला, विलायती कासीस और एलुवा ५-५ तोले और भुनी हींग २॥ तोले लें।

विधि-सबको मिला जटामांसी के फांट में १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

(स्व. श्री पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा-२-२ गोली, सुबह और रात्रि को भोजन के आध घण्टे बाद जल से।

उपयोग-यह वटी स्त्रियों के मासिक धर्म की विकृति को दूर करती है। अनेक बालक होने या अन्य कारण से गर्भाशय शिथिल हो जाने पर मासिकधर्म में थोड़ा और काला रक्त गिरता है। मासिक धर्म शुद्धि नहीं होता, कमर में वेदना होती है, नेत्रों में निर्बलता आ जाती है। तब यह वटी अति हितकर सिद्ध होती है। १-२ मास सैवन कराने पर रजोदर्शन नियमित बन जाता है।

८. कुमारिका वटी।

विधि-एलुवा, शुद्ध कासीस, अफीम, वंगभस्म और शीतलमिर्च, इन ५ औषधियों को समभाग मिला घीकुँवार के रस में ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

(भै.र.)

मात्रा-१-१ गोली, प्रातः और सायं अथवा केवल रात्रि को, एक बार जल के साथ देवें। तीव्र शूल के समय २-२ घण्टे पर दो या तीन बार ४ रत्ती कपूर या शराब के साथ देवें।

उपयोग-यह वटी विविध प्रकार के योनिरोग, बाधक वेदना, गर्भाशय भ्रंशजनित शूल, मक्कलशूल और मासिक धर्म के समय उत्पन्न शूल तथा प्रदर आदि रोगों को दूर करती है और मासिक धर्म को साफ लाती है।

बाधक वेदना होने पर कटि व्यथा, नाभि के पास में और नीचे भारीपन, मासिक धर्म अनियमित समय पर आना, शूल नेत्र हाथ और पैरों के तलों में दाह, शिरदर्द और बेचैनी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ये सब इस वटी के सेवन से शान्त हो जाते हैं।

वक्तव्य-गर्भाशय में किसी भी प्रकार का शूल ठहर ठहर कर चलता हो, वेदना के हेतु से निद्रा न आती हो, उन पर यह वटी दी जाती है। इस वटी में अफीम डाली है। अतः मात्रा अधिक नहीं देनी चाहिये, तथापि पीड़ा शमनार्थ पूर्ण मात्रा में देने में भी आपत्ति नहीं मानी जाती। यदि कब्ज विशेष हो और सुविधाजनक लगे तो एरंड तैल की बस्ति देकर मलाशय को साफ कर लेना चाहिये। गर्भावस्था में यह औषधि नहीं दी जाती। गर्भावस्था के अन्त में प्रसवावस्था उपस्थित होने पर किसी आघात के हेतु से गर्भसंरक्षक जल का स्राव हो गया हो और गर्भाशय का मुख विकसित न हुआ हो, तो संतान का मुख गर्भाशय के अविकसित मुख को लग जाता है, जिससे गर्भाशय

का सबल संकोच होता है और तीव्र वेदना उपस्थित होती है। यदि उसका निवारण तत्काल न किया जाये, तो संतान की मृत्यु होती है और माता का जीवन भी संकटमय बन जाता है। ऐसी विषमावस्था में यह औषधि शराब के साथ देने पर अमृत के समान उपकार करती है। आवश्यकता पर गर्भिणी को उष्ण जल के टब में भी बैठाया जाता है।

प्रसव के पश्चात् मक्कलशूल (After pains) उत्पन्न होता है। उस पर यह वटी ५ रत्ती कपूर मिलाकर देने से तत्काल लाभ हो जाता है। कभी प्रसवावस्था में गर्भाशय के भीतर प्रदाह हो जाने के हेतु से वात प्रकोप होकर उन्माद के लक्षण उपस्थित होते हैं। निद्रा भी नहीं आती। ऐसे प्रसंग पर इस वटी का सेवन कराने से वेदना शान्त होती है और निद्रा आ जाती है।

इस वटी में अफीम और एलुवेका मिश्रण होने से अफीम की मलावरोधक शक्ति का ह्रास होता है और वेदना शमन होने में अच्छी सहायता मिल जाती है। कासीस आम का शोषण करती है और गर्भाशय को सबल बनाती है। वंगभस्म मूत्र संस्थान और प्रजनन यंत्र के सब अवयवों को लाभ पहुँचाती है तथा रक्त को विशुद्ध बनाती है। शीतल मिर्च उत्तेजक, पाचक और वातहर है तथा गर्भाशय की श्लैष्मिक कलाओं में से अधिक स्राव कराती है, कीटाणुओं को नष्ट करती है; तथा वृक्क स्थान के कार्य को उत्तेजित करती है। सुजाकजनित विकृति हो, तो उसे भी दूर करती है और मूत्र में होने वाली जलन को शान्त कर पेशाब को साफ लाती है।

९. अश्वगन्धादि योग।

द्रव्य–असगन्ध और विधारे का चूर्ण ८-८ तोले, बड़ी इलायची का चूर्ण और कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म २-२ तोले, वंग भस्म १ तोला और मिश्री ८ तोले लें।

विधि–सबको मिलाकर खरलकर लेवें। *(श्री पं. यादवजी, त्रिकमजी, आचार्य)*

मात्रा–३ से ४ माशे, प्रातःसायं, गोदुग्ध के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण नये और पुराने श्वेतप्रदर को दूर करता है। जीर्ण रोग में ४-६ मास तक शान्तिपूर्वक इसका सेवन कराना चाहिये।

१०. मायाफलादि चूर्ण।

विधि–माजूफल ५ तोले, अश्वगन्धा २॥ तोले, आंवले की मज्जा का चूर्ण २॥ तोले, फिटकरी का फूला १। तोले, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म १। तोले, इन सबकी बराबर मिश्री अथवा शक्कर मिलाकर बोतल में भर लेवें।

मात्रा–३-३ माशे, दुग्ध अथवा शीतल जल के साथ दें।

उपयोग–इसके सेवन से श्वेतप्रदर, योनिभ्रंश और गर्भाशय की निर्बलता मिटती है।

११. पत्रांगासव।

विधि–पतंग की लकड़ी का बुरादा, खैरसार, अडूसे का मूल, सेमल के फूल, खरैंटी मूल, भिलावा, अनन्तमूल सफेद, अनन्तमूल काला, जपाकुसुम (गुडहल) की कलिका, आम की गुठली की गिरी, दारुहल्दी, चिरायता, पोस्त के डोडे, जीरा, अगर, रसौंत, बेलगिरी, भांगरा, दालचीनी, केशर और लौंग, ये २१ औषधियां ४-४ तोले मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। यह सब चूर्ण, मुनक्का १ सेर और धाय के फूल ६४ तोले को २०४८ तोले जल में मिलावें। उसमें शक्कर ४०० तोले और शहद २०० तोले डालें। एक मास तक बन्द रखें। आसव परिपक्व होने पर छान लें।

मात्रा–२॥-२॥ तोले समान जल के साथ दिन में दो बार।

उपयोग–यह आसव वेदनायुक्त, उग्र श्वेत और रक्त प्रदर का नाश करता है एवं प्रदर के साथ उपद्रव रूप से उत्पन्न ज्वर, पाण्डु, शोथ, अग्निमांद्य और अरुचि को भी दूर करता है।

प्रदर में पतला और उष्ण स्राव अधिक होकर गर्भाशय शिथिल एवं फूला हुआ सा प्रतीत होता हो और शूल भी चलता हो, उसके लिये यह आसव हितकारक है। इस आसव के साथ चन्द्रकला रस का सेवन कराने से सत्वर लाभ होता है।

१२. असृग्दरहर योग।

(१) लाजवन्ती के पञ्चांग का कपड़छन चूर्ण १-१ माशा दिन में ३ बार शीतल जल या गोघृत के साथ देने से रक्तप्रवाह एक ही दिन में बन्द हो जाता है। अति भयंकर बढ़ा हुआ और असाध्य रोग भी दूर हो जाता है। मासिक धर्म में अत्यधिक रजःस्राव होना और रक्तप्रदर, दोनों पर यह औषध लाभ पहुँचाती है। रक्त प्रवाह बन्द हो जाने पर दूसरे दिन आधी मात्रा दो बार देवें।

सूचना–(अ) मात्रा अधिक होने पर वमन हो जाती है। अतः मात्रा कम ही देवें भोजन पौष्टिक और शीतल गुणयुक्त देवें।

(आ) आवश्यकता हो, तो आगे लिखी हुई शिखर्यादि वर्तिका भी प्रयोग करें।

(२) लगभग ६ माशे से १ तोला तक करोंदे के मूल को घिसकर दूध के साथ पिलाने से भयंकर रक्तप्रदर तथा मासिक धर्म में अति रक्तस्राव होना, दोनों दूर हो जाते हैं। विशेषतः २-३ दिन में लाभ हो जाता है। कदाच कसर रह जाये, तो ३ दिन औषध बन्द रखकर फिर ३ दिन देने से पूर्ण आराम हो जाता है।

(३) संगमरमर को कूट कपड़छन चूर्णकर उसमें १६वां हिस्सा सोनागेरु मिलाकर ३ घण्टे खरल करें। इसमें से आधे से १ माशे तक घी शक्कर के साथ दिन में ३ बार देने से रक्तप्रदर का शमन हो जाता है। यदि संगमरमर अर्थात् मकराणे के पत्थर की भस्म (अर्थात् चूना) बना लें तो आधी मात्रा देने से पूरा-पूरा गुण करता है।

१३. आर्तवप्रद योग।

(१) बीजाबोल और एलुवा, दोनों समभाग मिला जल में पीस बेर के समान गोली या वर्त्ति बनाकर योनि में धारण कराने से मासिक धर्म आने लगता है। आवश्यकता पर दूसरे दिन पुन: वर्त्ति धारण करावें।

(२) रीठे की गिरी के चूर्ण को समभाग गुड़ में मिला जामुन जैसी वर्त्ति बनाकर धारण कराने से मसिक धर्म आने लगता है। पहले पीला-लाल जल गिरता है। फिर रज:स्राव होता है।

(३) देवदाली के बीज और जालीसह पक्के सूखे फल २॥ तोले, एरण्ड बीज की गिरी और पुराना गुड़ ५-५ तोले लेवें। गुड़ में जल मिला चाशनी कर देवदाली और एरण्डगिरी का चूर्ण मिला, जामुन सदृश वर्त्तियाँ बना लेवें। इन्हें धारण कराने से बन्द मासिक धर्म पुन: आने लगता है।

सूचना-यदि गर्भाशय या गर्भाशय के मुखपर शोथ हो, तो भ्रमवश इस प्रकार के तीव्र उपचारों का प्रयोग नहीं कराना चाहिये। एवं अधिक निर्बलत और नाजुक प्रकृति की रुग्णा के लिये भी विचारपूर्वक सौम्य उपचार करना चाहिये।

(४) कपास के मूल, अमलतास की फली का छिलका, काले तिल, गोखरू, इन्द्रायण का मूल, सौंफ का मूल, बांस का मूल, गाजर के बीज, मूली के बीज, ककड़ी का मगज और निर्गुण्डी इन ११ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा-२ से ४ तोले चूर्ण का अष्टमांशावशेष क्वाथ करें। फिर छाने, २ तोले, गुड़ मिलाकर पिला देवें। यह क्वाथ रोज सुबह १ बार देवें।

उपयोग-यह क्वाथ बन्द मासिक धर्म को चालू कर देता है। युवावस्था में गर्भाशय के भीतर चर्बी बढ़ने से या अन्य प्रतिबन्ध आ जाने पर मासिक धर्म रुक जाता है, तब विविध प्रकार के उपद्रव उपस्थिति होते हैं एवं मस्तिष्क में भारीपन, नेत्रों में निर्बलता, शिरदर्द, नासिका से रक्तस्राव, कमर में वेदना, शरीर फूल जाना और निर्बल हो जाना, किसी को उदरशूल होना, पैरों पर शोथ और गर्भाशय पर दबाने से वेदना होना, क्षुधानाश आदि प्रतीत होते हैं, तब यह क्वाथ ५-७ दिन देने से मासिक धर्म फिर से आने लगता है। यह प्रयोग २० से ४० वर्ष के भीतर की बलवती स्त्रियों के लिये हैं।

सूचना-सूचना देह में रक्त की कमी होने से मासिक धर्म बन्द हो गया हो तो उन स्त्रियों को यह क्वाथ नहीं देना चाहिये। एवं सगर्भा को भी क्वाथ न देवें।

(५) छोटी कटेली के बीजों का चूर्ण ६ माशे दिन में १ बार सुबह निवाये जल से ३ दिन देने से मासिक धर्म खुलकर साफ आ जाता है।

(६) ५ तोले तिल का क्वाथ कर दिन में २ बार पिलाने से तथा सोंठ और भारंगीमूल का चूर्ण ६-६ माशे थोड़े गुड़ ओर घी के साथ देते रहने से ३-४ दिन में मासिक धर्म आने लगता है।

(७) अपामार्ग के बीज, गाजर के बीज, तिल बायविडंग, हंसराज, एलुवा, अजवायन, सोया, गोखरू और चित्रकमूल ये १० औषधियाँ १-१ तोला अमलतास का गूदा २॥ तोले लेवें। सबको मिला जौकूट चूर्ण कर लेवें। इसमें से २ तोले चूर्ण और २ तोले गुड़ को मिला रात्रि को ३२ तोले जल में भिगो दें। सुबह जल्दी अष्टमांश क्वाथ कर पिला देवें। इस तरह ३ मास तक ३-३ दिन देवें। आवश्यकतानुसार मासिक धर्म आने पर पहले दिन से या मासिक धर्म आने के पहले प्रारम्भ करें। इस क्वाथ के सेवन से गर्भाशय की सब विकृतियाँ दूर होकर बिना कष्ट मासिक धर्म आने लगता है।

१४. पीड़ितार्तवहर लेप।

द्रव्य-तिल और सरसों की खली, गुठली रहित खजूर ४-४ तोले, डीकामाली; गूगल, एलुवा और पोस्तडोडे २-२ तोले लें।

विधि-इनको २० तोले जल में मिलाकर हलवे के समान पकाकर फिर सहन हो सके उतना गरम रहने पर शाम को गर्भाशय और बीजाशय के ऊपर तेल लगाकर लेप करें। ऊपर रूई चिपकावें और कपड़ा बाँध देवें। सुबह लेप निकालकर तैल लगा दें।

उपयोग-इस लेप के प्रयोग से मासिक धर्म साफ आ जाता है, कष्ट नहीं होता, गर्भाशय में शोथ हो तो वह भी दूर हो जाता है। यह अति निर्भय और श्रेष्ठ उपाय है।

शीतकाल में कष्ट अधिक होता हो, तो यह लेप लगाकर लोटे से या रबर की थैली में गरम जल भर २०-३० मिनट तक सेक करें।

सूचना-सेक अधिक समय तक न करें, कारण कि गर्भाशय के ऊपर मूत्राशय होने से उसमें उग्रता आ जाती है और फिर पेशाब करने मे कष्ट पहुंचता है।

१५. गर्भधारक योग।

द्रव्य–रससिंदूर, जायफल, जावित्री, लौंग, कपूर, केशर और रुद्रवन्ती सबको समभाग लें।

विधि–सबको मिला बारीक चूर्ण बनाकर शतावरी के क्वाथ में ३ दिन खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

उपयोग–मासिक धर्म आने के पश्चात् चौथे दिन से दिन में २ बार ३ दिन तक १-२ गोली खिलाकर ऊपर से दूध पिलावें। इस तरह तीन ऋतुपर्यन्त करने से गर्भधारण हो जाता है। यदि इसमें जीयापोता (जिसका नाम पुत्र-जीवक अथवा पुत्रदा भी है, वह) भी मिलाया जाये तो वह विशेष गुणकारी हो जाता है।

१६. प्रदरान्तक योग।

(१) एरण्ड की लकड़ी को जलाकर काली राख करें। फिर उसके समान आँवलों का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल कर लेवें। इस चूर्ण में से ६-६ माशे शीतल जल के साथ प्रातः सायं देते रहने से रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर दोनों दूर होते हैं।

(२) सफेद बच का चूर्ण ४ से ६ रत्ती तक दिन में ३ बार प्रातः सायं दूध से और दोपहर को जल के साथ देवें। इस तरह ३-४ दिन प्रयोग करने से रक्तप्रदर शमन हो जाता है।

(३) शुद्ध सोनागेरू को आंवले के रस में २१ दिन तक खरल करें। लोहे का स्पर्श न होने देवें। इनमें से ३ से ६ रत्ती, दिन में २ बार दूध के साथ देते रहने से रक्तप्रदर, रक्तस्राव, अम्लपित्त, रक्तदबाव वृद्धि, दाह, रक्तवमन और पाण्डु आदि रोग दूर होते हैं। इसे **'रक्तामलकी रसायन'** संज्ञा दी है।

(४) सोनागेरू १ तोला और फिटकरी का फूला ४ तोले मिलाकर खरल कर लें। और ६-६ रत्ती शक्कर के साथ देकर ऊपर **बकरी** का दूध पिलाने से नया रक्तस्राव और रक्तप्रदर सत्वर शान्त हो जाते हैं।

(५) कतीरा गोंद (पीताभ) और सेलखड़ी १-१ माशा, सोनागेरू २ रत्ती और मिश्री सबके समान मिलाकर भोजन के पहले दिन में २ बार थोड़े जल से सेवन कराते रहने से अति रजःस्राव, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, गर्भाशयप्रदाह, गर्भाशय में वेदना आदि विकार थोड़े ही दिनों में दूर होते हैं।

(६) छोटी दूधेली और मिश्री १-१ माशे का मिश्रण प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ देते रहने से १ सप्ताह में रक्तप्रदर दूर होता है एवं नियमित होने वाले अत्यधिक रजःस्राव का भी शमन हो जाता है।

(७) पलाशपुष्प और दर्भमूल को समभाग मिलाकर बारीक चूर्ण करें। रोज सुबह ६-६ माशे लेकर जल के साथ देते रहने से १४ दिन में पित्त प्रकोपज प्रदर (पतला और उष्ण रसस्राव) और रक्तप्रदर दूर होते हैं।

(८) गोघृत में भिलावे के तैल की ४ बूंदे मिलाकर खिला देने से रक्तस्राव और रक्तप्रदर दूर होते है। ३ से ७ दिन तक देवें।

(९) गूलर के मूल को जल में घिस, शक्कर मिलाकर पिलाने और १-१ रत्ती त्रिवंग भस्म का सेवन कराने से दाहसह प्रदर दूर हो जाते हैं।

१७. अशोकादि कषाय।

द्रव्य व विधि–अशोक की छाल १० तोले, आम की छाल, जामुन की छाल और बेर (झाड़बेर) की छाल ५-५ तोले लेकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा–२-२ तोले का क्वाथ कर १-१ तोला गोघृत और ६-६ माशे मिश्री मिलाकर भोजन के तीन घण्टे बाद तीसरे प्रहर के समय पिलावें, या प्रातःसांय दो बार देवें।

उपयोग–इस कषाय के सेवन से नया और पुराना रक्तप्रदर शान्त हो जाता है। गर्भाशय की श्लैष्मिक कला का प्रदाह, रक्तवाहिनी फटना, गर्भाशय की दुष्टि आदि पर यह हितावह है।

१८. योनिसंकोचक योग।

(१) कूठ, धाय के फूल, बड़ी हरड़, फिटकरी, माजूफल, लोध, भांग और अनार की छाल, इन ८ औषधियों को १-१ तोला मिला चूर्णकर ४० तोले शराब में डालकर ७ दिन रहने दें। दिन में २-३ बार बोतल को हिला लें। फिर छान कर उपयोग में लें। इस अर्क में फुरेरी डुबोकर योनि के भीतर चारों ओर लेप कर देने से शिथिल हुई योनि दृढ़ हो जाती है।

(२) माजूफल ३ तोले, कपूर और फिटकरी ३-३ माशे मिला कर कपड़छन चूर्ण करें। फिर पतले कपड़े की छोटी छोटी पोटलियां बनाकर योनि में चढ़ावें। पोटली का एक डोरा लम्बा बांधे, जिससे इच्छा होने पर पोटली को निकाल सकें। इस प्रकार पोटली रखने से योनि तंग हो जाती है। कमल नीचे गिर जाता हो और नया रोग हो, तो वह अपने स्थान पर स्थिर हो जाता है।

(३) भांग की पोटली को ३ घण्टे तक योनि में रखने पर अनेक बार प्रसूता हुई नारी की योनि भी कन्या के समान हो जाती है।

(४) माजूफल, मांई, फिटकरी और राल चारों को समभाग मिला पोटली कर धारण कराने से योनि संकुचित हो जाती है।

(हकीम उत्तमचन्दजी)

(५) १ तोला फिटकरी और ४ तोले शक्कर को मिला खरल करें। फिर मंदाग्नि पर रस करके नीचे उतार लें। फिर हाथ पर घी या तैल लगा निम्बोली जैसी गोलियां बनावें। रात्रि को इसे धारण करावें, सुबह गोली निकाल डालें। इस तरह करने पर कमल ऊपर रह जाता है और निम्न भाग दृढ़ बन जाता है।

१९. योनिकण्डूहर योग।

(१) फिटकरी कच्ची ६ माशे को १ सेर जल में मिलाकर दिन में ३ समय योनि को धोने से खुजली दूर हो जाती है।

(२) तेज शराब का फोहा कण्डू स्थान पर रख देने से कीटाणु नष्ट होकर तीव्र कण्डू निवृत्त हो जाती है।

(३) कपूर, अफीम, मुर्दासंग, चन्दन का तैल और सोहागे का फूला, पाँचों १-१ माशा, नीलगिरी तैल ५ माशे और वेसलीन या धोया घृत २॥ तोले लेकर मलहम बना लेवें। इस मलहम का लेप करने से कण्डू शमन हो जाती है।

(४) त्रिफलाघन-सत्व या उदुम्बरघन-सत्व को जल में मिलाकर योनि को धोने से कण्डू व उससे उत्पन्न पिड़िकायें नष्ट हो जाती है।

२०. सूतिकावल्लभ रस।

द्रव्य-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रक भस्म, कपूर, सुवर्णभस्म, शुद्ध हरताल, रौप्य भस्म, अफीम, जावित्री और जायफल ये ११ औषधियां समभाग लें।

विधि-पहले पारद गन्धक की कज्जली करें, फिर शेष द्रव्य मिलावें। पश्चात् नागरमोथा, खरेंटी और सेमल की छाल के क्वाथ में क्रमश: २-२ दिन खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें। *(भै.र.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में ३-४ बार जल, बकरी के दूध, मट्ठे या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-यह रसायन सूतिका के भंयकर ग्रहणी रोग, घोर अतिसार, प्रवाहिका, दुर्बलता, अग्निमांद्य आदि को नष्ट करता है, तथा पुष्टि, कान्ति, मेधा और धृति को उत्पन्न करता है।

प्रसव के कुछ दिनों बाद अपथ्य सेवन करने पर अतिसार या ग्रहणी रोग हो जाता है। फिर तुरन्त न सम्हालने से रोग उग्र रूप धारण कर लेता है। प्रतिदिन २५-५० बार मरोड़े आकर दस्त लग जाते हैं। उदर में ऐंठन होती रहती है, दस्त होने पर अति निर्बलता आ जाती है। बार-बार चक्कर आना, कर्णनाद, हृदय के धड़कन की वृद्धि, अरुचि, अति अग्निमांद्य (खाया हुआ कुछ भी न पचना), आम और रक्तमिश्रित दस्त होना, प्यास अधिक लगना, ज्वर बना रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे समय पर यह सूतिकावल्लभ रस अमृत के समान कार्य करता है।

इस औषधि में अफीम आती है। अत: इसकी अधिक मात्रा नहीं देनी चाहिये। अफीम का असर स्तन्य द्वारा शिशु पर भी होता है। यदि शिशु को भी प्रवाहिका या अतिसार हो, तो वह भी नष्ट हो जाती है। यदि बालक को अफीम का अधिक असर पहुंचने से अधिक कब्ज रहता हो, तो प्रसूता का स्तनपान छुड़ा देना चाहिये या औषध की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

सूचना-जब तक अफीम रहित औषधि से लाभ हो, तब तक इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। प्रवाहिका ने उग्र रूप धारण कर लिया हो, तो इसे प्रयुक्त करें।

२१. केशरादि वटी (सूतिका)।

द्रव्य-केशर, कालीमिर्च, चित्रकमूल, जायफल, जावित्री, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाभ और अभ्रकभस्म, ये ८ औषधियां १-१ तोला और एरण्ड तैल से शुद्ध किया हुआ कुचिला ४ तोले लेवें।

विधि-सबको यथा विधि मिला नागरबेल (बंगला) पान के स्वरस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१-१ गोली; दिन में २ से ३ बार; अदरक के रस और शहद के साथ।

उपयोग-यह गुटिका सूतिका ज्वर, कफ कास, हृदय की शिथिलता, वातप्रकोपज उपद्रव इनको दूर करती है।

इस गुटिका में उत्तेजक, स्वेदल, ज्वरघ्न, आमपाचक, कीटाणुनाशक, कफघ्न और वातहर गुण अवस्थित है। यह गुटिका प्रसूता के वातप्रकोपज ज्वर और कफप्रकोपसह सन्निपात पर चमत्कारी लाभ पहुंचाती है। जिस तरह आनन्दभैरव रस का उपयोग सामान्य बोधवाले चिकित्सक विविध स्थानों पर करते रहे हैं, उस तरह प्रतापलंकेश्वर और यह गुटिका सूतिका ज्वर की विविध अवस्थाओं में निर्भयतापूर्वक प्रयुक्त हो सकती है।

इन दोनों में केशरादि वटी अधिक उग्र है। इसमें बच्छनाभ की मात्रा अधिक है। एवं इसमें कुचिला मिलाकर इसको अत्यधिक प्रभावशाली बनाया है। जब ज्वर तीव्र हो या आक्षेप का वेग तीव्र हो, तब यह केशरादि वटी तत्काल फल दर्शाती है। किन्तु जब पित्तज्वर और पित्त प्रकोपज उन्माद के लक्षण प्रतीत होते हों, तब प्रतापलंकेश्वर का सेवन कराना ही इष्ट माना जाता है।

प्रसवावस्था में योग्य सम्हाल न रखने पर योनिमार्ग में कीटाणुओं का प्रवेश हो जाता है। इन कीटाणुओं में से कितनी ही जाती के कीटाणुओं के विष का संचय होने पर वातनाड़ियों की विकृति हो जाती है। फिर त्रिदोषज ज्वर उपस्थित होता है। वातप्रकोप के लक्षण, व्याकुलता, हाथ पैर टूटना, कभी दाँत भिचना, प्रलाप आदि प्रकट होते हैं, किसी किसी को कफ बढ़ जाता है। शीत लगना, अरुचि, मलावरोध, किसी-किसी को अपचनजनित पतले दस्त होना, शिरदर्द बना रहना और उदरशूल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस विकार पर यह वटी लाभदायक है। यदि गर्भाशय में दुर्गन्धयुक्त स्राव होता रहता हो, तो बस्तिद्वारा गर्भाशय को शुद्ध कर लेना चाहिये। गर्भाशय की शुद्धि होने पर यह सत्वर गुण दर्शाती है। यदि अफारा, अपचन, पतले दस्त, हृदय की क्षीणता और धनुर्वात आदिवातप्रकोप हों, तो वे सब दूर हो जाते हैं।

सामान्यत: प्रसवावस्था के पश्चात् रक्तवृद्धिकर औषधि की विशेष आवश्यकता रहती है। इस हेतु से प्रतापलंकेश्वर के पाठ में आचार्य ने लोहभस्म विशेष परिमाण में मिलायी है। और लोह की स्थिरता और अस्थिसंस्थान के पोषणार्थ शंखभस्म मिलायी है। किन्तु वातज्वर और आक्षेप की तीव्रावस्था में लोहभस्म का उपयोग नहीं होता एवं शंखभस्म मिलाने पर तीव्रता का ह्रास होता है। इस हेतु से केशरादि वटी में आचार्यों ने लोहभस्म और शंखभस्म की योजना नहीं की है।

२२. स्तन्यशोषक लेप।

द्रव्य-काली जीरी का चूर्ण १ तोला, एलुवा और डीकामाली दोनों ६-६ माशे।

विधि-सबको मिला जल में पीसकर लेप कर देने पर स्तन में दूध इकट्ठा हो जाने से जो वेदना होती है, वह इससे दूर हो जाती है। यह प्रयोग विशेषत: जिनका बालक गुजर गया हो, उनके लिये उपयोगी है। क्वचित् जीवित बालक की माता के भी स्तन मे विकार हो जाने पर यह लेप लगाया जाता है।

सूचना-(१) स्तन पर लेप लगाना शुरू करने पर जब तक रोग दूर न हो जाये उस स्तन का दूध बालक को नहीं पिलाना चाहिये। भारीपन आ जाने पर दूध को ब्रेस्ट पम्प से निकाल लेना चाहिये।

४-४ रत्ती कपूर, सुबह शाम खिलाने पर दूध की उत्पत्ति कम हो जाती है।

२३. महारसशार्दूल।

द्रव्य-अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, स्वर्ण भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध मैनसिल, सोहागे का फूला, जवाखार, हरड, बहेडा और आंवला ये ११ औषधियां ४-४ तोले, शुद्ध बच्छनाभ ३ माशे, छोटी इलायची के दाने, तेजपात, जावित्री, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, सुवर्ण-माक्षिक भस्म और रसोंत ये ९ औषधियां २-२ तोले लेवें।

विधि-प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करें, फिर भस्म और बच्छनाभ को अच्छी तरह मिलाकर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर सबको एक जीव करें। पश्चात् गीमा (ग्रीष्म सुन्दर Mollujo Oppositifolia) * और नागरबेल के पानों के रस की ७-७ भावनायें देवें। फिर थोड़ा द्रव शेष रहने पर सफेद मिर्च का कपड़छन चूर्ण ४ तोला मिला, नागरबेल के रस के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(रं.सा.सं.)*

वक्तव्य-कितने ही ग्रन्थकार ग्रीष्मसुन्दर के स्थान पर हरमल की भावना देते हैं। हरमल सूतिका रोगनाशक है, किन्तु पित्तज अम्ल वमन, दाह और अतिसार न हो, और मलावरोध हो तब यह हितकर होती है। वमन अतिसार पर गीमा शाक के रस की भावना ही हितावह मानी जाती है।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार। प्रसूता को जीर्ण ज्वर में अनुपान बकरी का दूध और सगर्भा को द्राक्षा रस दिया जाता है। अथवा सबको खस, रक्तचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियां, और सोंठ के क्वाथ के साथ देते रहें।

उपयोग-महारसशार्दूल सूतिका रोग के लिये उत्तम औषधि है। सूतिका के ज्वर, दाह, वमन, चक्कर आना, अतिसार, अग्निमांद्य, अरुचि, आदि का नाश करता है। इसके अतिरिक्त गर्भिणी के ज्वर, वमन आदि पर निर्भय रूप से व्यवहृत होता है।

सूतिका रोग में जब वमन और अतिसार सह जीर्णज्वर हो और पित्तप्रधान प्रकृति हो; तब सूतिकारि रस या सूतिकाभरण नहीं दे सकते। सूतशेखर या महारसशार्दूल दिया जाता है। इन दोनों में भी पचनक्रिया अति मन्द हो, ज्वर मन्द-मन्द रहता हो और वात-कफप्रकोप हो, तब इस रसायन का उपयोग करना ही पड़ता है। अधिक ज्वर और वातपित्त वाले को सूतशेखर दिया जाता है।

सूतिकाज्वर के आरम्भ में विपरीत चिकित्सा होने से अथवा अपथ्य का सेवन करने पर रोग जीर्ण होकर विपरीत रूप धारण कर लेने पर मन्द-मन्द ज्वर बना रहना या रात्रि को ९९ डिग्री तक हो जाना, हाथ पैरों की नसें खिंचना अग्निमांद्य, अपचन, दाह, वमन, अतिसार,

* यह बंगाल में सर्वत्र जलाशय के किनारे पर होता है और विशेषत: जमीन पर फैलता है। पान आधे से १ इञ्च लम्बे फूल सफेद। फली १/८ से १/२ इञ्च लम्बी, ३ खण्ड वाली। इसकी दूसरी जाती को हिन्द और पंजाब में गन्दी बूंटी और सौराष्ट्र में औखराड कहते हैं। यह ग्राही, उदरदोषहर, विषघ्न और गर्भाशय दोष-निवारक है। प्रसूता को गीमा का रस १ से २ तोला देने पर रुका हुआ दोषयुक्त स्राव सरलता से बाहर निकल जाता है।

मुखपाक, शिरदर्द, मूत्र में पीलापन, नाखूनों में गड्ढे हो जाना, आलस्य बना रहना, अंग में भारीपन और शारीरिक कृशता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में इस रस का सेवन कराने और पथ्य भोजन देने पर कुछ ही दिनों में रोग निवृत्त होकर शरीर सबल और तेजस्वी बन जाता है।

२४. सूतिका रोगान्तक क्वाथ।

द्रव्य व विधि-रास्ना, देवदारु, इन्द्रायण मूल, दारुहल्दी, अतीस, पीपलामूल, चित्रकमूल, भारंगीमूल, हल्दी, कुटकी, पुष्करमूल, निर्गुण्डी, खुरासानी अजवायन, कुष्ठ, सोया, गोखरू, हरड़, ब्राह्मी, वासापत्र, पियाबांसा, गिलोय, नागरमोथा, धमासा, अरणी, पुनर्नवा, पाठा, खरैंटी के बीज, रेणुका बीज, विधारा, गोरखमुण्डी, निशोत, सोंठ, अरणीमूल, फिटकरी का फूला, सारिवा, शतावर, चिरायता, पीपल, खस, त्रायमाण, छोटी कटेरी, अमलतास की फली का गूदा, बायविडंग, निम्बछाल, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, बड़ी कटेली, लहसुन, गूगल और प्रसारणी, इन ५० औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। *(आ.नि.सा.)*

मात्रा-२ से ४ तोले का १६ गुने जल में क्वाथ बनाकर, दो विभाग करें। प्रात:सायं ६-६ माशे शहद मिलाकर पिलाते रहें।

वक्तव्य-गुजरात में ६।-६। तोले की ४ पुड़ियां बनाते हैं। फिर १ पुड़ी को ६० तोले जल में उबाल, १० तोले जल शेष रहने पर छान, शहद मिला कर पिलाते हैं। रात्रि को उसी में जल मिला उबाल, छान, शहद मिलाकर, पिलावे। यह पुड़ी ७ बार उबालें। (३॥ दिन तक) और पिलाते रहें। फिर उस फोक के साथ ही दूसरी पुड़ी मिलावें और १ सेर जल डालकर उबालें। १० तोले शेष रहने पर छानकर शहद मिलाकर पिलावें। इस तरह ७ टक (३॥ दिन) पिलायें पश्चात् उसी फोक के साथ तीसरी और फिर चौथी पुड़ी मिलावें। क्वाथ का जल तीसरी पुड़ी मिलाने पर १०० तोले और चौथी पुड़ी मिलाने पर १२० तोले लेने का रिवाज है। १४ दिन में ४ पुड़ी देते हैं। शास्त्रोक्त मर्यादानुसार या वृद्ध परम्परा के नियम के अनुसार जिस तरह सुविधा हो उस तरह क्वाथ कर सेवन करावें।

उपयोग-यह सूतिकारोगान्तक क्वाथ प्रसूता के ज्वर, वातप्रकोप, घबराहट, वमन, अतिसार; शोथ, कटिवेदना आदि सबको दूर करता है। बालक को जन्म के पश्चात् किसी प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हुये हों, वे इस क्वाथ के सेवन से निर्मूल हो जाते हैं। इसका प्रचार गुजरात में अत्यधिक है।

सूतिका के नये तीव्र विकार और जीर्ण विकार; दोनों अवस्थाओं में यह क्वाथ उपयोगी सिद्ध हुआ है। गर्भाशय में या जननेन्द्रिय के मार्ग में क्षत पूयप्रदाह आदि विकार हो तो उनका बाह्य स्थानिक उपचार भी साथ साथ करते रहना चाहिये। कुब्जाबनी हुई, क्षय सदृश लक्षण युक्त तथा संधिवात पीड़ित सैंकड़ों स्त्रियों के जीवन की रक्षा इस क्वाथ से हुई है।

यदि केशरादि वटी के साथ इस क्वाथ को अनुपान रूप से दिया जाये तो लाभ जल्दी होता है।

२५. सूतिकाज्वरहरकषाय।

द्रव्य-हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, मुलहठी और बच ये ६ औषधियां ६-६ माशे और पोस्त के डोडे १ माशा लेवें।

विधि-सबको मिला जौकूटकर १६ गुने जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर दो हिस्से कर सुबह और रात्रि को पिलावें। पिलाने के समय गुड़ और हल्दी २-२ माशे और कली चूना १ माशा मिलावें। *(वैद्यराज श्री कांतिलालजी)*

उपयोग-इस कषाय का उपयोग १ सप्ताह करने पर सूतिका विष को जला देता है, रक्त का प्रसादन करता है, आम का पचन करता है, कफ को बाहर निकालता है और वातप्रकोप का शमन करता है, जिससे ज्वर, कास और शिरदर्द दूर होते हैं। इनके अतिरिक्त अरुचि, अपचन, हाथ पैरों में झनझनाहट, नाड़ियों का खिंचाव और पाण्डुता आदि लक्षण भी निवृत्त हो जाते हैं।

२६. शुष्कगर्भपातन योग।

विधि-बांस की गांठ ५ तोले को १ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान १ माशा कच्ची फिटकरी और २ तोले गुड़ मिलाकर पिलाते रहें। *(वैद्यराज श्री कौंतिलालजी)*

उपयोग-शुष्क गर्भपातन योग, छोड़ गिराने के लिये बिल्कुल निर्भय उपाय है। वात, पित्त और कफ, सब प्रकार की प्रकृतिवाली स्त्रियों को यह अनुकूल रहता है। किसी को हानि नहीं पहुँचाता। लगभग १० दिन तक यह पिलाया जाता है। छोड़ गिर जाने पर इसे बन्द कर देवें।

यह प्रयोग अनेक वर्षों से काठियावाड़ में घरेलू उपचार रूप से प्रसिद्ध है। इससे पूर्ण रूप से सफलता मिलती है। वहां पर स्त्रियों के भोजन में गेहूँ के आटे को तैल में भून गुड़ की चाशनी मिला हलुवा बनाकर भी खिलाते हैं और गर्भाशय पर थोड़ा सेक भी करती है। जिससे गर्भाशय में किसी प्रकार का विकार शेष नहीं रहता और गर्भाशय आकुंचित भी हो जाता है।

वक्तव्य-छोड़ गिर जाने पर सोया और सोंठ १-१ तोले को रोज सुबह क्वाथकर २ तोले गुड़ मिलाकर पिलाते रहने से गर्भाशय के भीतर जो लीन विष शेष रह जाता है, वह जल जाता है एवं गर्भाशय शुद्ध और सबल बन जाता है।

२७. अबलासंजीवन अर्क।

द्रव्य–अशोकछाल, काली सारिवा, रक्तचन्दन, मजीठ और दारुहल्दी इन पांचों को १-१ सेर लें।

विधि–सबको जौकूट चूर्ण करें फिर ८ गुने जल में भिगोकर अर्क खींच लेवें।

मात्रा–१ से २ औंस, दिन २-३ बार पिलावें।

उपयोग–यह अर्क स्त्रियों के विविध रोगों पर व्यवहृत होता है। अति रज:स्राव, रक्तप्रदर, प्रसव के पश्चात् गर्भाशय की शिथिलता, गर्भाशयदाह, शोथ, गर्भाशय विकार से चक्कर आना, घबराहट, हाथ पैरों में दाह, कमर में वेदना और निर्बलता को दूर करता है।

रक्तप्रदर में बीजाशय की विकृति होने पर थोड़ा-थोड़ा रक्त बार-बार गिरता है एवं कष्ट भी अनुभव होता है और साथ में घबराहट होती है। किसी-किसी को नेत्रों में निर्बलता आ जाती है। उस पर चन्द्रप्रभा वटी के साथ यह अर्क देने से रोग निवृत्त हो जाता है।

सुजाक होने पर कभी-कभी मूत्रनलिका में शोथ आकर वह गर्भाशय और बीजाशय तक फैल जाती है। फिर पेशाब में जलन, श्वेत प्रदर और सांधों में वेदना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह अर्क लाभ पहुँचाता है। साथ में मूत्रदाहान्तक चूर्ण देते रहना चाहिये।

२८. श्रीपर्णी तेल।

विधि–गम्भीर की छाल का कल्क २० तोले, गम्भीर छाल ८० तोले दोनों को १२८० तोले जल में उबालकर किया हुआ चतुर्थांश क्वाथ और तिल तैल ८० तोले मिलाकर मन्दाग्नि पर पाचन करें। इस तरह इस तैल को गम्भीर कल्क और क्वाथ में ३ बार पाचन करें। तीसरी बार तैल छानने के पहले १। तोला मोम मिला लेवें। *(भै.रं.)*

उपयोग–इस तैल में पट्टी भिगोकर स्तनपर रखकर उस पर नागरबेल का पान बांधे। इस तरह रोज रात्रि में तैल लगाते रहने से लटके हुये और शिथिल स्तन कुछ दिनों में दृढ़ हो जाते हैं।

२९. शिखर्यादि वर्ति।

विधि–अपामार्ग मूल का चूर्ण, गेहूँ का आटा, कत्था और अफीम ये ४ औषधियां ३-३ माशे मिला जल के साथ मसलकर ४-४ रत्ती की वर्त्तियाँ बना लेवें।

उपयोग–इस वर्ति को घृत से स्निग्ध कर योनि में चढ़ाने से गर्भाशय से होने वाले रक्तस्राव का तत्काल रोध हो जाता है।

मासिक धर्म का रक्त बहुत दिनों तक चलता रहने या अत्यन्त रक्तस्राव होने पर स्त्री अति शक्तिहीन हो जाती है। ऐसे ही प्रसव होने के पश्चात् रक्तस्राव बन्द न होता हो तो, प्रसूता का जीवन भय में हो जाता है। ऐसे प्रसंगों पर शुद्ध रक्त का स्राव हो रहा हो, तो रोकने के लिये इस वर्ति का उपयोग किया जाता है। एवं मुखद्वारा सेवानार्थ चन्द्रकला रस, तृणकान्तमणि पिष्टी, कामदुधा रस या अन्य औषधियां दी जाती हैं।

३०. गर्भपोषक योग।

गर्भधारण होने पर बार-बार गर्भस्राव या गर्भपात होता हो, वैसी गर्भिणी के गर्भ को पोषण देने के लिये निम्नानुसार योगों का दुग्धावशेष क्वाथ करके पिलाते रहना चाहिये अथवा चूर्ण को समान शक्कर के साथ मिलाकर दूध के साथ देते रहना चाहिये।

प्रथम मास में रक्तस्राव होने पर–मुलहठी, साग के बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु का क्वाथ या चूर्ण देवें।

द्वितीय मास में रक्तस्राव होने पर–काले तिल, मजीठ, अश्मन्तक (सिरहिटे) की छाल और शतावर का क्वाथ दें।

तृतीय मास में–बांदा, क्षीरकाकोली, नीलोत्पल और काली सारिवा का क्षीरावशेष क्वाथ पिलाते रहें या गिलोय, शतावर, प्रियंगु और काली सारिवा का क्वाथ देवें।

चतुर्थ मास में–धमासा, सारिवा, रास्ना, कमल की नाल और मुलहठी का क्वाथ देते रहें।

पंचम मास में–बड़ी और छोटी कटेरी, गंभारी की छाल, क्षीरी वृक्षों (बड़, गूलर, पीपल, पाखर और पारस पीपल) की छाल या जटा और दालचीनी का क्वाथ देते रहें।

षष्ठम मास में–पृष्ठपर्णी, खरैंटी, सुहिंजने के बीज, गोखरू और मुलहठी का क्वाथ देते रहें।

सप्तम मास में–सिंघाड़े, कमलकेशर, मुनक्का, कशेरू, मुलहठी और मिश्री का क्वाथ करके पिलाते रहें।

अष्ठम मास में रक्तस्राव होने पर–कपित्थ, बेलफल, बड़ी कटेरी, पटोलसत्र, ईख और छोटी कटेरी का दुग्धावशेष क्वाथ करके पिलाते रहें।

नवम मास में रक्तस्राव होने पर–मुलहठी, धमासा, क्षीरकाकोली और सारिवा का दुग्धावशेष क्वाथ पिलाते रहें।

दशम मास में रक्तस्राव होने पर–सोंठ को दूध और जल में उबाल शीतल करके पिलाते रहें। इस तरह सोंठ, मुलहठी और देवदारु का दुग्धावशेष क्वाथ पिलाते रहने से सगर्भा की वेदना का शमन होता है। और गर्भ बलवान बनता है।

वेदनाशमनार्थ कुश, काश, एरण्डमूल और गोखरू का दुग्धावशेष क्वाथ पिलाते रहने से भी वेदना दूर होती है।

वायु द्वारा गर्भ शुष्क हो जाये तो-मुलहठी, गंभारी, सोंठ, शतावर और असगन्ध का चूर्ण समान शक्कर के साथ मिलाकर २ माशा से ६ माशा तक दूध के साथ देते रहने से गर्भ की वृद्धि होने लगती है।

सूचना-आचार्यों ने गर्भ धारण के भिन्न-भिन्न महीनों में गर्भ की वृद्धि को लक्ष्य में रखकर विभिन्न औषधि योजनायें की हैं। फिर भी वर्तमान युग में कोमल देहवाली और अधिक परिश्रम सहन कर सकने वाली सगर्भा, ऋतु, देश, खानपान, आयु, प्रकृति भेद, वंशागत रोग, गर्भाशयविकृति, जीर्ण रोग में लीन विष आदि का विचार करके औषधि और मात्रा में न्यूनाधिकता कर लेनी चाहिये।

३१. गर्भाशयशोधन योग।

(१) लघु पञ्चमूल, (छोटी और बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और गोखरू पंचांग) का क्वाथ कर कांजी मिलाकर पिलावें, घी न मिलावें। क्वाथ पूर्ण मात्रा में देवें जिससे गर्भाशय में रहा हुआ शेष विकार निकल जायेगा और वेदना निवृत्त हो जायेगी।

(२) जीर्णावस्था में दूषितस्राव के निरोध और गर्भाशय शोधनार्थ-खैर- छाल, अनार की छाल और बबूल की छाल २-२ तोले, माजूफल और हरड़ १-१ तोला लेवें। सबको मिला जौकूट चूर्ण करें। उसमें से २-२ तोले चूर्ण को १॥ सेर जल में मिलाकर उबालें। ४-६ उफान आने पर उतारकर ढंक देवें। निवाया रहने पर छानकर ६ माशे बोरिक एसिड और ३ माशे कच्ची फिटकरी मिलाकर गर्भाशय में बस्ति (डूश) देवें। यह प्रयोग रोज सुबह एक बार ही करें। ४ दिन (यदि क्षत हो तो ८ से १५ दिन तक) प्रयोग करने पर गर्भाशय का जीर्ण शोथ दूर होकर क्षत स्थान शुद्ध होकर भर जाता है। दूषित दुर्गन्धयुक्त स्राव बन्द हो जाता है। गर्भाशय शिथिल हो गया हो तो आकुंचित हो जाता है, एवं योनिपथ दृढ़ हो जाने से गर्भाशयमुख (कमल) का अध:पतन (बाहर निकलना) बन्द हो जाता है। इस तरह यह बस्ति गर्भाशय को शुद्ध, सुदृढ़, सबल और नीरोगी बना देती है।

३२. गर्भाशय शोथघ्न योग।

द्रव्य-निम्बोली की गिरी, बकायन के बीज की गिरी, एरण्ड बीज की गिरी और रसौंत १-१ तोला और एलुवा ३ माशे मिला, एक जीव करें। फिर जल मिला ३ घण्टे खरलकर ३-३ माशे को शिखराकार वर्त्तियां बनावें।

उपयोग-इस वर्त्ति को रात्रि में सोने के समय जननेन्द्रिय में धारण कराने से योनिशूल और जलस्रावसह कमलप्रदाह दूर हो जाता है। आवश्यकतानुसार इस वर्त्ति का उपयोग १०-२० दिन तक करने पर गर्भाशय रोग नष्ट हो जाता है।

३३. योनिवातहर योग।

(१) **व्रण**-विद्रधि अधिकार में लिखे हुए निर्गुण्डी तैल के साथ सोलहवां हिस्सा जायफल का चूर्ण मिला, गरम करके छान लेवें। इसमें रुई का फोहा (पिचु भिगोकर रात्रि में सोने के समय) योनिमार्ग में रखने से कमलमुख और योनि भाग की शिथिलता दूर होकर कमलमुख से आवाजसह वायु निकलना भी बन्द हो जाती है।

(२) माजूफल के चूर्ण की पतली किन्तु जामुन सदृश पोटली बना निर्गुण्डी तैल में डुबोकर योनिपथ में धारण कराने से कमलमुख आकुंचित हो जाता है और योनिपथ दृढ़ भी बन जाता है। फिर कमलमुख नीचे नहीं उतरता, वायु भी नहीं सरती एवं वायु भर जाने से आया हुआ भारीपन भी दूर हो जाता है।

३४. गर्भिणीरोगहर योग।

गर्भाशय में शूल चलने पर दर्भमूल, कासमूल, एरण्डमूल और गोखरू को २-२ तोले मिला ६४ तोले जल और ६४ तोले दूध मिलाकर **दुग्धावशेष** क्वाथ करें। फिर ४ विभाग कर शक्कर मिलाकर १-१ घण्टे के अन्तर से पिलाने पर शूल शान्त हो जाता है।

(२) छोटे गोखरू, मुलहठी और मुनक्का को दूध में पीसकर शक्कर मिलाकर पिला देने से गर्भाशय शूल निवृत्त हो जाता है।

(३) मूत्रावरोध होने या मूत्र परिमाण में कम होकर दुर्गन्धयुक्त बन जाने पर दर्भ, कुश, कास, ईख और शर इन सबके मूल (पञ्चतृणमूल) को मिला ४ तोले का दुग्धावशेष क्वाथ कर, पिलाने से मूत्रावरोध, मूत्र गन्दल होना, मूत्र में दुर्गन्ध आना, मूत्र में रक्त जाना, मूत्र में लसीका जाना आदि विकार दूर होते हैं। यह उत्तम बस्तिशोधक योग है।

(४) गर्भाशय में वातप्रकोप हो, तो बेलगिरी, अरणीमूल और सोंठ का क्वाथ करके पिलाना चाहिये।

(५) अतिसार या प्रवाहिका होने पर आम की गुठली, जामुन की गुठली से लाभ हो जाता है।

(६) वमन होती हो तो धनियां, नागरमोथा और शक्कर २-२ तोले और सोंठ ६ माशे मिला। सेर जल में उबालें। ३-४ उफान आ जाने पर उतारकर छान लेवें। उसमें से थोड़ा-थोड़ा जल पिलाते रहने से सगर्भा की वान्ति दूर हो जाती है।

(५१) बाल रोग

१. मुक्तादि वटी।

द्रव्य–मोतीपिष्टी २ तोले, सुवर्ण के वर्क, चांदी के वर्क, कमलकेशर, गुलाबकेशर (पुष्पों के भीतर का जीरा), कहरवा, जहरमोहराखताई, संगेयशव और गोरोचन, ये ८ औषधियां १-१ तोला, नागकेशर २ तोले, केशर ६ माशे, कपूर ३ माशे और गोदन्ती भस्म १२॥ तोले लेवें।

विधि–वर्क के अतिरिक्त अन्य औषधियों के चूर्ण को मिला फिर १-१ वर्क मिलाकर मर्दन करें। पश्चात् गुलाबजल में ८ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा–१ से ४ गोली, दिन में दो बार माता के या गौ के दूध में।

उपयोग–यह वटी बालकों के शोष को दूर करती है। जीर्ण ज्वर, बालक कृश हो जाना, पाण्डुरोग, अपचन, अफरा, वान्ति या दस्त होकर दूध निकल जाना, खाँसी, स्फूर्ति का अभाव, मुखपाक, पेशाब गाढ़ा होना आदि विकार इस वटी के सेवन से दूर होकर बालक नीरोग और सबल हो जाता है।

वक्तव्य–इस वटी के साथ अरविन्दासव देते रहने से लाभ जल्दी पहुँचता है यदि क्षुद्र शंखभस्म भी मिलायी जाये, तो गुण विशेष होता है। (संशोधक)

२. मालती चूर्ण।

विधि–असली खर्पर या केलेमेना प्रेपेटा १ सेर लेकर हांडी में डाल १ सेर नींबू के रस में मिलाकर मन्दाग्नि पर उबालें। रस जल जाने पर हांडी को उतार लेवें। शीतल हो जाने पर धो लेवें। यह शुद्ध खर्पर १ सेर, बड़ी हरड़ १ सेर और छोटी इलायची (छिल्के सहित) आधा सेर मिला, कूट कपड़छन चूर्णकर बोतल में भर लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा–१ से ३ रत्ती तक, दिन में दो बार, शहद, मां के दूध या जल के साथ।

उपयोग–यह चूर्ण बालकों के बालशोष, जीर्ण अतिसार, जीर्णज्वर, वमन, मुखपाक, गुदपाक, अस्थिमार्दव, निर्बलता, अग्निमांद्य आदि रोग तथा प्रसूता के जीर्ण ज्वर को दूर करता है तथा रसधातु और रसायनियों को पुष्ट बनाता है। इसी हेतु से शेष रक्त आदि धातुएं भी सबल बन जाती हैं।

इस चूर्ण के उपयोग से बालशोष रोग थोड़े ही दिनों में दूर हो जाता है। यदि बालक को पतले दस्त लगते हों, तो पहले सप्ताह में चावल के धोवन के साथ, दूसरे सप्ताह में मट्ठे के नितरे हुए जल के साथ और तीसरे सप्ताह में शहद के साथ सेवन कराना चाहिये। ३ सप्ताह के पश्चात् भी जब तक रोग निवृत्त न हो जाये, तब तक शहद, माता के दूध या जल के साथ देते रहें।

यदि बालशोष के साथ ज्वर रहता हो, तो इस चूर्ण को शहद या जल के साथ १ मास तक देते रहने से बालक रोग मुक्त होकर पुष्ट बन जाता है। अस्थिमार्दव रोग में मालती चूर्ण को प्रवाल पिष्टी और मण्डूर भस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से सत्वर रोग निवृत्त हो जाता है।

जो स्त्री प्रसवकाल में जीर्ण ज्वर से कृष हो गई हो, उसे दिन में दो बार मालती चूर्ण ३ से ६ रत्ती के साथ गोदन्ती भस्म ३ से ६ रत्ती मिलाकर देते रहने से वह भी पुष्ट बन जाती है। यदि शरीर रक्तहीन, निस्तेज, पाण्डु रंग का प्रतीत होता हो, तो मधुमण्डूर भी २-२ रत्ती मिलाना चाहिये।

३. बाल वटी।

द्रव्य–जीरा, छाया में सुखाया हुआ पोदीना, हरड़, बायविडङ्ग, लौंग, अतीस, सौंफ, जायफल, भांग, रुमीमस्तंगी, कछुए की पीठ की भस्म, कोयल (गोकर्णी) के बीज, जहरमोहरा पिष्टी और केशर, ये १४ औषधियां समभाग लें।

विधि–कपड़छन चूर्ण करें। फिर घीकुंवार के रस में १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा–१ से २ गोली, प्रात:सायं दूध में मिलाकर पिलावें।

उपयोग–इस गोली का सेवन कराने से बालकों को दूध का पाचन अच्छी तरह होता है, शान्त निद्रा आती है रक्त आदि धातुयें बलवान् बनती है और बालक का स्वास्थ्य उत्तम रहता है। जुकाम, अतिसार, वान्ति, कास आदि का प्रकोप हुआ हो, तो वह भी दूर हो जाता है।

४. सुधाषट्क योग।

विधि–प्रवाल भस्म १ तोला, शुक्ति भस्म २ तोले, शंख भस्म ३ तोले, वराटिका भस्म ४ तोले, कछुए की पीठ की भस्म ५ तोले और गोदन्ती भस्म ६ तोले मिला नींबू के रस में ३ दिन खरलकर लेवें। *(स्व. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा–१ से ४ रत्ती, दूध के साथ दिन में ३ बार।

उपयोग–यह सुधाकल्प अस्थिमार्दव और बालशोष (सूखा) पर अच्छा लाभ पहुँचाता है। सगर्भावस्था में माता निर्बल होने पर या बाल्यावस्था में माता के रुग्ण हो जाने या अन्य किसी कारण से बालक का योग्य पोषण नहीं होता। माता की अस्थियाँ निर्बल होने पर दुग्ध (स्तन्य) में अस्थिपोषक सत्व कम होता है। इस हेतु से बालक को अस्थिमार्दव (Rickets) रोग हो जाता है। इस रोग में विशेषत: पैर की हड्डी मुड़ जाती है, छाती और हाथ आदि की हड्डियां भी अति कमजोर हो जाता है, नितम्ब में सिकुड़न पड़ जाती है। किसी-किसी बच्चे को ज्वर भी रहता है; बार-बार थोड़ा-थोड़ा दस्त होता रहता है या कब्ज बनी रहती है। इस रोग में हड्डियों में सुधा (चूना) का परिमाण कम हो जाता है। इस हेतु से इस सुधाकल्प का सेवन कराने पर उसकी पूर्ति होकर हड्डी सबल बन जाती है; ज्वरशमन हो जाता है, पचनक्रिया सुधर जाती है और शरीर बलवान और नीरोगी बन जाता है।

५. बालशोषहर वटी।

द्रव्य (प्रथम विधि)–कस्तूरी १ माशा, केशर २ माशे, साँठी चावल १ तोला और गधी का दूध ४ तोला लें।

विधि–सबको मिलाकर खरल करें। लगभग ३ दिन खरल करने से दूध का शोषण हो जायेगा। (दूध २॥-२॥ तोले २ बार डालना अच्छा माना जायेगा) फिर १/४-१/४ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(पं. श्री रामगोपालजी रावत)*

मात्रा–१-१ गोली; दिन में दो बार; दूध या शहद के साथ देवें। गधी के दूध का प्रबन्ध हो सके तो, उसके साथ देना अधिक हितावह है।

उपयोग–यह बालशोषहर वटी बालशोष (Marasmus) को दूर करती है। इस वटी का उपयोग उत्तर प्रदेश में सफलतापूर्वक कई वर्षों से होता आ रहा है। अस्थि विकृति हो तो प्रवालपिष्टी और वंशलोचन मिला लेना विशेष लाभदायक है। उदर बहुत बढ़ गया हो तो अभ्रक भस्म १/१६ रत्ती मिलाने पर लाभ जल्दी होता है।

द्वितीय विधि–प्रवालपिष्टी और लघुवसन्त (प्रथम विधि) को समभाग मिला गूलर के दूध में १२ घण्टे खरलकर आध-आध रत्ती की गोलियाँ बना लें।

उपयोग–यह गुटिका बालकों के लिये महौषध है। १-१ गोली दिन में ३ बार जल या दूध के साथ देने से बालशोष, अस्थिमार्दव, जीर्णज्वर, कास, अतिसार आदि रोग दूर होते हैं। यह बड़े मनुष्यों के शोषरोग और निर्बलता को दूर करने में हितावह है। बड़े मनुष्यों को ४-४ रत्ती की मात्रा दिन में दो बार देनी चाहिये।

बालशोष होने के कई कारण हैं उदरकृमि, ज्वर, मोतीझरा, निमोनिया, इन्फ्लूएंजा, विषमज्वर आदि। अतिसार, प्रवाहिका, वंशागत उपदंश या सुजाक या अन्य कोई रोग मूल हेतु हो, तो उसे दूर करने वाली औषधि के साथ बालशोषहर वटी की योजना करनी चाहिए।

माता के रुग्ण और कृश होने के हेतु से भी शिशु के शरीर और अस्थि संस्थान में निर्बलता आ जाती है, एवं उसमें स्फूर्ति की प्रतीति भी नहीं होती। ऐसे बालकों को यह बालशोषहर वटी दूसरी विधि आशीर्वाद के समान है। यदि देह पाण्डु रोगी जैसी निस्तेज भासती हो, तो मधुमण्डूर भी चौथाई रत्ती मिलाते रहें।

सूचना–(१) माता का स्तन्य दूषित हो तो ऐसा स्तन्य पिलाना बन्द करना चाहिये। धाय, बकरी का दूध या गोदुग्ध या विदेशी दूध का पाउडर, जो बालकों के लिये उपयोगी, जो उनकी प्रकृति को अधिक अनुकूल भासता हो, देना चाहिये।

(२) बालक को माता का स्तन्य कम मिलता हो, तो गोदुग्ध या अजादुग्ध एवं फलों का रस भी दे सकते हैं।

(३) बालशोषहर तैल या अन्य हितकर तैल का मर्दन भी करते रहने से लाभ शीघ्र पहुँचता है।

६. हिंगुलादि गुटिका (डब्बा)।

विधि–शुद्ध सिंगरफ, जायफल, जावित्री, गोरोचन, ये चारों १-१ तोला और शुद्ध जमालगोटा ४ तोले मिलाकर नींबू के रस में ३ दिन खरलकर चौथाई रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(सिं.भे.म.)*

मात्रा–१ गोली जल के साथ आवश्यकता पर ३ घण्टे पर पुन: १ गोली दें।

उपयोग–यह गुटिका एक या दो दस्त लाकर बालकों के डब्बा रोग को दूर करती है एवं शोथ और जलोदर हो गये हों, तो उनको भी शमन कर देती है।

सूचना–यदि डब्बे की बीमारी में पहले ही पतले दस्त लग रहे हों अथवा कब्ज न हों, तो इस औषध का प्रयोग न करें।

७. तुत्थादि वटी।

द्रव्य–शुद्ध नीलाथोथा+और सोहागे का फूला ५-५ तोले, और खैरसार १० तोले लें।

विधि–तीनों औषधियों को मिला नागर बेल के पानों के रस में १२ घण्टे खरलकर पाव पाव रत्ती की गोलियाँ बना लेवें।

\+ नीलाथोथा रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह प्रथम खण्ड के शोधन प्रकरण में छपी हुई विधि से शुद्ध किया हुआ लेवें।

मात्रा-१-१ गोली; दिन में २ बार, जल मिले नींबू के रस या शहद के साथ देवें। कफ प्रकोप हो, तो पान के रस और शहद के साथ दें।

उपयोग-तुत्थादि वटी उत्तम संशोधक, आमपाचक, कीटाणुनाशक, ग्राही, यकृद् बलवर्द्धक और कफहर है। जिन बच्चों को पतले, हरे, पीले या सफेद दस्त होते हों, मन्द ज्वर, अपचन और कफ प्रकोप भी बना रहता हो, देह अस्थि पंजर सदृश हो गया हो, तुत्थादि वटी सेवन कराने पर थोड़े ही दिनों में लाभ हो जाता है। देह निराग और सबल हो जाती है।

८. बालयकृदरि लोह।

द्रव्य-अभ्रक भस्म, लोह भस्म, पारद (रससिन्दूर), जम्भीरी नींबू के बीज, अतीस, सरफोंका की जड़, रक्तचन्दन और पाषाणभेद, इन ८ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिला गिलोय के स्वरस के साथ १ दिन खरलकर २-२ चावल जितने वजन की गोलियाँ बना लेवें। *(रं.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ गोली, रोगानुसार अनुपान के साथ दिन में २ बार दें।

उपयोग-यह रसायन बालकों की घोर यकृद्वृद्धि, ज्वर, प्लीहावृद्धि, शोथ, विबंध, पाण्डुरोग, कास, मुखरोग और उदर रोगों को ऐसे नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

बालयकृदरि लोह में यकृत् पर उपकारक मुख्य औषधि पारद भस्म है। शेष औषधियां सहायक हैं। इनमें अभ्रक भस्म और लोह भस्म मांस संस्थान और रक्त संस्थान पर उपकारक हैं। शेष औषधियां गुण वृद्धि और मलदोष निवारणार्थ मिलाई हैं।

यदि मलावरोध रहता हो तो साथ में बालमित्र चूर्ण तीसरी विधि (कडुभर्जित चूर्ण) भी देते रहना चाहिये। यदि शोथ अधिक हुआ गया हो तो पुनर्नवाष्टक कषाय अनुपान रूप से देना विशेष हितावह है।

यदि यकृत् अत्यधिक बढ़ा हो तो ऊपरी भाग पर जलनीम (ब्राह्मी) का लेप करने से भी रोग शमन में सहायता मिल जाती है।

सूचना-यकृत् की वृद्धि अधिक परिमाण में हो जाने पर शिशुओं को गोदुग्ध फाड़कर छाना हुआ जल ही पिलाते रहें, तो सत्वर लाभ मिलता है। घी, अन्न या दूसरा कुछ भी नहीं देना चाहिये।

गोदुग्ध को गरम करें, उबलने पर उसमें नींबू निचोड़ने से २-४ मिनट में जल पृथक् हो जाता है। उस जल को छानकर पिलाने के उपयोग में लेवें।

माता के स्तन पर रहे हुए शिशु को यकृद् वृद्धि हुई हो तो माता को भी पथ्यपालसह बालयकृदरि लोह कुमार्यासव के साथ सेवन कराते रहना चाहिये।

९. अम्बुशोषण चूर्ण (शीर्षाम्बु)।

विधि-रससिंदूर, यवक्षार, रेवतचीनी, छोटी इलायची के दाने, भांरगी, तेजपात, दालचीनी, हरड़, और इन्द्रायण का मूल, इन सबको समभाग मिलाकर खरलकर लेवें। *(भं.र.)*

इस रसायन के साथ अभ्रक भस्म और ताम्रभस्म मिला देने पर गुण सत्वर दर्शाता है।

मात्रा-१ से २ रत्ती, दूध के साथ, दिन में १ या २ बार।

उपयोग-यह रसायन मस्तिष्क में संगृहीत जल के शोषणार्थ प्रयुक्त होता है। कुछ दिनों तक शान्तिपूर्वक सेवन कराने पर रोग निवृत्त हो जाता है।

मस्तिष्क के आवरण के भीतर ब्रह्मवारि जल (Cerebro Spinal Fluid) स्वाभाविक रहता है। प्रदाहावस्था के कारण से यह जल बढ़कर दूषित हो जाता है। और फिर मस्तिष्क बहुत बढ़ा हुआ भासता है। परिणाम में मस्तिष्कस्थ इतर उपांगों और केन्द्रों पर दबाव बढ़ जाता है। यदि इस जल को शीघ्र कम नहीं किया जाता है तो सारे शरीर में विष प्रकोप हो जाता है। अत: जल ह्रास कराने के लिए अम्बुशोषण चूर्ण का सेवन किया जाता है इससे स्वेद ग्रन्थियां, वृक्क और अन्त्र पर प्रभाव पड़ता है। फिर स्वेद और मूत्र की वृद्धि होती है तथा अन्त्र मार्ग से भी विषाक्त जल बाहर निकलता रहता है।

इस रसायन में अभ्रक भस्म मिलाने से मस्तिष्क का संरक्षण होता है और ताम्र भस्म मिलाने पर यकृत् और वृक्क उत्तेजित होते हैं और विष अधिक मात्रा में बाहर निकलता रहता है।

अधिक कब्ज रहती हो और इस चूर्ण के सेवन कराने पर भी उदर शुद्धि न होती हो, तो पीतमूल्यदि कषाय को भी सेवन कराते रहना चाहिये।

१०. पीतमूल्यदि कषाय।

विधि-रेवन्तचीनी, शटी, काली निशोत, सफेद निशोत, आंवला, हरड़, काली अनन्तमूल, धनियां, मुलहठी, कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, दारु हल्दी, तेजपात, दालचीनी और छोटी इलायची के दाने, इन १६ औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। *(भै.र.)*

मात्रा-३-३ माशे चूर्ण का क्वाथकर, उसमें आध रत्ती यवक्षार मिलाकर दिन में १ या २ बार पिलावें।

उपयोग-यह कषाय मस्तिष्क में जल वृद्धि को कम करता है। कितने ही बालकों को दांत आने के समय या उदर कृमि होने पर या वायुप्रकोप होने से मस्तिष्क में जल भरने लगता है। तब मस्तिष्क का आकार बड़ा हो जाता है एवं जिह्वा का मल से आवृत रहना, अति निद्रा आना, शरीर दुर्बल हो जाना, मल का अति गाढ़ा हो जाना, श्वास में दुर्गन्ध आकर फिर शिर में वेदना होना, मलमूत्र में कालापन, त्वचा में रूक्षता और कालापन आ जाना, मुखमण्डलनिस्तेज दीखना, निद्रा में दांतों को चबाना, लालनेत्र, ओष्ठ पर खुजली चलना, नासिका में आक्षेप होना, नेत्र की पुतली विषम आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग पर मल-मूत्र का विरेचन कराने वाली और रक्त प्रसादक औषधि दी जाती है। ये गुण इस कषाय में होने से इसका सेवन कराने पर रक्त में से बहुत-सा जल बाहर निकल जाता है तथा कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फिर मस्तिष्क या देह के अन्य भाग में जहाँ जल संगृहीत हो, वहाँ से रक्त के भीतर आकर्षित हो जाने से शीर्षाम्बु रोग का शमन हो जाता है। इस रोग में औषधि कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये। बालक को गरम वस्त्र से लपेट कर रखना चाहिये। बालक माता के दूध पर हो, तो माता को भी पथ्य पालन कराना चाहिये।

सुबह इस कषाय का और शाम को अम्बुशोषण चूर्ण का सेवन कराते रहना विशेष लाभदायक है।

११. वचाहरिद्रादि कषाय।

विधि-बच, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ अतीस, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, पृश्निपर्णी, इन्द्रजौ इन १० औषधियों को समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

मात्रा-बालक के लिये ३-३ माशे का क्वाथ और माता के लिये २-२ तोले का क्वाथ, दिन में ३ बार देवें।

उपयोग-वचाहरिद्रादि कषाय दीपन, पाचन, वातहर, कफघ्न, कीटाणुनाशक और ग्राही है। बालकों के अतिसार में प्रयुक्त होता है। कफवृद्धि अथवा जुकाम हो, तो वे भी दूर हो जाते हैं। शिशु की माता को देने पर दूषित स्तन्य (दूध) की शुद्धि होती है।

बालकों के कण्ठविकार, कण्ठरोहिणी (डिफ्थेरिया) आदि रोगों में आध-आध रत्ती सोहागे का फूला मिलाकर सेवन कराया जाता है। एवं गले में ग्लिसरीन अथवा शहद में सोहागे के फूले का चूर्ण मिलाकर लगाते रहने से नया रोग सरलता से दब जाता है।

१२. बालरक्षक शर्बत।

द्रव्य-शुद्ध डीकामाली (नाड़ी हिंगू)* १० तोले, बायविडंग १० तोले, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोया और छोटी इलायची के दाने १।-१। तोला देवें।

विधि-सबको मिला २॥ सेर जल में उबालकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान १। सेर शक्कर और २ रत्ती केशर मिलाकर शर्बत बना लेवें। तैयार होने पर तुरन्त छानकर शीतल होने पर बोतल में भर लेवें।

मात्रा-६० बूंदें (चाय का एक चम्मच), दिन में २ बार देवें।

उपयोग-बालरक्षक शर्बत बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला, स्वादिष्ट सुगन्धित, सौम्य और निर्भय पेय है। यह शर्बत दीपन-पाचन, रुचिकर, सारक, कृमिघ्न और बल्य है। मलावरोध, अतिसार, मिट्टी खाने की आदत, उदर बड़ा हो जाना, अपचन, आँतों में वायु भरा रहना, अफरा, जुकाम, दूध फेंकना, गोल कृमि (round Worm) उदरपीड़ा, कृमि के हेतु से नाक, गुदा और मूत्रेन्द्रिय पर कण्डू चलती हो तथा शरीरीक कृशता और निस्तेजता आदि विकार हों तो उनको दूर करता है। बालक को प्रसन्न रखता है और बल बढ़ाता है। दाँत आने के समय होने वाली पीड़ा, ज्वर; हरे-पतले दस्त लगना और बेचैनी आदि भी इस शर्बत के सेवन से दूर हो जाती है। यह शर्बत विलायती बालामृत (हाइपो फोस्फेट ऑफ लाइम के शर्बत) के समान देखने में सुन्दर नहीं है, किन्तु उसकी अपेक्षा गुण दृष्टि से विशेष हितावह है:

जब माता अति कृश होने से वा गर्भावस्था में माता बीमार रहने से शिशु निर्बल रहता है तब बालक की हड्डियां कमजोर हों, तो सुषाषट्क, प्रवालपिष्टी आध से १ रत्ती, शर्बत के साथ देते रहना चाहिये। बच्चा बालशोष से पीड़ित रहता हो, तो उस पर भी सुधाषट्क के साथ यह शर्बत प्रयुक्त होता है।

१३. कुक्कुरकासहर मिश्रण।

द्रव्य-प्रवालपिष्टी और श्रृंगभस्म १०-१० तोले, गोदन्ती भस्म, वंशलोचन और गिलोयसतव ५-५ तोले, छोटी इलायची के दाने २॥ तोले लेवें।

---

* **नाड़ी हिंगू शोधन**-डीकामाली को चार गुने जल में मिलावें। अच्छी तरह मिल जाने पर पानी के ऊपर तैरने वाले पान और डण्ठलों के टुकड़ों को फेंक दें और जल को छान लेवें। बाद में उस पात्र के किनारे पर स्वच्छ रुई की तह अथवा साफ कपड़े की पट्टी रखकर उस जल को दूसरे पात्र में टपका लेवें एवं तलस्थ पिट्टी को फेंक देवें। फिर उस जल को मंदाग्नि पर या सूर्य के ताप में गाढ़ाकरने पर शुद्ध हो जाती है।

विधि–पहले वंशलोचन और छोटी इलायची के दानों को अच्छी तरह खरलकर एक जीव कर लें। फिर शेष औषधियां मिलाकर खरलकर लें।

मात्रा–१ से २ रत्ती, दिन में ३ या ४ बार, बनफशा के शर्बत या शहद के साथ देवें।

उपयोग–कुक्कुरकासहर मिश्रण का उपयोग काली खांसी पर होता है। यह स्वंर यंत्र और श्वास प्रणालिका की उग्रता का दमन कराकर कास को दूर कर देता है।

काली खांसी के आरम्भ में यदि बालघोरकासघ्न चूर्ण दे दिया जाये, तो लाभ पहुँच जाता है किन्तु अति प्रभावशील रोगी को अधिक उग्रता उपस्थित हो जाने के पश्चात् बालघोरकासघ्न चूर्ण या हरतालगोदंती भस्म जब सहन नहीं होती, तब यह मिश्रण देने से २-३ दिन के भीतर ही अपना शामक गुण दर्शा देता है और १०-१५ दिन में रोग को बिल्कुल दूर कर देता है।

१४. चैतन्योदय रस।

द्रव्य–रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, गोरोचन, बीरबहूटी और सोहागे का फूला १-१ तोला, खुरासानी, बच, कड़वा कूठ और मृगश्रृंग भस्म २-२ तोले, केशर ६ माशे और कस्तूरी ३ माशे लेवें।

विधि–सबको मिला नागरबेल के पानों के रस में ६ घण्टे तक खरल करके १/४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा–१-१ गोली, शहद, स्तन्य या रोगहर क्वाथ के साथ २-२ घण्टे पर ३ बार या एक दिन में २ या ३ बार देवें।

उपयोग–चैतन्योदय रस बालकों के लिये आशीर्वाद रूप है। यह चेतना प्रद, मस्तिष्क रक्षक, हृद्य, कफघ्न और कीटाणुनाशक है। डब्बारोग में जब बालक की शरीरिक शक्ति क्षीण होती है, तब शक्ति के संरक्षाणार्थ इस रस का प्रयोग होता है। जीवन से हताश हुए अनेक बालको के जीवन की इस प्रयोग से रक्षा हुई। पर मुख्य औषधि के साथ सहायक रूप से दिन में २ बार इस वटी का सेवन कराने से रोग जल्दी दूर होता है।

१५. रसपीपरी।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, अतीस, काकडासिंगी, नागरमोथा, मोचरस, जायफल, जावित्री, सोहागे का फूला और बड़ी पीपल ये १३ औषधियां लेवें।

विधि–पहले पारद-गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण तथा ३ माशे कस्तूरी मिलाकर अदरक के रस के साथ ६ घण्टे खरलकर मूंग के समान गोलियां बना लेवें। *(आरोग्य प्रकाश)*

वक्तव्य–मूलग्रन्थ में जल के साथ खरल करने को लिखा है, पर हमने अदरक के रस के साथ खरल किया है, जो सत्वर लाभप्रद प्रतीत हुआ है।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ बार, स्तन्य, शहद या जल के साथ।

उपयोग–यह वटी बालाकों के ज्वर, प्रतिश्याय, कफ, कास, श्वास, डब्बा, अतिसार, हरे-पीले दस्त, वातप्रकोप, हिक्का तथा ज्वर के पीछे की निर्बलता आदि रोगों को दूर करती है, क्षुधा को बढ़ाती है, और मन को प्रफूल्लित करती है तथा स्फूर्ति लाती है। इस वटी का उपयोग निर्बल बच्चों के लिये शक्तिवर्द्धक रूप से भी शीतकाल में होता है। यदि माता की निर्बलता या अन्य हेतु से अस्थि दौर्बल्य हो तो प्रवालपिष्टी आध-आध रत्ती साथ में देते रहना चाहिये।

१६. बालरस।

द्रव्य–शुद्ध पारद ८ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले और सुवर्णमाक्षिक भस्म ४ तोले लें।

विधि–पहले कज्जली बनावें। फिर मिलाकर लोह खरल में काले भांगरे, सफेद भांगरे, निगुण्डी के पान, सकोय, ग्रीष्म सुन्दर (गीमाशाक), हुलहुल, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी (हरद्वार की ब्राह्मी) और सफेद कोयल (श्वेत विष्णुक्रान्ता), इन ९ औषधियों के स्वरस या क्वाथ की १-१ भावना देवें। फिर कालीमिर्च का चूर्ण २ तोले मिलाकर १ प्रहर तक पत्थर के खरल में घोटें और १/८ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.सा.सं.)*

मात्रा–१ से २ गोली; दिन में २ बार; माता के दूध या जल से।

उपयोग–यह बाल रस बालकों के बढ़े हुए त्रिदोषज ज्वर, कास, जुकाम, श्वास, मलावरोध, अनिद्रा, रक्तपित्त, उदरकृमि और उदरपीड़ा को दूर करके बल को बढ़ाता है। जीर्णज्वर में भी यह रस दिया जाता है। काली मिर्च के संयोग के हेतु से योग आशुफलप्रद बना है। माता-पिता के फिरंगज विकार को भी दूर करता है।

१७. बालरक्षक बिन्दु।

द्रव्य–केशर, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची के दाने, लौंग, पीपल, अतीस, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, सोया, बच और बायविडंग ये १२ औषधियां १-१ तोला, कस्तूरी ३ माशे परिशोधित सुरासार (६०%) ३० तोले लेवें।

विधि–काष्ठादि औषधियों को कूटकर जौकूट चूर्ण करें। फिर चूर्ण, केशर और कस्तूरी को तीव्र मदिरा की बोतल में डालकर १ सप्ताह रख देवें। रोज दिन में १-२ बार बोतल को चला लेवें। ८वें दिन फिल्टर पेपर से छान लेवें और जितनी तीव्र मदिरा कम हुई हो उतना मिलाकर ४० तोले पूरा कर लेवें।

मात्रा–१ से ५ बूंद, स्तन्य, गोदुग्ध या जल के साथ दिन में ३ बार।

उपयोग–यह बिन्दु बालकों के लिये अमृतस्व रूप उपकारक है। बच्चों के जुकाम, हरे पीले दस्त, दूध फेंकना, वान्ति, वालाक्षेप, उदरशूल, पार्श्वशूल, कास, श्वास आदि को सत्वर दूर करता है।

१८. ज्वरान्तक चूर्ण।

विधि–कड़वी नाही के मूल १० तोले और काली मिर्च २॥ तोले को मिला के कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा–आध से २ रत्ती तक; दिन में ३ बार देवें।

उपयोग–यह ज्वरान्तक चूर्ण बालकों के ज्वर के लिये अति हितावह है। मलावरोध, अपचन और कफप्रकोप हो तो उनको भी दूर करता है। पतले दस्त होते हों तो फिटकरी का फूला १ रत्ती मिला देना चाहिये। ज्वर अधिक परिमाण में रहता हो तो गोदन्ती भस्म १ रत्ती मिला देनी चाहिये।

यदि बड़े मनुष्य को पित्तज्वर हो एवं पतले पतले दस्त, व्याकुलता, अधिक स्वेद, शिरदर्द और उग्रता आदि लक्षण हों तो उनको भी यह ज्वरान्तक चूर्ण १॥-२ माशे में फिटकरी का फूला ३-४ रत्ती मिलाकर दिया जाता है।

१९. कासान्तक कषाय।

विधि–वनप्सा के फूल, गुलाब के फूल, उन्नाब, छोटी हरड़, काली मुनक्का, अमलतासका गूदा और मुलहठी, इन सबको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें।

उपयोग–६ माशे चूर्ण को ४ तोले जल में उबालकर अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर उसमें से आध आध तोला कषाय दिन में ४ बार देते रहने से बालकों की काली खाँसी और पित्तप्रकोपज शुष्क कास शान्त हो जाता है। यदि इस कषाय के साथ कामदुधा रस १-१ रत्ती देते रहें, तो लाभ सत्वर होता है।

२०. बालशोषहर तैल।

विधि–केंचुवें गीले २० तोले को तिल तैल ६० तोले में मिलाकर अति मन्द अग्नि पर उबालें। तैल पक जाने पर कड़ाही को उतारकर तुरन्त छान लेवें।

उपयोग–यह तैल बालशोष (सूखारोग) पर अति लाभदायक माना गया है। प्रतिदिन रात्रि को इसकी सर्वांग में मालिश कराते रहने और बालशोषहर गुटिका का सेवन कराते रहने से २१ दिन में सूखा रोग दूर हो जाता है। इस तैल का प्रयोग उत्तर प्रदेश में अधिक हो रहा है।

२१. महाभूतराव घृत।

द्रव्य व विधि–तगर, मुलहठी, कांटेदार करंजके पान, लाख, पटोल, लजालू, बच, पाढल, हींग, सरसों, बड़ी कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, गम्भारी, बेर, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चौधारा थूहर, देवदारु, बायविडंग, जंगली तुलसी, गिलोय, अंकोल, कड़वी तोरई का फल, सुहिंजने की छाल, नीम की अन्तरछाल, नागरमोथा, इन्दजौ, कूठ, सिरस के बीज, अजवायन, मुलहठी, कोयल (गिरिकर्णिका), दन्तीमूल, चित्रकमूल की छाल और बेल की छाल, इन ४१ औषधियों को २-२ तोले लेकर कल्क करें। फिर यह कल्क, गोघृत ४ सेर और मूत्राष्टक (भैंस, बकरी, भेड़ गौ, घोड़ी, गधी, ऊटनी और हथिनी का मूत्र) १६ सेर मिलाकर मंदाग्नि से घृत सिद्ध करें।

(अ.हृ.)

मात्रा–२ से ४ माशे; दिन में दो बार देवें।

उपयोग–इस घृत का सेवन कराने से बालकों के उन्माद, बालग्रह, अपस्मार, कुष्ठ, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। आन्तरिक प्रयोग के अतिरिक्त नस्य, अभ्यंग और अञ्जन रूप से भी इसका उपयोग होता है। यह घृत शरीर के भीतर संगृहीत दोष को बाहर निकाल कर, पचन क्रिया को सुधारता है तथा वात संस्थान को सबल बनाता है। अन्त्रविकृति और वातसंस्थान की विकृति या शिथिलता से उत्पन्न रोगों को नष्ट करने में हितकारक है। यह घृत बालक और बड़े मनुष्य सबके लिये हितावह है।

२२. कुमार कल्याण घृत।

द्रव्य व विधि–शंखाहुली, बच, ब्राह्मी, कूठ, हरड़, बहेड़ा आंवला, मुनक्का, मिश्री, सोंठ, जीवन्ती (गुजराती डोडीशाक), जीवक, खरैंटी, कचूर, धमासा, बेलछाल, अनार की छाल, तुलसी के पत्ते, शालपर्णी, नागरमोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, पीपल, खस, गोखरू,

अतीस, पाठा, बायविडंग, देवदारु, चमेली के फूल, महुए के फूल, पिण्डखजूर, मीठे बेर और वंशलोचन, ये ३४ औषधियां १-१ तोला मिलाकर कल्क करें। फिर यह कल्क, और कल्क से चौगुना गोघृत, घीसे ४-४ गुने गोदुग्ध और छोटी कटेरी के क्वाथ को मिला मंदाग्नि से घृत सिद्ध करें। *(स्वं. पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)*

मात्रा-१ से ३ माशे, दिन में दो बार, मिश्री मिलाकर चटावें या निवायें दूध में मिलाकर पिलावें।

उपयोग-यह घृत १-२ वर्ष की आयु वाले बालक के लिये लाभदायक है। इस घृत के सेवन से दाँत आने के समय में कष्ट नहीं होता एवं बल वर्ण, पुष्टि, रुचि, जठराग्नि, बुद्धि और आयु को बढ़ाता है बालग्रह, कृमि आदि समस्त बालरोग को दूर करता है।

सूचना-यदि यकृत् निर्दोष हो, और बढ़ा न हो, तो इस घृत का सेवन कराना चाहिये।

२३. श्वासान्तक योग।

योग-मोर के अण्डों के छिल्कों की भस्म २ से ४ चावल प्रमाण तक माता के दूध या शहद के साथ देने से श्वास प्रकोप और डब्बा रोग में तत्काल लाभ होता है। आवश्यकता पर ३ घण्टे बाद दूसरी मात्रा देवें।

२४. अतिसारहर योग।

योग-मकई की डांडियों (दाने निकाल लेने के पश्चात् रहा हुआ भाग) को जलाकर कोयले करें। इसमें से २-४ रत्ती दवा को मट्ठे के साथ पिलाने से दांत आने के समय में जो हरे-पीले दस्त होते हैं, जिनमें दही के कण जैसे कण भासते हैं, वे तुरन्त बन्द हो जाते हैं। यह औषधि बड़े मनुष्य की पेचिश पर भी लाभ पहुंचाती है और बच्चों की कूकर खाँसी को भी दूर करती है।

२५. धनुर्वातहर योग।

सोहागे का फूला २-२ रत्ती; माता के दूध या शहद के साथ १-१ घण्टे पर देते रहने से २ या ३ घण्टे में बालक के धनुर्वात का दौरा शान्त हो जाता है। धनुर्वात के समय हाथ की मुट्ठियां बन्द हो जाती हैं, हाथ-पैर सिकुड़ते हैं, आँखों की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती हैं, कभी दाँत भिंच जाते हैं,मुँह में झाग आ जाते हैं, एवं कभी-कभी मूत्रावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह आक्षेप बार-बार आता रहता है। वह सोहागे का फूला देने से बन्द हो जाता है, और बालक प्रसन्न रहता है। साथ-साथ आक्षेप-काल में प्याज को काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों को बार-बार सुंघाते रहने से सत्वर लाभ पहुँचाता है। प्याज का टुकड़ा सुंघाने के समय ही काटना चाहिये।

कितने ही चिकित्सक सोहागे के साथ आध से एक रत्ती बच मिला देतै हैं। कफवृद्धि होने पर बच मिला देने से अधिक लाभ पहुँचता है। बच से वमन होकर सत्वर कफ निकल जाता है, और मूत्रशुद्धि हो जाती है। फिर आक्षेप दूर होकर शान्त निद्रा आ जाती है। आक्षेप शमन होने पर मूल कारणों को दूर करने के लिये लक्ष्मीनारसयण रस देवें या हेतु के अनुरूप चिकित्सा करते रहें।

२६. पारदादि चूर्ण (बालरोग)।

(हाइड्रार्जिरम् कम क्रिटा मर्क्यूरी विथ चाग्रे पाउडर)

विधि-शुद्ध पारद १ औंस और विशुद्ध खटिका (चाक Prepared Chalk) २ औंस मिला कर खरल करें। जब तक पारद अदृश्य होकर चूर्ण भूरे रंग का न हो जाये, तब तक घोटना चाहिये।

मात्रा-आध से २॥ रत्ती, दिन में दो बार जल के साथ दें।

उपयोग-शिशुओं को अतिसार और यकृद् विकार होने पर इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है।

कामला और ज्वर रोग में आमाशय और अन्त्र का विकार होने पर यह चूर्ण बहुत लाभ पहुंचाता है। इन दोनों विकारों में विशेषत: रात्रि को, किंचित् इपेकाक्यू आना (या बच) चूर्ण के साथ इसका उपयोग किया जाता है और प्रात:काल मृदु विरेचन दिया जाता है।

कभी-कभी बालकों का मल मिट्टी के समान हो जाता है, प्रात:काल भोजन के पहले उदर में अफारा या वमन और बेचैनी आदि लक्षण प्रतीत होने पर चौथाई चौथाई रत्ती चूर्ण दिन में ३ बार देने से रोग का सत्वर दमन हो जाता है।

इनके अतिरिक्त माता-पिता से प्राप्त फिरंग के उपद्रव रूप विकार में रक्त शोधनार्थ यह चूर्ण अति उपयोगी है। माता-पिता को उपदंश होने पर जन्म लेने वाले शिशु को उपदंश का विकार होता है, तब उसे जन्मजात उपदंश कहते हैं। इस विकार में जन्म के समय कुछ भी लक्षण नहीं होने पर जन्म के २-३ सप्ताह के बाद सारे शरीर पर फफोले हो जाते है। पैरों के तल, हाथ, तालु, मूत्रेन्द्रिय, नासिका के भीतर और पीठ आदि पर पिड़िकाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं एवं गुदा के चारों ओर लाल रंग की पिड़िकाएं हो जाती हैं। फिर इनमें से कुछ-कुछ रक्त झरता रहता है। इस विकार की चिकित्सा न होने पर यह गुदा के भीतर फैल जाता है और फिर गुदशृक (गूदा के बाहर) पुष्प पल्लव के सदृश सफेद पतली त्वचा की वृद्धि (Condyioma) हो जाता है। नासिका में पिटिकायें हो जाने से नि:श्वास छोड़ने में कष्ट होता है। फिर रोग-वृद्धि होने पर त्वचा में झुर्रियों पड़ जाती हैं, और बालक वृद्ध के समान भासता है। इस रोग पर खटिका चूर्ण आधी रत्ती, सोडा बाई कार्ब आधी रत्ती और दूध की शक्कर (मिल्क सुगर) २ रत्ती मिलाकर ८ पुड़ियां बनावें। इनमें से १-१ पुड़ी दिन में ३ बार देवें, तथा मालिश करने के लिये पारद मलहम को ७ गुने वेसलीन में मिलाकर उपयोग में लेवें।

२७. जन्मघूंटी।

विधि–सौंफ, सौंफ की जड़, बायविडंग, अमलतास का गूदा, सनाय, छोटी हरड़, बड़ी हरड़, बच, अंजीर, अजवायन, गुलाब का फूला, पलाश के बीज, मुनक्का, उन्नाब की ऊपरी छाल, पुराना गुड़ और सोहागे का फूला, इन १६ औषधियों को मिला लेवें।

मात्रा–३-४ माशे लेकर क्वाथ करें और किंचित काला नमक मिलावें। *(सि.भे.म.)*

वक्तव्य–अमलतास का गूदा, अंजीर, उन्नाब, गुड़ और मुनक्का के अतिरिक्त शेष ११ औषधियों का जौकूट चूर्ण पहले से तैयार कर रख सकते हैं। उक्त ५ औषधियों को अनुमान से आवश्यकता पर मिला लेवें।

उपयोग–यह जन्मघूंटी बालरोग की उत्तम औषधि है। इसका प्रयोग राजस्थान में अधिक होता है। बच्चों के ज्वर, अपचन, मलावरोध, कफप्रकोप, खांसी; जुकाम आदि पर सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है।

२८. उदरवातहर लेप।

विधि–एलुवा, हींग, लौंग अजवायन और डीकामाली, इन ५ औषधियों को मिला, जल के साथ खरल करें। निवाया करके नाभि के चारों ओर लेप करकें, फिर ऊपर रुई चिपका देवें।

उपयोग–इस लेप से उदर के अवयव उत्तेजित होते हैं। जिससे वायु, मल या आम भर जाने से बालक या बड़े मनुष्यों को वेदना और व्याकुलता होती है, वे सब एक घण्टे में दूर हो जाती हैं और उदरशुद्धि भी हो जाती है। ज्वर, उदर पीड़ा, अफारा, अपचन, मलावरोध, कफ-प्रकोप, श्वासरोग और डब्बारोग आदि में ये लेप अति उपकारक सिद्ध हुआ है।

(५३) विष विकार

१. संशोधक रसकर्पूर।

विधि–शुद्ध पारद और पांशुपटु (रेते का नमक-कांच लवण) १०-१० तोले मिलाकर सेहुंड के दूध में ७ दिन तक खरल करें। फिर लोह के २ शरावों में सम्पुटकर दोनों शरावों की सन्धि को खड़िया मिट्टी से बन्द करें। पश्चात् एक हांडी में नमक भरें और उस नमक के भीतर यह संपुट रखें। उस हांडी पर दूसरी बड़ी किन्तु समान मुँह वाली हांडी को औंधी रख दृढ़ मुखमुद्रा करें। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे तक तीव्राग्नि देने से ऊपर की हाँडी के भीतर चन्द्रमा और कुन्द पुष्प के सदृश श्वेत भस्म लग जाती है। यन्त्र स्वांग शीतल होने पर भस्म को सम्हालपूर्वक निकाल लें। *(र.सा.सं.)*

मात्रा–२ से ३ रत्ती, लौंग के चूर्ण के साथ मिलाकर दें। ऊपर १-२ घूंट जल पिलावें।

उपयोग–इस रसकर्पूर के सेवन से खूब वमन होती है। जिससे शरीर में रहे हुए सर्प विष, सोमल आदि खनिज विष या सिंह की मूंछ के बाल आदि प्राणिज विष और दूषी विष (नया अथवा ६-१२ मास का पुराना) सब निकलकर नष्ट हो जाते हैं।

सूचना–यह वान्ति बार-बार दो प्रहर तक होती रहती है। अत: बार बार शीतल जल पिलाते रहना चाहिये। इस रसकर्पूर का प्रयोग नाजुक स्त्री, पुरुष, बालक एवं सगर्भा पर बहुत सम्भालपूर्वक करें या नहीं करना चाहिये।

पारद को सेहुँड के दूध और नमक के साथ रासायनिक संयोग होने से वान्तिकारक गुण की उत्पत्ति होती है। यदि मात्र नमक मिलाया जाये, और सेहुँड का दूध न मिलाया जाये, तो यह विरेचन गुण दर्शाता है। पारद के साथ नमक मिलाकर तैयार किया हुए पारद उपलवण (Hydrargyri Subchloride or Colomal) का पाठ वमनादि शोधन प्रकरण में पहले दिया गया है।

२. विषवज्रपात रस।

प्रथम विधि–स्फटिकमणि पिष्टी (भस्म), फिटकरी का फूला, यवक्षार, लोटिया सज्जी, नौसादर के फूल, सैंधा नमक, गोदन्ती भस्म इन ७ औषधियों को समभाग मिलाकर खरलकर सूक्ष्म चूर्ण बना लेवें। *(र.यो.)*

मात्रा–१/२-१ माशा शीतल जल या दही के जल से दें।

उपयोग–यह विषवज्रपात रस विषशमनार्थ प्रयुक्त होता है। विष का सेवन पूर्ण मात्रा में हुआ हो, तो इसकी पूर्ण मात्रा ही देनी चाहिये। आवश्यकता पर १-२ घण्टे बाद पुन: देवें। विष वेग का दमन हो, उतने अंश में मात्रा कम देनी चाहिये।

यदि दंशजन्य विष प्रकोप हुआ हो, तो दंश स्थान पर चीरा लगाकर इस रस को भर दें, एवं मन:शिला, तपकिया हरताल, कुचिला, जमालगोटा, बच और हींग को जल में पीसकर लेप करें। इस रस के सेवन से सर्प, बिच्छू कुत्ते, सियार, बाघ, भेड़िया और अन्य जहरी जानवरों के विष और अफीम, गाँजा, भांग, बच्छनाग आदि औषधियों का विष, दूषी विष, कृत्रिम विष आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

सूचना–तीव्र विष प्रकोप में इस औषध के साथ कागजी नींबू के बीज की गिरी का चूर्ण भी निवाये जल के साथ देते रहना लाभदायक है। नींबू के बीज सर्व प्रकार के विषों को दूर कर देते हैं। यदि बच्छनाभ का विष हो तो सोहागा विशेष लाभदायक है। सोहागा बच्छनाग के विष का प्रतिकारक द्रव्य है।

द्वितीय विधि–हल्दी, सोहागे का फूला, जावित्री, नीलेथोथे का फूला; इन ४ औषधियों को समभाग मिला देवदाली के रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र. र.)*

मात्रा–१ से ४ गोली, निवाये जल, गोमूत्र या मनुष्य मूत्र के साथ देवें। यदि २ घण्टे तक वमन न हो, तो पुनः दूसरी मात्री देवें।

यह रस सब प्रकार के स्थावर, जंगम विषों, को दूर करता है। इसके सेवन से वमन और विरेचन होते हैं। जिससे आमाशय और अन्त्र से विष निकल जाता है। जो विष रक्त में शोषित हुआ हो, वह प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाता है तथा कुछ अंश का रूपान्तर हो जाता है।

३. अर्कादि वटी।

विधि–आक की जड़ की छाल (अप्रेल और मई मास में निकाल कर छाया में सुखायी हुई), धतूरे के पान और मिश्री तीनों को समभाग मिला आक के पानों के रस में ६ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–२ से ४ गोली, दिन में दो बार निगलवा देवें. (जल १ घण्टे तक न पिलावें) २-४ तोले भुने चने खिलावें।

उपयोग–इस औषध के सेवन से पागल कुत्ते और सियार का जहर जल जाता है और रक्त निर्विष हो जाता है। ४-६ मास तक दवा देते रहना चाहिये। यह औषधि वमन करती है। इस हेतु से चना खिलाया जाता है और जल का निषेध किया है। चना खा लेने पर वान्तिकर असर कम हो जाता है।

४. जैपालाञ्जन।

विधि–एक नींबू के फल के ऊपर की छाल को हटाकर उसमें छिलके और जिह्वी निकाली हुई जमालगोटे की ७ गिरी भरें, फिर हटाई हुई छाल को उस पर रखके, नीबूं को सूत से बांध कर मकान में एक ओर रखा रहने देवें। ७वें दिन जमालगोटे की गिरी को निकालकर सूर्य के ताप में सुखा लेवें। फिर उसको दूसरे नींबू में भरकर रख देवें और ७वें दिन निकालकर सुखा लेवें। इस तरह ७ नीबूंओं में भरकर सुखा लेवें। तथा शीशी में बन्दकर रख लें। *(भा.भै.र.)*

उपयोग–इस गिरी को नींबू के रस या मनुष्य के थूँक में घिसकर नेत्रों में अँजन कराने से सर्पदंश से उत्पन्न हुई मूर्च्छा दूर होती है। सांप के विष से बहुधा बेहोशी आ जाती है, फिर विष सरलता से नहीं उतरता तब तक यह अंजन करने से तन्द्रा, निद्रा या मूर्च्छा नहीं होती है।

(५४) रसायन वाजीकरण।

(१) ब्राह्म रसायन।

प्रथम विधि–शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और छोटे गोखरू, ये लघु पंचमूल; बेल, अरणी, अरलु, गंभारी और पाढल, ये बृहद् पंचमूल; पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला और एरण्ड, ये पुनर्नवादि पंचमूल; जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, (गुजरात में डोडी) और शतावरी, ये जीवक आदि पंचमूल; शर (नर कट), ईख, दर्भ, कुश और शालिधान्य, ये शर आदि पंचमूल, इन पाँच प्रकार के पंचमूल अर्थात् २५ औषधियों को ४०-४० तोले लेकर जौ-कूट करें। फिर १० गुने (१०,००० तोलें) जल में रात्रि में भिगो देवें। सुबह मिट्टी या कलईदार पात्र में इसका क्वाथ करें। इसके भीतर ताजी हरड़ बड़ी (मुरब्बा के उपयोग में आती है, वैसी बड़ी एवं उत्तम जाति की) १,००० नग और बड़े ताजे आवंले ३,००० नग डाल देवें। हरड़ और आंवले पक जाने पर उनको अलग निकालकर च्यवनप्राश अवलेह बनाने की विधि में उल्लिखित तरीके से गुठली निकाले और कपड़े पर मसलकर कल्क को निकाल लेवें, एवं क्वाथ का जल १/१० शेष रहने पर उसे छान लेवें।

एक बड़े गूलर के वृक्ष के ताजे स्कंध का १ गज लम्बा टुकड़ा कटवाकर उसके चारों ओर ३-३ इंच का मोटा किनारा तथा नीचे का तल ८ इंच मोटा रखकर बीच में गड्ढा बना लेवें अर्थात् एक भगोने के आकार का पात्र बना लेवें। उस पर चारों ओर एक के बाद दूसरी, इस तरह ७ कपड़-मिट्टी करें। फिर उसमें उक्त क्वाथ और कल्क भरें।

उक्त क्वाथ में ब्राह्मी (मन्डूकपर्णी), पीपल, शंखपुष्पी, नागरमोथा, नदी किनारे का बड़ा मोथा, बायविडंग, सफेद चन्दन, अगर, मुलहठी, हल्दी, बच, नागकेशर, छोटी इलायची और दालचीनी, ये १४ औषधियाँ १६-१६ तोले मिलावें। क्वाथ का जल कुछ कम होने पर मिश्री ४,००० तोले (५० सेर) मिला पाक करें। पश्चात् तिल तेल ५१२ तोले और गोघृत ७६८ तोले मिला अति सम्हाल पूर्वक मंदाग्नि से पाक करें। उसे गूलर के कुड़छे से चलाते रहें। अवलेह जल न जाये तथा कच्चा न रहे, यह सावधानीपूर्वक सम्हालते रहें।

नोट–नागकेशर के स्थान पर स्वर्ण भस्म डालना अति लाभप्रद है।

अवलेह का पाक गोली बनने योग्य बन जाने पर पात्र को नीचे उतार अवलेह को तुरन्त कलईदार पात्र में निकाल लेवें। अन्यथा घृत-तैल का स्निग्धांश और अवलेहका शेष जल गूलर की कड़ाई में शोषित होता रहेगा। (हमने यह रसायन तैयार कराया है, किन्तु तैल नहीं मिलाया है। तैल के स्थान पर भी उतना ही गोघृत मिलाया है।)

अवलेह बिल्कुल शीतल होने पर घी से आधे परिमाण में **अर्थात् ३८४ तोले शहद** मिलाकर एक जीव कर लेवें।*

हम इस ब्राह्म रसायन में ताजी बड़ी उत्तम जाति की हरड़ और ताजे आंवले मिलाते हैं, अच्छा स्वादु बतना है। बालक, कोमल प्रकृति की स्त्री और अमीर सब कोई इसका सेवन रुचिसह कर सकते हैं। २॥ सेर हरड़ का रसायन बनाने पर १०॥ सेर बनता है।

मात्रा–रसायन विधि से सेवन करने वालों के लिये पचन शक्ति के अनुरूप मात्रा २॥ तोले से १० तोले तक सुबह सेवन करें। अच्छी तरह क्षुधा लगने पर दूध-भात (साठी चावल के बने हुए भात) का भोजन करें। मात्रा अधिक लेने पर अग्नि मंद हो जायेगी। अतः पचन-शक्ति का विचार करके सेवन करें।

वर्तमान समय में सुवर्ण प्रधान रसायन की मात्रा ३-३ माशे दिन में २ बार। नागकेशर युक्त की मात्रा ४ से ६ माशे दिन में २ बार। ऊपर से दूध पिलावें।

नियमित पथ्य भोजन के साथ रसायन रूप से सेवन करने वाले गृहस्थों के लिये मात्रा ६-६ माशे, दिन में २ बार प्रातः और रात्रि को अथवा सुबह एक ही बार।

उपयोग–यह ब्राह्म रसायन वैखानस, बालखिल्य और अन्य तपस्वी, जो त्रिगर्भा कुटी में रहकर इसका सेवन करते हैं। उनकी वृद्धावस्था की निर्बलता और सब प्रकार के विकारों का हरण कर, उनको नूतन शरीर की प्राप्ति कराता है। इसके सेवन से तन्द्रा, क्लान्ति और श्वास भर जाना आदि रोग दूर होते हैं। रसायन सेवी मेधा, स्मृति, बल (मनोबल और शरीर बल) से युक्त होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए और दीर्घायु तक स्वस्थ रहकर तपस्या करते रह सकते हैं।

विभिन्न रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु की कामना करने वाले पथ्य सेवी सज्जनों को महर्षि कथित इस अनुभूत ब्राह्म रसायन का सेवन अति हितावह है।

द्वितीय विधि–एक कलईदार भगोने में १ मन लगभग गाय का दूध भर, उस पर तार की चालनी रख, उसमें आंवले १००० नग (१२॥ सेर) भरें, मन्द आंच देकर दूध की वाष्प से सिजोवें। आंवले नरम होने पर गुठली निकाल शेष गूदा को छाया में सुखाकर चूर्ण करें। उसे १००० आंवलों के रस की भावना दें। फिर शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागबला (गंगेरन), ब्रह्म सुवर्चला (अभाव में ब्राह्मी), मण्डूकपर्णी, शतावर, शंखपुष्पी, पिप्पली, बच, बायविडंग, कोंच के बीज, गिलोय, सफेद चन्दन, अगर, मुलहठी, महुए के फूल, नीलोफर, कमल, मालती, गुलाब और चमेली फूल इन सबको समभाग मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् आँवलों के चूर्ण में शालपर्णी आदि के चूर्ण का आठवां भाग मिला नागबला के रस की भावना देकर छाया में सुखा लें। इसी तरह भावनायें देकर नागबला के १। मन रस का पचन करावें। फिर इसका चूर्ण कर आंवलों के वजन से दूने-दूने घी और शहद मिला, अमृतबान में भर मुखमुद्रा कर जमीन में गड्ढा खोदकर उसके भीतर चारों ओर राख डालकर रखें। १५ दिन बाद निकाल लें। पश्चात् सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, प्रवाल भस्म और लोहभस्म समभाग लेकर आंवलों के वजन से आठवाँ हिस्सा (वर्तमान समय में १२८वाँ हिस्सा) मिला लेवें।

मात्रा–आधे से ४ तोले तक, प्रातःकाल सेवन करावें। पचन हो जाने पर घी, दूध और भात का भोजन करावें। अन्य सब वस्तुओं का त्याग करावें। प्रारम्भ में आधा तोला मात्रा देवें। फिर धीरे धीरे ४ तोले तक अग्निबल के अनुसार बढ़ावें इसका सेवन पंचकर्म से शुद्धि कराकर मकर सक्रान्ति से होली तक कुटी में रहकर ४० दिन तक कराना चाहिये।

उपयोग–इस ब्राह्म रसायन के सेवन से समस्त रोग निवृत्त होकर दीर्घायु की प्राप्ति होती है, देह सुदृढ़ होती है, शरीर-बल, स्फूर्ति, कान्ति, वीर्य-धारणा शक्ति और ओज की अति वृद्धि होती है। देह में किसी संयोग-विरुद्ध पदार्थों के सेवन जनित विष या अन्य क्षुद्र विष का प्रवेश होने पर वह कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकता।

शास्त्रकारों ने विविध प्रकार के रसायन प्रयोग लिखे हैं। इसमें यह उत्तम एवं सौम्य प्रकार का है। यह रसायन हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत् प्लीहा, वृक्क आदि सब इन्द्रियों (अवयवों) को सबल बनाकर देह को सुदृढ़ बनाता है। अति स्त्री-समागम और अधिक चिन्ता से जिनके वीर्य और देह निर्बल हो गये हों, उनके लिये यह अति हितावह है।

वक्तव्य-प्राचीन आचार्यों के मतानुसार ग्राम से बाहर खुली वायु वाले विशुद्ध स्थान में त्रिगर्भा कुटी बनायी जाती है। अथात् एक कुटी के भीतर दूसरी कुटी और दूसरी कुटी के भीतर तीसरी कुटी बनवाकर उसमें रहने का विधान किया है।

---

* चरक संहिता में लिखी हुई प्रक्रिया के आधार पर यह विधि लिखी गई है। समय के अनुरूप व्यावहारिक, सरल और सफल प्रक्रिया यह है कि हरीतकी और आमलों की पिष्टी को स्नेह में (घृत और तैल में) अच्छे प्रकार भून लिया जावे। फिर छने हुए क्वाथ को मन्दाग्नि पर रखकर उतनी मात्रा में शेष रहने दें जितने में कि शक्कर डालकर उतनी चासनी बन जावे जितने में पिष्टी ठीक ढंग से मिल जावे। जब क्वाथ अभीप्सित मात्रा में रह जावे जब उसमें शक्कर या मिश्री डालकर दो तार या तीन तार की चाशनी बनावें। चाशनी बनने पर पिष्टी उसमें डालकर अच्छी प्रकार मिलावें। प्रक्षेप की कपड़छन औषधियां भी उसमें डालें। शीतल होने पर मधु मिला दें। काढ़ा बनाने और पिष्टी को भूनने के लिये अच्छी कलई किया हुआ पीतल या ताम्बे का भगोना अथवा कड़ाही लेवें। -संशोधक

२. आमलकी रसायन।

विधि–पलाश वृक्ष के स्कन्ध को जो ताजा और पुष्ट हो (कीड़े लगकर दूषित न हुआ हो) उसको १॥-२ हाथ ऊपर से काट देवें, फिर उसके भीतर ग्लास के समान गढ्ढा करें। चारों ओर २-२ इंच किनारा रह जाये, उस तरह खड्डाकर उसमें नये, ताजे, पुष्ट और परिपक्व आंवले भरें। पश्चात् शीशी पर डाट लगाने के समान पलाश स्कन्ध का ढक्कन बनाकर उसे बन्द करें, उस स्कन्ध के चारों ओर दर्भ लपेटें, और उस पर कमल के नीचे के कीचड़ का १-१ इंच मोटा लेप करें। फिर इसके चारों ओर जंगली कण्डे रखकर अग्नि लगा देवें। उसे वायु न लगे, इसलिये ४-४ हाथ दूर पर कच्ची दीवार खड़ी कर लेवें। २-३ घण्टे अग्नि लगने पर आवंले अच्छी तरह पककर नरम हो जाते हैं। स्वांग शीतल होने पर ढक्कन हटाकर आंवले निकाल कर उनके भीतर से गुठलियां निकाल डालें और उनके समाज वजन में घी और शहद मिला मसलकर अमृतबान में भर लेवें। (अं.हृ.)

मात्रा–५ से २० तोले तक। पंचकर्म से शुद्धि कराकर कुटी में रहकर जनवरी से मार्च मास के भीतर (शीतकाल में) ३० दिन तक रोज सुबह एक बार सेवन करावें। पहली मात्रा ५ तोले की देवें। फिर शरीर बल और अग्निबल के अनुसार मात्रा बढ़ावें।

सूचना–यह रसायन जिनका यकृत् सबल निरोगी है, उनके लिये अधिक हितावह है। रसायन पचने पर गरम किया हुआ गो-दुग्ध का सेवन करावें। दूध दिन में ३ या अधिक बार दें। जल और भोजन सबका निषेध है। शीतल जल का स्पर्श तक न करावें।

उपयोग–इस रसायन के सेवन से शिथिल हुआ शरीर पुनः सुदृढ़ हो जाता है। शास्त्रकार लिखते हैं कि ११वें दिन बाल, दाँत और नख गिर जाते हैं। (परन्तु ऐसा अनुभव में नहीं आया कुछ निर्बलता आ जाती है) फिर थोड़े ही दिनों में शरीर कान्तिवान् और हाथी के समान अतुल सामर्थ्यवान बन जाता है। धारण शक्ति, बल, बुद्धि और ओज की वृद्धि होती है और मनुष्य पूर्णायु भोगता है।

यह प्रयोग स्व. पं. मदनमोहन मालवीय जी के सेवन करने के पश्चात् विशेष प्रकाश में आया है। यह सरल और निर्भय उपाय है।

रसायन सेवन काल में प्यास नहीं लगती। प्राण तत्व बहुत सबल बन जाता है। ४० दिन तक कुटी में रखें, बाहर न निकालें और भोजन का बिल्कुल त्याग करावें। इतने कठोर नियमों का पालन करने वालों को यह आर्श्चदायक लाभ पहुँचाता है।

वक्तव्य–रसायन सेवन करने के प्रारम्भ में स्नेहन स्वेदन आदि पंचकर्मों द्वारा देह को शुद्ध कर लेना चाहिये।

द्वितीय विधि–अच्छी जाति के परिपक्व आंवले तुड़वा, गरम उबलते हुए जल में ४-५ मिनट भिगो, गुठली निकाल, धूप में सुखा, कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर आंवले के स्वरस के साथ २१ दिन खरल करा लोह पात्र या अमृतबान में भर लेवें।

सूचना–उबालने और खरल करने के समय लोहे की कड़ाही कुड़छी या अन्य लोहपात्र का उपयोग न करें। अन्यथा रसायन का रंग काला हो जायेगा।

मात्रा–१ से २ माशे, रोज सुबह सेवन करें।

अनुपान–गोघृत-मधु, मधु-दूध या प्रकृति के अनुरूप देवें।

उपयोग–यह आमलकी रसायन अति सस्ता होने पर भी दिव्य फलदायी, शीत वीर्य, सौम्य और आयुवर्द्धक है। यह वात, पित्त कफ सब प्रकृति वालों को अनुकूल रहता है।

यह रसायन रस, रक्त आदि सब धातुओं को शुद्ध और सबल बनाता है। स्मरण शक्ति, धारणशक्ति और आयु को बढ़ाता है। यह वृद्धावस्था की निर्बलता दूर कर मनुष्य को शतायु बनाता है।

यह रसायन रक्तपित्त, पित्तप्रकोप, दाह, तृषा आदि रोगों से पीड़ितों के लिये अति लाभदायक है। जिनके उदर में वायु रहती हो, प्यास बहुत कम लगती हो, स्वप्नदोष होता रहता हो; उनसे अधिक मात्रा में यह सहन नहीं हो सकता। इन रोगों में रोगशामक दवा भी मिला देनी चाहिये।

३. कामदेव मोदक।

विधि–कूठ, कायफल, सैंधानमक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, मेथी,अजवायन, अजमोद, अडूसा, मोचरस, विदारीकन्द, श्वेतमूसली, जायफल, चित्रकमूल, जीरा, कालाजीरा, गजपीपल, मुनक्का, हरड़, कौंच के बीज, तालीसपत्र, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने, सांभरनमक, काला नमक, बहेड़ा, काकड़ासिगी, केले का कन्द, शतावर, असगन्ध, शठी, मुलहठी, चिरौंजी, गिलोय, जावित्री, लौंग, केशर, खस, गोखरू, सेमल का कन्द, आंवला, उड़द, पुनर्नवा की जड़, धतूरे के शुद्ध बीज, सिंघाड़ा, रूमी मस्तंगी, जटामांसी, खरैटी, गंगेरन, कंघी, सुगन्धबाला,

भारंगी, तिल, शीतल मिर्च, अकरकरा, दन्तीमूल, लौहबान सत्व, बच, काहू के बीज और कमलगट्टा ये ६३ औषधियां १-१ तोला लेकर कूट बारिक कपड़छन चूर्ण करें। फिर भुनी भाँग १६ तोले, अभ्रक भस्म ८ तोले, वंग भस्म ४ तोले, लोहभस्म २ तोले और रससिंदूर १ तोला तथा १९० तोले मिश्री मिलावें। पश्चात् घी ६४ तोले और शहद गोलियां बन सके, उतना मिलाकर २-२ तोले के मोदक बनालें। *(बृ.यो.त.)*

वक्तव्य-हम मिश्री, घी और शहद पहले नहीं मिलाते हैं।

मात्रा-१ से २ माशे मोदक को २ से ४ माशे मिश्री, २ माशे शहद और ४ माशे घी के साथ सुबह व रात्रि को देवें और ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग-इस रसायन के सेवन से वृद्धावस्था और अन्य रोग जनित निर्बलता दूर होकर अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती है। यह औषधि वीर्यकारी, महामय हरी (बड़े-बड़े रोगों को हरने वाली), क्षुधावर्धक, तेज, कान्ति और स्थूलता को बढ़ाने वाली तथा चिन्ता, चित्तविभ्रम आदि मानसिक विकार नाशक मदमत्त, तरुणकामिनियों की मद भंजक और मनोविनोदकारी है। इसे चिकित्सक श्री सौगनसिंह ने शत वधुओं से भोग करने वाले महाराजा हमीर के लिये निर्मित किया था और लोकोपकारार्थ प्रकाशित भी किया।

यह रसायन शीतकाल में सेवन करने योग्य है। इसके सेवन से निर्बलता दूर होकर देह पुष्ट होती है। इस रसायन में भांग डाली जाती है। जिनको भाँग अनुकूल रहती हो, उनके लिये यह अति हितकारक है। अग्निमांद्य, अजीर्ण, संग्रहणी, अर्श या अतिसार से पीड़ित, जिनको बार-बार जुकाम हो जाता हो, वृद्ध, वातरोगी, मलेरिया, ज्वर से निर्बल हुई देहवाले, आमवात या आमवातजनित निर्बल हृदय वाले, क्षीण शुक्रवाले तथा भांग को सहनकर सकने वालों के लिये यह रसायन हितकारक है।

इस मोदक में तीनों दोषों पर कार्य करने वाले द्रव्य मिलाये है। इसमें पाचन संस्थान पर कार्यकारी द्रव्य अधिक मात्रा में हैं। निर्बलता आने पर और वृद्धावस्था में विशेषत: पचनक्रिया दूषित हो जाती है, तब वह इस मोदक के सेवन से सुधरती है। इसके अतिरिक्त जिस दोष के बल का ह्रास हुआ हो; उसके अनुरूप द्रव्यसत्व का शोषण होता है, जिससे वह दोष सबल बन जाता है। इसी हेतु से यह मोदक वात, पित्त, कफ तीनों प्रकृति वालों को अनुकूल रहता है।

सामान्यत: आयु बड़ी होने पर शरीर के अवयवों में स्थितिस्थापक गुण घट जाता है, फिर उत्साह का ह्रास, आलस्य, देह में भारीपन, अग्निमांद्य, स्मृतिलोप, वातवृद्धि, किसी को कफोत्पत्ति, मूल-मूत्र शुद्धि में न्यूनता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अत: उस गुण को बढ़ाने के लिये आचार्यों ने रसायन औषधियों की योजना की है। इस मोदक में अभ्रक, लोह, वंगभस्म, रससिन्दूर, आंवला, हरड़, शतावर, मुलहठी, गिलोय, असगन्ध आदि रसायन औषधियाँ होने से स्थिति स्थापक गुण की पूर्ति होती है। अर्थात् पुन: युवावस्था की प्राप्ति होती है।

४. मदनकान्ता गुटिका।

द्रव्य-रससिन्दूर ४ तोले, सोने का वर्क १ तोला, चांदी का वर्क २ तोले, शुद्ध बच्छनाभ १ तोला, शुद्ध शिलाजीत, कपूर और मीठा कूठ २-२ तोले, अफीम १ तोला, जायफल, लौंग, पीपल, अकरकरा, जवित्री, केशर, अगर, दालचीनी, सफेद मूसली, कौंच की बीज और गिलोयसत्व ये ११ औषधियां १-१ तोला तथा अम्बर और कस्तूरी ६-६ माशे लें।

विधि-पहले रससिन्दूर, सुवर्ण, रौप्य और बच्छनाभ को मिलावें। फिर केशर, कस्तूरी और अम्बर को छोड़ शेष काष्ठादि औषधियों को कूटकर मिलावें। शिलाजीत को धतूरे के रस में मिलाकर डालें, फिर १२ घण्टे धतूरे के रस में खरल करें। दूसरे दिन अदरक के रस में घोटें। तीसरे दिन केशर, कस्तूरी और अम्बर मिला, पके हुये नागरबेल के पान का रस मिला ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(आ.नि.मा.)*

मात्रा-१-१ गोली; मिश्री मिले हुये दूध के साथ सेवन करावें।

उपयोग-यह गुटिका रसायन, अत्यन्त बल-वीर्यवर्धक, कामोत्तेजक और कान्तिप्रद है। इस वटी का रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन कराने से जीर्ण ज्वर, प्रतिश्याय, जीर्णवातरोग, धनुर्वात, खंजवात, अर्धांगवात, हिस्टीरिया, श्वास, कास, क्षय, मूर्च्छा, अग्निमांद्य, पाण्डु, बहुमूत्र, मधुमेह और प्रमेह पिड़िका आदि दूर होते हैं।

वक्तव्य-स्व. वैद्यराज श्री धीरजराम दलपतराम (सूरत) ने इस वटी का उपयोग लगभग ५० वर्ष तक किया है। यह अति सफल प्रयोग है।

सूचना-इस औषध के सेवनकाल में कालीमिर्च और खटाई नहीं खिलानी चाहिये और ब्रह्मचर्य का आग्रहपूर्वक पालन कराना चहिये।

५. निर्विष्यादि वटी (हब्बे जदवार)।

विधि–जदवार खताई (निर्विषी Delphinium Denudatum) जहरमोहरा खताई और चांदी के वर्क, तीनों को समभाग मिला गुलाब, केवड़े और वेदमुश्क के अर्क में एक दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली दिन में दो बार खमीरे गावजवां, चन्दनादि अर्क या गोदुग्ध के साथ देवें।

उपयोग–यह औषधि ओजवर्द्धक है। ह्रदय की धड़कन, मस्तिष्क की उष्णता और शरीरिक निर्बलता को दूर करती है। शारीरिक निर्बलता, चक्कर आना, ह्रदय की धड़कन बार-बार बढ़ जाना, मुखमण्डल निस्तेज हो जाना, स्फूर्ति का अभाव, अग्निमांद्य आदि विकारों को दूर करके शरीर को सबल बनाती है।

वृक्क और मूत्राशय की शिथिलता के हेतु से मूत्रशुद्धि नहीं होती और रक्त में विषवृद्धि होती रहती है। फिर ह्रदय धड़कन और मस्तिष्क में उष्णता उत्पन्न होती, है, तब यह औषधि विशेष उपकारक है।

विषमज्वर आदि रोग या अधिक स्त्री समागम अथवा अपथ्य सेवन से जब शुक्र में उष्णता और पतलापन आ जाता है। तब शुक्र को शीतल और गाढ़ा बनाने के लिये इस वटी का उपयोग होता है। यदि मूत्र-संस्थान में सुजाक के लीन विष से विकृति हुई हो, तो अनुपान रूप से सारिवासव या चन्दनासव देना चाहिये।

तमाखू का धूम्रपान अत्यधिक करते रहने से कितने ही व्यक्तियों को रल्त में विषोत्पत्ति होकर वृक्क कार्य में (मूत्रोत्पत्ति कार्य में) प्रतिबन्ध होता है; फिर मस्तिष्क में उष्णता, चक्कर आना, बेचैनी, अधिक प्रस्वेद आना, निद्रानाश और ह्रदय में शिथिलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर यह वटी चन्दनादि अर्क के साथ सेवन करायी जाती है।

६. ज्ञानोदय रस।

द्रव्य (प्रथम विधि)–शुद्ध गांजा १६ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, जायफल २ तोले, चन्द्रोदय १ तोला, कपूर और केशर ६-६ माशे लें।

विधि–सबको मिला शहद (लगभग १० तोले) के साथ खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बांधकर अकरकरे के चूर्ण में डालते जायें।

सूचना–गांजा में से शाखा और बीजों को निकाल केवल पत्ते लें। फिर १ घण्टे जल में भिगो मसलकर जल को निकाल डालें। पश्चात् बार-बार नया जल मिलाकर इसे धोवें। जब तक हरा जल निकले, तब तक नये-नये जल कें साथ मसल-मसलकर जल को निकालते रहें। शुद्धि होने पर छाया में सुखा लेवें।

मात्रा–२-२ गोली, दिन में दो बार, मिश्री मिले हुए दूध के साथ देवें।

उपयोग–यह ज्ञानोदय रस शक्तिवर्द्धक, क्षुधावर्द्धक, आनन्ददायक और शान्तिकारक है। मलेरिया से निर्बल बने हुए तथा निर्बल पाचनशक्ति और निर्बल ग्रहणी वालों को यह रसायन शक्तिवर्धक रूप से दिया जाता है। गांजा पीने वालों को अधिक हानि पहुँचने पर एवं चिन्तातुरों को निद्रा नहीं आती और चित्त भ्रमित-सा रहता है, उनको इस रसायन के सेवन से निद्रा आने लगती है और मन शान्त बनता है। जीर्ण सुजाक के रोगी की निर्बलता दूर करने, मूत्रमार्ग की वेदना शमन करने और वाजीकरण शक्ति देने के लिये भी यह रसायन अति हितकारक है। स्त्रियों का गर्भाशय शिथिल हो जाने से मासिक धर्म की शुद्धि न होती हो या गर्भधारण न होता हो, तो गर्भाशय सबल बनाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

द्वितीय विधि–धोयी हुई भांग १६ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले, अभ्रक भस्म, छोटी इलायची के दाने और जायफल २-२ तोले तथा लोहभस्म और रससिन्दूर १-१ तोला मिलाकर मर्दन करें। फिर ६ तोले भांग के अष्टमाँश क्वाथ में खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। इन गोलियों को 'विजया वटी' भी कहते हैं।

मात्रा–१-१ गोली, दिन में २ या ३ बार, जल के साथ देवें।

उपयोग–यह रसायन, दीपन, पाचन, ग्राही, मादक और वृष्य है। यह विदेश का जलवायु लगने, वर्षा ऋतु में जलविकार होने, वातविकार, कफरोग, मन्द-मन्द ज्वर बना रहने और अपचन होकर बार-बार दस्त लगने आदि को नष्ट करता है तथा अग्नि प्रदीप्त कर काम वृद्धि करता है। हिस्टीरिया, आमातिसार या ग्रहणी (Duodenum) निर्बल हो, उनको यह वटी कम मात्रा में दीर्घकाल तक सेवन करानी चाहिये।

७. वङ्गादि चूर्ण।

द्रव्य–वंगभस्म ९ माशे, हल्दी का कपड़छन चूर्ण १२ तोले, शीतल मिर्च ६ तोले, कपूर और गिलोय सत्व १-१ तोला और अफीम ३ माशे लें।

विधि–सबको मिला कपड़छन चूर्ण कर लें।

मात्रा–१ से २ माशे, रात्रि को सोने के समय, जल के साथ सेवन करायें।

उपयोग–इस चूर्ण के सेवन से वीर्य की उष्णता और विकृति दूर होती है, स्वप्न दोष का निवारण होता है, मूत्र साफ आता है। मूत्राशय की उष्णता शान्त होती है। तथा वीर्य शुद्ध और सबल बनता है। कुछ दिनों तक सेवन करते रहने से स्वप्नदोष होना बन्द हो जाता है।

वक्तव्य–स्वप्न दोष के रोगी को रात्रि में हल्का भोजन करना चाहिये तथा कब्ज न हो, यह सम्हालना चाहिये। उदर में वात संग्रह होने पर रात्रि को स्वप्न दोष हो जाता है। अतः वातवर्द्धक पदार्थों का सेवन कम कराना चाहिये। शाम को जल्दी भोजन कर लेना शक्ति के अनुसार घूमना अधिक लाभप्रद है। पहले का भोजन न पचा हो, तो फिर भोजन नहीं करना चहिये।

८. चन्द्रोदय वटी।

द्रव्य–(प्रथम विधि)–सुवर्ण चन्द्रोदय और कपूर ४-४ तोले, बंग भस्म, लोह भस्म, लौंग, जायफल, जावित्री, केशर, अकरकरा, ये ७ औषधियां १-१ तोला तथा *सत्व कुचिला (स्ट्रिक्निया) १ माशा, कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे लेवें।

विधि–पहले चन्द्रोदय और कपूर को मिलावें। फिर केशर, कस्तूरी और अम्बर मिलाकर नागरबेल के पान के रस में ३ घण्टे खरल करें। फिर भस्म और कुचिले का सत्व मिलाकर ३ घण्टे खरल करें। पश्चात् शेष औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला नागरबेल के पान के रस में ६ घण्टे मर्दन कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनावें और सेने के वर्क पर डालते जायें।

वक्तव्य–इस वटी में सामान्य रीति से चन्द्रोदय द्वितीय विधि वाला मिलाया जाता है। अमीरों के लिये चन्द्रोदय प्रथम विधि वाला मिलाते हैं। और साथ में १ तोला सुवर्ण भस्म मिलाते हैं। उसे चन्द्रोदय वटी (विशेष) यह संज्ञा दी हैं।

मात्रा–१ से २ गोली, आध छटाँक मलाई में रखकर, प्रातः काल (या सांयकाल) में सेवन करावें। ऊपर से दूध पिलावें।

उपयोग–यह रसायन अत्यन्त बाजीकरण है। यह नपुंसकता और निर्बलता को नष्ट कर थोड़े ही दिनों में शरीर को सुदृढ़ कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।

सूचना–(१) इस औषध के सेवन काल में लाल मिर्च, गुड़, खटाई, तैल, अधिक नमक और प्रकृति-विरुद्ध पदार्थों का उपयोग निषद्ध है। क्रोध और चिन्ता का त्याग करें धूम्रपान और सूर्य के तीव्र ताप का सेवन न करें। अधिक परिश्रम भी नहीं करना चाहिये, तथा दूध, घी का उपयोग अधिक करना चाहिये।

(२) यह रसायन अत्यन्त कामोत्तेजक है। अतः अधिक आवश्यकता हो तब थोड़े दिनों तक सेवन कराके बन्द करा देना चाहिये।

(३) जिनका वृक्क योग्य कार्य न करता हो, रात्रि को बार-बार लघुशंका के लिये उठना पड़ता हो, वृक्क में क्षत हुआ हो या शोथ आया हो, उन्हें यह औषधि नहीं देना चाहिये।

दूसरी विधि–द्विगुण गन्धकजारित रससिंदूर और कपूर ४-४ तोले, जायफल, समुद्रशोष, लौंग और अकरकरा १-१ तोला, केशर ६ माशे और कस्तूरी ३ माशे लें। सबको मिला ६ घण्टे नागरबेल के पान के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली, नागरबेल के पान में, दिन में २ बार खाकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

उपयोग–यह रसायन पौष्टिक और कामोत्तेजक है। इसके सेवन से शरीर सबल होता है, वृद्धों को भी बाजीकरण गुण दर्शाता है। इनके अतिरिक्त मधुमेह और प्रमेह-पिड़िका में शक्ति संरक्षणार्थ इसका सेवन कराया जाता है।

९. नवजीवन रस।

द्रव्य–रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध कुचिला और चित्रकमूल, ये सब २-२ तोले और त्रिकटु (सोंठ काली मिर्च और पीपल) ४ तोले लें।

---

* इसके स्थान पर शुद्ध कुचला ६ माशा मिलाने से भी योग अच्छा बनता है। कुचला सत्व भी सरलता से उपलब्ध नहीं होता है।

विधि-काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बना कपड़छन कर चित्रकमूल का क्वाथ, अदरक का रस और नागरबेल के पानों का रस, इन तीनों के साथ क्रमशः १२-१२ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ गोली; नागरबेल के पान में अथवा चविकासव या गोदुग्ध के साथ दिन में २ बार।

उपयोग-यह नवजीवन रस वातप्रकृति और कफप्रकृति वालों को हितकर है। विविध रोगों से क्षीण हुये रोगी को नवजीवन देता है। यह दीपन, पाचन, कीटाणुनाशक, शूलहर, हृद्य, बल्य, आध्मानहर, रक्तपौष्टिक, वातनाड़ीपोषक, कामोत्तेजक और वातहर है।

विषमज्वर (मलेरिया) कुछ दिनों तक रह जाने पर देह कृश और निर्बल बन जाती है, तथा रक्त की न्यूनता, माँस की शिथिलता, अग्निमांद्य, मलावरोध, अरुचि, उत्साह का अभाव, उदर में वायु संगृहीत होने, मलावरोध होने, अन्त्र में से योग्य रस रक्त न बनने से रोगी कृश और निस्तेज बन जाता है। उसे नवजीवन रस देने से आमाशय का रसस्राव और यकृत का स्राव, दोनों बढ़ जाता हैं, अन्त्र की पुनःसरण क्रिया तेज होती है। उदरवायु दूर होती है,मलशुद्धि होने लगती है, तथा पचनक्रिया सुधर जाती है फिर रसरक्तादि धातुयें योग्य बनकर शरीर सुदृढ़ बन जाता है।

अजीर्ण रोगी तुरन्त उपचार न करावे और अपथ्य सेवन करता रहे, तो उदावर्त (आमाशय में गैस उठना) रोग की संप्राप्ति होती है। फिर अफारा, मलावरोध किसी को थोड़ा-थोड़ा दस्त होते रहना, उदरशूल, व्याकुलता, हृदय में भारीपन और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोग में भोजन के १-२ घण्टे बाद चविकासव के साथ नवजीवन रस दिया जाता है। क्वचित् ऋतु प्रकोप या रोग बल के हेतु से हृदय को तीव्र आघात पहुँचे तो उस समय दवाउल मुश्क लेकर वातप्रकोप को तुरन्त दबा देना चाहिये।

अपचन पीड़ित कितने ही रोगियों को मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है या रोज रात्रि को कुछ उत्ताप बढ़ जाता है उदर मेंभारीपन और मन्द-मन्द वेदना होती है, शरीर निस्तेज और उत्साहहीन हो जाता है, दिन में ३-४ बार थोड़ा-थोड़ा दस्त होता है फिर भी योग्य उदरशुद्धि नहीं होती पेशाब में कफ जाता है। शुक्र धातु पतली हो जाती है। द्विदलधान्य (दाल) अधिक खाने में आवें तो आध्मान आ जाता है। घृत वाले पदार्थ अधिक खाने पर अजीर्ण बढ़ जाता है; मूत्र पीला बन जाता है और रात्रि को स्वप्नदोष हो जाता है एवं गुड़, शक्कर वाले पदार्थ खाने से ज्वर कुछ बढ़ जाता है। ऐसे रोगियों को नवजीवन रस देने से अपचन, मलावरोध और मन्द ज्वर आदि विकार दूर होकर शरीर सबल अरैर तेजस्वी बन जाता है।

वातवाहिनियों की विकृति में गतिभ्रंश और ज्ञानभ्रंश ये दो प्रकार होते हैं। यदि इनमें ज्ञानवाहिनियां ही नष्ट हो गई हो, तो इस रसायन का उपयोग नहीं होता। किन्तु गति कारक तन्तुओं चेष्टा वाहिनियों के कार्य अव्यवस्थित हो जाने से कम्प होता हो अथवा वातनाड़ियों की निर्बलता से मांसपेशियाँ सूखती हों, तो उन दोनों प्रकार के वातरोगों पर यह रसायन लाभ पहुँचा देता है।

जो बालक मूत्राशय पर योग्य काबू न होने से रात्रि में निद्रावस्था में पेशाब कर देता है। उसे नवजीवन रस थोड़ी मात्रा में दूध के साथ देने से विकार दूर हो जाता है।

हस्तमैथुन से आई हुई नपुसंकता, शुक्र का पतलापन, स्वप्नदोष आदि विकार पर यह रसायन कस्तूरी १/८ रत्ती मिले हुए नागरबेल के पान में दिया जाता है।

निर्बल मनुष्यों की हृदय गति प्रायः मन्द हो जाती है। फिर हृदय स्पन्दन योग्य नहीं होता, नाड़ी मन्द, अल्प बलयुक्त, किन्तु जल्द चलने लगती है या बीच में टूटती है, हाथ पैरों की अगुलियां और कान की पाली (लौर) शीतल रहती है, थोड़ा सा श्रम करने पर श्वास भर करप्रस्वेद आ जाता है। ऐसे रोगियों को नवजीवन रस नवजीवन प्रदान करता है।

यदि हृदय के पर्दे की क्रिया-विकृति से हृदय में निर्बलता आई हो, तो उस अवस्था में हृदय फूलता है और फिर पैरों पर शोथ आ जाता है। दिन में शोथ बढ़ता है और रात्रि में कम हो जाता है। प्रातःकाल निद्रा से उठने पर शोथ कम भासता है। यकृत् की वृद्धि होती है, रोग जीर्ण होने पर उदर्य्याकला में कुछ जल संगृहीत होता है। पेशाब लाल रंग का और कम उतरता है जिससे विष वृद्धि होकर योग्य निद्रा नहीं मिलती, अन्न का पचन सम्यक् नहीं होता, उदर में वायु भर जाती है; मल-शुद्धि नहीं होती, सोने पर हृदय में घबराहट होती है, रात्रि और दिन बैठे ही रहना पड़ता है। तब ऐसे रोगी को नवजीवन रस दिया जाता है। यदि जलशोथ या जलोदर उत्पन्न हुआ हो, तो रोगी को दूध पर रखना पड़ता है और अनुपान रूप से पुनर्नवादि क्वाथ या त्रिकन्टकादि क्षीर (चिकित्सा तत्व-प्रदीप प्रथम खण्ड से लिखे हुए) के साथ दिया जाता है। यदि कफ की अधिकता हो, तो कपूर आधा रत्ती मिले हुए नागरबेल के पान में दिया जाता है।

फुफ्फुस के वायु कोषों में शोथ आ जाने से कफ-वृद्धि हुई हो, श्वास क्रिया योग्य न होती हो एवं घबराहट हो, तो उस पर नवजीवन रस देने से थोड़े ही दिनों फुफ्फुस संस्थान सबल बन जाता है।

सूचना-अम्लपित्त और वृक्कविकार वालों तथा पित्तप्रधान-प्रकृति वालों को इस रस का प्रयोग नहीं कराना चाहिये।

१०. रसेन्द्रचूड़ामणि।

द्रव्य-शुद्ध पारद १ तोला, सुवर्ण भस्म २ तोले, नागभस्म शतपुटी ६ तोले अभ्रकभस्म ४ तोले, वंगभस्म हरतालमारित ५ तोले, लोहभस्म मल्लमारित ६ तोले, रजतभस्म ७ तोले और स्वर्णमाक्षिक भस्म ८ तोले लेवें।

विधि-सबको यथाविधि मिला धतूरे के पान और भांग के रस में ३-३ दिन खरल करें। फिर पीपल, गिलोय, भारंगी, अमरबेल, खस, नागरमोथा, सफेद बच्छनाग, मुलहठी; शतावरी, कौंच और सरहठी (सर्पाक्षी) इन औषधियों के रस या क्वाथ की क्रमश: ७-७ भावनायें देवें। पश्चात्सबके भार से आधा भाग (वर्तमान में ८वां भाग) अफीम मिला तुलसी की मंजरी के रस में ६ घण्टे खरल करके आध-आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.र.स.)*

मात्रा-१ से २ गोली, रात्रि को मिश्री मिले दूध के साथ। जिनको कब्ज न रहे, वे सुबह-शाम दिन में २ बार ले सकते हैं।

उपयोग-रसेन्द्रचूड़ामणि नपुंसकता, शुक्र की निर्बलता, स्तम्भन शक्ति का ह्रास, वीर्य की कमी को दूर करता है और अधिक स्त्री वाले पुरुष के लिये उत्तम औषधि है।

रसेन्द्रचूड़ामणि अफीम प्रधान औषधि है। (इसमें हमने मूल पाठ से चतुर्थांश अफीम मिलाई है।) इसके अतिरिक्त बच्छनाभ की ७ भावनायें लगाने के हेतु से तथा सुवर्ण, नाग, अभ्रक, वंग और लोह भस्म मिलाने और शतावरी, कौंच आदि की भावना देने से अधिक कामोत्तेजक बन जाता है। यद्यपि इस रस में धतूरे और भांग की भावना देकर अफीम के मलस्तम्भक रूप दोष से रक्षा करने का प्रयत्न किया है; तथापि अफीम के दोष का पूर्णांश में दमन नहीं हो सकता अत: जिनके अन्त्र निर्बल हो या जिनको मलावरोध रहता हो, उनको यह रस बहुत कम मात्रा में देना चाहिये। अफीम के व्यसनी से इस रस की पूर्ण मात्रा या दुगुनी या इससे भी अधिक मात्रासहन हो जाती है; दूसरों से नहीं।

रसेन्द्रचूड़ामणि और कामिनी विद्रावण दोनों अहिफेन-प्रधान प्रबल कामोत्तेजक और स्तम्भक औषधियाँ हैं। इन दोनों में भी रसेन्द्रचूड़ामणि अत्यधिक कामोत्तेजक है। इसका सेवन ग्रीष्मऋतु में न कराया जाये तो अच्छा है एवं इसके सेवन काल में ब्रह्मचर्य का पालन हो तो शुक्र धातु और मस्तिष्क को ठीक लाभ मिलता है।

यह रसेन्द्रचूड़ामणि अति विलासी राजा-महाराजा और अमीर जिनके अधिक स्त्रियां हो, उनके लिये मूल ग्रन्थकार ने निर्माण किया है। यह रस वीर्य को गाढ़ा बनाता है, शुक्राशय को बलवान बनाता है, स्तम्भन-शक्ति को बहुत बढ़ाता है और त्रिषय-सेवन में आनन्द आता है। किन्तु विषय-सेवन की लालसा भी बढ़ाता है। इस रस के सेवन करने वालों को स्त्री-सेवन का विचार बार-बार आता रहता है। इस हेतु रस का सेवन आवश्यकता पर मर्यादा में ही कराना चाहिये। यद्यपि सुवर्ण, नाग, वंग आदि वीर्यवर्धक और वीर्यपोषक औषधियां मिलाने से वीर्य हानि से कुछ अंश में रक्षा होती है, तथापि स्त्री समागम अत्यधिक करने पर शुक्रक्षय और शुक्रधातु की हानि पहुँचती है। अत: अफीम प्रधान इस रस में हानि को लक्ष्य में रखकर इसका सेवन कराना चाहिये।

हस्तमैथुन, अनुचित मैथुन, शुक्र की निर्बलता, वृद्धावस्था, दीर्घकाल तक रोग रह जाने से आई हुई निर्बलता आदि कारणों से नपुसंकता आ गई हो, उसे दूर करने, स्तम्भ शक्ति और वीर्य को बढ़ाने के लिये रसेन्द्रचूड़ामणि का सेवन ब्रह्मचर्य पालन के साथ २-३ मास तक कराने से लाभ हो जाता है। अनुपान रूप से अश्वगन्धारिष्ट हितावह होता है।

मधुमेह होने पर मूत्र में शक्कर जाती है। फिर इसी हेतु से शरीर अधिक निर्बल बनता जाता है। ऐसी अवस्था में शरीर-बल की रक्षा करने और शक्कर की उत्पत्ति कम कराने के लिए शिलाजीत के साथ इस का सेवन कराया जाता है।

वृद्धावस्था की निर्बलता आने पर मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस निर्बल बन जाते हैं। थोड़े से परिश्रम से या चलने से श्वास भर जाता है; नाड़ियों में खिंचाव होता है। उनको शक्ति देने के लिये रसेन्द्रचूड़ामणि आशीर्वाद के समान कार्य करता है। शराब का व्यसन पुराना होने पर व्यसनी निर्बल और निस्तेज बन जाता है, शरीर श्याम हो जाता है; स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसी अवस्था में शराब सेवन कम कराने के साथ, शक्ति देने के लिये इस रस का सेवन कराया जाता है।

मूलग्रन्थकार ने रसेन्द्रचूड़ामणि को प्रमेहनाशक माना है। यह गुण मधुमेह में विशेष स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। मधुमेह की उत्पत्ति

विशेषत: अग्न्याशय का रस कम बनने पर होती है। परिणामत: रक्त में शक्कर बढ़ने लगती है और मूत्र के साथ जाती रहती है। इस विकार पर अफीम-प्रधान औषध हितावह होती है। इस हेतु से आवश्यकता पर रसेन्द्रचूड़ामणि का सेवन कराया जाता है।

मधुमेह के अतिरिक्त अन्य शुक्रमेह आदि जीर्ण प्रमेहों में शक्ति का संरक्षण करने और प्रमेहों का दमन करने में यह रस उपयोगी होता है। अनुपान में लोध्रासाव प्राय: अधिक अनुकूल रहता है। यदि दूसरी औषधियों से प्रमेह रोग दब सकता हो, तो रसेन्द्रचूड़ामणि लाभादायक होने परभी अफीम प्रधान कामोत्तेजक प्रयोग होने से न दिया जाये, तो अच्छा है।

दीर्घकाल तक वीर्य का दुरुपयोग करने तथा अति स्त्री सहवास के हेतु से शुक्रक्षय होने पर पाण्डुता आ जाती है और मुखमण्डल पर शोथ हो ऐसा भास होता है। इसके अतिरिक्त अग्निमांद्य, दिन में २-३ बार शौच होना, बार-बार स्वेद आना और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। शरीर दिन-प्रतिदिन सूखता जाता है। ऐसी अवस्था में रसेन्द्रचूड़ामणि, मधुमालिनी और वृद्धदण्ड चूर्ण के साथ २-३ मास तक दिया जाता है।

११. कामचूड़ामणि रस।

द्रव्य-मुक्तापिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सुवर्ण भस्म, भीमसेनी कर्पूर, जावित्री, जायफल, लौंग, वंगभस्म और रजतभस्म ये ९ औषधियां २-२ तोले तथा चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के दाने और असली नागकेशर) का चूर्ण ९ तोले लें।

विधि-सबको मिला शतावर के रस में ७ दिन तक खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१ से २ गोली प्रात: सायं दिन में २ बार धारोष्ण दूध या मिश्री मिले दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ देवें।

उपयोग-कामचूड़ामणि रस शुक्रहीन, गतध्वज ओर ८० वर्ष के वृद्ध को युवा के समान बल प्रदान करता है। निरश ध्वजभंग रोगी को भी शीघ्र लाभ पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त प्रमेह, मूत्ररोग, अग्निमांद्य, शोथ, रक्तदोष और स्त्रियों के समस्त रोगों को दूर करता है।

यह रसायन शीतवीर्य, पौष्टिक और कामोत्तेजक है। जिन मनुष्यों ने अधिक स्त्री समागम से या अन्य रीति से अपने शुक्र को नष्ट कर दिया हो, उनके लिये यह अमृत रूप लाभदायक है। पित्त-प्रधान प्रकृति वाले, गांजा और शराब व्यसनी तथा अति मिर्च आदि गर्म मसाला खाने वालों को इसका सेवन वीर्यवर्द्धक रूप से कराया जाता है। * शास्त्र में ध्वजभंगनाशक अनेक औषधियां लिखी हैं। उनमें से अनेकों में अफीम मिली हुई है जो सत्वर लाभ पहुँचाती है। स्तम्भन शक्ति को बढ़ाती है, तथा मन को आनन्दित बनाती है। किन्तु उनका सेवन दीर्घकाल तक करने पर या मात्रा अधिक लेने पर परिणाम में हानि पहुँचाती है। इन अफीम-प्रधान औषधियों के अतिरिक्त पूर्णचन्द्रोदय, पुष्पधन्वा आदि औषधियाँ अति उग्र हैं। वे कफ-मेद प्रकृति वालों को अधिक अनुकूल रहती हैं। उनके सेवन से शुक्र में उष्णता उत्पन्न होती है, तथा स्त्री-समागम की इच्छा पहले की अपेक्षा बलवत्तर होती जाती है। अत: उन औषधियों को भी स्वस्थ, कामी मनुष्यों के लिये सच्ची लाभदायक नहीं कहेंगे।

यह कामचूड़ामणि और वसन्तकुसुमाकर आदि रसायन उपरोक्त दोनों प्रकार से भिन्न प्रकार की औषधियां हैं। वसन्तकुसुमाकर में रससिंदूर, अभ्रक-भस्म और कस्तूरी आदि उत्तेजक औषधियों का योग है। किन्तु कामचूड़ामणि में सब औषधियां शामक हैं, केवल कर्पूर एक ही उत्तेजक औषधि मिलाई है। अत: यह वीर्य को गाढ़ा और शीतल बनाता है, शुक्राशय की वातवाहिनियों को दृढ़ बनाता है, मस्तिष्कस्थ केन्द्र पर शामक असर पहुंचाकर क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली मानसिक उत्तेजना को शान्त करता है। उष्ण और पतले वीर्य वाले मनुष्यों के लिये यह अति हितकर है।

वर्तमान में पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से कामोत्तेजक औषधियों का प्रचार अत्यधिक बढ़ गया है। शिक्षण दोष और संगतिदोष से नवयुवकों के ब्रह्मचर्य का भंग विशेषत: छोटी आयु में वीर्य के परिपाक काल से पहले ही हो जाता है। अति स्त्री-समागम करने में अपनी बहादुरी मान लेते हैं। किन्तु थोड़े ही समय में शक्ति का ह्रास हो जाता है या भ्रमवश ऐसी भावना हो जाती है कि मैं नपुंसक हूँ, स्त्री-समागम के लिये अयोग्य हो गया हूँ। फिर लज्जावश किसी सुयोग्य हितचिन्तक वैद्य की सलाह नहीं लेता और वर्तमान दैनिक आदि पत्रों से पर से निर्णयकर अति उत्तेजक (कामोत्तेजक) औषधियां मंगवाकर सेवन करने लगता है। परिणाम में वीर्य अति उष्ण और पतला बन जाता है, मन और देह पर अधिकार नहीं रहता किसी छोटी बालिका के स्पर्श से या बहन बेटी आदि को देखते ही (बुद्धि अनुचित मानती है फिर भी) मन में उत्तेजना आकर तत्काल शुक्रपात हो जाता है। किसी स्त्री के पैरों के घुंघरू की आवाज आई कि तुरन्त

* इस रस का दीर्घकाल प्रयोग न कराना ही अधिक अच्छा है।-संशोधक

उत्तेजना उत्पन्न होती है। एक दिन में ५-७ या अधिक बार ऐसा होता रहता है। ऐसे रोगियों को वसंतकुसुमाकर देने पर भी उत्तेजना आकर हानि पहुँचाती है, अत: उनको कामचूड़ामणि का सेवन धैर्यपूर्वक कराया जाता है।

स्त्री समागम के अति योग के हेतु से शुक्रक्षय की प्राप्ति हो जाती है, ऐसे नवयुवकों के मुखमण्डल निस्तेज या उदासीन हो जाते हैं। नेत्र गढ़े में घुस गये हैं, ऐसा भासता है, किसी भी कार्य के लिये उत्साह नहीं रहता। देह पाण्डुवर्ण की शुष्क और कृश, चक्कर आना, वातप्रकोप, हृदय-स्पन्दन की वृद्धि, अग्निमांद्य, मलावरोध, आलस्य, निद्रा की वृद्धि आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको यह रसायन धारोष्ण दूध के साथ देने से सत्वर लाभ पहुँचाता है।

हस्तमैथुन आदि कृत्रिम उपायों का आश्रय दीर्घकाल तक लेने से कितने ही युवकों को नपुंसकता आ जाती है। फिर उदासीनता, निस्तेज वदन, स्मरण-शक्ति का ह्रास, कभी उन्माद जैसी अवस्था उपस्थित होना, किसी किसी को वातप्रकोप के झटके आना, किसी को शुक्रनाशजनित क्षय रोग को संप्राप्ति होना आदि लक्षण या प्रकार उत्पन्न होते हैं। उन रोगियों को यह कामचूड़ामणि, अमृतप्राश, च्यवनप्राशावलेह या शतावर्यादि घृत के साथ दिया जाये और दृढ़तापूर्वक, ब्रह्मचर्य का पालन कराया जाये, तो मस्तिष्क वातसंस्थान, शुक्राशय और हृदय की स्थिति सुधर जाती है। स्थानीय हानि को दूर करने के लिये आवश्यकतानुसार स्थानीय प्रयोग रूप से श्रीगोपाल तैल या किसी तिला आदि का उपयोग कराया जाता है।

शराब, गाँजा या सिगरेट आदि धूम्रपान के अतियोग से मस्तिष्क में उष्णता, नेत्रों में लाली, दृष्टिमांद्य, वीर्य में पतलापन, स्वप्न-दोष, स्मरण शक्ति का नाश, किसी किसी को बात-बात में क्रोध की उत्पत्ति होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उनको कामचूड़ामणि रस अमृतप्राश के साथ देना चाहिये तथा चन्दन, कमल, गुलाब और केवड़े का अर्क पिलाने रहना चाहिये।

अति व्यवायी युवकों को प्राय: शुक्रक्षय हो जाता है। फिर भी स्त्री-समागम से उपराम नहीं होते, उनकी सहवास की इच्छा प्रबल होती जाती है। स्त्री-समागम करने पर वीर्यस्राव नहीं होता, अधिक परिश्रम करने पर वीर्य के स्थान पर गरम-गरम रक्त थोड़े परिमाण में निकलता है। उस समय मूत्रप्रसेकनलिका में जलन होती है। ये शुक्रक्षय की पराकाष्ठा का लक्षण है। ये उपद्रव निशेषत: शराबी मनुष्यों को होते हैं। वे सर्वदा शराब के नशे में मस्त रहते हैं। कुछ वर्षों के पश्चात् क्षयरोग की संप्राप्ति होकर वे अकाल मृत्यु के मुँह में चले जाते है। ऐसे रोगियों को क्षयरोग की प्राप्ति होने के पहले या क्षय की प्रथमावस्था में कामचूड़ामणि का सेवन कराया जाये, तो वे बच जाते हैं।

शुक्र-धातु निर्बल हो जाने पर पचन-शक्ति मन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था में घृत या दुर्जर पदार्थों का अधिक सेवन करने या भोजन अति परिमाण में करते रहने से अपचन, कोष्ठबद्धता और प्रमेह रोग की उत्पत्ति होती है। फिर पेशाब के साथ धातु (बहुधा बस्ति स्थान में से गाढ़े श्लेष्मा) का स्राव होता रहता है। यह किसी को पेशाब के प्रारम्भ में तथा किसी को पेशाब के साथ-साथ विशेषकर अन्त में निकलता रहता है। इस प्रमेह पर कामचूड़ामणि का सेवन गिलोय, गोखरू और आंवले के चूर्ण (या क्वाथ) तथा मिश्री के साथ कराया जाता है।

युवावस्था में अति स्त्री-सहवास करने पर वृद्धावस्था में मूत्र-संस्थान शिथिल हो जाता है, वृक्क निर्बल होने से मूत्रोत्पत्ति योग्य नहीं होती बस्ति निर्बल बनने से पेशाब धारण नहीं होता। फिर बार-बार पेशाब करना पड़ता है। किसी-किसी को पौरुष-ग्रन्थि बढ़ जाने के हेतु से भी थोड़ा-थोड़ा पेशाब आता रहता है। तथा वातप्रधान लक्षण प्रकाशित होते हैं। उस पर कामचूड़ामणि रस शतावर्यादि चूर्ण के साथ सेवन कराया जाता है।

यह रसायन स्त्रियों के लिए भी हितकारक है। जिस तरह यह पुरुषों के शुक्र को शुद्ध, शीतल, सबल और गाढ़ा बनाता है, उसी तरह स्त्रियों के रज को भी शुद्ध और सबल बनाता है। पुरुषों के शुक्राशय और शुक्र के समान स्त्रियों के बीजाशय और रज पर भी लाभ पहुँचाता है।

कितनी ही युवतियों को युवावस्था आने पर भी देह कृश होने से बीजाशय का योग्य विकास नहीं होता। फिर मासिकधर्म नहीं आता। उनको यदि उष्ण उत्तेजक औषध देकर मासिकधर्म प्रारम्भ कराया जाये तो कुछ वर्षों के पश्चात् युवावस्था में ही वृद्धबन जाती है। इसके विपरीत कामचूड़ामणिरस + प्रवालपिष्टी + अमृतासत्व + सितोपलादि चूर्ण के मिश्रण का सेवन कराया जाय, तो देह सबल बनती है, तथा बीजाशय, गर्भाशय, स्तन आदि अवयवों का योग्य विकास होता है। और मासिक धर्म आने लगता है।

सुजाक आदि विकार हो जाने पर व्याधि विष, रक्त धातुओं मे लीन रहती है, जिससे रक्त अशुद्ध रहता है, वीर्य पतला और उष्ण रहता है तथा रोगनिरोधक शक्ति निर्बल रहती है। फिर बार-बार विविध प्रकार के विकार ज्वर, अग्निमान्द्य, व्रण, विद्रधि, दृष्टिमान्द्य, शोथ,

बहुमूत्र आदि उपस्थित होते हैं। उनको कामचूड़ामणि, अमृतासत्व, मिश्री और दूध के साथ या सारिवादि अरिष्ट के साथ २-४ मास तक सेवन कराया जाये तो रक्तप्रसादन होकर रोग शमन हो जाता है एवं फिरंग और पूयमेह हो जाने के पश्चात् पुरुषों के अण्डकोष या स्त्रियों के बीजाशय के समीप में रही हुई वातवाहिनियां और केशिकाएं संकुचित होकर नपुंसकता आई हो, तो वह भी इसके सेवन से दूर हो जाती है।

१२. रतिवल्लभ चूर्ण।

द्रव्य-सकाकुल मिश्री ८ तोले, बहमन सफेद, बहमन लाल, पंजासालम, सफेद मूसली, काली मूसली और गोखरु, ये ६ औषधियां४-४ तोले, छोटी इलायची के दाने, गिलोयसत्व, दालचीनी और गावजवां के फूल ये ४ औषधियां २-२ तोले लें।

विधि-सबको मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

मात्रा-४ से ६ माशे तक, समान मिश्री मिलाकर मिश्री मिले दूध के साथ लेवें।

उपयोग-यह चूर्ण उष्ण प्रकृति वालों को हानिकारक है। इसके सेवन से कामोत्तेजना होती है तथा शीघ्रपतन, मूत्र में वीर्य जाना, वीर्य का पतलापन आदि दोषों को दूर कर वीर्य को गाढ़ा और सबल बनाता है, शरीर को पुष्ट, तेजस्वी और सुदृढ़ तथा मन को उत्साही बनाता है।

१३. अश्वगन्धादि चूर्ण।

द्रव्य-असगन्ध, विधारा, आंवला, गोखरु, गिलोय, इन ५ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको कूट कपड़छन चूर्णकर शतावरी के स्वरस की ३ भावनायें देकर सुखा लें। फिर चूर्ण के समान मिश्री मिलाकर रख लें।

मात्रा-आधा से १ तोला, शहद और घृत में मिलाकर चाटें। ऊपर से गोदुग्ध पीवें।

उपयोग-यह औषधि रसायन और वाजीकरण है। सतत एक वर्ष पर्यन्त इसका सेवन कराते रहने से शुक्रक्षय, वीर्यदोष प्रमेह आदि वीर्य विकार एवं तज्जन्य उपद्रव (असमय पर वृद्धावस्था के लक्षण, स्मरण शक्ति का ह्रास, नेत्र ज्याति की निर्बलता, शिर में चक्कर आना व दर्द होना) आदि मिटते हैं। यह प्रयोग वाग्भटोक्त है। इसको राजवैद्य स्व. पं. रामचन्द्र जी शर्मा ने अनेक बार प्रयोग में लिया है।

१४. विदार्यादि चूर्ण।

विधि-विदारीकन्द, सफेद मूसली, सालमपंजा, असगन्ध, बड़े गोखरु, अकरकरा, ये ६ औषधियां समभाग मिला कूटकर कपड़छन चूर्ण करें।

(पं. श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

मात्रा-३-३ माशे प्रातः काल और रात्रि को समान शक्कर मिला गरम गोदुग्ध के साथ सेवन करावें।

उपयोग-यह चूर्ण वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक है। स्तम्भनशक्ति में भी वृद्धि होती है। वात, कफ प्रकृति और मेद वाले मनुष्यों के लिये यह हितकारक है। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को और जिनका शुक्र पतला और उष्ण हो, उनको प्रवालपिष्टी और अमृतासत्व २-२ रत्ती मिलाकर देने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

१५. मूसली पाक।

द्रव्य एवं विधि-सफेद मूसली के १ सेर चूर्ण को ८ सेर दूध में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दोनों का मावा हो जाने पर १ सेर घी मिलाकर अच्छी तरह भून लेवें। पश्चात् सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, हाऊबेर, सौंफ, शतावरी, जीरा, अजवायन, चित्रकमूल, गजपीपल, अजमोद, पीपलामूल, आंवला, कचूर, गोखरु, धनियां, असगन्ध, छोटी हरड़, नागरमोथा, समुद्रशोष, लौंग, जायफल, जावित्री, नागकेशर, तालमखाना, खरैंटी, कंघी, गंगेरन, कौंच के बीज, मुलहठी, मोचरस, सिंघाड़े, कमलगट्टे (जीभी निकाले हुए), वंशलोचन, शीतलमिर्च, अकरकरा, नेत्रबाला और सफेद चन्दन, ४१ औषधियां, ५-५ तोले लेकर कपड़छन चूर्ण करें। छिल्के निकाले हुए तिल ४० तोले, रससिंदूर २॥ तोले, अभ्रकभस्म ५ तोले लोह भस्म ५ तोले मिलावें। फिर १५ सेर शक्कर की चासनी कर सब द्रव्यों को मिला २-२ तोले के मोदक बना लेवें।

वक्तव्य-मूलग्रन्थ में घी में भूनने को नहीं लिखा। बिना भूने पाक अधिक काल नहीं रह सकेगा, ऐसा मानकर हमने भूनने का पाठ बढ़ाया।

उपयोग-यह पाक उष्णवीर्य है। शीतकाल में सेवन करने योग्य है। १ से २ मोदक रोज प्रातःकाल, ऊपर से दूध पिलाते रहने से मंदाग्नि, गुल्म, प्रमेह, अर्श, श्वास, कास, व्रण, क्षय, कामला, पाण्डु, शुक्रक्षीणता, नेत्र की निर्बलता, वातरोग, पित्तरोग, कफ रोग, नपुंसकता,

प्रदर, शुक्रदोष, उर:क्षत: रजोदोष, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, मलदोष, आनाह, कृशता और अति बढ़ा हुआ वातरक्त आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह पाक अग्निवर्धक, कान्तिप्रद, तेजोवर्धक, कामवर्धक और वलीपलित-नाशक है। यह योग क्षीण शुक्रवाले मनुष्यों और क्षीण रजवाली स्त्रियों के लिये अश्विनी-कुमार ने निर्मित किया है। शुक्रवृद्धि के लिये यह अद्वितीय योग है।

१६. रतिवल्लभ पूगपाक।

द्रव्य एवं विधि-चिकनी सुपारी ४० तोले को सरोते से बारी कतर, दोलायन्त्र (उष्ण यन्त्र) में रख जल की वाष्प द्वारा स्वेदन करें। नरम हो जाने पर साफ धो, कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। इस चूर्ण को ८ गुने गोदुग्ध में मिलाकर पाक करें। खोवा बन जाने पर ३२ तोले गोघृत मिलाकर खूब भूने। फिर २॥ सेर मिश्री की एक तार की चाशनी बनाकर खोवा मिलावें। पश्चात् पाक होने पर उतार लेवें तथा छोटी इलायची के दाने, गंगेरन, खरैंटी, पीपल, जायफल, शिवलिंगी के बीज, जावित्री, तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, सोंठ, खस, नेत्रबाला, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वंशलोचन, शतावर, कोंच के बीज (छिलके रहित), मुनक्का, तालमखाना, गोखरु, छुहारा, खिरनी, धनियां, कसेरु, मुलहठी, सिंघाड़े, जीरा, बड़ी इलायची, अजवायन, वराटिका भस्म, जटामांसी, सौंफ, मेथी, विदारीकन्द, सफेद मूसली, काली मूसली, असगन्ध, कचूर, नागकेशर, सफेद मिर्च, नयी चिरौंजी, सेमल के बीज, गजपीपल, कमलगट्टे की जिब्बी निकाली हुई गिरी, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन और लौंग इन ५० औषधियों का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोले मिलावें। पश्चात् रससिंदूर, बंग भस्म, नाग भस्म, लोहभस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा कस्तूरी और कपूर ४-४ माशे मिलाकर २-२ तोले के लड्डू बना लेवें। *(यो.र.)*

मात्रा-आधे से एक लडडू तक, अग्निबल और शरीर बल के अनुसार खाकर ऊपर मिश्री मिला हुआ दूध २० तोले पिलावें।

उपयोग-यह पाक शीतकाल में सेवन के लिये अति हितावह है। इस पाक के सेवन से वीर्य की वृद्धि, कामोत्तेजना और अग्नि की दीप्ति होती है। यह पाक हृद्य और पौष्टिक है।वृद्ध मनुष्य भी इस पाक के सेवन से युवा के समान बलवान् तेजस्वी और सुन्दर बन जाता है।

यदि इस पाक में खुरासानी अजवायन, काले धतूरे के शुद्ध बीज, अकरकरा, समुद्रशोष, माजूफल, खसखस और दालचीनी ४-४ तोले तथा भूनी भांग सबके वजन से आधा मिला लें। तो यह कामेश्वर मोदक कहलाता है।

सूचना-इस पाक के सेवन काल में खटाई का बिल्कुल त्याग करना चाहिये, तथा लडडू और दूध पच जाने पर भोजन कराना चाहिये।

१७. वसंतोदय पाक।

द्रव्य-चोपचीनी १० तोले, पंजासालम, सफेद मूसली, काली मूसली, कौंच के बीज, सेमल की मूल, विदारीकंद, और असंगध ये ७ औषधियां ५-५ तोले, छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, लौंग, जायफल, जावित्री और तृणकांतमणि पिष्टी २-२ तोले, केसर और भीमसेनी कपूर १-१ तोला, अम्बर चन्द्रोदय (मकरध्वज), मोतीपिष्टी और अभ्रक भस्म ६-६ माशे, तथा सुवर्ण भस्म ३ माशे लें।

विधि-चोपचीनी आदि का बारीक चूर्ण बनाकर सबको मिलाकर लें। शक्कर २॥ सेर, घी आध सेर और दूध ५ सेर लेवें।

भस्म, मकरध्वज आदि को मिलाकर खरल करें। इसके साथ इलायची आदि औषधियों का चूर्ण मिलावें, केसर पृथक् रखें। फिर ८ काष्ठादि औषधियों को कूटछानकर दूध में रात्रि को भिगो दें और सुबह उसका खोवा बनाकर फिर घी में भूनें। फिर शक्कर की चासनी करके उसमें केसर मिलावें। फिर घी में भूना हुआ पाक और भस्म आदि मिलाकर थाल में डालकर चक्की जमा लेवें। ऊपर चाँदी के वर्क लगा देवें।

सूचना-जिसको भांग अनुकूल रहती हो, वे मिश्रण को जमाने के समय शुद्ध धोई हुई भाँग का चूर्ण २ तोला इसमें मिला सकते हैं।

मात्रा-२ से ४ तोले सुबह १ बार। ऊपर दूध पिलावें।

उपयोग-यह वसंतोदय पाक अमीरों के लिये शीतलकाल में सेवन करने योग्य है। यह रक्त आदि धातुओं को पुष्ट करता है मन को प्रसन्न बनाता है और स्फूर्ति देता है। इस पाक के सेवन से नष्ट हुई शक्ति पुन:बढ़ जाती है। हृदय और मस्तिष्क सबल हो जाते हैं और आयु बड़ी होने पर भी शक्ति कायम रहती है।

१८. अहिफेन पाक।

द्रव्य-अकरकरा, केशर लौंग, जायफल, भांग, शुद्ध हिंगुल, ये ६ औषधियां २-२ तोले तथा अफीम १ तोला लें।

विधि-अफीम को १६ तोले दूध में मिलाकर मावा बनालें। अन्य औषधियों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। फिर १६ तोले मिश्री

की चाशनी बनावें। कुछ शीतल होने पर उसमें मावा और औषधियों का चूर्ण मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(यो. चि.)*

मात्रा-१ से २ गोली रात्रि में मिश्री मिले दूध के साथ देवें।

उपयोग-इस औषधि का सेवन करने से क्षय, कृशता आदि व्याधियां दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान् बनता है। यह रसायन कामोत्तेजक है। मात्रा हो सके उतनी कम देनी चाहिये एवं दूध जितना पचन हो सके, उतना अधिक परिमाण में देना चाहिये।

१९. शक्तिवर्द्धक गुटिका।

द्रव्य-शुद्ध कुचिला २ तोले, जावित्री, जायफल, लौंग और अफीम, चारों ४-४ माशे, केशर ३ माशे, सफेद मिर्च १॥ माशा, कस्तूरी १ माशा और अम्बर ४ रत्ती लेवें।

विधि-सब औषधियों को कूट कपड़छन चूर्णकर नागरबेल के पान के रस में ६ घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(पं. श्री गुरुशरणदासजी)*

मात्रा-१-१ गोली दिन में २ बार दूध के साथ दें।

उपयोग-यह गुटिका उत्तम शक्तिप्रद हैं। निर्बल पचन-शक्ति, वातपीड़ित और पतले वीर्य वालों के लिये अति हितावह है। यह वीर्य को सबल बनाती है। और कामोत्तेजना भी करती है।

जिस रोगी को कभी कब्ज और कभी पतले दस्त हो जाते हों, उदर में वायु भरी रहती हो, उसको इस वटी का सवेन कराने से उसके आमाशय और अन्त्र बलवान् बनकर रोग निवृत्त हो जाता है। जीर्ण उदरवात में यह वटी कम मात्रा में लम्बे समय तक देनी चाहिये।

२०. कन्दर्पसुन्दर तैल।

विधि-श्वेत गुञ्जा, खिरनी के बीजों का मगज, जायफल और लौंग चारों को १०-१० तोले मिला, कूटकर कपड़मिट्टी की हुई बोतल में भरें। फिर बोतल के मुँह पर लोहे के तार की गोली बना डाट की तरह लगा देवें। जिससे तैल टपक सके और औषध चूर्ण न निकल पाये। पश्चात् चूल्हे पर चढ़ाकर पाताल यन्त्र विधि से तैल निकाल लेवें। *(श्री पं. गुरुशरणदासजी)*

वक्तव्य-यदि इसमें शुद्ध भल्लातक मिलाया जाये तो और विशेष वाजीकरणकर्ता बन जायेगा।

मात्रा-इस तैल की ९ सींक भर के नागरबेल के पान पर लगाकर सेवन करावें। ऊपर से मक्खन मिश्री खिलावें या गोघृत १ छटाँक निवाया करके पिलावें।

उपयोग-यह तैल अत्यन्त कामोत्तेजक और बलवर्द्धक है। २१ दिन तक ब्रह्मचर्य के पालनसह सेवन कराने पर शरीर सुदृढ़ बन जाता है।

२१. शक्तिसंजीवन लेह।

द्रव्य-मगज पिस्ता, मगज बादाम, हब्बुल खिजरा, मगज अखरोट, सकनकूर, कुलिंजन, सकाकुल, बहमन सफेद, बहमन लाल, तोदरी सफेद, तोदरी लाल, तोदरी पीली, सौंठ, हब्बेकिलकिल, काले तिल, दालचीनी प्रत्येक ३५ माशा। सुम्बलतीस (जटामांसी), सादकुम्पी (नागरमोथा), लौंग, कबबाबचीनी, तुख्म गाजर, तुख्म हलीयून असली, तुख्म मूली, तुख्म सलाम, तुख्म प्याज, तुख्म सिब्बत, इन्द्रयव मीठे, दरुनज अकबरी, जरनव प्रत्येक २३ माशा। जायफल १५ माशा, जावित्री १४ माशा, पीपल १४ माशा, सालम ६ तोला, ताजा सफेद खोपरा ६ तोला, खसखस सफेद ६ तोला, सुरञ्जन २० माशा, बोजीदान २८ माशा, पोदीना २८ माशा, माहसूतर अराबी १८ माशा, केशर २८ माशा, गूगल की लकड़ी (पतली-पतली टहनियाँ) २८ माशा, सुवर्ण वर्क ९ माशा, चाँदी के वर्क ९ माशा, अम्बर ९ माशा, कस्तूरी ९ माशा, शहद और मिश्री सब औषधियों से तिगुनी (दोनों मिला कर) लेवें।

विधि-पहले मगजात और जायफल, जावित्री आदि तैल स्निग्ध वस्तुओं को शिला पर खूब बारीक पीसे। केशर को अर्क गुलाब या केवड़ा में घोटकर अलग रखें। कस्तूरी साफ करके बाल वगैरह निकालकर शुद्ध करें, काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण करके खरल में डालें। फिर कस्तूरी और अम्बर को ४ तोले मिश्री के साथ घोटें। फिर सब दवाओं को मिलाकर शनैःशनैः ४ प्रहर घोटें। जब अच्छी तरह घुट जाये तब मगजयात पिसा हुआ खरल में डाल के मिलाकर दो घण्टा घोटें और एक जिगर कर लें। फिर शक्कर की चाशनी ४ तार की अर्थात् अवलेह जैसी करें। उसमें केशर मिलावें, चाशनी में ज़ब पतलापन न हो, तब उतारकर ठण्डी करें। तदनन्तर खरल की हुई

दवाइयाँ डालें। फिरवर्क मिला, चीनी के अमृतबान या काच के बर्तन में भरकर ५-७ दिन तक धान्यराशि में दबा दें। फिर निकालकर अग्नि बल के अनुसार देवें।

मात्रा-६ माशे से १ तोला, प्रात:सायं चाटकर यथारुचि दूध पिलावें।

उपयोग-यह अवलेह उत्तम वाजीकर और पौष्टिक है। इसका सेवन कराने से वीर्य का अटूट भण्डार हो जाता है। यह एक यूनानी योग है। हमारे परम्परागत अनुभव से यह उत्तम सिद्ध हुआ है। अत: सर्व साधारण के हितार्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया है।

(स्व. वैद्यराज पं. श्री रामचन्द्र जी)

२२. धात्री रसायन (अनोश दारु)।

द्रव्य एवं विधि-ताजे पक्के बड़े आंवले २॥ सेर को २४ घण्टे तक दूध में भिगोंवे। फिर दूसरे दिन जल में डालकर उबालें। आंवले नरम हों और सरलता से गुठली निकल जाये उतना पकालें। फिर गुठली निकाल लोहे के तार की चलनी को कलईदार बर्तन पर रख उस पर आंवलों को मसलकर छान लेवें। छने हुए गूदे में १० तोले गोघृत मिला कर कलईदार पीतल की कड़ाही में मन्दाग्नि पर पकावें और लकड़ी के खोंचें से हिलाते रहे। आंवले पककर घी छोड़ने लगे तब नीचे उतार लेवें। पश्चात् सेर शक्कर को अर्क गुलाब में मिला चाशनी करें। उसमें आंवलों को मिलाकर कड़ाही को नीचे उतार लेवें। फिर छोटी इलायची के बीज, बड़ी इलायची के बीज, नागरमोथा, अगर, तगर, जटामांसी, सफेदचन्दन, वंशलोचन, रुमीमस्तंगी, जायफल, जावित्री, केशर, तेजपात, तालीसपत्र, लौंग, गुलाब के फूल, धनियां, कालाजीरा, कपूरकाचरी, निर्विषी (जदबार खताई,) दालचीनी, आबरेशम कतरा हुआ और बिजोरे के सुखाये हुए छिलके, इन २३ औषधियों का १-१ तोला चूर्ण कर मिलावें। पश्चात् चाँदी के वर्क १०० (१ तोला) और सोने के वर्क २५ (३ माशे) मिला अमृतबान में भर लेवें। ४० दिन के बाद उपयोग में लेवें।

वक्तव्य-इसमें कस्तूरी, अम्बर, प्रवालपिष्टी और मोतीपिष्टी १-१ तोला मिलाने पर यह योग विशेष गुणकारक होता है।

मात्रा-६-६ माशे, सुबह भोजन के ३ घण्टे पहले, निवाये गोदुग्ध के साथ और रात्रि में सोने के आध घण्टे पहले देवें।

उपयोग-यह योग उत्तम रसायन, वाजीकर, पौष्टिक, आमाशय, मस्तिष्क और हृदय को बलवान् बनाने वाला तथा अग्निप्रदीपक है।

२३. शतावरी घृत (रसायन)।

द्रव्य-शतावरी का रस २५६ तोले, दूध २५६ तोले, गोघृत १२८ तोले तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुनक्का, मुलहठी, मुद्गपर्णी, विदारीकंद और रक्तचन्दन, इन १२ औषधियों को समभाग लें।

विधि-सबको मिलाकर किया हुआ कल्क ३२ तोले लें। सबको मिला कर मन्दाग्नि पर पाक करें। (जल भी २५६ तोले मिला लेवें।) घृत सिद्ध होकर ठंडा होने पर शक्कर और शहद १६-१६ तोले मिलाकर एक जीव बना लें।

मात्रा-आधे से १ तोला तक, दूध के साथ देवें।

उपयोग-यह घृत उत्तम पौष्टिक, शीतवीर्य और वाजीकरण है। रक्तपित्त, वातरक्त और क्षीणशुक्र रोगियों के लिये अति हितकारक है। अंगदाह, शिरोदाह ज्वर, पित्तप्रकोप, योनिशूल, दाह, पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों को शमन कर बल, वीर्य, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है, तथा शरीर को पुष्ट बनाता है।

शुक्राशय शिथिल हो जाने पर शुक्र का योग्य अवरोध नहीं होता एवं पित्त प्रकोप के हेतु से शुक्र पतला और उष्ण रहता है। बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब होता रहता है। शिर में उष्णता, सारे शरीर में दाह, विविध अंगों में शूल चलता हो, पित्तप्रकोप जनित प्रदर विकार हो और मूत्रकृच्छ आदि लक्षण प्रतीत हों उन सबको यह घृत दूर करता है और देह को सबल बनाता है।

क्षय, कीटाणुजन्य मांसक्षय, प्रदाहजनित स्थानिक मांसक्षय, घातक ग्रन्थि बनकर उपवृक्क की शिरा पर दबाव आना, उपवृक्क स्थान में रक्तवाहिनियों में रक्त अत्यधिक भर जाना तथा अर्धेन्दु ग्रन्थि के प्रदाह अथवा दबाव आदि हेतु से उपयुक्त (Suprarenal Capsule) की विकृति होती है। फिर वैवर्ण्य पाण्डु (Addison's disease) रोग की प्राप्ति होती है। इस रोग में पाण्डुता, अति दुर्बलता, हृदयस्पन्दन अति निर्बल हो जाना, श्वास भर जाना, शीर्षशूल, बार-बार जम्भाई आना, मुख और कण्ठ आदि पर ताम्रवर्ण की त्वचा बन जाना, नाड़ीक्षीणता, आमाशय की उग्रता से क्षुधावृद्धि और प्राय: वमन तथा क्वचित् अतिसार आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस रोग पर मुख्य कारण को दूर करने वाली औषधि के साथ इस शतावारी घृत का आध से एक तोले तक भोजन के प्रारम्भ में सेवन कराने से विशेष लाभ पहुँचता है।

क्षय कीटाणुजन्य विकार होने पर वसन्तकुसुमाकर के साथ और अन्य प्रकार होने पर तालसिन्दूर और नवजीवन रस के साथ इस घृत का प्रयोग करना चाहिए। एवं उपद्रवों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। ग्रन्थि और प्रदाह आदि कारणों को दूर करने के लिये बाह्योपचार भी करते रहना चाहिये। किन्तु इन सब प्रकारों और सब अवस्थाओं में इस घृत का सेवन कराते ही रहना चाहिये।

वैवर्ण्य तथा पाण्डुरोग के लिये भेड़ का दूध और घृत लेकर घृत सिद्ध करे, तो विशेष अच्छा होगा। एवं इस के सेवन काल में प्रातःकाल और रात्रि को प्रवाल पंचामृत १-१ रत्ती; रक्तचन्दन, पद्माख, धनियां, गिलोय, दारुहल्दी की छाल और निम्ब की अन्तरछाल इन ६ औषधियों को मिला जौकूट किये हुए ६-६ माशे क्वाथ के साथ देवें। अधिक जम्हाई और हृदय की शिथिलता हो, तो १-१ रत्ती शुद्ध कुचिला या नवजीवन रस देते रहें। अतिसार हो तो साथ में सुवर्णयुक्त सर्वांगसुन्दर का सेवन करावें।

वक्तव्य-दिन में निद्रा, धूम्रपान, भारी भोजन, मांसाहार, अण्डे तथा व्यायाम निषिद्ध है। भोजन में क्षार-प्रधान द्रव्य अर्थात् नमक, सोडा आदि अधिक मात्रा में देवें। डॉक्टरी मातनुसार शक्कर भी हितकारक है। पुनर्नवा, चौलाई, सोवा, पालक, बथुआ, आलू आदि का शाक तथा दूध हितकारक है मूत्र में विकृति न हो तो मट्ठा लेवें।

मस्तिष्क में रहे हुए उत्ताम-नियामक और उत्पादक केन्द्र उत्तजित होने से शारीरिक उष्णता अधिक बनी रहती है। इस हेतु से शरीरिक कृशता, मांसशोष, प्रस्वेद अधिक आना, प्रस्वेद में दुर्गन्ध, ओष्ठ के भीतर क्षत होना, ओष्ठ पर से त्वचा के टुकड़े निकलते रहना, शुक्र का पतलापन, प्रगाढ़ निद्रा कम आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस पर कामदुधा, गोदन्ती भस्म और अकीक पिष्टी के साथ इस घृत का सेवन कराना चाहिये।

२४. मौक्तिक रसायन।

विधि-जयन्ती के रस और गंधक योग से बनाई मुक्ता भस्म १ तोला, गन्धक योग से मारित सुवर्ण भस्म २ तोले, कान्तलोह भस्म ३ तोले, अभ्रक सत्व भस्म ४ तोले शुद्ध गंधक और सोहागे का फूला ४-४ तोले मिला अदरक के रस में २० दिन तक खरल करें। * फिर सब चूर्ण के समान शुद्ध पारद गंधक की पर्पटी मिला, बकरी के दूध में १ दिन खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लें।

(र.यो.सा.)

मात्रा-२-२ रत्ती; दिन में १ बार सुबह शहद पीपल के साथ देवें।

उपयोग-यह मौक्तिक रसायन शीतवीर्य, निर्बलतानाशक और आयुवर्द्धक है। मूलग्रन्थकार ने इसका सेवन १ वर्ष पर्यन्त करने को लिखा है। इसके सेवन से नेत्रज्योति बढ़ती है और व्यक्ति सौ वर्ष की आयु भोगता है। स्मरणशक्ति, विचारशक्ति, धारण शक्ति, धैर्य, विनय आदि की वृद्धि होती है; शास्त्रार्थ में विजय पाता है।

यदि मौक्तिक रसायन का प्रयोग रोग प्रशमनार्थ करना हो तो राजयक्ष्मा पीड़ित को शहद, घी, तैल या पीपल और असगन्ध के चूर्ण के साथ देवें। यह निरन्तर लेने से क्षय को दूर करता है। अन्य रोगों पर तत्तद्रोगहर अनुपान के साथ देने से समस्त रोग निवृत्त होते हैं।

इसके सेवन से बन्ध्या को पुत्र प्रासि होती है; सूतिकारोग दूर होता है, बालकों के लिये यह रसायन अत्यन्त हितकाकरक है। उत्तम वृष्य और आयुवर्द्धक है। स्त्रियों के नागोदार और उपविष्टक (गर्भाशय में गर्भ का रुख जाना या चिपक जाना) रोगों को जल्दी दूर करता है। सगर्भा के सब रोगों को दूर करके गर्भ को सबल बनाता है। अनुपान वंशलोचन, मक्खन और मिश्री।

इस रसायन को आचार्यों ने मौक्तिक रसायन संज्ञा दी है। किन्तु इसमें मुक्ता की प्रधानता नहीं रही है। गुणधर्म दृष्टि से सुवर्ण, लोह और अभ्रक सत्व प्रधान द्रव्य हैं इस हेतु से यह रसायन क्षय आदि रोग के कीटाणु और लीन विष को नाश करने में विशेष उपकारक है। रक्त और मांस धातु, वातसंस्थान, मस्तिष्क और हृदय को बलप्रदान करता है। मुक्ता के योग से अस्थिसंस्थान को लाभ मिलता है।

पर्पटी के योग से अन्त्र की शिथिलता दूर होती है। मल बंधता है तथा पचनक्रिया व्यवस्थित होती है। एवं पर्पटी, गंधक, सोहागे के योग से पचनेन्द्रिय संस्थान में उत्पन्न आमविष, दुर्गन्ध और कीटाणु आदि नष्ट होते हैं। अदरक के रस की भावना से इस रसायन के दीपन पाचन और कफघ्न गुणों की वृद्धि हुई है। संक्षेप में यह रसायन कोमल प्रकृतिवाली स्त्रियों और बालकों के फुफ्फुसक्षय, अन्त्रक्षय, संग्रहणी, सूतिकारोग और सगर्भा की निर्बलता आदि पर विशेष लाभ दर्शाता है।

सूचना-जिनको धूम्रपान का व्यसन अति बढ़ गया हो, उनको व्यसन छोड़ देने पर लाभ मिल सकेगा। यदि वृक्कस्थान योग्य कार्य नहीं करता है या वृक्कों में अश्मरीकरण हैं, तो इस रसायन से पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा।

* अदरक का स्वरस २-३ घण्टे पड़ा रहने पर नीचे श्वेत सत्व बैठ जाता है फिर सम्हालपूर्वक ऊपर से पतला प्रवाही छानकर उपयोग में लेवें।

२५. नामर्दीनाशक तिला।

द्रव्य–शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, हरताल तपकिया, सफेद सोमल, कुचिला बच्छनाभ, सफेदकनेर की छाल, मालकांगनी, जायफल, जावित्री, सफेद चिरमी, कौडिया लोहबान, अकरकरा, सोंठ, दालचीनी, लौंग, बड़ी कटेली के फल, जमालगोटा, एरण्डबीज, अजवायन, इसबन्द (हरमल), बुरादा हाथीदांत, ये २२ औषधियां ६-६ माशे बीरबहुटी केंचुए (सूखे), प्याज के बीज और मूली के बीज १-१ तोला, शेर की चर्बी, जंगली सूअर को चर्बी, मुर्गी के अण्डों की जर्दी और चमेली तेल ५-५ तोले लेवें।

विधि–पारद गन्धक की कज्जली कर हरताल, सोमल और बच्छनाभ को क्रमशः मिलावें। फिर शेष काष्ठादि औषधियों को कूटकर चूर्ण करें। उसके साथ हाथीदांत का बुरादा, बीरबहूटी और केचुओं को खरलकर भली प्रकार मिलावें। पश्चात् कज्जलीवाला चूर्ण फिर चर्बी, तैल आदि मिला अच्छी तरह खरलकर सात कपड़मिट्टी की हुई बड़ी बोतल में भरें। बोतल के मुँह पर लोहे के तार की गोली लगा देवें। जिससे औषध न गिर जाये और तैल टपककर निकल जाये। फिर पातालयन्त्र की विधि के अनुसार मन्दाग्नि देकर तैल निकाल लेवें। यदि यन्त्र में बोतल के चार-चार अंगुल ऊंचाई तक बालू भरकर ऊपर से कण्डों की अग्नि दें, तो तिला विशेष गुणदायक बनता है। जो तैल टपके उसे चौड़े मुँह की शीशी में भर लेवें। इस तैल का रंग पहले लाल प्रतीत होता है, शीतल होकर जम जाने पर पीला-सा हो जाता है।

उपयोग–इस तैल में से एक, दो बूंद जितना निकाल कर रोज रात्रि को १५-२० मिनट तक धीरे-धीरे एक अंगुली से लिंग पर मर्दन करना चाहिये। सुपारी, सीवन और वृषण को तिला न लग जाये इस बात को विशेष रूप से सम्हालें। कदाच लग भी जाये तो तुरन्त कपड़े से पोंछ के दूसरे गीले कपड़े से साफकर फिर घृत या तेल लगा देना चाहिये। मालिशकर लेने के पश्चात् नागरबेल के पान को निवाया करके सुहाता-सुहाता लपेटकर; ऊपर पतले कपड़े की पट्टी बांधकर फिर कच्चा डोरा लपेट देवें। रात्रि को पट्टी खुल न जाये, इसलिये डोरे अधिक लपेट देना चाहिये। दूसरे रोज सुबह पट्टी खोल देवें। दिन में बादाम का तैल या मक्खन अथवा धोया घी लगा देवें। पुनः रात्रि मालिश कर पट्टी बांधे। इस तरह मर्दन कराते रहने से ५-७ दिन में छोटी-छोटी फुन्सियाँ, फफोले या खुजली आदि उपद्रव हो जायें तो तिला लगाना बन्द करें तथा दिन और रात्रि को तैल लगाते रहें। २-३ दिन में फुन्सियाँ दूर होने पर पुनः तिला लगाना प्रारम्भ करें। इस तरह २१ दिन तिला लगाने से पूर्ण शक्ति आ जाती है।

हस्तमैथुन, गुदमैथुन, पशुमैथुन या और रीति से अप्राकृत मैथुन करते रहने से लिंगेन्द्रिय निर्बल, ढीली और टेढ़ी हो जाती है ऊपर से नीली-नीली शिराएँ दीखती हैं। ये सभी विकार इस तिला के प्रयोग से दूर होते हैं। १०-२० वर्ष के पुराने रोगियों को भी इस तिला से लाभ हो गया है।

सूचना–रोगी को इसके उपयोग काल में मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। शीतल जल अर्थात् कच्चे पानी से बचायें। यदि रोगी को स्नान करना आवश्यक हो, तो इन्द्रिय को बचाकर सुखोष्ण जल से स्नान करें। सिरका, राई, काचरी, अमचूर आदि तीक्ष्ण खटाईयाँ एवं तीक्ष्णोष्ण मसालों से भी बचे और पथ्य भोजन करें।

२६. वाजीकरण तिला।

द्रव्य–उत्तम ताजा कुक्कुटाण्ड नग ५० तथा सोमल २ तोले लें।

विधि–प्रथम कुक्कुटांड के ऊपर सफेद आवरण को दूरकर भीतर की पीली जर्दी को कढाई मे निकालकर उसमें सोमल का चूर्ण मिलाकर चूल्हे पर चढ़ा मन्दाग्नि से तैल (तिला) निकाल लें।

उपयोग–इस तिला में से १ रत्ती जितना लेकर रात्रि को सुपारी व सीवन तथा अण्डकोषों के भाग छोड़कर लिंगेन्द्रिय पर १०-१५ मिनट तक एक अंगुली से मर्दन करें। मालिशकर लेने के पश्चात् नागर बेल के पान को कुछ निवाया करके सुहाता-सुहाता लपेट उस पर कच्चा धागा लपेट देना चाहिये। रात को पान खुल न जाये अतः पर्याप्त धागा लपेटना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल पट्टी खोलकर थोड़ा बादाम का तैल या मक्खन अथवा गोघृत लगा देवें। पुनः ५-७ रात्रि तक यही क्रम चालू रखें। यदि बीच में या ५-७ दिन बाद फुन्सियाँ, शोथ, आदि उत्पन्न हो जायें तो बिना घबराये तिला मर्दन बन्द करके घृत आदि लगाते रहें। इसके पश्चात् फिर लगाना प्रारम्भ करें। इसके मर्दन करने से अप्राकृत मैथुनजन्य या हस्तक्रियाजन्य लिंगेन्द्रिय की शिथिलता एवं टेढ़ापन दूर होते हैं। लिंग की नीली नसों का उभर जाना तथा उत्तेजना का अभाव आदि विकार दूर होते हैं।

२७. महाकल्याण रस।

द्रव्य–सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, मुक्तापिष्टी और वंगभस्म १-१ तोला, चन्द्रोदय और रौप्य भस्म ६-६ माशे, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले

और शुद्ध गुग्गुल ८ तोले लें।

विधि-गूगल को घी मिलाकर कूट के फिर उसमें सब भस्मों का मिश्रण मिलाकर एक जीव करें। फिर शिलाजीत को जल में घोलकर मिला लेवें। पश्चात् शतावरी के क्वाथ में ७ दिन तक खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में २ बार, शतावर्यादि घृत, च्यवनप्राश अवलेह अथवा मिश्री मिले दूध के साथ।

उपयोग-यह रस सम शीतोष्ण, कामोत्तेजक, उत्तम मांसपौष्टिक, रसायन, आमनाशक, वातहर और विषहर है। प्रमेह, मदात्यय आदि रोगों से अथवा विषप्रकोप के हेतु से जब मांसपेशियों की शक्ति नष्ट हो जाती है, मस्तिष्क, हृदय और अन्य यन्त्र अपना-अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं तथा रस, रक्त आदि धातुओं में विष (आमविष, रोगविष, कीटाणुविष अथवा दूषित औषध विष) लीन हो जाता है, ऐसी अवस्था में उस लीनविष को नष्टकर देह को सबल बनाने में यह प्रयोग सफल है। डॉक्टरी चिकित्सा कराकर हताश हुये रोगियों को भी इस रस ने जीवन-दान किया है। वृद्धावस्था में इस रस के सेवन करने से बल प्राप्त होता है।

श्री राजवैद्य पं. रामचन्द्रजी शर्मा ने भी इस का विशेष अनुभव किया था।

२८. हीरा भस्म अनुपान मिश्रणसह।

द्रव्य-हीराभस्म २ माशे, सुवर्ण भस्म २ तोला; पूर्णचन्द्रोदय (विशेष) २ तोला, अभ्रक भस्म १००० पुटी २ तोला तथा मोती पिष्टी (नं. १) २ तोला लें।

विधि-प्रथम पूर्णचन्द्रोदय को खरल में डालकर मसृण (चिकना) होने तक घोटें। फिर क्रमशः अन्य भस्मों को डालकर भली प्रकार घोटकर मिला लें। यदि सबको मिलाकर १-२ दिन तक घोट लिया जाये तो उत्तम होगा।

मात्रा-१/२ रत्ती से १ रत्ती तक मलाई मिश्री; मक्खन मिश्री, दूध के साथ।

उपयोग-यह विशेष शक्तिप्रद उत्तम कोटि की रसायन है। इसके सेवन से बल वीर्य और मेधाशक्ति बढ़ती है। यह राजयक्ष्मा, धातुक्षय, पाण्डु, अशक्ति, कैंसर (कर्कटार्बुद), सोमरोग, प्रमेह, वृद्धावस्था जन्य दुर्बलता एवं नपुंसकता आदि विकारों पर पूर्ण लाभ करती है।

२९. त्रैलोक्यसंमोहन रस।

द्रव्य-घी में भुनी हुई शुद्ध भांग १२ तोले, हिंगुल रसायन (रसतन्त्रसार प्रथम खण्ड तृतीय विधि); रससिन्दूर द्विगुण गन्धक जारित, कपूर, लौंग, अभ्रक भस्म और शंख भस्म १-१ तोला, बड़े गोखरू, दूध में स्वेदन करके छिलके निकाले हुए कौंच के बीज, काकड़ासिंगी २-२ तोले लेवें।

विधि-सबको मिला भाँग के क्वाथ और शतावरी के रस (या क्वाथ) में ७-७ दिन तक खरलकर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें। *(र.तं.)*

मात्रा-१ से ४ गोली; दिन में १ या २ बार, दूध के साथ दें। स्तम्भन के लिये रति समय से १ घण्टा पहले लेनी चाहिये।

उपयोग-त्रैलोक्यसंमोहनरस रुचिकर, उत्साहवर्द्धक, कामोत्तेजक और स्तम्भक है। एवं यह दीपन, पाचन, ग्राही और कफघ्न होने से अर्श, श्वास कास और क्षय में भी हितावह है।

वीर्य पतला होकर स्तम्भन-शक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई हो तथा धड़कन, अग्निमांद्य, निस्तेज मुखमण्डल, शारीरिक कृशता, मानसिक चिन्ता, शान्त निद्रा न मिलना, अन्त्र की निर्बलता से थोड़ा-थोड़ा दस्त होते रहना या बार-बार पतले दस्त होना, संग्रहणी और कुछ वातप्रकोप के लक्षण प्रतीत होते हैं, ऐसे रोगियों को यह त्रैलोक्यसंमोहन रस अच्छा लाभ पहुँचा देता है। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को यह नहीं देना चाहिये।

३०. गुञ्जागर्भ रस।

विधि-गोदुग्ध में दोलायन्त्र से शुद्ध की हुई, छिल्के और जिह्वा रहित चिरमी, पिप्पली चूर्ण, रससिंदूर और रौप्यभस्म इन सबको समभाग मिलावें। फिर सबके समान शुद्ध भांग मिला, नागरबेल के पानों के रस में १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। *(र.यो.सा.)*

मात्रा-१-१ गोली, दिन में २ बार दूध के साथ देनी चाहिये।

उपयोग-गुञ्जागर्भ रस वीर्यस्तम्भक दीपन और ग्राही है। शुक्र की निर्बलता ओर रुकावट की कमी होने पर अफीम प्रधान औषधि

प्राय: दी जाती है। जिनको अफीम नहीं दे सकते उनके लिये यह रस हितावह है। यह रस वीर्य को स्तम्भन करता है, अग्नि प्रदीप्त करता है और मल को बांधता है। यह रस निर्बल अन्त्रवालों के लिये हितावह है।

३१. शक्तिवर्धक योग।

द्रव्य-भीमसेनी कपूर, कोडिया लोहबान की सफेद डली, अफीम और शुद्ध हिंगुल, इन सबको १०-१० तोले लेवें।

विधि-खरल में क्रमश: मिलाकर, धूप में खरल रखकर १२ घण्टे घोटें। फिर चौड़े मुँह की शीशी या डिब्बी में भर लेवें।

(श्री पं. हेमराजजी)

सूचना-(१) औषधियां चिकनी होने से खरल में चिपक जाती है। अत: चाकू से खुरच-खुरचकर खूब बल लगाकर अच्छी तरह घोटकर एक जीव कर लेनी चाहिये।

(२) अगर इसकी गोलियां बनानी हों, पिप्पली के चूर्ण में डालते जायें और उसमें ही पड़ी रहने देवें। गोलियां निकाल लेने से पिघलकर परस्पर चिपक जाती हैं।

मात्रा-कब्ज वालों को सरसों के समान मात्रा में देवें। इसे सामान्यत: मूंग के बराबर मात्रा में दिन में १ या ३ बार दूध के साथ देनी चाहिये।,

उपयोग-यह औषधि उत्तम रसायन, शक्तिवर्द्धक और आनन्दप्रद है। इसके सेवन से देह थोड़े ही दिनों में मूंगा के समान लाल, तेजस्वी बन जाती है। वृद्धों और निर्बलों के लिये यह योग आशीर्वाद के समान है। जीर्ण अतिसार, जीर्ण प्रवाहिका, ग्रहणी आदि रोगों में अन्त्र की धारणशक्ति का ह्रास हो जाने पर अन्त्र को बल देता है और शारीरिक शक्ति भी बढ़ा देता है।

वक्तव्य-(१) जिनको कब्ज रहती हो, उन्हें रात्रि में यह योग नहीं देवें। रात्रि में स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण ३-४ माशे दूध के साथ देते रहें।

(२) मल के साथ कच्चा आमांश जाता हो, ऐसे रोगियों को यह योग या अफीम प्रधान अन्य औषधि नहीं देनी चाहिये।

३२. ज्योतिष्मती रसायन।

द्रव्य-ज्योतिष्मती (मालकांगनी) का शुद्ध तैल, गोघृत और शुद्ध आमलासार गन्धक, तीनों समभाग लें।

(र.र.सं.)

विधि-सबको अच्छी तरह मिला लेवें।

मात्रा-१ रत्ती से प्रारम्भ करावें और प्रतिदिन १ रत्ती बढ़ावें। इस तरह १५ दिन तक बढ़ावें। फिर क्रमश: १-१ रत्ती कम करें। इस तरह १ मास तक यह कल्प करावें। दिन में २ बार सेवन करके ऊपर में दूध पिलावें।

उपयोग-इस ज्योतिष्मति रसायन के सेवन से मेधा (बुद्धि) की वृद्धि होकर दृष्टि तेज होती है और यक्ष्मारोग (धातुशोष) दूर होता है। यह वात विकार वालों को और मंद स्मरणशक्ति वालों को विशेष लाभदायक है। उन्माद रोग, जो बार-बार मंद रूप में प्रतीत होता है, वह भी इसके सेवन कराने से दूर हो जाता है। मस्तिष्क में कफ हो, तो यह उसे जला डालता है और मन को स्फूर्ति प्रदान करता है।

३३. नवरत्न कल्पामृत।

द्रव्य-माणिक्य पिष्टी, नीलम पिष्टी, पन्ना पिष्टी, पुखराज पिष्टी, वैडूर्य पिष्टी, गोमेदमणि पिष्टी और मुक्तापिष्टी १-१ तोला, रौप्यभस्म, राजावर्त पिष्टी और प्रवाल पिष्टी २-२ तोले, सुवर्ण भस्म, लोह भस्म, यशद भस्म और अभ्रकभस्म ६-६ माशे, शुद्ध गूगल, शुद्ध शिलाजीत और गिलोयघन ११-११ तोले लें। गोघृत ५-७ तोले लें।

विधि-पहले पिष्टी और भस्मों को मिलाकर खरल करें लें। फिर गूगल और गिलोयघन को थोड़ा-थोड़ा घी डालकर कूटते जायें और उसमें थोड़ा थोड़ा भस्म मिश्रण मिलाते जावें। फिर शिलाजीत को जल में डाल के अच्छी तरह घोलकर मिलावें अच्छी तरह एक जीव हो जाने पर २-२ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, दिन में दो समय, दूध या रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ देवें।

रोगानुसार अनुपान-

१. अन्त्रशोधन करना हो तो-हरीतक्यादि क्वाथ।

२. उदरकृमि हो तो-३ माशे बायविडंग का क्वाथ।

३. दीपन पाचनार्थ-हरड़ और त्रिकटु का क्वाथ।

४. शोथ जलोदर आदि में-पुनर्नवादि क्वाथ।

५. गर्भाशय आदि के पोषणार्थ-अरविंदासव या सितोपलादि चूर्ण।

६. अस्थिसंस्थान के पोषणार्थ-सितोपलादि और प्रवालपिष्टी।

७. गर्भाशय शोधनार्थ-अशोकारिष्ट अथवा कार्पासारिष्ट।

८. यकृत् बलवृद्धि के लिये-भृंगराजासव।

९. वृद्धावस्थाजनित निर्बलता में-त्रिफलारिष्ट के साथ।

१०. जीर्ण ज्वरजनित निर्बलता में-अमृतारिष्ट या शहद-पीपल।

११. मन्द-मन्द ज्वर पर-महासुदर्शन अर्क।

१२. वातविकृति पर-महारास्नादि क्वाथ।

१३. सुजाक, प्रमेह और मूत्रविकृति पर-सारिवासव यां लोध्रासव।

१४. हिस्टीरिया, उन्माद पर-अश्वगन्धारिष्ट।

१५. स्वप्नदोष, वीर्यह्रास में-शतावरी का दुग्धावशेष क्वाथ।

१६. कण्ठमाल, अर्बुद आदि में-कांचनार क्वाथ।

१७. मस्तिष्क और हृदय की शिथिलता में-खमीरे गाँवजवां या अर्जुनारिष्ट के साथ।

उपयोग-नवरत्न कल्पामृत उत्तम रसायन औषधि है। इसका उपयोग १ वर्ष तक कल्परूप से किया जाता है। यह वातहर, पित्तशामक, वातानुलोमक, विषघ्न, रक्तप्रसादन, मस्तिष्क-पौष्टिक और हृद्य गुण दर्शाता है। रस, रक्त आदि सब धातुओं को पुष्ट और सबल बनाता है। ओज की वृद्धि कराके मुख मण्डल को तेजस्वी बनाता है। एवं अर्श, प्रमेह, मधुमेह, क्षय, जीर्णज्वर, श्वास, कास, मूत्राघात, मूत्र में पूय जाना, जीर्ण वातरोग, आमवात, उदावर्त (गैस बढ़ना), अन्तर्विद्रधि, अर्बुद, कण्ठमाल, मदात्यय, हृदरोग और विषविकारादि रोगों की जीर्णावस्था में शक्ति प्रदान करने और बिगड़े हुये धातु कणों को नष्टकर नये सत्वयुक्तकणों की पूर्ति करने के लिये मुख्य औषधि के साथ प्रयुक्त किया जाता है।

यह नवरत्न कल्पामृत आयुर्वेद की दिव्य औषधि है। यह सब इन्द्रियों, शारीरिक अवयवों एवं नाड़ियों के भीतर मल, आम, मेद, विष, कीटाणु, कफ या विजातीय द्रव्य संगृहीत हो गयें हो तो उन्हें जलाकर बाहर निकाल देता है और जीवन विनिमय (चयापचय) क्रिया को नियमित बनाता है। वातानाड़ियों, हृदय, मस्तिष्क और वृक्क आदि इन्द्रियों को सबल बनाता है। इस हेतु से विभिन्न रोगों में यह सहायक बनता है।

अगर तन्द्रा और आलस्य बने रहते हों, शान्त निन्द्रा न आती हो, किसी कार्य को प्रारम्भ करने की इच्छा न होती हो, थोड़े से परिश्रम से थकावट आकर हॉपनी आती हो, मस्तिष्क में घड़ी के लोलक के समान ठोके लगते रहते हों, बार-बार चक्कर आते रहते हों और रोगी अधिक जीने से निराश हो गया हो तो ऐसे निराश रोगी को यह कल्प नवजीवन प्रदान करता है।

इन्द्रियों और अवयवों की रचना में विकृति न हो, आमविष के कारण जीवन विनिमय क्रिया सदोष बनकर शक्ति का अति ह्रास हो गया हो, तो ऐसे रोगियों को इस कल्प का सेवन भांगरे के ४ से ६ माशे रस और शक्कर के साथ अथवा भृंगराजासव के साथ कराने पर चमत्कारिक लाभ मिलता है।

विवेचन-इस कल्प में शिलाजतु के साथ रत्न, जवाहर की पिष्टियाँ और सुवर्ण आदि धातुओं की भस्मों का संमिश्रण हुआ है। अत: इस औषधि का रसायनिक गुण दिव्य बन गया है। अर्थात् शिलाजतु और रत्न आदि द्रव्यों के मूल गुणों में अति वृद्धि होने से यह कल्प वात-पित्तशामक श्रेष्ठ रसायन बन गया है। इस कल्प के गुणों का परिणाम रस धातुओं की पुष्टि रूप में थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष विदित हो जाता है।

इस योग में गूगल मिलाने से आमविष को जलाने और वातनाड़ियों को सबल बनाने में सहायता मिल जाती है। गूगल के संयोग से

जीर्ण वातरोग, आमवात और संधिवात में तथा शिलाजीत मिश्रण से जीर्ण सुजाक, फिरंग, कण्ठमाल और अन्तर्विद्रधि आदि रोगों मे अच्छा लाभ मिलता है।

गिलोय को आचार्यों ने त्रिदोषहर माना है। यह बढ़े हुए दोष को दबाकर तथा घटे हुए दोष को बढ़ाकर तीनों दोषों को समानावस्था में लाता है। यह गुण गिलोयघन के मिश्रण से शीघ्र और अधिक मात्रा में मिलता है। रत्न, शिलाजीत मिश्रण के साथ गिलोयका योग होने से जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा ज्वर, वीर्य-स्राव, मदात्यय, पित्तप्रकोपज दाह, निद्रानाश, मस्तिष्क या मन में उग्रता आदि पर रक्तामलकी रयासन या च्यवनप्राशवालेह के साथ इसे देने पर शीघ्र लाभ मिलता है।

इस कल्प का उपयोग कई चिकित्सकों ने अनेक रोगियों पर पथ्य पालनसह १ वर्ष पर्यन्त कराया है। इस कल्प के सेवन से भिन्न-भिन्न रोगों से जर्जरित कृश और बलहीन हुये मनुष्यों को भी आश्चर्यकारक लाभ मिला है।

३४. मदनमंजरी वटी।

द्रव्य–रससिंदूर, अभ्रक भस्म, वंग भस्म, प्रवालपिष्टी, केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची के दाने, अकरकरा और सफेदमिर्च, ये ११ औषधियां १-१ तोला, सुवर्ण भस्म ६ माशे, कपूर ६ माशे, कस्तूरी और अम्बर १॥-१॥ माशे लेवें।

विधि-केशर, कस्तूरी, अम्बर और कपूर, इन ४ औषधियों को छोड़कर शेष औषधियों को मिला ३ दिन तक नागरबेल के पान के रस में खरल करें। चौथे दिन केशर आदि मिला ३ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली, दिन में २ बार मिश्री मिले दूध के साथ।

उपयोग–यह मदनमञ्जरी वटी कामोत्तेजक, वीर्यवर्द्धक और बल्य है। नवयुवकों के लिये हितकारक है। इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होकर वह गाढ़ा और शुद्ध बन जाता है। शीतकाल में इसका सेवन करने पर सत्वर लाभ मिलता है। इसमें अफीम न होने से बिल्कुल निर्भय औषधि है।

३५. अमृतभल्लातक।

द्रव्य व विधि–वृक्ष से पककर गिरे हुए, जल में डूबने वाले, अच्छे भिलावे ४ सेर को ईंटों पर घिसकर जल से धो डालें। फिर उनको तोड़कर २-२ टुकड़ेकर १६ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर नीचे उतारकर जल को छान लेवें (नीचे उतारने और छानने के समय क्वाथ की वाष्प न लग जाये, यह सम्हालें। मुख मण्डल और हाथ पर तैल लगाकर छानें) पश्चात् उस जल में ८ सेर दूध मिलाकर उबालें और कलछे से बराबर चलाते रहें। दूध ४ सेर मात्र शेष रहने पर उसमें २ सेर घी मिला, पकाकर गाढ़ा खोवा बनाकर फिर २ सेर शक्कर की चाशनी में मिला लें। सोंठ कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कपूर, जटामांसी, निशोत, वंशलोचन, खैरसार, (कत्था), श्वेतचन्दन, अकरकरा, पीपल (दूसरी बार), शीतल मिर्च, लौंग, सफेद मूसली, काली मूसली, शीतल मिर्च (दूसरी बार), मोचरस, अजवायन, अजमोद, गजपीपल, विदारीकंद, जायफल, नागरमोथा, जावित्री, नन्दी वृक्ष की छाल, जीरा, समुद्रशोष, मेदा, महामेदा, मल्लमारित लोह भस्म, रससिन्दूर, हरताल मारित वंगभस्म और केशर ये ३६ औषधियां १-१ तोला लें। काष्ठादि औषधियों का कपड़छन चूर्ण और रस भस्मों को मिलाकर पाक बनाकर ७ दिन तक रख देने से अमृत के सदृश गुणवाला बन जाता है। (र.यो.सा.)

मात्रा–१-१तोला, सुबह, रात्रि में दिन में २ बार देवें।

उपयोग–इस अमृत भल्लातक के सेवन करने से रोगी विद्वान्, सिंह के सदृश बलवान् मजबूत इन्द्रियोंवाला और बुद्धिमान होता है। इसके सेवन से देह सुवर्ण सदृश तेजस्वी बनती है, हिलते हुए दांत दृढ़ होते हैं। पके हुए बाल पुनः काजल और भौंरें के समान काले हो जाते हैं, मुरझायी त्वचा तेजस्वी बन जाती है और वृद्ध मनुष्य भी तरुण सदृश बन जाता है और सौ वर्ष तक जीता है।

भिलावा जिनको अनुकूल रहता है, ऐसे वात और कफ प्रधान प्रकृति वाले रोगियों के लिये अमृत सदृश उपकारक है। यह रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ाता है, यकृत्, फुफ्फुस आदि को बलप्रदान करता है। रक्तमांस मेद आदि धातुओं में अवस्थित निर्जीव घटकों को जला देता है और वहां पर नये घटकों की योजना करता है, एवं निर्बल घटकों को सबल बनाता है। इस हेतु से अमृत भल्लातक वातरोग, श्वासरोग, कुष्ठ, वातरक्त, अर्श और फिरंगपूयमेह आदि रोगों के उपद्रवों से पीड़ित तथा वंशागत व्याधिवालों को कफ और वातप्रधान रोग में दिया जाता है। शून्य कुष्ठ होने पर सुई चुभाने या अग्नि से तपाने पर भी दुःख का अनुभव नहीं होता। गलत् कुष्ठ होने पर अंगुलियों के पर्व टूट जाते हैं, फिर उनमें से रसस्राव होता रहता है। मुंह फूल कर विचित्र-सा हो जाता है, रोग बढ़ने पर नाक, कान गल जाते हैं और किसी-किसी की देह में कीड़े पड़ जाते हैं। इस रोग की सर्वावस्था में रोगनिवारण और बल-वृद्धि के लिये यह पाक दिया जाता है पथ्यपालनसह १-

२ मास तक सेवन कराने पर रोगनिवृत्त हो जाता है।

विवेचन-कफ-प्रधान श्वासरोग जीर्ण होने पर श्वसनतन्त्र बिल्कुल शिथिल हो जाता है। श्वासप्रणालिकायें और फुफ्फुसस्थ वायुकोष्ठों में कफ भर जाता है। कुछ उत्तेजक कफघ्न औषधि लेने या धूम्रपान करने पर कफ निकलकर छाती हल्की हो जाती है। किन्तु धूम्रपान से पुन: नया कफ उत्पन्न हो जाता है। फुफ्फस दिन प्रतिदिन अधिक निर्बल बनता जाता है। उन रोगियों को इस पाक का सेवन पथ्य पालनसह शीतकाल में कराने पर फुफ्फुसयन्त्र और हृदय सबल बन जाते हैं। कफोत्पत्ति का ह्रास होता है और शारीरिक बल की वृद्धि होती है।

सूचना-इस रसायन के सेवन काल में ग्रन्थकार ने कोई पथ्यापथ्य नहीं बतलाया। फिर भी सेवन करने वालों को चाहिये कि मिर्च और नमक हो सके उतना कम करें। तेज खटाई, राई अति गरम गरम पदार्थ, सूर्य का ताप, अग्नि का सेवन और स्त्री-समागम का त्याग करना चाहिये। घी, तैल, तैलीय द्रव्य-बादाम, पिस्ता, काजू, चिरौंजी आदि हितावह है। दूध की अपेक्षा दहीं अधिक अनुकूल रहता है।

३६. अम्बर कस्तूर्यादि वटी।

द्रव्य-अम्बर ४६ ग्राम, सुवर्ण भस्म २३ ग्राम, पूर्णचन्दोदय रस २३ ग्राम, शुद्ध कुचला ३५ ग्राम, लोहभस्म १०० पुटी ४६ ग्राम वंगभस्म ४६ ग्राम, अभ्रकभस्म सहस्त्रपुटी ४६ ग्राम, जायफल ४६ ग्राम, छोटी इलाचयी के दाने ४६ ग्राम, चौंसठ प्रहरी पीपल ४६ ग्राम, कस्तूरी २३ ग्राम, मोतीपिष्टी २३ ग्राम, भीमसेनी कपूर २३ ग्राम, रौप्य भस्म १०० पुटी ३६ ग्राम, लौंग ४६ ग्राम, माणिक्य पिष्टी ४६ ग्राम, केशर ४६ ग्राम, जावित्री ४६ ग्राम, अकरकरा ४६ ग्राम, सुवर्णबंग चूर्ण ७० ग्राम।

विधि-प्रथम काष्ठादि औषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण बना लेवें। पूर्णचन्द्रोदय को खरल में डालकर उसे सूक्ष्म घोट लें। तब भस्म और पिष्टियों को क्रमश: एक-एक डालकर मिलावें और घोंटते जावें। अच्छी प्रकार मिलाने और अणुरूप करने के लिये एक दिन घोटना अच्छा होगा।

तदनन्तर काष्ठादि औषधियों के चूर्ण को उसमें मिलाकर अच्छी प्रकार घोटें। एक अन्य खरल में कस्तूरी, अम्बर एवं केशर को केवड़े का अर्क डालकर अच्छे प्रकार घोटें। केशर और अम्बर का भी यदि पहिले पृथक् चूर्ण करके घोटें तो अच्छा रहेगा। अच्छे प्रकार घुट जाने पर उसमें उपर्युक्त सब काष्ठादि औषधियों और भस्मों के चूर्ण को मिलाकर केवड़े का अर्क डालते हुए घोटें। एक दिन भर घोटना ठीक है। फिर भी घुटाई में शिथिलता न करते हुए उसे कम समय में ही अच्छे प्रकार घोटने का प्रयत्न रखें। जिससे कस्तूर्यादि की गन्ध कम से कम बाहर जावे।

गोली बनाने योग्य हो जाने पर एक चौड़ी प्लेट में सुवर्ण बंग का चूर्ण बिछावें। एक-एक रत्ती की गोली बनाकर उसमें डालते जावें और हिलाते जावें। इस प्रकार करने से सुवर्ण बंग का चूर्ण गोलियों में लिपट जावेगा। और गोलियां सुनहरी बन जावेगी। यह आवरण आँशिक रूप से उड़नशील द्रव्यों की सुगन्ध के उड़ने में भी अवरोधक बनेगा। गोलियाँ छाया में ही ढककर रखें। सूख जाने पर वायु प्रतिरोधक ढक्कन या डाटवाली शीशी में भरकर रखें।

मात्रा-१/२ से १ गोली तक।

अनुपान-खमीरे गांवजुवां, मधु या दूध। आवश्यकतानुसार दिन में एक से तीन बार तक लेवें।

गुण एवं उपयोग-इस योग में पूर्णचन्द्रोदय रस, सुवर्णभस्म, अभ्रक भस्म १००० पुटी, लोहभस्म १०० पुटी, केसर, कस्तूरी, अम्बर आदि विशेष प्रभावशाली द्रव्यों की योजना की है। अत: यह सत्वर कार्यकारी योग बना है और उलझे हुए रोगों में अपना प्रभाव शीघ्र ही दर्शाता है।

यह रस शीतोष्ण, मस्तिष्क बलप्रद, वातनाड़ियों और संज्ञावाहिनियों का उद्बोधक है एवं उनकी चेष्टा और कार्य में सशक्तता तथा सन्तुलन उत्पन्न करता है। यह हृदय एवं मस्तिष्क दोनों के रोगों में लाभप्रद है और उनके कार्य को नियमित बनाता है। हृदयावसाद, हृदय गति रोग तथा रक्तचाप के ह्रास में अति उपकारक है। साथ ही यह विषघ्न है एवं समस्त शारीरिक अंगों को बल देकर उन्हें समक्रियता की स्थिति में रखता है। विशेष शक्तिप्रद होने से शीतकाल में सेवन करने से देह को शीत से सहन करने योग्य बनाता है।

अनुपान भेद से इसे अनेक रोगों में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है।

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन की नीति यह रही है कि जो भी प्रभावशाली योग यहां प्रयोग में आते हैं और विक्रय किये जाते हैं, उन योगों को सबकी सुविधा और हित की दृष्टि से प्रकाशित कर दिये जाते हैं। इस योग का निर्माण भवन में समयानुसार होता रहा है। श्रद्धेय स्व. श्री स्वामीकृष्णानन्द जी महाराज ने इसे प्रकाशित करने का आदेश दिया था। तद अनुरुप ग्रन्थ में इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

३७. महाशक्ति रसायन।

द्रव्य–पूर्णचन्द्रोदय (विशेष) १ तोला, हेमाभ्ररस भस्म १ तोला, त्रिवंगभस्म १ तोला, जोगियाबादशाह १ तोला, बीरबहूटी की भस्म १ तोला, केंचुआ भस्म १ तोला, केशर १ तोला, अकरकरा (असली) २ तोले, कस्तूरी ३ माशे, लौंग १। तोला जावित्री १। तोला, विजया (भांग) १। तोला, अफीम ३ माशे, अम्बर १ तोला, शुद्ध कुचला १ तोला लें।

विधि–प्रथम काष्ठौषधियों का सूक्ष्म, मसृण चूर्ण बनाकर रखें। फिर रस-भस्मादि को घोटकर बारीक बना लें। तब दोनों के चूर्ण को एकत्रकर खरल में घोटें फिर नागरबेल के पत्तों के रस की भावना देकर घोटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर शीशी में भर लें।

मात्रा–१ से २ गोली तक, आवश्यकतानुसार दिन में १-२ बार दूध के साथ दें।

उपयोग–यह रसायन उच्चकोटि की विशेष व सद्यः प्रभावकारी औषधियों के योग से तैयार किया गया है। इसका शरीर पर तत्काल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह रसायन हृदय तथा मस्तिष्क को बल देने वाला, शक्ति का ह्रास, वृद्धावस्था जन्य निर्बलता, जीर्ण श्वास, कास और कफ प्रकोप आदि को दूर कर पाचन शक्ति बढ़ाने वाला बलप्रद है। ओजः क्षीण रोगियों के लिये जीवन कल्प है। शारीरिक व मानसिक एवं दिमागी श्रमजन्य निर्बलता को शीघ्र काबू में करता है।

(विशेष) गर्भपीड़ाओं से पीड़ित आसन्न प्रसवित्री को उस समय १-२ गोली सेवन कराने से बिना विशेष कष्ट के प्रसूति करवाने व शक्ति देने के कई बार अनेकों अनुभव मिले हैं। *(वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री)*

३८. श्री गोपाल तैल।

द्रव्य–शतावर, पेठा और आंवलों का स्वरस ८-८ सेर लें। असंगध, पियाबांसा और खरैंटी तीनों को ६।-६। सेर लेकर ३२-३२ सेर जल में मिलाकर पृथक्-पृथक् चतुर्थांश क्वाथ करें। बृहत् पचमूल (बेल, अरलू, गम्भरी, पाढल और अरणी की छाल), बड़ी कटेली की जड़, मूर्वा का मूल, केवड़े का मूल, कांटेदार करंज की छाल और पारिभद्र (फरहद) की छाल ये १० औषधियों ५-५ तोले लेकर ३२ सेर जल में मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें।

कल्क–असगन्ध, चोरपुष्पी (चोरहुली), पद्माख, कटेरी, खरेंटी, अगर, नागरमोथा, शिलारस, अगर, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मूर्वामूल, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पूति (खराशी-अरबी में जवाद कहते हैं), केशर, कस्तूरी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, छरीला, नखी, नागरमोथा, कमल की नाल, नीलोत्पल, खस, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु, बच, अनार की छाल, धनिया, ऋद्धि, वृद्धि, दमनक (दौना) और छोटी इलायची के दाने ये ५२ औषधियाँ २॥-२॥ तोले मिलाकर कल्क करें।

वक्तव्य–केशर, कस्तूरी को गुलाबजल में घोट कर अलग रखें और तैल तैयार होने पर इन्हें मिलाकर अमृतबान में भरके १ सप्ताह तक बन्द रखना चाहिये।

विधि–उपर्युक्त ७ प्रकार के द्रव, कल्क और तिल का तैल ८ सेर को कलई लगी हुई कड़ाही में मिलाकर यथाविधि मंदाग्नि से पाक करें। जल जाने पर कड़ाही को उतारकर तुरन्त तैल को छान लेवें। *(भै.र.)*

उपयोग–इस श्री गोपाल तैल का उपयोग उदर सेवन, नस्य और मर्दन आदि रूप से होता है। इसके प्रयोग से वातज, पित्तज और कफज समस्त रोग नष्ट होते हैं और स्मरण शक्ति, विचारशक्ति, धारणशक्ति और निर्णय शक्ति बढ़ती है। इसके सेवन से वातरोग और विशेषतः कई प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते हैं। यह तैल स्त्रियों को गर्भधारण कराने वाला है एवं यह शूल, मूत्रकृच्छ, अपस्मार और उन्माद आदि रोगों को दूर करता है। इस तैल के उपयोग से जराजीर्ण वृद्ध पुरुष भी प्रबल स्फूर्तियुक्त बन जाता है। जिस स्थान में इस तैल का प्रयोग होता है, वहां पर भूत, पिशाच या राक्षसों का प्रवेश (कीटाणुजनित रोगों की संप्राप्ति) नहीं हो सकेगा। इस तैल का सतत सेवन करते रहने से धातुक्षय नहीं होता और न स्वास्थ्य में कोई विघ्न ही आता है। इस तैल का उपयोग तिलारूप से भी होता है। इसकी २-४ बून्दों की मालिश नियमित करने से शिथिलता भी दूर हो जाती है।

३९. फलासव।

द्रव्य–नारंगियाँ १५०० अनार ५००, सेव फल ५००, मुनक्का १० किलो, अड़ूसे के पत्ते ५०० ग्राम, सोया ६५३ ग्राम, सौंफ ६५३

ग्राम, लौंग ६५३ ग्राम, आँवलारस २० किलो, महुवे के फूल १० किलो, नींबू रस ५ किलो, काली मिर्च १ किलो, असगंध १ किलो, अनार छाल १ किलो, मोचरस १ किलो, सोडाबाई कार्ब पौन किलो, नृसार आधा किलो, धाय के फूल ४ किलो, शक्कर ४० किलो लें।

(वैद्य बद्रीनारायण, कालेड़ा)

विधि-इसका संधान र. तं. सा. प्रथम खण्ड के आसव प्रकरण के प्रारम्भ में दर्शायी त्रिधि से एवं वृद्ध परंपरानुसार कर लेना चाहिये।

मात्रा-१/२ से १ ओंस (लगभग १४ से २८ मिलीलीटर) को लगभग ४ तोले पानी में मिलाकर दिन में २ बार लें।

उपयोग-पित्तशामक, दोषहर, रक्तप्रसादक एवं रक्तपित्तनाशक है। इसमें हृद्य एवं बल्य, पौष्टिक तथा पाचक गुण विशेष रूप से हैं। यह आमाशय में बढ़े हुए पित्त की उग्रता, मस्तिष्कस्थ उष्णता, मूत्रावरोध, नाड़ियों में खिंचाव, निद्रानाश, उरोदाह को दूरकर हृदय को प्रसन्न बनाता है।

धूम्रपान, उष्ण पेय, तेज मसाले, खट्टे पदार्थ व गरिष्ठ आहारजन्य विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त, पेट में भारीपन, पेशियों में शूल, स्वप्नदोष, स्मरणशक्ति का ह्रास आदि विकारों की उत्पत्ति व वृद्धि को रोकता है।

विविध रक्तस्रावों पर उशीरासव व फलासव दोनों का प्रयोग होता है। जिनको धूम्रपान आदि के व्यसन न हों उनको उशीरासव किन्तु व्यसनियों को उपद्रवसह रक्तपित्तादि रोगों मे फलासव उपकारक है।

मृदुप्रकृति वालों को ग्रीष्म ऋतु में रक्तस्राव, मूत्रदाह प्राय: हो जाते हैं, ऐसे रोगियों को रोग दमनार्थ फलासव दिया जावे और रोग शान्त्यर्थ चन्द्रकला रस एवं रक्तपित्त कुलकण्डनरस का सेवन कराया जाये तो उचित लाभ मिलता है। ऋतुमती स्त्रियों के रज:स्रावाधिक्य के समय भी रक्तपित्त कुलकण्डनरस के साथ साथ फलासव का सेवन कराने पर स्राव शीघ्र बन्द होने में मदद मिलती है। फिर कुछ महीनों तक फलासव सेवन कराते रहने पर ऋतु के समय रक्त परिमित मात्रा में जायेगा।

रक्तचाप (Blood Pressure) बढ़ जाने पर चक्कर आते हैं, रात में भी निद्रा नहीं आती, हृदय में बेचैनी भासती है। ऐसे रोगियों को सहायक औषधि रूप में फलासव की योजना करने पर उचित लाभ मिलता है।

मद्य-व्यसनी को पित्तोद्रेक से जो उन्माद के से लक्षण प्रतीत होते हों, उनको सहायक औषधि रूप से फलासव का प्रयोग लाभप्रद होता है। इसी प्रकार कभी कभी बड़ी आयुवाली स्त्रियों को गर्भाशय-विष मस्तिष्क में पहुँच कर मन में भ्रान्ति, सन्देह, स्मरणशक्ति का ह्रास, दृष्टिमांद्य, अपचन, आवेश आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उनको मुख्य विषघ्न औषधियों के साथ फलासव का सेवन कराते रहने से उक्त विकार नष्ट होते हैं।

४०. कस्तूर्य्यादिस्तम्भन वटी।

द्रव्य-कस्तूरी १ माशा, केशर, जायफल और लौंग २-२ माशे, शुद्ध अफीम ३ माशा, शुद्ध भांग ७ माशे लें। *(र.यो.सा.)*

विधि-सबको मिला शहद के साथ खरलकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा-१ से २ गोली, शाम को मिश्री मिले दूध के साथ लें।

उपयोग-वाजीकरण व स्तम्भन गुण करती है। कफ, श्वास, मंदाग्नि, निद्रानाश, अतिसार व पेचिश आदि रोगों को नष्ट करती है।

सूचना-इस वटी को शहद मिलाकर बांधने से अफीम लगभग छठवाँ हिस्सा हो जाती है। अत: कब्ज पीड़ित रोगी को उदर शुद्ध कर फिर सेवन करावें एवं मात्रा भी कम देवें।

॥ इति॥

रोगानुसार औषध सूची

१ अग्निमान्द्य
२ अजीर्ण
३ अतिसार
४ अपस्मार (मृगी)
५ अम्लपित्त
६ अरुचि
७ अर्श
८ अश्मरी
९ आध्मान (अफारा)
१० आमवात
११ उदररोग
१२ उदावर्त
१३ उन्माद
१४ उरस्तोय
१५ उरुस्तम्भ
१६ कर्णरोग
१७ कामला
१८ कास
१९ कुष्ठ
२० कृमि
२१ गलगण्ड
गण्डमाला
२२ गुल्म
२३ ग्रहणी
२४ छर्दि
२५ ज्वर
२६ ज्वरातिसार
२७ त्वचारोग
२८ तृषारोग
२९ दाह
३० नपुंसकता
३१ नासारोग
३२ निद्रानाश
३३ निर्बलता
३४ नेत्ररोग
३५ पाण्डु
३६ पूयमेह (सुजाक)
३७ प्रतिश्याय (जुकाम)
३८ प्रमेह
३९ प्रमेह पिड़िका
४० प्रवाहिका (पेचिश)
४१ फिरंग (गर्मी)
४२ बहुमूत्र
४३ बालरोग
४४ भंगदर
४५ मदात्यय
४६ मलावरोध
(आनाह कब्ज)
४७ मसूरिका
(रोमान्तिका)
४८ मुखरोग
४९ मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात
५० मूर्च्छा
५१ मेदोरोग
५२ रक्तपित्त
५३ रक्तदबाव
५४ रक्तविकार
५५ रक्तस्राव
५६ रसायन
५७ वातरोग
५८ वातरक्त
५९ विषप्रकोप
६० विसूचिका
६१ विस्फोटक
६२ विसर्प
६३ वृद्धि
६४ व्रण-विद्रधि-अर्बुद
६५ शिरोरोग
६६ शीतपित्त
६७ शूल
६८ शोथ
६९ श्वासरोग
७० श्लीपद
७१ स्त्रीरोग
७२ स्वरभेद
७३ हिक्का
७४ हृद्रोग
७५ क्षय, राजयक्ष्मा
७६ क्षुद्ररोग

१. अग्निमांद्य (Dyspepsia/Loss of appetite)

वातज अग्निमांद्य–भीमवटी ६९। सर्वतोभद्र रस ७०। कारस्करादि गुटिका १४८। रसोनादि अर्क ८१। दाड़िमावलेह ५४।

पित्तज–विजयासत्वादि वटी १४१। समशर्कर चूर्ण १०८। सिद्ध सञ्जीवनी वटी १२३।

कफज अग्निमान्द्य–भीमवटी ६९। जम्बीरलवण वटी ७२। विडलवणादि वटी ७२। अमृतार्णव रस १९।

शुक्र की निर्बलता से–वंग भस्म ६।

अर्श–अर्शोहर गुटिका (द्वितीय विधि) ६६। पिप्पल्याद्यासव ७७।

पचनसंस्थान बल वृद्ध्यर्थ–अभ्रक भस्म ४।

भस्मक–तण्डुलादि कृशरा ८०।

उदर कृमिज अग्निमांद्य–कृमिकण्टक रस ८९। मुस्तादियोग ९०।

२. अजीर्ण (Indigestion)

आमाजीर्ण–अग्निमुख रस ६८। अजीर्णारि रस ७०। सर्वतोभद्र रस ७०। अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। आमवातेश्वर रस १५९। अग्निसुत ७१। नृसार पुष्प ७५। लवणरसायन ७५। दीपन पाचन चूर्ण ७५। पिप्पल्याद्यासव ७७। अजीर्णान्तक वटी ७८। वज्रवटी ७९। लवणद्रावक ८१। सामुद्राद्य चूर्ण १६६। रसोनादि अर्क ८१। विडलवणादि वटी ७२। उदावर्तहर गुटिका ७३। हरीतक्यादि अवलेह १३०।

विरेचनार्थ–रुक्मीशरस १५। हरीतकीवटी १८।

विष्टब्धाजीर्ण–पिप्पल्याद्यासव ७७। लवणद्रावक ८१। सामुद्राद्य चूर्ण (शूल) १६६। सामुद्राद्य चूर्ण (उदर) १९५। विडलवणादि वटी ७२। उदरवातहर लेप २८३।

विदग्धाजीर्ण– शुक्ति पिष्टी १०। शंखभस्म ११। सर्वतोभद्ररस ७०। शतपत्र्यादि चूर्ण ७५। लवणद्रावक ८१। वमन होती हो तो, पारदादि चूर्ण १३४। सञ्जीवन अर्क ८५।

रसाजीर्ण– शंख भस्म ११।

जीर्ण आमाजीर्ण–वंगाष्टक भस्म १३। अग्निसुत ७१। वज्रवटी ७९। पिप्पल्याद्यासव ७७। लवणद्रावक ८१।

उदरवात–शुक्ति पिष्टी १०। शंख भस्म ११। प्रवाल भस्म १०। नागेश्वर रस ६८। अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। वातपन्नग वटी ७३। भल्लातकादि क्षार ७६। रसोनादि अर्क ८१। विडलवणादिवटी ७२।

मलविकृति होने पर–शोराद्रावक ८३। विमर्दित शोरा लवणद्रावक ८४।

कृमिजन्य–कृमिकण्टक रस ८९। कृमिशत्रु चूर्ण ८९।

वमनार्थ–वमनेश्वर रस १५।

३. अतिसार (Diarrhoea)

आमातिसार–बृहत्कस्तूरी भैरव २५। लघु शतपुष्पादि चूर्ण ५१। बृहच्छत पुष्पादि चूर्ण ५१। बिल्वादि चूर्ण ५२। स्वादिष्ट गंगाधर ५२। प्रवाहिकाहर योग ५१। राजवल्लभ रस ६२। अग्निसुत रस ७१। लवण रसायन ७५। अग्निमुख रस ६८। रसोनादि अर्क ८१। दाड़िमावलेह ५४। हरीतक्यादि अवलेह १३०।

मानस आघात से अतिसार–बृहत्कस्तूरी भैरव २५। सञ्जीवन अर्क ८५।

कालज अतिसार (Summer Diarrhoea)–शंख भस्म ११। हिमरत्नाकर चूर्ण ४४। सञ्जीवन अर्क ८५।

कृमिजन्य अतिसार–कृमिकण्टक रस ८९। संजीवन अर्क ८५।

पक्वातिसार–शुक्ति पिष्टी १०। शंख भस्म ११। सुवर्णग्रहणी गजकेसरी ५५। लवंगद्रावक ६४। संजीवन अर्क ८५। प्रमदानन्द रस ५०। खदिरादि चूर्ण १३६।

रक्तातिसार–बीजकनिर्यासादि चूर्ण ५२। बिल्वादि चूर्ण ५२। भुवनेश्वरी वटी ५३। आमशूल हो तो, त्रिविक्रम रस ५०। सिंहास्यादि वटी ५३। प्रवाहिकाहर योग ५१। प्रवाहिकाहर गुटिका ५३। संजीवन अर्क ८५। ग्रहणी गजकेसरी ५६। शोणितार्गल रस २६६। दाड़िमावलेह ५४। विजया सत्वादि वटी १४१। **शक्तिसंरक्षणार्थ**, शक्तिवर्द्धक योग ३०१।

दूषित जलवायु से अतिसार–पीयूषवल्ली रस ६०। संजीवन अर्क ८५। पहाड़ों के झरने के जल से होने पर, सुवर्ण ग्रहणी गजकेसरी ५५।

जीर्ण अतिसार–राजवल्लभ रस ६२। ग्रहणीहर योग ६४। बबूलाद्यरिष्ट ६५।

यकृद्विकृति जन्य–विमर्दित शोरालवणद्रावक ८४।

अन्त्र शोथ होने पर–यशद भस्म ७। रत्नविजय पर्पटी ६२।

अन्त्र की निर्बलता–नागभस्म ८। बबूलाद्यरिष्ट ६५। लवणद्रावक ८१। शक्तिसंरक्षणार्थ, बृहत् सुवर्ण मालिनी बसन्त ३७।

विरेचन के अतियोग से अतिसार–संजीवन अर्क ८५।

४. अपस्मार (मृगी) (Epilepsy)

नया अपस्मार–अपस्मारहर रस १३७। अपस्मारहर योग १३९। अपस्मारारि रस १४०।

जीर्णावस्था–अभ्रक भस्म ४। योगराज रस ९८। अपस्मारहर रस १३७। चतुर्भुज रस १३६। महाचेतस घृत १३९। ब्राह्मी तैल १३९। चण्डासव १४१। श्रीगोपाल तैल ३०५। कफाधिक हो तो, श्वासकान्तक चूर्ण ११८। रसोनादि अर्क ८१।

बेहोशी में–संज्ञाप्रबोधक प्रधमन नस्य ४५।

५. अम्लपित्त (Hyper acidity)

वात प्रकोप–रौप्य भस्म ४। पन्ना भस्म १२। कामचार मण्डूर ६४। सर्वतो भद्र रस ७०। शतपत्र्यादि चूर्ण ७५। सितामण्डूर २४१। पित्तान्तकरस २४२। अम्लपित्तान्तक चूर्ण २४३। सिद्धामृत रस २६१। बृहत् पिप्पली खण्ड २४३।

पित्तप्रकोप–शुक्तिपिष्टी १०। प्रवाल भस्म १०। पन्ना भस्म १२। कामचार मण्डूर ६४। नारिकेल लवण १६४। धात्रीलोह १६५। पंचसार रस १७०। श्वेत पर्पटी १७३। सुधानिधि रस २४१। पित्तान्तक रस २४२। महातिक्तक घृत २३१। सारिवादि हिम २३२। बृहन्नारिकेल खण्ड २४२। रसामृत रस १००। वासा कूष्माण्ड खण्ड १०१। श्रृंगाराभ्र १२३।

शूलसह अम्लपित्त–पानीयभक्त वटी २४२।

आमाशय वृद्धिज–नाग भस्म ८।

ग्रहणीसह अम्लपित्त–अष्टामृत पर्पटी ६३।

वमनार्थ–वमनेश्वर रस १५।

वमन शमनार्थ–पारदादि चूर्ण १३४। बृहत् पिप्पली खण्ड २४३।

अपचन–शंख भस्म ११। प्रवाल भस्म १०।

अधोग अम्लपित्त–पानीयभक्त वटी २४२।

६. अरुचि (Anorexia)

पित्तज–शुक्तिपिष्टी १०। द्राक्षादि गुटिका ७४। रोचक गुटिका ७५।

अपचन जन्य–विडलवणादि वटी ७२। जम्बीर लवण वटी ७२। दीपनपाचन चूर्ण ७५। चव्यादि चूर्ण १३३। स्वादिष्ट छुहारे ८७। रसोनादि अर्क ८१। विजयासत्वादि वटी १४१। समशर्कर चूर्ण १०८। शीतांशु रस २८।

अपचन जनितशूल–शूलहर वटी १६४। शखंचूड़ रस ११४।

धातुक्षयज–सुवर्णवंग १।

गर्भावस्था में अरुचि–द्राक्षादि गुटिका ७४। शुक्ति पिष्टी १०। स्वादिष्ट छुहारे ८७।

७. अर्श (Piles)

रक्तार्श–शूल शमनार्थ–रौप्य भस्म ४। प्रवाल भस्म १०। बावली बूंटी ६६। अर्शोहरभस्म ६६। अर्शोहर गुटिका ६६। शोणितार्गल रस २६६। रत्नगर्भपोटली रस १२५। सारिवादि लोह १८९।

पित्तार्श–प्रवाल भस्म १०।

जीर्ण रक्तार्श–लोह भस्म ४। लोहादि मोदक ६६। अर्शोहर योग ६७। योगराज रस ९८। मेहमुद्गर १७९। सारिवादि लोह १८९। महातिक्तक घृत २३१। मणिभद्र योग २३५।

जीर्ण शुष्कार्श–नवग्रह रस १४३। रसोन सुरा १५४। सामुद्राद्य चूर्ण (उदर) १९५।

अर्श-शोथ–शोथहर गुटिका २१३।

बाह्य लेप–अर्शोहर लेप ६६। शोराद्रावक ८३। वेदना होती हो तो, क्षतारि मलहम २०९। उपदंश दावानल रस २१८।

मलावरोध–गुड़ादि मोदक १५। अर्शोहर गुटिका (तीसरी विधि) ६६। दन्त्यरिष्ट ६७। हरितक्यादि अवलेह १३०।

८. अश्मरी (Calculus)

वृक्कों में अश्मरीकरण–बृहत् सुवर्णमालिनी ३७। गोक्षुराद्य घृत १७४। सर्वतोभद्रा वटी १७५। अश्मरीनाशक योग १७७। पाषाणभेदादि घृत १७७।

वृक्कशूल–विजयासत्वादि वटी १४१। तारकेश्वर रस १७३। सर्वतोभद्रा वटी १७५। पाषाणभेदी रस १७५। वृक्कशूलान्तक वटी १७६।

एलादिचूर्ण १७६। बृहत् वरुणादि क्वाथ १७६। अश्मरी हर कषाय १७६। प्रमेहकुञ्जर केसरी १७९।

बस्तिशूल–सर्वतोभद्रा वटी १७५। पाषाणभेदी रस १७५। एलादि चूर्ण १७६। अश्मरीनाशक योग १७७। पाषाणभेदादि घृत १७७।

पित्ताश्मरी–सितामण्डूर २४१।

९. आध्मान अफारा (Tympanites)

अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। विडलवणादि वटी ७२। जम्बीरलवण वटी ७२। दीपन-पाचन चूर्ण ७५। अग्निमुख रस ६८। अजीर्णान्तक वटी ७८। आमवातेश्वर रस १५७। श्वेतपर्पटी १७३। भल्लातकादि क्षार ७६। भल्लातकासव १५४। रसोनादि अर्क ८१। विडलवणादि वटी ७२। उदावर्तहर गुटिका ७३। हिंग्वादि द्विरुतर चूर्ण ७४। उदरवातहर लेप २८३।

कृमिजन्य–कृमिघ्न योग ९०। नियमनादि कषाय ९०। कृमिकण्टक चूर्ण ९०। मुस्तादि योग ९०। रसोन सुरा १५४।

१०. आमवात (Rheumatism)

नयारोग–वातगजेन्द्रसिंह १५८। लोहगुग्गुलु १६४।

आमवातजशूल–सिंहास्यादि क्वाथ १६२।

पुराना रोग–ग्रहणी वज्रकपाट ५८। भीम वटी ६९। मधूकासव ७७। लोहसिंदूर ९३। रसोन पिण्ड १४९। आमवातेश्वर रस १५७। वातगजेन्द्रसिंह १५८। अमृतादि घृत १६२। सञ्जीवन अर्क ८५।

मलावरोध हो तो–बृहत्सिंहनाद गुग्गुलु १५७। अश्वगन्धादि गुग्गुलु १५७।

११. उदररोग (Abdomen disease)

वातोदर–पिप्पल्याद्यासव ७७। सामुद्राद्य चूर्ण (उदर रोग) १९५। बड़वानल क्षार १९५। उदरवातहर लेप २८३।

प्लीहावृद्धि–भल्लातक मोदक १९३। प्लीहारि अर्क १९६। पिप्पल्याद्य लोह १९३।

यकृद्वृद्धि–प्लीहारि अर्क १९६। पिप्पल्याद्य लोह १९३। यकृदरि लोह १९४। रत्नगर्भपोटली रस १२५। लोहगुग्गुलु १६४। श्रृंगाराभ्र १२३। शंखचूड़ रस ११४।

वातपित्तप्रकोप–रोप्य भस्म ४। माणिभद्रयोग २३५।

यकृद्दाल्युदर–शोरा द्रावक ८३। विमर्दित शोरालवण द्रावक ८४। यकृच्छूलविनाशनी वटी १९४। यकृत्प्लीहारि लोह १९०।

ज्वर हो तो–रोहितक लोह १९२। विश्वतापहरण रस १९।

मदात्ययज यकृद्दाल्युदर–यकृत्प्लीहारि लोह १९०।

जीर्ण यकृद्प्रदाह–यकृत्वृद्धि-शंखभस्म ११। भीम वटी ६९। यकृत्प्लीहारि लोह १९०। यकृद्विकारहरी वटी १९४। कासीसाद्यवटी १९४। अग्निप्रभा वटी १९५। पुनर्नवादि कल्प १९८। शोरा द्रावक ८३। विमर्दितशोरालवण द्रावक ८४।

यकृत् में शूल–यकृच्छूलविनाशिनी वटी १९४।

प्लीहोदार–रोहितकलोह १९२। यकृत्प्लीहारि लोह १९०। प्लीहार्णव रस १९३। प्लीहोदरारि चूर्ण १९५। नाराच रस (उदररोग) १५१।

प्लीहावृद्धि–शंख भस्म ११। भीम वटी ६९। शोरा द्रावक ८३। कासीसाद्य वटी १९४। अग्निप्रभा वटी १९५। पुनर्नवादि कल्प १९८। श्लीपद गजकेशरी १९९।

कफोदर–पाशुपत रस १९२।

जलोदर–उदररोगारि रस १९२। हृद्यचूर्ण १७२। विश्वतापहरण रस १९।

वृक्कविकारज जलोदर–अग्निमुख रस ६८।

विरेचनार्थ–माजून एहमदी १८। रुक्मीशरस १५। उदररोगारि रस १९२।

वमनार्थ–वमनेश्वर रस १५।

उपान्त्रप्रदाह (AppendicitiS)–भीम वटी ६९। वज्रवटी ७९।

१२. उदावर्त (Intestinal Obst. & Colic due to gassing)

तीव्रावस्था–(आमाशय में वात) उदावर्तहर गुटिका (गैसहर वटी) ७३। उदरपीड़ा-शीतांशु रस २८।

जीर्णावस्था में (आमाशय में गैस)–पचसार रस १७०। वातपन्नग वटी ७३। भल्लातकादि क्षार ७६। अर्क शबाब आवर (गैसहर अर्क) ८६। उदावर्तहर गुटिका ७३।

१३. उन्माद (Mania Insanity)

वातिक-रौप्य भस्म ४। लोकेश्वर पोटली १२४। उन्मादगजांकुश १३६। चतुर्भुज रस १३६। महाचैतस घृत १३९। चन्द्रावलेह १४१। विजयासत्वादि वटी १४१। चण्डासव १४१। पाशुपत रस १९२। ज्योतिष्मती रसायन ३०१। निर्बलता अधिक हो तो, बृहद्वातचिन्तामणि १४३। श्रीगोपाल तैल ३०५।

पैत्तिक-सुवर्ण भस्म २। प्रवाल भस्म १०। उन्माद गजाकुंश रस १३६। अपस्मारहर योग (तीसरा) १३९।

श्लैष्मिक-सुवर्ण भस्म २। लोकेश्वर पोटली १२४। जीर्णरोग में उन्माद गजांकुश १३६। चतुर्भुज रस १३६।

सूतिका वातज उन्माद-रौप्य भस्म ४।

जीर्ण मानसिकविकृति-अभ्रक भस्म ४। ज्ञानोदय रस २८८। श्री गोपाल तैल ३०५।

कोष्ठगत विषज उन्माद-प्रवाल भस्म १०।

मद्यज-प्रवाल भस्म १०। उन्माद गजांकुश रस १३६। चतुर्भुज रस १३६। अपस्मारहर योग (तीसरा) १३९।

मानस आघातज-वृहत् कस्तूरी भैरव रस २५।

गांजाजनित-उन्माद गजांकुश १३६। अपस्मारहर योग (तीसरा) १३९।

निद्रा लाने को-चन्द्रहास अर्क १४०। चन्द्रावलेह १४१। रक्तचापवृद्धिवालों को सर्पगन्धाचूर्ण योग १४१। विजया सत्वादि वटी १४१। चण्डासव १४१।

नस्यार्थ-शंखकीटादि नस्य १३९। ब्राह्मी तैल १३९।

शिरोबस्ति और मालिशार्थ-ब्राह्मी तैल १३९। श्री गोपाल तैल ३०५।

१४. उरस्तोय (Pleurisy)

अष्टामृत भस्म १३। बृहच्छृंगाराभ्र १०५। भार्ङ्ग्यादि क्वाथ १०९। निर्गुण्डी तैल २०६। तालीसादि मोदक ११०।

जलसंग्रह होने पर-पुनर्नवाष्टक कषाय १९७।

१५. ऊरुस्तम्भ (Paraplegia or Fatigue stillness, loss of movement of leg)

रसोनपिण्ड १४९। गुञ्जाभद्र रस १५०।

१६. कर्णरोग (Oto diseases)

कर्णस्राव-वंग भस्म ६। नारायण रस २१७। कर्णरोगहर रस २५१। निर्गुण्डी तैल २०६। पारदादि चूर्ण २३७। निशा तैल २५१। कुम्भी तैल २५१। कर्णपाकहर योग २५२।

कर्णार्श-शोथहर गुटिका २१३।

कर्णशूल-रसोनादि अर्क ८१। कर्णशूलहर योग २५२।

१७. कामला (Jaundice)

संशोधन वटी १७। विषमज्वरान्तक लोह ३२। विमर्दित शोरा-लवण द्रावक ८४। योगराज रस ९८। धात्री लोह १६५। मेहमुद्गर रस १७९। कामलाहर रस ९९। यकृतदरि लोह १९४। लोह गुग्गुलु १६४।

यकृद्बलवृद्धि के लिये-बृहत् सुवर्णमालिनी ३७।

पित्ताशय शूल-बृहत् सुवर्णमालिनी ३७।

१८. कास (Cough)

वातिक कास (शुष्क)-रौप्य भस्म ४। नागभस्म ८। श्वासहारी ११३। कासविजय चूर्ण १०८। शर्बत जूफा १०८। भार्ङ्ग्यादि क्वाथ १०९। अमृतार्णवरस १०१।

पैत्तिक कास (शुष्क)-सुवर्ण भस्म २। प्रवाल भस्म १०। कास विजयचूर्ण १०८। शर्बत जूफा १०९। गन्धक कज्जली योग १२८। श्वासहारी ११३। अमृतार्णव रस १०१।

फुफ्फुसों की निर्बलता-अभ्रक भस्म ४। बृहच्छृंगाराभ्र १०५। श्वासहारी रस ११३।

शुक्रह्रासज कास (शुष्क)-वंगभस्म ६।

कफकास-अभ्रक भस्म ४। मल्लशंख भस्म ११। मनःशिला भस्म १२। स्वच्छन्द भैरव (ज्वर) ३६। अतिसारसह-अग्निमुख रस ६८। विमर्दित शोरा लवणद्रावक ८४। नागवल्लभ रस १०२। नागरसायन १०३। बृहच्छृंगाराभ्र १०५। कफान्तक रस १०७। पीतश्वास कुठार ११२। श्वासान्तक चूर्ण ११५। श्वासकान्तक चूर्ण ११८। अर्कमूलत्वगादि चूर्ण १०९। कासकेशरी १०६। रसराज रस द्वि. वि. १२१। कफनाशक

क्वाथ १०९। द्राक्षादि गुटिका १०७। मधुयष्ट्यादि गुटिका १०७। सिह्यादि क्वाथ ११८। रसोनादि अर्क ८१। अहिफेनादि चूर्ण १०८। कट्फलादि क्वाथ ११०। तालीसादि मोदक ११०। जीर्ण कासान्तक वटी १०७। सिद्धसञ्जीवन वटी १२३। वासाकूष्माण्ड खण्ड १०१। समशर्कर चूर्ण १०८। रत्नगर्भपोटली रस १२५। श्रृंगाराभ्र १२३। विजयासत्वादि वटी १४१।

कफस्त्रावणार्थ-कफकुञ्जर १०४। कफनाशक क्वाथ १०९। कासान्तक चूर्ण १०७। अर्क लवंगादि वटी १०७।

दुर्गन्धयुक्त कफ होने पर रसायन बिन्दु १३१। क्षयज कास में-बृहच्छृंगाराभ्र १०५। या हेमाभ्रसिंदूर ११९। सञ्जीवन अर्क ८५। श्वासारि लवण ११७।

उर:क्षतज रक्तकास-प्रवालभस्म १० और अमृतप्राशघृत १२८। कफाधिक्य होने पर-हेमाभ्रसिंदूर ११९। वासकासव ११६। कुर्स कहरुवा १३०। एलादि मन्थ १२९।

प्रतिश्यायज कास-अष्टामृत भस्म १३। सुवर्ण ग्रहणी गजकेसरी ५५। कफकेतु रस १०३। कफकुञ्जर १०४। मरिचादि कषाय ११५।

वमनार्थ-वमनेश्वर रस १५।

विरेचनार्थ-हरीतकी वटी १८।

ज्वरसह कफकास-नागवल्लभ रस १०२। अर्क मूलत्वगादि चूर्ण १०९। क्षयकेसरी १२१। कफकुञ्जर क्वाथ १०९। श्वासारि लवण ११७।

निमोनिया के अंत में कास-बृहचछृंगाराभ्र १०५। नागवल्लभ रस १०२।

१९. कुष्ठ (Leprosy)

पैत्तिक कुष्ठ-लोहभस्म ४। महातिक्तक घृत २३१। महाखदिरादि घृत २३१। महासिन्दूराद्य तैल २३६। माणिभद्रयोग २३५।

वातकफज कुष्ठ-ताल भस्म ११। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। पथ्याभल्लातक मोदक २३३। भल्लातकासव १५४।

वमनार्थ-वमनेश्वर रस १५।

विरेचनार्थ-रुक्मीश रस १५। गुड़ादिमोदक १५। हरीतकी वटी १८।

उदरविकृतिजन्य कुष्ठ-बबूलाद्यरिष्ट ६५। मधूकासव ७७। रसोनसुरा १५४। विडंग तण्डुल रसायन २३५।

फिरंगज कुष्ठ-पीत मृगांक रस १४५। सिद्ध गन्धक १९९। कुष्ठहर रस २२४।

कपाल उदुम्बर (Primary stage of leprosy), ऋष्यजिह्वक (Lupusery thematosus) मण्डल, (Lupus Vulgaris), पुण्डरीक (pustular lupus), वृहद् वातरक्तान्तक लोह १६०। विडंग तण्डुल रसायन २३५। तुवरक तैल योग २३२।

कापाल (सुप्त) कुष्ठ (Anecsthetic leprosy)-विषतिन्दुक तैल १६३। सिद्धगन्धक १९९। स्वर्णक्षीरी रस २२५। विडंग तण्डुल रसायन २३५। तालभस्म ११। तालकेश्वर रस २२७। माणिभद्र योग २३५। तुवरक तैल योग २३२।

काकणक (गलत्) कुष्ठ (Nodular leprosy)-सिद्ध गन्धक १९९। कुष्ठहर रस २२४। गलत्कुष्ठारि रस २२५। अहिवध रस २२६। तारकेश्वर रस १७३। भल्लातक अवलेह २२९। गलत्कुष्ठहर योग २३२। तुवरक तैल योग २३२।

ऋष्यजिह्वक (Lupus erythe matosus)-वीर चण्डेश्वर २२६।

मण्डल (Lupus Vulgaris)-तालकेश्वर रस २२७।

सिध्म (Pityriasis)-रसोन सुरा १५४। वृहद्वातरक्तान्तक लोह १६०। श्वेत करवीराद्य तैल २३६।

अलसक (Lichen ruber)-विपादिकाहर मलहम २३७।

किटिभ (ब्यूची-Dry Eczema)-लीन विष शोधनार्थ सुवर्ण वंग १। सिद्ध गन्धक १९९। पथ्या भल्लातक मोदक २३३। विडंगतण्डुल रसायन २३५। भल्लातक अवलेह २२९।

बाह्य प्रयोग-श्वेत करवीराद्य तैल २३६। करञ्जतैलादि मलहम २३७। पामाहर मलहम २३७। विपादिकाहर मलहम २३७। गन्धक का मलहम २३८।

पामा-कच्छू-भल्लातक अवलेह २२९। मदयन्त्यादि चूर्ण २३२। सारिवादि हिम २३२। बाकुची योग २३३।

बाह्य प्रयोग-श्वेत करवीराद्य तैल २३६। बृहन्मरिचादि तैल २३६। महासिन्दूराद्य तैल २३६। गुलाबी मलहम २३७। पामाहार मलहम २३७। गन्धक का मलहम २३८। बृहद् हरिद्राखण्ड २४०।

विपादिका (Erythema Pernio)-विपादिकाहर मलहम २३७।

कृमिज विपादिका-विपादिकाहर मलहम २३७।

विचर्चिका (Weeping Eczema)-वृहन्मरिचादि तैल २३६। महासिन्दूराद्य तैल २३६।

अन्त:प्रयोगार्थ-नारायण रस २१५। भल्लातक अवलेह २२९। पथ्याभल्लातक मोदक २३३। बाकुची योग २३३। बृहद् हरिद्राखण्ड २४०।

अमृतभल्लातक पाक ३०३। (लगाने के लिये पथ्या चूर्ण नींबू रस या गोमूत्र के साथ)।

शुष्क दद्रु-पथ्याभल्लातक मोदक २३३।

हस्तिचर्म (Hypertrophy of the Skin)-श्वेत करवीराद्य तैल २३६। बृहन्मरिचादि तैल २३६।

एक कुष्ठ (Ichthyosis)-विपादिकाहर मलहम २३७।

श्वेत कुष्ठ (Leucoderma)-वीर चण्डेश्वर २२६। बाकुच्यादि चूर्ण २२८। श्वित्रारि योग २२९। श्वित्रारि रस २२९।

क्षुद्र कुष्ठ-पाण्डेय उद्वर्तन २३९। रत्नगर्भपोटली रस १२५।

दद्रु-बृहन्मरिचादि तैल २३६। दद्रुहर लेप २३७। करञ्जतैलादि मलहम २३७। पाण्डेय उद्वर्तन २३९।

चर्मदल (Erythema Nodosum)-श्वेत करवीराद्य तैल २३६। चर्मदलारि तैल २३६।

विस्फोटक (Pemphigus)-बृहन्मरिचादि तैल २३६। करञ्जतैलादि मलहम २३७। तारकेश्वर रस १७३।

२०. कृमि (Worm)

सूक्ष्म कृमि-अजीर्णान्तक वटी ७८। कृमिशत्रु चूर्ण ८९। कृमिकण्टक रस ८९। मुस्तादि योग ९०। कृमिघ्न योग ९०। गन्धक कज्जली योग १२८। कारस्करादि गुटिका १४८। रसोन सुरा १५४। विडंगारिष्ट २०४। भल्लातकादि क्षार ७६।

उदरकृमि-प्लीहारि अर्क १९६।

गोलकृमि-कृमिकण्टक रस ८९।

रक्तशोधनार्थ-विडंग तण्डुल रसायन २३५।

विरेचनार्थ-रुक्मीश रस १५। हरीत की वटी १८। माजून एहमदी १८। दन्त्यरिष्ट ६८।

२१. गलगण्ड-गण्डमाल (Goitre, Scrofula)

गलगण्ड (Goitre)-बृहद् सुवर्णमालिनी ३७। गलगण्डहर लेप २०२।

धातुपोषणार्थ-नागभस्म ८।

गण्डमाला (Scrofula)-गण्डमालाहर योग २०१। गण्डमालाहर अर्क २०१। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। नारायण रस २१५। उपदंश दावानल रस २१८। महातिक्तक घृत २३१। रसोनादि अर्क ८१। कण्ठमाला मलहम २०२। कण्ठमाला लेह २०३।

लगाने के लिये-गण्डमालान्तक लेप २०१। अपचीहर मलहम २०२। तुवरक तैल योग २३२।

२२. गुल्म (Abdominal tumor Cholorosis)

वातगुल्म-विषमज्वरान्तक लोह ३२। अग्निमुख रस ६८। भीमवटी ६९। पिप्पल्याद्यासाव ७७। रसोन सुरा १५४। बचादि चूर्ण १६७। सामुद्राद्य चूर्ण १९५। बड़वानल क्षार १९५। हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण ७४। श्रृंगाराभ्र १२३। समशर्कर चूर्ण १०८।

पित्तगुल्म-नागभस्म ८। शुक्ति पिष्टी १०। शंखभस्म ११। गुल्महर रस १६७।

कफगुल्म-पिप्पल्याद्यासव ७७। नारिकेल लवण १६४। सामुद्राद्य चूर्ण १९५।

त्रिदोषज गुल्म-नारिकेल लवण १६४। अभयादि वटी १६७। बचादि चूर्ण १६७। दन्तीहरीतकी १६८।

विरेचनार्थ-नाराच रस १६७। अभयादि वटी १६७। दन्तीहरीतकी १६८।

रक्तागुल्म-पञ्चानन रस १६८। दन्त्यादि गुटिका १६८।

२३. ग्रहणी (Sprue/malabsorption syndrome)

आमग्रहणी-पीयूषवल्ली रस ६०। ग्रहणी गजकेसरी ५६। स्वच्छन्द भैरव रस ६१। पिप्पल्याद्यासव ७७। मधूकासव ७७। आर्द्रक खण्ड २४०। सामुद्राद्य चूर्ण १९५। हरीतक्यादि अवलेह १३०। शक्तिवर्धक योग ३०१। समशर्कर चूर्ण १०८।

कोष्ठशूल-एरण्ड पाक १५१। ग्रहणीशार्दूल ६३।

विरेचनार्थ-गुड़ादि मोदक १५।

जीर्णरोग में उदरपीड़ा-बृहच्छतपुष्पादि चूर्ण ५१। सुवर्ण ग्रहणीगजकेसरी ५५। ग्रहणीहर योग ६४। अजीर्णान्तक वटी ७८। एरण्ड पाक १५१।

वातप्रकोपज ग्रहणी-एरण्ड पाक १५१। ग्रहणीशार्दूल ६३। सामुद्राद्य चूर्ण १९५।

पित्तप्रकोपज ग्रहणी-शंख भस्म ११। राजवल्लभ रस ६२। लवंगद्रावक ६४। सुवर्ण सर्वांगसुन्दर १२७।

ज्वरसह होने पर-सुवर्णग्रहणीगज केसरी ५५। एरण्ड पाक १५१।

कफजग्रहणी-स्वच्छन्द भैरव ६१। अग्निसुत रस ७१।

आमवातज ग्रहणी-ग्रहणी वज्र कपाट ५८। राजवल्लभ ६२।

मानस आघातज ग्रहणी-ग्रहणी वज्रकपाट ५८। सुवर्ण ग्रहणी गज केसरी ६५।

प्रवाहिकासह ग्रहणी-पीयूषवल्ली रस ६०। सुवर्ण ग्रहणीगज केसरी ६५।

रक्तसह ग्रहणी-पीयूषवल्ली रस ६०।

अन्त्र की निर्बलता-नाग भस्म ८। अष्टामृत पर्पटी ६३। कारस्करादि गुटिका १४८।

अन्त्रक्षय-सुवर्ण ग्रहणीगज केसरी ६५। रत्नविजय पर्पटी ६२। ग्रहणी शार्दूल रस ६३।

२४. छर्दि (Vomiting Emesis)

अपचनजन्य-अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। रसोनादि अर्क ८१। पिप्पल्यादि लोह ११४।

पित्तप्रकोपज-शुक्तिपिष्टी १०। प्रवालभस्म १०। पन्नाभस्म १२। सर्वतोभद्र रस ७०। वमनान्तक योग १३४। लाजमण्ड १३५। धात्रीलोह १६५।

अम्लपित्तज-पारदादि चूर्ण १३४। पित्तशामक योग १३५। धात्रीलोह १६५।

ज्वर में छर्दि अतिसार-बृहद्कस्तूरी भैरव २५।

कृमिज-कृमिकण्टक रस ८९।

रक्तवमन-वासकासव ११६। एलादि मन्थ १२९।

जीर्णरोग-अमृतप्राश घृत १२८।

जमालगोटे का विष-पारदादि चूर्ण १३४।

कनेर विष-पारदादि चूर्ण १३४।

२५. ज्वर (Fever)

नूतन कफज्वर-स्फटिकाशतमल्ल भस्म ११। अमृतार्णव रस १९। चिन्तामणि रस २१। विश्वतापहरण १९। शीताँशुरस २८।

वातज्वर-पर्पटी रस २७। कफकेतु रस १०३। चिन्तामणिरस २१। ज्वरारि अभ्र २३।

पित्त ज्वर-चिन्तामणि रस २१। कमलादि फाण्ट ४४। हिमरत्नाकर चूर्ण ४४। ज्वरान्तक चूर्ण २८१।

वातश्लेष्म ज्वर-कल्पतरु रस २७। ज्वर संहार २७। अर्कलोकेश्वर ३५। सान्निपातिक क्वाथ (दूसरी विधि) ४५। कफनाशक क्वाथ १०९।

विषम ज्वर-स्फटिकाशतमल्ल भस्म ११। मल्लशंख भस्म ११। दरदसुधा भस्म १२।

आमाशय विकृति हो तो-अमृतार्णव रस १९। शीतारि रस २९। सप्तपर्णघनादि वटी ४३। सुदर्शन मिश्रण ४५। पञ्चतिक्त कषाय ४५।

जीर्णावस्था में-दार्व्यादि क्वाथ ४६। पञ्चतिक्तघन वटी ४७। वज्रवटी ७९। पथ्यादि क्वाथ २६१। जीर्णज्वरान्तक चूर्ण ४८। शीतांशु रस २८। लोह गुग्गुलु १६४। समशर्कर चूर्ण १०८।

ज्वरह्रासार्थ-पर्पटी रस २७। संतापशामक मिश्रण २८। निर्वेदन चूर्ण २८। ज्वरान्तक रसायन २८। ज्वरहर योग ४२। आमपाचनार्थ-प्रवाल भस्म १०। हिंगुकर्पूर वटी ३३। स्वच्छन्द भैरव ३६।

अजीर्ण ज्वर-विश्वतापहरण १९। पर्पटी रस २७। चिन्तामणिरस २१।

कामलासह ज्वर-विश्वतापहरण १९।

मानस ज्वर-अमृतार्णव रस १९। ज्वरारि अभ्र २३। बृहत्कस्तूरी भैरव रस २५।

पूय ज्वर-सुवर्ण चिन्तामणि २१। बृहत्कस्तूरी भैरव रस २५। स्फटिकाशतमल्ल भस्म ११। संताप शामक मिश्रण २८। जीर्णज्वरान्तक चूर्ण ४८।

विषप्रकोपज ज्वर-सुवर्ण चिन्तामणि २१।

मूषकविषज ज्वर-सुवर्ण चिन्तामणि २१। कालाग्नि भैरव ३३।

श्लेष्मपित्तज ज्वर-चन्द्रशेखर रस २४। कफकेतु रस १०३।

अतिसार सह तीव्र ज्वर-बृहत्कस्तूरी भैरव २५।

नूतन ज्वर में विरेचनार्थ-रुक्मीश रस १५। आमविध्वंसनी वटी १८। विश्वतापहरण १९।

उदरशूल हो तो-चिन्तामणि रस २१। सिद्ध अश्वकंचुकी २९। सर्वज्वरहरी गुटिका ४१। ज्वरघ्नी गुटिका ४२। किरातादि कषाय ४५।

प्रतिश्यायसह ज्वर-चिन्तामणि रस २१। ज्वर भैरव चूर्ण ४३। प्रतिश्याय हर कषाय ४३। हिमरत्नाकर चूर्ण ४४। कमलादिफाण्ट ४४। सुदर्शन मिश्रण ४५। कफकेतु १०३। रसायन बिन्दु १३१।

हिक्कासह ज्वर–ज्वरारि अभ्र २३। स्वच्छन्द भैरव ३६। कफकेतु १०३।

मधुरा (मंथर ज्वर)–सुदर्शन मिश्रण ४५। ज्वरारि अभ्र २३। मंथर ज्वर हर चूर्ण ४८। रसोनादि अर्क ८१। यकृदरि लोह १९४। शीतांशु रस २८। सिद्ध संजीवनी वटी १२३।

मधुरा में अतिसार–संजीवन अर्क ८५।

मधुरा में रक्तस्राव–संजीवन अर्क ८५।

मधुरा में अग्निमांद्य–लवण द्रावक ८१।

शीतला, रोमान्तिका, मधुरा में विषपाचनार्थ–प्रवाल भस्म १०।

दाह–यशद भस्म ७। प्रवाल भस्म १०। संतापशामक मिश्रण २८।

मुद्दती ज्वर–ज्वरारि अभ्र २३। अर्धनारीनटेश्वर ३६। बृहत् सुवर्ण मालिनी ३७।

तीव्र आमवातिक ज्वर–कफ केतु रस १०३। (विशेष आमवात में देखें)

कण्ठ रोहिणी–लवणद्रावक ८१। कफकेतु रस १०३। रसोनादि अर्क ८१। श्रृंगाराभ्र १२३। शतावरी घृत २९७।

पुनरावर्तक ज्वर–बृहत्कस्तूरी भैरव २५।

सन्निपात में कफप्रकोप–मल्लसिन्दूर १। ताल भस्म ११। मन:शिला भस्म १२। बेहोशी हो तो–पञ्चामृत भस्म १३ या मल्लपुष्प १४। कालाग्नि भैरव ३३। कफकेतु १०३।

सन्निपात में वातप्रकोप–बृहद् कस्तूरी भैरव २५। हिंगुकर्पूर वटी ३३। कालाग्नि भैरव ३३। सान्निपातिक क्वाथ ४५। बृहद्वात चिन्तामणि १४३। बृहद् ब्राह्मी वटी १४४।

सन्निपात में तन्द्रा–स्वच्छन्द भैरव ३६। बृहत्कस्तूरी भैरव २५।

सन्निपात में शीतांग–मृत संजीवनी सुरा ४६। चतुर्भुज रस १३६। पञ्चामृत भस्म १३। कालाग्नि भैरव ३३।

सन्निपात में शक्तिपात–बृहत्कस्तूरी भैरव २५। ज़वाहर मोहरा १७०। याकूती १७१। हेमाभ्र सिन्दूर ११९।

नि:संज्ञता नाशक–संज्ञाप्रबोधक प्रधमन ४५। पञ्चामृत भस्म १३।

निमोनिया–मल्लसिन्दूर १। अभ्रक भस्म ४। मल्लशंख भस्म ११। हिंगुकर्पूर वटी ३३। न्यूमोनिया प्रकाश ३५। कफनाशक क्वाथ १०९ कालाग्नि भैरव ३३।

प्रलापक सन्निपात–बृहत्कस्तूरी भैरव २५। केशरादि वटी ३५।

एन्फ्लुएंजा–वातश्लैष्मिक ज्वर में देखें।

मस्तिष्कावरण प्रदाह–पारद वटी १६। चन्द्रशेखर रस २४।

ग्रन्थिज्वर (प्लेग)–ग्रन्थिज्वर हर गुटिका ४३। मलावरोध हो तो पहले विश्वतापहरण १९। कालाग्नि भैरव ३३।

बिगड़ा हुआ सन्निपात–मलावरोध रहता हो तो–सुवर्ण चिन्तामणि २१। पतले दस्त होते हों तो बृहत्कस्तूरी भैरव २५।

जीर्ण ज्वर–तुत्थखर्पर १०। वनफ्शादि शर्बत १३२। शाही चूर्ण १३२। स्फटिक शतमल्ल भस्म ११। मल्लपुष्प १४। शोधनार्थ-संशोधन वटी १७। बृहत्कस्तूरी भैरव २५। विषमज्वरान्तक लोह ३२। सर्वज्वरहर लोह ३५। गंधककज्जली योग १२८। बृहत्सुवर्णमालिनी ३७। जीर्ण ज्वरान्तक चूर्ण ४८। अपूर्व मालिनी वसन्त ४०। पञ्चतिक्तक कषाय ४५। मधुकादि कषाय ४७। गजानन्द वटी ४७। भीम वटी ६९। सर्वतोभद्र रस ७०। अग्निसुत रस ७१। वज्रवटी ७९। नारायण मण्डूर ९३। अभ्रकल्प ११९। हेमाभ्रसिन्दूर ११९। क्षयकेशरी रस १२१। सुवर्ण सर्वांग सुन्दर १२७। गुडूच्यादि रसायन १२७। अमृतप्राश घृत १२८।

अरुचि और मलावरोध होने पर–द्राक्षादि चाटण ७८। पथ्यादि क्वाथ २६१।

मालिशार्थ–प्रमेह मिहिर तैल १८४।

२६. ज्वरातिसार

नूतन–बृहत्कस्तूरी भैरव २५। प्राणेश्वर रस ४९।

शूल और रक्तातिसार सह–गगन सुन्दर ४९।

कृमिज–कृमिकण्टक रस ८९।

जीर्ण–प्राणेश्वर रस ४९। रत्नविजय पर्पटी ६२। अष्टामृत पर्पटी ६३। दाड़िमावलेह ५४।

२७. त्वचारोग (Skin Disease)

विरेचनार्थ–गुड़ादि मोदक १५।

बाहर लगाने के लिये–पाण्डेय उद्वर्त्तन २३९।

जीर्ण विकार–सुवर्ण वंग १। वंग भस्म ६। सारिवादि लोह १८९।

फिरंगज–शोरा द्रावक ८३। पाण्डेय उद्वर्त्तन २३९। मल्ल पुष्प १४।

पित्त प्रकोपज–आर्द्रक खण्ड २४०।

कृमिज कण्डू–गन्धक का मलहम २३८। बृहन्मरिचादि तैल २३६। महासिन्दूराद्य तैल २३६। परदादि चूर्ण २३७। गुलाबी मलहम २३७। करंज तैलादि मलहम २३७। कण्डूनाशक योग २३८। कण्डूनाशक तैल २३८। पाण्डेय उद्वर्त्तन २३९। गन्धक का मलहम २३८।

उदर सेवनार्थ–मुस्तादि योग ९०। भगंदर नाशक योग (नं. २) २१५। मदयन्त्यादि चूर्ण २३२। सारिवादि लोह १८९। बाकुची योग २३३। बृहद हरिद्राखण्ड २४०। हरिद्राखण्ड २४१।

दद्रु–कुष्ठरोग में देखें।

२८. तृषा रोग (Dipsia)

बढ़ी हुई तृषा–लाजमण्ड १३५। रसादि वटी १३५।

मधुमेहज तृषा वृद्धि–मधुमेहदर्पहारी १७९। पिप्पल्यादि लोह ११४।

अनावश्यक तृषा–अमृतप्राशघृत १२८।

२९. दाह

छाती में अम्लपित्तज दाह–शोराद्रावक ८३। रसादिवटी १३५। चन्द्रप्रभा चूर्ण १३५ सुधाकर रस १३५। बीजकनिर्यासादि चूर्ण ५२।

दाहक भोजन से दाह–चन्द्रप्रभा चूर्ण १३५। खर्जूरादि चूर्ण १३६।

मद्यज दाह–सुधाकर रस १३५। कज्जली रस १३६।

वातरक्तज दाह–सुधाकर रस १३५। रक्तपित्तकुलकण्डन रस ९९। शतावरी घृत १६२।

विषप्रकोपज दाह–प्रवाल भस्म १०। शुक्ति पिष्टी १०। सुधाकर रस १३५। गुडूच्यादि क्वाथ १३६।

हाथ पैरों में दाह–प्रवाल भस्म १०।

वृक्कों में दाह–रौप्य भस्म ४।

३०. नपुंसकता (Impotency)

शारीरिक निर्बलताजनित–सुवर्ण भस्म २। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ९। प्रमेह मिहिर तैल १८४। कामदेव मोदक २८६। मदनकान्ता गुटिका २८७। चन्द्रोदय वटी २८९। नवजीवन रस २८९। रसेन्द्र चूड़ामणि २९१। विदार्यादि चूर्ण २९४। शक्तिवर्द्धक गुटिका २९६। मदनमंजरी वटी ३०३। अमृतभल्लातक पाक ३०३। कामचूड़ामणि २९२। श्वासकान्तक चूर्ण ११८। शक्ति संजीवन लेह २९६।

शीघ्रपतन–प्रमेहहर योग (७वीं विधि) १८३। वंगादि चूर्ण २८९। रसेन्द्रचूड़ामणि २९१। कामचूड़ामणि २९२। रतिवल्लभ चूर्ण २९४। शतावरी घृत २९७। त्रैलोक्यसंमोहन रस ३००। गुञ्जागर्भ रस ३००। वाजीकरण तिला २९९। वैक्रान्त योग २६५।

मानस आघातज–अभ्रक भस्म ४। बृहच्छृंगाराभ्र १०५। चन्द्रोदय वटी २८९। उष्ण प्रकृतिवालों को–काम चूड़ामणि २९२। धात्री रसायन २९७।

स्वप्नदोष–वंगभस्म ६। मधुमेही को–नाग भस्म ८ या त्रिवंग भस्म १३। वंगादि चूर्ण २८९। शिलाजत्वादि वटी १८०। बृहच्छतावर्य्यादि चूर्ण १८९।

शुक्रक्षयज–बृहद् वातचिन्तामणि १४३। कामदेव मोदक २८६। कामचूड़ामणि २९२। अश्वगन्धादि चूर्ण २९४। चन्द्रोदय वटी २८९। मूसली पाक २९४। रतिवल्लभपूगपाक २९५। कन्दर्प सुन्दर तैल २९६। शक्तिसंजीवनलेह २९६। धात्री रसायन २९७। वाजीकरण तिला २९९। महाकल्याण रस २९९। त्रैलोक्यसंमोहन रस ३००। गुञ्जागर्भ रस ३००। याकूती १७१।

पूयमेहज–सुवर्ण वंग १। रौप्य भस्म ४।

प्रमेहजनित–सुवर्ण वंग १। चन्द्रोदय वटी २८९।

फिरंगज–रौप्य भस्म ४। उपदंशदावानल २१८।

हस्तमैथुन से नपुंसकता–चन्द्रोदय वटी २८९। नवजीवन रस १८९। रसेन्द्र चूड़ामणि २९१। कामचूड़ामणि २९२। वाजीकरण तिला २९९।

बाह्यप्रयोग–नामर्दीनाशक तिला २९९। श्रीगोपाल तैल ३०५।

३१. नासारोग (Nasal Disease)

प्रतिश्याय–प्रतिश्यायहर गुटिका २५२। प्रतिश्यायनाशक अवलेह २५३।

रक्तस्राव–प्रवाल भस्म १०। शुक्ति पिष्टी १०। एलादि मन्थ १२९। चन्द्रप्रभा चूर्ण १३५।

पीनस-कफकेतुरस १०३। नासाकृमिहर नस्य २५३।

नासार्श-शिखरी तैल २५३। नासार्शनाशक लेप २५३।

नाक में पेंसिल आदि का प्रवेश-नासारोगहर योग २५३।

३२. निद्रानाश (Insomnia)

चन्द्रहास अर्क १४०। चन्द्रावलेह १४१।

रक्तचापवृद्धि हो तो-सर्पगन्धा चूर्ण १४१। विजयासत्वादि वटी १४१। ज्ञानोदय रस २८८।

मदात्ययज-चण्डावस १४१।

वृद्धावस्थाजनित-नागरादि गुटिका १४८।

मधुमेहज-मधुमेह दर्पहारी १७९।

मानस चिन्ताजन्य-मधुमेहदर्पहारी १७९।

उदरवातज-उदावर्तहर गुटिका ७३।

३३. निर्बलता (Debility)

ज्वर के पश्चात्-लोहभस्म ४। नवजीवन रस २८९। चन्द्रोदय वटी २८९। अपूर्व मालिनी वसंत ४०। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। गजानन्द वटी ४७। भीमवटी ६९। एलादि मन्थ १२९।

अतिसारजन्य-लोह भस्म ४।

वातप्रकोपज-रौप्य भस्म ४। मदनकान्ता गुटिका २८७। चन्द्रोदय वटी २८९। नवजीवन रस २८९। काकतिन्दुक वटी १५०। ज्ञानोदय रस २८८। मूसलीपाक २९४। शक्तिवर्द्धक गुटिका २९६। विदार्यादि चूर्ण २९४। ज्योतिष्मती रसायन ३०१।

अग्निमांद्यज-अग्निसुत रस ७१। नवजीवन रस २८९। शक्तिवर्द्धक गुटिका २९६। धात्री रसायन २९७।

धातुशोष-ज्योतिष्मती रसायन ३०१। शाही चूर्ण १३२।

मधुमेहज-नागभस्म ८। मदनकान्ता गुटिका २८७। रसेन्द्रचूड़ामणि २९१।

शुक्रक्षयज निर्बलता-प्रवाल भस्म १०, वंगभस्म ६। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ९। अमृतप्राश घृत १२८। खर्जूरादि चूर्ण १३६। याकूती १७१। शिलाजत्वादि वटी १८०। बृहच्छतावर्यादि चूर्ण १८२। वंगादि चूर्ण २८९। रतिवल्लभ चूर्ण २९४। कामचूड़ामणि रस २९२। अश्वगन्धादि चूर्ण २९४। मूसली पाक २९४। अहिफेन पाक २९५। मौक्तिक रसायन २९८। मदनमंजरी वटी ३०३। शाही चूर्ण १३२। अश्वगन्धादि क्वाथ १५४। शक्तिवर्धक गुटिका २९६। शक्ति संजीवन लेह २९६। वैक्रान्त योग २६५। शतावरी घृत २९७।

अस्थिमज्जा की निर्बलता-नागभस्म ८।

ग्रहणीरोगज निर्बलता-ज्ञानोदय रस २८८।

रसक्षयज-यशद भस्म ७। प्रवाल भस्म १०। अभ्रक भस्म ४।

स्तन्यपान से निर्बलता-प्रवाल भस्म १०। एलादि मन्थ १२९।

अधिक संतान होने से निर्बलता-एलादिमन्थ १२९। मौक्तिक रसायन २९८। कामचूड़ामणि २९२। शाही चूर्ण १३२।

जीर्णकास से-बृहच्छृंगाराभ १०५। अमृतप्राशघृत १२८। मूसली पाक २९४।

अध्ययनज-चतुर्भुज रस १३६। मूसलीपाक २९४। मौक्तिक रसायन २९८। कामचूड़ामणि २९२।

वृद्धावस्था में निर्बलता-रसराज रस १२१। बृहद् वातचिन्तामणि १४३। ब्राह्मरसायन २८४। आमलकी रसायन २८६। रसेन्द्र चूड़ामणि २९१। मूसलीपाक २९४। रतिवल्लभ पूगपाक २९५। अहिफेनपाक २९५।

रक्तदबाव का ह्रास-रसराज रस १२१। चन्द्रोदय वटी २८९। अभ्रक भस्म ४। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

गांजा शराब से निर्बलता-कामचूड़ामणि २९२। रसेन्द्र चूड़ामणि २९१। मौक्तिक रसायन २९८। धात्री रसायन २९७।

मानसिक निर्बलता-याकूती १७१। अभ्रक भस्म ४। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

मर्दनार्थ-प्रमेहमिहिर तैल १८४।

चक्कर आना-सिद्धामृत रस २६१। मस्तिष्क बलवर्द्धक चूर्ण २६२। हरीतक्यादि चाटण २६२। अयारिज फेंकरा २६४।

३४. नेत्ररोग (Eye disease)

वातप्रकोपज-रौप्य भस्म ४। रजतादि लोह १२४। सप्तामृतलोह २५४।

पित्तप्रकोपज-सुवर्ण भस्म २। सप्तामृत लोह २५४।

दृष्टिमान्द्य-रजतादि लोह १२४। धात्री लोह १६५। सप्तामृत लोह २५४। धान्यकावलेह २५७। मौक्तिक रसायन २५८। ज्योतिष्मती रसायन ३०१। धात्री लोह १६५।

अञ्जनार्थ-काजल २५५। कण्डूहरअञ्जन २५६।

नेत्रप्रदाह-गुडुच्यादि क्वाथ १३६। काजल २५५। नेत्ररक्षक बिन्दु २५७। धान्यकावलेह २५७।

नेत्र में लाली-काजल २५५। श्वेत नेत्राञ्जन २५६। नागार्जुन वर्ति २५६। नेत्ररक्षक बिन्दु २५७।

अन्तःप्रयोगार्थ-प्रवाल भस्म १०। धान्यकावलेह २५७। श्रृंगाराभ्र १२३।

पूयमय प्रदाह-काजल २५५। नागार्जुन वर्ति २५६। नेत्राभिष्यन्द हरण योग २५७।

नेत्रव्रण-काला नेत्राञ्जन २५५। नेत्ररक्षक बिन्दु (द्वितीय विधि) २५७।

कुकूणक-कुकूणकनाशक बिन्दु २५४। काला नेत्राञ्जन २५५। नेत्ररक्षक बिन्दु २५७। धान्यकावलेह २५७।

मांसवृद्धि-श्वेत नेत्राञ्जन २५६। नागार्जुन वर्ति २५६। नेत्ररक्षक बिन्दु (द्वितीय विधि) २५७।

पोथकी (रोहे), अभिष्यन्द, वर्त्म शुण्डिका-यशद भस्म ७। व्रणकुठार मिश्रण २११। पोथकीहर अञ्जन २५४। पोथकीहरलेप २५८।

पुष्प (फूला)-शंख भस्म ११। काला नेत्राञ्जन २५५। नागार्जुन वर्ति २५६।

तिमिर-नागाद्यञ्जन २५६। नागार्जुन वर्ति २५६।

अधिमन्थ (नेत्रशूल-Glaucoma)-अधिमन्थहर योग २५६। हब्बे अयारिज २५८। पथ्यादि क्वाथ २६१।

नेत्रकण्डू-कण्डूहर अञ्जन २५६। नेत्ररक्षक बिन्दु २५७।

३५. पाण्डु (Anaemia)

मानस चिन्ताजन्य-रौप्य भस्म ४। अभ्रक भस्म ४।

पित्तप्रकोपज-लोह भस्म ४। पन्ना भस्म १२। प्रवाल-माक्षिक मिश्रण ९१।

धातु परिपोषण में न्यूनता से-नाग भस्म ८। प्रवाल माक्षिक मिश्रण ९१। लोह सिन्दूर ९३। नारायण मण्डूर ९३। लोहासव ९७। हेमाभ्रसिन्दूर ११९। रजतादि लोह १२४। धात्री लोह १६५। यकृत्प्लीहारि लोह १९०। मूसली पाक २९४।

रक्तस्रावज-लोह भस्म ४।

रसविकृतिजन्य-यशद भस्म ७। प्रवालमाक्षिक मिश्रण ९१। नारायण मण्डूर ९३। हरीतकी रसायन ९७। मेहमुद्गर रस १७९।

अर्शज-अभ्रक भस्म ४। लोहासव ९७।

कृमिप्रकोपज-लोह भस्म ४। बृहत्कस्तूरी भैरव २५। कृमि कण्टक रस ८९। मुस्तादि ९०। लोहसिन्दूर ९३। नारायण मण्डूर ९३। विशालादि चूर्ण ९६। लोहासव ९७। योगराज रस ९८। बाकुच्यादि चूर्ण २२८।

शुक्रक्षयज-वंग भस्म ६। लोहसिन्दूर ९३। रसराज रस १२१। रजतादि लोह १२४। मूसलीपाक २९४। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

विषप्रकोज-पन्ना भस्म १२। नारायणमण्डूर ९३।

ज्वर जन्य-कालमेघनवायस ९२। लोहसिन्दूर ९३। योगराज रस ९८।

अग्निमांद्यसह हो तो-लोहासव ९७। हेमाभ्रसिन्दूर (द्वितीय विधि) ११९। पञ्चामृतमण्डूर ९४। गोमूत्रादि क्षार ९५।

त्रिदोष पाण्डु (Pernicious Anaemia)-लवणद्रावक ८१। पञ्चानन वटी ९२।

मलावरोध हो तो-नारायण मण्डूर ९३। योगराज रस ९८।

श्वेताणुवृद्धि जन्य पाण्डु (Lymphatic Leukaemia)-पञ्चानन वटी ९२। योगराजरस ९८। प्लीहारि अर्क १९६। लोहगुग्गुलु १६४। श्रृंगाराभ्र १२३।

मांसक्षयज-लोहसिन्दूर ९३। अभ्रक भस्म ४।

अधिक संतानोत्पत्ति से-लोहसिन्दूर ९३। बृहत् सुवर्णमालिनी ३७।

हलीमक-लोहासव ९७। मेहमुद्गर रस १७९। यकृत्प्लीहारि लोह १९०। कृमिप्रकोप हो तो ऊपर कृमि में कहे हुए प्रयोग।

उपवृक्कविकारज पाण्डु (Addison' disease)-शतावरी घृत २९७। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

सगर्भाका पाण्डु-योगराज रस ९८।

अपचन और मलावरोध होने पर-विशालादि चूर्ण ९६। नारायण मण्डूर ९३। हरीतकी रसायन ९७। विशालादि क्षार ९६।

शोथमय पाण्डु-पञ्चानन वटी ९२। नारायण मण्डूर ९३।

अन्त्रशोथसह पाण्डु-मण्डूर वटक ९५।

३६. पूयगेह-सुजाक (Gonorrhoea)

नया-श्वेत पर्पटी १७३। उदुम्बरपत्रसार २१०। उपदंशहर कपाय २१९। औपसर्गिक मेहहर योग २२२। पूयमेहहर गुटिका २२३।

पुराना-सुवर्ण वंग १। दाह हो तो-प्रवाल भस्म १०। या शुक्ति पिष्टी १०। सिद्ध गन्धक १९९। कन्दर्प रस २२२। औपसर्गिक मेहहर मिश्रण २२२। वंग योग २२३। कुष्ठहर रस २२४।

शक्ति बढ़ाने को-काम चूड़ामणि २९२। बहुमूत्रघ्न रस १८७।

कोथ (Gangrene)-रौप्य भस्म ४। सुवर्ण वंग १। बृहत् सोमनाथ रस १८५। शिलाजत्वादि वटी १८०। उदुम्बर पत्रसार २१०।

मूत्रदाह-मूत्रकृच्छ्रान्तक योग १७५। बृहत् सोमनाथ रस १८५। पूयमेहहर गुटिका (द्वितीय विधि) २२३। सूर्यावर्त क्षार (१७३) में बनी हुई हाथीदांत की भस्म। वंगयोग २२३। संजीवन अर्क ८५।

बाह्यप्रयोग-व्रणकुठार मिश्रण २११।

३७. प्रतिश्याय जुकाम (Coryza)

नूतन-अष्टामृत भस्म १३। रसायन बिन्दु १३१। श्रृंगाराभ्र १२३।

जीर्ण-मदनकान्ता गुटिका २८७। कफनाशक क्वाथ १०९।

ज्वरसह-कफकेतु रस १०३। ज्वरसंहार (द्वितीय विधि) २७। श्वासकान्तक चूर्ण ११८।

३८. प्रमेह

पित्तज मेह (क्षार, नील, काल, हारिद्र, मांजिष्ठ और रक्त)-लोहभस्म ४। यशद भस्म ७। त्रिवंग भस्म १३। वंगाष्टक भस्म १३। गुडुच्यादि रसायन १२७। प्रमेहान्तक चूर्ण (द्वितीय विधि) १८१। श्रेष्ठादि वटी १८४।

कफजमेह (उदक, इक्षु, सान्द्र, सुरा, पिष्ट, शुक्र, सिकता, शीत, शनैः, लालामेह)-लोह भस्म ४। वंग भस्म ६। त्रिवंग भस्म १३। वंगाष्टक भस्म १३। पीयूषवल्ली रस ६०। मधूकासव ७७। नागवल्लभ्र १०२। गुडुच्यादि रसायन १२७। रसोन सुरा १५४। प्रमेहान्तक चूर्ण (प्रथम विधि) १८१। प्रमेहहर योग (७वीं विधि) १८३। श्रेष्ठादि वटी १८४। बाकुच्यादि चूर्ण २२८।

सब प्रमेह-चन्द्रकला वटी १७८। प्रमेहान्तक रस १७८। बृहद् हरिशंकर रस १७८। प्रमेहकुञ्जरकेसरी १७९। मेहमुद्गर रस १७९। प्रमेहान्तक कषाय १८३। प्रमेहहर योग १८३। विलासिनीवल्लभ रस १७८।

शुक्र प्रमेह (Spermatorrhoea)-वंगभस्म ६। चन्द्रकला वटी १७८। प्रमेहकुञ्जर केसरी १७९। शिलाजत्वादि वटी १८०। प्रमेहान्तक चूर्ण (प्रथम विधि) १८१। बृहच्छतावर्यादि चूर्ण १८२।

जीर्ण रक्तमेह-बृहत्सुवर्णमालिनी वसन्त ३७।

इक्षुमेह (Glycosuria)-यशद भस्म ७। त्रिवंग भस्म १३। प्रमेहान्तकरस १७८। मधुमेह दर्पहारी १७९। शिलाजत्वादि वटी (तीसरी विधि) १८०। श्रेष्ठादि वटी १८४। अभयादि कषाय १८४। सोमनाथ रस १८५।

मधुमेह (Diabetes mellitus) कोथ हो तो-रौप्य भस्म ४। पित्तप्रकोप में-यशद भस्म ७। नाग भस्म ८। कोथ में-नाग भस्म ८ और शिलाजीत। मेदाधिक रोगी को-नाग भस्म ८। त्रिवंग भस्म १३। शोराद्रावक ८३। प्रमेहान्तक रस १७८। मधुमेहहर योग १७९। मधुमेहदर्पहारी १७९। शिलाजत्वादि (तृतीय विधि) १८०। श्रेष्ठादि वटी १८४। अभयादि कषाय १८४। बहुमूत्रान्तक रस १८६। उदुम्बरपत्रसार २१०। मदनकान्ता गुटिका २८७। रक्तपित्तकुलकण्डन रस ९९। महाकल्याण रस २९९। रत्नगर्भपोटली रस १२५। विजयासत्वादि वटी १४१। श्रृंगाराभ १२३। श्रीगोपाल तैल ३०५। समशर्कर चूर्ण १०८।

मधुमेह में निर्बलता और नपुंसकता-रसेन्द्र चूड़ामणि २९१। लोहसिन्दूर ९३।

उदकमेह-बहुमूत्र-मूत्रातिसार में देखें।

लालामेह-बृहत् सोमनाथ रस १८५।

मधुमेह और संधिवात-त्रिवंग भस्म १३।

स्वप्नदोष-निर्बलता में देखें।

सोम-गुडुच्यादि रसायन १२७। विशेष प्रदर में देखें।

मूत्र में अम्लविषाधिक्य (Oxaluria)-शोरा द्रावक ८३। विमर्दित शोरा लवण द्रावक ८४। श्वेत पर्पटी १७३।

हस्तिमेह (Enuresis)-बृहत् सोमनाथ रस १८५। बृहत् हरिशंकर रस १७८। सोमनाथ रस १८५।

३९. प्रमेह पिड़िका (Carbuncle)

शिलाजत्वादि वटी (तृतीय विधि) १८०। सारिवादि लोह १८९। प्रमेह पिटिकाहर योग १८९। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। एलारिष्ट २४६। मदनकान्ता गुटिका २८७।

मूत्रविष ह्रासार्थ-श्वेत पर्पटी १७३। एलाद्यरिष्ट २४६।

लगाने के लिए-व्रणशोधन तैल २०६।

४०. प्रवाहिका-पेचिश (Dysentry)

नूतन-लघुशत पुष्पादि चूर्ण ५१। प्रवाहिका हर योग ५१। भुवनेश्वरी वटी ५३। प्रवाहिकाहर गुटिका ५३। संजीवन अर्क ८५। सिंहास्यादि वटी ५३। प्रवाहिकाहर चूर्ण ५८।

जीर्ण-लघु शतपुष्पादि चूर्ण ५१। प्रवाहिका हर गुटिका (द्वितीय विधि) ५३। ग्रहणीगजकेसरी ५६।

रक्तप्रवाहिका-बीजक निर्यासादि चूर्ण ५२। सिंहयास्यादि वटी ५३। संजीवन अर्क १८५।

४१. फिरंग-गर्मी (Syphilis)

नूतनरोग-उपदंश वन कुठार वटी २१९। नीलकण्ठ रस २१७। सवीरमल्लपुष्प २१८। उपदंश वन कुठार २१९। उपदंश हर कषाय २१९। उपदंशहर धूम्र २२०। उपदंशहर वटिका २२१।

जीर्ण रोग-तालभस्म ११। मन:शिला भस्म १२। कज्जली रस १३६। पीतमृगांकरस १४५। नारायण रस २१५। मल्लादि पुष्प २१७। भैरवरस २१७। सवीर मल्लपुष्प २१८। उपदंश दावानल रस २१८। रक्तशोधक अर्क २२१।

क्षत-शोराद्रावक ८३। उपदंशहर चूर्ण २२०। विमर्दित नील धावन २२०।

नासाव्रण गुदशूकादिउपद्रव-पीत मृगांक १४५। नारायण रस २१५। भगन्दर नाशक योग (नं. २) २१५। सवीर वटी २१८।

विरेचनार्थ-पारद वटी १६।

४२. बहुमूत्र (Polyuria)

मधुमेह में बहुमूत्र-नाग भस्म ८। मधुमेह दर्पहारी १७९। बहुमूत्रान्तक रस १८६।

मूत्रातिसार (**उदकमेह** Diabetes insipidus)-बृहत् सोमनाथ रस १८५। वैक्रान्त वसंतकुसुमाकर १८६। बहुमूत्रान्तक रस १८६। बहुमूत्रघ्न रस १८७।

बूंद बूंदमूत्र टपकना-अभ्रक भस्म ४। वंगाष्टक भस्म १३। राजवल्लभ रस ६२। बृहत् सोमनाथ रस १५८।

मूत्र में दाह हो तो-मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७।

पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि-नाग भस्म ८। शतावरी घृत १७४।

सोमरस-बृहत् सोमनाथरस १८५। सोमनाथ रस १८५। वैक्रान्तवसन्तकुसुमाकर १८६।

हिस्टीरिया में बहुमूत्र (Polyuria)-सोमनाथ रस १८५। वैक्रान्त वसन्तकुसुमाकर १८६। विशेष औषधि वातरोग (अपतन्त्रक) में देखें।

४३. बालरोग (Infantile disease)

नूतन ज्वर-अमृतार्णव १९। आक्षेप आने पर-अमृतार्णव १९।

भय से हो तो-ज्वरारि अभ्र २३। रस पीपरी २८०। बालरस २८०। ज्वरान्तक चूर्ण २८१। जन्मघूंटी २८३।

जीर्ण ज्वर-गन्धक कज्जली योग १२८। मालती चूर्ण २७६। बाल रस २८०। अमृतार्णव रस १९।

ज्वरातिसार-रस पीपरी २८०। ग्रहणी शार्दूल ६३। गन्धक कज्जली योग १२८।

प्रवाहिका-प्रवाहिकाहर गुटिका (तृतीय विधि) ५३। ग्रहणी शार्दूल ६३।

अतिसार-स्वादिष्ट गंगाधर चूर्ण ५२। राजवल्लभ रस ६२। शोरा द्रावक ८३। मालती चूर्ण २७६। बालवटी २७६। वचाहरिद्रादि कषाय २७९। रुक्मीश रस १५। बालरक्षक बिन्दु २८०। अतिसारहर योग २८२। पारदादि चूर्ण २८२।

ग्रहणी फक्क (Intestinal infantiilism)-विषमज्वरान्तक लोह ३२। मुक्तादि वटी २७६।

प्रतिश्याय-बालवटी २७६। रस पीपरी २८०। बालरस २८०। बालरक्षक बिन्दु २८०। अस्थिमार्दव।

कास-कासान्तक कषाय २८१। जन्म घूंटी २८३।

काली खांसी-प्रवाल भस्म १०। कुक्कुरकासहर मिश्रण २७९। रसोनादि अर्क ८१।

दांत आने पर विकार-प्रवाल भस्म १०।

दांत आने पर मुख पाक (Aphthae)-मालती चूर्ण २७६।

अस्थिमार्दव (Rickets)-प्रवाल भस्म १०। एलादि मन्थ १२९। अमृतप्राश घृत १२८। सुधाषट्क योग २७६। मुक्तादि वटी २७६। मालती चूर्ण २७६। बालरक्षक शर्बत २७९।

गलौघ (Croup)-अष्टामृतभस्म १३।

चक्षुप्रदाह (आंख आना Conjunctivitis)-

क्षीरालसक, पारिगर्भिक, बालशोष (Marasmus)-अमृतार्णव रस १९। नागवल्लभ १०२। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७। एलादि मन्थ १२९। मुक्तादि वटी २७६। मालती चूर्ण २७६। बाल रक्षक शर्बत २७९। बालशोषहर वटी २७७। बालशोषहर तैल २८१। जन्म घूंटी २८३।

बालग्रह (Infantile eclampsia)-अमृतार्णवरस १९। महाभूतराव घृत २८१। कुमार कल्याण घृत २८१।

उदर कृमि-कृमिकण्टक रस ८९। कृमिकण्टक चूर्ण ९०। बालरक्षक शर्बत २७९। बालरस २८०। कुमार कल्याण घृत २८१।

वमन-गन्धक कज्जली योग १२८। मुक्तादि वटी २७६। बाल वटी २७६। बालरक्षक शर्बत २७९। बालरक्षक बिन्दु २८०।

अपचन-बालवटी २७६। बालरक्षक शर्बत २७६। ज्वरान्तकचूर्ण २८१। जन्मघूंटी २८३।

निर्बलता-चैतन्योदय रस २८०। तुत्थादि वटी २७७।

डब्बा-हिंगुलादि गुटिका २७७। रसपीपरी २८०। चैतन्योदय रस २८०।

यकृद् वृद्धि-बाल यकृदरि लोह २७८।

शीर्षाम्बु शीर्षजलोदर-वह्नि भास्कर रस २६१। अम्बु शोषण चूर्ण २७८। पीतमूल्यादि कषाय २७८।

श्वास-बाल रस २८०। रस पीपरी २८०। श्वासान्तक योग २८२।

उदरशूल-बालरक्षक बिन्दु २८०।

मलावरोध-बाल रक्षक शर्बत २७९। ज्वरान्तक चूर्ण २८१। बाल रस २८०। जन्म घूंटी २८३।

धनुर्वात (Infantile Convulsions)-महा भूतराव घृत २८१। धनुर्वातहर योग २८२। ज्वर में होने पर-अमृतार्णव रस १९। फिरंगविकृति होने पर-बालरस २८०। या पारदादि चूर्ण २८२।

बुद्धिमांद्य-अभ्रक भस्म ४। मुक्तादि वटी २७६।

शोथ-कामचार मण्डूर ६४। हिंगुलादि गुटिका २७३।

शय्यामूत्र-रसायन बिन्दु १३१।

नृत्यवात (Chorea)-मांस्यादि क्वाथ १४९।

मुखपाक-मालती चूर्ण २७६।

गुदपाक-मालती चूर्ण २७६।

विसर्प-विसर्प रोग में देखें।

शीतला-रोमान्तिका-मसूरिका में देखें।

निर्बलता-ऊपर बालशोष में लिखी औषधियां देवें।

जलोदर-हिंगुलादि गुटिका २७७।

प्लीहावृद्धिसह पाण्डु-बाल यकृदरिलोह २७८। बृहत्सुवर्णमालिनी बसंत ३७।

४४. भंगदर (Anal Fistula)

अभ्रक भस्म ४। गुग्गुलुपञ्चतिक्त घृत २०२। व्रणरोपण २०३। व्रणापहारी रस २०३। भंगदर हररस २१५। नारायण रस २१५। भंगदर नाशक योग २१५। एलाद्यरिष्ट २४६। श्वासकासान्तक चूर्ण ११८।

फिरंगज भंगदर-व्रणान्तक रस २०३। नारायण रस २१५। श्वासाकान्तकचूर्ण ११८।

धोने को-व्रणाकुठार मिश्रण २११।

लगाने को-निर्गुण्डी तैल २०६। व्रणशोधन तैल २०६। व्रणकुठार तैल २११।

४५. मदात्यय (Alcoholism)

लोकेश्वर पोटली १२४। कज्जली रस १३६। महाकल्याणरस २९९।

निद्रानाश-चण्डासव १४१। ब्राह्मी तैल १३९।

वातप्रकोप-बृहत् वातचिन्तामणि १४३।

४६. मलावरोध-आनाह-कब्ज (Constipation)

आमविरेचनार्थ-रुक्मीशरस १५। सुखविरेचन वटी १०। हरीतकीवटी १८।

पाचन एवं सारक-द्राक्षादि चाटण ७८। सामुद्राद्यचूर्ण (उदर) १९५। हरीतक्यादि अवलेह १३०। उदरवातहर लेप २८३। प्लीहारि अर्क १९६।

कृमिजन्य-कृमिघ्न योग ९०। कृमिकण्टक चूर्ण ९०।

जीर्णरोग में शारीरिक निर्बलता-बृहद् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७। नवजीवन रस २८९।

अन्त्र को शक्ति देने को-अभ्रक भस्म ४। नाग भस्म ८। कारस्करादि वटी १४८। नवजीवनरस २८९। उदरवात रहता हो तो-माजून कुचिला १५१।

४७. मसूरिका-रोमान्तिक (Small Pox-Measles)

शीतला-वसंत सुन्दर रस २४५। शीतला शामक वटी २४५। गोरोचन मिश्रण २४५। मसूरिकान्तकरस २४५। इन्दुकला वटी २४५। मसूरिकान्तक वटिका २४६। एलाद्यरिष्ट २४६। द्राक्षादि क्वाथ २४७। निम्बादि क्वाथ २४७।

जीर्ण विषशमनार्थ-मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७।

रोमान्तिका (खसरा)-एलाद्यरिष्ट २४६। द्राक्षादि क्वाथ २४७। निम्बादि क्वाथ २४७।

४८. मुखरोग

मुखपाक (Stomatitis)-खदिरादि तैल २४९। सौभाग्य प्रवाही २५०। मुखपाकहर योग २५०। अपचन हो तो-शतपत्र्यादि चूर्ण ७५।

गलग्रन्थि शोथ (Tonsilitis)-यशद भस्म ७।

स्वघ्न, विदारिका, गिलायु, अधिजिह्व, उपजिह्व-यशद भस्म ७। प्रवाल भस्म १०।

स्वरसाद-स्वरभंग-यशद भस्म ७।

उपदंशज मुखपाक-शोराद्रावक ८३। विमर्दित शोरा ८४। लवणद्रावक ८१। इरिमेदादि तैल २०७।

दंतशूल (Toothache)-दंतशूलहर मंजन २४९। बकुलाद्य तैल २४९।

दंतरोग-दन्तरक्षक मंजन २४८। रक्तमंजन २४८।

दंतपूय (Pyorrhoea)-कृष्णमंजन २४९। बकुलाद्य तैल २४९।

मसूढ़े पर शोथ-शोथहर गुटिका २१३। रक्त मंजन २४८।

४९. मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात (Dysuria)

सामान्य मूत्रकृच्छ्र (Dysuria)-गुडुच्यादि रसायन १२७। मूत्रकृच्छ्रान्तक योग १७५। प्रमेह कुञ्जरकेशरी १७९। बृहत् सोमनाथ रस १५८। शतावरी घृत १७४। श्रीगोपाल तैल ३०५।

पित्तप्रकोपज-सूर्यावर्त क्षार १७३। श्वेत पर्पटी १७३। शतावरी घृत १७४। मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७।

वृक्क विकारज-तारकेश्वर रस १७३।

अश्मरीजन्य-गोक्षुरादि घृत १७४। तारकेश्वर रस १७३। शतावरी घृत १७४।

पौरुषग्रन्थि वृद्धिजन्य मूत्रावरोध-शतावरी घृत १७४। शिलाजत्वादि वटी १८०।

मूत्राशय प्रदाह (Cystitis)-बृहत् सोमनाथ रस १५८।

मूत्रमार्ग बल देने को-गोक्षुरादि घृत १७४।

मूत्रदाह-अपूर्व मालिनी वसंत ४०। खर्ज्जूरादि चूर्ण १३६। मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७।

सुजाकजन्य मूत्रदाह-पूयमेह में देखें।

विसूचिकाजन्य मूत्राघात-मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७।

५०. मूर्च्छा (Syncope)

मानसिक आघात से मूर्च्छा-संज्ञाप्रबोधक प्रधमन ४५। जवाहरमोहरा १७०॥ बृहत्कस्तूरी भैरव २५।

मधुमेहजसन्यास (Apoplexy)-नागभस्म ८। कुछ होश हो तो-शुद्ध जमालगोटे की गिरी का चूर्ण शक्कर में देवें। शुद्धि आने पर-वैक्रान्त वसंतकुसुमाकर १८६ या शिलाजत्वादि वटी १८०।

५१. मेदोरोग (Obesity)

मेदशोषणार्थ-श्वासारि एला ११४। आमवातेश्वर १५७। त्रिमूर्ति रस १८९। मेदोहर गुग्गुलु १९०।

विरेचनार्थ-रुक्मीश रस १५।

५२. रक्तपित्त (Purpura)

ऊर्ध्व रक्तपित्त (Hematemesis and Haemoptysis)-शतमूल्यादिलोह १००। गुडुच्यादि रसायन १२७। अमृतप्राश १२८। खर्जूरासव १३०। शतावरी घृत १६२। वासकासव ११६। अम्लपित्तसह-रसामृत रस १००।

रक्तस्राव शमनार्थ-रक्तरोधक वटी १०१। वासकासव ११६।

प्राकृतिक रक्तस्राव (Haemophilia)-प्रवाल भस्म १०। शुक्ति पिष्टी १०। मौक्तिक रसायन २९८।

अधो रक्तपित्त-मूत्रमार्ग से रक्तस्राव होने पर-शतावरी घृत १६२।

मल के साथ रक्त जाने पर-ग्रहणीगज केसरी ५६ या पीयूषवल्ली रस ६०।

त्रिदोषज रक्तपित्त-रक्तपित्तान्तक रस ९९। रक्तपित्तकुलकण्डन रस ९९। शतावरी घृत १६२। वासा कूष्माण्ड खण्ड १०१। श्रृंगाराभ्र १२३।

श्लेष्म रक्तज रक्तपित्त-अर्केश्वर रस १००।

५३. रक्तदबाव वृद्धि (H.T.)

रसोनादि अर्क ८१।

५४. रक्तविकार

जीर्णपूयमेहज-सुवर्ण वंग १। विडंगतण्डुलरसायन २३५।

फिरंगज-मल्लसिन्दूर १। व्रणान्तक रस २०४। सारिवादि हिम २३२। विडंग तण्डुल रसायन २३५।

विरेचनार्थ-पारद उपलवण १६। बृहन्मञ्जिष्ठादि चूर्ण १६। हरीतकी वटी १८।

कुष्ठ और त्वचाविकारज-मूल रोग में देखें।

५५. रक्तस्राव (Hemorrhage)

मुख, गुदा आदि मार्ग से-विशेष-रक्त पित्त में देखें।

छुरी आदि से रक्तस्राव-विशेष व्रण में देखें।

५६. रसायन

अभ्रक भस्म ४। सुवर्ण-भस्म २। अभ्रकसत्व भस्म ४। सत्वाभ्र रसायन ६। शुक्रसंजीवन रस १२४। याकूती १७१। ब्राह्म रसायन २८४। आमलकी रसायन २८६। निर्विष्यादि वटी २८८। ज्ञानोदय रस २८८। चन्द्रोदय वटी २८९। नवजीवन रस २८९। कामचूड़ामणि २९२। अश्वगन्धादि चूर्ण २९४। मूसली पाक २९४। शक्ति संजीवन लेह २९६। धात्री रसायन २९७। शतावरीघृत २९७। मौक्तिक रसायन २९८। महाकल्याण रस २९९। ज्योतिष्मति रसायन ३०१। अमृत भल्लातक पाक ३०३। नपुंसकता नाशक (वाजीकरण) औषधियों के लिये नपुंसकता में तथा निर्बलता के लिये निर्बलता में देखें।

५७. वातरोग (Neurological Disease)

कफ वृद्धिसह-नवग्रह रस १४३। कूष्माण्ड अर्क १४८। रसोनपाक १५१। भल्लातकासव १५४।

पित्तवृद्धिसह-बृहत् वातचिन्तामणि १४३। हिम सागर तैल १५३। काकतिन्दुक वटी १५०। एरण्ड पाक १५१। माजून कुचिला १५१। रसोनसुरा १५४। वातगजेन्द्रसिंह १५८। भल्लातकादि क्षार ७६। भल्लातकासव १५४। रसोनादि अर्क ८१।

मस्तिष्कगत वात-पञ्चामृत लोह गुग्गुलु १४९। सहचरादि तैल १५२। हिमसागर तैल १५३।

रक्तविकार सह-चोपचीनी पाक १५१।

संधिवात-भल्लाकादि गुटिका १४७। रसोनादि गुग्गुलु १४७। पञ्चामृत लोह गुग्गुलु १४९। रसोन सुरा १५४। चोपचीनी पाक १५१। संधिवातह योग १५५।

पीड़ शमनार्थ-पञ्चगुण तैल १५३। सूचीमर्दन १५५।

फिरंग ज वात-शोराद्रावक ८३। चोपचीनी पाक १५१। मल्लप्रधान रसायन।

पूयमे जवात-सुवर्ण वंग १। चोपचीनी पाक १५१।

खञ्जवात (कलायखञ्ज Locomotor ataxia)-खञ्जनिकारि रस १४६। अर्दितारि रस १४६। त्रयोदशांग गुग्गुलु १४९। माजून कुचिला १५१। सहचरादि तैल १५२।

धनुस्तम्भ-रसराज रस १४२। धनुर्वातहर योग १५५।

आक्षेप (माँसपेशियों का खिंचाव Spasm)-मल्लशंख भस्म ११। रसराज रस १४२। विजयासत्वादि वटी १४१। **खञ्जनिकारि रस** १४६। रसोन पाक १५१। सहचरादि तैल १५२।

अपतन्त्रक (Hysteria)-हिंगु कर्पूर वटी ३३। भीम वटी ६९। रसराज रस १४२। बृहद् वातचिन्तामणि १४३। **अपत्रतंकारि वटी** १४७। मांस्यादि क्वाथ १४९। रसोन पाक १५१। मदनकान्ता गुटिका २८७। ज्ञानोदयरस २८८।

कफाधिक हो तो-श्वासकान्तक चूर्ण ११८। चतुर्भुजरस १३६।

निद्रा लाने को-चन्द्रहास अर्क १४०। चन्द्रावलेह १४१। सर्पगन्धा चूर्ण योग १४१। विजयासत्वादि वटी १४१। बृहद् ब्राह्मी वटी १४४।

गृध्रसी (Sciatica)-चतुर्भुज रस १३६। गृध्रसीहर गुटिका १४७। त्रयोदशांग गुग्गुलु १४९। पञ्चामृत लोह गुग्गुलु १४९। रसोन पिण्ड १४९। माजून कुचिला १५१।

अर्दित (Facial paralysis)-रसराज रस १४२। खञ्जनिकारि रस १४६। अर्दितारि रस १४६। रसोनपाक १५१। रसोनपिण्ड १४९। पञ्चामृत लोह गुग्गुलु १४९। अर्दित हर योग १५५। पथ्या भल्लातक मोदक २३३। रम्य तैल १५६।

कटिवात (Lumbago)-वातहर गूगल १४१। कूष्माण्ड अर्क १४८। त्रयोदशांग गुग्गुलु १४९।

कम्पवात (Paralysis Agitans)-सहचरादितैल १५२। निर्गुण्डी तैल २०६। विशेष पक्षवध में देखें।

अभिघातज वात-हिमसागरतैल १५३। वातशूलान्तक योग १५५।

शीत से अंग जकड़ना-सहचरादि तैल १५२।

सुप्तवात-विषतिन्दुक तैल १६३। सहचरादि तैल १५२।

ज्वरसह नूतन वात-वात गजेन्द्रसिंह १५८।

अपतानक (Tetanus)-ऊपर धनुस्तम्भ में देखें।

शुक्रक्षयजवात प्रकोप-बृहद् वातचिन्तामणि १४३।

पित्तप्रकोपसह वात-बृहद् वातचिन्तामणि १४३। हिमसागर तैल १५३।

भ्रमणशील वात (सर्वांग वात)-रसोनादि गुग्गुलु १४७। कारस्करादि गुटिका १४८। रसोन पिण्ड १४९। रसोनपाक १५१। एरण्ड पाक १५१। रसोन सुरा १५४।

ऊरुस्तम्भ-ऊरुस्तम्भ रोग अलग लिखा है।

पक्षाघात (Paralysis-मल्लशंख भस्म ११। कफभूयिष्ठ होने पर नागवल्लभ १०२। चतुर्भुज १३६। रसराज रस १४२। नवग्रह रस १४३। खञ्जनिकारि रस १४६। रसोन पिण्ड १४९।

फिरंगज पक्षवध-नवग्रह रस १४६। मल्लप्रधान अन्य प्रयोग।

मर्दनार्थ-महामाष तैल १५२। सहचरादि तैल १५२। रम्य तैल १५६।

जीर्णवात में शक्ति देने के लिए-बृहद् वातचिन्तामणि १४३। मदनकान्ता गुटिका २८७। अमृत भल्लातक पाक ३०३। श्रीगोपाल तैल ३०५।

५८. वातरक्त (Gout)

श्लेष्म प्रकोपसह-पीत मृगांक १४५। वात रक्तान्तक रस १६०। वज्र गुग्गुलु १६१। सिंहास्यादि क्वाथ १६२। सिद्ध गन्धक १९९। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। तुवरक तैल योग २३२। भल्लातकासव १५४। सारिवादि लोह १८९।

पीत्तप्रकोपसह-बृहद् वातरक्तान्तक लोह १६०। गुडुच्यादिलोह १६१। अमृतादि घृत १६२। अमृता घृत १६२। शतावरी घृत १६२। महातिक्तक घृत २३१।

जीर्ण-गुडुच्यादि लोह १६१। अमृतादि घृत १६२। सारिवादि लोह १८९। भल्लातकावलेह २२९। महातिक्तक घृत २३१। विडंग तण्डुल रसायन २३५। शीत पित्त भंजन रस २३९। शतावरी घृत १६२। अमृत भल्लातक पाक ३०३। मालिशार्थ-महारुद्रतैल १६३। विषतिन्दुकतैल १६३।

५९. विषप्रकोप (Toximia)

वमनार्थ-वमनेश्वर रस १५। संशोधक रसकर्पूर २८३।

उदरशोधनार्थ-सिद्ध अश्वकंचुकी २९। विषवज्र पात रस २८३।

रक्त में मूत्रविषवृद्धि (Uraemia)-मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७। मूत्रल कषाय १९८।

पागल कुत्ते का विष-अर्कादि वटी २८४।

सर्पविष-विष वज्रपातरस २८३। जैपालाञ्जन २८४।

जन्तुदंश-निर्गुण्डी तैल २०६।

मूषक विष-वमनेश्वर रस १५। सुवर्ण चिन्तामणि २१। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। विडंग तण्डुल रसायन २३५।

जीर्णावस्था-सुवर्ण भस्म २। ज्वरयुक्त पर-सुवर्ण चिन्तामणि २१।

६०. विसूचिका (Cholera)

अपचन जन्य–स्वच्छन्द भैरव ३६। अग्निमुखरस ६८। सर्वतोभद्र रस ७०। विसूचिकान्तक रस ७८। अजीर्णान्तक रस ७८। रसोनसुरा १५४। संजीवन अर्क ८५। रसोनादि अर्क ८१। हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण ७४।

कीटाणु जन्य–विसूचिकान्तक रस ७८। रसोनकर्पूर वटी ७९। रसोनसुरा १५४। संजीवन अर्क ८५। रसोनादि अर्क ८१।

ऐंठन पर–नागरादि गुटिका १४८।

तीव्र वेदना शमनार्थ–ग्रहणीगज केसरी ५६।

शीतांग–मृगमदासव ४६। विसूचिकान्तक रस ७८।

६१. विस्फोटक (Impetigo)

हरीतकी वटी १८। महातिक्तक घृत २३१। श्वेतकरवीराद्य तैल २३६। बृहन्मरिचादि तैल २३६। हरीतक्यादि चाटण २६२।

६२. विसर्प (Erysipelas)

महातिक्तक घृत २३१। कासीसादि वटी २४४। मुक्तामिश्रण २४४। पटोलदि क्वाथ २४४। एलाद्यरिष्ट २४६।

बाह्य प्रयोगार्थ–महासिन्दूराद्य तैल २३६। विसर्पहर तैल २४४।

६३. वृद्धि (Orchitis)

वृद्धिनाशन रस २००। वृद्धिहर वटिका २००।

लगाने को–वृद्धिहर लेप २००।

६४. व्रण-विद्रधि-अर्बुद (Ulcer-Abscess-Tumor)

व्रणपाचनार्थ–दशांग उपनाह २०५। क्षारादि उपनाह २०५। दन्तीमूलादि लेप २१३।

व्रणशोधनार्थ–निर्गुण्डी तैल २०६। व्रणशोधन तैल २०६। लाल मलहम २०८। हरा मलहम २०८। काला मलहम २०८। श्वेत मलहम २०८। जन्तुघ्न मलहम २०९। पूतिहर मलहम २१०। व्रणकुठार मिश्रण २११।

व्रणरोपणार्थ–पञ्चगुण तैल १५३। इरिमेदादि तैल २०७। लाल मलहम २०८। हरा मलहम २०८। काला मलहम २०८। श्वेत मलहम २०८। क्षतारिमलहम २०९। उदुम्बर पत्रसार २१०। मधूच्छिष्टाद्य घृत २१०।

दूषित शस्त्र से व्रण (Hospital Gangrene)–शोराद्रावक ८३। व्रणशोधन तैल २०६। निर्गुण्डी तैल २०६। सुदर्शन मलहम २०९।

वर्द्धनशील दुष्ट व्रण (Progressive Gangrene)–शोराद्रावक ८३। व्रणशोधनतैल २०६। जन्तुघ्न मलहम २०९। निम्बादि मलहम २०९। सुदर्शन मलहम २०९। पूतिहर मलहम २१०। व्रणकुठार मिश्रण २११। तुवरक तैल योग २३२।

वेदना विहीन भग्न क्षत–शोराद्रावक ८३।

अभिघात–चोटहर योग २१३। शोथहर गुटिका २१३। अर्क लोहबान २१४।

अकबरी फोड़ा (Oriental Sore)–हरा मलहम २०८। जन्तुघ्नमलहम ३०९।

आगन्तुक क्षत–आगन्तुक क्षतान्तक २०६। व्रणशोधन तैल २०६। इरिमेदादितैल २०७। रक्तस्रावशोधनार्थ–उदुम्बर पत्रसार २१०। आगन्तुक क्षतहर योग २१२। अर्क लोहबान २१४। अर्क रेवतचीनी २१४।

अग्निदग्ध व्रण–निम्बादि मलहम २०९। सुदर्शन मलहम २०९। मधूच्छिष्टाद्य घृत २१०। तुगाक्षीर्यादि लेप २१०। गुलाबी मलहम २३७।

नाड़ी व्रण–निर्गुण्डी तैल २०६। व्रणशोधन तैल २०६। व्रणकुठार तैल २११। रसोनादि अर्क ८१।

फुफ्फुसस्थविद्रधि–रसोनादि अर्क ८१।

मुख का दुष्ट क्षत (Cancrumoris)–शोराद्रावक ८३। इरिमेदादि तैल २०७। एलाद्यरिष्ट २४६।

यकृद्विद्रधि–ग्रहणीवज्रकपाट ५८। विड़गारिष्ट २०४।

सब प्रकार के अन्तर्विद्रधि–विडंगारिष्ट २०४। अन्तर्विद्रधिहरयोग २०५। भंगदरहर रस २१५।

महाधमनी में रक्तार्बुद (Aneurysm)–जवाहर मोहरा १७०। बृहद् ब्राह्मीवटी १४४।

व्रणों में उदर सेवनार्थ–यशद भस्म ७। वंगभस्म ६। गुग्गुलुपञ्चतिक्तक घृत २०२। व्रणान्तक गुग्गुलु २०३। व्रणापहारी २०३। व्रणरोपण रस २०३। व्रणान्तक रस २०४। फिरंगजव्रण में–व्रणान्तक रस २०४ या हरड़पाक २०४। अस्थिव्रण में नागभस्म ८। नारायण रस २१५। भंगदरनाशक योग (नं. ३) भगन्दरहर रस २१५। सवीर वटी २१८।

रसार्बुद (रसौली)–यशद भस्म ७।

फिरंगज अर्बुद–सवीर वटी २१८।

नाड़ीव्रण में उदरसेवन–नारायण रस २१५। भंगदरहररस २१५। भंगदर नाशक योग (नं. २) २१५। सवीर वटी २१८।

वर्णविकृति–सवर्णकर योग ११३।

ब्रध्न (Budo)–हरीतक्यादि कषाय २१३।

पशुओं के व्रण–निर्गुण्डी तैल २०६। सुदर्शन मलहम २०९।

६५. शिरोरोग (Headache)

पित्तज शीर्षशूल–शुक्ति पिष्टी १०। प्रवाल भस्म १०। हब्बे अयारिज २५८। शिर:शूलादिवज्र रस २५८। पथ्यादि क्वाथ २६१। निर्वेदनचूर्ण २८।

अपचन जन्य (Toxic)–अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। नृसार पुष्प ७५। मिहिरोदय रस २५९। पथ्यादि क्वाथ २६१। शिरोर्तिहर नस्य २६२। शिरोरोगहर योग २६३। निर्वेदन चूर्ण २८।

प्रतिश्यायज शिरदर्द–कफकेतु रस १०३। रसायन बिन्दु १३१। अयारिज फैंकरा २६४।

कृमिज शिरदर्द (शंखवात)–नासाकृमिहर नस्य २५३। शिरोरोगहर रस २५८। मिहिरोदय रस २५९।

अर्धावभेदक सूर्यावर्त (Hemicrania Migraine)–मिहिरोदय रस २५९। अर्क पत्रयोग २६०। पथ्यादि क्वाथ २६१। शिरोर्तिहर नस्य २६२। शिरोरोगहर योग २६३। अर्धावभेदकहर योग २६३। अर्धावभेदकहर नस्य २६३। अयारिज फैंकरा २६४।

फिरंगज शिरदर्द–शिरोरोगहर रस २५८।

पूयज शिरदर्द–शिरोरोगहर रस २५८। मिहिरादय रस २५९। चन्दनादि कषाय २६१। निर्वेदन चूर्ण २८।

हिस्टीरियाजन्य–मिहिरोदय रस २५९।

शिर में भारीपन–रक्तसंग्रह (Congestive) से होने पर–पथ्यादि क्वाथ २६१। शिर:शूलहर तैल २६२। हरीतक्यादि चाटण २१३।

चक्कर आना–निर्बलता के साथ देखें।

मस्तिष्क में उष्णता–ब्राह्मी तैल १३९। विश्वविलास तैल २६४।

उदरशोधनार्थ–हरीतकी वटी १८। आमविध्वंसनी वटी १८। सिद्ध अश्वकंचुकी २९। हरीतक्यादि चाटण २१३।

उदरवातज शिरदर्द–उदावर्त हर गुटिका ७३। ब्राह्मी आंवला केश तैल २६४। महाकल्याणरस २९९। मस्तिष्क रोग में–वसन्तोदय पाक २९५। श्री गोपाल तैल ३०५।

शीर्षाम्बु वृद्धि (Hydrocephalus)–वह्निभास्कर रस २६१। अम्बुशोषणचूर्ण २७८। पीतमूल्यादि कषाय २७८।

पाण्डु जन्य (Anaemic headache)–बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त ३७। अमृतप्राश घृत १२८। निर्बलता नाशक औषधियां।

ज्वरजन्य–निर्वेदनचूर्ण २८। विशेष ज्वर में देखें।

वातजशूल (Migraine)–बृहत् वातचिन्तामणि १४३। जीर्ण हो तो–बृहत् सुवर्ण मालिनी वसन्त ३७।

६६. शीत पित्त (Urticaria)

सर्वतोभद्र रस ७०। शीत पित्तभंजन रस २३९। आर्द्रक खण्ड २४०। बृहत् हरिद्रा खण्ड २४०। हरिद्राखण्ड २४१। एलाद्यरिष्ट २४६।

विरेचनार्थ–हरीतकी वटी १८। माजून एहमदी १८।

बाह्य प्रयोगार्थ–शोराद्रावक ८३।

६७. शूल (colic)

वातज–वातशूलान्तक योग १५५। लवणाद्य चूर्ण १६६।

पित्तज–नाग भस्म ८। धात्री लोह १६५। सिता मण्डूर २४१।

कफज–लवणाद्य चूर्ण १६६।

नागविषज–नाग भस्म ८।

उदरशूल–शंख भस्म ११। मल्लशंखभस्म ११। सिद्ध अश्वकंचुकी २९। नागेश्वर रस ६८। अग्निप्रदीपक गुटिका ७२। बिड़लवणादि वटी ७२। जम्बीर लवण वटी ७२। अग्निमुख रस ६८। अजीर्णान्तक वटी ७८। काकतिन्दुक वटी १५०। भल्लातकादि क्षार ७६। भल्लातकासव १५८। सामुद्राद्य चूर्ण १६६। बड़वानल क्षार १९५। रसोनादि अर्क ८१। उदावर्तहरगुटिका ७३। विडलवणादि वटी ७२। शूल गजकेसरी रस १६४। शूल हर वटी १६४। रास्नादि क्वाथ ११८। लोह गुग्गुलु १६४। श्रृंगाराभ्र १२३। श्री गोपाल तैल ३०५।

रक्तवाहिनी विकृति से शूल–त्रिवंग भस्म १३।

परिणामशूल–ग्रहणीगजकेशरी ५६। नारिकेल लवण १६४। सामुद्राद्य चूर्ण १६६। धात्री लोह १६५।

पित्ताशय शूल–नृसार पुष्प ७५। पित्ताशय शूलहर योग १६५।

कृमिज शूल–कृमिकण्टक रस ८९। मुस्तादि वटी ९०।

वृक्कशूल–विजयासत्वादि वटी १४१। नारिकेल लवण १६४।

पार्श्वशूल–माजून कुचिला १५१। पार्श्वशूलहर मलहम १५१। पार्श्वशूलहर योग १६५। कफनाशक क्वाथ १०९।

कर्णशूल–सिंहास्यादि क्वाथ १६२।

संधिशोथज वेदना–वातशूलान्तक योग १५५।

मस्तिष्क शूल और नेत्रशूल–मूत्र रोगों में देखें।

६८. शोथ (Dropsy-Anasaraca)

सर्वांगशोथ (dropsy)–लोहभस्म ४। पुनर्नवादिकल्प १९८। विश्वतापहरण १९। मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७। पुनर्नवाष्टक कषाय १९७। शोथारिलोह १९७।

हृदय विकारज–अभ्रक भस्म ४। विरेचनार्थ नारायणमण्डूर ९३। हेमाभ्रसिन्दूर (द्वितीय विधि) ११९। हृद्य चूर्ण १७२। मूत्रदाहान्तक चूर्ण १८७। शोथहर योग १९८। मूत्रल कषाय १९८।

यकृद्वृद्धिसह–विश्वतापहरण १९।

वृक्कविकारज–अग्निमुख रस ६८। मधूकासव ७७। मूत्रल कषाय १९८। शोथारिलोह १९७।

वातजशूल–रसोनादि अर्क ८१। श्रृंगाराभ्र १२३।

संधिशोथ–वातशूलान्तक योग १५५।

अभिघातज शोथ–वातशूलान्तक योग १५५। शोथहरगुटिका २१३।

दंशज शोथ–शोथहर गुटिका २१३।

६९. श्वासरोग (Dyspnoea)

तमक श्वास (Asthma)–ज्वरसह–ज्वरारि अभ्र २३। पीतश्वासकुठार ११२। तालीससोमादि चूर्ण ११५। रसेश्वर अर्क ११५।

दौरा दूर होने पर–नागवल्लभ रस १०२। श्वासहारी रस ११३। वातपित्तज होने पर सुवर्णभस्म २। कफाधिक होने पर-श्वासकान्तक चूर्ण ११८। पित्तप्रकोपज होने पर लोहभस्म ४ या श्वासकासचिन्तामणि १११।

कफाधिक तमक श्वास–अमृतार्णव रस १०१। श्वासारि लवण ११७। गजानन्द वटी ४७। कफकेतु रस १०३। श्वासारि लवण ११७। श्वासकान्तक चूर्ण ११८। अमृतभल्लातकपाक ३०३। कफनाशक क्वाथ १०९। मल्ल शंख भस्म ११। मनःशिला भस्म १२। पञ्चामृत भस्म १३। मल्ल पुष्प १४। स्वच्छन्द भैरव ३६। नागवल्लभ १०२। नाग रसायन १०३। भल्लातकासव १५४।

अपचनजनित तमक श्वास–कफकुञ्जर रस १०४। श्वास कास चिन्तामणि १११। एरण्ड पाक १५१। रसोनादि अर्क ८१। कफाधिक होने पर कट्फलादि क्वाथ ११०। तालीसादि मोदक ११०। उदरवातहर लेप २८३। रास्नादि क्वाथ ११८। यकृत शोथहर-यकृद्रिलोह १९४। विन्ध्यवासी योग १२९। सिंह्यादि क्वाथ १६२। हरिद्रादि लेप ११८। रत्न गर्भपोटली रस १२५। वासाकूष्माण्ड खण्ड १०१। श्रृंगाराभ्र १२३। समशर्कर चूर्ण १०८।

प्रतिश्यायसह श्वास–कफकुञ्जर रस १०४। नाग रसायन १०३।

हार्दिक श्वास (Cardiac asthma)–लोह भस्म ४। अभ्रक भस्म ४। श्वासकास चिन्तामणि १११। श्वासहारी रस ११३। कफकुञ्जर रस १०४।

वृद्धावस्था में–श्वासकास चिन्तामणि १११। बृहत् सुवर्णमालिनी ३७।

कफस्त्रावार्थ–संजीवन अर्क ८५। कफकुञ्जर १०४। श्वासारि एला ११४। श्वासान्तक चूर्ण ११५। मरिचादि कषाय ११५। वासकासव ११६। पीतमृगांक १४५। श्वासाकास चिन्तामणि १११।

तमाखू के व्यसनी को कफस्त्रावार्थ–कासान्तक चूर्ण १०७। श्वासकासचिन्तामणि १११। द्राक्षादि गुटिका १०७।

श्वासनलिका प्रसारण–रसराजरस (द्वितीय विधि) १२१। रसायन बिन्दु १३१। कफस्त्रावी औषधियां।

श्वास कृच्छ्रता–चतुर्भुज रस १३६। श्वासकास चिन्तामणि १११।

वंशागतश्वास–श्वासकास चिन्तामणि १११। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७।

निर्बलता आने पर श्वास (घबराहट)–अभ्रक भस्म ४। श्वासकास चिन्तामणि १११। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। गलग्रन्थि वृद्धि से हो तो-यशद भस्म ७। अमृतप्राशघृत १२८।

वायुकोषस्फीति–अमृतार्णव रस १९। कफकुंजर १०४।

७०. श्लीपद (Elephantiasis)

श्लीपदारि लोह १९९। सिद्ध गन्धक १९९। श्लीपद गजकेसरी १९९। नारायण रस २१५। गुग्गुलु पञ्चतिक्तक घृत २०२। मेदोहर गुग्गुलु १९०।

७१. स्त्री रोग (Diseases of female genetal organs)

वातपित्तज प्रदर–वंग भस्म ६। कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ९। त्रिवंग भस्म १३। हीरक रसायन २६६। अश्वगन्धादि योग २६८। मायाफलादि चूर्ण २६८। पत्रांगासव २६८। प्रदरान्तक योग २७०। सोमनाथ रस १८५। अबलासंजीवन अर्क २७४। शाही चूर्ण १३२।

पित्तप्रदर–रक्तपित्त कुलकण्डनरस ९०। योनिवातहरयोग २७५।

अति रजःस्राव–रक्तपित्त कुलकण्डन रस ९०। वैक्रान्त योग २६५।

कष्टार्त्तव–पीड़ितार्तव हर लेप २६९। रत्न गर्भ पोटली रस १२५।

गर्भाशय–पीड़ितार्तव हर लेप २६९। विजयासत्वादि वटी १४१।

रक्तप्रदर–कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म ९। प्रवाल भस्म १०। वासकासव ११६। गुडुच्यादिरसायन १२७। गन्धक कज्जली योग १२८। उदुम्बर पत्रसार २१०। महातिक्तक घृत २३१। शोणितार्गलरस २६६। पत्रांगासव २६८। असृग्दरहर योग २६८। अशोकादि कषाय २७०। अबला संजीवन अर्क २७४। शाही चूर्ण १३२।

बाह्योपचार–

योनि की शिथिलता–योनि संकोचक योग २७०।

योनि कण्डू–योनि कण्डूहर योग २७१।

योनि भ्रंश–मायाफलादि चूर्ण २६८।

शुष्क गर्भ–शुष्क गर्भपातन योग २७३।

पूयमेहज विषप्रकोप–अबला संजीवन अर्क २७४। दाह होने पर प्रवाल भस्म १०।

गर्भाशय संकोचनार्थ–केशरादि वटी २७१। ज्ञानोदय रस २८८। मूसली पाक २९४।

स्तन के दृढीकरणार्थ–श्रीपर्णी तैल २७४।

स्तन्य शोषणार्थ–स्तन्य शोषक लेप २७२।

गर्भाशय और बीजकोष की निर्बलता–वंग भस्म ६। त्रिवंग भस्म १३। कामचूड़ामणि २९२। शतावरी घृत २९७। गर्भाशय शोधन योग २७५। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७। हीरक रसायन २६६। लक्ष्मणा लोह २६६।

मासिक धर्म में शूल–वंग भस्म ६। विजयासत्वादि वटी १४१। वातहर गूगल १४१। रजोदोषहरी वटी २६७। कुमारिका वटी २६७। संजीवन अर्क ८५।

हिस्टीरिया–वातरोग अपतंत्रक में देखें।

सोमरोग–वंगाष्टक भस्म १३। शतावरी घृत १७४। बृहत् सोमनाथ रस १८५। सोमनाथ रस १८५। वैक्रान्त वसंत कुसुमाकर १८६।

कष्टार्तव मासिक धर्म विकृति–(Dysmenorrhoea)–प्रमदानन्द ५०। सौभाग्यादि गुटिका २६६। बोलादि वटी २६७। आर्तवप्रद योग २६९। रजोदोषहरी वटी २६७।

बंध्यापन–वंगभस्म ६। त्रिवंग भस्म १३। पूयमेहज होने पर कुमारिका वटी २६७। गर्भधारक योग २७०। मौक्तिक रसायन २९८।

पाण्डु से मासिक धर्म न आना–बृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

सगर्भा के रोग–

१. **निर्बलता**–अभ्रक भस्म ४। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। योगराज रस ९८। हीरक रसायन २६६।

२. **हड्डियों की कमजोरी**–प्रवाल भस्म १०। शुक्ति पिष्टी १०। कामचूड़ामणि २९२। मौक्तिक रसायन २९८।

३. **वमन**–अमृतप्राश १२८। पारदादि चूर्ण १३४। सगर्भा का छर्दिनाशक योग १३५। गर्भिणी रोगहरयोग २७५।

४. **अतिसार**–राजवल्लभ रस ६२। गन्धक कज्जली योग १२८।

५. **ज्वर**–महारसशार्दूल २७२।

६. **गर्भपात की भीति**–गर्भधारकयोग २७०।

७. **शूल**–प्रमेहकुञ्जर केसरी १७९। प्रमदानन्द रस ५०।

८. **सामान्य विकृति**–गर्भिणीरोगहर योग २७५।

प्रसूता के रोग-

१. **सूतिका ज्वर**-रौप्यभस्म ४। बृहत् कस्तूरी भैरव २५। संतापशामक मिश्रण २८। रसायन बिन्दु १३१.

२. **प्रवाहिका**-प्रवाहिकाहर गुटिका (तृतीय विधि) ५३। सूतिका वल्लभ रस २७१।

३. **अतिसार**-पीयूषवल्ली रस ६०। राजवल्लभ ६२। ग्रहणीशार्दूल रस ६३।

ज्वरसह होने पर-गन्धक कज्जली योग १२८। सूतिकावल्लभरस २७१। केशरादि वटी २७१ महारस शार्दूल २७२। सूतिका रोगान्तक क्वाथ २७३।

४. **पाण्डु और निर्बलता**-हेमाभ्रसिन्दूर ११९। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। रसराज रस। १४२। बृहत्वात चिन्तामणि रस १४३।

५. **मक्कलशूल** (After-Pains)-कुमारिका वटी २६७। सूतिका रोगान्तक क्वाथ २७३। संजीवन अर्क ८५।

६. **वातप्रकोप**-केशरादि वटी २७१।

७. **जीर्णज्वर**-हीरक रसायन २६६। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। मालती चूर्ण २७६।

८. **वमन**-सूतिकारोगान्तक क्वाथ २७३।

९. **श्लैष्मिक सन्निपात**-केशरादिवटी २७१। बृहत्कस्तूरी भैरव रस २५।

अति रजःस्राव-शोणितार्गल रस २६६। शिखर्यादि वर्ति २७४।

स्तन्योत्थ ज्वर-मालती चूर्ण २७६। स्तन्य निकाल लेना।

स्वर भेद (Hoarseness)

व्याख्यान आदि से स्वरभेद-शोरा द्रावक ८३। कुलिंजनादि गुटिका १३३। कुलिंजनावलेह १३३। चव्यादि चूर्ण १३३। गोरक्ष वटी १३३। त्र्यम्बकाभ्र १३४।

आक्षेपज स्वरभेद-मृगानाभ्यादि चूर्ण १३३। त्र्यम्बकाभ्र १३४।

फिरंगज होने पर (Catarrhal Laryngitis)-फिरंगज रोगहर मल्लप्रधान औषधि।

प्रसेकमय स्वरभेद (Catarrhal Laryngitis)-गोरक्ष वटी १३३। कुलिञ्जनावलेह १३३।

क्षयरोगज (Tuberculous Laryngitis)-प्रथमावस्था में त्र्यम्बकाभ्र १३४।

७३. हिक्का (Hiccough)

(वात कफप्रकोप सह होने पर) कट्फलादि क्वाथ ११०। पिप्पल्यादि लोह ११४। शंखचूड़ रस ११४। वासाकूष्माण्ड खण्ड १०१।

अपचन जन्य-श्वासकासचिंतामणि १११। हिक्काहर योग ११७। हिक्काहर तंत्र ११७। लाज मण्ड १३५।

अन्ननलिका प्रदाह से-श्वासहारी ११३। रसादिवटी १३५। चतुर्भुज रस १३६।

दाहसह हिक्का-शंखभस्म ११। वमनान्तक योग १३४।

मस्तिष्क प्रदाह से ज्वरसह हिक्का-सुवर्णचिन्तामणि २१। बृहद् कस्तूरी भैरव रस २५।

७४. हृद्रोग (Heart Disease)

शुक्र की निर्बलता से धड़कन-चिन्तामणि रस १६९। याकूती १७१। तारकेश्वर रस १७३

रक्त की कमी से धड़कन-शंकर वटी १६९। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। धात्री रसायन २९७।

आमवातज हृद्विकार-शंकर वटी १६९। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। बृहद् वातचिन्तामणि १४३।

वात प्रकोप-हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण ७४। उदावर्तहरगुटिका ७३। रसोनादिअर्क ८१।

अन्य रोगों से धड़कन-शंकर वटी १६९। याकूती १७१। हृद्य चूर्ण १७२। बलाद्य घृत १७०। पञ्चसार रस १७०। तारकेश्वररस १७३। धात्री रसायन २९७।

रक्तस्राव से हृदय की निर्बलता-शंकर वटी १६९। चिन्तामणि रस १६९। बृहत्सुवर्ण मालिनी वसंत ३७।

अग्निमांद्य से धड़कन-शंकरवटी १६९। भल्लातकादि क्षार ७६।

फुफ्फुस निर्बलतासह धड़कन-शंकर वटी १६९। चिन्तामणि रस १६९। याकूती १७१। श्वासकास चिन्तामणि रस १११।

हृदयशूल-बलाद्य घृत १७०। जवाहर मोहरा १७०। तालीसादि मोदक ११०। वसंतोदयपाक २९५। महाकल्याण रस २९९। वासाकूष्माण्ड खण्ड १०१। शूलगजकेशरी १६४।

घबराहट-हिंगुलकर्पूर वटी ३३। पञ्चसार रस १७०। जवाहर मोहरा १७०। हृद्य चूर्ण १७२। तारकेश्वर रस १७३।

पित्तप्रकोप से घबराहट-पञ्चसाररस १७०। हृदयपौष्टिक चूर्ण १७२। भल्लातकादि क्षार ७६।

७५. क्षय-राजयक्ष्मा (Pthisis)

प्रथमावस्था-अभ्रक भस्म ४। यशद भस्म ७। विषमज्वरान्तक लोह ३२। बृहत् सुवर्णमालिनी वसंत ३७। कफाधिक होने पर-बृहच्छृंगाराभ्र १०५ (सितोपलादि शहद-घी सह)। सुवर्ण सर्वांग सुन्दर १२७। एलादि मन्थ १२९। अभ्रकल्प ११९। कपर्द पोटली १२७। रसराज रस (द्वितीय विधि) १२१। शाही चूर्ण १३२।

अरुचि-अभ्रक भस्म ४।

अतिसार-अभ्रक भस्म ४। रत्न विजय पर्पटी ६२।

ज्वर-प्रवालभस्म १०। कब्जसह होने पर-दरदसुधा भस्म १२। सुवर्ण चिन्तामणि २१। अभ्रकल्प ११९। जीर्ण ज्वरान्तक चूर्ण ४८। राजयक्ष्मा करिमत्त केसरी १२०। क्षय केसरी १२१। सिद्धसंजीवनी १२३। रजतादि लोह १२४। लोकेश्वर पोटली १२४। कपर्दपोटली १२७। सुवर्णसर्वांग सुन्दर १२७। गुडुच्यादि रसायन १२७। सुदर्शनादिकषाय १३१। बनफ्शादि शर्बत १३२। (शाही चूर्ण के साथ १३२।)

मलावरोध-हरीतक्यादि अवलेह १३०। रत्नगर्भ पोटली रस १२५। सिद्ध संजीवनी वटी १२३। वासाकूष्माण्ड खण्ड १०१। विजयासत्वादिवटी १४१।

पूर्वावस्था-हेमाभ्रसिन्दूर (द्वितीय विधि) ११९।

कासशमनार्थ-रसराज रस १४२। प्रवाल भस्म १०।

दाह-रौप्य भस्म ४। खर्जूरासव १३०।

शुक्र क्षयज शुष्कता-वंगभस्म ६। बृहत् सुवर्णमालिनी वसन्त ३७। रसराज रस १२१। सिद्ध संजीवन वटी १२३। शुक्रसंजीवनरस १२४। अमृतप्राश घृत १२८। शाही चूर्ण १३२। विन्ध्यवासी योग १२९।

उरःक्षत-विन्ध्यवासी योग १२९। श्रृंगाराभ्र १२३। सिद्ध संजीवनी वटी १२३।

मांसक्षय (Atrophy)-उदुम्बर पत्रसार २१०। अमृत प्राश घृत १२८।

जीर्णावस्था-सुवर्ण भस्म २। नागभस्म ८। बृहत् सुवर्ण मालिनी वसन्त ३७। हेमाभ्रसिन्दूर ११९। राजयक्ष्मा-करिमत्त केसरी १२०। क्षयकुलान्तक १२१। क्षय केसरी १२१। रसराज १२१। सिद्ध संजीवनी १२३। लोकेश्वर पोटली १२४। मृगांक रस १२६। चतुर्भुज रस १३६। शाही चूर्ण १३२।

उरःक्षत-सुवर्ण भस्म २। वासकासव ११६। रसराज रस (द्वितीय विधि) १४२। अमृतप्राश घृत १२८। एलादि मन्थ १२९। कुर्स कहरवा १३०। बलाद्य घृत १७०।

स्वेदाधिक्य-यशद भस्म ७। बीजक निर्यासादि चूर्ण ५२।

७६. क्षुद्ररोग

त्वचा पर मस्से (Warts)-सुवर्ण वंग १।

मुखदूषिका (**तारुण्य पिटिका** Acne)-शंख भस्म ११। क्षुद्ररोगहर योग (नं. ६) २४७। किंशुकादि तैल २४८।

मांसांकुर (**मस्से** Verrucal Planae)-शोरा द्रावक ८३।

गुदशूक (condyloma)-शोराद्रावक ८३। सवीरमल्ल पुष्प २१८।

दारुणक (Ringworm of the Scalp)-क्षुद्ररोगहर योग (नं. १) २४७। महासिन्दूराद्य तैल २३६। कण्डूनाशक तैल २३८।

कुनख (Megalonychosis)-क्षुद्ररोगहर योग (नं. ५) २४७।

व्यंग (Naevus)-क्षुद्ररोगहर योग (नं. ७) २४७। किंशुकादि तैल २४८। बृहन्मरिचादि तैल २३६।

अरुंषिका (Favs)-बृहन्मरिचादि तैल २३६।

❑❑

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (ध.ट्र.) द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (प्रथम खण्ड़)	335.00
2.	रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (द्वितीय खण्ड	222.00
3.	रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्रथम खण्ड़ (गुजराती)	375.00
4.	चिकित्सा तत्त्व प्रदीप (प्रथम खण्ड़)	185.00
5.	चिकित्सा तत्त्व प्रदीप (द्वितीय खण्ड़)	365.00
6.	नैत्र रोग विज्ञान	250.00
7.	सिद्ध परीक्षा पद्धति (प्रथम खण्ड़)	120.00
8.	गाँवो में औषधरत्न (प्रथम खण्ड़)	74.00
9.	गाँवो में औषधरत्न (द्वितीय खण्ड़)	96.00
10.	गाँवो में औषधरत्न (तृतीय खण्ड़)	100.00
11.	रसहृदयतन्त्रम्	55.00
12.	रसोपनिषद्	87.00
13.	नित्यपयोगी चूर्ण संग्रह	42.00
14.	नित्यपयोगी क्वाथ संग्रह	45.00
15.	नित्यपयोगी गुटिका संग्रह	49.00
16.	रसशास्त्र प्रवेशिका	40.00
17.	रसतत्व विवेचन	55.00
18.	ज्योतिष से रोग निदान	48.00
19.	धन्वन्तरि कथा दर्शः	15.00
20.	वृहद् सूची पत्र (Therapeutic Index)	46.00
21.	औषधि गुणधर्म विवेचन	85.00

Website : kalera.in

Email: kgabkalera@yahoo.com
kgabparbatpuraajmer@yahoo.com